भगवान् महावीर के २५००वें परिनिर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में प्रकाशित



जिनवाणी

का

विशेषांक



जैन संस्कृति और राजस्थान

जैन संस्कृति और राजस्थान

[राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में जैनधर्म के बहुआयामी योगदान का मूल्यांकन

प्रधान सम्पादक

डॉ० नरेन्द्र भानावत



सम्पादक

डॉ० कमलचन्द सोगानी

डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत



सह सम्पादक

डॉ० प्रेमसुमन जैन

डॉ० देव कोठारी

डॉ० महेन्द्र भानावत

महावीर कोटिया



प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

बापू बाजार, जयपुर-३

'जिनवाणी' विशेषांक

अप्रैल – जुलाई, १९७५ : वर्ष ३२, अंक ४–७
वीर निर्वाण संवत् २५०१

●

प्रबन्ध सम्पादक :

प्रेमराज बोगावत

●

संस्थापक :

श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़

●

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार, जयपुर–३०२००३

●

सम्पादकीय सम्पर्क-सूत्र :

सी–२३५ ए, दयानन्द मार्ग, तिलक नगर, जयपुर–३०२००४

●

वार्षिक शुल्क : दस रुपया

आजीवन शुल्क : स्वदेश में १५१ रु०

आजीवन शुल्क : विदेश में ४०१ रु०

इस अंक का मूल्य : दस रुपये

आवरण पृष्ठ : श्री पारस भंसाली

●

मुद्रक :

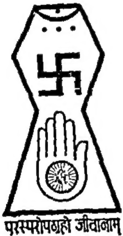
जिनवाणी प्रिण्टर्स के लिए

फ्रेण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स

जौहरी बाजार, जयपुर–३

नोट :—यह आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचारों से सम्पादक अथवा मण्डल की सहमति हो ।

समर्पण





परम श्रद्धेय

आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज

के

नैतिक उत्थान एव सास्कृतिक जागरण

मे निरत

साधनाशील महिमामय व्यक्तित्व

को

सादर सविनय

समर्पित

अनुक्रमणिका

तृतीय खण्ड

राजस्थान का सांस्कृतिक विकास और जैन धर्मानुयायी (१७९–४६६)

चतुर्थ खण्ड

परिचर्चा (४६७-४९०)

परिशिष्ट

हमारे सहयोगी लेखक (४९१-४९६)

□□

सम्पादकीय

सस्कृति जन का मस्तिष्क है और धम जन का हृदय । जब जब सस्कृति ने कठोर रूप धारण किया, हिंसा का पथ अपनाया, अपने रूप को भयावह व विकृत बनाने का प्रयत्न किया, तब तब धम ने उसे हृदय का प्यार लुटा कर कोमल बनाया, अहिंसा और करुणा की बरसात कर उसके रक्तानुरजित पथ को शीतल और अमृतमय बनाया, सयम, तप और सदाचार से उसके जीवन को सौन्दय और शक्ति का वरदान दिया । मनुष्य की मूल समस्या है—आनन्द की खोज । यह आनन्द तब तक नही मिल सकता जब तक कि मनुष्य भय मुक्त न हो, आतक मुक्त न हो । इस भय मुक्ति के लिये दो शर्तें आवश्यक हैं । प्रथम तो यह कि मनुष्य अपने जीवन को इतना शीलवान, सदाचारी और निमल बनाए कि कोई उससे न डरे । द्वितीय यह कि वह अपने मे इतना पुरुषार्थ, सामथ्य और बल सचित करे कि कोई उसे डरा धमका न सके । प्रथम शत को धम पूर्ण करता है और दूसरी को सस्कृति ।

जैनधर्म और मानव-सस्कृति

जैनधम ने मानव सस्कृति को नवीन रूप ही नही दिया, उसके अमूत्त भाव तत्त्व को प्रकट करने के लिए सम्यता का विस्तार भी किया । प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव इस मानव सस्कृति के सूत्रधार बने । उनके पूव युगलियो का जीवन था, भोगमूलक दृष्टि की प्रधानता थी, कल्पवृक्षो के आधार पर जीवन चलता था । कम और कर्तव्य की भावना सुषुप्त थी । लोग न खेती करते थे न व्यवसाय । उनमे सामाजिक चेतना और लोक दायित्व की भावना के अकुर नही फूटे थे । भगवान् ऋषभदेव ने भोगमूलक सस्कृति के स्थान पर कमगूलक सस्कृति की प्रतिष्ठा की । पेड पौधो पर निभर रहने वाले लोगो को खेती करना बताया । आत्म शक्ति स अनभिज्ञ रहने वाले लोगो को अक्षर और लिपि का ज्ञान देकर पुरुषार्थी बनाया । दैववाद के स्थान पर पुरुषाथवाद की मान्यता को सपुष्ट किया । अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लडने के लिये हाथो मे बल दिया । जड सस्कृति को कम की गति दी । चेतना शून्य जीवन को सामाजिकता का बोध और सामूहिकता का स्वर दिया । पारिवारिक जीवन को मजबूत बनाया, विवाह, प्रथा का समारभ किया । कला-कौशल और उद्योग धन्धो की व्यवस्था कर निष्क्रिय जीवन-यापन की प्रणाली को सक्रिय और सक्षम बनाया ।

सस्कृति का परिष्कार और महावीर

अन्तिम तीर्थंकर महावीर तक आते आते इस सस्कृति मे कई परिवतन हुए । सस्कृति के विशाल सागर मे विभिन्न विचारधाराओ का मिलन हुआ । पर महावीर के समय इस सास्कृतिक

मिलन का कुत्सित और वीभत्स रूप ही सामने आया। संस्कृति का जो निर्मल और लोककल्याणकारी था, वह अब विकारग्रस्त होकर चन्द व्यक्तियों की ही सम्पत्ति बन गया। धर्म के नाम पर क्रियाकाण्ड का प्रचार बढा। यज्ञ के नाम पर मूक पशुओं की बलि दी जाने लगी। अश्वमेध ही नही नरमेध भी होने लगे। वर्णाश्रम व्यवस्था में कई विकृतिया आ गई। स्त्री और शूद्र अधम तथा निम्न समझे जाने लगे। उनको आत्म-चिन्तन और सामाजिक-प्रतिष्ठा का कोई अधिकार न रहा। त्यागी-तपस्वी समझे जाने वाले लोग अब लाखो-करोड़ो की सम्पत्ति के मालिक बन बैठे। संयम का गला घोटकर भोग और ऐश्वर्य किलकारिया मारने लगा। एक प्रकार का सांस्कृतिक संकट उपस्थित हो गया। इससे मानवता को उबारना आवश्यक था।

वर्द्धमान महावीर ने संवेदनशील व्यक्ति की भाति इस गंभीर स्थिति का अनुशीलन और परीक्षण किया। साढे बारह वर्षों की कठोर साधना के बाद वे मानवता को इस संकट से उबारने के लिए अमृत ले आये। उन्होंने घोषणा की—सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नहीं चाहता। यज्ञ के नाम पर की गई हिंसा अधर्म है। सच्चा यज्ञ आत्मा को पवित्र बनाने मे है। इसके लिये क्रोध की बलि दीजिए, मान को मारिये, माया को काटिये और लोभ का उन्मूलन कीजिये। महावीर ने प्राणि-मात्र की रक्षा करने का उद्बोधन दिया। धर्म के इस अहिंसामय रूप ने संस्कृति को अत्यन्त सूक्ष्म और विस्तृत बना दिया। उसे जन-रक्षा (मानव-समुदाय) तक सीमित न रखकर समस्त प्राणियो की सुरक्षा का भार भी संभलवा दिया। यह जनतंत्र से भी आगे प्राणतंत्र की व्यवस्था का सुन्दर उदाहरण है।

जैनधर्म ने सांस्कृतिक विषमता के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की। वर्णाश्रम व्यवस्था की विकृति का शुद्धिकरण किया। जन्म के आधार पर उच्चता और नीचता का निर्णय करने वाले ठेकेदारो को मुँह तोड़ जवाब दिया। कर्म के आधार पर ही व्यक्तित्व की पहचान की। अपमानित और अचल सम्पत्तिवत् मानी जाने वाली नारी के प्रति आत्म-सम्मान और गौरव की भावना जगाई। उसे धर्म ग्रंथो को पढने का ही अधिकार नही दिया वरन् आत्मा के चरम विकास मोक्ष की अधिकारिणी माना। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार इस युग मे सर्वप्रथम मोक्ष जाने वाली ऋषभ की माता मरुदेवी ही थी। नारी को अबला और शक्तिहीन नही समझा गया। उसकी आत्मा मे भी उतनी ही शक्ति संभाव्य मानी गई, जितनी पुरुष मे। महावीर ने चन्दनबाला की इसी शक्ति को पहचान कर उसे साध्वियो का नेतृत्व प्रदान किया। नारी को दब्बू, आत्मभीरु और साधना-क्षेत्र मे बाधक नही माना गया। उसे साधना मे पतित पुरुष को उपदेश देकर संयम-पथ पर लाने वाली प्रेरक शक्ति के रूप में देखा गया। राजुल ने संयम से पतित रथनेमि को उद्बोधन देकर अपनी आत्म-शक्ति का ही परिचय नही दिया, वरन् तत्वज्ञान का पांडित्य भी प्रदर्शित किया।

सांस्कृतिक समन्वय और भावनात्मक एकता :

जैनधर्म ने सांस्कृतिक समन्वय और एकता की भावना को भी बलवती बनाया। यह समन्वय विचार और आचार दोनो क्षेत्रो में देखने को मिलता है। विचार-समन्वय के लिए अनेकान्त-दर्शन की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भगवान् महावीर ने इस दर्शन की मूल भावना का विश्लेपण करते हुए सांसारिक प्राणियो को बोध दिया—किसी बात को, सिद्धान्त को एक तरफ से मत देखो, एक ही तरह उस पर विचार मत करो। तुम जो कहते हो वह सच होगा, पर दूसरे जो कहते है, वह

भी सच हो सकता है। इसलिये सुनते ही भड़को मत, वक्ता के दृष्टिकोण से विचार करो। आज संसार में जो तनाव और द्वन्द्व है वह दूसरों के दृष्टिकोण को न समझने या विपर्यय रूप से समझने के कारण है। अगर अनेकान्त दृष्टि के आलोक में सभी राष्ट्र और व्यक्ति चिंतन करने लग जाएँ तो झगड़े की जड़ ही न रहे। संस्कृति के रक्षण और प्रसार में जैनधर्म की यह देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आचार-समन्वय की दिशा में मुनि धर्म और गृहस्थ धर्म की व्यवस्था दी है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का सामंजस्य किया गया है। ज्ञान और क्रिया का, स्वाध्याय और सामायिक का संतुलन इसीलिये आवश्यक माना गया है। मुनि-धर्म के लिये महाव्रतों के परिपालन का विधान है। वहाँ सर्वथा-प्रकारेण हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह के त्याग की बात कही गई है। गृहस्थ धर्म में अणुव्रतों की व्यवस्था दी गई है, जहाँ यथाशक्य इन आचार नियमों का पालन अभिप्रेत है। प्रतिमाधारी श्रावक वानप्रस्थाश्रमी की तरह और साधु संन्यासाश्रमी की तरह माना जा सकता है।

सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से जैनधर्म का मूल्यांकन करते समय यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि उसने सम्प्रदायवाद, जातिवाद, प्रांतीयतावाद, आदि सभी मतभेदों को त्याग कर राष्ट्र-देवता को बड़ी उदार और आदर की दृष्टि से देखा है। प्रत्येक धर्म के विकसित होने के कुछ विशिष्ट क्षेत्र होते हैं। उन्हीं दायरों में वह धर्म बंधा हुआ रहता है पर जैनधर्म इस दृष्टि से किसी जनपद या प्रान्त विशेष में ही बंधा हुआ नहीं रहा। उसने भारत के किसी एक भाग विशेष को ही अपनी श्रद्धा का, साधना का और चिंतना का क्षेत्र नहीं बनाया। वह सम्पूर्ण राष्ट्र को अपना मानकर चला। धर्म का प्रचार करने वाले विभिन्न तीर्थंकारों की जन्मभूमि, दीक्षास्थली, तपोभूमि, निर्वाणस्थली, आदि अलग अलग रही हैं। भगवान् महावीर विदेह (उत्तर बिहार) में उत्पन्न हुए तो उनका साधना क्षेत्र व निर्वाण स्थल मगध (दक्षिण बिहार) रहा। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म तो वाराणसी में हुआ पर उनका निर्वाणस्थल बना सम्मेद शिखर। प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव अयोध्या में जन्मे, पर उनकी तपोभूमि रही कैलाश पर्वत और भगवान् अरिष्टनेमि का कर्म व धर्म क्षेत्र रहा गुजरात। भूमिगत सीमा की दृष्टि से जैनधर्म सम्पूर्ण राष्ट्र में फैला। देश की चप्पा चप्पा भूमि इस धर्म की श्रद्धा और शक्ति का आधार बनी। दक्षिणी भारत के श्रवणबेलगोला व कारकल आदि स्थानों पर स्थित बाहुबली के प्रतीक आज भी इस राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक हैं।

जैनधर्म की यह सांस्कृतिक एकता भूमिगत ही नहीं रही। भाषा और साहित्य में भी उसने समन्वय का यह औदार्य प्रकट किया। जैनाचार्यों ने संस्कृत को ही नहीं अन्य सभी प्रचलित लोक-भाषाओं को अपना कर उन्हें समुचित सम्मान दिया। जहाँ जहाँ भी वे गए, वहाँ वहाँ की भाषाओं को चाहे वे आर्य परिवार की हों, चाहे द्राविड परिवार की—अपने उपदेश और साहित्य का माध्यम बनाया। इसी उदार प्रवृत्ति के कारण मध्ययुगीन विभिन्न जनपदीय भाषाओं के मूल रूप सुरक्षित रह सके हैं। आज जब भाषा के नाम पर विवाद और मतभेद हैं, तब ऐसे समय में जैनधर्म की यह उदार दृष्टि अभिनन्दनीय ही नहीं अनुकरणीय भी है।

जैनधर्म अपनी समन्वय भावना के कारण ही सगुण और निर्गुण भक्ति के झगड़े में नहीं पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास के समय इन दोनों भक्ति धाराओं में जो समन्वय दिखाई पड़ता है, उसके बीज जैन भक्तिकाव्य में आरम्भ से मिलते हैं। जैन दर्शन में निराकार आत्मा और वीतराग साकार भगवान् के स्वरूप में एकता के दर्शन होते हैं। पंचपरमेष्ठी महामंत्र (णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं

आदि) में सगुण और निर्गुण भक्ति का कितना सुन्दर मेल बिठाया है। अर्हन्त सगुण परमात्मा कहलाते हैं। उनके शरीर होता है, वे दिखाई देते हैं। सिद्ध निराकार हैं, उनके कोई शरीर नहीं होता, उन्हें हम देख नहीं सकते। एक ही णमोकार मंत्र में इस प्रकार का समभाव कम देखने को मिलता है।

जैनधर्म का लोकसंग्राहक रूप :

धर्म का आविर्भाव जब कभी हुआ विषमता में समता, अव्यवस्था में व्यवस्था और अपूर्णता में सम्पूर्णता स्थापित करने के लिए ही हुआ। अतः यह स्पष्ट है कि उसके मूल में वैयक्तिक प्रतिक्रम अवश्य रहा पर उसका लक्ष्य समष्टिमूलक हित ही रहा है, उसका चिन्तन लोकहित की भूमिका पर ही अग्रसर हुआ है।

पर सामान्यत. जब कभी जैनधर्म या श्रमण धर्म के लोक संग्राहक रूप की चर्चा चलती है तब लोग चुप्पी साध लेते हैं। इसका कारण मेरी समझ मे शायद यह रहा है कि जैन दर्शन मे वैयक्तिक मोक्ष की बात कही गयी है। सामूहिक निर्वाण की बात नही। पर जब हम जैन दर्शन का सम्पूर्ण संदर्भों मे अध्ययन करते हैं तो उसके लोक संग्राहक रूप का मूल उपादान प्राप्त हो जाता है।

लोक संग्राहक रूप का सबसे बडा प्रमाण है लोक नायकों के जीवन क्रम की पवित्रता, उनके कार्य-व्यापारों की परिधि और जीवन-लक्ष्य की व्यापकता। जैनधर्म के प्राचीन ग्रंथों मे ऐसे कई उल्लेख आते हैं कि राजा श्रावक धर्म अंगीकार कर, अपनी सीमाओं मे रहते हुए, लोक-कल्याणकारी प्रवृत्तियों का संचालन एवं प्रसारण करता है। पर काल-प्रवाह के साथ उसका चिन्तन बढ़ता चलता है और वह देशविरति श्रावक से सर्वविरति श्रमण बन जाता है। सांसारिक मायामोह, पारिवारिक प्रपञ्च, देह-आसक्ति आदि से विरत होकर वह सच्चा साधु, तपस्वी और लोक-सेवक बन जाता है। इस रूप या स्थिति को अपनाते ही उसकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक और उसका हृदय अत्यन्त उदार बन जाता है। लोक-कल्याण मे व्यवधान पैदा करने वाले सारे तत्त्व अब पीछे छूट जाते हैं और वह जिस साधना पर बढता है, उसमे न किसी के प्रति राग है न द्वेष। वह सच्चे अर्थों मे श्रमण है।

श्रमण के लिए शमन, समन, समण, आदि शब्दो का भी प्रयोग होता है। उनके मूल मे भी लोक संग्राहक वृत्ति काम करती रही है। लोक संग्राहक वृत्ति का धारक सामान्य पुरुष हो ही नही सकता। उसे अपनी साधना से विशिष्ट गुणो को प्राप्त करना पड़ता है। क्रोधादि कषायों का शमन करना पडता है, पांच इन्द्रियो और मन को वशवर्ती बनाना पड़ता है, शत्रु-मित्र तथा स्वजन-परिजन की भेद भावना को दूर हटाकर सबमे समान मन को नियोजित करना पडता है। समस्त प्राणियो के प्रति समभाव की धारणा करनी पड़ती है। तभी उसमे सच्चे श्रमण-भाव का रूप उभरने लगता है। वह विशिष्ट साधना के कारण तीर्थंकर तक बन जाता है। ये तीर्थंकर तो लोकोपदेशक ही होते हैं।

इस महान् साधना को जो साध लेता है, वह श्रमण बारह उपमाओ से उपमित किया गया है :—

उरग, गिरि, जलण, सागर, णहतल, तरुगण, समोय जो होइ।
भमर, मिय, धरणि, जलरुह, रवि, पवण, समोय सो समणो॥

अर्थात् जो सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्षपंक्ति, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य और पवन के समान होता है, वह श्रमण कहलाता है।

ये सब उपमाएँ साभिप्राय दी गई है। सर्प की भांति ये साधु भी अपना कोई घर (बिल) नही बनाते। पर्वत की भांति ये परीषहो और उपसर्गो की आंधी से डोलायमान नही होते। अग्नि की भांति ज्ञान रूपी ईन्धन से ये तृप्त नही होते। समुद्र की भांति अथाह ज्ञान को प्राप्त कर भी तीर्थंकर की मर्यादा का अतिक्रमण नही करते। आकाश की भांति ये स्वाश्रयी, स्वावलम्बी होते हैं, किसी के अवलम्बन पर नही टिकते। वृक्ष की भांति समभाव पूर्वक दु ख-सुख को सहन करते हैं। भ्रमर की भांति किसी को बिना पीडा पहुचाये शरीर-रक्षण के लिए आहार ग्रहण करते हैं। मृग की भांति पापकारी प्रवृत्तियो के सिंह से दूर रहते हैं। पृथ्वी की भांति शीत, ताप, छेदन, भेदन आदि कष्टो को समभाव पूर्वक सहन करते हैं, कमल की भांति वासना के कीचड और वैभव के जल से अलिप्त रहते हैं। सूर्य की भांति स्वसाधना एव लोकोपदेशना के द्वारा अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं। पवन की भांति सर्वत्र अप्रतिबद्ध रूप से विचरण करते हैं। ऐसे श्रमणो का वैयक्तिक स्वार्थ हो ही क्या सकता है ?

ये श्रमण पूर्ण अहिंसक होते हैं। षट्काय (पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय) जीवो की रक्षा करते हैं। न किसी को मारते हैं, न किसी को मारने की प्रेरणा देते हैं और न जो प्राणियो का वध करते हैं, उनकी अनुमोदना करते हैं। इनका यह अहिंसा-प्रेम अत्यन्त सूक्ष्म और गम्भीर होता है।

ये अहिंसा के साथ साथ सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के भी उपासक होते हैं। किसी की वस्तु बिना पूछे नही उठाते। कामिनी और कचन के सर्वथा त्यागी होते हैं। आवश्यकता से भी कम वस्तुओ की सेवना करते हैं। सग्रह करना तो इन्होने सीखा ही नही। ये मनसा, वाचा, कर्मणा किसी का वध नही करते हथियार उठाकर किसी अत्याचारी-अन्यायी राजा का नाश नही करते, लेकिन इससे उनके लोक सग्रही रूप मे कोई कमी नही आती। भावना की दृष्टि से तो उसमे और वशिष्ट्य आता है। ये श्रमण पापियो को नष्ट कर उनको मौत के घाट नही उतारते वरन् उन्हे आत्मबोध और उपदेश देकर सही मार्ग पर लाते हैं। ये पापी को मारने मे नही, उसे सुधारने मे विश्वास करते हैं। यही कारण है कि महावीर ने विषदृष्टि सर्प चण्डकौशिक को मारा नही वरन् अपने प्राणो को खतरे मे डाल कर, उसे उसके आत्मस्वरूप से परिचित कराया। बस फिर क्या था ? वह विष से अमृत बन गया। लोक-कल्याण की यह प्रक्रिया अत्यन्त सूक्ष्म और गहरी है।

इनका लोक सग्राहक रूप मानव सम्प्रदाय तक ही सीमित नही है। ये मानव के हित के लिये अन्य प्राणियो का वध करना व्यर्थ ही नहीं धर्म के विरुद्ध समझते हैं। इनकी यह लोक-सग्रह की भावना इसीलिये जनतत्र से आगे बढ़कर प्राणतत्र तक पहुँची है। यदि अयतना से किसी जीव का वध हो जाता है या प्रमादवश किसी को कष्ट पहुचता है तो ये उन सब पापो से दूर हटने के लिए प्रात साय प्रतिक्रमण (प्रायश्चित) करते हैं। ये नगे पैर पैदल चलते हैं। गाव गाव और नगर नगर में विचरण कर सामाजिक चेतना और सुषुप्त पुरुषार्थ को जाग्रत करते हैं। चातुर्मास के अलावा किसी भी स्थान पर नियत वास नही करते। अपने पास केवल इतनी वस्तुएँ रखते हैं जिन्हें ये अपने आप उठाकर भ्रमण कर सकें। भोजन के लिये गृहस्थो के यहा से भिक्षा लाते हैं। भिक्षा भी जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही। दूसरे समय के लिये भोजन का सचय ये नही करते। रात्रि मे न पानी पीते है न कुछ खाते हैं।

इनकी दैनिक चर्या भी बड़ी पवित्र होती है। दिन-रात ये स्वाध्याय-मनन-चिन्तन-लेखन और प्रवचन आदि मे लगे रहते है। सामान्यतः ये प्रतिदिन संसार के प्राणियों को धर्मबोध देकर कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करते हैं। उनका समूचा जीवन लोक-कल्याण मे ही लगा रहता है। इस लोक-सेवा के लिये ये किसी से कुछ नहीं लेते।

श्रमण धर्म की यह आचारनिष्ठ दैनन्दिन चर्या इस बात का प्रबल प्रमाण है कि ये श्रमण सच्चे अर्थों मे लोक-रक्षक और लोक-सेवी हैं। यदि आपद्काल में अपनी मर्यादाओं मे तनिक भी इधर-उधर होना पड़ता है तो उसके लिये भी ये दण्ड लेते हैं, व्रत-प्रत्याख्यान करते हैं। इतना ही नही, जब कभी अपनी साधना मे कोई बाधा आती है तो उसकी निवृत्ति के लिये परीषह और उपसर्ग आदि की सेवना करते है। मैं नही कह सकता, इससे अधिक आचरण की पवित्रता, जीवन की निर्मलता और लक्ष्य की सार्वजनीनता और किस लोक संग्राहक की होगी ?

सामान्यतः यह कहा जाता है कि जैनधर्म ने संसार को दुखमूलक बताकर निराशा की भावना फैलाई है, जीवन मे संयम और विराग की अधिकता पर बल देकर उसकी अनुराग भावना और कला प्रेम को कुंठित किया है। पर यह कथन साधार नही है, भ्रांतिमूलक है। यह ठीक है कि जैनधर्म ने संसार को दुखमूलक माना, पर किस लिए ? अखण्ड आनन्द की प्राप्ति के लिए, शाश्वत सुख की उपलब्धि के लिए। यदि जैनधर्म संसार को दुखपूर्ण मान कर ही रुक जाता, सुख-प्राप्ति की खोज नही करता, उसके लिए साधना मार्ग की व्यवस्था नही देता तो हम उसे निराशावादी कह सकते थे, पर उसमें तो मानव को महात्मा बनाने की, आत्मा को परमात्मा बनाने की आस्था का बीज छिपा हुआ है। दैववाद के नाम पर अपने को असहाय और निर्बल समझी जाने वाली जनता को किसने आत्म-जागृति का सन्देश दिया ? किसने उसके हृदय मे छिपे हुए पुरुषार्थ को जगाया ? किसने उसे अपने भाग्य का विधाता बनाया ? जैनधर्म की यह विचारधारा युगो बाद आज भी बुद्धिजीवियो की धरोहर बन रही है, संस्कृति को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान कर रही है।

यह कहना भी कि जैनधर्म निरा निवृत्तिमूलक है, ठीक नही है। जीवन के विधायक पक्ष को भी उसने महत्त्व दिया है। इस धर्म के उपदेशक तीर्थंकर लौकिक-अलौकिक वैभव के प्रतीक है। दैहिक दृष्टि से वे अनन्त बल, अनन्त सौदर्य और अनन्त पराक्रम के धनी होते है। जैनधर्म की कलात्मक देन अपने आप मे महत्त्वपूर्ण और अलग से अध्ययन की अपेक्षा रखती है। वास्तुकला के क्षेत्र में विशालकाय कलात्मक मन्दिर, मेरुपर्वत की रचना, नंदीश्वर द्वीप व समवसरण की रचना, मानस्तम्भ, चैत्य, स्तूप आदि उल्लेखनीय है। मूर्तिकला मे विभिन्न तीर्थंकरो की मूर्तियो को देखा जा सकता है। चित्रकला में भित्ति चित्र, ताड़पत्रीय चित्र, काष्ठ चित्र, लिपि चित्र, वस्त्र पर चित्र आश्चर्य मे डालने वाले हैं। इस प्रकार निवृत्ति और प्रवृत्ति का समन्वय कर जैनधर्म ने संस्कृति को लचीला बनाया है। उसकी कठोरता को कला की बाँह दी है तो उसकी कोमलता को सयम की दृढ़ता।

नैतिक उत्थान और सांस्कृतिक जागरण में योग :

आधुनिक भारत के नवनिर्माण की सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रवृत्तियो मे जैनधर्मावलम्बियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अधिकांश सम्पन्न जैन श्रावक अपनी आय का एक निश्चित भाग लोकोपकारी प्रवृत्तियो मे व्यय करने के व्रती रहे हैं। जीवदया, पशुबलि निषेध, स्वधर्मी वात्सल्यफंड, विधवाश्रम, वृद्धाश्रम, जैसी अनेक प्रवृत्तियो के माध्यम से असहाय लोगो

को सहायता मिली है। समाज मे निम्न और घृणित समझे जाने वाले खटीक, बलाई आदि जाति भाइयो मे प्रचलित कुव्यसनो को मिटा कर, उन्हें सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देने वाला वीरवाल एव धर्मपाल प्रवृत्ति का रचनात्मक कार्यक्रम अहिंसक समाज-रचना की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। लौकिक शिक्षण के साथ साथ नैतिक शिक्षण के लिये देश के विभिन्न क्षेत्रो मे कई जैन शिक्षण सस्थाए, स्वाध्याय शिविर और छात्रावास कार्यरत हैं। निर्धन और मेधावी छात्रो को अपने शिक्षण मे सहायता पहुँचाने के लिये व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर बने कई धार्मिक और पारमार्थिक ट्रस्ट हैं, जो छात्रवृत्तिया और ऋण देते हैं। जन स्वास्थ्य के सुधार की दिशा मे भी जैनियो द्वारा विभिन्न क्षेत्रो मे कई अस्पताल और औषधालय खोले गये हैं, जहा रोगियो को नि शुल्क तथा रियायती दरो पर चिकित्सा सुविधा प्रदान की जाती है।

जैन साधु और साध्विया वर्षा ऋतु के चार महीनो मे पदयात्रा नही करते। वे एक ही स्थान पर ठहरते हैं जिसे चातुर्मास करना कहते हैं। इस काल मे जैन लोग तप, त्याग, प्रत्याख्यान, सघ-यात्रा, तीर्थ यात्रा, मुनि दर्शन, उपवास, आयम्बिल, मासखमण, सवत्सरी क्षमापर्व जैसे विविध उपासना प्रकारो द्वारा आध्यात्मिक जागृति के विविध कार्यक्रम बनाते हैं। इससे व्यक्तिगत जीवन निर्मल, स्वस्थ और उदार बनता है तथा सामाजिक जीवन मे बधुत्व, मैत्री वात्सल्य जैसे भावो की वृद्धि होती है।

अधिकाश जैन धर्मावलम्बी कृषि, वाणिज्य और उद्योग पर निर्भर है। देश के विभिन्न क्षेत्रो मे ये फले हुए हैं। इनके बडे बडे उद्योग प्रतिष्ठान हैं। अपने आर्थिक सगठनो द्वारा इन्होने राष्ट्रीय उत्पादन तो बढाया ही है, देश के लिये विदेशी मुद्रा अर्जन करने मे भी इनकी विशेष भूमिका रही है। जैन सस्कारो के कारण मर्यादा से अधिक आय का उपयोग वे सार्वजनिक स्तर के कल्याण कार्यों मे करते रहे हैं।

राजनीतिक चेतना के विकास मे भी जैनियो का सक्रिय योग रहा है। भामाशाह की परम्परा को निभाते हुए कइयो ने राष्ट्रीय रक्षाकोष मे पुष्कल राशि समर्पित की है। स्वतन्त्रता से पूर्व देशी रियासतो मे कई जैन श्रावक राज्यो के दीवान और सेनापति जैसे महत्त्वपूर्ण पदो पर कार्य करते रहे हैं। स्वतन्त्रता सग्राम मे क्षेत्रीय आन्दोलनो का नेतृत्व भी उन्होने सभाला है। अहिंसा, सत्याग्रह भूमिदान, सम्पत्तिदान, भूमि सीमाबदी आयकर प्रणाली, धर्म निरपेक्षता, जैसे सिद्धान्तो और कार्यक्रमो मे जैन दर्शन की भावधारा न्यूनाधिक रूप से प्रेरक कारण रही है।

प्राचीन साहित्य के सरक्षक के रूप मे जैनधर्म की विशेष भूमिका रही है। जैन साधुओ ने न केवल मौलिक साहित्य की सर्जना की वरन् जीर्णशीर्ण, दुर्लभ ग्रन्थो का प्रतिलेखन कर उनकी रक्षा की और स्थान स्थान पर ग्रन्थ भण्डारो की स्थापना कर इस अमूल्य निधि को सुरक्षित रखा। ये ज्ञान भण्डार इस दृष्टि से राष्ट्र की अमूल्य निधि हैं। महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो के प्रकाशन का कार्य भी जैन शोध सस्थानो ने अब अपने हाथ मे लिया है। जैन पत्र पत्रिकाओ द्वारा भी वैयक्तिक पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को स्वस्थ और सदाचारयुक्त बनाने की दिशा मे बडी प्रेरणा और शक्ति मिलती रही है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जैनधर्म की दृष्टि राष्ट्र के सर्वांगीण विकास पर रही है। उसने मानव जीवन की सफलता को ही मुख्य नही माना उसका बल रहा उसकी सार्थकता और आत्म शुद्धि पर।

भितुत ग्रंथ :

जैनधर्म-दर्शन से सम्बन्धित तात्त्विक ग्रौर सैद्धान्तिक ग्रथ पर्याप्त मात्रा मे लिखे गये हैं पर सामाजिक ग्रौर सास्कृतिक परिप्रेक्ष्य मे जैन सस्कृति के प्रभावो का मूल्याकन करने वाले ग्रंथ वहुत ही कम हैं। प्रस्तुत ग्रंथ इस दिशा मे एक विनम्र प्रयास है।

हमने ऊपर जैनधर्म ग्रौर संस्कृति के मूल्याकन के जिन ग्रायामो की ग्रोर सकेत किया है, उसी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए 'जैन सस्कृति ग्रौर राजस्थान' नामक इस ग्रंथ की योजना तैयार की गई है।

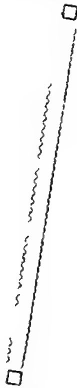
यह ग्रंथ चार खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड 'जैन संस्कृति' से सम्बन्धित है। इसमे जैन सस्कृति के मूल तत्त्वो ग्रौर उसके ऐतिहासिक विकास पर ग्रधिकृत विद्वानो के १६ लेख सकलित किये गये है। द्वितीय खण्ड मे 'राजस्थान मे जैन सस्कृति का विकास' विषय पर ४ लेख दिये गये हैं जो राजस्थान में जैनधर्म के विभिन्न सम्प्रदायो की ऐतिहासिकता पर ग्रच्छा प्रकाश डालते हैं। तृतीय खण्ड 'राजस्थान का सास्कृतिक विकाम ग्रौर जैन धर्मानुयायी' सवसे वड़ा ग्रौर महत्त्वपूर्ण खण्ड है। इसमे ३१ लेख हैं जो ५ भागो मे विभक्त है। ये भाग है—१. पुरातत्त्व ग्रौर कला, २. भापा ग्रौर साहित्य, ३ प्रशासन ग्रौर राजनीति, ४. उद्योग ग्रौर वाणिज्य, ५. धर्म ग्रौर समाज। इस खण्ड के सभी लेख वडे उपयोगी ग्रौर ज्ञानवर्द्धक हैं। कई लेख ऐसे है जो पहली वार सम्वद्ध विपय पर लिखे गये है ग्रौर शोध क्षेत्र की नई संभावनाग्रो के द्वार खोलते है। इस खण्ड का ग्रन्तिम लेख 'राजस्थान मे लोकोपकारी जैन सस्थाएं' सर्वेक्षणात्मक लेख है जो धार्मिक प्रवृत्तियो के सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव का वहुरगी चित्र प्रस्तुत करता है। चतुर्थ खण्ड 'परिचर्चा' से सम्वन्धित है। इसमे विभिन्न क्षेत्रो में कार्यरत ६ प्रवद्ध विचारको के 'राजस्थान के सांस्कृतिक विकास मे जैनधर्म एवं सस्कृति का योगदान' विपय पर विचार गुंफित किये गये है।

इस ग्रंथ के प्रारम्भिक दो खण्डो की ग्रधिकांश सामग्री राजस्थान जैन सस्कृति परिपद्, उदयपुर के सौजन्य से प्राप्त हुई है। इस सहयोग के लिए मैं परिपद् के पदाधिकारियो, विशेपत: डॉ० कमलचन्द सोगानी, श्री वलवन्तसिह मेहता, श्री जोधसिह मेहता ग्रादि के प्रति ग्रपना हार्दिक ग्राभार व्यक्त करता हूँ। विद्वान् लेखको ने ग्रत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी जिस तत्परता ग्रौर ग्रपनत्व के साथ ग्रपने लेख भिजवाकर सहयोग प्रदान किया तथा सम्पादक-मण्डल के सदस्यों ने जो ग्रात्मीयतापूर्ण योगदान दिया, उन सवके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं ग्रपना परम कर्तव्य मानता हूँ। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के मत्री श्री चन्द्रराज सिंघवी के प्रति मैं विशेप ग्राभार प्रकट करता हूँ जिनके सहयोग से ग्रल्प ग्रवधि मे इतने वडे ग्रथ के प्रकाशन की व्यवस्था सम्भव हो सकी।

ग्राशा है, जैन सस्कृति ग्रौर राजस्थान के विकासात्मक सास्कृतिक ग्रध्ययन की दिशा मे यह ग्रंथ एक महत्त्वपूर्ण घटक सिद्ध होगा ग्रौर ग्रन्य प्रदेशवासियों को भी इस दृष्टिकोण से सांस्कृतिक ग्रध्ययन-ग्रनुशीलन करने की प्रेरणा मिलेगी।

सी-२३५ ए, दयानन्द मार्ग
तिलक नगर, जयपुर-४

प्रथम खण्ड



जैन संस्कृति

१ | णमोकार मंत्र

०

डॉ० नेमिचन्द शास्त्री

नमस्कार मंत्र

णमो अरिहंताणं,
णमो सिद्धाणं,
णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं ।

अरिहन्तों या अर्हन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक के सब साधुओं को नमस्कार हो ।

अरिहन्तों को नमस्कार

'णमो अरिहंताणं' इस पद में अरिहन्तों को नमस्कार किया गया है । अरि-शत्रु-शत्रुओं के नाश करने से अरिहन्त यह संज्ञा प्राप्त होती है । नरक, तिर्यंच, कुमानुष और प्रेत इन पर्यायों में निवास करने से होने वाले समस्त दुःखों की प्राप्ति का निमित्त कारण होने से मोह को अरि-शत्रु कहा गया है ।

मोहरूप अरि के नष्ट हो जाने पर जन्म, मरण की परम्परा रूप संसार के उत्पादन की शक्ति शेष कर्मों में नहीं रहने से उन कर्मों का सत्त्व, असत्त्व के समान हो जाता है तथा केवलज्ञानादि समस्त आत्मगुणों के आविर्भाव को रोकने में समर्थ कारण होने से भी मोह को प्रधान शत्रु कहा जाता है । अतः उसके नाश करने से अरिहन्त संज्ञा प्राप्त होती है ।

कर्म रूपी शत्रुओं के नाश करने से प्राप्त होने वाले अर्हन्त अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यरूप अनन्तचतुष्टय के प्राप्त होने पर इन्द्रादि के द्वारा निर्मित पूजा को प्राप्त होने वाले अर्हत् अथवा घातिया ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मों के नाश होने से अनन्तचतुष्टय विभूति जिनको प्राप्त हो गयी है, उन अर्हन्तों को नमस्कार किया गया है ।

जो ससार मे विरक्त होकर, घर छोडकर मुनि धर्म स्वीकार कर लेते हैं तथा अपनी आत्मा ~. स्वभाव साधनकर चार घातिया कर्मो के नाश द्वारा अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और नन्तवीर्य इस अनन्त चतुष्ट को प्राप्त कर लेते है, वे अरहन्त है। ये अरहन्त अपने दिव्य ज्ञान द्वारा संसार के समस्त पदार्थो की समस्त अवस्थाओ को प्रत्यक्ष रूप से जानते है, अपने दिव्य दर्शन द्वारा समस्त पदार्थो का सामान्य अवलोकन करते है। ये आकुलता रहित परम आनन्द का अनुभव करते हैं। क्षुधा, तृषा, भय, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, बुढापा, रोग, मरण, पसीना, खेद, अभिमान, रति, आश्चर्य, जन्म, नीद और शोक इन अठारह दोषो[1] से रहित होने के कारण परम शान्त होते हैं, अत वे देव कहलाते हैं।

अर्हन्तो के मूल दो भेद हैं—सामान्य अर्हन्त और तीर्थकर अर्हन्त। अतिशय और धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन तीर्थंकर अर्हन्त मे ही पाया जाता है। अन्य विशेषताएं दोनो की समान होती है। कोई भी आत्मा तपश्चरण द्वारा घातिया कर्मो को नष्ट करने पर अर्हन्त पदको प्राप्त कर सकती है।

सिद्धो को नमस्कार :

जिन्होने नाना भेदरूप आठ कर्मो का नाश कर दिया है, जो तीन लोक के मस्तक के शेखर स्वरूप है, दु:खो से रहित है, सुखरूपी सागर मे निमग्न है, निरंजन है, नित्य है, आठ गुणो से युक्त हैं, निर्दोष हैं, कृतकृत्य हैं। जिन्होने समस्त पर्यायो सहित सम्पूर्ण पदार्थो को जान लिया है, जो वज्रशिला निर्मित अभग्न प्रतिमा के समान अभेद्य आकार से युक्त है, जो पुरुषाकार होने पर भी गुणो मे पुरुष के समान नही हैं, क्योकि पुरुष सम्पूर्ण इन्द्रियो के विषयो को भिन्न-भिन्न देश मे भी जानता है, परन्तु जो प्रत्येक देश मे सब विषयो को जानते है, वे सिद्ध हैं। आत्मा का वास्तविक स्वरूप इस सिद्ध पर्याय मे ही प्रकट होता है, सिद्ध ही पूर्ण स्वतन्त्र और शुद्ध है। इस प्रकार पूर्ण शुद्ध कृतकृत्य, अचल, अनन्त सुख, ज्ञानमय और स्वतन्त्र सिद्ध आत्माओ को 'णमो सिद्धाणं' पद में नमस्कार किया गया है।

आचार्यो को नमस्कार :

आचार्य परमेष्ठी को नमस्कार है। जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पांच आचारो का स्वयं आचरण करते है और दूसरे साधुओ से आचरण कराते है, उन्हें आचार्य कहते हैं जो चौदह विद्या स्थानो मे पारगत हो, ग्यारह अग के धारी हो अथवा आचाराग मात्र के धारी हो अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमय मे पारंगत हो, मेरु के समान निश्चल हो, पृथ्वी के समान सहनशील हो, जिन्होने समुद्र के समान मल अर्थात् दोषो को बाहर फेंक दिया हो और जो सात प्रकार के भय से रहित हो, उन्हे आचार्य कहते हैं।

---

१. श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार घातिकर्मो के उदय से होने वाले अज्ञान, निद्रा, पाच अन्तराय, काम, क्रोध मोह आदि ११ दोष मिलकर १८ दोष बताये गये है। क्षुधा, तृषा, रोग, जरा आदि शारीरिक दोषो से आत्मज्ञान में कोई बाधा नही मानी जाती।

—सम्पादक

परमागम के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गयी है, जो निर्दोष रीति से छह आवश्यकों का पालन करते हैं, जो मेरु पर्वत के समान निष्कम्प हैं, शूरवीर हैं सिंह-समान निर्भीक हैं, श्रेष्ठ हैं, सौम्य मूर्ति हैं आकाश के समान निर्लेप हैं, एम आचार्य परमेष्ठी होते हैं वे दीक्षा और प्रायश्चित् देते हैं।

उपाध्यायों को नमस्कार

चौदह विद्यास्थान के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी को नमस्कार है। तत्कालीन परमागम के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय होते हैं। उन उपाध्याय परमेष्ठी के लिए नमस्कार है जिनके पास अनन्त मुनि गण अध्ययन करते हैं अथवा जिनके निकट द्वादशांग के सूत्र और अर्थों का मुनिगण अध्ययन करते हैं।

साधुओं को नमस्कार

मनुष्य लोक के समस्त साधुओं को नमस्कार है। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र के द्वारा मोक्षमार्ग की साधना करते हैं तथा सभी प्राणियों में समान बुद्धि रखते हैं वे स्थविरकल्पि और जिनकल्पि आदि भेदों से युक्त साधु हैं।

सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी या उन्मत्त बैल के समान भद्र प्रकृति मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, गोचरी वृत्ति करने वाले, पवन के समान निस्संग या सर्वत्र बिना रुकावट के विचरण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी या समस्त तत्त्वों के प्रकाशक, समुद्र के समान गम्भीर, सुमेरु के समान परीषह और उपसर्गों के आने पर अकम्प और अडोल रहने वाले, चन्द्रमा के समान शान्तिदायक, मणि के समान प्रभापुंज युक्त पृथ्वी के समान सभी प्रकार की बाधाओं को सहने वाले, सर्प के समान दूसरों के बनाये हुए अनियत आश्रय में रहने वाले, आकाश के समान निरालम्बी या निर्लेप एवं सदा मोक्ष का अन्वेषण करने वाले साधु परम परमेष्ठी होते हैं।

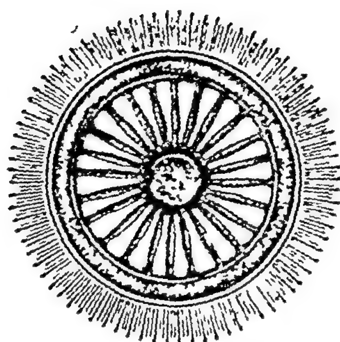
नमस्कार क्रम का औचित्य

सभी प्रकार के कर्म लेप से रहित सिद्ध परमेष्ठी के विद्यमान रहते हुए अघातिया कर्मों के लेप से युक्त अरिहन्तों को आदि में नमस्कार क्यों किया है? इस आशंका का उत्तर देते हुए वीरसेन स्वामी ने लिखा है कि यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सबसे अधिक गुणवाले सिद्धों के प्रति श्रद्धा जागृत करने के कारण अरिहन्त परमेष्ठी ही हैं—अरिहन्त परमेष्ठी के निमित्त—से ही अधिक गुण वाले सिद्धों के प्रति सबसे अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है अथवा यदि अरिहन्त परमेष्ठी न होते तो हम लोगों को आप्त आगम और पदार्थ का परिज्ञान नहीं हो सकता था। अतः अरिहन्त की कृपा से ही हम बोध की प्राप्ति हुई है, इसलिए उपकार की अपेक्षा से भी आदि में अरिहन्तों को नमस्कार करना उचित लगता है। जो सामान्यतः उपकारी होता है उसी का सबसे पहले स्मरण किया जाता है।

आचार्य से कम उपकारी उपाध्याय हैं। आचार्य सर्वसाधारण को प्रथम उपदेश से अर्थ ज्ञान में लगाते हैं। किन्तु उपाध्याय उन जिज्ञासुओं को अध्ययन कराते हैं, जिनके हृदय में आनन्दित्ता

है। उनका सम्बन्ध सर्व साधारण से नहीं, बल्कि सीमित अध्ययनार्थियों से है। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि आचार्य नेता है जो अगणित प्राणियों की सभा में अपना प्रभावक उपदेश कर उन्हे हितकी ओर ले जाता है और उपाध्याय वह प्रोफेसर है, जो एक सीमित कमरे मे बैठे हुए छात्रवृन्द को गम्भीर तत्त्व समझाता है। हैं दोनो ही उपकारी, पर उनके उपकार के परिमाण और गुणो मे अन्तर है। अतः आचार्य के अनन्तर उपाध्याय पद का पाठ भी उपकार गुण की न्यूनता के कारण ही रखा गया है।

अन्त मे मुनि पद या साधुपद का पाठ भी उपकार गुण की न्यूनता-के कारण ही रखा गया है। मुनि सर्वदा लोकोपकार से पृथक् रहकर आत्मसाधना मे रत रहते हैं। यद्यपि उनकी सौम्य मुद्रा तथा इनके अहिंसक आचरण का प्रभाव भी समाज पर अमिट पड़ता है। पर ये आचार्य या उपाध्याय के समान लोककल्याण मे संलग्न नही रहते हैं। अतः 'सव्व साहूण' पद का पाठ सबसे अन्त मे रखा गया है।



२ | णमोकार मन्त्र का वैशिष्ट्य

•

आचार्य रजनीश

नमस्कार मत्र का वैशिष्ट्य

अद्भुत है यह बात भी कि इस महामत्र ने किसी व्यक्ति का नाम नही लिया महावीर का नही, पार्श्वनाथ का नाम नही, किसी का नाम नही। जैन परम्परा का भी कोई नाम नही। यह नमस्कार बडा विराट है। सभवत विश्व के किसी धर्म ने ऐसा महामत्र, इतना सर्वांगीण, इतना स्वस्पर्शी महामत्र विकसित नही किया। व्यक्ति का जैसे खयाल भी नही है, केवल शक्ति का खयाल है। रूप पर ध्यान ही नही है, वह जो अरूप सत्ता है, उसी का ध्यान है।

अरिहत शत्रुरहित स्थिति

अरिहत शब्द निगेटिव है, नकारात्मक है। उसका अर्थ है—जिनके शत्रु समाप्त हो गये। यह पाजिटिव नही है, यह विधायक नही है। असल म इस जगत् म जो श्रेष्ठतम अवस्था है, उसको निषेध से ही प्रकट किया जा सकता है। 'नेति नेति' से उसका विधायक शब्द नही दिया जा सकता। उसका कारण है—सभी विधायक शब्दो मे सीमा आ जाती है निषेध म सीमा नही होती। अगर मैं कहता हूँ—ऐसा है, तो एक सीमा निर्मित होती है। अगर मैं कहता हू कि ऐसा नही है, तो कोई सीमा नही है। 'नहीं' की कोई सीमा नहीं, 'है' की तो सीमा है। 'है' तो बडा छोटा शब्द है। 'नहीं' बहुत विराट है। इसलिए परम शिखर पर रखा है अरिहत को। सिर्फ इतना ही कहा है कि जिनके सब शत्रु समाप्त हो गये, जिनके अन्तर्द्वन्द्व विलीन हो गये, नकारात्मक हो गये। जिनम लोभ नही, मोह नही, काम नही। क्या है यह नही कहा, क्या नही है जिनम वह कहा?

सिद्ध सम्पूर्ण उपलब्धि

इसलिए अरिहत बहुत वायवीय ऐब्स्ट्रैक्ट शब्द है और शायद पकड मे न आये। इसलिए ठीक दूसरे शब्द म पॉजिटिव का उपयोग किया है—'णमो सिद्धाणम्'। सिद्ध का अर्थ होता है—वे जिन्होने पा लिया। अरिहत का अर्थ होता है—वे, जिन्होने कुछ छोड दिया। सिद्ध बहुत पॉजिटिव शब्द है। सिद्धि, उपलब्धि, एचीवमेंट—जिन्होने पा लिया, उनको नम्बर दो पर रखा है। क्या? सिद्ध अरिहत से छोटा नही होता? सिद्ध वही पहुँचता है जहा अरिहत पहुँचता है। लेकिन भाषा

मे पॉजिटिव नम्बर दो पर रखा जायेगा। सिद्ध के सम्बन्ध मे सिर्फ इतनी ही सूचना है कि पहुच गये, र कुछ नही कहा है। कोई विशेषण नही जोडा। पर पहुंच गये कहने भर से हमारी समझ मे वह नही आयेगा। अरिहन्त भी हमे बहुत दूर लगता है। जो शून्य हो गये, निर्वाण को पा गये, मिट गये, नही रहे। सिद्ध भी बहुत दूर है। सिर्फ इतना ही कहा है कि जिन्होने पा लिया। लेकिन क्या ? और पा लिया तो हम कैसे जाने ?

इसलिए हमारी पकड मे सिद्ध भी न आ सकेगा और मत्र तो ऐसा चाहिए जो पहली सीढी से लेकर आखिरी शिखर तक जहाँ जो है, वही से पकड़ मे आ जाय। जो जहा खडा हो वही से यात्रा कर सके। इसलिए तीसरा सूत्र कहा है—आचार्यो को नमस्कार।

आचार्य : ज्ञान और आचरण की एकता :

आचार्य का अर्थ है—वह जिसने पाया भी और आचरण मे प्रकट भी किया। आचार्य का अर्थ है जिसका ज्ञान और आचरण एक है। ऐसा नही कि सिद्ध का आचरण ज्ञान से भिन्न होता है। लेकिन शून्य हो सकता है। ऐसा भी नही कि अरहन्त का आचरण भिन्न होता है। लेकिन हो सकता है कि वह हमारी पकड मे न आये। हमे फ्रेम चाहिए जिसमे पकड़ मे आ जाय। आचार्य से शायद निकटता मालूम पडेगी। ज्ञान और आचरण के अर्थो मे हम ज्ञान को भी न पहचान पायेंगे, आचरण को पहचान लेंगे। आचरण और ज्ञान जहा एक हो जाये, उसे हम आचार्य कहते हैं।

जो व्यक्ति आचार्य को नमस्कार कर रहा है, वह यह भाव कर रहा है कि मै नही जानता क्या है ज्ञान, क्या है आचरण ? लेकिन जिनका भी आचरण उनके ज्ञान से उपजता है और बहता है, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। अभी भी बात सूक्ष्म है इसलिए चौथे चरण मे उपाध्यायो को नमस्कार किया गया है।

उपाध्याय . ज्ञान और आचरण के साथ उपदेश भी :

उपाध्याय का अर्थ है—आचरण ही नही, उपदेश भी। उपाध्याय का अर्थ है—ज्ञान ही नही, आचरण ही नही, उपदेश भी। वे जो जानते हैं, जानकर वैसा जीते हैं और जैसा वे जीते हैं और जानते हैं वैसा बताते भी है। उपाध्याय का अर्थ है वह जो बताता भी है। क्योकि हम मौन से न समझ पाये तो। आचार्य मौन हो सकता है। वह मान सकता है कि आचरण काफी है और अगर तुम्हे आचरण दिखाई नही पड़ता, तो तुम जानो। उपाध्याय आप पर और भी दया करता है, वह बोलता भी है। वह आपको कह कर भी बताता है।

साधु : सरलता की प्रतिमूर्ति :

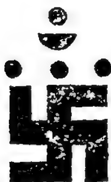
ये चार स्पष्ट रेखाएं है। लेकिन जानने वाले इन चार के बाहर भी छूट जायेंगे। क्योकि जानने वालो को केटेगरी से बाधा नही जा सकता। इसलिए पाचवे चरण मे एक सामान्य नमस्कार है। 'नमो लोए सव्व साहूणम्'। लोक मे जो भी साधु हैं उन सबको हमारा नमस्कार है। जो इन चार मे कही भी छूट गये हो उनके प्रति भी हमारा नमन है। पूज्य व्यक्तित्व को केटेगराइज नही किया जा सकता है, खाचो मे नही बांटा जा सकता। इसलिए जो शेष रह जायेगे उनको सिर्फ 'साधु' कहा है। वे जो सरल है। साधु का एक अर्थ और भी है। इतना सरल भी हो सकता है कोई कि आचरण को भी छिपाये। पर उसको भी हमारे नमस्कार पहुचने चाहिए।

नमस्कार मंत्र : रूपांतरण की प्रक्रिया

सवाल यह नहीं है कि हमारे नमस्कार से उनको कुछ फायदा होगा। सवाल यह है कि हमारा नमस्कार हमें रूपांतरित करता है। न अरिहंतों को कोई फायदा होगा, न सिद्धों को, न आचार्यों को, न उपाध्यायों को, न साधुओं को। पर आपको फायदा होगा। यह बहुत मजे की बात है कि हम सोचते हैं कि शायद इस नमस्कार में हम सिद्धों के लिए अथवा अरहंतों के लिए कुछ कर रहे हैं। तो इस भूल में न पड़ें। आप उनके लिए कुछ भी न कर सकेंगे। यह नमस्कार अरिहंतों के लिए नहीं है, अरिहंतों की तरफ है। यह आपके लिए है। इसके जो परिणाम हैं, वे आप पर होने वाले हैं जो फल हैं वे आप पर बरसेंगे। अगर कोई व्यक्ति इस भांति नमन से भरा हो, तो क्या आप सोचते हैं, उस व्यक्ति में अहंकार टिक सकेगा? असंभव है।

नमस्कार : नमन का सूत्र

नमोकार नमन का सूत्र है। यह पांच चरणों में है। समस्त जगत् में जिन्होंने भी कुछ पाया है, जिन्होंने भी कुछ जाना है, जिन्होंने भी कुछ जिया है, जो जीवन के अंतरतम गुह्य रहस्य से परिचित हुए हैं, जिन्होंने मृत्यु पर विजय पायी है, जिन्होंने शरीर के पार कुछ पहचाना है उन सबके प्रति नमस्कार। समय और क्षेत्र दोनों में लोक दो अर्थ रखता है। लोक का अर्थ विस्तार में जो है स्पेस है, आकाश में, जो आज हैं वे। लेकिन जो कल थे, वे भी और जो कल होंगे वे भी, लोक में सब लोक में सब्व- साहूणं, समस्त साधुओं को समय के अंतराल के पीछे जो कभी हुए होंगे भविष्य में जो होंगे, और आज जो हैं, वे समय या क्षेत्र में कहीं भी, जब भी कहीं कोई ज्ञानज्योति जगी हो, उस सबके लिए नमस्कार।



३ | आत्मा

डॉ० कमलचन्द सोगानी

आत्मा की स्वतन्त्रता :

जैन दर्शन के अनुसार जीव अथवा आत्मा स्वतन्त्र अस्तित्व वाला द्रव्य है। अपने अस्तित्व के लिये न तो यह किसी दूसरे द्रव्य पर आश्रित है और न इस पर आश्रित कोई और दूसरा द्रव्य है। सब द्रव्यो मे जीव ही सर्वश्रेष्ठ द्रव्य है, क्योकि केवल जीव को ही हित-अहित, हेय-उपादेय, सुख-दुःख आदि का ज्ञान होता है। अन्य द्रव्यो—पुद्गल,धर्म, अधर्म, आकाश और काल मे इस प्रकार के ज्ञान का सर्वथा अभाव होता है। द्रव्य की सामान्य परिभाषा के अनुसार आत्मा परिणामी नित्य है। द्रव्य एव गुण अपेक्षा से आत्मा नित्य है किन्तु पर्याय अपेक्षा से परिणामी। आत्मा के ज्ञानादि गुणो की अवस्थाये परिवर्तित होती रहती है तथा ससारी आत्मा विभिन्न जन्म ग्रहण करती है, इन अपेक्षाओ से आत्मा परिणामी है और आत्मा कभी भी इन परिवर्तनो मे नष्ट नहीं होती इस अपेक्षा से नित्य है। यहा यह कहा जा सकता है कि यह लक्षण ससारी आत्मा मे तो घटित हो जाता है, किन्तु मुक्त आत्मा मे नही। पर ऐसा कहना उचित नही है, क्योकि मुक्त आत्मा की नित्यता के विषय मे तो सदेह है ही नही और उसमे ज्ञानादि गुणो का स्वरूप परिणमन होता है इस अपेक्षा से वह परिणामी भी सिद्ध होती है अतः आत्मा द्रव्य गुण दृष्टि से नित्य और पर्याय दृष्टि से परिणामी स्वीकार की गई है।

आत्म स्वातन्त्र्य के प्रमाण :

अब यह विचार करना है कि आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए प्रमाण क्या है ? इसके लिये चार प्रमाण उपस्थित किये जा सकते है। प्रथम, अह प्रत्यय अर्थात् 'मै हू' का कोई न कोई आधार होना आवश्यक है, वह आधार आत्मा ही हो सकता है। यदि आत्मा नही है तो अह प्रत्यय कैसे हो सकता है ?[1] द्वितीय, सुख दुःखात्मक भावो की अनुभूति, स्मृति आदि ज्ञान आत्मा के अभाव मे सभव नही है[2] अतः आत्मा का अस्तित्व है। तृतीय, आत्मा के अस्तित्व मे संशय, आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करता है। यदि सशय ही नही तो 'मै हू या नही हूं' यह संशय कहा से उत्पन्न

१–विशेषावश्यक भाष्य, पृ० ४८३

२–कार्तिकेयानुप्रेक्षा, १८३, आचारांग ५–६०

होता है ?[1] चतुर्थ, यह बतलाया जा चुका है कि गुण गुणी के अभाव मे नही रह सकते । जैसे घट के रूपादि गुणो से घट का अस्तित्व सिद्ध होता है उसी प्रकार ज्ञानादि गुणो से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है ।[2]

आत्मा का स्वरूप

आत्मा के अस्तित्व के प्रमाणो के पश्चात् अब हम उसके स्वरूप का विचार करना है । यहा यह ध्यान देने योग्य बात है कि जैन दर्शन मे आत्मा एक नही, अनेक अर्थात् अनन्त मानी गई हैं । आत्मा का लक्षण चैतन्य है ।[3] इस विशेषता के कारण आत्मा का अन्य द्रव्यो से भेद होता है । यह चैतन्य ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक रूप मे प्रकट होता है । अत हम कह सकते हैं कि जहा चैतन्य है वहा ज्ञान है, भाव है और कर्तव्य है । जैसे उष्णता अग्नि का स्वभाव है, वैसे ही ज्ञान आत्मा का स्वभाव है । ज्ञान या चैतन्य आत्मा का आगन्तुक धर्म नही है, किन्तु स्वभाव धर्म है ।[4] आत्मा ज्ञाता होने के साथ-साथ कर्ता और भोक्ता भी है ।[5] आत्मा ससार अवस्था मे अपने शुभ अशुभ कर्मों का कर्ता है और उनके फलस्वरूप उत्पन्न सुख-दुख की भोक्ता भी है । मुक्त अवस्था मे आत्मा अनन्त ज्ञान की स्वामी होती है, शुभ-अशुभ से परे शुद्ध क्रियाओ की (राग द्वेष रहित क्रियाओ की) कर्ता होती है और अनन्त आनन्द की भोक्ता होती है ।

जैन दर्शन जीव को स्वदेह परिमाण स्वीकार करता है ।[6] जिस प्रकार दूध मे डाली हुई पद्मरागमणि (लाल मणि) उसे अपने रग से प्रकाशित कर देती है उसी प्रकार देह मे रहने वाला जीव भी अपनी देह मात्र को अपने रूप से प्रकाशित करता है, अर्थात वह स्वदेह मे ही व्याप्त होता है, देह के बाहर नही ।[7] जैन दार्शनिको का कथन है कि जिस वस्तु के गुण जहा विद्यमान होते हैं, वह वस्तु भी वही पर होती है । घडा वहीं है जहा घडे के गुण, रूपादि वर्तमान हैं । इसी प्रकार आत्मा का अस्तित्व भी वही मानना चाहिये जहा आत्मा के ज्ञानादि गुण विद्यमान हैं । अत हम कह सकते है कि आत्मा सर्वव्यापी नहीं है क्योकि उसके गुण सर्वत्र उपलब्ध नही होते । जिसके गुण सर्वत्र उपलब्ध नही होते वह सर्वव्यापी नही होता, जैसे घट । जो सर्वव्यापी होता है उसके गुण सर्वत्र उपलब्ध होते हैं, जैसे आकाश ।[8]

जैन दर्शन की मान्यता है कि ससारी आत्मा अनादिकाल से कर्मों से बद्ध है । इसी कारण प्रत्येक ससारी जीव जन्म मरण के चक्कर मे पडा रहता है । इतना होते हुए भी प्रत्येक ससारी आत्मा वस्तुत सिद्ध समान है ।[9] दोनो मे भेद केवल कर्मों के बन्धन का है । यदि कर्मों के बन्धन को हटा दिया जाय तो आत्मा का सिद्ध स्वरूप जो अनन्त ज्ञान, सुख और शक्ति रूप है प्रकट हो जाता है ।

जैन दर्शन के अनुसार जीव को प्रभु कहा गया है ।[10] इसका अभिप्राय यह है कि जीव स्वय ही अपने उत्थान या पतन का उत्तरदायी है । वही अपना शत्रु है और वही अपना मित्र है ।[11] बन्धन

१–विशेषावश्यक भाष्य पृ० ४८३ २–पचास्तिकाय, १३ ३–नियमसार, ३७
४–कार्तिकेयानुप्रेक्षा, १७८ ५–द्रव्य सग्रह, ८९ ६–द्रव्य सग्रह, ३
७–पचास्तिकाय सग्रह, ३३ ८–स्याद्वादमजरी, पृ० ६४ ९–नियमसार, ४८
१०–पचास्तिकाय, २७ ११–उत्तराध्ययन, २०–३७

और मुक्ति उसी के आश्रित है। अज्ञानी से ज्ञानी होने का और बद्ध से मुक्त होने का सामर्थ्य उसी मे है, वह सामर्थ्य कही बाहर से नही आता वह तो उसके प्रयास से ही प्रकट होता है।

सांसारिक जीव :

जैन दर्शन मे जीवो का वर्गीकरण दो दृष्टिकोण से किया गया है—(१) सासारिक और (२) आध्यात्मिक। सांसारिक दृष्टिकोण से जीवों का वर्गीकरण इन्द्रियो की अपेक्षा से किया गया है।[१] सबसे निम्न स्तर पर एक इन्द्रिय जीव है जिनके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। वनस्पति वर्ग एक इन्द्रिय जीवो का उदाहरण है। इनमे चेतना सबसे कम विकसित होती है। इनसे उच्च स्तर के जीवो मे दो से पांच इन्द्रियो तक के जीव है। सीपी, शख, विना पैरो के कीडे आदि के स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रिया होती है। जू, खटमल, चीटी, आदि के स्पर्शन रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रिया होती है। मच्छर, मक्खी, भवरा, आदि जीवो के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियां होती है। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जीवो के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पाच इन्द्रिया होती है।

जीव तीन प्रकार के : वहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा :

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जीव तीन प्रकार के है—वहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।[२] वहिरात्मा शरीर को ही आत्मा समझता है और शरीर के नष्ट होने पर अपने को नष्ट हुआ समझता है।[३] वह इन्द्रियो के विषयो मे आसक्त रहता है और इच्छित वस्तु के संयोग से प्रसन्न होता है और उसके वियोग से अप्रसन्न।[४] वह मृत्यु के भय मे आक्रान्त रहता है।[५] वह कार्माण शरीर रूपी कांचली से ढके हुए ज्ञान रूपी शरीर को नही जानता है, इसलिए बहुत काल तक ससार मे भ्रमण करता है।[६]

अन्तरात्मा अपने आत्मा को अपने शरीर से भिन्न समझता है।[७] वह निर्भय होता है अत: उसे लोक-भय, परलोक-भय, मरण-भय आदि भय नही होते। उसको कुल, जाति, रूप, ज्ञान, धन, वल, तप और प्रभुता का मद नहीं होता।[८] उसकी आत्म तत्व मे रुचि पैदा होने से उसकी सासारिक पदार्थो मे आसक्ति नही होती और वह शीघ्र ही जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है।[९]

परमात्मा वह है जिसने आत्मोत्थान मे पूर्णता प्राप्त कर ली है और काम, क्रोधादि दोषो को नष्ट कर दिया है।[१०] एवं अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अनन्त सुख प्राप्त कर लिया है तथा जो सदा के लिये जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो गया है।



१-पञ्चास्तिकाय ११३ से ११७ २-समाधिशतक ४ ३-मोक्षपाहुड ८, ज्ञानार्णव ३२-१८
४-समाधिशतक, ७-५५ परमात्मा प्रकाश, १-८४ ५-समाधिशतक ७६ ६-वही ६८
७-कार्तिकेयानुप्रेक्षा, १९३ ८-मोक्ष पाहुड, १४, ८७ ९-समाधिशतक, १३
१०-मोक्षपाहुड, ५, ६, नियमसार, ७ १० क-तत्वार्थ सूत्र ५-२३। १० ख-द्रव्य सग्रह, ५०
१० ग-नियमसार १७७

४ | कर्म

•

डॉ० मोहनलाल मेहता

कर्म सिद्धान्त

भारतीय दार्शनिक चिन्तन में कर्म सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुख, दुःख एवं अन्य प्रकार के सांसारिक वैचित्र्य के कारणों की खोज करते हुए भारतीय चिन्तकों ने इसका अन्वेषण किया। जो जैसा करता है वैसा भरता है। एक प्राणी दूसरे प्राणी के कर्मफल का अधिकारी नहीं होता। कर्मवाद किसी-न-किसी रूप में भारत की समस्त दार्शनिक एवं नैतिक विचारधाराओं में विद्यमान है तथापि इसका जो सुविकसित रूप जैन परम्परा में उपलब्ध होता है, वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। कर्मवाद जैन विचारधारा एवं आचार परम्परा का अविच्छेद्य अंग है।

कर्मवाद, नियतिवाद एवं इच्छा स्वातन्त्र्य

प्राणी अनादिकाल से कर्म परम्परा में पड़ा हुआ है। पुरातन कर्मों के योग एवं नवीन कर्मों के बन्धन की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है। जीव अपने कृत कर्मों को भोगता हुआ नवीन कर्मों का उपार्जन करता है। ऐसा होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि प्राणी एकान्त रूप से कर्मों के अधीन है अर्थात् वह कर्मों का बन्धन रोक ही नहीं सकता। यदि प्राणी का प्रत्येक कार्य कर्माधीन ही माना जाए तो वह अपनी आत्मशक्ति का स्वतन्त्रता पूर्वक उपयोग कैसे कर सकेगा? प्राणी को सर्वथा कर्माधीन मानने पर इच्छा स्वातन्त्र्य का कोई मूल्य नहीं रह जाता। परिणामतः कर्मवाद नियतिवाद के रूप में परिणत हो जायगा।

कर्मवाद को नियतिवाद अथवा अनिवार्यतावाद नहीं कह सकते। कर्मवाद यह नहीं मानता कि प्राणी जिस प्रकार कर्म का फल भोगने में परतन्त्र है उसी प्रकार कर्म का उपार्जन करने में भी परतन्त्र है। कर्मवाद यह मानता है कि प्राणी को स्वोपार्जित कर्म का फल किसी न किसी रूप में अवश्य भोगना पड़ता है किन्तु जहां तक नवीन कर्म के उपार्जन का प्रश्न है वह अमुक सीमा तक स्वतन्त्र होता है। यह सत्य है कि कृत कर्म का भोग किये बिना मुक्ति नहीं हो सकती किन्तु यह अनिवार्य नहीं कि अमुक समय में अमुक कर्म का उपार्जन हो ही। आन्तरिक शक्ति तथा बाह्य परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए प्राणी अमुक सीमा तक नये कर्मों का उपार्जन रोक सकता है।

यही नही, वह अमुक सीमा तक पूर्व कृत कर्मों को शीघ्र अथवा देर से भी भोग सकता है। इस कार कर्मवाद मे सीमित इच्छास्वातत्र्य स्वीकार किया गया है।

कर्म का अर्थ :

कर्म शब्द का अर्थ साधारणतया कार्य, प्रवृत्ति अथवा क्रिया किया जाता है। कर्मकाण्ड मे यज्ञ आदि क्रियाएँ,कर्म के रूप मे प्रचलित है। पौराणिक परम्परा मे व्रत, नियम आदि क्रियाएँ कर्म रूप मानी जाती है। जैन परम्परा मे कर्म दो प्रकार का माना गया है :—द्रव्य कर्म और भावकर्म। कार्मण जाति का पुद्गल अर्थात् जड तत्त्व विशेष जो कि आत्मा के साथ मिलकर कर्म के रूप मे परिणत होता है, द्रव्य कर्म कहलाता है। राग द्वेपात्मक परिणाम को भावकर्म कहते हैं।

आत्मा और कर्म का सम्बन्ध प्रवाहतः अनादि है। जीव पुराने कर्मों का विनाश करता हुआ नवीन कर्मो का उपार्जन करता रहता है। जब तक प्राणी के पूर्वोपार्जित समस्त कर्म नष्ट नहीं हो जाते एवं नवीन कर्मों का उपार्जन बन्द नही हो जाता तब तक उसकी भवबन्धन मे मुक्ति नही होती। एक बार समस्त कर्मो का विनाश हो जाने पर पुनः नवीन कर्मो का उपार्जन नही होना क्योंकि उस अवस्था मे कर्मोपार्जन का कारण विद्यमान नही रहता। आत्मा की इसी अवस्था को मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण अथवा सिद्धि कहते है।

कर्मबन्ध का कारण :

जैन परम्परा मे कर्मोपार्जन के दो कारण माने गये है—योग और कपाय। शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति को योग कहते है। क्रोधादि मानसिक आवेगो को कपाय कहते है। वैसे तो प्रत्येक प्रकार का योग अर्थात् क्रिया कर्मोपार्जन का कारण है किन्तु जो योग कपाय युक्त होता है। उससे होने वाला कर्मबन्ध विशेप बलवान होता है जब कि कपाय रहित क्रिया से होने वाला कर्मबन्ध अति निर्बल व अल्पायु होता है। दूसरे शब्दो मे कपाययुक्त अर्थात् राग-द्वेपजनित प्रवृत्ति ही कर्म-बन्ध का महत्त्वपूर्ण कारण है।

कर्मबन्ध की प्रक्रिया :

सम्पूर्ण लोक मे ऐसा कोई भी स्थान नही है जहां कर्मयोग्य परमाणु विद्यमान न हो। जब प्राणी अपने मन, वचन अथवा तन से किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति करता है तब उसके आस-पास चारो ओर से कर्मयोग्य परमाणुओ का आकर्षण होता है अर्थात् जितने क्षेत्र मे आत्मा विद्यमान होती है उतने ही क्षेत्र में विद्यमान परमाणु उसके द्वारा उस समय ग्रहण किये जाते है। प्रवृत्ति की तरतमता के अनुसार परमाणुओ की मात्रा मे भी तारतम्य होता है। गृहीत परमाणुओं के समूह का कर्मरूप से आत्मा के साथ बद्ध होना जैन कर्मवाद की परिभाषा मे प्रदेशबन्ध कहलाता है। इन्ही परमाणुओ की ज्ञानावरणादि रूप परिणति को प्रकृतिबन्ध कहते है। कर्मफल के काल को स्थिति बन्ध तथा कर्मफल की तीव्रता-मदता को अनुभाव बन्ध कहते हैं। कर्म बधते ही फल देना प्रारम्भ नही कर देते। कुछ समय तक वे वैसे ही पडे रहते हैं। कर्म के इस काल को अबाधाकाल कहते हैं। अबाधाकाल के व्यतीत होने पर ही बद्धकर्म फल देना प्रारम्भ करते हैं। कर्मफल का प्रारम्भ ही कर्म का उदय कहलाता है। कर्म अपने स्थिति बन्ध के अनुसार उदय मे आते रहते है एव फल प्रदान

करते हुए आत्मा से अलग होते रहते हैं। इसी को निर्जरा कहते हैं। जिस कर्म का जितना स्थिति बंध होता है वह उतनी ही अवधि तक उदय में आता रहता है। जब आत्मा से समस्त कर्म पृथक् हो जाते हैं तब जीव कर्म मुक्त हो जाता है। आत्मा की इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं।

कर्म प्रकृति

जैन कर्मशास्त्र में कर्म की आठ मूल प्रकृतियां मानी गई हैं। ये प्रकृतियाँ प्राणी को भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुकूल एवं प्रतिकूल फल प्रदान करती हैं। इन आठ प्रकृतियों के नाम ये हैं — (१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु (६) नाम, (७) गोत्र व (८) अन्तराय। इनमें से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय—ये चार घाती प्रकृतियां हैं क्योंकि इनसे आत्मा के चार मूल गुणों ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य का घात होता है। शेष चार प्रकृतियां अघाती हैं क्योंकि ये आत्मा के किसी गुण का घात नहीं करतीं। ज्ञानावरण कर्मप्रकृति आत्मा के ज्ञान गुण का घात करती है। दर्शनावरण कर्मप्रकृति आत्मा के दर्शन गुण का घात करती है। मोहनीय कर्मप्रकृति से आत्मसुख का घात होता है। अन्तराय कर्मप्रकृति के कारण वीर्य अर्थात् आत्म शक्ति का घात होता है। वेदनीय कर्मप्रकृति अनुकूल एवं प्रतिकूल संवेदन अर्थात् सुख दुःख के अनुभव का कारण है। आयु कर्मप्रकृति के कारण नरकादि विविध भवों की प्राप्ति होती है। नाम कर्मप्रकृति विविध शरीर आदि का कारण है। गोत्र कर्मप्रकृति प्राणियों के उच्चत्व एवं नीचत्व का कारण है।

कर्मफल की तीव्रता और मन्दता का आधार तन्निमित्तक कषायों की तीव्रता-मन्दता है। जो प्राणी जितना अधिक कषाय की तीव्रता से युक्त होगा, उसके अशुभ कर्म उतने ही प्रबल एवं शुभ कर्म उतने ही निर्बल होंगे। जो प्राणी जितना अधिक कषायमुक्त एवं विशुद्ध होगा, उसके शुभ कर्म उतने ही अधिक प्रबल एवं अशुभकर्म उतने ही अधिक दुर्बल होंगे।

कर्म और पुनर्जन्म

कर्म और पुनर्जन्म का अविच्छेद्य सम्बन्ध है। कर्म की सत्ता स्वीकार करने पर तद्फलरूप परलोक अथवा पुनर्जन्म की सत्ता भी स्वीकार करनी पड़ती है। जैन कर्म-साहित्य में समस्त संसारी जीवों का समावेश चार गतियों में किया गया है—मनुष्य, तिर्यंच, नारक और देव। मृत्यु के पश्चात् प्राणी अपने गति नाम कर्म के अनुसार इन चार गतियों में से किसी एक गति में उत्पन्न होता है। जब जीव शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करने वाला होता है तब आनुपूर्वी नाम कर्म उसे अपने उत्पत्ति स्थान पर पहुंचा देता है। गत्यन्तर के समय जीव के साथ केवल दो प्रकार के शरीर रहते हैं—तैजस और कार्मण। अन्य प्रकार के शरीर औदारिक अथवा वैक्रिय का निर्माण वहां पहुंचने के बाद प्रारम्भ होता है।

---

५ | अहिंसा

●

मुनि नथमल

अहिंसा-साधना :

भगवान् ऋषभदेव ने जो साधना अपनायी वह अहिंसा की साधना थी। उन्होंने सर्व प्राणातिपात का विरमण किया। यहीं से अहिंसा का स्रोत बहा, उपदेशलब्ध धर्म का प्रवर्तन हुआ। दूसरों का प्राण नाश करना मनुष्य के हित में नहीं है, इस भावना से प्राणातिपात विरति का सूत्रपात हुआ। उसका विकास होते-होते वह चतुर्रूप बन गई:—

१—२. पर प्राण-वध जैसे पाप है, वैसे स्व-प्राण वध भी पाप है।

३—४. पर के आत्मगुण का विनाश करना जैसे पाप है, वैसे अपने आत्म-गुण का विनाश करना भी पाप है।

प्राणातिपात विरमण के इस विस्तृत अर्थ को संक्षेप में रखने की आवश्यकता हुई तब अहिंसा शब्द प्रयोग में आया। इसका सम्बन्ध केवल प्राण-वध से न होकर असत्-प्रवृत्ति मात्र से होता है। कल्पना की दृष्टि से भी यह संगत लगता है। पहले-पहल जब दूसरों को न मारने की भावना उत्पन्न हुई, तब उसकी अभिव्यक्ति के लिए प्राणातिपात विरति शब्द ही पर्याप्त था। किन्तु अनुभव जैसे आगे बढा, प्राण-वध के बिना भी प्रवृत्तियों में दोष प्रतीत हुआ, तब एक ऐसे शब्द की आवश्यकता हुई, जो केवल प्राण-वध का अभिव्यंजक न होकर सदोष-प्रवृत्ति मात्र (आत्मा की विभाव परिणति मात्र) का व्यंजक हो। इसी खोज के फलस्वरूप अहिंसा शब्द प्रयोग में आया। इस कल्पना को साहित्य का आधार भी मिल जाता है—

१—'आचारांग' सूत्र में तीन महाव्रत—अहिंसा, सत्य और बहिद्धादान का उल्लेख मिलता है।[1]

२—'स्थानांग', 'उत्तराध्ययन' आदि में चार याम—अहिंसा, सत्य, अचौर्य और बहिद्धादान का उल्लेख मिलता है।[2] चातुर्याम का उल्लेख बौद्ध पिटकों में भी हुआ है।[3]

१—आचारांग ८।१५   २—(क) स्थानांग २६६, (ख) उत्तराध्ययन २३।२३   ३—दीर्घनिकाय

३—पाच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है।[1]

इस विविध परम्परा से फलित यह हुआ कि धर्म का मौलिक रूप अहिंसा है। सत्य आदि उसका विस्तार है, इसलिए आचार्यों ने लिखा है 'अवसेसा तस्स रक्खट्ठा' शेष व्रत अहिंसा की सुरक्षा के लिए है। काव्य की भाषा में अहिंसा धान है, सत्य आदि उसकी रक्षा करने वाले बाड़े हैं।[2] अहिंसा जल है और सत्य आदि उसकी रक्षा के लिए सेतु हैं।[3] सार यही है कि दूसरे सभी व्रत अहिंसा के ही पहलू हैं।

किसी भी प्राणी की हिंसा नही करनी चाहिए—यही ज्ञानियो के ज्ञान वचनों का सार है। अहिंसा, समता—सब जीवो के प्रति आत्मसात् भाव—इसे ही शाश्वत धर्म समझो।[4]

अहिंसा की परिभाषा

अहिंसा को भगवान् ने जीवो के लिए कल्याणकारी देखा है। सब जीवो के प्रति संयमपूर्ण जीवन व्यवहार ही अहिंसा है।[5]

मनसा, वाचा और कर्मणा जो स्वयं जीवो की हिंसा करता है, दूसरे से करवाता है, या जो जीव हिंसा का अनुमोदन करता है, वह (प्रति हिंसा को जगाता हुआ) वैर की वृद्धि करता है।[6]

सुख दुःख, प्रिय अप्रिय की वृत्ति प्राणी मात्र मे तुल्य होती है। अहिंसा की भावना को समझने और बलवान् बनाने के लिये यह आत्म तुला का सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी है। इसीलिए भगवान् महावीर ने बताया है—छह जीव—निकाय को अपनी आत्मा के समान समझो।[7] प्राणी मात्र को आत्म तुल्य समझो।

हे पुरुष जिसे तू मारने की इच्छा करता है विचार कर, वह तेरे जैसा ही सुख-दुःख का अनुभव करने वाला प्राणी है, जिस पर तू हुकूमत करने की इच्छा करता है, विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे तू दुःख देने का विचार करता है, विचार कर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे तू अपने वश मे करने की इच्छा करता है, विचार कर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, तू जिसके प्राण लेने की इच्छा करता है, विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है।

सत्पुरुष इसी तरह विवेक रखता हुआ जीवन बिताता है, न किसी को मारता है और न किसी का घात करता है।

जो हिंसा करता है, उसका फल पीछे भोगना पड़ता है, अतः किसी भी प्राणी की हिंसा करने की कामना न करें।

१—उत्तराध्ययन २१।२२ २—हारिभद्रीय अष्टक १६।५ ३—योगशास्त्र प्रकाश ४—वही, ११।४।१० ५—दशवैकालिक ६।८ ६—वही, ७—दशवैकालिक १०।५

जैसे मुझे कोई बेंत, हड्डी, कंकर आदि से मारे, पीटे, ताड़ित करे, तर्जन करे, दुःख दे, व्याकुल करे, भयभीत करे, प्राण-हरण करे तो मुझे दुःख होता है, जैसे मृत्यु से लेकर रोम उखाड़ने तक से मुझे दुःख होता है और भय होता है, वैसे ही सब प्राणी, भूत, जीव और सत्वों को होता है। यह सोच कर किसी भी प्राणी, भूत, जीव व सत्व को नही मारना चाहिये, उस पर हुकूमत नही करनी चाहिए, यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है।[1]

अहिंसा के दो रूप :

अहिंसा का शब्दानुसारी अर्थ है—हिंसा न करना। न+हिंसा—इन दो शब्दो से अहिंसा शब्द बना है। इसके पारिभाषिक अर्थ निषेधात्मक एवं विधेयात्मक—दोनो हैं। राग-द्वेषात्मक प्रवृत्ति न करना, प्राण वध न करना, या प्रवृत्ति मात्र का विरोध करना निषेधात्मक अहिंसा है। सत्प्रवृत्ति करना, स्वाध्याय, अध्यात्म-सेवा, उपदेश, ज्ञानचर्चा आदि आत्महितकारी क्रिया करना विधेयात्मक अहिंसा है। संयमी के द्वारा अशक्य कोटि का प्राणवध हो जाता है, वह भी निषेधात्मक अहिंसा है यानी हिंसा नही है। निषेधात्मक अहिंसा मे केवल हिंसा का वर्जन होता है, विधेयात्मक अहिंसा मे सत् क्रियात्मक सक्रियता होती है। यह स्थूल दृष्टि का निर्णय है। गहराई मे पहुंचने पर बात कुछ और है। निषेध मे प्रवृत्ति और प्रवृत्ति मे निषेध होता है। निषेधात्मक अहिंसा मे सत् प्रवृत्ति और सत्प्रवृत्यात्मक अहिंसा मे हिंसा का निषेध होता है। हिंसा न करने वाला यदि आन्तरिक प्रवृत्तियो को शुद्ध न करे तो वह अहिंसा नही होगी। इसलिए निषेधात्मक अहिंसा मे सत्प्रवृत्यात्मक अहिंसा मे हिंसा का निषेध होना आवश्यक है, इसके बिना कोई प्रवृत्ति सत् या अहिंसा नही हो सकती, यह निश्चय दृष्टि की बात है। व्यवहार मे निषेधात्मक अहिंसा को निष्क्रिय अहिंसा और विधेयात्मक अहिंसा को सक्रिय अहिंसा कहा जाता है।

आत्म-तुला के मर्म को समझे बिना हिंसा-वृत्ति नही छूटती। इसीलिए अहिंसा मे मैत्री-रूप विधि और अमैत्री त्याग रूप निषेध दोनो समाए हुए है।

सब जीवो को अपने समान समझो और किसी को हानि मत पहुचाओ, इन शब्दो मे अहिंसा का द्वयर्थी सिद्धान्त—विधेयात्मक और निषेधात्मक सन्निहित है। विधेयात्मक मे एकता का सदेश है, सबमे अपने आपको देखो। निषेधात्मक उससे उत्पन्न होता है—किसी को भी हानि मत पहुँचाओ। सब मे अपने आपको देखने का अर्थ है—सबको हानि पहुचाने से बचना। यह हानि रहितता सबमें एक की कल्पना से विकसित होती है।[2]

नकारात्मक अहिंसा :

'स्थानांग' सूत्र मे संयम की परिभाषा बताते हुए लिखा है—सुख का व्यपरोपण या वियोग न करना और दुःख का सयोग करना—संयम है।[3] यह निवृत्ति रूप अहिंसा है।

१—आचारांग १।५।१०१-१०३ २—हिन्दुस्तान, दिनांक २८ मार्च, १९५३ : भगवान् महावीर : उनका जीवन और सदेश। ३—स्थानांग ४।४

'आचारांग' सूत्र मे धर्म की परिभाषा बताते हुए लिखा है—किसी प्राणी को मत मारो, उस पर अनुशासन मत करो, उसको अधीन मत करो, दास-दासी की तरह पराधीन बना कर मत रखो, परिताप मत दो, प्राण वियोग मत करो। यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है। सर्वज्ञ तीर्थंकरो ने इसका उपदेश किया है। यह भी निवृत्ति रूप अहिंसा है।

भगवान महावीर ने प्रवृत्ति रूप अहिंसा का भी विधान किया है, किन्तु सब प्रवृत्ति अहिंसा नही होती। चारित्र मे जो प्रवृत्ति है, वही अहिंसा है। अहिंसा के क्षेत्र मे आत्मलक्षी प्रवृत्ति का विधान है और ससारलक्षी या पर पदार्थलक्षी प्रवृत्ति का निषेध। ये दोनो क्रमश विधि रूप अहिंसा और निषेध रूप अहिंसा बनते हैं। 'उत्तराध्ययन सूत्र' मे कहा है—समिति अर्थात् सत् व्यापार, यह प्रवृत्ति धर्म है और गुप्ति अर्थात् असत् व्यापार का नियन्त्रण, यह निवृत्ति धर्म है।[1]

सब प्राणियो के साथ मैत्री रखो[2]—यह कथन भी प्रवृत्ति रूप अहिंसा का विधान करता है।

वस्तु-तत्त्व को जानने वाले व्यक्ति, प्राणी मात्र को आत्म तुल्य समझ कर पीडित नहीं करते। वे समझते हैं जैसे कोई दुष्ट पुरुष मुझे मारता है, गाली देता है, बलात्कार करता है, दास-दासी बना अपनी आज्ञा का पालन कराता है, तब मैं जैसा दुःख अनुभव करता हू वैसे ही दूसरे प्राणी भी मारने, पीटने, गाली देने, बलात्कार से दास दासी बना आज्ञा-पालन कराने से दुःख अनुभव करते होंगे। इसलिए किसी भी प्राणी को मारना, कष्ट देना, बलात् आज्ञा मनवाना उचित नही।[3]

हिंसा की परिभाषा

प्रमाद और काम भोगो मे जो आसक्ति होती है, वही हिंसा है।[4] आत्मा की अशुद्ध परिणति मात्र हिंसा है। इसका समर्थन करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र ने लिखा है—असत्य आदि सभी विकार आत्म परिणति को बिगाडने वाले हैं। इसलिए वे सभी हिंसा हैं। असत्य आदि जो दोष बतलाए हैं, वे केवल शिष्यबोधाय हैं। सक्षेप मे राग द्वेष का अप्रादुर्भाव अहिंसा और उनका प्रादुर्भाव हिंसा है। राग-द्वेष रहित प्रवृत्ति मे अशक्य कोटि का प्राण-वध हो जाये तो भी नैश्चयिक हिंसा नहीं होती, राग-द्वेष सहित प्रवृत्ति से प्राण वध न होने पर भी, हिंसा होती है। जो राग-द्वेष की प्रवृत्ति करता है, वह अपनी आत्मा की घात कर ही लेता है, फिर चाहे दूसरे जीवो की घात करे या न करे। हिंसा से विरत न होना भी हिंसा है और हिंसा मे परिणति होना भी हिंसा है। इसलिए जहा राग द्वेष की प्रवृत्ति है वहा निरन्तर प्राणवध होता है।[5]

निश्चय दृष्टि से आत्मा ही अहिंसा है और वही हिंसा। अप्रमत्त आत्मा अहिंसक है और जो प्रमत्त है, वह हिंसक है।[6]

१—उत्तराध्ययन २४।२६ २—उत्तराध्ययन ६।२ ३—सूत्रकृतांग ४—सूत्रकृतांग–१।१।८६
५—पुरुषार्थ सिद्धयुपाय ४२–४८ ६—हरिभद्र कृत अष्टक ७ श्लोक ६ की वृत्ति

इन तथ्यों से साफ हो जाता है कि प्राण-वध और हिंसा सर्वथा एक नही है। इसी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के लिए अहिंसा शब्द व्यवहार मे आया, ऐसा प्रतीत होता है।

अहिंसा शब्द हिंसा का निषेध है। हिंसा सदेह में होती है और अहिंसा भी उसी मे है। विदेह मे हिंसा और अहिंसा की कोई कल्पना ही नही होती। हिंसा बन्धन या सदेह दशा का हेतु है और अहिंसा मुक्ति या विदेह दशा का। मुक्ति होने के बाद अहिंसा आत्मा की शुद्धि रूप रह जाती है, साधना रूप नही। फिर उसका कोई कार्य नही रहता। इसलिए उसकी कोई कल्पना भी नही होती। मुक्ति धर्म है—हिंसा का निषेध।

सदेह जीवन तीन प्रकार का होता है—हिंसा का, हिंसा के अल्पीकरण का और अहिंसा का। हिंसा के जीवन में हिंसा-अहिंसा का विवेक ही नही होता। हिंसा के अल्पीकरण के जीवन मे हिंसा को कम से कम करने का प्रयत्न किया जाता है। अहिंसा के जीवन मे हिंसा का पूरा त्याग किया जाता है।

हिंसा : जीवन की परवशता :

अहिंसा मे मैत्री है, सौहार्द है, एकता है, सुख और शान्ति है। अहिंसा का स्वरूप है उपशम, मृदुता, सरलता, सन्तोष, अनासक्ति और अद्वेष। अहिंसा हमारे मन मे है, वाणी मे है और कार्यो मे है। इनके द्वारा हम न किन्ही दूसरो को सताते है और न अपने आपको। अहिंसा हमारी स्वाभाविक क्रिया है। हिंसा हमारे स्वभाव के प्रतिकूल है। हिंसा में मनुष्य को परवशता का भान होता है। बिना खाये, बिना पिये, बिना कुछ किये शरीर चल नही सकता। शरीर के सामर्थ्य के बिना खाने-पीने का साधन नही जुटाया जा सकता। इस प्रकार की क्रमबद्ध शृंखलाओं की अनिवार्य प्रेरणाओ से मनुष्य व्यापार करता है, धन का अर्जन करता है, उसकी रक्षा करता है, उपभोग करता है, चोर लुटेरो से अपने स्वत्व को बचाता है, दण्ड प्रहार करता है, शासन-व्यवस्था करता है और अपने विरोधियो से लोहा लेता है। यह सब हिंसा है। पूर्ण आत्म-संयम के बिना सब प्रकार की हिंसाओं को नही त्यागा जा सकता और सब प्रकार की हिंसाओ को त्यागने के पश्चात् ये सब काम नही किये जा सकते। कितनी जटिल समस्या है अहिंसा और हिंसा के बीच। हिंसा के बिना गृहस्थ जी नही सकता और अहिंसा के बिना वह मानवीय गुणो को नही पा सकता। ऐसी स्थिति में बहुधा विचार शक्तियां उलझ जाती हैं और अहिंसा का मार्ग कठोर प्रतीत होने लग जाता है। जैन आचार्यो ने मनोवैज्ञानिक तरीको से मानसिक विचारो का अध्ययन किया, उनकी गहरी छानबीन की और तत्पश्चात् एक तीसरे हिंसा और अहिंसा के बीच के मार्ग (मध्यम मार्ग) का निरूपण किया। यह मार्ग यथाशक्य अहिंसा के स्वीकार का है। जैन दर्शन के अनुसार उसका नाम अहिंसा-अणुव्रत है।

हिंसा : चार प्रकार की :

गृहस्थ खाने के लिए भोजन पकाते हैं, पानी पीते है, रहने के लिए मकान बनवाते हैं, पहनने-ओढ़ने के लिए कपड़े बनवाते है—यह आरम्भी हिंसा है। खेती करते है, कल-कारखाने चलाते

हैं, व्यापार करते हैं—यह उद्योगी हिंसा है। राष्ट्र जनता एवं कुटुम्ब की रक्षा करते हैं, आततायियों से लड़ते हैं, अपने आश्रितों को आपत्तियों से बचाते हैं, दल बल आदि सम्भव उपायों का प्रयोग करते हैं—यह विरोधी हिंसा है। द्वेषवश या लोभवश दूसरों पर आक्रमण करते हैं, बिना प्रयोजन किसी को सताते हैं, दूसरों का स्वत्व छीनते हैं, अपने तुच्छ स्वार्थों के लिए मनमाना प्राणवध करते हैं, वृत्तियों को उच्छृंखल करते हैं—यह संकल्पी हिंसा है। इस प्रकार हिंसा के चार प्रमुख वर्ग किये गये हैं। गृह-त्यागी मुनि इन चारों प्रकार की हिंसाओं को त्यागते हैं, अन्यथा वे मुनि नहीं हो सकते। गृहस्थ पहली तीन प्रकार की हिंसाओं को पूर्ण रूप से नहीं त्याग सकते, तथापि यथासम्भव इनको त्यागना चाहिये। व्यापारादि करने में मनुष्य का सीधा उद्देश्य हिंसा करने का नहीं, कार्य करने का होता है। हिंसा हो जाती है। संकल्पी हिंसा का सीधा उद्देश्य हिंसा का होता है, कार्य करने का नहीं। दूसरों के सुख, शान्ति, हित और अधिकारों को कुचलने वाले कार्य भी बहुधा संकल्पी हिंसा जैसे बन जाते हैं। अतः सामूहिक न्यायनीति की व्यवस्था का उल्लंघन करना भी सबल हिंसा का साधन है। संकल्पी हिंसा तो गृहस्थ के लिये भी सर्वथा वर्जनीय है। जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होने वाली हिंसा का असर व्यक्तिनिष्ठ है, समष्टिगत नहीं। किन्तु संकल्पी हिंसा का अभिशाप समूचे राष्ट्र और समाज को भोगना पड़ता है।

हिंसा-अहिंसा का चतुर्भंग

वस्तुओं का स्वरूप देखने के लिए जैन आचार्यों ने निश्चय और व्यवहार इन दो दृष्टियों का उपयोग किया है। व्यवहार दृष्टि वस्तु का बाहरी स्वरूप देखती है और निश्चय दृष्टि उसका आन्तरिक स्वरूप। व्यवहार दृष्टि में लौकिक व्यवहार की प्रमुखता होती है और निश्चय दृष्टि में वस्तु स्थिति की। व्यवहार दृष्टि के अनुसार प्राणवध हिंसा है और प्राण-वध नहीं होता है, वह अहिंसा है। निश्चय दृष्टि के अनुसार असत् प्रवृत्ति यानी राग, द्वेष, प्रमादात्मक प्रवृत्ति हिंसा है और सत् प्रवृत्ति अहिंसा है। इन दृष्टियों के आधार पर हिंसा अहिंसा की चतुर्भंगी बनती है जैसे —

१—द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा

२—द्रव्य हिंसा और भाव अहिंसा

३—द्रव्य अहिंसा और भाव हिंसा

४—द्रव्य अहिंसा और भाव अहिंसा।

राग-द्वेष वश होने वाला प्राणवध द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा है। जैसे एक शिकारी हिरण को मारता है, वह द्रव्य यानी व्यवहार में भी हिंसा है क्योंकि वह हिरण के प्राण लूटता है और भाव यानी वास्तव में भी हिंसा है, क्योंकि शिकार करने में उसकी प्रवृत्ति असत् होती है। राग-द्वेष के बिना होने वाला प्राणवध द्रव्य हिंसा और भाव अहिंसा है। जैसे एक संयमी सावधानीपूर्वक चलता फिरता है तथा आवश्यक दैहिक क्रियाएँ करता है, उसके द्वारा अनचाहे परिहार्य कीट का प्राणवध हो जाता है। यह व्यवहार में हिंसा है क्योंकि वह प्राणी की मृत्यु का निमित्त बनता है पर वास्तव में अहिंसा है, हिंसा नहीं है क्योंकि वहाँ उसकी प्रवृत्ति राग द्वेषात्मक नहीं होती। राग द्वेष युक्त विचार

से अप्राणी पर घात या प्रहार किया जाता है, वह द्रव्य अहिंसा और भाव हिंसा है। जैसे कोई व्यक्ति धुंधले प्रकाश मे रस्सी को सांप समझ कर उस पर प्रहार करता है तो वह व्यवहार में अहिंसा है, क्योकि उस क्रिया मे प्राणवध नही होता पर निश्चय मे हिंसा है, कारण कि वहा मारने की प्रवृत्ति द्वेषात्मक है। जहां न राग द्वेषात्मक प्रवृत्ति होती है और न प्राणवध होता है, वह सर्व सवर रूप अवस्था द्रव्य अहिंसा और भाव अहिसा है। यह अवस्था दैहिक और मानस क्रिया से निवृत्त तथा समाधि प्राप्त योगियो की होती है। भाव अहिंसा की पूर्णता संयम जीवन मे प्राप्त होती है किन्तु द्रव्य अहिंसा की पूर्ण अवस्था दैहिक चंचलता छूटे विना, दूसरे शब्दो मे समाधि—अवस्था पाये विना, नही आती।

एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचण —सूत्रकृतांग १।११।१०

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही ज्ञानी होने का सार है।

आय तुले पयासु —सूत्रकृताग १।११।३

सभी प्राणियों के प्रति आत्मतुल्य भाव रखो।

आरंभजं दुक्खमिणं —आचारांग १।३।१

संसार में जितने भी दुःख है, वे सव आरंभज-हिंसा से उत्पन्न होते है।

तुमंसि नाम स चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि —आचारांग १।५।५

जिसे तू मारना चाहता है। जिसको कष्ट व पीड़ा पहुँचाना चाहता है। वह अन्य कोई तेरे समान ही चेतनावाला प्राणी है, ऐसा समझ। वास्तव में वह तू ही है।

---

६ | समता

आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

विज्ञान का विकास और विषमता

यह कहना सर्वथा उचित ही होगा कि अनियंत्रित विज्ञान के विकास ने मानव जीवन को असन्तुलित बना दिया है और यह असन्तुलन नितप्रति विषमता को बढ़ाता जा रहा है। विज्ञान जहाँ वास्तव में निर्माण का साधन बनना चाहिये, वहाँ वह उसके दुरुपयोग से विनाश और महाविनाश का साधन बनता जा रहा है।

विज्ञान तो विशेष ज्ञान का नाम है और भला स्वयं ज्ञान और विज्ञान विनाशकारी कैसे बन सकता है ? उसे विनाशकारी बनाने वाला है उसका अनियंत्रण अथवा उसका दुष्प्रवृत्तियों के बीच संरक्षण। उस्तरे से हजामत बनाई जाती है, मगर वही अगर बन्दर के हाथ में पड़ जाय तो वह उससे किसी का गला भी काट सकता है, बल्कि वह तो गला काट ही देता है।

विषमताजन्य समाज में विज्ञान का जितना विकास हुआ है वह बराबर बन्दरस्वभावी लोगों के हाथ में पड़ता रहा है। आखिर विज्ञान एक शक्ति है इसके नये-नये अन्वेषण और अनुसंधान शक्ति के नये नये स्रोतों को प्रकट करते हैं। ये ही स्रोत अगर सदाशयी और त्यागी लोगों के नियंत्रण में आ जाते हैं तो उनसे समता की ओर गति की जाकर सामूहिक कल्याण की साधना की जा सकती है। परन्तु आज तो यह शक्ति स्वार्थ और भोग के पंजों के हाथों में है, जिसका परिणाम है कि ये तत्त्व अधिक से अधिक शक्तिशाली होकर इस शक्ति का अपनी सत्ता और अपना वर्चस्व बढ़ाने में प्रयोग कर रहे हैं।

शक्ति स्रोतों का असन्तुलन

वैज्ञानिक शक्तियों का यह दुरुपयोग, सभी क्षेत्रों में निरन्तर विषमता में वृद्धि करता जा रहा है। हमारी संस्कृति का जो मूलाधार गुण और कर्म पर टिकाया गया था, वह इस असन्तुलित वातावरण के बीच उखड़ता जा रहा है। शक्ति स्रोतों के इस असन्तुलन का सीधा प्रभाव यह दिखाई दे रहा है कि योग्य को योग्य नहीं मिलता और अयोग्य सारा योग्य हड़प जाता है। योग्य इन्सान

ोकर निष्क्रिय होता जा रहा है और अयोग्य अपनी अयोग्यता का ताडव नृत्य कर रहा है। जब ,पलब्धियो का विभाजन लूट के आधार पर होने लगे तो लुटेरा ही लूट सकेगा, साहूकार को तो मुँह की खानी ही पड़ेगी। लुटेरा बेझिझक होकर लूटता रहेगा तो निश्चित रूप से शक्तियाँ अधिक से अधिक असन्तुलित होती जायेंगी, अधिक से अधिक शक्ति कम से कम हाथो मे इकट्ठी होती जायगी और वे कम से कम हाथ भी खून और कत्ल करने वाले हाथ होगे। दूसरी ओर बड़ी मे बड़ी सख्या मे लोग शक्तिहीन होकर नैतिकता के अपने साधारण धरातल से भी गिरने लगते हैं। आज भौतिकता की ऐसी ही दुर्दशाग्रस्त विषम स्थिति मे समाज जकडा हुआ है।

विषमता का मूल : परिग्रह :

सारभूत एक वाक्य मे कहा जाय तो इस सर्वव्यापिनी पिशाचिनी विषमता का मूल मनुष्य की मनोवृत्ति मे है। जैसे हजारो गज भूमि पर फैले एक वट वृक्ष का बीज राई जितना ही होता है, उसी प्रकार इस विषमता का बीज भी छोटा ही है, किन्तु है कठिन अवश्य। मनुष्य की मनोवृत्ति मे जन्मा और पनपा यह बीज बाह्य और आन्तरिक जगत् मे वट वृक्ष की तरह प्रस्फुटित होकर फैलता है और हर क्षेत्र में अपनी विषमता की शाखाएँ एवं उपशाखाएँ विस्तारित करता है।

इसके मूल के क्षेत्र को और भी छोटा किया जा सकता है। अधिक सूक्ष्मता से मनोवृत्तियो का अध्ययन किया जायगा तो स्पष्ट होगा कि इस भयाविनी विषमता का बीज केवल मनुष्य की भोग मनोवृत्ति मे रहा हुआ है। भोग स्वयं के लिये ही होता है इसलिये भोग-वृत्ति स्वार्थ को जन्म देती है। स्वार्थ का स्वभाव संकुचित होता है—वह सदा छोटा से छोटा होता जाता है, उसका दायरा बराबर घटता ही जाता है। जितना यह दायरा घटता है, उतनी ही मनुष्यता बौनी होती है—पशुता बडी बनती जाती है।

भोगवृत्ति की तुष्टि का प्रधान आधार है परिग्रह—अपने द्रव्य अर्थ मे भी और अपने भाव अर्थ मे भी।

परिग्रह का जीवन पर प्रभाव :

अपने द्रव्य अर्थ मे परिग्रह का अर्थ है धन-सम्पदा। निश्चय ही सांसारिक जीवन धनाभाव मे नही चल सकता है। जीवन-निर्वाह की मूल आवश्यकताएँ है—भोजन, वस्त्र एव निवास, जिनका सचालन धन पर ही आधारित है। इसलिये इस तथ्य को स्वीकारना पड़ेगा कि धन का संसारी जीवन पर अमित प्रभाव ही नही है, बल्कि वह उसके लिये अनिवार्य है।

अनिवार्य का अर्थ है–धन के बिना इस सशरीरी जीवन को चलाना सभव नही; तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसे अनिवार्य पदार्थ की साधारण रूप से उपेक्षा नही की जा सकती है। किसी भी दर्शन ने इसकी उपेक्षा की भी नही है। जो ज्ञान का प्रकाश फैलाया गया है, वह इस दिशा मे कि धन को आवश्यक बुराई मानकर चला जाय। सन्तोष, सहकार, सहयोग आदि सद्गुणो का विकास इसी आधार पर किया गया कि धन का उपयोग करने दे मर्यादाओ के भीतर और उसके दुरुपयोग को न पनपने दे।

दार्शनिकों ने धन लिप्सा के भयावह परिणामों को जाना था। इसीलिये उन्होंने इस पर अधिक से अधिक कड़े अंकुश लगाने का विधान भी किया। धन का बाहुल्य नैतिक अर्जन से सम्भव नहीं बनता। अधिक धन का अर्थ अधिक अन्याय और उसका अर्थ है अधिक कष्ट—इस कारण एक के लिये अधिक धन का साफ अर्थ हुआ बहुतों के लिये अधिक कष्ट। अतः बहुलतया अधिक धन अधिक अनीति से ही अर्जित हो सकता है—यह पहली बात है।

दूसरे, अधिक धन की उपलब्धि का सीधा प्रभाव मनुष्य की भोगवृत्ति के उत्तेजित बनने पर पड़ता है। भोग अधिक—स्वार्थ अधिक और जितना स्वार्थ अधिक तो उतनी ही विषमता अधिक जटिल बनती जायगी—यह स्वाभाविक प्रक्रिया होती है।

होना यह चाहिये कि जो अधिक सद्गुणी हो वह समाज में अधिक शक्तिशाली हो किन्तु जहाँ धन लिप्सा अनियन्त्रित छोड़ दी जाती है, वहाँ अधिक धनी, अधिक शक्तिशाली और अधिक धनी, अधिक सम्माननीय, यह मापदंड बन जाता है। इसी मानदंड से विषमता का विषवृक्ष फूटता है।

शक्ति और सम्मान का स्रोत जब गुण न रह कर धन बन जाता है तो सांसारिक जीवन में सभी धन के पीछे दौड़ना शुरू करते हैं—एक गहरा ममत्व लेकर। समाज का ऐसा मूल्य निर्धारण मनुष्य को विदिशा में मोड़ देता है। तब भोग उसका भगवान् बन जाता है और स्वार्थ उसका परम आराध्य देव—फिर भला उसका विवेक इन घेरों से बाहर कैसे निकले और कैसे समता के स्वस्थ मूल्यों को ग्रहण करे? जब विवेक सो जाता है तो निर्णय शक्ति उभरती नहीं। निर्णय नहीं तो जीवन की दिशा नहीं—भावना का जगत् तब शून्य होने लगता है। दिशा निर्णय एवं स्वस्थ भावना के अभाव में विषमता ही तो सब ठौर फलने लगेगी।

परिग्रह का गूढ़ार्थ : मूर्छा

'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो—' यह जैन-सूत्रों का परिग्रह की गूढ़ व्याख्या है। मूर्छा को परिग्रह कहा गया है। द्रव्य परिग्रह की ओर तब कदम बढ़ते हैं जब पहले भाव परिग्रह जन्म लेता है और यह भाव परिग्रह है—ममत्व और मूर्छा। जब मनुष्य की भावनात्मक जागृति क्षीण बनती है उस अवस्था को ही मूर्छा कहते हैं। ममत्व मूर्छा को बढ़ाता है।

यह मेरा है—ऐसा अनुभाव कभी अन्तर जगत् में लिये स्फूर्तिकारक नहीं माना जाता है क्योंकि इसी अनुभाव से स्वार्थ पैदा होता है जिसकी परिणति व्यापक विषमता में होती है। यह मेरा है इसे ही ममत्व कहा गया है। मेरे-तेरे की भावना से ऊपर उठने में ही जागृति का मूल मंत्र समाया हुआ है और इसी भावना की नींव पर त्याग का प्रासाद खड़ा किया जा सकता है।

इस मूर्छा को मन में न जन्मने दो न जमने दो—फिर जिस जीवन मूल्यों का निर्माण होगा, वह त्याग पर आधारित होगा। त्याग का अर्थ है जो अपने पास परिग्रह है उसे भी परोपकार के निमित्त छोड़ देना बल्कि यों कहें कि अपनी ही आत्मा के उपकार के निमित्त छोड़ देना। जो छोड़ना सीख लेता है तो उसकी तृष्णा कट जाती है और इस तृष्णा के कटने पर विषमता के मूल पर आघात होता है।

नियम और संयम की धारा :

परिग्रह और परिग्रहजन्य मनोवृत्तियों मे भटकना या परिग्रह और उसकी मूर्छा तक मे निरपेक्ष बन जाना—वास्तव मे यही जीवन का दोराहा है। एक राह प्रवृत्ति की है, दूसरी राह निवृत्ति की। निवृत्ति और समूची निवृत्ति को सभी नहीं अपना सकते हैं। समूची निवृत्ति साधु जीवन का अंग होती है और अन्तिम रूप से वही ग्राह्य मानी गई है, किन्तु सांसारिक जीवन में न्यूनाधिक प्रवृत्ति के बिना काम नहीं चल सकता है। इसलिये बताया गया है कि द्रव्य परिग्रह के अर्जन की पद्धति को आत्म-नियंत्रित बनाओ।

यह पद्धति जितनी विषमता से दूर हटेगी—जितनी समता के समीप जायगी, उतनी ही सार्वजनिक कल्याण का कारण भी बन सकेगी। इस पद्धति को नियम और संयम के आधार पर ही नियन्त्रित बनाया जा सकता है। यह नियम और संयम जितना व्यक्ति स्वेच्छा से ग्रहण करे, उतना ही अच्छा है। हां, व्यक्ति की अज्ञान अवस्था मे ऐसे नियम और संयम को सामूहिक शक्ति से भी शुरू करके व्यक्ति जीवन को प्रभावित बनाया जा सकता है।

नियम और संयम की धारा तब ही बहती रह सकेगी जब परिग्रह की मूर्छा समाप्त की जाय। जीवन-निर्वाह के लिये धन चाहिये, वह निरपेक्ष भाव से अर्जित किया जाय और चारो ओर समता के वातावरण की सृष्टि की जाय—तब धन जीवन मे प्राथमिक न रहकर गौण हो जायगा। इसके गौण होते ही गुण ऊपर चढ़ेगा—विषमता कटेगी और समता प्रसारित होगी। नियन्त्रित प्रवृत्ति और निवृत्ति की ओर गति ही समता जीवन का आधार है।

सार्थक जीवन .

इस दिशा मे विशिष्ट सत्यानुभूति के उद्देश्य से यह नवीन सूत्र प्रस्तुत किया जा रहा है—

'किं जीवनम् ?
सम्यक् निर्णायकं समतामयञ्च यत्
तज्जीवनम् ।'

जीवन क्या है ? प्रश्न उठाया गया है और उसका उत्तर भी इसी सूत्र मे दिया गया है कि जो जीवन सम्यक् निर्णायक और समतामय है, वास्तव मे वही जीवन है।

जो जिया जाता है, वह जीवन है—यह तो जीवन की स्थूल परिभाषा है। एक आदमी को बोरे मे बांध कर पहाड़ की चोटी से नीचे लुढ़का दिया जाय तो वह बोरा ढलान से लुढ़कता हुआ नीचे आ जाय—यह भी एक तरह से चलना ही हुआ। वहां दूसरा आदमी अपने नपे-तुले कदमो से, अपनी सजग दृष्टि से चल कर उतरे—उसे भी तो चलना ही कहेंगे। तो दोनो तरह के चलने मे फर्क क्या हुआ ? एक चलाया जाता है, दूसरा चलता है। चलाया जाना जड़त्व है तो चलना चैतन्य। अब दोनो मे परिणाम भी देखिये। जो बोरे मे बंधा लुढ़क कर चलता है, वह लहूलुहान हो जायगा—चट्टानो के आघात-प्रतिघातों से वह अपनी संज्ञा भी खो बैठेगा और संभव है कि फिर लम्बे अर्से तक वह चल सकने के काबिल भी न रहे। तो जो केवल जिया जाता है, उसे केवल जड़तापूर्ण

जीवन ही कहा जा सकता है। साधक जीवन वह है जो स्वयं चले—स्वस्थ एवं सुन्दर गति से चले बल्कि अपने चलने के साथ अन्य दुर्बल जीवनों में भी प्रगति का बल भरता हुआ चले।

समतामय जीवन

समता शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न रूपों में लिया जाता है। वैसे मूल शब्द सम है जिसका अर्थ समान होता है। अब यह समानता जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किस-किस रूप में हो—इसका विविध विश्लेषण किया जा सकता है।

सबसे पहले आध्यात्मिक क्षेत्र की समानता पर सोचें तो अपने मूल स्वरूप की दृष्टि से सारी आत्माएं समान होती हैं—चाहे वह एकेन्द्रिय याने अविकसित प्राणी की आत्मा हो या सिद्ध भगवान् की पूर्ण विकसित आत्मा। दोनों में वर्तमान समय की जो विषमता है, वह कर्मजन्य है। कुविचारों एवं कुप्रवृत्तियों का मैला अविकसित अवस्था में आत्मा के साथ संलग्न होने से उसका स्वरूप भी मैला हो जाता है और जैसे मैले दर्पण में प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई देता, उसी तरह मैली आत्मा भी श्रीहीन बनी रहती है। तो आध्यात्मिक समता यह है कि इस मल को दूर करके आत्मा को अपने मूल निर्मल स्वरूप में पहुँचाई जाय।

एक एक आत्मा इस तरह समता की ओर मुड़े तो दूसरी ओर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व में भी ऐसा समतामय वातावरण बनाया जाय जिसके प्रभाव से समूहगत समता भी सशक्त बनकर समग्र जीवन को समतामुखी बना दे। राजनीति में समानता, अर्थनीति में समानता और समाजनीति में समानता के जब पग उठाये जायेंगे और उसे अधिक से अधिक वास्तविक रूप दिया जायगा तो समता की द्विधारा बहेगी—भीतर से बाहर और बाहर से भीतर। तब भौतिकता और आध्यात्मिकता संघर्षशील न रहकर एक दूसरे की पूरक बन जायेगी जिसका समन्वित रूप जीवन के बाह्य और अन्तर को समतामय बना देगा।

यह परिवर्तन समाजवाद या साम्यवाद से आवे अथवा अन्य विचार के माध्यम से—किन्तु लक्ष्य हमारे सामने स्पष्ट होना चाहिये कि मानवीय गुणों की अभिवृद्धि के साथ सांसारिक व्यवस्था में अधिकाधिक समता का प्रवेश होना और ऐसी समता का जो मानव-जीवन के आभ्यन्तर को न सिर्फ सन्तुलित रखे बल्कि उसे संयम पथ पर चलने के लिये प्रेरित भी करे। धरातल जब समतल और साफ होता है तो कमजोर आदमी भी उस पर ठीक व तेज चाल से चल सकता है, किन्तु इसके विपरीत अगर धरातल उबड़खाबड़ और कंटीला पथरीला हो तो मजबूत आदमी को भी उस पर भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा। व्यक्ति की क्षमता का तालमेल यदि सामाजिक विकास के साथ बैठ जाता है तो व्यक्ति की क्षमता भी कई गुनी बढ़ जाती है।

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध

यों देखा जाय तो समाज कुछ भी नहीं है, व्यक्ति-व्यक्ति मिल कर ही तो समाज की रचना करते हैं, फिर व्यक्ति से विलग समाज का अस्तित्व कहां है? किन्तु सभी के अनुभव में आता होगा कि व्यक्ति की शक्ति प्रत्यक्ष दीखती है फिर भी समूह की शक्ति उससे ऊपर होती है जो व्यक्ति की शक्ति को नियंत्रित भी करती है। एक व्यक्ति एक संगठन की स्थापना करता है—उसके नियमो-

पनियम बनाता है तथा उनके अनुपालन के लिये दड व्यवस्था भी कायम करता है। एक तरह से सगठन का वह जनक है, फिर भी क्या वह स्वय ही नियम-भंग करके दंड मे बच सकता है ? यही शक्ति समाज की शक्ति कहलाती है जिसे व्यक्ति स्वेच्छा से वरण करता है। राष्ट्रीय सरकारों के सविधानों मे यही परिपाटी होती है।

जब-जब व्यक्ति स्वस्थ धारा से अलग हटकर निरकुश होने लगता है—शक्ति के मद मे झूम कर अनीति पर उतारू होता है, तब-तब यही सामाजिक शक्ति उस पर अंकुश लगाती है। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता होगा कि कई बार वह कुकर्म करने का निश्चय करके भी इसी विचार से रुक जाता है कि लोग क्या कहेगे ? ये लोग चाहे परिवार के हो—पड़ोस के हो—मोहल्ले, गांव, नगर या देश-विदेश के हो, इन्हे ही समाज मान लीजिये।

व्यक्ति स्वयं से नियत्रित हो—व्यक्ति समाज से नियंत्रित हो—ये दोनों परिपाटियां समता लाने के लिये सक्रिय बनी रहनी चाहिये। यही व्यक्ति एव समाज के सम्बन्धो की सार्थकता होगी कि विपमता को मिटाने के लिये दोनो ही नियत्रण सुदृढ बने।

समता : मानव मन के मूल मे है :

प्रत्येक मानव अपने जीवन को सुखी बनाना चाहता है और उसके लिये प्रयास करता है, किन्तु आज की दुविधा यह है कि सभी तरह की विपमताओ के बीच सम्पन्न भी सुखी नही, विपन्न भी सुखी नही और शान्ति लाभ तो जैसे एक दुष्कर स्थिति बन गई है। इसका कारण यह है कि मानव अपने साध्य को समझने के बाद भी उसके प्रतिकूल साधनो का आश्रय लेकर जब आगे बढता है तो बबूल उगाने से आम कहाँ से फलेगा ?

समता मानव मन के मूल मे है—उसे भुला कर जब वह विपरीत दिशा मे चलता है तभी दुर्दशा आरम्भ होती है।

समता का मूल्यांकन :

समता या समानता का कोई यह अर्थ ले कि सभी लोग एक ही विचार के या एक से शरीर के बन जावे अथवा बिलकुल एक सी ही स्थिति मे रखे जावे तो यह न सभव है और न ही व्यावहारिक। एक ही विचार हो तो बिना आदान-प्रदान, चिन्तन और संघर्ष के विचार का विकासशील प्रवाह ही रुक जायगा। इसी तरह आकृति, शरीर अथवा संस्कारो मे भी समानपने की सृष्टि सभव नही।

समता का अर्थ है कि पहले समतामय दृष्टि बने तो यही दृष्टि सौम्यतापूर्वक कृति मे उतरेगी। इस तरह समता समानता की वाहक बन सकती है। आप ऐसे परिवार को लीजिये, जिसमे पुत्र अर्थ या प्रभाव की दृष्टि से विभिन्न स्थितियो मे हो सकते है किन्तु सब पर पिता की जो दृष्टि होगी, वह समतामय होगी। एक अच्छा पिता ऐसा ही करता है। उस समता से समानता भी आ सकेगी।

समता कारण रूप है तो समानता कार्यरूप; क्योकि समता मन के धरातल पर जन्म लेकर मनुष्य को भावुक बनाती है तो वही भावुकता फिर मनुष्य के कार्यो पर असर डाल कर उसे समान

स्थितियो के निर्माण म सक्रिय सहायता देती है। जीवन मे जब समता आती है तो सारे प्राणियो के प्रति समभाव का निर्माण होता है। तब अनुभूति यह होती है कि बाहर का सुख हो या दु ख—दोनो अवस्थाओ मे समभाव रहे—यह स्वय के साथ की स्थिति तो अन्य सभी प्राणियो को आत्म-तुल्य मानकर उनके सुख दु ख मे सहयोगी बने—यह दूसरो के साथ व्यवहार करने की स्थिति। ये दोनो स्थितिया जब पुष्ट बनती हैं तो यह मानना चाहिये कि जीवन समतामय बन रहा है। कारण कि यही पुष्ट भावना आचरण मे उतर कर व्यक्ति से समाज और समाज से व्यक्ति की दोराहो पर विषमता को नष्ट करती हुई समता की सृष्टि करती है।

समता का आविर्भाव कब

समता का श्रीगणेश चू कि मन से होना चाहिये इसलिये मन की दो वृत्तिया होती हैं—राग और द्वेष। ये दोनो विरोधी वृत्तिया हैं। जिसे आप चाहते हैं उसके प्रति राग होता है। राग से मोह और पक्षपात जन्म लेता है जिसे आप नही चाहते उसके प्रति द्वेष आता है। द्वेष से कलुप, प्रतिशोध और हिंसा पैदा होती है। ये दोनो वृत्तिया मन को चचल बनाती रहती हैं तथा मनुष्य को स्थिरचित्ती एव स्थिरधर्मी बनने से रोकती हैं। चचलता से विषमता बनती और बढती है। मन विषम तो दृष्टि विषम होगी और उसकी कृति भी विषम होगी।

समता का आविर्भाव अत तभी सभव होगा जब राग और द्वेष को घटाया जाय। जितनी निरपेक्ष वृत्ति पनपती है, समता सगठित और सस्कारित बनती है। निरपेक्ष दृष्टि मे पक्षपात नही रहता और जब पक्षपात नही है तो वहा उचित के प्रति निर्णायक वृत्ति पनपती है तथा गुण और कर्म की दृष्टि से समता अभिवृद्ध होती है। अगर एक पिता के मन मे भी एक पुत्र के प्रति राग और दूसरे के प्रति द्वेष है तो वह स्थिति समता जीवन की द्योतक नही है। मैं सबकी आखो मे प्रफुल्लता देखना चाहू—मैं किसी की आख मे आसू नही देखना चाहू—ऐसी वृत्ति जब सचेष्ट बनती है तो मानना चाहिये कि उसके मन मे समता का आविर्भाव हो रहा है।

बाह्य समानता के लिये प्रयास करने से पूर्व अन्तर की विषमता नही मिटाई और कल्पना करलें कि बाहर की विषमता किसी भी बल प्रयोग से एक बार मिटा भी दी गई हो तो भी विषमता मय अन्तर के रहते वह समानता स्थायी नही रह सकेगी। एक ध्वजा जो उच्च गगन मे वायु मण्डल मे लहराती है—उसकी कोई दिशा नही होती। जिस दिशा का वायु वेग होता है, वह उधर ही मुड जाती है, किन्तु ध्वजा का जो दण्ड या स्तूप होता है, वह सदा स्थिर रहता है। तो समता के विकास के लिये दण्ड या स्तूप बनने का प्रयास करें जो स्थिर और अटल हो। फिर समता का सूक्ष्मतम विकास होता चला जायगा।

अन्तर्दृष्टि और बाह्य दृष्टि

समता के दो रूप हैं—दर्शन और व्यवहार। अन्तर के नेत्रो की प्रकाशमय दृष्टि से देखकर जीवन मे गति करना समता दर्शन का मुख्य भाव है और यह जो गति है उसमे समता के व्यवहार का स्वरूप स्पष्ट होता है। अत अन्तर और बाह्य दोनों दृष्टियो से समतापूर्ण जीवन का सचालन करने से साधक जीवन की उपलब्धि हो सकती है। दर्शन की गति व्यापक नही हो तो व्यवहार मे

भी एकरूपता नही आती है। इसके लिये अन्तर्दृष्टि और बाह्य दृष्टि में सम्यक् समन्वय होना चाहिये।

आप एक मकान को देखते है। उसमे कही पत्थर होता है, कही चूना, सीमेन्ट, लोहा, लकड़ी आदि। फिर भी उसमे रहने या बैठने वालो की स्थिति भी एक सी नही होती—अलग-अलग आकृतिया, वेश-भूषा आदि। फिर भी यदि अन्तर्दृष्टि में सबके समता आ जाय तो इन विभिन्नताओ के बावजूद सारा समूह एकरूपता की अनुभूति ले सकता है। बाह्य दृष्टि की विषमता इसी भाव एवं विचार समता के दृढ आधार पर समाप्त की जा सकती है।

किन्तु जो अन्तर्दृष्टि मे शून्य रह कर केवल बाह्य दृष्टि मे भटकता है, वह विषमता को ही अधिक बढाता है। समता की साधना एकागी नही, मन, वचन एवं कर्म तीनो के सफल सयोग मे की जानी चाहिये तभी बाह्य दृष्टि अपना मार्ग अन्तर्दृष्टि से पूछ कर ही चलेगी। अन्तर्दृष्टि का अनुशासन ही बाह्य दृष्टि पर चलना चाहिये।

समता : शान्ति, समृद्धि एवं श्रेष्ठता की प्रतीक :

मनुष्य के मन के मूल मे रही समता ज्यो-ज्यो उभरती जायगी, वह अपने व्यापक प्रभाव के साथ मानव जीवन को भी उबारती जायगी। उसे अशान्ति, दुःखदैन्य एव निकृष्टता के चक्रवात से बाहर निकाल कर यही समता उसे शान्ति, सर्वांगीण समृद्धि एव श्रेष्ठता के साचे मे ढालेगी। ऐसी ढलान के बाद ही मनुष्य विषमताजन्य पशुता के घेरो से निकल कर आत्मीयतापूर्ण मनुष्यता का स्वामी बन सकेगा। समता शान्ति, समृद्धि एवं श्रेष्ठता की प्रतीक होती है—इसे कभी न भूले।



नो उच्चावयं मणं नियछिज्जा —आचारांग २।३।१

सकट की घडियो मे भी मन को ऊचा-नीचा अर्थात् डावाडोल नही होने देना चाहिए।

समयं सया चरे। —सूत्रकृतांग २।२।३

साधक को सदा समता का आचरण करना चाहिए।

असंविभागी ण हु तस्स मोक्खो —दशवैकालिक ९।२।१३

जो अपनी प्राप्य सामग्री दूसरो मे बाटता नही, उसकी मुक्ति नही होती।

---

७ | सामायिक

उपाध्याय अमर मुनि

सामायिक समभाव की साधना

सब जीवो पर समता—समभाव रखना, पाच इन्द्रियों का सयम नियत्रण करना, अन्तर्हृदय मे शुभ भावना—शुभ सकल्प रखना, आर्त—रौद्र दुर्ध्यानो का त्याग कर धर्मध्यान का चिन्तन करना सामायिक व्रत है।

सामायिक का मुख्य लक्षण समता है। समता का अर्थ है—मन की स्थिरता, रागद्वेष की अपरिणति, समभाव, एकीभाव, सुख दुःख मे निश्चलता इत्यादि। समता आत्मा का स्वरूप है और विषमता परस्वरूप यानी कर्मों का स्वरूप। अतएव समता का फलितार्थ यह हुआ कि कर्म—निमित्त से होने वाले राग आदि विषम भावो की ओर से आत्मा को हटाकर स्व-स्वरूप मे रमण करना ही समता है। आचार्य हरिभद्र पचाशक मे लिखते हैं—

> समभावो सामाइय, तण-कचण सत्तु-मित्त विसउत्ति।
> णिरभिस्सग चित्त, उचिय पवित्तिप्पहाण च॥

चाहे तिनका हो, चाहे सोना, चाहे शत्रु हो, चाहे मित्र, सर्वत्र अपने मन को राग द्वेष की आसक्ति से रहित रखना तथा पाप-रहित उचित धार्मिक प्रवृत्ति करना, सामायिक है, क्योंकि समभाव ही तो सामायिक है।

सामायिक के दो भेद

(१) द्रव्य सामायिक —द्रव्य का अभिप्राय यहाँ ऊपर के विधि विधानों तथा साधनो से है। अत सामायिक के लिए आसन बिछाना, गृहस्थ वेष के कपड़े उतारना, माला फेरना आदि द्रव्य सामायिक है।

(२) भाव सामायिक —भाव का अभिप्राय यहा अन्तर्हृदय के भावो और विचारो से है। अर्थात् राग द्वेष से रहित होने के भाव रखना, राग द्वेष से रहित होने के लिए प्रयत्न करना, यथाशक्ति राग द्वेष से रहित होते जाना, भाव सामायिक है। उक्त भाव को जरा दूसरे शब्दो मे कहें, तो यो कह सकते हैं कि बाह्य दृष्टि का त्याग कर अन्तर्दृष्टि के द्वारा आत्म निरीक्षण मे मन को जोडना,

विपमभाव को त्यागकर समभाव में स्थिर होना, पौद्गलिक पदार्थों का यथार्थ स्वरूप समझ कर उनसे ममत्व हटाना एवं आत्मस्वरूप मे रमण करना भाव सामायिक है।

सामायिक की भूमिका :

सामायिक के लिए भूमिका स्वरूप चार प्रकार की शुद्धि आवश्यक है—द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि, और भाव शुद्धि। उक्त चार शुद्धियो के साथ की हुई सामायिक ही पूर्ण फलदायिनी होती है, अन्यथा नहीं।

(१) **द्रव्य शुद्धि** :—सामायिक के लिए जो भी आसन, वस्त्र, रजोहरण या पूंजणी, माला मुखवस्त्रिका, पुस्तिका आदि द्रव्य साधन आवश्यक हैं, उनका अल्पारंभ, अहिंसक एवं उपयोगी होना आवश्यक है।

(२) **क्षेत्र शुद्धि** :—क्षेत्र से मतलब उस स्थान से है, जहां साधक सामायिक करने के लिए बैठता है। क्षेत्र शुद्धि का अभिप्राय यह है कि सामायिक करने का स्थान भी शुद्ध होना चाहिये। जिन स्थानों पर बैठने से विचारधारा टूटती हो, चित्त मे चंचलता आती है, अधिक स्त्री-पुरुष या पशु-आदि का आवागमन अथवा निवास हो, लड़के और लड़कियाँ कोलाहल करते हों, खेलते हों, विपय-विकार उत्पन्न करने वाले शब्द कान मे पड़ते हो, इधर-उधर दृष्टिपात करने से विकार पैदा होना हो अथवा कोई क्लेश उत्पन्न होने की सम्भावना हो, ऐसे स्थानों पर बैठकर सामायिक करना ठीक नही है। आत्मा को उच्च दशा में पहुंचाने के लिए अन्तर्हृदय मे समभाव की पुष्टि करने के लिए क्षेत्रशुद्धि सामायिक का एक अत्यावश्यक अंग है। अतः सामायिक करने के लिए वही स्थान उपयुक्त हो सकता है, जहाँ चित्त स्थिर रह सके और आत्मचिंतन किया जा सके।

(३) **कालशुद्धि** :—काल का अर्थ समय है, अतः योग्य समय का विचार रख कर जो सामायिक की जाती है, वही सामायिक निर्विघ्न तथा शुद्ध होती है। बहुत से सज्जन समय की उचितता अथवा अनुचितता का बिल्कुल विचार नही करते। यो ही जब जी चाहा, तभी अयोग्य समय पर सामायिक करने बैठ जाते है। फल यह होता है कि सामायिक मे मन शांत नही रहता, अनेक प्रकार के सकल्प विकल्पों का प्रवाह मस्तिष्क मे तूफान खड़ा कर देते हैं।

(४) **भावशुद्धि** :—भावशुद्धि से अभिप्राय है, मन, वचन और शरीर की शुद्धि। मन, वचन और शरीर की शुद्धि का अर्थ है, इनकी एकाग्रता। जब तक मन, वचन और शरीर की एकाग्रता न हो, चंचलता न रुके, तब तक दूसरा बाह्य विधि-विधान जीवन मे उत्क्रांति नहीं ला सकता। जीवन उन्नत तभी होता है जबकि साधक मन, वचन, शरीर की एकाग्रता भंग करने वाले अन्तरात्मा में मलिनता पैदा करने वाले दोषो को त्याग दे।

सामायिकः मुक्ति का साधन :

सामायिक मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख अंग है। जब तक हृदय में समभाव का उदय न होगा, तब तक किसी भी दशा मे मोक्ष नही प्राप्त हो सकती। सामायिक मे समभाव, समता मुख्य है। और समता क्या है ? आत्म-स्थिरता। और आत्म स्थिरता अर्थात् आत्म भाव मे रहना ही चारित्र है। आत्मभाव मे स्थिर होने वाले चारित्र से ही मोक्ष मिलती है। अतएव आचार्य हरिभद्र कहते हैं—

सामायिक च मोक्षांग, परं सर्वज्ञ भाषितम् ।
वासी चन्दन-कल्पानामुक्तमेतम्महात्मनाम् ।।

—२६वां अष्टक

जिस प्रकार चन्दन अपने काटने वाले कुल्हाड़े को भी सुगन्ध अर्पण करता है उसी प्रकार विरोधी के प्रति भी जो समभाव की सुगन्ध अर्पण करने रूप महापुरुषों की सामायिक है, वह मोक्ष का सर्वोत्कृष्ट अंग है, ऐसा सर्वज्ञ प्रभु ने कहा है ।

तिव्वतव तवमाणं, जं न वि निट्ठवइ जम्मकोडीहिं ।
तं समभाविअचित्ता, खवेई कम्म खणद्धेण ।।

करोड़ों जन्म तक निरन्तर उग्र तपश्चरण करने वाला साधक जिन कर्मों को नष्ट नहीं कर सकता, उनको समभाव पूर्वक सामायिक करने वाला साधक मात्र आधे ही क्षण में नष्ट कर डालता है ।

किं तिव्वेण तवेण किं च जवेण किं चरित्तेण ।
समयाइ विण मुक्खो, न हु हुओ कहवि न हु होई ।।

चाहे कोई कितना ही तीव्र तप तपे, जप जपे, अथवा मुनि वेष धारण कर स्थूल क्रियाकाण्ड रूप चारित्र पाले, परन्तु समताभाव रूप सामायिक के बिना न किसी को मोक्ष हुआ है और न होगा ।

आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ फल है—

आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे ।

यह निश्चय दृष्टि का कथन है । इसके अनुसार जब तक साधक स्व-स्वरूप में ध्यान मग्न रहता है उपशम जल से राग द्वेष के मल को धोता है, पर परिणति को हटाकर आत्म परिणति में रमण करता है, तब तक ही सामायिक है ।

अतः साधकों का कर्तव्य है कि निश्चय सामायिक की प्राप्ति का प्रयत्न करें । केवल सामायिक के बाह्य स्वरूप से चिपट रहना और उसे ही सब कुछ समझ लेना उचित नहीं ।

निश्चय सामायिक के स्वरूप का वर्णन करके उस पर जोर देने का यह भाव नहीं कि अन्तरंग साधना अच्छी तरह नहीं होती है तो बाह्य साधना भी छोड़ ही दी जाय । बाह्य साधना, निश्चय साधना के लिए अतीव आवश्यक है । निश्चय सामायिक तो साध्य है, उसकी प्राप्ति बाह्य साधना करते करते आज नहीं, तो कालान्तर में कभी न कभी होगी ही । मार्ग पर एक एक कदम बढ़ाने वाला दुर्बल यात्री भी एक दिन मंजिल पर पहुंच जाएगा ।



८ | तप

•

डॉ० नरेन्द्र भानावत

आत्म-शुद्धि और तप :

भारतीय साधना पद्धति मे तप को परम ज्योति और अग्नि कहा गया है। अग्नि की भाति तपोसाधना से जहाँ आत्मा के विकार नष्ट होते है, वहाँ उससे नई शक्ति और प्रकाश भी मिलता है। तप की उष्मा पाकर आत्मा निर्मल और पवित्र बनती है और धीरे-धीरे साधना का बल पाकर यह उष्मा विलक्षण ज्योति मे परिणत हो जाती है। यह परिणमन ही तपोसाधना का चरम लक्ष्य है। इसे ही आत्म-दशा से परमात्म-दशा तक पहुंचने की स्थिति कहा गया है। आत्मा और परमात्मा मे जो भेद है, वह कर्म जनित है। राग-द्वेषादि कर्मो से आत्मा मलीन और अपवित्र बन जाती है। आत्मा की शुद्धि के लिये श्रमण संस्कृति मे तप का विशेष विधान है। 'सयुक्त निकाय' जैसे बौद्ध ग्रन्थो मे तप और ब्रह्मचर्य को बिना पानी का स्नान कहा गया है। भगवान् महावीर ने कहा—'तवेण परिसुज्झई' अर्थात् तप से आत्मा का शुद्धिकरण होता है।

सासारिक बन्धनो में बन्ध कर आत्मा भारी हो जाती है। तप की अग्नि से आत्मा हल्की और विशुद्ध होकर परमात्म-दशा को प्राप्त कर लेती है। इस दृष्टि से आत्म-शुद्धि के लिये की जाने वाली कोई भी प्रवृत्ति तप कही जा सकती है। जैन साधकों की दृष्टि इस दिशा मे बडी उदार रही है। कोई भी व्यक्ति अपनी आंतरिक शक्तियो को जागृत कर उनका विकास कर महापुरुष बन जाता है। उसमे ईश्वरत्व की झलक प्रतिबिम्बित होने लगती है। साधारण पुरुष से महापुरुष बनने की इस प्रक्रिया मे तप की विशेष भूमिका है। तप के द्वारा ही मन की सुषुप्त शक्तियाँ जागृत होती है। जिस अनुपात मे ये शक्तियाँ जागृत होती जाती हैं, उसी अनुपात मे महानता का स्तर बढता जाता है।

तप का मूल धैर्य :

तप का मूल धैर्य माना गया है—'तवस्स मूल धिती'। जब व्यक्ति मे धीर भाव का उदय होता है तब उसमे अन्य गुण स्वतः चले आते है। शायद इसीलिए साहित्यशास्त्रियो ने हर नायक के पहले धीर विशेषण का प्रयोग किया है, यथा धीरोदात्त, धीर प्रशान्त आदि। जहां धैर्य होता है

वहाँ अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों मे सतुलन बना रहता है। यह सतुलन ही जीवन मे स्थय और गतिशीलता जोडे रखता है।

तप बाह्य और आभ्यन्तर

जैन आगमो मे व्यक्ति की क्षमता और रुचि के अनुसार तप का विधान किया गया है। मुख्य रूप म दो प्रकार के तप कहे गये हैं—बाह्य तप और आभ्य तर तप। वे क्रियाएँ जिनका आचरण करने पर हमे स्वय कष्ट, श्रम आदि का अनुभव होता है और दूसरो को भी बाहर मे दीखता है कि हम तप कर रहे हैं, बाह्य तप की श्रेणी मे आती हैं। इनका मुख्य लक्ष्य इन्द्रिय विषयो मे दूर हटना होता है।

बाह्य तप के ६ प्रकार

बाह्य तप के छह भेद माने गये हैं—अनशन, ऊनादरी, भिक्षाचरी रस-परित्याग, कायक्लेश और प्रतिसलीनता।

अनशन का अथ है—आहार का त्याग करना। यह तप सभी तपो मे प्रथम है क्योकि आहार के प्रति प्राणी मात्र की आसक्ति रहती है। भूख पर विजय प्राप्त करना सबसे कठिन तप है। आहार की इच्छा का त्याग करने का अथ है—प्राणो का मोह छोडना और मृत्यु के भय को जीतना। आहार त्याग से मानसिक विकारो को दूर करन मे भी मदद मिलती है। व्यवहार में अनशन तप को ही 'उपवास' कहा जाता है। उपवास शब्द पर विचार करने से प्रतीत होता है कि इसम दो शब्द हैं उप+वास। 'उप' का अथ है समीप और 'वास' का अथ है—रहना अर्थात् आत्मा के समीप रहना। आत्मा का स्वभाव आनन्दमय एव ज्ञानमय है। इस आनन्द और ज्ञान की अनुभूति वही कर सकता है जो राग द्वेष आदि विकारो से दूर रहकर समभाव म रमण करता है।

तप का दूसरा भेद ऊनोदरी है। इसका अथ है भूख से कम खाना। इस तप द्वारा खाद्य सयम की साधना को बल मिलता है और अनावश्यक सचय करने की प्रवृत्ति पर अकुश लगता है अत यह तप धार्मिक दृष्टि से ही नही, आर्थिक एव सामाजिक दृष्टि से भी उपयोगी है। वस्तु की तरह क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मानसिक विकारो मे कमी लाना, इनके वेगो को कम करना भी भाव ऊनोदरी तप है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सादगी, सयम और समभाव लाना इस तप का मुख्य लक्ष्य है।

तीसर तप भिक्षाचरी का सम्बन्ध निर्दोष आहार ग्रहण करन की विधि स है। इसम साधक के लिये विधान है कि वह अभिग्रह आदि नियम करके रूखा-सूखा जैसा भी निर्दोष आहार प्राप्त हो, उस समभाव पूवक ग्रहण करे। चौथ रस-परित्याग तप म स्वाद वृत्ति पर विजय प्राप्त करते हुए अभक्ष्य चीजो से बचा जाता है। आज युवका मे बढती हुई मासाहार और होटलो म खान की प्रवृत्ति मुख्यत स्वादलोलुपता का ही परिणाम है। तन मन को स्वस्थ रखन के लिए सादे और सात्विक भोजन की ओर प्रवृत्त होना इस तप का लक्ष्य है। पाँचवा कायक्लेश तप व्यक्ति को सहिष्णु और सहनशील बनाता है। छठे प्रतिसलीनता तप मे असद्वृत्तियो मे इन्द्रियो को हटाकर सद्वृत्तियो मे

मन का तल्लीन किया जाता है। इस प्रकार इन छह बाह्य तपो के द्वारा विषयो से बचने की साधना की जाती है। इनमे से प्रारंभ के चार तप आहार से सम्बन्धित है। जब तक आहार पर संयमन नही किया जाता, तब तक मन की शक्तियो को उजागर नही किया जा सकता।

आभ्यन्तर तप के ६ प्रकार :

जिन क्रियाओं के द्वारा साधना मे शारीरिक कष्ट तो कम होते है किन्तु मानसिक एकाग्रता, सरलता और भावो की शुद्धता का प्रभाव अधिक रहता है, उन्हे आभ्यन्तर तप कहा गया है। इनका विधान विकारो को दूर हटाने के लिए है। इनके छह प्रकार है—प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग।

प्रायश्चित का अर्थ है—प्रमाद या अज्ञानवश हुई भूल के प्रति मन मे ग्लानि या पश्चाताप करते हुए उसे दुबारा न करने का सकल्प करना। इस प्रक्रिया से आत्म-निरीक्षण होकर उत्तरोत्तर जीवन शुद्ध बनता है। विनय का अर्थ है—नम्रता। बड़ो के प्रति विनम्र भाव रखना और छोटो के प्रति स्नेह और वात्सल्य रखना वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के लिये आवश्यक है। विनय द्वारा अहंकार टूटता है और सदाचार मे वृद्धि होती है।

वैयावृत्य का अर्थ है—सेवा। सेवा को परम धर्म कहा गया है। जैन आगमो मे तो यहाँ तक कथन है कि वैयावृत्य करने से तीर्थङ्कर गोत्र बधता है। इसमे अपनी सुख-सुविधाओं का त्याग करके दूसरो के सुख के लिये त्याग की भावना जागृत होती है। आज सेवा का विशाल क्षेत्र हमारे सामने है। जो समाज-सेवा और राष्ट्र-सेवा मे निष्काम भाव से अपना योग देता है वह भी हमारे यहाँ तपस्वी कहा गया है। विधि पूर्वक सद्शास्त्रो का अध्ययन, मनन करना और तदनुरूप उस पर आचरण करने का प्रयत्न करना स्वाध्याय तप है। स्वाध्याय मे मन एकाग्र होता है, विचार शुद्ध बनते है और ज्ञान का अभ्यास बढता है। स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है—'सज्झाएणं नाणावरणिज्ज कम्म खवेइ'। वाचना पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा ये स्वाध्याय के पांच प्रकार है। मन की एकाग्रता के लिये ध्यान तप का विधान है। इसके द्वारा मन के प्रवाह को अशुभ विचारो से शुभ विचारो की ओर मोड़ा जाता है। शुभ विचारो की ओर बढता हुआ मन जब किसी विषय मे तन्मय हो जाता है, तब वह ध्यान कहलाता है। धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान शुभ ध्यान है। इनसे आत्मबल का विकास होता है और धीरे-धीरे मन समाविस्थ होने लगता है। व्युत्सर्ग तप मे विशिष्ट विधि पूर्वक त्याग किया जाता है। शरीर के प्रति आसक्ति का त्याग करना, धन सम्पत्ति के ममत्व का त्याग करना तथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारो के परिहार का अभ्यास करना व्युत्सर्ग तप है। इसमे देहासक्ति से सर्वथा मुक्त होने का प्रयास किया जाता है।

तप का वास्तविक स्वरूप :

केवल भूखा रहना वास्तविक अर्थ मे सच्चा तप नही है। यह तो तप का आरंभ मात्र है। अनशन तप मे भोजन का त्याग भर करना पड़ता है। पर ज्यो-ज्यो तप सूक्ष्म बनता जाता है, उसमे विषय और विकार छूटते चलते है और अन्तत. भोग से सर्वथा विरक्ति हो जाती है। श्रेष्ठ तप वह है जिसमें मन किसी प्रकार का अमगल न सोचे, इन्द्रियों की हानि न हो और नित्य प्रति की धर्म-

क्रियाओ मे विघ्न न आये । तप व्यक्ति को कमजोर या निष्क्रिय नही बनाता, वह उसकी सक्रियता और जीवन्त शक्ति को सतेज करता है ।

तप का वैयक्तिक और सामाजिक महत्त्व

जैनागमो मे वर्णित उक्त वाह्य एव आभ्यन्तर तपो के बारह प्रकारो से यह स्पष्ट है कि तप का वैयक्तिक और सामाजिक जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसकी साधना से कर्मों की निर्जरा तो होती ही है, साथ ही खाद्य-सयम, कष्ट-सहिष्णुता, अस्वादवृत्ति, सेवा-भावना, मानसिक एकाग्रता, त्याग-वृत्ति जैसे सद्गुणो का भी विकास होता है जो किसी भी स्वस्थ समाज और प्रगतिशील मजबूत राष्ट्र के मूल आधार हैं ।

एगमप्पाण सपेहाए धुणे सरीरग

—आचाराग १।४।२

आत्मा को शरीर से विलग जानकर भोगलिप्त शरीर को तपश्चर्या के द्वारा धुन डालना चाहिए ।

भवकोडिय सचिय कम्म, तवसा णिज्जरिज्जइ

—उत्तराध्ययन ३०।६

करोडो भवों के सचित कर्म तपश्चर्या से निर्जीर्ण–नष्ट हो जाते हैं ।

सक्ख खु दीसइ तवो विसेसो ।
न दीसई जाइविसेस कोई ॥

—उत्त० १२।३७

तप की महिमा प्रत्यक्ष म दिखलाई देती है किन्तु जाति की महिमा तो कोई नजर नही आती है ।

९ | श्रावक धर्म

●

• श्री मधुकर मुनि

श्रावक का स्वरूप :

'श्रावक' श्रमण-संस्कृति का मुख्य शब्द है। जैन और बौद्ध—दोनो ही परम्पराओं मे गृहस्थ उपासक को श्रावक कहा गया है। श्रावक शब्द के कुछ गुणवाचक अर्थ इस प्रकार है।

जो धर्मशास्त्रो का श्रवण करता है, वह श्रावक।

जो त्यागी श्रमणो की उपासना करता है, वह श्रमणोपासक है। श्रावक शब्द से ध्वनित होता है—

श्रा } श्रद्धावान हो,
व } विवेकी हो,
क } क्रियावान हो,

श्राद्धविधि[1] नाम के प्राचीन ग्रंथ मे श्रावक शब्द की व्युत्पत्ति के साथ निम्न अर्थ बताये गये हैं—

श्रा—वह तत्त्व-अर्थ के चिन्तन द्वारा श्रद्धालुता को दृढ करता है।

व—वह सत्पात्र में धन रूप बीज का वपन करता है।

क—वह शुद्ध साधु की सेवा करके पाप धूलि को दूर फेंकता है।

उक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि श्रावक वह व्यक्ति है, वह पवित्र मानव है जो सदा श्रद्धा, ज्ञान और कर्म की पावन त्रिवेणी मे अवगाहन करता रहता है। राष्ट्र और समाज में जिसका चरित्र आदर्श होता है। जो संग्रह भी करता है तो दान भी देता है, जो सेवा लेता है तो सेवा करने मे भी पीछे नहीं रहता और जो नीति एवं सदाचार के नियमों का आत्मसाक्षी से पालन करता है, वह जैन परिभाषा के अनुसार 'श्रावक' है।

---

१ श्रद्धालुतां श्राति पदार्थ चिन्तनाद्, वनानि पात्रेषु वपत्यनारतम्।
किरत्यपुण्यानि सुसाधुसेवना, दत्तोपि तं श्रावक माहुरुत्तमाः॥
—श्राद्धविधि पृ० ७२। श्लोक ३

श्रावकधर्म की रूपरेखा

जीवन एक अखण्ड वस्तु है। धर्म उसकी अखण्डता का रक्षक, पालक एवं पोषक है। धार्मिक जीवन और लौकिक जीवन भिन्न भिन्न नहीं हो सकते। दोनों का विकास एक साथ होता है। अतः सामान्य आचार की भूमिका बनाने के बाद श्रावकधर्म का विकास इस प्रकार किया जा सकता है—

श्रावक आंशिक रूप से सावद्य योगों का परित्याग करते हुए आत्मसाधना के लिए तत्पर रहते हैं। अतएव हिंसादि का एक सीमा तक त्याग करने के कारण श्रावकधर्म को अणुव्रत भी कहते हैं। उन व्रतों के नाम इस प्रकार हैं—

पांच अणुव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।
तीन गुणव्रत—दिशापरिमाण, उपभोग परिभोग परिमाण, अनर्थदण्डविरमण।
चार शिक्षाव्रत—सामायिक, देशावकाशिक, पौषध, अतिथिसंविभाग।

इन सबको मिलाकर श्रावक के १२ व्रत कहे जाते हैं। अहिंसा आदि पांच अणुव्रत सावद्य प्रवृत्तियों से निवृत्ति रूप हैं। गुणव्रतों के परिपालन से सावद्य योगों से निवृत्ति का पोषण करने का अभ्यास बढ़ता है और शिक्षाव्रतों के रूप में प्रवृत्ति की जान से दैनिक जीवन के व्यवहार रूप में धर्म धारा बहती रहती है।

अणुव्रत

(१) अहिंसा अणुव्रत—यह श्रावकाचार की भूमिका है। स्थूल हिंसा का त्याग करते हुए शेष सूक्ष्म हिंसा का त्याग करना अहिंसा अणुव्रत है। हिंसा का अर्थ है प्रमत्त योग से प्राणों का नाश करना। प्रमत्त योग अर्थात् राग-द्वेष से की गई प्रवृत्ति। इस राग द्वेष पूर्ण प्रवृत्ति से हिंसा होती है।

अहिंसाव्रत के अतिचार

अहिंसा के पांच अतिचार (दोष) बताये गये हैं जिनसे गृहस्थ को सदा बचना होता है। जैसे—

बन्धन—पशु आदि को कठोर बन्धन से बांधना।

वध—गाय-बैल, घोड़ा आदि मूक पशुओं पर निर्मम प्रहार करना।

छविच्छेद—पशु एवं मनुष्यों के हाथ-पैर आदि अंगों को काटना।

अतिभार—किसी भी प्राणी पर उसकी शक्ति से अधिक भार लादना अति श्रम लेना शोषण करना।

अन्नपाननिरोध—अपने आश्रित पशु पक्षी मनुष्य आदि के भोजन-पानी में बाधा डालना। आश्रित प्राणी को भूखा मारना।

(२) सत्याणुव्रत—यह अहिंसा का ही दूसरा नाम है। इसका उद्देश्य कटु वाणी से बचाना है। सत्य वाणी दूसरों के लिए मार्गदर्शक होने की अपेक्षा स्वयं के लिए महान् हितकारी है। इसीलिए सत्य को भगवान् की उपमा दी है—'सच्चं खु भगवं'—सत्य ही भगवान् है।

स्वार्थ के लिए अथवा दूसरो के लिए क्रोध से अथवा भय से किसी भी प्रसंग पर दूसरों को पीडा पहुचाने वाला असत्य-वचन न तो स्वय बोलना, न दूसरो से बुलवाना चाहिए।

सत्यव्रत के अतिचार :

सत्य की सीमा अनन्त है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे इसका उपयोग होता है। कभी-कभी न चाहते हुए भी गृहस्थ को विवश होकर असत्य का सहारा लेना पड़ता है, किन्तु धर्मशास्त्र कहते हैं यदि विवशतावश असत्य बोलते हों तब भी असत्य के प्रति मन मे ग्लानि रखो। अपनी दुर्बलता को छोड़ने की दिशा में प्रयत्नशील रहो। यह संकल्प रखो कि आज नही तो कल मुझे असत्य का पूर्ण परित्याग करना है—

सत्यव्रत के पाच अतिचारो से गृहस्थ को बचना चाहिए, ताकि उसका व्रत दूषित न हो। पाच अतिचार इस प्रकार है—

मिथ्योपदेश—सच-झूठ समझाकर किसी को बुरे मार्ग पर ले जाना।
रहस्याभ्याख्यान—किसी की गुप्त बात प्रकट करना, मर्मभेद करना।
कूटलेखक्रिया—झूठे दस्तावेज, नकली खाते-बही आदि बनाना।
न्यासापहार—धरोहर रखकर देते समय मुकर जाना।
साकारमंत्रभेद—झूठी अफवाहे फैलाना, चुगली खाना।

ये पाचो ही सत्यव्रत के दोष हैं। गृहस्थ को इनसे बचना अत्यन्त आवश्यक है।

(३) **अचौर्याणुव्रत**—अचौर्यव्रत का अर्थ है, अपने स्वामित्व की वस्तु को छोड़कर किसी दूसरे की वस्तु को बिना उसकी अनुमति के अपने उपयोग मे लाना चोरी है और इस चोरी का त्याग करना अचौर्यव्रत है।

अचौर्यव्रत के सम्बन्ध मे गम्भीरता से विचार किया जाए तो प्रतीत होगा कि पेट भरने और शरीर ढकने के लिए जरूरत से अधिक सग्रह रखना भी चोरी है। गांधीजी ने तो इसके लिए लिखा है कि जिस वस्तु की हमे आवश्यकता न हो, भले ही वह वस्तु दूसरो से आज्ञा लेकर ही ली हो, किन्तु उसे लेना भी चोरी है।

वस्तु के स्वामी की अनुपस्थिति मे ताला तोड़कर वस्तु लेना जैसे चोरी कही जाती है, वैसे ही उसकी उपस्थिति मे धोखा देकर ले जाना भी चोरी है। ताला तोड़कर लेना असभ्य चोरी है। लेकिन अपनी बुद्धिमानी, शक्ति आदि से दूसरे की वस्तुओ पर अधिकार जमाना, शोषण करना, अधिक मूल्य की वस्तु मे कम मूल्य की वस्तु की मिलावट करना, विज्ञापन आदि देकर मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य को खराब करने वाली वस्तुओ आदि को बेचना आदि उपाय या कार्य सब चोरी ही माने जायेगे।

अचौर्यव्रत के अतिचार :

गृहस्थ सम्पूर्ण अचौर्यव्रती बने यह संभव नही। चूंकि जीवन-व्यवहार इतने उलझे हुए और एक दूसरे से सम्बद्ध हैं कि कभी-कभी अनचाहे भी चोरी हो जाती है, जिसे समझ भी नही पाते।

इसलिए गृहस्थ जीवन मे चोरी की स्थूल मर्यादा की जाती है कि ऐसा चौय कम न करें जिसके कारण समाज मे वह कलकित हो, शासन द्वारा दडित किया जाय । इस मर्यादा के साथ उसे अचौयव्रत के पाच निम्न अतिचारो से भी बचते रहना चाहिए—

(१) स्तेनाहृत—चोरी का माल खरीदना ।

(२) तस्कर प्रयोग—चोरी के नये नये तरीके खोजना और दूमरो को चोरी के उपाय बताना ।

(३) विरुद्धराज्यातिक्रम—राज्य के नियम के विरुद्ध व्यापार आदि काय करना ।

(४) कूटतुला-कूटमान—तोलने और नापने मे गडवड करना ।

(५) तत्प्रतिरूपक व्यवहार—असली मे नकली तथा बहुमूल्य वाली वस्तु म कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना । दिखाना कुछ, देना कुछ ।

ये पाचो ही काय अचौयव्रत के दोप हैं । सदाचारी गृहस्थ को इनसे बचना चाहिए ।

(४) ब्रह्मचयव्रत—इस व्रत का उद्देश्य शरीर एव मन की शक्तियो को सुरक्षित रखना और उन्हें सत्कार्यों, सत्प्रवृत्तियो मे नियोजित करना है । आतरिक शक्तियो को सुरक्षित रखने के लिए सयम की आवश्यकता है । सयम के द्वारा महान् और अद्भुत काय किये जा सकते हैं ।

सदाचार का पालन ही मानव जीवन की आधार शिला है । मनुष्य के पास विद्वत्ता और लक्ष्मी हो या न हो परतु उसके पास चारित्र होना ही चाहिए । सदाचार के अभाव मे न तो बौद्धिक शक्तिया प्राप्त की जा सकती हैं और न आत्मिक शक्तिया ।

मनुष्य यदि सदाचारी है, ब्रह्मचारी है तो उसका वीय ऊपर चढेगा और तेजस्वी बनेगा । असयम मनुष्य को तेजहीन बना देता है । वीय का उर्ध्वीकरण नर को नारायण और अब्रह्मचय मानव को दानव बना सकता है ।

ब्रह्मचर्यव्रत के अतिचार

यद्यपि ब्रह्मचय की सम्पूण साधना कर ऊर्ध्वरेता बनना मनुष्यजीवन का आदश है, पर साधारण गृहस्थ इस आदश के अनुसार नही चल सकता । अत उसे यथाशक्य ब्रह्मचय का उपदेश दिया गया है । अधिक से अधिक सयम कर इन्द्रियो का निग्रह करे, ब्रह्मचय की अधिक से अधिक साधना करे, यही उसका ध्येय होना चाहिए । उसे ब्रह्मचय पालन मे बडी सतकता और सावधानी रखनी होती है । खासकर निम्न ५ दूषणो से तो बचते रहना आवश्यक है—

(१) इत्वरि परिग्रहितागमन—परस्त्री गमन अथवा अल्पकाल के लिए रखैल स्त्री से गमन करना ।

(२) अपरिग्रहीतागमन—अविवाहित स्त्री, कन्या अथवा वेश्या आदि के साथ गमन करना ।

(३) अनगक्रीडा—ऐसी क्रीडाएँ करना, जिनमे कामोत्तेजना हो ।

(४) **परविवाहकरण**—बेमेल विवाह करवाना, अथवा विवाह कराने मे अधिक दिलचस्पी रखना।

(५) **तीव्रकामासक्ति**—काम-भोग सेवन की तीव्र अभिलाषा रखना।

ये पाचो ही ब्रह्मचर्यव्रत के दूषण हैं, श्रावक को इनसे बचते रहना अनिवार्य है।

(५) **अपरिग्रहव्रत**—तृष्णा, मूर्च्छा, ममत्व व आसक्ति को नियन्त्रित करने के लिए यह व्रत है। यह व्रत-पालन करने के मुख्य दो उद्देश्य है—एक व्यक्तिगत आत्म-विकास और दूसरा सामाजिक व्यवस्था। जड वस्तुओ के अधिक सग्रह मे मनुष्य की आत्मचेतना दब जाती है और उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। जब एक मनुष्य किसी वस्तु का अधिक सग्रह करता है, तब दूसरे मनुष्यो को उस वस्तु की कमी भोगनी पडती है। सग्रह की वजह से समाज मे विषमता और अव्यवस्था उत्पन्न होती है। भगवान् महावीर ने जड पदार्थो का सग्रह करने वालो को बोध देते हुए कहा है—

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते, इयम्मि लोए अदुवा परत्था।
दीविप्पणट्ठेव अणंतमोहे, नेयाउयं दट्ठूमदट्ठूमेव॥

हे प्रमादी जीव! इस लोक या परलोक मे धन शरण देने वाला नही है। अधकार मे जैसे दीपक बुझ जाए तो देखा हुआ मार्ग भी बिन देखा जैसा हो जाता है, वैसे ही पौद्गलिक-वस्तुओ के मोहान्धकार मे मनुष्य न्याय मार्ग को देखकर अनदेखा कर देता है।

परिग्रह सब पापो की जड़ है। जबतक परिग्रह, सग्रहवृत्ति पर नियत्रण नही किया जाएगा, तब तक दूसरे पाप रुक नही सकते। श्रावक का यह अपरिग्रह अणुव्रत, इच्छापरिमाण व्रत के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि गृहस्थ सम्पूर्ण रूप से अपरिग्रही नही बन सकता है। अत. उसके लिए यही उचित है कि वह अपनी इच्छाओ को सीमित करे, तृष्णा का, लालसा का दमन कर उन्हे एक सीमा से आगे न बढ़ने दे। इसीलिए जैन आगमो मे अपरिग्रह अणुव्रत को 'इच्छापरिमाणव्रत' कहा है।

इच्छापरिमाणव्रत के अतिचार :

अन्य व्रतो की भाँति इस व्रत के भी पाच अतिचार हैं।

१ धन व धान्य का नियय व मर्यादा से अधिक संग्रह करना। २. भूमि तथा गृह आदि का सीमा से अधिक स्वामित्व रखना। ३. चादी व सोना मर्यादा से अधिक रखना। ४. नियम से अधिक दास-दासी तथा पशु आदि रखना। ५. मर्यादा के उपरान्त घर का सामान रखना।

इन अतिचारो में मुख्य बात यही है कि गृहस्थ सग्रह तो करता है, किन्तु अपने गृहीत नियमो के उपरान्त सग्रह न करे। एक दृष्टि से सामाजिक एवं राजकीय मर्यादा का उल्लघन भी इसमे आ सकता है। दृष्टि यही है कि किसी भी प्रकार अधिक सग्रह न करे। संग्रह ही विग्रह की जड है, विषमता का जनक है।

गुणव्रत :

गुणव्रत का भाव है, जो पाँच अणुव्रत हैं, उनके गुणो की वृद्धि करने वाले व्रत। अहिंसा, सत्य आदि की साधना को अधिक सशक्त बनाना इनका ध्येय है।

(६) दिशापरिमाणव्रत—अपनी शक्ति के अनुसार पूर्व-पश्चिम आदि की सीमा निश्चित करना कि उन दिशाओ मे इस सीमा से आगे मैं व्यापार आदि प्रवृत्तिया नही करूगा। यह व्रत अपरिग्रह का पूरक व्रत है। अपरिग्रहव्रत मे धन आदि वस्तुओ की मर्यादा की जाती है। इस व्रत का आराधक दिशाओ की की हुई मर्यादा से बाहर व्यापार-व्यवसाय नही करता।

दिशाओ की मर्यादा न रहने से आज विश्व मे वर्ग-सघर्ष व्यापारिक-प्रतियोगिता, बेकारी, युद्ध का वातावरण बना हुआ है। यदि भारतवासी अपने व्यापार-व्यवसाय व वस्तुओं के लिए क्षेत्र सीमा बाध लें तो विदेशो पर निर्भरता की मनोवृत्ति कम होगी और देश को उत्पादन की दृष्टि से स्वावलम्बी बना सकेंगे।

दिशापरिमाणव्रत वाला तो अपनी क्षेत्र सीमा रखता ही है और उसके बाहर क्रय विक्रय नही करता, किन्तु साधारण जन भी दिशापरिमाण कर लें तो बहुत-से सघर्षों व तस्करीकृत्य आदि से सहज ही बच सकते हैं। इस व्रत का उद्देश्य सतोष और शांति युक्त जीवन बिताने की ओर प्रेरित करना है।

इस व्रत के पाच अतिचार निम्न हैं—

(१) ऊची दिशा, (२) नीची दिशा, (३) तिर्यक् दिशा म जाने की सीमा का उल्लघन करना, (४) क्षेत्र की सीमा का बढाना तथा (५) अपनी सीमा मर्यादा को भूल जाना। इन बातो से व्रत म दोष आता है। अत सतत् सावधानी बरतनी चाहिए।

(७) उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रत—अपरिग्रहव्रत और दिशापरिमाणव्रत से धन सपत्ति क्षेत्र की सीमा निश्चित कर ली, लेकिन उसके बाद भी भोगोपभोग की इच्छाओ पर नियत्रण नही रखा गया, तो भी सुख प्राप्त नही हो सकता है। अतएव भोगोपभोग सामग्रियो को और भी सीमित व नियत्रित करने के लिए व्रत उपयोगी है। इस व्रत मे उपभोग यानी एक बार भोगी जाए, ऐसी वस्तु—भोजन, पेय आदि पदार्थ और परिभोग यानी बार बार भोगी जा सके, ऐसी वस्तु—वस्त्र, आभूषण आदि पदार्थ—इन दोनो प्रकार के पदार्थों का परिमाण किया जाता है।

इस व्रत के दो प्रकार हैं—एक भोजन, वस्त्र आदि सम्बन्धी और दूसरा कर्म-सम्बन्धी। उपभोग परिभोग की वस्तुओ की मर्यादा का बाध लेना, भोजन, वस्त्रादि सम्बन्धी उपभोग-परिभोग-परिमाणव्रत कहलाता है और इन उपभोग परिभोग की वस्तुओ की प्राप्ति के लिए जो उद्योग धन्धे करने पडे, उनका प्रमाण व प्रकार निश्चित करना कर्म-सम्बन्धी उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रत है। इनके लिए यह भी समझ लेना चाहिए कि तामसिक पदार्थों, भोजन आदि का और आजीविका के हिंसक व्यापारो का तो पहले ही त्याग हो जाता है। इस व्रत मे जिन कार्य व व्यापार मे अधिक हिंसा और अधर्म होने की सभावना हो, उनका त्याग कर कम हिंसा और अधर्म वाली वस्तुओ का भी परिमाण (सीमा) बाध दिया जाता है।

इस व्रत का पालन करने से अहिंसा आदि व्रतो का निर्दोष रीति से पालन किया जा सकता है। इस व्रत के पाच अतिचार ये हैं—

१ सचित्त आहार—किसी प्रकार की भी वनस्पति आदि सचेतन पदार्थ का आहार करना।

२. **सचित्तसंबद्ध-आहार**—कठिन बीज या गुठली आदि सचेतन पदार्थ से युक्त बेर, आम आदि पके फल खाना।

३. **सचित्तसंमिश्र-आहार**—तिल, खसखस आदि सचित वस्तुओ मे मिश्रित लड्डू आदि खाना या चीटी आदि से मिश्रित वस्तु खाना।

४. **अभिषव-आहार**—किसी प्रकार के एक मादक द्रव्य का अथवा विविध विविध द्रव्यों के मिश्रण से उत्पन्न मद्य आदि का सेवन करना।

५. **दुष्पक्व-आहार**—अधपके या ठीक न पके हुए को खाना।

(८) **अनर्थदण्डविरमणव्रत**—यह श्रावक धर्म का आठवा व्रत है। इसका पालन करने वाला सावद्य (हिंसायुक्त) व्यापारो से और अधिक निवृत्ति लेता है। अपने जीवन-निर्वाह के लिए होने वाले सावद्य व्यापारो के सिवाय अन्य सभी अधर्म व्यापारो व निरर्थक वस्तुओ के संग्रह से निवृत्ति लेना, अनर्थदण्डविरमणव्रत है।

अनर्थ का मतलब है—निरर्थक, अनावश्यक और दण्ड का अर्थ है हिंसा। अनावश्यक हिंसा से बचना इस व्रत का लक्ष्य है।

अनर्थदण्ड के चार प्रकार है—(१) अपध्यान, (२) प्रमादयुक्त आचरण, (३) हिंसादान और (४) पापोपदेश।

अशुभ चिन्तन-मनन करना अपध्यान है। प्रिय वस्तु के वियोग और अनिष्ट वस्तु के सयोग होने पर शोक करना, सयोग-वियोग के लिए सदैव संकल्प-विकल्पो मे लीन रहना, शत्रु के नाश व उसका अनिष्ट करने की चिन्ता मे डूबे रहना आदि अपध्यान कहलाता है। अपध्यान करने से दुर्गति की प्राप्ति होती है।

प्रमाद भयंकर पाप है। प्रमाद पतन की निशानी है। शास्त्रो मे प्रमाद के पाप को हिंसा के के समान माना है।

प्रमाद के कारणो का सकेत करते हुए शास्त्रो मे कहा है—मद्य (नशा, मद्यपान), इन्द्रियो के विषय (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द), कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), निद्रा और विकथाओ का कहना-सुनना। इनमे अनुरक्त जीव प्रमादयुक्त होता है और ये सब कारण प्रमाद को बढाने वाले है।

हिंसादान यह तीसरा अनर्थदण्ड है। जिसके द्वारा किसी की हिंसा हो सकती है, ऐसे अस्त्र-शस्त्र व अन्य साधन देना अथवा किसी के हिंसक कृत्य मे सहायता देना हिंसादान कहलाता है।

पापोपदेश—जिस उपदेश से पापकर्म मे प्रवृत्ति होती हो, पापकर्म मे सलाह या स्वीकृति देना, दूसरे को दुर्व्यसनो मे फसाने की आदत डालना आदि सब पापोपदेश माना जाता है। अनर्थदण्ड का त्यागी इन सब हिंसाकारक कार्यों और कारण से निवृत्ति ले लेता है।

इस व्रत के पाच अतिचार ये है—

१. **कन्दर्प**—अधिक हसी-मजाक करना।

२ कौत्कुच्य—शरीर से भांड की तरह कुचेष्टा करना

३ मौखर्य—निरर्थक बकवास करना ।

४ सयुक्ताधिकरण—अनावश्यक हिंसक साधनो का संग्रह करना ।

५ उपभोग परिभोगातिरिक्त—भोगोपभोग के अनावश्यक साधनो का संग्रह करना ।

शिक्षाव्रत

शिक्षा व्रत का अर्थ है श्रावक के लिए उपदेश एवं उद्बोधन देने वाले व्रत । इनसे व्रतो का विकास व विस्तार होता है ।

(९) **सामायिकव्रत**—मन की चचल वृत्तियो को शान्त करने, स्थिर करने के लिए सामायिक द्वारा शिक्षा मिलती है । सामायिक का अर्थ है समभाव' । सम, अर्थात् समता और आय, अर्थात् लाभ जिस साधना से समभाव की प्राप्ति हो । उसे सामायिक कहते हैं । भगवान् महावीर ने कहा है—

जिसकी आत्मा सयम, नियम एवं तप म तल्लीन है, उसी को सच्ची सामायिक होती है ।

सामायिक साधना आत्मा की खुराक है । व्रतो को बलवान् बनाने वाला रसायन (टानिक) है ।

इस व्रत के पाच अतिचार निम्न हैं—

(१) मन, (२) वचन, (३) काया को चचल बनाना, (४) सामायिक की समय मर्यादा को भूल जाना, (५) सामायिक के काल और क्रियासाधना का सम्यक् पालन न करना ।

साधक का इन अतिचारो का परिहार करना चाहिए ।

(१०) **देशावकाशिकव्रत**—इस व्रत मे छठे दिशापरिमाणव्रत और सातवें उपभोग परिभोग परिमाणव्रत के लिए जो जीवनपर्यन्त के लिए क्षेत्र की सीमा व पदार्थों के उपभोग की मर्यादा की थी, उनमे सवर (सयम) की वृद्धि के लिए प्रतिदिन के लिए कमी करने का लक्ष्य रहता है । प्रतिदिन के लिए मर्यादा करने से भोगोपभोग की वृत्तियो को सयमित करने का अभ्यास किया जाता है । इस व्रत का पालन करने वाला प्रतिदिन की हुई मर्यादा से बाहर न तो स्वय गमन करता है और न दूसरे को भेजता है । बाहर से लाई हुई वस्तु का उपयोग नहीं करता है । यहा तक कि अपने आपको सयमित कर लेता है कि शब्द आदि भी जोर से नहीं बोलता, जो सीमामर्यादा से बाहर जाकर किसी को अपनी ओर आकर्षित कर सकें ।

जीवन की सभी प्रवृत्तियो मे महारम्भ का त्याग कर जीवन की आवश्यकताए घटाकर जीवन को पवित्र बनाना इस व्रत का आशय है । यह व्रत दैनिक सवर बढ़ाता है तथा जीवन को अधिकाधिक सयम-साधना के लिए अभ्यस्त बनाता है । इस व्रत के पाच अतिचार इस प्रकार हैं—

(१) सीमा के बाहर से किसी वस्तु को मगाना, (२) बाहर किसी वस्तु को भेजना, (३) जिस देश मे स्वय न जाने का नियम लिया हो, वहाँ शब्द सकेत से अपना काम करते रहना, (४) सीमा से बाहर देश म कई वस्तु-सकेत आदि भेजकर उसी के सहारे काम करना, तथा (५) मर्यादा के बाहरी देश मे वस्तुएँ भेजकर काम करना ।

(११) **पौषधव्रत**—पौपधव्रत का अर्थ है पोपना, तृप्त करना। हम प्रतिदिन भोजन से तो अपने शरीर को तृप्त वनाते है लेकिन आत्मा को भूखा रखते है। लेकिन इस व्रत मे शरीर को भूखा रखकर आत्मा को तृप्त किया जाता है। आत्म-चिन्तन मे समय व्यतीत करना और आत्म-निरीक्षण कर आत्मभाव मे रमण करना पौपधव्रत है।

इस व्रत के पालक को भौतिक आपत्तियां, भय आदि भी आत्मभाव से विचलित नहीं कर सकते है और वह अखण्ड शान्ति का अनुभव करता है।

पौपधव्रतधारी की एक दिन-रात की चर्या श्रमणधर्म का अभ्यास कराने वाला सोपान-जैसा है।

पौषधव्रत के पांच अतिचार :

पौपधव्रत प्रायः उपवास के साथ ही किया जाता है। उपवास करके एकान्त स्थान मे जाकर सांसारिक वृत्तियो का त्याग कर चौवीस घण्टे या कम-अधिक समय के लिए साधु की तरह जीवन-चर्या करना इस व्रत की विधि है। इस व्रत के पांच अतिचार हैं, जैसे—

(१) पौपध योग्य स्थान आदि का भली प्रकार निरीक्षण न करना, (२) पौपध योग्य शैय्या आदि का सम्यक् अवलोकन न करना, (३) मल-मूत्र त्यागने के स्थान का निरीक्षण न करना, (४) अयोग्य स्थान पर मलमूत्र त्यागना तथा (५) पौपधोपवासव्रत की मर्यादाओ के क्षेत्र मे कही खामी करना।

(१२) **अतिथिसंविभागव्रत**—दान देना श्रावक के प्रतिदिन के कार्यों मे से एक है। जिसकी पूर्ति यह व्रत करता है। इस व्रत मे संयमी सुपात्र को शुद्ध आहार आदि वस्तुओ को दान करने का विधान है। संयमी पुरुपो को आवश्यक वस्तुओ का दान करने से उनके पवित्र जीवन का अनुमोदन और उनके धर्माचरण मे सहयोग होता है, इससे दान देने वाले का जीवन भी विकसित होता है। अपने न्यायोपार्जित धन का सुपात्र के लिए सविभाग करना—देना इस व्रत का उद्देश्य है। अपने लिए तो सभी प्रकार के साधन जुटाये जाते हैं, किन्तु उन साधनो मे से दूसरो के लिये उपयोग में देने की शिक्षा इस व्रत से मिलती है।

दान देने मे धनी या निर्धन का कोई भेद नही है। रुपया-पैसा ही धन नही है, किन्तु जिसके पास बुद्धि है, वह शारीरिक शक्ति है, औपधि है, वे भी विद्यादान, सेवाकार्य, औपधिदान, वस्त्रदान, भयभीत को अभयदान दे सकते हैं।

सुपात्र दान के तीन प्रकार माने गये है—

(१) उत्कृष्ट सुपात्रदान, (२) मध्यम सुपात्रदान, (३) जघन्य सुपात्रदान। संयमी पुरुपो को दान देना उत्कृष्ट सुपात्रदान है। स्वधर्मी बन्धुओ को दान देना मध्यम सुपात्र दान है। समकिती, दीन-दुखियो को अनुकम्पा भाव से सहायता देना जघन्य सुपात्रदान है। ये तीनों सुपात्रदान कहे जाते हैं। प्रसङ्गानुसार श्रावक को तीनो दानो का अवसर सहर्ष स्वीकार करना चाहिए।

जो धन का उपयोग भोग-विलास मे करता है और दान नही देता, लक्ष्मी उसके लिए भार-स्वरूप हो जाती है। विलास में लगाया गया धन मनुष्य को डुबो देता है, जबकि सत्कार्य में व्यय किया

गया धन मनुष्य को भवसागर से तिराता है। अतः गृहस्थ को यथावसर दान देने के लिए तत्पर रहना चाहिए। अतिथिसंविभागव्रत के पांच अतिचार—

(१) निर्दोष (अचित्त) आहार आदि का सचित्त वस्तु में डालकर रखना।

(२) सचित्त वस्तु से ढककर रखना।

(३) समय पर दान न देना, असमय में दान के लिए कहना।

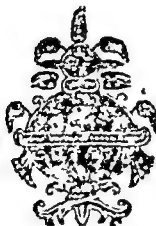
(४) दान देने की भावना से अपनी वस्तु को पराई बता देना।

(५) ईर्ष्या व अहंकार की भावना से दान देना। देखा-देखी, प्रशंसा के लिए भी देना व्रत का दोष है।

श्रावकधर्म की उपयोगिता

उक्त बारहव्रतरूप श्रावकधर्म इतना महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक मानव यदि परिवार के बीच रह कर इसका पालन करने लगे तो वह अपने जीवन को सुखी बना सकता है और कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र व निज-जीवन में सुख शांति रूप हो सकता है। व्रतों के पालन के लिए जरूरी है—शल्यरहितता। कपट, प्रदर्शन की भावना, अहंकार आदि मन के शल्य हैं। इन शल्यों से रहित होना ही व्रती बनने की भूमिका है। कहा है—'निःशल्यो व्रती'।

व्रतों का पालन जीवन को शुद्ध और सरल बनाने के लिए है। व्रत बन्धन नहीं, किन्तु शक्तिसंचय के कारण हैं। व्रतों से जीवनशक्ति केन्द्रित होती है और उसके विकास का द्वार खुलता है।



१० | भक्ति

पं० चैनसुखदास

भक्ति शब्द का अर्थ :

भक्ति का अर्थ है—भाव की विशुद्धि से युक्त अनुराग। जिस अनुराग मे भाव की निर्मलता नही होती वह अनुराग (प्रेम) भक्ति नही कहला सकता। सांसारिक अनुराग मे वासना होती है इसलिए उसे भक्ति का रूप नही दिया जा सकता। परमात्मा, सन्त या शास्त्र आदि में होने वाले विशुद्ध प्रेम को ही भक्ति कहा जा सकता है। जिसकी भक्ति की जाती है उसमे पहले पूज्य बुद्धि उत्पन्न होती है। उसका कारण है अपने इष्ट देवता आदि के वे गुण जिन्हे भक्त प्राप्त करना चाहता है।

भक्ति का लक्ष्य :

जैन भक्ति का लक्ष्य वैयक्तिक अर्थात् ऐहिक स्वार्थ नही है, अपितु आत्मशुद्धि है। आत्मा जब परमात्मा बनना चाहती है तब उसका प्रारम्भिक प्रयत्न भक्ति के रूप मे ही होता है। भक्ति आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए एक सरल एव पकड सकने योग्य मार्ग है। खासकर गृहस्थ के लिये यह मार्ग विशेष रूप से उपादेय है। भक्ति शुभोपयोग का कारण है और शुभोपयोग से पुण्यबंध होता है। यदि भक्ति मे फलासक्ति न हो और वह पूर्णतया निष्काम हो तो अन्त मे मनुष्य को शुद्धोपयोग की ओर आकृष्ट करने का कारण बन सकती है, जो मुक्ति का साक्षात् कारण है।

जैन धर्म : गुण का उपासक :

जैन धर्म व्यक्ति का उपासक नही अपितु गुण का उपासक है। यह व्यक्ति की उपासना का समर्थन तो करता है पर उसका कारण भी व्यक्ति के गुण ही हैं। व्यक्ति स्वयं मे कुछ नही है, उसकी सारी महत्ता का कारण उसके गुण हैं और गुणो की उपासना का प्रयोजन भी गुणो की प्राप्ति है। गुणो के लिये ही भक्त, उपासक गुणवान् उपास्य को अपना आदर्श मानता है और जिस विधि से स्वय उपास्य ने गुण प्राप्त किये उसी विधि से उस मार्ग को अपनाकर भक्त भी उपास्य के गुणो को प्राप्त करना चाहता है। यही भक्ति का वास्तविक ध्येय है। इस सम्बन्ध मे निम्नांकित प्राचीन उल्लेख बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है—

मोक्षमार्गस्य नेतार, भेतार कर्मभूभृताम्,
ज्ञातार विश्वतत्वाना, वन्दे तद्गुणलब्धये।

अर्थात् मैं मोक्ष के नेता, कर्मरूपी पर्वता के भेता और विश्व तत्त्वो के ज्ञाता को उसके गुणो की प्राप्ति के लिये वदना करता हू । यहा किसी खास व्यक्ति को प्रणाम नही है अपितु उन गुणो को धारण करने वाले व्यक्तियो को प्रणाम है, चाहे वह कोई भी क्यो न हो । एक श्वेताम्बराचार्य भी यही कहते हैं —

भवबीजाकुरजलदा , रागाद्या क्षयमुपागता यस्य,
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।

भव बीजाकुर के लिये मेघ के समान, रागादिक सपूण दोष जिसके नष्ट हो गये हैं उस मेरा प्रणाम है फिर चाहे वह ब्रह्मा हो या विष्णु अथवा महादेव हो या जिन ।

सुप्रसिद्ध तार्किक आचाय अकलकदेव भी गुणोपासना के सम्बन्ध म यही कहते हैं—

यो विश्व वेदवेद्य , जननजलनिधेर्भगिन पारदृश्वा
पौर्वापर्याऽविरुद्ध , वचनमनुपम निष्कलक यदीयम् ।
त वन्देसाधुवद्य निखिलगुण निधि ध्वस्तदोषद्विषन्त,
बुद्ध वा वर्द्ध मान शतदलनिलय केशव वा शिव वा ।

जिसने जानने योग्य सब कुछ जान लिया है, जो जन्म रूपी समुद्र की तरगो के पार पहुच गया है, जिसके वचन दोष रहित, अनुपम और पूर्वा पर विरोध रहित हैं, जिसने अपने सारे दोषो का विध्वस कर दिया है और इसीलिए जो सपूण गुणो का भडार बन गया है तथा इसी हेतु से जो सतो द्वारा वन्दनीय है मैं उसकी वदना करता हू । चाहे वह कोई भी हो, वर्द्ध मान हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो अथवा महादेव हो ।

ये सब उदाहरण हमे यह बतलाते हैं कि भक्ति क स्थान गुण हैं, व्यक्ति नही । इसलिए जैन-दशन भक्ति का आधार गुणो को मानता है । यदि परमात्मा की भक्ति करने से कोई परमात्मा नही बन सकता तो फिर उसकी भक्ति का प्रयोजन ही क्या है ? इस सम्बन्ध मे आचाय मानतु ग ने ठीक ही कहा है—

नात्यद्भुत भुवनभूषण ! भूतनाथ,
भूतगु णभु वि भवन्तमभिष्टुवन्त ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा,
भूत्याश्रित य इह नात्मसम करोति ।

अर्थात् हे जगत के भूषण, हे जगत् के जीवो के नाथ ! आपके यथाथ गुणो के द्वारा आपका स्तवन करते हुए भक्त यदि आपके समान हो जाय तो हमे कोई अधिक आश्चय नही है । ऐसा तो होना ही चाहिये क्योकि स्वामी का यह कतव्य है कि वह अपने आश्रित भक्त को अपने समान बना ले । अथवा उस मालिक से लाभ ही क्या है जो अपने आश्रित को वभव स अपने समान नहीं बना लेता ।

किन्तु यहा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जब परमात्मा रागद्वेष स विहीन है, तब उसकी भक्ति से लाभ ही क्या है ? राग न होने क कारण वह अपने किसी भी भक्त पर अनुग्रह नही करेगा

और न द्वेष होने से किसी दुष्ट का निग्रह करने के लिये ही प्रेरित होगा क्योंकि अनुग्रह और निग्रह मे प्रवृत्ति तो राग-द्वेष की प्रेरणा से ही होती है। जो शिष्टो पर अनुग्रह और दुष्टों पर निग्रह करता है उसमें राग या द्वेष का अस्तित्व जरूर होता है किन्तु जैन इस प्रकार के किसी ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नही करते, इस प्रश्न का उत्तर जैन स्रोतो मे जो दिया गया है वह बडा ही मनोग्राही, तर्क-संगत एवं आकर्षक है। प्रख्यात तार्किक आचार्य समन्तभद्र इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अपने 'स्वयंभू स्तोत्र' मे वासुपूज्य तीर्थंकर का स्तवन करते हुए कहते हैं—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाद विवान्तवैरे,
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः, पुनातु चेतो दुरितां जनेभ्यः।

हे नाथ! आप तो वीतराग हैं। आपको अपनी पूजा से कोई प्रयोजन नही है। आप न अपनी पूजा करने वालों से खुश होते हैं और न निन्दा करने वालो से नाखुश, क्योकि आपने तो वैर का पूरी तरह वमन कर दिया है तो भी यह निश्चित है कि आपके पवित्र गुणो का स्मरण हमारे चित्त को पापरूप कलंक से हटा कर पवित्र वना देता है। इसका आशय है कि परमात्मा स्वयं यद्यपि कुछ भी नहीं करता फिर भी उसके निमित्त से आत्मा से जो शुभोपयोग उत्पन्न हो जाता है उसी से उसके पाप का क्षय और पुण्य की उत्पत्ति हो जाती है।

महाकवि धनजंय इसी का समर्थन करते हुए अपने 'विषापहार' नामक स्तोत्र मे क्या ही मनोग्राही वाणी में कहते हैं—

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि, त्वयि स्वभावाद् विमुखश्च दुःखम्,
सदावदातद्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि।

हे भगवन्! तुम तो निर्मल दर्पण की तरह स्वच्छ हो। स्वच्छता तुम्हारा स्वभाव है। जो तुम्हें अपने निष्कपट भाव से देखता है वह सुख पाता है और विमुख होकर बुरे भावो से तुम्हे देखता है वह दुःख पाता है। ठीक ही है, दर्पण मे कोई अपना मुंह सीधा करके देखता है तो उसे उसका मुंह सीधा दिखता है और जो अपना मुंह टेढ़ा करके देखता है उसे टेढ़ा दिखता है। किन्तु दर्पण किसी का मुंह न सीधा करता है और न टेढ़ा। इसी प्रकार राग-द्वेष रहित परमात्मा स्वयं न किसी को सुख देते हैं और न दुःख। वह तो प्रकृतिस्थ है।

भक्त के आत्मोद्धार और भगवान् की भक्ति मे निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध हैं। यद्यपि जैन-दर्शन मानता है कि भक्ति साक्षात् मुक्ति का कारण नही है, उससे 'दासोहम्' की भावना नष्ट होती है, तो भी भक्ति का महत्त्व कम नही होता। वह मनुष्य के सामने परमात्मा का आदर्श उपस्थित करती है। यद्यपि उस आदर्श की प्राप्ति रत्नत्रय से होती हैं, भक्ति से कभी नही, किन्तु साधना की प्रथम भूमिका मे भक्ति का बहुत बड़ा उपयोग है। इसका अर्थ यह है कि मन जब उपास्य की ओर आकृष्ट होता है तब वह उसके मार्ग का अनुसरण करना भी अपना कर्तव्य समझता है। वह असत् प्रवृत्तियों से हटता है और सत् प्रवृत्तियो को अपनाता है। अदया से दया की ओर, अक्षमा से क्षमा की ओर तथा संक्षेप मे अधर्म से धर्म की ओर बढ़ता है। यदि भक्ति मे पाखण्ड न हो, किसी प्रकार का प्रदर्शन न हो और वह मानव मन को अपने यथार्थ रूप से छूने लगे तो भक्ति उसको मुक्ति की ओर ले जा सकती है। यही कारण है कि अनेक जैन कवियो ने भक्ति को इतना अधिक महत्त्व दे दिया है कि उसे पढकर आश्चर्य हुए बिना नही रहता।

भक्ति तक को पसन्द नही करती, वह तो श्रद्धाप्रसूत है। पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि भक्ति मे विवेक नही होता ऐसा हो तो वह भक्ति ही नही है। ज्ञानी और अज्ञानी की भक्ति मे जो महान् अन्तर जैनाचार्यों ने बतलाया है उसका कारण विवेक का सद्भाव और असद्भाव ही तो है। विवेक सहित भक्ति ही मनुष्य को अमरत्व की ओर ले जाती है। जो साधक श्रमणत्व की ऊची भूमिका मे नही जा सकता उसके लिए भक्ति सबल है। मुक्ति मार्ग मे पाथेय है और साधक के लिए एक सहारा है। इसलिए महाकवि वादिराज ने अपने 'एकीभाव स्तोत्र' मे कहा है—

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते, सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधिसुखावचिका कु चिकेयम्।
शक्योद्घाट भवति हि कथ मुक्तिकामस्य पु सो,
मुक्तिद्वार परिदृढमहामोहमुद्रा कपाटम्।

अर्थात् शुद्ध ज्ञान और पवित्र चरित्र होने पर भी यदि असीम सुख देने वाली तुम्हारी भक्ति रूपी कु चिका न हो तो जिसके महामोह रूपी ताला लगा हुआ है ऐसा मुक्तिद्वार, मुक्ति की इच्छा रखने वाले के लिये कैसे खुल सकता है? यहा कवि ने भक्ति की तुलना म शुद्ध ज्ञान और पवित्र चारित्र को भी उतना महत्त्व नही दिया है। यह भक्ति की पराकाष्ठा है।

भक्ति का फल

जैनाचार्यों ने भक्ति को एक निष्काम कर्म माना है। यदि उसे लक्ष्य कर मनुष्य मे फलासक्ति उत्पन्न हो जाय तो भक्ति बिल्कुल व्यर्थ है। जैन शास्त्रो मे निदान (फलाकाक्षा) को धार्मिक जीवन म एक प्रकार का शल्य (काटा) बतलाया गया है। भक्त के सामने सदा मुक्ति का आदर्श उपस्थित रहता है। वह उससे कभी भटकता नही। यदि भटकता है तो उसे सच्चा भक्त नहीं कह सकते। भक्ति का सच्चा फल वह यही चाहता है कि जब तक मुक्ति की प्राप्ति न हो तब तक प्रत्येक मानव जन्म मे उसे भगवद्भक्ति मिलती रहे। इसी आशय को स्पष्ट करते हुए 'द्विसधान काव्य' के कर्ता महाकवि धनजय कहते हैं—

इति स्तुति देव विधाय दैन्याद्, वर न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि,
छाया तरु सश्रयत् स्वत् स्यात्, कश्छायया याचितयाऽऽत्मलाभ।
अथास्ति दित्सा यदिवोपरोध, त्वय्येव सक्तां दिश भक्ति बुद्धि
करिष्यते देव तथा कृपा मे, को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरी।

हे देव! इस प्रकार आपकी स्तुति कर मैं आप से उसका कोई वर नहीं मागता, क्योकि किसी से भी कुछ मांगना तो एक प्रकार की दीनता है। सच तो यह है कि आप उपेक्षक (उदासीन) हैं। आप मे न द्वेष है और न राग। राग बिना कोई किसी की आकाक्षा पूरी करने के लिए कम प्रवृत्त हो सकता है? तीसरी बात यह है कि छाया वाले वृक्ष के नीचे बैठकर फिर उस वृक्ष से छाया की याचना करना तो बिल्कुल व्यर्थ है, क्योकि वृक्ष के नीचे बैठने वाले को तो वह स्वत ही प्राप्त हो जाती है।

'कल्याण मंदिर स्तोत्र' के कर्ता महाविद्वान कुमुदचन्द्र भी इस सबध म यही बात कहते हैं —

यद्यस्ति नाथ भवदघ्रिसरोतहाणाम्, भक्तेः फल किमपि संतत संचितायाः,
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्यभूयाः स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेपि ।

हे शरण्य ! आपके चरण कमलो की सतत् सचिता भक्ति का यदि कोई फल हो तो वह यही होना चाहिये कि इस जन्म और अगले जन्म मे आप ही मेरे स्वामी हो, क्योंकि आपके अतिरिक्त मेरा कोई भी शरण नही हो सकता ।

किन्तु जैसा कि पहले कहा है, मनुष्य का चरम लक्ष्य मुक्ति है । इसलिए कोई भी भक्त जब तक मुक्ति नही मिले तव तक ही इस फलाकाक्षा का औचित्य समझता है । इसलिए भगवान् की पूजा के अंत मे जैन मदिरो मे जो शान्तिपाठ वोला जाता है, उसमे इस अभिप्राय को अत्यन्त स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त किया गया है :—

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वयेलीनम्,
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावत् यावन्निर्वाणसंप्राप्ति ।

हे भगवन् ! जव तक निर्वाण की प्राप्ति न हो तब तक तुम्हारे चरण मेरे हृदय मे लीन रहे, और मेरा हृदय तुम्हारे चरणो में लीन रहे, इन उद्धरणों से यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि जैन भक्ति का उद्देश्य परमात्मत्व की ओर वढ़ना है। किसी भी प्रकार का लौकिक स्वार्थ उसका लक्ष्य नही है । जिसके जीवन मे भक्ति की महत्ता अकित हो जाती है उसकी दुनिया के क्षणभगुर पदार्थो में आस्था नही होती और न उसके मन मे किसी प्रकार के वैयक्तिक स्वार्थ की ही आकाक्षा होती है । वास्तविक भक्त वह है जिसकी दुनिया के क्षणभगुर सुखो मे आस्था नही होती । जिसको इस प्रकार की आस्था, आसक्ति अथवा आकाक्षा होती है वह कभी परमात्मत्व की ओर नही बढ सकता, भक्त हृदय अहिसक होता है इसलिए उसका कोई शत्रु भी नही होता है वह अपनी भक्ति के बीच मे इस प्रकार की आकाक्षाये भी नही लाता जो द्वेपमूलक एव हृदय को विकृत करने वाली हो । जैन दृष्टि से वे स्तोत्र अत्यन्त नीच स्तर के ही समझे जाने चाहिये जो मनुष्य को हिसा एव विकार की ओर प्रेरित करने वाले हो ।

हा, जैन भक्ति एवं पूजा के प्रकरणो मे भक्ति के फलस्वरूप ऐसी मांगे जरूर उपलब्ध होती है जो वैयक्तिक नही अपितु सार्वजनिक है, फिर चाहे वे लौकिक ही क्यो न हो । भगवान् की उपासना के वाद जैन उपासना गृहो मे शाति पाठ वोला जाता है उसमे भक्त कहता है :—

क्षेमं सर्वप्रजाना प्रभवतु वलवान् धार्मिको भूमिपालः,
काले काले च सम्यग् विलसतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ।
दुर्भिक्ष चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके,
जैनेन्द्रं धर्मचक्र प्रभवतु सततं सर्वसौख्य-प्रदायि ।

हे भगवान् ! सारी प्रजा का कल्याण हो । शासक वलवान् और धर्मात्मा हो । समय-समय पर (आवश्यकतानुसार) पानी बरसे । रोग नष्ट हो जावे । कही न चोरी हो और न महामारी फैले और सारे सुखो को देने वाला भगवान् जिनेन्द्र का धर्मचक्र शक्तिशाली हो ।

इस प्रकार का एक उल्लेख और भी सुनिये :—

सपूजकाना प्रतिपालकानाम्, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम्,
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञ, करोतु शाति भगवान् जिनेन्द्र ।

जो भगवान् के भक्त हैं, जो दीनहीनो के सहायक हैं, जो यतियो मे श्रेष्ठ हैं, जो तपोधन हैं उन सबको तथा देश, राष्ट्र, नगर और राजा को भगवान् जिनेन्द्र शान्ति प्रदान करें।

ये सब उल्लेख स्पष्ट यह बतलाते हैं कि जैनो के वाङ्मय का लक्ष्य ग्रात्मशोधन के साथ-साथ लोकोपकार की भावना भी है। उसका दृष्टिकोण सकुचित नही अपितु उदार, विशाल एव व्यापक है। इसमे वसुधैवकुटुम्बकम् की उदात्त तथा प्राजल भावना ग्रोतप्रोत है। इससे मानव को जो प्रेरणा मिलती है उससे उसकी पशुता निकल कर मानवता निखर जाती है।

मूर्तिपूजा ग्रौर भक्ति

श्वेताम्बर जैनो के स्थानकवासी ग्रौर तेरापथी एव दिगम्बर जैनो का तारणपथी सम्प्रदाय —यद्यपि मूर्ति पूजा को महत्त्व नहीं देते, फिर भी वे भक्ति का समर्थन करते हैं। यद्यपि मूर्ति पूजा ग्रौर भक्ति का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है तथापि ये दोनों चीजें एक नहीं हैं। किन्ही दो पदार्थों मे निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध बनाना व्यक्तिगत प्रश्न है। भक्ति के लिए भी कोई मूर्ति पूजा को अवलम्बन मानता है ग्रौर कोई नही मानता है। जो सम्प्रदाय मूर्ति या प्रतिमा को अवलम्बन नहीं मानते, वे भी भगवान् की भक्ति करते हैं। भक्ति तो मनुष्य की मानसिक वृत्ति है। वह मूर्ति रूप ग्रालबन के बिना निरालबन भी हो सकती है। वास्तव मे परमात्मा या भगवान् ही ग्रालबन हैं। उपास्य मे तो कोई भेद है नहीं, भले ही उनकी मूर्ति बनाई जाये या न बनाई जाये। बिना मूर्ति के भी परमात्मा या महात्माग्रो के गुणो मे अनुराग उत्पन्न कर उसमे पूजनीयता की ग्रास्था स्थापित की जा सकती है। भक्ति का रहस्य भी यही है। जैन धर्म मे जो भक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है उसे जैनों के सभी सम्प्रदाय एक मत से स्वीकार करते हैं।



११ | योग

मुनि सुशीलकुमार

योग का अर्थ :

योग का प्रसिद्ध अर्थ समाधि है अथवा संयोग। समाधि योग का साध्य है और संयोग साधन। ध्याता का ध्येय के साथ संयोग—तदाकार हो जाना ही योग है, अतः चित्त-वृत्तियो का निरोध भी योग कहा जाता है। इन्हे ध्यान और समाधि भी कहा जा सकता है, क्योकि ध्यानयोग में मन की एकाग्रता का सम्पादन करना और समाधि मे मन की सुस्थिरता प्राप्त करना ही योग की सिद्धि है।

जैनागमो में विशिष्ट अर्थ :

किन्तु जैनागमों मे मन, वचन तथा काया के व्यापारो को भी योग कहा गया है।[1] आत्म-प्रदेशो के साथ—कर्मपरमाणुओ का सम्बद्ध होना ही बंध कहलाता है, बध मे मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, और योग ही कारण है।[2] विशेपकर आत्मा की शुभाशुभ प्रवृत्ति मे मन, वचन तथा काया-व्यापार की नितान्त आवश्यकता रहती है। इसीलिए इन्हे आस्रवद्वार भी कहा जाता है। यद्यपि वीर्यान्तिरकर्म के क्षयोपशम मे आत्मप्रदेशो का परिस्पन्दन-कम्पन-व्यापार ही वास्तव मे योग है, किन्तु यह आत्म-परिस्पन्दन मन, वचन तथा काया के आश्रित हैं, अतः इन्हे ही योग कहा जाता है।

मनोयोग :

मन, शरीर और इन्द्रियो का शासक है, वाणी अन्तःस्थ भावनाओ की अभिव्यञ्जना का माध्यम है और शरीर क्रियाशक्ति का केन्द्र है, शरीर की अपेक्षा वाणी में और वाणी की अपेक्षा असंख्य गुण-शक्ति मन मे है।

जैनागम मे मन को यथार्थ, अयथार्थ, उभय और अनुभय के रूप मे चार भागो मे बाटा है।

१—ठाणांग, स्थान ३।

२—समवायांग, समवाय ५,

मन की सारी दौड धूप इसी चतुष्पथ मे समाप्त हो जाती है। यद्यपि मनोदण्ड के नाते स्थूल रूप से छ दोषो से मन अभिभूत हो जाता है जसा कि—

१ विषाद, २ निर्दयतापूर्ण विचार ३ व्यथ कल्पना-जाल, ४ इधर-उधर मन को भटकाना, ५ अपवित्र विचार, ६ द्वेष या अनिष्ट चिंतन आदि।

इनसे विपरीत मन को प्रशस्त भाव पवित्र विचार, विश्वहित तथा आत्मबोध की ओर लगाना ही मनोयोग है।

वचन योग

वचन योग भी सत्यवाणी, असत्यवाणी सत्यासत्य और अनुभयरूप वाणी के भेद से चार प्रकार का होता है। वचन भी अप्रशस्त भाव मे छ बुराई कर बैठता है—

१ असत्य भाषण २ निन्दा, चुगली, ३ कटु गाली, शाप देना, ४ अपनी बडाई हाकना, ५ व्यथ की बातें करना, ६ शास्त्रो के सम्बन्ध मे मिथ्याप्ररूपणा करना।

इन्ही से विपरीत प्रशस्त वचन का अथ है—'हितमित्त पथ्य, सुखद, कल्याणकर वाणी बोलना।

काय योग

काया का व्यापार बहुत विस्तृत है। जैनधम मे इस शरीर को औदारिक शरीर बताया गया है। औदारिक, आहारक, वैक्रिय और कामण काय-योग के साथ जो आत्म परिस्पन्दन होता है, उसे काय-योग कहा जाता है।

और सामान्यत काय योग को भी प्रशस्त और अप्रशस्त रूप से विभक्त किया गया है, जसे कायादण्ड के नाते—

१ पीडा पहुचाना, २ व्यभिचार करना, ३ वस्तु चुराना, ४ अकड कर चलना, ५ व्यथ की चेष्टाएँ करना, ६ असावधानी से चलना, अयत्ना करना आदि कायदण्ड हैं, और इन्ही के विपरीत पीडा न पहुचाना, ब्रह्मचय पालन करना, और सयत रहना आदि, काया के शुभ व्यापार (प्रशस्त काय योग) हैं।

मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग, तथा हठयोग की तरह जनधम में भी योग का समाधि के रूप म ग्रहण किया गया है किन्तु जैनधम निरोध प्रधान ही योग नही है, अपितु वह चिन्तन प्रधान योग को मानता है। जैनधम के योग का स्पष्ट मन्तव्य यह है कि अकुशल मन का निरोध और कुशल मन की उदीरणा [1] और लौकिक योग मे मनालय का ही आदश श्रेष्ठ माना गया है। इसीलिए आचाय हरिभद्र सूरि ने योग के पाँच प्रकार बतलाए हैं—और योग को निर्वाण प्राप्ति का श्रेष्ठतम माग प्रतिपादित किया है, एव १ अध्यात्म योग, २ भावना योग ३ ध्यान योग, ४ समता योग, व ५ वृत्ति सक्षय योग, को ही योग का सोपान क्रम निश्चित किया गया है। भावना, ध्यान तथा समता का तो वणन पृथक

१—अकुसल मण निरोहो वा, कुसल मन उदीरणं वा—भगवती शतक २५, उ० ७, पा० ७।

पृथक् यथा स्थान मे हुआ है, संभव है आध्यात्म और वृत्ति संक्षय के अर्थ मे कुछ भ्रांति रह जाए अतः जैनधर्म के अनुसार अध्यात्म का अर्थ तत्त्वचिन्तन करना है, जो औचित्य, वृक्षसमवेतत्त्व, आगमानुसारित्व तथा मैत्री, करुणा, प्रमुदित और उपेक्षा-भावना से युक्त होना चाहिए।

वृत्ति संक्षय का अर्थ आत्मा मे शरीर मन के सम्बन्ध मे उत्पन्न होने वाली विकल्प रूप तथा चेष्टारूप वृत्तियो का अपुनर्भाव से व आत्यन्तिक रूप से समूल नाश हो जाना ही किया गया है।[1] पतञ्जलि योग के अनुसार इन्हे सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि के रूप मे तुलनात्मक भाषा मे प्रतिपादित किया जा सकता है।

जैनधर्म मे अष्टांग योग :

जैनधर्म मे भी योग के अष्टांगो का वर्णन प्राप्त होता है, यद्यपि जैनागमो में चित्तगत मल का नाश और आत्मगत ज्ञान की प्राप्ति को ही योग का मुख्य ध्येय बताया गया है, किन्तु योग के अष्टांगो का बहुत ही मौलिक रूप मे वर्णन किया गया है। महर्षि पतञ्जलि ने अष्टांगो के ये नाम बताये हैं—

१. यम, २ नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार ६. धारणा, ७. ध्यान, ८ समाधि।

जैन धर्म के अनुसार इन्ही अष्टांगो को इस प्रकार प्रतिपादित किया है, जैसे कि—

१. महाव्रत (यम), २. ३२ योग सग्रह (नियम), ३. कायक्लेश (आसन), ४ भावप्राणायाम (प्राणायाम), ५. प्रतिसंलीनता (प्रत्याहार), ६ धारणा (धारणा), ७. ध्यान (ध्यान), ८. समाधि (समाधि)।

१ महाव्रत पाँच है, अहिंसादि।

२ योग सग्रह ३२ हैं जैसे—

१ पापो की आलोचना, २. किसी की आलोचना दूसरे को नही कहना, ३. कष्ट मे धर्म दृढता, ४. स्वालम्बी तप करना, ५. शिक्षा-ग्रहण, और आसेवन शिक्षा का पालन। ६. शरीर की निष्प्रतिक्रमता, ७. मान, बडाई न चाह कर, अज्ञात तप, ८. अलोभ, ९. तितिक्षासहन, १०. सरलता, ११ पवित्रता, १२. सम्यग्दृष्टि, १३ समाधिस्थ होना, १४. सदाचारी १५. विनयी, १६. धैर्यवान् १७. सवेगयुक्त, १८. अमायी, १९. सदनुष्ठान, २०. संवरयुक्त, २१. स्वदोषो का निरोध, २२. कामविषयादि से विरक्त, २३. मूल गुणो का शुद्ध पालन, २४. उत्तर गुणो का शुद्ध पालन, २५. व्युत्सर्ग करना, २६ अप्रमादी, २७ क्षण-क्षण मे समाचारी का ध्यान, २८. ध्यान, संवरयुक्त करना, २९. मृत्युतुल्य कष्ट मे भी अचल, ३०. सगत्याग, ३१. प्रायश्चित्त करना, ३२. मरण समय आराधक बनना।

३ काय-क्लेश मे अनेक प्रकार के आसनो का वर्णन किया गया है, जैसे कि—वीरासन, कमलासन, उत्कटिकासन, गोदोहासन, सुखासन, कायोत्सर्ग आदि।[2]

४ प्राणायाम के विषय मे जैनागमो मे अधिक नही कहा गया; क्योकि आसन, मुद्रा, प्राणायाम, और षट्कर्म पर हठयोग मे अधिक बल दिया गया है; किन्तु जैनधर्म मे तो उत्साह, निश्चय,

१—योग बिन्दु ३६६। २—औपपा० सू०।

धैय, सन्तोष, तत्त्वदर्शन और लोकत्याग के द्वारा और प्राण-वृत्ति के निरोध से भाव प्राणायाम को ही महत्त्व दिया गया है ।

५ प्रत्याहार और प्रतिसलीनता के अर्थ में कोई अन्तर नहीं है । इन्द्रिय, कषाय, योग और विविक्त शयनासन प्रतिसलीनता का अर्थ है, अप्रशस्त से हटाकर प्रशस्त की ओर प्रयाण करना ।[1]

६ धारणा[2]–चित्त की एकाग्रता के किसी एक स्थान पर अथवा किसी एक पुद्गल पर दृष्टि लगा देना धारणा है ।

७ ध्यान के विषय में जैनागमों में बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन उपलब्ध होता है । जैनधर्म में ध्यान की परिभाषा यह की गई है जैसे कि स्थिर दीपशिखा के समान निश्चल और अन्य विषय के संचार से रहित केवल एक ही विषय का धारावाही प्रशस्त सूक्ष्म बोध को ध्यान योग कहा गया है[3], क्योंकि शक्ति का अभ्युदय संकल्प की दृढ़ता और तीव्रता में निहित है, और संकल्प की दृढ़ता एवं तीव्रता मानसिक वृत्तियों के अनियन्त्रित प्रसार अवरोध में । जब मनोवृत्तियाँ अपने उद्दाम उच्छृङ्खल प्रवाह को रोक कर एक ओर बहने लगती हैं, चिन्तन धारा लक्ष्य की ओर ही तीव्रता के साथ दौड़ना प्रारम्भ कर देती है उस समय का चित्तवृत्तियों का एक ही ओर का वह प्रवहन जैनशास्त्रों में ध्यान कहलाता है ।

ध्यान के अवलम्बन से मानसिक शक्ति पुंजीभूत हो जाती है और आत्मा में अद्भुत सामर्थ्य प्रकट होता है । इसी कारण जैनधर्म की साधना में ध्यान को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, और अशेष कर्मक्षय का साक्षात् कारण माना गया है ।

ध्यान के प्रकार

हमारी मानसिक वृत्तियों के प्रवाह के सामने एक चत्वर है, चतुर्मुखी मार्ग है । उस चार प्रकार का ध्यान[4] कहा जाता है और उनका संक्षिप्त आशय इस प्रकार है—

१ आर्त्त ध्यान—शोक, चिन्ता से उद्भूत वृत्तिप्रवाह ।

२ रौद्रध्यान—पाप जनक दुष्ट भावों से उत्पन्न होने वाला दुःसंकल्प ।

३ धर्मध्यान—आत्मस्वरूप दर्शन की उत्कण्ठामयी चित्तवृत्ति ।

४ शुक्लध्यान—शुद्ध आत्मदर्शन से जनित सर्वथा विशुद्ध आत्मवृत्ति ।[5]

यही वह चत्वर है, जिस पर सृष्टि के समग्र प्राणियों की चित्त वृत्तियाँ दौड़ रही हैं ।

(१) आर्त्त ध्यान—अरति, शोक, संताप और चिन्ता हमारे मन पर जो प्रभुत्व जमा लेती है, वह आर्त्तध्यान है । उसके प्रधान कारण चार हैं—[6]

१–औपपा० सू०, भगवती श०, २५, उ० ७, पा० ७ ।

२–भगवती सूत्र, शतक ३, उ० २ 'एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठि' ।

३–निवायसरणप्पदीवज्झाणमिव निप्पकंप, प्रश्न० संवरद्वार, ५ ।

४–भगवती सूत्र श० २५, उ० ७, पा० १३,

५–भगवती सूत्र, श० २५, उ० ७, पा० १३

६–भगवती सूत्र, शतक २५, उ० ७ पाठ १३, तत्त्वार्थ सूत्र, अ० ६ सूत्र ३ ।

१. अनिष्ट वस्तु का सयोग और उसके वियोग—पृथक्करण के लिए होने वाली चिन्ता ।

२. इष्ट वस्तु के प्राप्त होने पर उसका सम्बन्ध-विच्छेद न होने की चिन्ता और सम्बन्ध विच्छेद होने पर उसकी पुनः प्राप्ति की कामना ।

३. व्याधिजन्य दुःख और पीड़ा से विमुक्ति पाने की चिन्ता ।

४. भविष्य के कमनीय स्वप्नो की पूर्ति की चिन्ता ।

चार कारणो से उत्पन्न होने के कारण आर्त ध्यान के प्रकार भी चार ही माने गये हैं ।

(२) रौद्रध्यान—[१] रुद्र का अर्थ है क्रूर आशय । क्रूर आशय से उत्पन्न होने वाली चित्त-वृत्ति की एकाग्रता रौद्रध्यान है । रौद्र ध्यान के चार कारण हैं, जिनसे यह ध्यान भी चार प्रकार का माना गया है:—[२]

१ हिंसानुवंधी—प्राणिहिंसा का क्रूर सकल्प ।

२. मृपानुवधी—असत्य परपीडा-जनक या सत्य का अपलाप करने वाली वाणी का प्रयोग करना या ऐसा सकल्प करना ।

३. चौर्यानुवंधी—अदत्तादान की चित्तवृत्ति ।

४. संरक्षणानुवंधी—परिग्रह की रक्षा मे सलग्न मनोवृत्ति ।

ये दोनों ध्यान त्याज्य है ।

(३) धर्मध्यान—[३]धार्मिक कार्यो मे चित्त की एकाग्रता होना धर्मध्यान है । यह भी चार प्रकार का है । (उत्तराध्ययन अ० ३०, गा० ३५ ।)

१. आज्ञाविचय—वीतराग कथित तत्त्वो मे अचल आस्था रखकर उनका यथोचित विश्लेषण करने की मानसिक एकाग्रता ।

२. अपायविचय—राग, द्वेष, मोह, आदि आन्तरिक विकारो को नष्ट करने की और इन विकारों से पीड़ित प्राणियो को कल्याण पथ की ओर आकृष्ट करने की मानसिक चिन्तना ।

३. विपाकविचय—सुख मे हर्ष, दुःख मे विषाद की भावना त्याग कर कर्म-फल का चिन्तन करना ।

४. संस्थानविचय—लोक की पुरुषाकार आकृति का, जगत् के स्वरूप का एवं द्रव्य-गुण पर्याय का चिन्तन करना ।

धर्मध्यान के चार विधेय रूप हैं, जिनके द्वारा मानसिक वृत्तियो को सत्त्वस्वरूपमय वनाया जा सकता है, जैसे—

१—भगवती सूत्र, शतक २५, उ० ७, सूत्र ८०३ ।

२—,, ,, ,, ,, ,,

३—,, ,, ,, ,, ,,

१ पिण्डस्थध्यान—पिण्ड अर्थात् शरीर में स्थित आत्मा पर मनोवृत्ति को केन्द्रित करना पिण्डस्थ ध्यान है।

२ पदस्थध्यान—नमस्कार-महामन्त्र के पाँच पदों पर चित्तवृत्ति एकाग्र करना पदस्थ ध्यान है।

३ रूपस्थ-ध्यान—सम्पूर्ण बाह्य और आन्तरिक महिमा से सुशोभित अर्हन्त भगवान् का अवलम्बन लेकर उन पर चित्तवृत्ति केन्द्रित कर लेना, रूपस्थ ध्यान है।

४ रूपातीत ध्यान—निरंजन, निर्विकार, अमूर्त, अशरीर, सिद्ध परमात्मा का ध्यान करना रूपातीत ध्यान है।

यहाँ अत्यन्त संक्षेप में धर्म-ध्यान का सूचन किया गया है। पिण्डस्थ ध्यान से आरम्भ करके रूपातीत ध्यान का अभ्यास करने से मन की चंचलता मिट जाती है और आत्मा विशुद्ध होती है।

(४) शुक्लध्यान

धर्मध्यान आत्मा की विकास अवस्था का द्योतक है। इस ध्यान से भी कषाय का पूर्णतया नाश नहीं होता। धर्मध्यान की स्थिति सातवें गुणस्थान तक ही है। आठवें गुणस्थान से शुक्लध्यान की अवस्था आती है। शुक्लध्यान के प्रयोग से समस्त कषाय निर्मूल हो जाते हैं, कर्माशय हल्का होकर क्रमशः सर्वथा क्षीण हो जाता है। यह सर्वोत्तम ध्यान है, परम समाधि है। इस ध्यान में भी एक प्रकार का तारतम्य होता है, जिसके आधार पर उसके चार भेद किए गए हैं, वे इस प्रकार हैं—

शुक्लध्यान[1] की प्राथमिक अवस्था पृथक्त्व वितर्क सविचार अवस्था कहलाती है। यहाँ वितर्क का अर्थ है 'श्रुत' और विचार का अर्थ पदार्थ, शब्द और योग का संक्रमण होना है। अभिप्राय यह है कि इस ध्यान के प्रयोग में ध्येय वस्तु, उसके वाचक शब्द और मन आदि योगों का परिवर्तन होता रहता है। फिर भी यह सब एकाग्रता आत्मस्थ ही होती है।

इसके पश्चात् जब ध्यान में कुछ अधिक परिपक्वता आती है, तो किसी एक ही वस्तु का ध्यान होने लगता है। पदार्थ, शब्द और योग का संक्रमण रुक जाता है। उस समय का ध्यान एकत्व वितर्क अविचार शुक्लध्यान कहलाता है।[2]

मन, वचन, काय के स्थूल योगों का निरोध कर देने पर सिर्फ श्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया ही शेष रह जाती है, उस समय का ध्यान सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति, शुक्लध्यान है।[3] इस ध्यान के पश्चात् जब सूक्ष्म क्रिया का भी सर्वथा अभाव हो जाता है, और आत्मप्रदेश सुमेरु की तरह अचल हो जाते हैं, उस समय का सर्वोत्कृष्ट ध्यान 'व्युपरतक्रियानिवर्ति शुक्लध्यान' कहलाता है। इस ध्यान के प्रभाव से अत्यल्प काल में ही पूर्ण सिद्धि—विदेह अवस्था—की प्राप्ति हो जाती है। निर्विकल्प समाधि का यह सर्वोत्कृष्ट रूप है।[4]

१—प्रज्ञापना, पद १, चारित्राय विषय।

२—भगवती सूत्र, शतक २५, उ० ७, सूत्र ८०३।

३—,, ,, ,, ,, ,,

४—प्रज्ञापना, पद १, चारित्राय विषय, स्थानांग, सवृत्ति, स्था० ४, उ० १, सूत्र २४७।

८. समाधि का पूर्ण समावेश शुक्लध्यान के चार भेदों में ही हो जाता है। जैनाचार्यों ने योग का सर्वाङ्गरूप—मित्रा, तारा, वला, दीप्रा, स्थिरा, कान्ता, प्रभा, और परा, इन सप्त दृष्टियों के क्रमिक-विकास में भी प्रतिपादित किया है। जैनधर्म मे योग और उसकी साधना महान् है। तत्त्वचिन्तन और प्रशस्त-भाव से उसकी प्राप्ति होती है। समाधि का शब्दों द्वारा वर्णन करना कठिन है। वह अनुभवजन्य ज्ञान है। हठयोग की साधना में तो उसे रहस्यमय तत्त्व बताया गया है क्योंकि इड़ा व पिंगला नाड़ियां ही शारीरिक चैतन्य का आधार है, ध्यानावस्था में योगी शरीर की सुध-बुध भुलाकर इड़ा व पिंगला को सुषुम्णा में विलय कर देता है। सुषुप्ति अवस्था भी इसे ही कहते है। किन्तु योगी त्राटक द्वारा नेत्र मूंद कर भ्रूमध्य मे टिमकने वाले कृष्ण विन्दु को एकाग्रता से तोड़कर प्रकाश व संगीत का आस्वाद लेता है। ये सब आत्मानुभव की प्राथमिक सीढियाँ है। जैनधर्म समता शब्द द्वारा उसी स्थिति को कायोत्सर्ग कर, भ्रूमध्य मे ध्यानस्थ होकर, समाधि के आनन्द का विधान करता है।



आत्मदोषों की आलोचना करने से पश्चाताप की भट्टी सुलगती है और उस पश्चाताप की भट्टी में सब दोषों को जलाने के बाद साधक परम वीतराग भाव को प्राप्त करता है।

—भगवान् महावीर



आत्मस्वरूप में लगा हुआ चित्त बाह्य विषयों की इच्छा नहीं करता, जैसे दूध में से निकला घी फिर दुग्ध भाव को प्राप्त नहीं होता।

—शंकराचार्य



आत्मा से बाहर मत भटको, अपने ही केन्द्र में सीमित रहो।

—स्वामी रामतीर्थ





१२ | समाधिमरण

•

आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०

मरण कैसा हो ?

ससार में शायद ही कोई ऐसा प्राणी हो जो मरण को नही जानता हो । छोटे से छोटे कीट, पतग से लेकर नरेन्द्र, असुरेन्द्र और देवेन्द्र तक भी इसके प्रभाव से प्रभावित हैं ।

भयकर से भयकर रोग मे फसने वाला असहाय रोगी भी मरना नही चाहता । भले उसे कितना ही रोग, शोक, वियोग या अपमान सहना पडे । फिर भी वह प्राणी यही चाहेगा कि मरू नही । कारण मरण सबसे बडा भय है । कहा भी है—मरण सम नत्थिभय । मरण से बचने के लिये मनुष्य हर सभव उपाय को करने के लिये तैयार रहता है । उसने मृत्यु जय और महामृत्यु जय के भी पाठ कराये, सुसज्जित सेनाओ के बीच अपने को सुरक्षित रक्खा, फिर भी मरण से नही बच पाया । मरण के सामने मत्र बल, तत्र बल, यत्र बल और शस्त्र बल सभी बेकार हैं । कहावत भी है—'काल बेताल की धाक तिहु लोक मे ।' सच है जगत के जीव मात्र मरण का नाम सुनते ही रोमाचित हो जाते हैं ।

किन्तु ज्ञानी कहते हैं—'मृत्योर्बिभेषिकि मूढ ?' मूढ ! मृत्यु से क्यो डरता है ? यह तो पुराना चोला छोडकर नया धारण करना है । इसमे भयभीत होने की क्या बात है । निर्भय और निर्मल भाव से कर्तव्य पालन कर, फिर देख कि मरण भी तेरे लिये मगल महोत्सव बन जायगा ।

अत यह जानना आवश्यक है कि मरण क्या है और वह कितने प्रकार का है ? तथा उत्तम मरण कैसा होना चाहिये ।

जैन शास्त्र कहते हैं कि ससार का कोई भी द्रव्य सर्वथा नष्ट नही होता । अत प्रश्न होता है कि 'मरण' जिसको कि नाश कहते हैं कैसे सगत होगा ? कारण द्रव्य का लक्षण 'उत्पाद', व्यय, ध्रौव्य युक्तसत्' कहा है । उसका कभी नाश नही होता, तब मरण क्या हुआ ? यहा मरण का अर्थ आत्यतिक तिरोभाव या अदर्शन है । जब आयु पूर्ण कर जीव किसी शरीर से अलग होता है माने जीव या प्राणों का शरीर से सर्वथा सबध छूट जाता है उसे मरण कहते हैं ।

यद्यपि आत्मा अजर, अमर और अजन्मा है । वास्तव मे उसका न जन्म है और न मरण, फिर भी ससारावस्था म शरीरधारी जीव का शरीर की अपेक्षा जन्म और मरण कहा जाता है । सक्षेप मे कहना चाहिये कि वर्तमान शरीर को छोडकर जीव का प्रयाण कर जाना ही मरण है ।

जैन शास्त्रो में मरण पर बहुत गंभीर विचार किया गया है। श्रीस्थानांग, श्रीभगवती, श्री उत्तराध्ययन आदि अगोपांग सूत्रो के अतिरिक्त जैनाचार्यो ने मरण पर स्वतंत्र प्रकरण भी लिखे है। मरणविभत्ति, भत्तपच्चक्खाण और समाधिमरण उनमे खास उल्लेख योग्य है।

यह निश्चित है कि संसार में दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थ मात्र एक दिन विलय होने वाले हैं। अचेतन मे जड़ होने से हर्ष, शोक के भाव उत्पन्न नही होते। चेतन होने से जीव को ही हर्ष, शोक होते है। इसलिये यहां इसी के मरण का विचार करना है। आत्मदर्शी महात्माओं ने कहा है कि मरण केवल दुःखदायी ही नही वह सुखप्रद भी होता है।

अज्ञानी और ज्ञानी की दृष्टि से मरण भी बुरा और भला होता है। अज्ञानी पर्यायदृष्टि-प्रधान होने से प्राण-वियोग पर रोता और दुःख करता है, वहां ज्ञानी दिव्यदृष्टि की प्रधानता से धन, जन, प्राण के वियोग मे भी प्रसन्न रहता है, सदा समरस रहता है। ठीक ही कहा है कि अज्ञानी मरण से डरते है, जबकि ज्ञानी उसको सहर्ष गले लगाते हैं। कारण, ज्ञानी समझता है कि मैं तो त्रिकाल सत्य हुं, इस शरीर के पहले भी था, अब भी हूँ और शरीर छूटने पर भी रहूंगा, फिर सुकृताचरण से मैं कृतकृत्य हो चुका हूं, अतः मुझे मरण से घबराने की कोई आवश्यकता नही। कहा भी है— मरणादपि नोद्विजते कृतकृत्योऽस्मीति धर्मांऽस्मा" शास्त्रो मे मरण का विस्तार निम्न रूप से किया है :—

मरण के प्रकार :

भगवती सूत्र मे मरण के ५ प्रकार बतलाए हैं—

(१) आवीचिमरण, (२) अवधिमरण, (३) आत्यन्तिकमरण, (३) बालमरण, (५) पंडितमरण।

प्रथम तीन प्रकार के मरण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव भेद से पांच-पांच प्रकार के बतलाये गये है[1]। प्रति समय आयुकर्म के दलिको का क्षीण होते जाना यह आवीचिमरण है। नरक आदि भव की स्थिति पूर्ण कर जो तत् तत् भवानुबन्धी सामग्री का त्याग किया जाता है वह अवधि-मरण है। और एक बार मरने के बाद फिर उस भव से नही मरना यह आत्यन्तिकमरण है।

फिर स्थानाग सूत्र मे मरण के तीन प्रकार भी बतलाये हैं[2]। जैसे (१) बालमरण, (२) पंडितमरण, (३) बालपडितमरण। विवेकरहित अविरत जीव का मरण बालमरण, तत्त्वज्ञानी संयमी का मरण पंडितमरण और सम्यग्दृष्टिव्रती गृहस्थ का मरण बालपंडितमरण कहलाता है। परिणामों के स्थित, अस्थित और वर्धमान शुभाध्यवसायो से प्रत्येक के तीन-तीन भेद होते है।

बालमरण :

बाल मरण जन्म-मरण की वृद्धि का कारण है। अतएव श्रमण भगवान् श्रीमहावीर ने कहा है कि[3] तपस्वी निग्रन्थो को ऐसे मरण से नही मरना चाहिये। ये मरण निम्न प्रकार हैं-(१) वलय-

---

१. भगवती सूत्र १३ श०, ७ उ०, ४९६ सूत्र
२. स्था० ३ उ० (२२२ सूत्र)
३. स्था० २

मरण, (२) वशातमरण, (३) निदानमरण, (४) तद्भवमरण, (५) गिरिपतन, (६) तरुपतन, (७) जलप्रवेश, (८) अग्निप्रवेश, (९) विषभक्षण, (१०) शस्त्रघात, (११) वेहायस, (१२) गृद्ध-पृष्ठमरण। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) भूख प्यास आदि परिषहो से घबरा कर असयम सेवन करते मरना वलयमरण है। (२) पतग आदि की तरह शब्दादि विषयो के अधीन होकर मरना वशातमरण है, जैसे किसी कामिनी के पीछे कामी का प्राण गवाना, (३) ऋद्धि आदि की प्रार्थना करके सम्भूति मुनि की तरह मरना निदानमरण है। (४) जिस भव मे है उसी जन्म (योनी) का आयु बाध कर मरना तद्भव-मरण है। (५) पर्वत से गिर के मरना। (६) वृक्ष से लटक कर मरना। (७) जल मे डूब कर मरना। (८) आग मे सती आदि की तरह जीते जल मरना, (९) विष खाकर मरना। (१०) शस्त्र से आत्महत्या कर लेना। (११) फासी लेकर मरना। (१२) पशु के कलेवर मे गीध आदि का भक्ष्य बन कर मरना।

उपर्युक्त १२ प्रकार के मरण से मरने वाला जीव नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवगति के अनन्त-अनन्त जन्म करता हुआ चतुर्गति रूप ससार म परिभ्रमण करता है। इस प्रकार यह 'बाल-मरण' ससार को बढाने वाला है। भगवान् महावीर कहते हैं—'कौटुम्बिक झगडो से तग आकर यश, धन हानि, जन हानि और मान हानि की व्याकुलता मे मरना दु ख को घटना नही बढाना है'—यह पडितमरण नही बालमरण' है।

माता, पिता, पुत्र या पति, पत्नी आदि प्रियजन के वियोग मे मर जाना अथवा मृत पति के साथ जीते जल जाना भी उत्तम मरण नही है। बहुत सी बार मनुष्य क्रोध, मोह और अज्ञान के वश भी प्राण गमा देता है। व्यापार, धधे मे हानि उठाकर लेनदारो को देने की अक्षमता से सैकडो ने मान प्रतिष्ठा की आग म प्राणो की बलि कर दी और करते जाते हैं। अर्थाभाव म पारिवारिक भरण पोषण और कर्जदारी की चिता से भी कई हलाहल पी कर मरण की शरण ले लेते हैं। घर के लडाई झगडो से तग आकर और दु ख मे ऊब कर भी कई ललनाए तेल छिडक कर जल मरती हैं। नौकरी नहीं मिलने से कई शिक्षित युवक और परीक्षा में फेल होकर कई विद्यार्थी प्रतिवर्ष जीवन समाप्त करते सुने जाते हैं। इस प्रकार इच्छा से मरने वालों की सख्या कम नही है। वास्तव म ये सब अकाम मरण या बालमरण हैं। इस प्रकार चिन्ता, शोक या अभाव म भुलस कर कई मानव जीवन-लीला समाप्त करते हैं। सचमुच यह देश और समाज के लिये कलक की बात है। समाज और राष्ट्रनायको को इसका उचित हल निकालना चाहिए। ऐसे अविवेकपूर्वक अकाममरण से मरना दु ख घटाने वाला नहीं होता। इससे तत्काल ऐसा प्रतीत होता है कि मर जाने से मैं अपनी आँखो से यह दु ख नही देख पाऊगा, किन्तु उसे ध्यान रखना चाहिये कि अकाममरण से वर्तमान का दु ख लाखों गुणा होकर फिर सामने आ सकता है। जब कि आज का विचारपूर्ण समय मन भी नही रह पाता। सच बात यह है कि दु ख भागने से नही छूटता, वह तो शान्तिपूर्वक भोगने से छूटता है।

पडितमरण

'भगवती सूत्र' के द्वितीय शतक, प्रथम उद्देश्य म प्रभु ने खदक सन्यासी को मरण का स्वरूप बतलाते हुए कहा है कि—पडितमरण दो प्रकार का है—पादोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान। नीहारिम और अनीहारिम रूप से पादोपगमन दो प्रकार का है। यह प्रतिकर्म रहित ही होता है। भक्तप्रत्याख्यान नीहारिम और अनीहारिम दोनो प्रकार का सप्रतिकर्म होता है—अर्थात् इसमे शरीर

की हलन-चलन रूप चेष्टाएं तथा सार-संभाल होती है। इन दोनों प्रकार के पंडितमरण से मरने वाला जीव अनन्त-अनन्त नरक, तिर्यंच आदि के जन्म-मरण से आत्मा को विमुक्त करता यावत् संसार को पार करता है। भक्त प्रत्याख्यान आदि का स्वरूप एवं भेद निम्न दिये जाते हैं—

भक्त प्रत्याख्यान—जिसमे तीन या चार प्रकार के आहारमात्र का त्याग होता है और शरीर का हलन-चलन वन्द नही किया जाता उसे भक्तप्रत्याख्यान कहते हैं।

इंगितमरण—इसमे सर्वथा खाने-पीने का त्याग किया जाता और मर्यादित क्षेत्र के अतिरिक्त शरीर से गमनागमन आदि चेष्टा भी नही की जाती है। पादोपगमन में यह विशेपता है कि वह शरीर की कोई चेष्टा नही करता, न करवट ही वदलता है। दूसरा भले कोई उसे इधर से उधर बैठा दे या करवट वदल दे, किन्तु स्वय वह कोई चेष्टा नहीं करता, वृक्ष की तरह अडोल पड़ा रहता है।

भक्त प्रत्याख्यान मे जलाहार लिया जाता है और वह सागारी भी होता है, किन्तु इंगितमरण और पादोपगमन मे कोई आगार नही होता, न कोई जलाहार ही ग्रहण किया जाता है। भक्त-प्रत्याख्यान सर्वदा सबके लिये सुलभ है, परन्तु इगितमरण एवं पादोपगमन प्रथम ३ संहनन मे और विशिष्ट श्रुतधारी को ही होते हैं। व्यवहार भाष्य मे कहा है कि सभी आर्या और सब प्रथम संहननहीन जीव तथा सब देशविरति भक्त प्रत्याख्यान को ही प्राप्त करते है।

पादोपगमन वाले को कभी पूर्वभव के वैर से कोई देव पातालकलशो मे संहरण करदे तो वह उपसर्ग को सम्यक् प्रकार से सहन करता है। उस समय ऐसा सोचता है कि जैसे तलवार म्यान से भिन्न है, ऐसे जीव शरीर से भिन्न है, अतः उपसर्ग से मेरी कोई हानि नही होती। जैसे मेरु पूर्वादि चारो दिशा की प्रचण्ड वायु से कम्पित नही होता, वैसे पादोपगमनवाला उपसर्ग मे भी ध्यान से चलायमान नही होता है।

इनका आदर्श होता है उग्रतम कष्ट के समय भी अविचल रहकर मरण का आलिंगन करना। देखिये, कृष्ण वासुदेव के लघु भाई गजसुकुमार ने मरणान्त कष्ट के समय भी कैसी अखण्ड शांति कायम रक्खी। भगवान् नेमनाथ की अनुमति लेकर जब महामुनि महाकाल श्मशान में ध्यान लगाकर देहभान को भुलाकर आत्मध्यान मे तल्लीन हो गये। उस समय सोमल ब्राह्मण उधर से निकला और महामुनि को देखते ही क्रोध से जल उठा। उसने गीली मिट्टी लेकर मुनि के सिर पर वांधी तथा अंगार रख दिये। सिर जलने लगा और नसें खिचने लगी, फिर भी मुनिजी के मन मे उफ तक नहीं, क्योकि उन्होने क्रोध, मान, माया, लोभ के आंतर विकारों को जला दिया एव प्राणीमात्र को आत्मसम समझ लिया था। अंतर में एक ही आवाज गूंजती थी कि—"मैं एक और शाश्वत हूं। मेरा स्वरूप ज्ञान, दर्शन है। धन, दारा और परिवार आदि सब वाह्यभाव पर हैं। और वे संयोग संवंध से अपने व पराये होते हैं। वास्तव मे ये मेरे नही ज्ञान, दर्शन रूप उपयोग स्वभाव ही मेरा है। जो न कभी जलता है औ न कभी गलता है।"

"एगो मे सासओ अप्पा, नाणदसणसजुओ।
सेसा मे वहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा॥

अंग अंग के जलने पर भी गजसुकुमाल की प्रसन्नता अविचल रही और उन क्षणो मे ही अखण्ड समाधि के साथ उन्होने सकल कर्म क्षय कर मुक्ति प्राप्त करली।

पण्डितमरण के अधिकार

वे लोग इसके अधिकारी नहीं होते, जिनका जीवन हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि पापों में रचा पचा होता है, जो अजितेंद्रिय होकर अभक्ष्य भक्षण करता और विषय कषाय में रति मानता है। ऐसे असंयमशील प्राणियों का अन्तिम समय में हाहाकार करते प्रयाण होता है, उनको पंडितमरण प्राप्त नहीं होता। अतः यह बालमरण है। क्रोध, लोभ या मोह और अज्ञान के वश जो आत्म-हत्याएं की जाती हैं वे सब भी बालमरण हैं।

अंतिम क्षण तक भौतिक कामना की आकुलता होने से ये अकाममरण मरते हैं। अतः पंडितमरण के अधिकारी नहीं होते।

संयमशील व्रती गृहस्थ या महाव्रतधारी साधु-साध्वी जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के पूर्ण त्यागी और जितेंद्रिय हैं, आरम्भ परिग्रह और विषय-कषाय से मन को मोड़ कर जिन्होंने परमात्मा के चरणों में चित्त लगा दिया एवं ज्ञान के प्रकाश में जड़-चेतन का भेद समझकर तन, धन, परिजन से ममता हटाली है वे ही पंडितमरण के अधिकारी होते हैं। पंडितमरण में केवल विशुद्ध हेतु और प्रसन्नता के साथ देहत्याग किया जाता है, अतः इसे सकाममरण भी कहते हैं। सभी साधु और श्रावक पंडितमरण को प्राप्त नहीं करते, किन्तु पंडितमरण के अधिकारी कुछ विशिष्ट पुरुष ही होते हैं। जैसे कहा भी है—

> न इमं सव्वेसु भिक्खुसु, न इमं सव्वेसुऽगारिसु।
> नाणा सीला अगारत्था, विसम-सीला य भिक्खुणो॥ उ० ५॥

अर्थात् यह मरण सभी भिक्षुओं में नहीं होता, न सब गृहस्थों को होता है। कारण विभिन्न शील स्वभाव के गृहस्थ होते हैं और भिक्षुओं के भी संयमस्थान समान नहीं होते।

देखिये, हजार वर्ष का संयमपालन करके भी कुंडरीक ने चन्द दिनों की भोग भावना में मरण बिगाड़ लिया, परिणामस्वरूप उसको नरक में जाना पड़ा और पुंडरीक ने जीवन का लम्बा समय भोग एवं राग में बिता कर भी अंतिम दिनों की पवित्र साधना से जीवन सुधार लिया और पंडितमरण से मरकर सुगति प्राप्त की। यह पंडितमरण की ही महिमा है।

ज्ञानी कहते हैं—यदि तुम दुःख से ऊब गए हो, सहन की शक्ति खो चुके हो और मरना चाहते हो तो चिन्ता भार में देह को गला कर मरने की अपेक्षा तप-संयम में देह को विवेकपूर्वक गलाओ और ध्यानाग्नि में दुःख को जला कर हँसते हँसते मरो, रोते हुए क्यों मरते हो।

पण्डितमरण की विधि

जब समझ लो कि अब शरीर अधिक समय तक टिकने वाला नहीं है अथवा धर्म रक्षा के लिये प्राणों का त्याग करना है तब सर्वप्रथम मन से वैरविरोध भुला कर अन्तरात्मा को स्वच्छ बना लेना चाहिये। फिर तन, मन, धन, परिजनादि बाह्य वस्तुओं से मन मोड़ कर, आत्मस्वरूप में वृत्ति जमा कर, सदा के लिये अकरणीय पापकर्म और चतुर्विध आहार का त्याग कर लेना चाहिये।

अर्हन्त सिद्ध की साक्षी में यह निश्चय कर लो कि संसार के दृश्य पदार्थ सब नश्वर और भारभूत हैं। इनको अपना समझ कर ही चिरकाल से मैं भटक रहा हूँ। यह मेरा अज्ञान है। वास्तव

में तन एवं धन की हानि से मेरी कोई हानि नहीं होती। मैं सदा शुद्ध, बुद्ध एवं समरस हूं। आग में जलना, पानी मे गलना और रोग से सड़ना मेरा स्वभाव नही है। सड़ना गलना, गलना आदि देह के धर्म है, अतः इस परमप्रिय देह का भी आज मै स्नेह छोड़ता हूं। मेरा न किसी पर राग है, न किसी पर द्वेष।

इसी प्रकार के मरण से अंबड़ संन्यासी के ७०० शिष्यो ने भी सुगति प्राप्त की थी। कंपिलपुर से पुरिमताल की ओर जाते समय अब उनके पास का पानी समाप्त हो गया और तृषा के मारे होठ-कंठ सूखने लगे, तब उन्होने उस दुःखद स्थिति में निम्न प्रकार का पंडितमरण स्वीकार किया था।

पहले गंगा के किनारे बालू को देखा, साफ किया और पूर्वाभिमुख पर्यंकासन से बैठ कर दोनो हाथ जोड़े हुए इस प्रकार बोले—"नमस्कार हो सिद्धि प्राप्त जिनवर को और नमस्कार हो सिद्धिगति पाने वाले श्रमण भगवान् महावीर को, फिर नमस्कार हो हमारे धर्माचार्य धर्मगुरु अम्बड़ परिव्राजक को। हमने पहले धर्मगुरु अम्बड़ के पास स्थूल हिंसा, झूठ अदत्त, सपूर्ण मैथुन और परिग्रह का त्याग किया है। अब श्रमण भगवान् महावीर के पास आजीवन सब प्रकार के हिंसा, झूठ, अदत्त, कुशील और परिग्रह का त्याग करते हैं। हम सर्वथा क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद अरतिरति, मायामृषा और मिथ्यादर्शनशल्यरूप अकरणीय पापकर्मों का आजीवन त्याग करते है। जीवन भर के लिये सब प्रकार का अनशनादि चतुर्विध आहार भी छोड़ते है और यह भी शरीर जो आज तक इष्ट, कात एवं अत्यन्त प्रेमपात्र रहा जिसको सदा भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, दंश-मच्छर, चोरव्याल और रोग-शोक से बचाते रहे, उस प्रिय तन की भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ हम ममता छोड़ते है। अब कुछ भी हो, इस ओर ध्यान नही देगे।" यह पंडितमरण ग्रहण करने की विधि है।

इस प्रकार वे सलेखनापूर्वक आमरण अनशन मे काल की अपेक्षा नही करते हुए विचरते रहे। अन्तिम समय अनशनपूर्वक समाधिभाव मे मरण पा कर ब्रह्मलोक के अधिकारी बने। उन्होने अपना मरण सुधार लिया।

आत्महत्या और समाधिमरण :

बहुत से लोग यह समझा करते है कि संथारा या भत्तपच्चक्खाण से मरना, यह आत्महत्या है। उनको समझना चाहिये कि आत्महत्या और समाधिमरण मे बड़ा अन्तर है। आत्महत्या में निष्कारण शोक या मोहादिवश शरीर नष्ट किया जाता है। उसमे चिंता-शोक की आकुलता या मोह की विकलता होती है, जबकि समाधिमरण मे भय, शोक को भूल कर प्रसन्न मन से सब को मैत्रीभाव से देखते हुए निर्मोह भाव मे देह त्याग किया जाता है। आत्महत्या मे देह का दुरुपयोग है, जबकि समाधिमरण सभी प्रकार के वेगो को शान्त कर स्वस्थ मन से आयुकाल की निकट अन्त में समाप्ति समझ कर किया जाता है।

आत्महत्या किसी कामना को लेकर होती है। उसमे क्रोध, लोभ या शोक, मोह कारण होते है, जबकि समाधिमरण निष्काम होता है। इसमे सभी प्रकार के विकारो को नष्ट कर केवल आत्मशुद्धि का ही लक्ष्य होता है।

समाधिमरण मे ये पाच दूषण माने गये हैं। (१) इस लोक मे तन, धन वैभव आदि सुखो की इच्छा करना, (२) इन्द्रादि पद या स्वर्गीय सुख की आशा करना, (३) अधिक जीने की इच्छा करना, (४) कष्ट से घबरा कर जल्द मरने की इच्छा करना, (५) कामभोग-इन्द्रिय-सुखो की वाछा करना।

समाधिमरण मे वहा कोई कामना नहीं रहती, वहा शरीर को अक्षम समझ कर या शील धर्मादि की रक्षा के लिये अनिवार्य समझ कर पवित्र हेतु से आत्महित के लिय शरीर त्यागा जाता है। अत यह किसी तरह आत्महत्या नहीं कहा जा सकता। यह तो समाधिमरण या पडितमरण है।

मरण-महिमा

मनुष्य चाहे जैसे भी उच्च कुल, जाति या योनि म उत्पन्न हुआ हो, यदि जीवन का सध्या मरण अधकारपूर्ण है तो उसका सारा परिश्रम और साधन-सकलन व्यर्थ है। उसका जन्म दु ख वृद्धि के लिये है। वास्तव मे जीवन शिक्षाकाल है और मरण परीक्षाकाल। जीवन कार्यकाल है और मरण विश्रातिकाल। जन महर्षियो ने कहा है कि—जिसका मरण सुधरा उसका जीवन सुधरा समझो और मरण बिगडा तो जीवन बिगडा समझो, क्योंकि मरण की सध्या पार करके ही प्राणी जीवन के नवप्रभात की ओर जाता है। शास्त्र म भी कहा है—

अतोमुहुत्तम्मि गए, अतोमुहुत्तम्मि सेसए चेव।
लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छन्ति परलोय॥ उ० ३४॥

जिस लेश्या म जीव काल करता है अतमुहूर्त शेष रहने पर जीव परलोक म भी उसी लेश्यास्थान मे जाकर उत्पन्न होता ह। अत आत्महितैषियो क लिय मरण सुधार की ओर लक्ष्य देना अत्यावश्यक है। शास्त्र कहते हैं कि तनधारी प्राणीमात्र को मरना तो है ही, चाह धैर्यपूर्वक कष्टों को शाति से सह कर मर या कायर की तरह दीन होकर मरे। तन, धन एव परिवार के लिये अकुलात हुए मर या सब स ममता हटा कर निराकुल भाव म मर। सत्यशील की आराधना करते हुए मर अथवा शीलरहित असत दशा मे मरे। दोनो स्थिति म मरना तो अवश्य है। तब कायर की तरह बिलखत मरन की अपेक्षा सयमशील होकर धैर्य स हसत हुए मरना ही अच्छा है। कहा भी है—

धीरेण वि मरियव्वं, काउरिसेण वि अवस्स मरियव्वं।
दुण्हपि हु मरियव्वे, वर खु धीरत्तणे मरिउ॥ ६४॥
सीलेण वि मरियव्वं निस्सीलेण वि अवस्स मरियव्वं।
दुण्हंपि हु मरियव्वे, वर खु सीलत्तण मरिउ॥ ६५॥ आतु० प०

किसी उर्दू कवि न भी कहा है—

हँस के दुनिया म मरा, कोई कोई रोक मरा।
जिन्दगी पाई मगर, उसने जो कुछ हो के मरा॥

विद्वानों को ऐसे ही मरण म मरना चाहिय। इस प्रकार मरन वाले मर क भी अमरता क भागी होत हैं।

अभ्युद्यत मरणविधि :

विवेकी पुरुष जीवन की अन्तिम घडियो मे पूरी सतर्कता रखते है क्योंकि उस समय की जरासी गलती बने-बनाये काम को बिगाड़ देती है। अत: ज्योंही उन्हे जीवन-यात्रा में लम्बे समय तक शरीर टिकने वाला नही है ऐसा प्रतिभासित होता है, त्योंही बिना विलम्ब वे मरण को शानदार बनाने के लिये कटिबद्ध हो जाते है। तन, धन, परिजन और सम्मान से मन मोड़कर वे एक मात्र आत्मलक्षी हो जाते है। तब पराये गुणापगुण देखने की अपेक्षा उनको आत्मदर्शी होकर अपना निरीक्षण करना ही अधिक प्रिय होता है और जीवन की छोटी-मोटी कोई भी चूक हो उसको बिना संकोच के गीतार्थ के पास आलोचना द्वारा प्रगट करना और यथायोग्य प्रायश्चित से उसकी शुद्धि करना उनका प्रधान लक्ष्य होता है। जैसे सुयोग्य वैद्य भी अपनी चिकित्सा दूसरे से कराता है, वैसे ज्ञानसंपन्न साधक भी अन्य गीतार्थ के सम्मुख अपनी आलोचना करते और आत्म-शुद्धि करते है।

संलेखना :

मरण की तैयारी के लिये शास्त्रो मे पहले संलेखना का विधान है। वह जघन्य ६ मास और उत्कृष्ट १२ वर्ष की होती है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के ३६वें अध्याय मे कहा है कि उत्कृष्ट संलेखना १२ वर्ष की, मध्यम १ वर्ष और जघन्य ६ मास की होती है।

उत्कृष्ट संलेखना मे पहले ४ वर्ष दूध आदि विगई का त्याग किया जाता है और दूसरे चार वर्ष मे उपवास, वेला आदि विचित्र तप किये जाते है। फिर दो वर्ष एकान्तर तप और पारणक मे आयंबिल किया जाता है। ग्यारहवे वर्ष मे ६ महीने का सामान्य तप किया जाता है और ६ महीने विकृष्ट तप किया जाता है। इसमे आयबिल भी परिमित किये जाते है। बारहवे वर्ष मे उपवास आदि के पारणक मे कोटि सहित आयबिल आदि किये जाते है। बीच बीच मे मास और पक्ष के अनशन भी करते है। [अ० ३६/२५२-५६]

'व्यवहार सूत्र' के दशम उद्देश्य के भाष्य मे भी इसका विस्तार से वर्णन मिलता है। वहा प्रथम के चार वर्षो मे विचित्र तप का इच्छानुसार कामगुण पारणा और दूसरे चार वर्षो मे विगइ, त्यागपूर्वक पारणा का उल्लेख है। [भा० ४१२ से ४२१]

मध्यम और जघन्य संलेखना भी ऐसे मास और पक्ष के विभाग से की जाती है। इस प्रकार सलेखना के अनन्तर गुरु या गीतार्थ परीक्षित ही सामान्य रूप मे इस मरण को स्वीकार करते है।

संलेखना द्वारा केवल शरीर को ही क्षीण नही किया जाता, वलिक अन्तर के विकारो को भी क्षीण किया जाता है। जब तक आन्तरिक विकार क्षीण नही होते साधक उत्तम मरण को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिये पहले परीक्षा की जाती थी। मनोनुकूल उत्तम भोजन को पाकर भी जब मरणार्थी उसको ग्रहण नही करता तब तक उसकी अगृध्नुता समझ ली जाती थी। इस पर एक छोटा उदाहरण दिया गया है—

किसी समय एक आचार्य के पास भक्त परीक्षार्थी शिष्य आया और उसने कहा, "मैं भक्त प्रत्याख्यान करना चाहता हू।" तब आचार्य ने पूछा—'तुमने संलेखना की है या नही ?' शिष्य को आचार्य की बात से विचार हुआ। उसने सोचा—मेरा शरीर हड्डी का पंजर सा हो चुका है, लोहू-

मास का कही नाम भी नहीं, फिर गुरुजी पूछते हैं कि मलेखना की या नही ? रोष मे आकर उसने अपनी अगुली तोड डाली और बोला—'महाराज ! देखो रक्त की एक बूद भी नही है, क्या अब भी मलेखना बाकी है ?" गुरुजी ने कहा—"वत्स ! यह तो द्रव्य मलेखना का रूप है जो तेरे शरीर से प्रत्यक्ष दिखता है, किन्तु अभी भाव सलेखना करनी है, कषाय के विकारो को सुखाना है। इसीलिये मैंने पूछा था कि सलेखना की या नही। जाओ, अभी भाव सलेखना करो। फिर भक्त पच्चक्खाण मथारा प्राप्त होगा। [व्य० भा० ४५०]

इस प्रकार द्रव्य-भाव-सलेखनापूर्वक किया गया मरण ही पडितमरण है। मरणान्तिक कष्ट, आघात प्रत्याघात या आतक से निकट भविष्य मे ही देह छूटने वाला हो, वैसी स्थिति मे द्रव्य सलेखना की आवश्यकता नही होती। उसी समय आलोचनापूर्वक आत्मशुद्धि की जाती है और विचार एव आचार की पूर्ण शुद्धि के साथ सवथा पापो के त्याग कर लिये जाते हैं।

न सतसति मरणते, सीलवता बहुस्सुया।

—उत्तराध्ययन ५।२९

शीलवान और बहुश्रुत भिक्षु मृत्यु के क्षणो मे भी सत्रस्त नही होते।

काल अणवकखमाणे विहरइ।

—उपासकदशाग १।७३

आत्मार्थी साधक कष्टो मे जूझता हुआ मृत्यु से अनपेक्ष बन कर रहे।

मरण हेच्च वयति पडिया।

—सूत्रकृताग १।२।३।१

पडित पुरुष ही मृत्यु की दुर्दम सीमा को लाघकर अविनाशी पद को प्राप्त होते हैं।

माराभिसकी मरणा पमुच्चइ।

—आचाराग १।३।१

जो व्यक्ति मृत्यु से सदा सतर्क रहता है, वही उससे मुक्ति पा सकता है।

१३ | नव तत्त्व

आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी

जैन दर्शन में तत्त्व का स्वरूप :

जैनदर्शन मे लोक व्यवस्था का मूल आधार 'तत्त्व' है। कहा है—

भावस्स णत्थि णासो, णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो ।
गुणपज्जएस्सु भावा उप्पाय वयं पकुव्वंति ॥

—पंचास्तिकाय—१५०

किसी भाव यानी सत् का कभी नाश नही होता है और असत् की उत्पत्ति नही होती है। इसीलिए आकाश-कुसुम की तरह जो सर्वथा असत् है, वह तत्त्व नही हो सकता है। इसीलिए जैनदर्शन मे लौकिक व्यवहार मे प्रचलित तत्त्व शब्द के अर्थों को स्वीकार करते हुए भी तत्त्व की विशुद्ध व्याख्या की है—

'सद् दव्वं वा ।' —भगवती ८।९

यानी द्रव्य (तत्त्व) का लक्षण सत् है। यह सत् स्वतः सिद्ध है और नवीन अवस्थाओ की उत्पत्ति एवं पुरानी अवस्थाओ का विनाश होते रहने पर भी अपने स्वभाव का कभी परित्याग नही करता है। वाचक मुख्य उमास्वाति ने सत् की स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहा है—

'उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत् ।' —तत्त्वार्थसूत्र ५।३०

यानी जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनो से युक्त अर्थात् तदात्मक है, उसे सत् कहते हैं। भगवान महावीर की वाणी मे सत् के स्वरूप को इस प्रकार कहेगे—

'उपन्ने इ वा विगमे इ वा धुवे इ वा ।' —स्थानांग १०

उत्पन्न होने वाले, नष्ट होने वाले और ध्रुव रहने वाले को सत् कहते हैं। इसीलिए सत् की न तो आदि है और न अंत है। उसका न तो कभी नाश होता है और न कभी नया उत्पन्न होता है। वह सदैव—भूत, वर्तमान और भविष्य तीनो कालो मे विद्यमान रहता है।

तत्वों की संख्या

तत्व का लक्षण ज्ञात होने पर यह प्रश्न होता है कि जैन दर्शन में 'तत्व' किसे कहा है और उनकी संख्या कितनी है ? इस प्रश्न का उत्तर आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टि से विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न शैली से दिया गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा ही मुख्य तत्व है और आत्मा के बंध सहित अशुद्ध आत्मा और बंधरहित (शुद्ध आत्मा) अथवा संसारी और मुक्त यह दो प्रकार होने से दो भेद हो जाते हैं। आत्मा के इन दो प्रकारों के अतिरिक्त अन्य शेष जड़ पदार्थ हैं। अध्यात्मयोगी आचार्य कुन्दकुन्द ने जड़ पदार्थों को बहिस्तत्व तथा आत्मा के दोनों प्रकारों को क्रमशः अन्तस्तत्व और परमतत्व कहा है।

लेकिन जन-साधारण को जानकारी देने के लिए तत्व के भेद और उनके नामों के लिए निम्नलिखित तीन शैलियां दृष्टिगत होती हैं—

१ पहली शैली के अनुसार तत्व दो हैं—
(i) जीव और (ii) अजीव।

२ दूसरी शैली के अनुसार तत्वों की संख्या सात है—
(i) जीव, (ii) अजीव, (iii) आस्रव (iv) बंध (v) संवर, (vi) निर्जरा और (vii) मोक्ष।

३ तीसरी शैली के अनुसार तत्वों की संख्या नौ है।
(i) जीव, (ii) अजीव, (iii) पुण्य, (iv) पाप (v) आस्रव (vi) बंध (vii) संवर, (viii) निर्जरा, (ix) मोक्ष।

उक्त दो, सात और नौ संख्या कथन की शैली में कोई वास्तविक भेद नहीं है। इनमें मुख्य रूप से जीव, अजीव यह दो तत्व हैं तथा शेष आस्रव आदि जीव व अजीव की पर्याय होने से उन दोनों में अन्य तत्वों का समावेश हो जाता है।

नव तत्वों का वर्गीकरण व लक्षण

उक्त जीवादि सात अथवा नव तत्वों में मुख्य तत्व जीव है अथवा जीव और अजीव। यह दो तत्व तो धर्मी हैं यानी आस्रव आदि अन्य तत्वों के आधार हैं और आस्रव आदि शेष तत्व उनके धर्म हैं।

१ जीव तत्व

नौ तत्वों में सबसे पहला तत्व जीव है। जीव की परिभाषा करते हुए कहा है—

'जीवो उवओग लक्खणो।' —उत्तराध्ययन २८।१०

जीव का लक्षण उपयोग है अर्थात् जिसमें चेतना—उपयोग हो उसे जीव कहते हैं। आगमों में उपयोग के दो भेद किए हैं। साकारोपयोग (ज्ञान) और निराकारोपयोग (दर्शन)। इसलिए

जिसमे ज्ञान और दर्शन रूप उपयोग पाये जाते हैं, वह जीव है। जीव को चेतन इसलिए कहते हैं कि उसमें सुख-दुःख, अनुकूलता, प्रतिकूलता आदि की अनुभूति करने की क्षमता है। 'स्व', 'पर' का ज्ञान और हिताहित का विवेक जीव के सिवाय अन्य पदार्थो मे नही पाया जाता है। जीव द्रव्य की अपेक्षा अनन्त है और प्रत्येक जीव असंख्यप्रदेशी है।

जीव शब्द की शाब्दिक व्याख्या करते हुए आचार्यो ने जीव का लक्षण इस प्रकार कहा है—

'पाणेहि चदुहि जीवदि जीविस्सदि जो हि जीवदो पुव्वं।'

—प्रवचनसार गा० १४७

जो चार प्राणो (इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्‌वास) से जीता है, जीयेगा और पहले भी जीता था उसे जीव कहते हैं।[1] सत्व, भूत, प्राणी, आत्मा आदि भी जीव के एकार्थवाची—पर्यायवाची दूसरे नाम हैं। लेकिन इन सबका साराश यही है कि जिसमे ज्ञान-दर्शनात्मक उपयोग है, वह जीव है।

जीव की पांच जातियां हैं। १. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, और ५. पंचेन्द्रिय। जाति का अर्थ है सामान्य अर्थात् जिस एक शब्द के बोलने से उसके समान गुण-धर्म वाले सभी पदार्थो का ग्रहण हो जाये। जैसे—गाय, भैंस आदि बोलने से समस्त गायों, भैंसों का ग्रहण हो जाता है। वैसे ही एकेन्द्रिय कहने से सभी एक इन्द्रिय वाले जीवो का ग्रहण व ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय आदि पचेन्द्रिय जीवो के बारे मे भी समझ लेना चाहिए।

एकेन्द्रिय जीवो के सिर्फ एक स्पर्शनेन्द्रिय होती है। एकेन्द्रिय जीवो के पाच प्रकार हैं—(i) पृथ्वीकाय, (ii) अप्काय (पानी), (iii) तेजस्काय (अग्नि), (iv) वायुकाय और (v) वनस्पतिकाय। पृथ्वी ही जिनका काय-शरीर हो उन्हे पृथ्वीकाय कहते हैं। इसी प्रकार से अप्काय आदि भी समझ लेना चाहिये।

पृथ्वीकाय आदि पांचो प्रकार के एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं—सूक्ष्म और बादर। जो हमारी आंखो से दिखाई नही दे सकते वे सूक्ष्म हैं, और जो हमें दृष्टिगोचर होते हैं वे बादर कहलाते हैं। हम पृथ्वी, जल आदि का जो रूप देखते हैं वह बादर है। बादर एकेन्द्रिय जीव तो संसार के किसी-किसी भाग मे ही निवास करते हैं लेकिन सूक्ष्म जीवों से तो यह समस्त लोक काजल की डिबिया की तरह खचाखच भरा हुआ है।

द्वीन्द्रिय जीवो के स्पर्शन (शरीर) और रसन (जीभ) ये दो इन्द्रिया होती हैं। जैसे—लट, शंख, जोंक, घुन आदि द्वीन्द्रिय जीव कहलाते हैं।

---

१. ५ इन्द्रिय—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।
३ बल—मनोबल, वचनबल और कायबल, तथा आयु व श्वासोच्छ्‌वास। इस प्रकार से भेद करने पर प्राण के दस भेद होते हैं।

त्रीन्द्रिय जीवो के स्पर्शन, रसन और घ्राण यह तीन इन्द्रिया होती हैं। चींटी, जू, खटमल जूरा आदि जीव त्रीन्द्रिय हैं।

चतुरिन्द्रिय जीवो के स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षु (आंख) यह चार इन्द्रिया होती हैं। मक्खी, मच्छर, टिड्डी, भौंरा, बिच्छू आदि जीव चतुरिन्द्रिय होते हैं।

पचेन्द्रिय जीवो के स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र (कान) ये पाचो इन्द्रिया होती हैं। जैसे—गाय, भैंस, घोडा, हाथी, कबूतर, कौवे आदि।

नारक, मनुष्य और देवों के भी पाच इन्द्रियाँ होती हैं। अत उनका भी पचेन्द्रिय जाति म ग्रहण हो जाता है।

इन एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीवो म से द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के जीव अपने हित के लिए प्रवृत्ति और अहित की निवृत्ति के लिए हलन चलन कर सकते हैं अत उन्ह त्रस और एकेन्द्रिय जीव अपने हिताहित के लिए प्रवृत्ति-निवृत्ति के निमित्त हलन चलन करने मे समर्थ नहीं हैं अत उन्हें स्थावर कहते हैं।

एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के तिर्यंचो क मन नही होने से असज्ञी (अमनस्क) और पचेन्द्रिय तिर्यंचो मे मन सहित वाले सज्ञी कहलाते है। गर्भ मे उत्पन्न होने वाले तिर्यंचो के मन होता है और शेष बिना मन वाले होते हैं।

एकेन्द्रिय जीवो मे सजीवता बतलाने के लिए भगवान् महावीर ने मानव शरीर के साथ तुलना करके वनस्पति को दृष्टान्त रूप मे रखते हुए स्पष्ट बताया है कि 'मनुष्य की तरह वनस्पति—वृक्ष आदि बाल, युवा, वृद्धावस्थाओ का उपभोग करती है। मनुष्य की तरह वृक्षो म भी चेतना शक्ति है तथा सुख दुख, आघात आदि का अनुभव करते हैं। मनुष्य के शरीर मे घाव आदि हो जाने पर वे ठीक हो जाते हैं, वैसे ही वृक्षादि भी छिन्न भिन्न होने पर पुन ठीक हो जाते हैं। वृक्षो को भी मनुष्य की तरह भूख-प्यास का अनुभव होता है। खाद पानी आदि मिलने पर मनुष्य शरीर की तरह वृक्ष भी बढते हैं और न मिलने पर सूख जाते हैं। आयु क्षीण हो जाने पर वृक्ष भी मनुष्य की तरह मर जाते हैं। वनस्पति के लिए जो कथन किया गया है, वही अन्य पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवो के बारे म भी समझना चाहिये।"

—आचाराग १।१।५।४४

२ अजीव तत्त्व

यह जीव के स्वरूप से विपरीत लक्षण वाला है। जीव चेतना वाला है, सुख-दुख की अनुभूति करता है, लेकिन अजीव म चेतना नहीं है उसम सुख दुख की अनुभूति नही होती है। अर्थात् जिसम चेतना न हो उसे अजीव कहते हैं। अजीव को जड, अचेतन भी कहते हैं। ससार मे जितने भी ईंट, चूना चादी, सोना आदि भौतिक तथा धर्मास्तिकाय आदि अभौतिक पदार्थ हैं, वे सब अजीव हैं।

अजीव के भेद :

अजीव के पाच भेद हैं—(i) धर्म, (ii) अधर्म, (iii) आकाश, (iv) काल और (v) पुद्गल।

अजीव के उक्त पाच भेदो मे से धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्त और पुद्गल मूर्त है। आगमो मे अमूर्त के लिए 'अरूपी' और मूर्त के लिए 'रूपी' शब्द का प्रयोग किया गया है। अरूपी उसे कहते हैं जिसमे रूप, रस, गध और स्पर्श न हो, आंखो से दिखाई न दे और जिसमे रूप, रस, गध स्पर्श हो तथा जिसके विभिन्न प्रकार के आकार-प्रकार वन सकें उसे रूपी कहते हैं।

धर्म आदि अजीव के पाच भेदो के लक्षण नीचे लिखे अनुसार है—

धर्म—यह गति सहायक तत्त्व है। जीव और पुद्गल मे गतिशीलता की शक्ति है। जिस प्रकार से मछली को गमन करने मे पानी सहकारी निमित्त है, उसी प्रकार से जीव और पुद्गल द्रव्यो के हलन-चलन, गमन मे सहायक कारण धर्म द्रव्य है।

अधर्म—यह स्थिति सहायक तत्त्व है। इसका स्वभाव धर्म द्रव्य से विपरीत है। अर्थात् जिस प्रकार से धर्म, द्रव्य, जीव और पुद्गल को गतिक्रिया मे सहायक वनता है, उसी प्रकार अधर्म ठहरने की इच्छा रखने वाले जीव और पुद्गलो को पथिक को वृक्ष की छाया की तरह ठहरने मे सहायता देता है।

यह धर्म और अधर्म जीव और पुद्गलो को न तो बलात् चलाते है और न चलने से रोकते है। किन्तु सहकारी निमित्त के रूप मे उनके चलने मे या रुकने मे महायक वन जाते है।

आकाश—जिसमे पदार्थों को अवकाश-आश्रय आधार देने का गुण हो, उसे आकाश कहते हं। विश्व के समस्त पदार्थ आकाश के आधार से ही टिके हुए हैं। आकाश के दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। आकाश के जितने क्षेत्र मे जीवादि द्रव्य रहते हैं उसे लोकाकाश और शेप आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

काल—जो द्रव्यो की नवीन, पुरातन आदि अवस्थाओ के वदलने मे निमित्त रूप से सहायता करता है वह 'काल' है। घड़ी, घटा, मिनट, समय आदि सभी काल की अवस्थायें हैं। वाल, युवा, वृद्ध, नूतन, पुरातन, ज्येष्ठत्व, कनिष्ठत्व आदि लोक व्यवहार काल की सहायता से होता है।

पुद्गल—जिसमे स्पर्श, रस, गध, वर्ण हो उसे पुद्गल कहते हैं। वैज्ञानिक पुद्गल को मैटर (matter), न्याय वैशेपिक दर्शन भौतिक तत्त्व, साख्य दर्शन प्रकृति शब्द से कहते हैं। बौद्धदर्शन मे विज्ञानसतति के लिये पुद्गल शब्द का प्रयोग होता है।

'पुद्गल' यह 'पुद्' और 'गल' इन दो शब्दो से बना है। इसमे पुद् का अर्थ है पूरण और गल का अर्थ है गलन। अर्थात् "पूरणाद् गलनाद् वा पुद्गलः" जिसमे पूरण और गलन होता है उसे पुद्गल कहते हैं। पुद्गल इस पूरण और गलन स्वभाव वाला होने के कारण पिंड रूप हो सकता है

और खड खड होकर इतना सूक्ष्म भी हो जाता है कि जिसका कोई दूसरा टुकडा नही होता। पिंड रूप पुद्गल को स्कन्ध और सूक्ष्मतम अश को परमाणु कहते हैं।

जैनदर्शन के अनुसार जीव आदि काल पर्यन्त छह द्रव्यो के समूह को लोक कहते हैं। यह छह द्रव्य नित्य हैं, अवस्थित हैं और शाश्वत हैं। इनका कभी विनाश नही होता है और अपने अपने गुण, पर्यायों द्वारा उत्पाद, विनाश, रूप से परिणमन करते रहते हैं। इस लोक को न तो किसी ने बनाया है और न कोई इसका विनाश ही कर सकता है।

३-४ पुण्य और पाप तत्त्व

जो आत्मा को शुभ की ओर ले जाता है उसे पुण्य कहते हैं और आत्मा का शुभ से बचाता है अथवा जिससे अनिष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है वह पाप है। यह पुण्य और पाप का शाब्दिक अथ है। यह अर्थ जीव के भावो, परिणामो और विचारो की अपेक्षा से किया गया है। लेकिन यहा पुण्य और पाप को शुभ और अशुभ कर्म परमाणु रूप स अजीव मानकर कथन किया जा रहा है।

इस पर प्रश्न होता है पुण्य और पाप को अजीव रूप मानने का कारण क्या है? जबकि अजीव कम परमाणु जीव के परिणामो द्वारा अपना शुभ अथवा अशुभ रूप मे फल देते हैं। और जीव के शुभ अथवा अशुभ परिणामा के द्वारा ही उनका बध होता है। इसका समाधान यह है कि जीव मे होने वाले शुभ या अशुभ परिणामो को योग-आस्रव के अन्तर्गत रखा गया है कि जीव मन, वचन, काया की अच्छी बुरी प्रवृत्ति द्वारा शुभ अशुभ कर्म पुद्गलो को ग्रहण करता रहता है। यहा तो पुण्य और पाप को अलग तत्त्व मानने मे इतना ही अपेक्षित है कि मन, वचन, काय की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा जो कम पुद्गल जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं और शुभ या अशुभ रूप मे जिनका विपाकोदय होता है। कर्मों की इसी विपाकोदय की दृष्टि को ध्यान मे रखकर वाचक-मुख्य उमास्वाति न (तत्त्वार्थसूत्र ८।२६ मे) सातावेदनीय, सम्यक्त्वमोहनीय, हास्य, रति, पुरुषवेद, शुभ-आयु, शुभनाम और शुभगोत्र—इन कम प्रकृतियो को पुण्य रूप तथा इनके अतिरिक्त शेष कम प्रकृतियो को पाप रूप कहा है।

आत्मा के परिणाम अगणित हैं। इसलिए पुण्य पाप के कारण भी अगणित हैं। फिर भी उनका सक्षेप मे वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

'शुभ पुण्यस्य। अशुभ पापस्य।' —तत्त्वार्थसूत्र ६।३४

शुभ योग (परिणामा) से पुण्य का बध होता है और अशुभ से पाप का। यानी योगप्रवृत्ति शुभ रूप है तो पुण्य का और अशुभ रूप है तो पाप का कारण बनती है और उनसे कर्मपरमाणुओं मे शुभ या अशुभ रूप मे फल देने की शक्ति आयेगी और वे उस रूप मे अपना फल देंगे। इसलिये आत्म-वृत्तियो की विविधता के कारण यद्यपि उनम अनेकता है लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से उनमें से कुछ एक कारणो का यहा सकेत करते हैं—

पुण्य व पाप तत्त्व के भेद

उदय मे आये हुए पुद्गलो को जहा पुण्य कहा गया वही उनके कारणों को भी पुण्य कहा

है। पुण्य के कारण अनेक हैं फिर भी संक्षेप मे उनको अनेक प्रकार से कहा जा सकता है—

अर्हदादौ परा भक्तिः कारुण्यं सर्वजन्तुपु ।
पावने चरणे रागः पुण्यबंधनिबन्धनम् ॥

—योगशास्त्र ४।३७

अर्हत आदि पंच परमेष्ठियो मे भक्ति, समस्त जीवो पर करुणा और पवित्र चारित्र मे प्रीति रखने से पुण्य का वन्ध होता है। दीन-दुःखी पर करुणा व उनकी सेवा करना, गुणीजनों पर प्रमोद भाव रखना, दान-देना, परोपकार करना, मन, वचन, काया की शुभ प्रवृत्ति करना आदि अनेक कारण माने जा सकते है। आगमो मे पुण्योपार्जन के नौ कारण वतलाये है। अतः शास्त्रीय दृष्टि से पुण्य के नौ भेद इस प्रकार है[1]—

१. अन्न पुण्य —भोजन देना।
२. पान पुण्य —पानी पिलाना।
३. लयन पुण्य —योग्यतानुसार आवास स्थान की व्यवस्था करना।
४. शयन पुण्य —शैया, पाट आदि विश्राम के साधनों को देना।
५. वस्त्र पुण्य —तन ढांकने के लिए वस्त्र आदि देना।
६. मन पुण्य —दान, शील आदि भावनाओ मे मन को प्रवृत्त रखना।
७. वचन पुण्य —मुख से हित-मित-प्रिय वचन वोलना।
८. काय पुण्य —शरीर द्वारा जीवो की सेवा आदि कार्य करना।
९. नमस्कार पुण्य —गुणीजनो, गुरुजनो आदि का विनय, नमस्कार आदि करना।

इन सव भेदो मे अन्तर्हित भावनाओ और कार्यों का साराश यह है कि मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को शुभ कार्यों को करने मे लीन रखकर प्राणिमात्र का उपकार करना।

उदय मे आए हुए अशुभकर्म पुद्गलो और अशुभकर्मों को पाप कहते है। पुण्य के कारणो की तरह पाप के कारण भी आत्म-परिणतियो की असंख्यता से असंख्य हैं। इन कारणो को संक्षेप और विस्तार की दृष्टि से अनेक प्रकार से कह सकते है, फिर भी पाप-उपार्जन के निम्नलिखित मुख्य अठारह कारण माने गये हैं—

१. प्राणातिपात —प्रमाद के योग से प्राणो का घात करना।
२. मृषावाद —झूठ वोलना।
३. अदत्तादान —चोरी करना।
४. अब्रह्मचर्य —कुशील का सेवन करना।
५. परिग्रह —पर-पदार्थों मे मूर्च्छाभाव (ममत्व) रखना।
६. क्रोध —गुस्सा करना, कुपित हो जाना।

---

१ पुण्य नौ प्रकार से वाधा जाता है। ४२ प्रकार से भोगा जाता है। पाप १८ प्रकार से वांधा जाता है। ८२ प्रकार से भोगा जाता है।

७ मान	—अभिमान (घमण्ड) करना।
८ माया	—कपट भाव रखना।
९ लोभ	—असतोष, पदार्थों के सरक्षण की वृत्ति।
१० राग	—माया और लोभ की वृत्ति के साथ आसक्ति रूप परिणाम।
११ द्वेष	—क्रोध और मान के वशवर्ती जीव के परिणाम।
१२ कलह	—लड़ाई झगडा करना।
१३ अभ्याख्यान	—झूठा दोषारोपण करना।
१४ पैशुन्य	—परोक्ष मे किसी के दोषो को प्रगट करना, चुगली करना।
१५ परनिन्दा	—दूसरों की बुराई करना, निन्दा करना।
१६ रति-अरति	—मनोज्ञ वस्तु में राग और अमनोज्ञ वस्तु में द्वेष-भाव अथवा पाप मे रुचि रखना और धर्मवृत्ति मे उदासीन रहना।
१७ माया-मृषावाद	—कपट पूर्वक झूठ बोलना।
१८ मिथ्यादर्शन	—जीवादि तत्त्वो और देव, गुरु, धर्म के प्रति श्रद्धा न रखना अथवा विपरीत श्रद्धा रखना।

५ आस्रव तत्त्व

पुण्य पाप, रूप कर्मों के आने के द्वार को 'आस्रव' कहते हैं। आस्रव द्वारा आत्मा कर्मों को ग्रहण करती रहती है। यानी आत्मा के जिन परिणामो से पुद्गलद्रव्य कर्म रूप बनकर आत्मा मे आता है, उसे आस्रव कहते हैं। ससारी जीव में प्रतिसमय मन, वचन, काय की परिस्पन्दनात्मक क्रिया होती रहती है जिससे वह सतत् कर्मपुद्गलों का आस्रवण-ग्रहण करता है। जैसे समुद्र मे नदियो द्वारा पानी का आना चालू रहता है, वैसे ही आत्मा हिंसा, झूठ आदि प्रवृत्ति द्वारा कर्म रूपी जल को ग्रहण करती रहती है। इसीलिए कर्म के आने के मार्ग को आस्रव कहा गया है।

आस्रव तत्त्व के भेद

आस्रव तत्त्व के दो भेद हैं—(i) द्रव्यास्रव, और (ii) भावास्रव। अपने अपने निमित्त रूप योग को प्राप्त करके आत्मप्रदेशो में स्थित पुद्गल कर्म रूप से परिणत हो जाते हैं, उसे द्रव्यास्रव कहते हैं और आत्मा के जिन परिणामो से पुद्गलद्रव्य कर्म रूप बनकर आता है उसे भावास्रव कहते हैं।

आत्मा मे कर्मों के आगमन के मुख्य रूप से निम्नलिखित कारण हैं। इसलिए इन कारणों की अपेक्षा से आस्रव के पाच भेद हैं—

(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, और (५) योग।

(१) मिथ्यात्व—जीवादि तत्त्वो पे विपरीत श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। इस विपरीत श्रद्धान के कारण जड पदार्थों मे चतन्य बुद्धि, अतत्त्व मे तत्त्व बुद्धि आदि विपरीत प्ररूपणा की जाती है।

(२) अविरति—अर्थात् इच्छाओं एवं पापाचरणों से विरत न होना। पांच इन्द्रियों और मन को वश मे न रखना और पृथ्वी आदि छहकाय के जीवों की हिंसा का त्याग प्रत्याख्यान न करना।

(३) प्रमाद—कुशल कार्यों मे उत्साह न रखना। अर्थात् आत्म-विकास की प्रवृत्ति मे आलस्य एवं शिथिलता करना।

(४) कषाय—आत्मा के स्वाभाविक रूप का घात करने वाली क्रोध, मान, माया, लोभ आदि प्रवृत्तिया।

(५) योग—मानसिक, वाचिक, कायिक शुभा-शुभ प्रवृत्ति।

६. वन्ध तत्त्व :

काषायिक परिणामो से कर्म के योग्य पुद्गलो का आत्मा के साथ सम्बन्ध होना वन्ध कहलाता है। जीव अपने काषायिक परिणामो से अनन्तानन्त कर्म योग्य पुद्गलो का वन्ध करता रहता है। आत्मा और कर्मों का यह वन्ध दूध और पानी या अग्नि और लोह पिण्ड जैसा है। जैसे दूध और पानी, अग्नि और लौह पिण्ड अलग-अलग हैं फिर भी एक दूसरे के संयोग से एकमेक दिखते है।

वन्ध तत्त्व के भेद :

वन्ध के निम्नलिखित चार भेद है—

(१) प्रकृतिवन्ध—जीव द्वारा ग्रहण किये गये कर्म पुद्गलो मे भिन्न-भिन्न स्वभावो का होना। जैसे अमुक कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को आवृत करेगा, अमुक दर्शन गुण को इत्यादि।

(२) स्थितिवन्ध—जीव द्वारा बद्ध कर्म पुद्गलो मे अमुक समय तक जीव के साथ जुडे रहने की कालमर्यादा को स्थितिवन्ध कहते है। कर्मो की यह स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट और इन दोनो के मध्य के समय भेद से अनेक प्रकार की होती है। कालमर्यादा की न्यूनाधिकता होने मे जीव के परिणाम कारण है।

(३) अनुभागवन्ध—अनुभाग नाम फल देने की शक्ति का है। जीव द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गलों मे फल देने की न्यूनाधिक शक्ति का होना अनुभाग वन्ध कहलाता है। इसे अनुभाववन्ध, रसवन्ध भी कहते है।

(४) प्रदेशवन्ध—ग्रहण किए जाने पर भिन्न-भिन्न स्वभाव मे परिणत होने वाली कर्म पुद्गल शक्ति का, स्वभावानुसार अमुक-अमुक परिमाण मे बँट जाना प्रदेशवन्ध है।

वन्ध के उक्त प्रकृतिवन्ध आदि चार भेदो मे से प्रकृतिवन्ध और प्रदेश वन्ध योग के निमित्त से तथा स्थितिवन्ध और अनुभागवन्ध कषाय के निमित्त से होता है। क्योकि योग परिस्पन्दन के तरतम भाव पर ही बद्ध कर्म पुद्गलो मे उस रूप मे उनका स्वभाव और प्रदेश मर्यादा हो सकती है यदि भोगो की प्रवृत्ति मद है तो बद्ध कर्म पुद्गलो मे वैसा मद स्वभाव और प्रदेश मर्यादा वनेगी और तीव्र होने पर स्वभाव व प्रदेशो की संख्या मे अधिकता होगी। कषाय एक प्रकार की चिकनाई है। चिकनाई मे अधिकता होने पर जैसे धूलि आदि अधिक समय तक चिपकी रहती है और उसे हटाने में

समय भी लगता है। इसीलिए अनुभागबन्ध और स्थितिबन्ध की न्यूनाधिकता कषाय पर आधारित है।

बन्ध के शुभ या अशुभ ऐसे दो प्रकार भी हो सकते हैं। शुभ बन्ध को पुण्य और अशुभ बन्ध को पाप कहते हैं। जब तक कर्म फल नहीं देते हैं तब तक बन्ध कहलाते हैं और फल देने पर पुण्य या पाप कहे जाते हैं। यानी कर्मों के अनुदयकाल को बन्ध और उदयकाल-फल देने के समय को पुण्य-पाप कहते हैं।

७ संवर तत्त्व

आस्रव निरोध को संवर कहते हैं, अर्थात् जिन निमित्तों से कर्म बंधते हैं उनका निरोध-प्रतिबन्ध करना। कर्म आने के द्वार को रोकना संवर है। आत्मा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग प्रवृत्ति द्वारा कर्मों का आस्रवण करती है। इन कारणों द्वारा जो कर्मों का आगमन हो रहा है, कर्मों के आने के द्वार बंद कर देना संवर का अर्थ है। नवीन कर्मों के आगमन को रोकने के कारण हैं—गुप्ति, समिति, धर्मसाधना, अनुप्रेक्षा (लोक स्वरूप का चिन्तन) परिषह सहन करना, सम्यक्चारित्र, तप आदि।

संवर के स्वरूप को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है—'कल्पना कीजिये कि कोई व्यक्ति तालाब को खाली करने के लिए पानी उलीच कर, अथवा पम्पिंग सेट आदि द्वारा बाहर फेंक रहा है। लेकिन परिश्रम करने पर यदि वह तालाब में पानी आने के द्वारों-नालों को बन्द नहीं करता है तो उसका किया कराया परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। जितना वह पानी निकालता है उतना ही पानी नालों द्वारा तालाब में भरता जा रहा है। इस स्थिति में तालाब का खाली होना सम्भव नहीं।

संवर द्वारा कर्मबंध की निमित्तभूत प्रवृत्तियों का निरोध एवं उन क्रियाओं का निरोध होने से आने वाले कर्मपुद्‌गलों का विच्छेद होता है। इसलिए आत्म-प्रवृत्तियों के निरोध का भावसंवर एवं आगत कर्मों के रुकने को द्रव्य संवर कहा जाता है।

संवर तत्त्व के भेद

कर्मास्रव रोकने का मुख्य हेतु तो आत्मा का स्वभाव है, लेकिन संवर आस्रव का विरोधी तत्त्व है। अतः संवर के निम्नलिखित ५ भेद हैं—

(१) सम्यक्त्व— जीवादि तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना।
(२) व्रत— पाप कर्मों से विरत होना।
(३) अप्रमाद— धर्म के प्रति उत्साह का होना।
(४) अकषाय— क्रोधादि कषायों का क्षय या उपशम हो जाना।
(५) योगनिग्रह—मन, वचन, काय, प्रवृत्ति का निरोध करना।

ये पाँचों आस्रव के विरोधी भेद हैं। इनके अतिरिक्त हिंसादि पापों से निवृत्ति लेना। पाँच इन्द्रियों की अपने-अपने विषयों की प्रवृत्ति को रोकना। मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोकना

अथवा, सम्यक् प्रवृत्ति करना आदि भी सवर के भेद है। लेकिन उन सबका ऊपर बताये गये भेदो मे समावेश हो जाने से मुख्यतया सवर के सम्यक्त्व आदि पाँच भेद तथा विस्तार से २० और ५७ भेद माने गए हैं।

८. निर्जरा तत्त्व :

पूर्व वद्ध कर्मों का आंशिक या क्रमिक क्षय होना निर्जरा है। संवर के द्वारा आगत कर्मों को रोका जाता है और निर्जरा से पूर्ववद्ध कर्मो को धीरे-धीरे क्षीण किया जाता है। जैसे—तालाव मे पानी के आने के द्वारो को रोक देने पर सूर्य के ताप आदि से धीरे-धीरे तालाव सूख जाता है, वैसे ही संवर द्वारा नवीन कर्मो का निरोध हो जाने पर निर्जरा द्वारा वद्धकर्मो का शनै-शनैः क्षय होता है।

संसारी जीव के साथ कर्मवन्ध का क्रम और अपना फल देकर क्षय होने का क्रम भी निरन्तर चालू रहता है। लेकिन यहाँ निर्जरा का विशेष अर्थ यह है कि सवर द्वारा कर्मों के आगमन को रुकने के वाद पूर्व-वद्ध कर्मों का शनै-शनैः क्षय होना। इसलिए कर्मास्रव के साथ कर्मक्षय होने को सविपाक निर्जरा और विना फलोदय के कर्मक्षय होने को अविपाक निर्जरा कहते हैं।

निर्जरा मुक्ति प्राप्ति के लिए सीढियो के समान हैं। सीढियो द्वारा जैसे मंजिल पर पहुँचा जाता है। वैसे ही निर्जरा भी कर्मक्षय के लिए सहायक वनती है। कर्मक्षय के लिए अग्रसर साधक का एक मात्र उद्देश्य अनादिकाल से चले आ रहे कर्म-वन्धन को नष्ट करने का होता है और सासारिक कामनाओ मे न उलझकर कर्मक्षय के लिए प्रयत्नशील रहना है।

निर्जरा तत्त्व के भेद :

जैसे शुद्ध सुवर्ण की प्राप्ति के लिए कनकोपल को तपाया जाता है, वैसे ही आत्मा से सम्वद्ध कर्मावरण को हटाने के लिए आत्मा व शरीर को तपाया जाता है। तप शुद्धि का मुख्य साधन है। इसीलिए तप को निर्जरा कहते हैं। तप के वारह भेद होने से निर्जरा के भी वारह भेद होते हैं।[1]

६. मोक्ष का लक्षण :

मोक्ष अर्थात् कर्मवन्धनों से सर्वथा मुक्त होकर आत्म स्वरूप की प्राप्ति कर लेना। समस्त कर्मों का क्षय करके आत्म-स्वरूप की प्राप्ति कर लेना ही जीव का लक्ष्य है और इसी की प्राप्ति मे उसके पुरुषार्थ की सफलता है। कर्म ही ससार है और कर्ममुक्ति हुई कि अनन्तकाल के लिए जन्म-मरण का चक्र रुक गया। सद्-चित्-आनन्दमय स्वरूप की जागृति हो गई। वेदान्त के 'ब्रह्मोऽस्मि' को आत्मा की इसी अवस्था का द्योतक मान सकते हैं।

आत्म-विकास की पूर्णता मोक्ष है, अतः मोक्ष मे कोई भेद नही है। मुक्त आत्माएँ अपने स्वरूप की अपेक्षा समान हैं। भेद के कारण कर्म है, जव कर्मो का ही अभाव हो गया तो भेद की कल्पना भी कैसे की जा सकती है। फिर भी लोक व्यवहार मे मुक्ति प्राप्त करने की पूर्वावस्था के आधार मे तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध आदि १५ भेद जनसाधारण को समझाने के लिए शास्त्रो मे वताए

---

१ देखिए इसी पुस्तक का तप शीर्षक निवन्ध, सं० ८।

गये हैं। जिनका फलितार्थ यह है कि कोई भी जीव चाहे वह किसी भी लिंग, जाति आदि का हो, मुक्ति प्राप्ति का अधिकारी है। मुक्ति की प्राप्ति जीव के सम्यक् पुरुषार्थ पर निर्भर है, जाति, कुल आदि उसमें कारण नहीं हैं।

मोक्ष कोई स्थान विशेष नहीं है, लेकिन जिसे हम लोक के अग्रभाग में स्थित सिद्धशिला के नाम से कहते हैं, वह तो जीव के ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण शुद्ध आत्मा के अवस्थान की दृष्टि से समझ लेना चाहिए। जैसे मिट्टी के लेप से भारी बना हुआ तुम्बा पानी के तल भाग में डूबा रहता है और लेप के हटने पर ऊपर पानी की सतह पर आ जाता है, वैसे ही कर्म लेप से भारी बना जीव संसार सागर में डूबा रहता है, लेकिन निष्कर्मा होकर लोकाग्र में स्थित हो जाता है और उस स्थान विशेष को सिद्धशिला कह दिया जाता है।

मोक्ष प्राप्ति के उपाय

आगमों में मोक्ष प्राप्ति के चार उपाय बताये हैं—(i) ज्ञान, (ii) दर्शन, (iii) चारित्र और (iv) तप। ज्ञान से तत्त्वों की जानकारी और दर्शन से तत्त्वों पर श्रद्धा होती है। चारित्र द्वारा कर्मास्रव रुकता है और तप से पूर्वबद्ध कर्मों का क्षय होता है। आचार्यों ने तप को चारित्र में गर्भित करके ज्ञान, दर्शन, चारित्र को मोक्ष प्राप्ति का उपाय कहा है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि में किसी एक के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति नहीं, किन्तु ज्ञान, दर्शन आदि की सामूहिक रूप से साधना करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसीलिए इनको 'रत्न त्रय' कहा जाता है।



१४ | गुणस्थान

•

पं० सुखलाल संघवी

गुणस्थान : आत्मविकास की क्रमिक अवस्था :

गुणो (आत्मशक्तियो) के स्थानो को अर्थात् विकास की क्रमिक अवस्थाओ को गुणस्थान कहते हैं। जैन शास्त्र मे गुणस्थान, इस पारिभाषिक शब्द का मतलब आत्मिक शक्तियो के आविर्भाव की, उनके शुद्ध कार्य रूप मे परिणत होते रहने की तरतम भावापन्न अवस्थाओ से है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप शुद्ध चेतना और पूर्णानन्दमय है। पर उसके ऊपर जब तक तीव्र आवरणो के घने बादलों की घटा छाई हो, तब तक उसका असली स्वरूप दिखाई नही देता। किन्तु आवरणों के क्रमश. शिथिल या नष्ट होते ही उसका असली स्वरूप प्रकट होता है। जब आवरणो की तीव्रता आखिरी हद की हो, तब आत्मा प्राथमिक अवस्था मे अविकसित अवस्था मे पड़ा रहता है। और जब आवरण बिल्कुल ही नष्ट हो जाते हैं, तब आत्मा चरम अवस्था–शुद्ध स्वरूप की पूर्णता मे वर्तमान हो जाता है। जैसे-जैसे आवरणो की तीव्रता कम होती जाती है, वैसे-वैसे आत्मा भी प्राथमिक अवस्था को छोडकर धीरे-धीरे शुद्ध रूप का लाभ करता हुआ चरम अवस्था की ओर प्रस्थान करता है। प्रस्थान के समय इन दो अवस्थाओ के बीच उसे अनेक नीची-ऊंची अवस्थाओ का अनुभव करना पड़ता है। प्रथम अवस्था को अविकास की अथवा अधःपतन की पराकाष्ठा और चरम अवस्था को विकास की अथवा उत्क्रान्ति की पराकाष्ठा समझना चाहिये। इस विकास क्रम की मध्यवर्तिनी सब अवस्थाओ को अपेक्षा से उच्च भी कह सकते हैं और नीच भी, अर्थात् मध्यवर्तिनी कोई भी अवस्था अपने से ऊपर वाली अवस्था की अपेक्षा नीच और नीचे वाली अवस्था की अपेक्षा उच्च कही जा सकती है। विकास की ओर अग्रसर आत्मा वस्तुत. उक्त प्रकार की सख्यातीत आध्यात्मिक भूमिकाओ का अनुभव करता है। पर जैन शास्त्र मे संक्षेप मे वर्गीकरण करके उनके चौदह विभाग किये हैं, जो चौदह गुणस्थान कहलाते हैं।

मोह : आत्मविकास मे मुख्य बाधक :

सब आवरणो मे मोह का आवरण प्रधान है अर्थात् जब तक मोह बलवान् और तीव्र हो, तब तक अन्य सभी आवरण बलवान और तीखे बने रहते है। इसलिए आत्मा के विकास करने मे मुख्य बाधक मोह की प्रबलता और मुख्य सहायक मोह की निर्बलता समझनी चाहिये। इसी कारण गुणस्थानो की विकास क्रम की अवस्थाओं की कल्पना मोह शक्ति की उत्कटता, मन्दता, तथा अभाव पर अवलम्बित है।

मोह की प्रधान शक्तियां दो हैं। इनमें से पहली शक्ति, आत्मा को दर्शन अर्थात् स्वरूप-पररूप का निर्णय किंवा जड़-चेतन का विवेक करने नहीं देती और दूसरी शक्ति आत्मा को विवेक प्राप्त कर लेने पर भी तदनुसार प्रवृत्ति से छुटकारा स्वरूप लाभ नहीं करने देती। व्यवहार में पग पग पर यह देखा जाता है कि किसी वस्तु का यथार्थ दर्शन बोध कर लेने पर ही उस वस्तु को पाने या त्यागने की चेष्टा की जाती है और वह सफल भी होती है। आध्यात्मिक विकासगामी आत्मा के लिए भी मुख्य दो ही कार्य हैं। पहला स्वरूप तथा पररूप का यथार्थ दर्शन किंवा भेद ज्ञान करना और दूसरा स्वरूप में स्थित होना। इनमें से पहले कार्य को रोकने वाली मोह की शक्ति जैनशास्त्र में दर्शनमोह और दूसरे कार्य को रोकने वाली मोह की शक्ति चारित्रमोह कहलाती है। दूसरी शक्ति अनुगामिनी है, अर्थात् पहली शक्ति प्रबल हो, तब तक दूसरी शक्ति कभी निर्बल नहीं होती और पहली शक्ति के मन्द-मन्दतर और मन्दतम होते ही दूसरी शक्ति भी क्रमशः वैसी ही होने लगती है, अथवा यों कहिये कि एक बार आत्मा स्वरूपदर्शन कर पावे तो फिर उसे स्वरूप-लाभ करने का मार्ग प्राप्त हो ही जाता है।

ग्रंथिभेद

अविकसित किंवा सर्वथा अधःपतित आत्मा की अवस्था प्रथम गुणस्थान है। इसमें मोह की उक्त दोनों शक्तियों के प्रबल होने के कारण आत्मा की आध्यात्मिक स्थिति बिल्कुल गिरी हुई होती है। इस भूमिका के समय आत्मा चाहे आधिभौतिक उत्कर्ष कितना ही क्यों न कर ले, पर उसकी प्रवृत्ति तात्त्विक लक्ष्य से सर्वथा शून्य होती है। जैसे दिग्भ्रम वाला मनुष्य पूर्व को पश्चिम मान कर गति करता है और अपने इष्ट स्थान को नहीं पाता, उसका श्रम एक तरह से वृथा ही जाता है वैसे प्रथम भूमिका वाला आत्मा, पर रूप को स्वरूप समझ कर उसी को पाने के लिए प्रति क्षण लालायित रहता है। और विपरीत दर्शन या मिथ्यादृष्टि के कारण राग-द्वेष की प्रबल चोटों का शिकार बनकर तात्त्विक सुख से वंचित रहता है। इसी भूमिका को जैन शास्त्र में बहिरात्मभाव किंवा मिथ्यादर्शन कहा है। इस भूमिका में जितने आत्मा वर्तमान होते हैं, उन सभी की आध्यात्मिक स्थिति एक सी नहीं होती अर्थात् सब के ऊपर मोह की सामान्यतः दोनों शक्तियों का आधिपत्य होने पर भी उसमें थोड़ा बहुत तरतम भाव अवश्य होता है। किसी पर मोह का प्रभाव गाढ़तम, किसी पर गाढ़तर और किसी पर उससे भी कम होता है। विकास करना यह प्रायः आत्मा का स्वभाव है। इसलिए जानते या अजानते, जब उस पर मोह का प्रभाव कम होने लगता है, तब वह कुछ विकास की ओर अग्रसर हो जाता है और तीव्रतम राग द्वेष को कुछ मन्द करता हुआ मोह की प्रथम शक्ति को छिन्न भिन्न करने योग्य आत्मबल प्रकट कर लेता है। इसी स्थिति को जैनशास्त्र में ग्रंथिभेद कहा है।

ग्रन्थि भेद का कार्य बड़ा ही विषम है। राग-द्वेष का तीव्रतम विष एक बार शिथिल व छिन्न भिन्न हो जाए तो फिर बेड़ा पार ही समझिए। क्योंकि इसके बाद मोह की प्रधान शक्ति दर्शन मोह को शिथिल होने में देरी नहीं लगती और दर्शन मोह शिथिल हुआ कि चारित्र मोह की शिथिलता का मार्ग आप ही आप खुल जाता है। एक तरफ राग-द्वेष अपने पूर्ण बल का प्रयोग करते हैं और दूसरी तरफ विकासोन्मुख आत्मा भी उनके प्रभाव को कम करने के लिए अपने वीर्य बल का प्रयोग करता है। इस आध्यात्मिक युद्ध में यानी मानसिक विकार और आत्मा की प्रतिद्वन्द्विता

में कभी एक तो कभी दूसरा जय लाभ करता है। अनेक आत्मा ऐसे भी होते हैं जो करीब-करीब ग्रन्थिभेद करने लायक बल प्रकट करके भी अन्त में राग-द्वेष के तीव्र प्रहारों से आहत होकर व उनसे हार खाकर अपनी मूल स्थिति में आ जाते हैं और अनेक बार प्रयत्न करने पर भी राग-द्वेष पर जयलाभ नहीं करते। अनेक आत्मा ऐसे भी होते हैं, जो न तो हार खाकर पीछे गिरते हैं और न जयलाभ कर पाते हैं। किन्तु वे चिरकाल तक उस आध्यात्मिक युद्ध मैदान में ही पड़े रहते हैं। कोई-कोई आत्मा ऐसा भी होता है जो अपनी शक्ति का यथोचित प्रयोग कर, उस आध्यात्मिक युद्ध पर, राग-द्वेष पर जयलाभ कर ही लेता है।

आध्यात्मिक युद्ध :

किसी भी मानसिक विकार की प्रतिद्वन्द्विता में इन तीनों अवस्थाओं का अर्थात् कभी हार खाकर पीछे गिरने का, कभी प्रतिस्पर्धा में डटे रहने का और जयलाभ करने का अनुभव हमें अवसर नित्य प्रति हुआ करता है। यही संघर्ष कहलाता है। संघर्ष विकास का कारण है। चाहे विद्या, चाहे धन, चाहे कीर्ति, कोई भी लौकिक वस्तु इष्ट हो, उसको प्राप्त करते समय भी अचानक अनेक विघ्न उपस्थित होते है और उनकी प्रतिद्वन्द्विता में उक्त प्रकार की तीनों अवस्थाओं का अनुभव प्रायः सबको होता रहता है। कोई विद्यार्थी, कोई धनार्थी या कोई कीर्ति का आकांक्षी जब अपने इष्ट के लिए प्रयत्न करता है तब या तो वह बीच में अनेक कठिनाइयों को देखकर प्रयत्नों को छोड़ ही देगा या कठिनाइयों को पारकर इष्ट-प्राप्ति के मार्ग की ओर अग्रसर होता है। जो अग्रसर होता है, वह बड़ा विद्वान्, बड़ा धनवान् या बड़ा कीर्तिशाली बन जाता है। जो कठिनाइयों से डर कर पीछे भागता है, वह पामर, अज्ञानी, निर्धन, कीर्तिहीन बना रहता है। और जो कठिनाइयों को जीत सकता है और उनसे हार मानकर पीछे भागता है, वह साधारण स्थिति में ही पड़ा रहकर, कोई ध्यान खींचने योग्य उत्कर्ष लाभ नहीं करता।

इस भाव को समझाने के लिए शास्त्र में एक दृष्टान्त दिया गया है। तीन प्रवासी कहीं जा रहे थे। बीच में भयानक चोरों को देखते ही तीन में से एक तो पीछे भाग गया। दूसरा उन चोरों से डर कर नहीं भागा, किन्तु उनके द्वारा पकड़ा गया। तीसरा तो असाधारण बल तथा कौशल से उन चोरों को हराकर आगे बढ़ ही गया। मानसिक विकारों के साथ आध्यात्मिक युद्ध करने में जो जय-पराजय होता है, उसका थोड़ा बहुत खयाल उक्त दृष्टान्त से आ सकता है।

सद्दृष्टि :

प्रथम गुणस्थान में रहने वाले विकासगामी ऐसे अनेक आत्मा होते हैं, जो राग-द्वेष के तीव्रतम वेग को थोड़ा-सा दबाये हुए होते हैं, पर मोह की प्रधान शक्ति को अर्थात् दर्शनमोह को शिथिल किये हुए नहीं होते, तो भी उनका बोध व चरित्र अन्य अविकसित आत्माओं की अपेक्षा अच्छा ही होता है। यद्यपि ऐसी आत्माओं की आध्यात्मिक दृष्टि सर्वथा आत्मोन्मुख न होने के कारण वस्तुतः मिथ्या दृष्टि, विपरीत दृष्टि या असत् दृष्टि ही कहलाती है तथापि वह सद्दृष्टि के समीप ले जाने वाली हो जाने के कारण उपादेय मानी गई है।

बोध, वीर्य व चारित्र के तरतम भाव की अपेक्षा से उस असत् दृष्टि के चार भेद करके

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान की अन्तिम अवस्था का शास्त्र में अच्छा चित्र खींचा गया है। इन चार दृष्टियों में जो वर्तमान होते हैं, उनको सद्दृष्टि लाभ करने में फिर देरी नहीं लगती।

सद्बोध, सद्वीर्य व सच्चरित्र के तरतम भाव की अपेक्षा से सद्दृष्टि के भी शास्त्र में चार विभाग किये हैं, जिनमें मिथ्यादृष्टि त्यागकर अथवा मोहकर्म एक या दोनों शक्तियों को जीतकर आगे बढ़े हुए सभी विकसित आत्माओं का समावेश हो जाता है अथवा दूसरे प्रकार से यों समझाया जा सकता है कि जिसमें आत्मा का स्वरूपभासित हो और उसकी प्राप्ति के लिए मुख्य प्रवृत्ति हो, वह सद्दृष्टि इसके विपरीत जिसमें आत्मा का स्वरूप न तो यथावत् भासित हो और न उसकी प्राप्ति के लिए ही प्रवृत्ति हो, वह असद्दृष्टि। बोध, वीर्य व चरित्र के तरतम भाव को लक्ष्य में रखकर शास्त्र में दोनों दृष्टि के चार चार विभाग किये गये हैं जिनमें सब विकासगामी आत्माओं का समावेश हो जाता है और जिनका वर्णन पढ़ने से आध्यात्मिक विकास का चित्र आंखों के सामने नाचने लगता है।

शारीरिक और मानसिक दुःखों की संवेदना के कारण अज्ञातरूप में ही 'गिरिनदीपाषाणन्याय' से जब आत्मा का आवरण कुछ शिथिल होता है और इसके कारण उसके अनुभव तथा वीर्योल्लास की मात्रा कुछ बढ़ती है, तब उस विकासगामी आत्मा के परिणामों की शुद्धि व कोमलता कुछ बढ़ती है। जिसकी बदौलत वह रागद्वेष की तीव्रतम-दुर्भेद्य ग्रंथि को तोड़ने की योग्यता बहुत अंशों में प्राप्त कर लेता है। इस अज्ञान पूर्वक दुःख संवेदनाजनित अति अल्प आत्मशुद्धि को जैन शास्त्र में 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहा है। इसके बाद जब कुछ और भी अधिक आत्मशुद्धि तथा वीर्योल्लास की मात्रा बढ़ती है तब रागद्वेष की उस दुर्भेद्य ग्रंथि का भेदन किया जाता है। इस ग्रंथिभेदकारक आत्म शुद्धि को 'अपूर्वकरण' कहते हैं। क्योंकि ऐसा करण परिणाम विकासगामी आत्मा के लिये अपूर्व प्रथम ही प्राप्त है। इसके बाद आत्मशुद्धि व वीर्योल्लास की मात्रा कुछ अधिक बढ़ती है, तब आत्मा मोह की प्रधानभूत शक्ति दर्शनमोह पर अवश्य विजयलाभ करता है। इस विजयकारक आत्म शुद्धि को जैन-शास्त्र में 'अनिवृत्तिक करण' कहा है, क्योंकि उस आत्म-शुद्धि के हो जाने पर आत्मा दर्शनमोह पर जयलाभ किये बिना नहीं रहता, अर्थात् वह पीछे नहीं हटता। उक्त तीन प्रकार की आत्मशुद्धियों में दूसरी अर्थात् अपूर्वकरण नामक शुद्धि ही अत्यन्त दुर्लभ है। क्योंकि रागद्वेष के तीव्रतम वेग को रोकने का अत्यन्त कठिन कार्य इसी के द्वारा किया जाता है, जो सहज नहीं है। एक बार इस कार्य में सफलता प्राप्त हो जाने पर फिर चाहे विकासगामी आत्मा ऊपर की किसी भूमिका से गिर भी पड़े तथापि वह पुनः कभी न कभी अपने लक्ष्यों को अपने—आध्यात्मिक पूर्ण स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इस आध्यात्मिक परिस्थिति का कुछ स्पष्टीकरण अनुभवगत व्यावहारिक दृष्टान्त के द्वारा किया जा सकता है।

जैसे एक ऐसा वस्त्र हो जिसमें मल के अतिरिक्त चिकनाहट भी लगी हो। उसका मल ऊपर-ऊपर से दूर करना उतना कठिन और साध्य नहीं जितना कि चिकनाहट का दूर करना। यदि चिकनाहट एक बार दूर हो जाए तो फिर बाकी का मल निकालने में किंवा किसी कारणवश फिर से लगे हुए गर्द को दूर करने में विशेष श्रम नहीं पड़ता, और वस्त्र को उसके असली स्वरूप में सहज ही लाया जा सकता है। ऊपर ऊपर का मल दूर करने में जो बल दरकार है, उसके सदृश 'यथाप्रवृत्ति-करण' है। चिकनाहट दूर करने वाले विशेष बल व श्रम के समान 'अपूर्वकरण' है, जो चिकनाहट

के समान राग-द्वेष की तीव्रतम ग्रंथि को शिथिल करता है। बाकी बचे हुए मल को किंवा चिकनाहट दूर होने के बाद फिर से लगे हुए मल को कम करने वाले बल प्रयोग के समान 'अनिवृत्तिकरण' है। उक्त तीनो प्रकार के बल प्रयोग मे चिकनाहट दूर करने वाला बल प्रयोग ही विशिष्ट है।

अथवा, जैसे किसी राजा ने आत्मरक्षा के लिए अपने अंगरक्षको को तीन विभागो मे विभाजित कर रखा हो, जिनमे दूसरा विभाग शेष दो विभागों मे से अधिक बलवान् हो, तब उसी को जीतने मे विशेष बल लगाना पड़ता है। वैसे ही दर्शनमोह को जीतने के पहले उसके रक्षक राग-द्वेष के तीव्र संस्कारो को शिथिल करने के लिए विकासगामी आत्मा को तीन बार बल प्रयोग करना पड़ता है। जिनमे दूसरी बार किया जाने वाला बल प्रयोग ही, जिसके द्वारा राग-द्वेष की अत्यन्त तीव्रतारूप ग्रंथि भेदी जाती है, प्रधान होता है। जिस प्रकार उक्त तीनो दलो मे बलवान् दूसरे अंगरक्षक दल के जीत लिए जाने पर फिर उस राजा की पराजय सहज होती है, इसी प्रकार राग-द्वेष की अति तीव्रता को मिटा देने पर दर्शन मोह पर जयलाभ करना सहज है। दर्शन मोह को जीता और पहले गुणस्थान की समाप्ति हुई।

अन्तरात्म भाव :

ऐसा होते ही विकासगामी आत्मा स्वरूप का दर्शन कर लेता है। अर्थात् उसकी अब तक जो पररूप मे स्वरूप की भ्रान्ति थी, वह दूर हो जाती है। अतएव उसके प्रयत्न की गति उल्टी न होकर सीधी हो जाती है। अर्थात् वह विवेकी बनकर कर्तव्य-अकर्तव्य का वास्तविक विभाग कर लेता है। इस दशा को जैन शास्त्र मे अन्तरात्म भाव कहते हैं, क्योंकि इस स्थिति को प्राप्त करके विकासगामी आत्मा अपने अन्दर वर्तमान सूक्ष्म और सहज शुद्ध परमात्म भाव को देखने लगता है, अर्थात् अन्तरात्म भाव, यह आत्म मन्दिर का गर्भद्वार है, जिसमे प्रविष्ट होकर उस मन्दिर मे वर्तमान परमात्म भावरूप निश्चय देव का दर्शन किया जाता है।

सम्यक्त्व :

यह दशा विकासक्रम की चतुर्थी भूमिका किंवा चतुर्थ गुणस्थान है, जिसे पाकर आत्मा पहले-पहल आध्यात्मिक शान्ति का अनुभव करता है। इस भूमिका मे आध्यात्मिक दृष्टि यथार्थ (आत्म-स्वरूपोन्मुख) होने के कारण विपर्याय रहित होती है। जिसको जैन शास्त्र मे सम्यक्त्व कहा है।

चतुर्थी से आगे की अर्थात् पचमी आदि सब भूमिकाए सम्यग्दृष्टि वाली ही समझनी चाहिए, क्योकि उनमे उत्तरोत्तर विकास तथा दृष्टि की शुद्धि अधिकाधिक होती जाती है। चतुर्थ गुणस्थान मे स्वरूप दर्शन करने से आत्मा को अपूर्व शान्ति मिलती है और उसको विश्वास होता है कि अब मेरा साध्य-विषयक भ्रम दूर हुआ, अर्थात् अब तक जिस पौद्गलिक व बाह्य सुख के लिए मैं तरस रहा था, वह परिणाम विरस, अस्थिर एवं परिमित है, सुन्दर, स्थिर व अपरिमित सुख स्वरूप-प्राप्ति मे ही है। तब वह विकासगामी आत्मा स्वरूप-स्थिति के लिए, प्रयत्न करने लगता है।

देशविरति :

मोह की प्रधान शक्ति दर्शन मोह को शिथिल करके स्वरूप दर्शन कर लेने के बाद भी, जब

तक उसकी दूसरी शक्ति चारित्र मोह को शिथिल न किया जाए, तब तक स्वरूप लाभ किंवा स्वरूप स्थिति नहीं हो सकती। इसलिए वह मोह की दूसरी शक्ति को मन्द करने के लिए प्रयास करता है। जब वह उस शक्ति को अंशत शिथिल कर पाता है, तब उसकी और भी उत्क्रान्ति हो जाती है। जिसमे अंशत स्वरूप स्थिरता या परपरिणति त्याग होने से चतुर्थ भूमिका की अपेक्षा अधिक लाभ होता है। यह देशविरति नामक पाचवा गुणस्थान है।

सर्वविरति

इस गुणस्थान मे विकासगामी आत्मा को यह विचार होने लगता है कि यदि अल्प विरति से ही इतना अधिक शान्ति लाभ हुआ तो फिर सर्वविरति, द्वारा जड भावो के सर्वथा परिहार से कितना शान्ति लाभ होगा? इस विचार से प्रेरित होकर व प्राप्त आध्यात्मिक शान्ति के अनुभव से बलवान् होकर वह विकासगामी आत्मा चारित्रमोह को अधिकांश मे शिथिल करके पहले की अपेक्षा भी अधिक स्वरूप स्थिरता व स्वरूप लाभ प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इस चेष्टा मे कृतकृत्य होते ही उसे सर्वविरति संयम प्राप्त होता है जिसमें पौद्गलिक भावो पर मूर्च्छा बिल्कुल नही रहती, और उसका सारा समय स्वरूप की अभिव्यक्ति करने के काम मे ही खर्च होता है। यह सर्वविरति नामक षष्ठ गुणस्थान है। इसम आत्म कल्याण के अतिरिक्त लोक कल्याण की भावना और तदनुकूल प्रवृत्ति भी होती है। जिससे कभी कभी थोड़ी बहुत मात्रा मे प्रमाद आ जाता है।

प्रमाद से युद्ध

पाचवे गुणस्थान की अपेक्षा, इस छठे गुणस्थान मे स्वरूप अभिव्यक्ति अधिक होने के कारण यद्यपि विकासगामी आत्मा को आध्यात्मिक शान्ति पहले से अधिक ही मिलती है तथापि बीच बीच मे अनेक प्रमाद उसे शान्ति के अनुभव मे जो बाधा पहुचाते हैं, उसको वह सहन नही कर सकता। अतएव सर्वविरतिजनित शान्ति के साथ अप्रमादजनित विशिष्टशान्ति का अनुभव करने की प्रबल लालसा से प्रेरित होकर वह विकासगामी आत्मा प्रमाद का त्याग करता है और स्वरूप की अभिव्यक्ति के अनुकूल मनन चिन्तन के सिवाय अन्य सब व्यापारो का त्याग कर देता है। यही अप्रमत्त-संयत नामक सातवा गुणस्थान है। इसमे एक ओर अप्रमादजन्य उत्कट सुख का अनुभव आत्मा को उस स्थिति मे बने रहने के लिए उत्तेजित करता है और दूसरी ओर प्रमादजन्य पूर्व वासनाए उसे अपनी ओर खीचती हैं। इस खीचातानी मेविकासगामी आत्मा कभी प्रमाद की तन्द्रा और कभी अप्रमाद की जागृति अर्थात् छठे और सातवें गुणस्थान मे अनेक बार जाता आता रहता है। भवर या वातभ्रमी मे पड़ा हुआ तिनका इधर से उधर और उधर से इधर जिस प्रकार चलायमान होता रहता है, उसी प्रकार छठे और सातवें गुणस्थान के समय विकासगामी आत्मा अनवस्थित बन जाता है।

प्रमाद के साथ होने वाले इस आन्तरिक युद्ध के समय विकासगामी आत्मा यदि अपना चारित्र बल विशेष प्रकाशित करता है तो फिर वह प्रमादो, प्रलोभनो को पार कर विशेष अप्रमत्त अवस्था प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था को पाकर वह ऐसी शक्तिवृद्धि की तैयारी करता है जिससे शेष रहे-सहे मोहबल को नष्ट किया जा सके। मोह के साथ होने वाले भावी युद्ध के लिए की जाने वाली तैयारी की इस भूमिका को आठवा गुणस्थान कहते हैं।

दो श्रेणियां :

पहले कभी न हुई ऐसी आत्मशुद्धि इस गुणस्थान में हो जाती है। जिससे कोई विकासगामी आत्मा तो मोह के संस्कारों के प्रभाव को क्रमशः दवाता हुआ आगे वढता है तथा अन्त मे उसे विल्कुल ही उपशान्त कर देता है और विशिष्ट आत्मशुद्धि वाला कोई दूसरा व्यक्ति ऐसा भी होता है जो मोह के संस्कारो को क्रमशः जड़मूल से उखाड़ता हुआ आगे वढ़ता है तथा अन्त में सव संस्कारो को सर्वथा निर्मूल ही कर डालता है। इस प्रकार आठवें गुणस्थान से आगे वढने वाले अर्थात् अन्तरात्म भाव के विकास द्वारा परमात्म भाव रूप सर्वोपरि भूमिका के निकट पहुँचने वाले आत्म दो श्रेणियों मे विभक्त हो जाते हैं।

एक श्रेणी वाले, तो ऐसे होते हैं, जो मोह को एक वार सर्वथा दवा तो लेते हैं, उसे निर्मूल नही कर पाते। अतएव जिस प्रकार किमी वर्तन मे भरी हुई भाप कभी-कभी अपने वेग से उस वर्तन को उड़ा ले भागती है या नीचे गिरा देती है अथवा जिस प्रकार राख के नीचे दवी हुई अग्नि हवा का झकोरा लगते ही अपना कार्य करने लगती है, किंवा जिस प्रकार जल के तल मे वैठा हुआ मल थोड़ा-सा हिलते ही ऊपर उठकर जल को गंदला कर देता है, उसी प्रकार पहले दवाया हुआ भी मोह आन्तरिक युद्ध मे थके हुए उन प्रथम श्रेणी वाले आत्माओ को अपने वेग के द्वारा नीचे पटक देता है। एक वार सर्वथा दवाये जाने पर भी मोह, जिस भूमिका से आत्मा को हार दिलाकर नीचे की ओर पटक देता है, वही ग्यारहवा गुणस्थान है। मोह को क्रमशः दवाते-दवाते सर्वथा दवाने तक मे उत्तरोत्तर अधिक-अधिक विशुद्धिवाली दो भूमिकाए अवश्य प्राप्त करनी पडती हैं, जो नोवा तथा दसवां गुणस्थान कहलाता है। ग्यारहवां गुणस्थान अधःपतन का स्थान है, क्योकि उसे पाने वाला आत्मा और न वढकर एक वार तो अवश्य नीचे गिरता है।

दूसरी श्रेणी वाले आत्मा मोह को क्रमशः निर्मूल करते-करते अन्त मे उसे सर्वथा निर्मूल कर ही डालते हैं। सर्वथा निर्मूल करने की जो उच्च भूमिका है, वही वारहवां गुणस्थान है। इस गुणस्थान को पाने तक मे, अर्थात् मोह को सर्वथा निर्मूल करने से पहले वीच मे नौवा और दसवां गुणस्थान प्राप्त करना पडता हे। इस प्रकार देखा जाए तो चाहे पहली श्रेणी वाले हो, चाहे दूसरी श्रेणी वाले, पर वे सव नौवां-दसवा गुणास्थान प्राप्त करते ही है। दोनो श्रेणी वालो मे अन्तर इतना ही होता है कि प्रथम श्रेणी वालों की अपेक्षा दूसरी श्रेणी वालो मे आत्मशुद्धि व आत्म-वल विशिष्ट प्रकार का पाया जाता है जैसे किसी एक दर्जे के विद्यार्थी भी दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के तो ऐसे होते है, जो सौ कोशिश करने पर भी एक वारगी अपनी परीक्षा मे पास होकर आगे नहीं वढ सकते। पर दूसरे प्रकार के विद्यार्थी अपनी योग्यता के वल से सव कठिनाइयो को पार कर उस कठिनतम परीक्षा को वेधड़क पास कर ही लेते है। उन दोनो दल के इस अन्तर का कारण उनकी आन्तरिक योग्यता की न्यूनाधिकता है। वैसे ही नोवे तथा दसवे गुणस्थान को प्राप्त करने वाले उक्त दोनो श्रेणीगामी आत्माओं की आध्यात्मिक विशुद्धि न्यूनाधिक होती है। जिसके कारण एक श्रेणी वाले तो दसवें गुणस्थान को पाकर अत मे ग्यारहवे गुणास्थान मे मोह से हार खाकर नीचे गिरते हैं और अन्य श्रेणी वाले दसवे गुणस्थान को पकाकर इतना अधिक प्रकट करते हैं कि अन्त में वे मोह को सर्वथा क्षीण कर वारहवे गुणस्थान को प्राप्त कर ही लेते हैं।

जसे ग्यारहवाँ गुणस्थान अवश्य पुनरावृत्तिका है, वैसे ही बारहवा गुणस्थान अपुनरावृत्तिका है। अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थान को पाने वाला आत्म एक बार उससे अवश्य गिरता है और बारहवें गुणस्थान को पाने वाला उससे कदापि नहीं गिरता, बल्कि ऊपर को ही चढता है। किसी एक परीक्षा मे नही पास होने वाले विद्यार्थी जिस प्रकार परिश्रम व एकाग्रता से योग्यता बढाकर फिर उस परीक्षा को पास कर लेते हैं, उसी प्रकार एक बार मोह से हार खाने वाला आत्मा भी अप्रमत्त भाव व आत्मबल की अधिकता से फिर मोह को अवश्य क्षीण कर देते हैं। उक्त दोनो श्रेणी वाले आत्माओ की तर-तमभावपन्न आध्यात्मिक विशुद्धि याने परमात्मा भाव रूप सर्वोच्च भूमिका पर चढने की दो सीढिया हैं। जिनमे से एक को जैनशास्त्र मे उपशम श्रेणी और दूसरी को क्षपक श्रेणी कहा है। पहली कुछ दूर चढाकर गिराने वाली और दूसरी चढाने वाली ही है। पहली श्रेणी से गिरने वाला आध्यात्मिक अध पतन के द्वारा चाहे प्रथम गुणस्थान तक क्यो न चला जाए, पर उसकी वह अध पतित स्थिति कायम नही रहती। कभी न कभी फिर वह दुगने बल से और दुगनी सावधानी से तैयार होकर मोह शत्रु का सामना करता है और अत मे दूसरी श्रेणी की योग्यता प्राप्त कर मोह का सर्वथा क्षय कर डालता है। व्यवहार मे अर्थात् आधिभौतिक क्षेत्र म भी यह देखा जाता है कि जो एक बार हार खाता है, वह पूरी तैयारी करके हराने वाले शत्रु को फिर से हरा सकता है।

परमात्मा का स्वराज्य

परमात्मा का स्वराज्य प्राप्त करने मे मुख्य बाधक मोह ही है। जिसको नष्ट करना अन्तरात्म भाव के विशिष्ट विकास पर निर्भर है। मोह का सर्वथा नाश हुआ कि अन्य आवरण जो जैन शास्त्र मे घातिक कर्म कहलाते हैं, वे प्रधान सेनापति के मारे जाने के बाद अनुगामी सैनिको की तरह एक साथ तितर-बितर हो जाते है। फिर क्या देरी है, विकासगामी आत्मा तुरन्त परमात्मा भाव का पूर्ण आध्यात्मिक स्वराज्य पाकर अर्थात सच्चिदानन्द स्वरूप को पूर्णतया व्यक्त करके निरतिशय ज्ञान, चारित्र का लाभ करता है तथा अनिर्वचनीय स्वाभाविक सुख का अनुभव करता है। जैसे, पूर्णिमा की रात मे निरभ्र चन्द्र की सम्पूर्ण कलाए प्रकाशमान होती हैं, वैसे ही उस समय आत्मा की चेतना आदि सभी मुख्य शक्तियाँ पूर्ण विकसित हो जाती हैं। इस भूमिका को जैन शास्त्र मे तेरहवा गुण-स्थान कहते हैं।

इस गुणस्थान मे चिरकाल तक रहने के बाद आत्मा दग्ध रज्जु के समान शेष आवरणो को अर्थात् अप्रधानभूत अघातिकर्मों को उडाकर फेंक देने के लिए सूक्ष्म क्रिया प्रतिपति शुक्लध्यान रूप पवन का आश्रय लेकर मानसिक, वाचिक और कायिक व्यापारों को सर्वथा रोक देता है। यही आध्यात्मिक विकास की पराकाष्ठा किंवा चौदहवा गुणस्थान है। इसम आत्मा समुच्छिन्न क्रिया प्रतिपत्ति शुक्लध्यान द्वारा सुमेरु की तरह निष्प्रकम्प स्थिति को प्राप्त करके अत मे शरीर त्याग पूर्वक व्यवहार और परमार्थ दृष्टि से लोकोत्तर स्थान को प्राप्त करता है। यही निर्गुण ब्रह्मस्थिति है, यही सर्वांगीण पूर्णता है, यही पूर्ण कृतकृत्यता है, यही परम पुरुषार्थ की अन्तिम सिद्धी है और यही अपुनरावृत्ति स्थान है।

अपक्रान्ति/उत्क्रान्ति

यह कथा हुई पहले से चौदहवें गुणस्थान तक के बारह गुणस्थानों की। इसमे दूसरे और

तीसरे गुणस्थान की कथा, जो छूट गई है, वह यो है—सम्यक्त्व किंवा तत्वज्ञान वाली ऊपर की चतुर्थी आदि भूमिकाओ के राजमार्ग से च्युत होकर जब कोई आत्मा तत्वज्ञान शून्य किंवा मिथ्यादृष्टि वाली प्रथम भूमिका के उन्मार्ग की ओर झुकता है, तब बीच मे उस अधःपतनोन्मुख आत्मा की जो कुछ अवस्था होती है, वही दूसरा गुणस्थान है। यद्यपि इस गुणस्थान मे प्रथम गुणस्थान की अपेक्षा आत्मशुद्धि अवश्य कुछ अधिक होती है, इसलिए इसका नम्बर पहले के बाद रखा गया है, फिर भी यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि इस गुणस्थान को उत्क्रान्ति स्थान नहीं कह सकते। क्योंकि प्रथम गुणस्थान को छोड़कर उत्क्रान्ति करने वाला आत्मा इस दूसरे स्थान को सीधे तौर से प्राप्त नही कर सकता, किन्तु ऊपर के गुणस्थान से गिरने वाला आत्मा ही इसका अधिकारी बनता है। अधःपतन मोह के उद्रेक से होता है अतएव इस गुणस्थान के समय मोह की तीव्र कापायिक शक्ति का आविर्भाव पाया जाता है। खीर आदि मिष्ट भोजन करने के बाद जब वमन हो जाता है, तब मुख में एक प्रकार का विलक्षण स्वाद अर्थात् न अति मधुर न अति अम्ल जैसा प्रतीत होता है। इसी प्रकार दूसरे गुणस्थान के समय आध्यात्मिक स्थिति विलक्षण पाई जाती है। क्योंकि उस समय आत्मा न तो तत्वज्ञान की निश्चित भूमिका पर है और न तत्वज्ञान शून्य की निश्चित भूमिका पर, अथवा जैसे कोई व्यक्ति चढ़ने की सीढियो से खिसक कर जब तक जमीन पर आकर नहीं ठहर जाता, तब तक बीच मे एक विलक्षण अवस्था का अनुभव करता है, वैसे ही सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व को पाने तक में अर्थात् बीच मे आत्मा एक विलक्षण आध्यात्मिक अवस्था का अनुभव करता है। यह बात हमारे इस व्यावहारिक अनुभव से भी प्रसिद्ध है कि जब किसी निश्चित उन्नत अवस्था से गिरकर कोई निश्चित अवनत अवस्था प्राप्त की जाती है, तब बीच मे एक विलक्षण परिस्थिति खडी हो जाती है।

तीसरा गुणस्थान आत्मा की उस मिश्रित अवस्था का नाम है, जिसमे न तो केवल सम्यक् दृष्टि होती है और न केवल मिथ्यादृष्टि, किन्तु आत्मा उसमे दोलायमान आध्यात्मिक स्थिति वाला बन जाता है। अतएव उसकी बुद्धि स्वाधीन न होने के कारण सन्देहशील होती है अर्थात् उसके सामने जो कुछ आया, वह सब सच। न तो वह तत्व को एकान्त अतत्वरूप से ही जानता है और न तत्व अतत्व का वास्तविक पूर्ण विवेक ही कर सकता है।

कोई उत्क्रान्ति करने वाला महात्मा प्रथम गुणस्थान से निकलकर सीधे ही तीसरे गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है और कोई अवक्रान्ति करने वाला आत्मा भी चतुर्थ आदि गुणस्थान से गिरकर तीसरे गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार उत्क्रान्ति करने वाले और अवक्रान्ति करने वाले दोनों प्रकार के आत्माओ का आश्रय स्थान तीसरा गुणस्थान है। यही तीसरे गुणस्थान की दूसरे गुणस्थान से विशेषता है।

१५ | अनेकान्त

•

उपाध्याय विद्यानंद मुनि

जीव और अजीव अनन्तानन्त

इस जगत् में अनन्तानन्त चेतन पदार्थ (जीव) हैं और अनन्तानन्त जड़ (अजीव) पदार्थ हैं उनमें से प्रत्येक पदार्थ अनन्त गुणों (शक्तियों) तथा अनन्त विशेषताओं का पुंज है। सूक्ष्म परमाणु (एटम) में भी अनन्त शक्तियाँ निहित हैं। परमाणु की शक्ति से विशाल नगरों का विध्वंस क्षण-भर में किया जा सकता है और विशाल परिमाण में विद्युत् उत्पन्न करने वाले बिजलीघर का संचालन किया जा सकता है, भीमकाय जल-यान (पानी के जहाज, पनडुब्बी, नाव आदि) परमाणु की शक्ति से चलाये जा सकते हैं। एक परमाणु में जब इस प्रकार की विध्वंस, निर्माण, संचालन प्रेरण रूप असीम शक्तियाँ तथा विशेषताएँ सिद्ध होती हैं, तब अन्य विशाल जड़ चेतन पदार्थों के गुणों और विशेषताओं का भी इससे अनुमान लगाया जा सकता है।

अग्नि लकड़ी को जलाकर भस्म करती है, सोने को गलाकर शुद्ध करती है, रोटी को पकाती है, दाल को गलाती है, जल को भाप बनाती है अशुद्ध धातु पात्रों को शुद्ध करती है, शीत को दूर करती है, प्रकाश प्रदान करती है, इत्यादि अनन्त प्रकार की विशेषताएँ अग्नि में विद्यमान हैं।

ऐसी ही अनन्त शक्तियाँ, गुण या विशेषताएँ जल, वायु तथा पार्थिव पदार्थों में विद्यमान हैं। ये भौतिक (पार्थिव, जलीय आग्नेय, वायव्य) पदार्थ उन परमाणुओं के सम्बद्ध समुदाय से बना करते हैं, जिनकी शक्ति परमाणु-बम परमाणु बिजलीघर आदि के रूप में पहले बतलाई जा चुकी है।

अमूर्तिक जड़ पदार्थ

पौद्गलिक (मटीरियल) जड़ पदार्थों के सिवाय अमूर्तिक (नॉनमटीरियल) जड़ पदार्थ और भी हैं, जिनको धर्म (ईथर) (क्रियाशील अनन्त पदार्थों की हलनचलन रूप क्रिया में सहायक), अधर्म (स्थितिशील अनन्त पदार्थों की स्थिति में सहायक), आकाश (समस्त पदार्थों के लिए स्थान दाता), काल (समस्त अनन्त पदार्थों के प्रतिक्षणवर्ती परिणमन में सहायक) नाम से कहा जाता है। उन अमूर्तिक जड़ पदार्थों में से प्रत्येक में भी परमाणु या भौतिक पदार्थों के समान अनन्त शक्तियाँ

विद्यमान है, जिससे कि इस जगत् का ढाँचा सूक्ष्म रूप से विविध परिणमन कर रहा है। स्थूल दृष्टि से विचार-शक्ति भले ही सहसा उसे न जान सके, किन्तु सूक्ष्म विचार से तो उनको जाना ही जाता है।

चेतन पदार्थ की अनन्तानन्तता :

जड पदार्थों के समान चेतन पदार्थ (जीव) भी संख्या मे अनन्तानन्त है और प्रत्येक चेतन पदार्थ भी, वह चाहे छोटा प्रतीत हो या बड़ा, अनन्त शक्तियो का पुंज है। ज्ञान-दर्शन, सुख, बल, श्रद्धा, ममता, क्षमता, मृदुता आदि अनन्त प्रकार के गुण या शक्तियाँ तथा विशेषताएँ प्रत्येक जीव मे विद्यमान हैं। अर्थात् जगत् का कोई भी पदार्थ क्यो न हो वह अनन्त गुणात्मक है। उन अनन्त गुणों का परिणमन भिन्न-भिन्न निमित्तो से विभिन्न प्रकार का हुआ करता है। उन विभिन्न विशेषताओं को जब विभिन्न दृष्टिकोणो (अपेक्षाओ) से जाना जाता है तब प्रत्येक पदार्थ अनेक रूप मे प्रतीत होता है।

जल किसी प्यासे मनुष्य की प्यास बुझाकर उसे जीवन देता है और किसी प्यासे (हैजे के रोगी) को प्यास बुझाकर मार देता है, स्नान के रूप में स्वस्थ मनुष्य को जल स्फूर्ति और आनन्द प्रदान करता है; दाह ज्वर वाले मनुष्य को वही जल-स्नान सन्निपात लाकर मृत्यु के निकट पहुँचा देता है। इस तरह जल जीवन-दाता अमृत-रूप भी है और मारक विष-रूप भी है।

दूध शरीर के लिए सर्वोत्तम पोषक पदार्थ है, तत्काल के उत्पन्न बालक, शिशु का जीवन तो दूध पर ही निर्भर है। किशोर, यौवन, प्रौढ, वृद्ध अवस्थाओ मे भी दूध शरीर का अच्छा पोषण करता है, इसी कारण दूध को अमृत भी कहा जाता है; परन्तु यही दूध यदि अतिसार (दस्त) के रोगी को दिया जाए तो उसके लिए विष जैसा हानिकारक सिद्ध होगा।

ऐसे ही विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न प्रकार की प्रतीत होने वाली अनेक प्रकार की विशेषताएँ प्रत्येक पदार्थ मे एक साथ होती है, जैसे—राम राजा दशरथ के पुत्र थे, किन्तु लवणाकुश (लव-कुश) के पिता थे, लक्ष्मण के भाई थे, सीता के पति थे, जनक के जामाता (दामाद) थे, भामण्डल के बहनोई थे। इस तरह एक ही राम पुत्र, पिता, भाई, पति, दामाद, बहनोई आदि अनेक रूप थे। इसी प्रकार प्राय: अन्य प्रत्येक मनुष्य भी पिता, पुत्र, बाबा, पोता, पति, पुत्र, श्वसुर, जमाई, साला, बहनोई आदि अनेक सम्बन्धो का समुदाय होता है।

अनेकान्तवाद :

इन अनेक प्रकार की विशेषताओ के कारण ही प्रत्येक पदार्थ अनेकान्त (**अनेके अन्ता: धर्मा: यस्मिन् स अनेकान्त:**) रूप मे पाया जाता है, जो (धर्म) विशेषताएँ परस्पर-विरुद्ध प्रतीत होती है (जैसे जो पुत्र है, वह पिता कैसे हो सकता है, जो साला है, वह बहनोई कैसे हो सकता है, जो पति है, वह पुत्र कैसे हो सकता है इत्यादि) वे ही विशेषताएँ एक ही पदार्थ मे ठीक सही तौर पर पायी जाती है। पदार्थ की इस अनेक-रूपता (धर्मात्मकता) को प्रतिपादन करने वाला सिद्धान्त **अनेकान्तवाद** कहलाता है।

यदि हम हाथी का चित्र पीछे की ओर से लें, तो उसमें पिछले पैर और पूछ ही दिखाई देंगे और यदि सामने से फोटो खींचें तो उसकी सूंड, दांत, आंख, कान, मुख, अगले पैर चित्र में आवेंगे, और यदि इसे ही दांयी ओर से खींचा गया तो वह अन्य ढंग का होगा। इसी तरह बांयी ओर कैमरा रखकर फोटो खींचने से हाथी का चित्र पहिले तीन चित्रों से विलक्षण होगा। इस तरह एक ही हाथी के ये चित्र भिन्न भिन्न दिशा और कोणों से भिन्न भिन्न प्रकार के होंगे। यद्यपि ये सभी एक दूसरे से विलक्षण हैं, तथापि हैं सब वास्तविक और एक ही हाथी के।

इस तरह किसी पदार्थ के स्वरूप की छानबीन की जाए तो वह अनेक धर्मात्मक (अनेक रूप का) सिद्ध होता है, एक धर्म रूप ही प्रमाणित नहीं होता, इसलिए जगत् के समस्त पदार्थ अनेकान्त रूप हैं, एकान्त (एक ही रूप) रूप कोई भी पदार्थ सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार सूक्ष्म तथा स्थूल विचार से अनेकान्तवाद, यानी अनेकान्त का सिद्धान्त यथार्थ, अकाट्य और तर्कसंगत सिद्ध होता है।

जब हम कहते हैं कि 'आत्मा नित्य है', तब हमारा दृष्टिकोण मौलिक आत्म द्रव्य पर होता है, क्योंकि आत्मा अभौतिक द्रव्य है अतः वह न तो अस्त्र शस्त्रों से छिन्न भिन्न हो सकता है न अग्नि में जल सकता है, न जल में गल सकता है और न वायु से सूख सकता है। वह अनादि काल से अनन्त काल तक बना रहता है। परन्तु जब हम सांसारिक आवागमन को मुख्य करके आत्मा की पर्याय (भव-दशा) का विचार करते हैं तो आत्मा अनित्य सिद्ध होता है, क्योंकि आत्मा कभी मनुष्य भव में होता है, कभी मरकर पशु-पक्षी आदि हो जाता है। इस तरह एक ही आत्मा में नित्यता भी है और अनित्यता भी। 'पुरुषार्थ सिद्धयुपाय' में इसका एक सुन्दर उदाहरण दिया गया है—

'एकेनाकर्षन्ती, श्लथयन्ती वस्तुतत्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी, नीतिर्मन्थान नेत्रमिव गोपी' ॥२२५॥

अर्थात् जिस तरह दही को मथकर मक्खन निकालने वाली ग्वालिन मथानी की रस्सी को एक हाथ से खींचती है और दूसरे हाथ की रस्सी को ढीला कर देती है, इसी तरह जैन-न्याय निर्णय पद्धति (अनेकान्तवाद) पदार्थ के किसी एक धर्म को मुख्य करती है, तो दूसरे को गौण (अमुख्य) कर देती है उसे सर्वथा छोड़ नहीं देती।

इस प्रकार अनन्त धर्मात्मक पदार्थों के किसी धर्म को मुख्य और अन्य धर्म को गौण करके विचार करने से तत्त्व का ठीक ठीक निर्णय होता है।

सप्तभंगी

समस्त चेतन अचेतन पदार्थ स्व द्रव्य, स्व-क्षेत्र, स्व काल और स्व भाव की अपेक्षा से सत्स्वरूप हैं और पर द्रव्य, पर-क्षेत्र, पर काल और पर भाव की अपेक्षा असत् स्वरूप हैं। यदि ऐसा अपेक्षा स्वीकार न किया जाए तो किसी इष्ट तत्त्व की व्यवस्था नहीं बन सकती—

'स्यादस्ति स्वचतुष्टयादिरत स्यान्नास्त्यपेक्षाक्रमात्
तत्स्यादस्ति च नास्ति चेति युगपत् सा स्यादवक्तव्यता।

तद्वत् स्यात् पृथगस्ति नास्ति युगपत् स्यादस्तिनास्त्याहिते
वक्तव्ये गुणमुख्य भावनियतः स्यात् सप्तभंगी विधिः ।।

—श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्रम् ।।१०।।

अर्थात् स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्त्यवक्तव्य, स्यान्नास्त्य-वक्तव्य, स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य—ये सात भग हैं। वक्तव्य मे गौण और मुख्य भाव नियत करने वाली यह 'सप्तभंग' विधि है।

भंग शब्द के भाग, लहर, प्रकार, विघ्न आदि अनेक अर्थ होते हैं, उनमे से यह 'भंग' शब्द प्रकारवाची लिया है; तदनुसार वचन के भंग सात प्रकार के हो सकते हैं, उससे अधिक नही क्योकि आठवी तरह का कोई वचन-भंग नही होता और सात से कम मानने से कोई-न-कोई वचन-भंग छूट जाता है।

इसका कारण यह है कि किसी भी पदार्थ के विषय मे जो भी बात कही जाती है, वह मौलिक रूप से तीन प्रकार की होती है या हो सकती है—१. 'है' (अस्ति) के रूप मे; २. 'नही' (नास्ति) के रूप मे; ३. न कह सकने योग्य (अवक्तव्य) के रूप मे।

'इन तीन मूल अगो को परस्पर मिलाकर तीन युगल (द्वि-सयोगी) रूप होते हैं—१. 'है' और 'नही' (अस्ति-नास्ति) रूप; २. 'है' और 'न कह सकने योग्य' (अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य)।

इस तरह वचन-भंग सात तरह के हैं। इन सातो भगो के समुदाय को (सप्तानां भङ्गानां समुदायः सप्तभंगी) 'सप्तभंगी' कहते हैं।

(१) प्रत्येक वस्तु अपने (विवक्षित-कहने के लिए इष्ट) दृष्टिकोण (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) की अपेक्षा 'अस्ति' (मौजूद) रूप होती है, जैसे—राम अपने पिता दशरथ की अपेक्षा 'पुत्र' है।

(२) प्रत्येक वस्तु अन्य वस्तुओ की या अन्य (अविवक्षित) दृष्टिकोणों की अपेक्षा अभाव (नास्तित्व) रूप होती हैं; जैसे—राम राजा जनक (की अपेक्षा) के पुत्र नही हैं।

(३) दोनो दृष्टिकोणो को क्रमशः कहने पर वस्तु अस्तित्व तथा अभाव (अस्ति-नास्ति) होती है; जैसे—राम दशरथ के पुत्र है, जनक के पुत्र नही है।

(४) परस्पर-विरोधी ('है' तथा 'नही' रूप) दोनो दृष्टिकोणो से एक साथ (युगपद्) वस्तु 'वचन द्वारा कही नही जा सकती' क्योकि वैसा वाचक (कहने वाला) कोई शब्द नही है। अत. उस अपेक्षा से वस्तु अवक्तव्य (न कह सकने योग्य) होती है; जैसे—राम राजा दशरथ तथा राजा जनक की युगपद् (एक साथ एक शब्द द्वारा) अपेक्षा कुछ नही कहे जा सकते।

(५) वस्तु 'न कह सकने योग्य' (युगपद् कहने की अपेक्षा अवक्तव्य) होते हुए भी अपने

दृष्टिकोण में होती तो है (स्यात् अस्ति अवक्तव्य) जैसे—राम यद्यपि दशरथ तथा जनक की अपेक्षा एक ही शब्द द्वारा अवक्तव्य (न कहे जा सकने योग्य) हैं फिर भी राजा दशरथ की अपेक्षा पुत्र है (स्यात् अस्ति अवक्तव्य)।

(६) वस्तु अवक्तव्य (युगपद् कहने की अपेक्षा) होते हुए भी अन्य दृष्टिकोण में नही रूप (स्यात् नास्ति अवक्तव्य) है, जैसे—राम दशरथ तथा जनक की युगपद् अपेक्षा पुत्र नही हैं (स्यात् नास्ति अवक्तव्य)।

(७) परस्पर विरोधी (है और नही रूप) दृष्टिकोणो में युगपद् (एक साथ एक ही शब्द द्वारा) अवक्तव्य (न कह सकने योग्य) होते हुए भी वस्तु क्रमश उन परस्पर विरोधी दृष्टिकोणो से है, नही (अस्ति नास्ति अवक्तव्य) रूप होती है, जैसे—राम राजा दशरथ तथा राजा जनक की अपेक्षा युगपद् रूप से कुछ भी नहीं कहे जा सकते (अवक्तव्य हैं) किन्तु युगपद् अपेक्षया अवक्तव्य होकर भी क्रमश राम राजा दशरथ के पुत्र हैं, राजा जनक के पुत्र नहीं हैं।

इस प्रकार सप्तभगी प्रत्येक पदार्थ के विषय मे लागू होती है। सप्तभङ्गी के लागू होने के विषय में मूल बात यह है कि प्रत्येक पदार्थ मे अनुयोगी (अस्तित्व रूप) और प्रतियोगी (अभावरूप नास्तित्व रूप) धर्म पाये जाते हैं तथा अनुयोगी प्रतियोगी धर्मों को युगपद् (एक साथ) किसी भी शब्द द्वारा न कह सकने योग्य रूप अवक्तव्य धर्म भी प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान है। अनुयोगी, प्रतियोगी और अवक्तव्य इन तीनो धर्मों के एक सयोगी (अकेले अकेले) तीन भग होते हैं तथा तीनो का मिलकर त्रि-सयोगी भग एक होता है। इस तरह सब मिलाकर सात भग हो जाते हैं।

आचार्य कहते हैं—'अक्षरेण मिमते सप्त वाणीः' —सप्तविध वाक् अक्षर द्वारा व्यक्त है। यहाँ प्रथमा, द्वितीयादि सप्त विभक्तियाँ ही गन्तव्य नही है अपितु वाक् की सप्तभगिमाएँ भी व्याख्यात हुई है। 'सप्त व्याहृति वाणी' की सप्तविध—सस्थान ही होनी चाहिए। नही तो कर्ता कर्म करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण आदि कारक कैसे सिद्ध कर सकेगे, इसलिए सप्तविध भग ही शब्द शास्त्र से एव वाणी से कथन करना सम्भव है।

स्याद्वाद

'स्याद्वादो विद्यते यत्र, पक्षपातो न विद्यते।
अहिंसाया प्रधानत्व, जैनधर्म स उच्यते॥

जानने और कहने में बहुत भारी अन्तर है क्योंकि जितना जाना जा सकता है उतना कहा नही जा सकता। इसका कारण यह है कि जितने ज्ञान के अश हैं, उन ज्ञान अशो के वाचक न तो उतने शब्द ही है और न ही उन सब ज्ञान अशो को कह डालने की शक्ति जीभ में है।

सामान्य रूप से है कि हम गुड़, आम, अनार शक्कर जैसी मिठास के अन्तर (मिठास) को यथावत पृथक्-पृथक् नही कर सकते। किसी भी इष्ट या अनिष्ट पदार्थ के गुण सुनने देखने सूंघने में जो आनन्द या दुःख होता है, कोई भी मनुष्य उस हर्ष-विषाद भाव को ठीक उसी रूप में

मुख द्वारा कह नही सकता। परीक्षा मे उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थी को अपना परीक्षाफल जानकर जो हर्ष हुआ, उस हर्ष को हजार यत्न करने पर भी वह ज्यों-का-त्यों कह नहीं सकता। गठियावात के रोगी को गठियावात की जो पीड़ा होती है, उसे वह शब्दों मे नही बतला सकता।

इस तरह एक तो जानने और कहने मे यह एक बड़ा भारी अन्तर है। दूसरे जितना विषय एक समय मे जाना जाता है यदि उसे मोटे रूप से भी कहना चाहें तो उसके कहने मे जानने की अपेक्षा समय बहुत अधिक लगता है। किसी सुन्दर उद्यान का एक दृश्य देखकर जो उस बगीचे के विषय मे एक ही मिनट मे ज्ञान हुआ, उस सब को कहने मे अनेक मिनट ही नही अपितु अनेक घंटे लग जाएगे; क्योकि जिन सब बातो को नेत्रो ने एक मिनट मे जान लिया है, उनको जीभ (युगपद्) एक साथ कह नही सकती। उन बातो को क्रम से एक-एक करके कहा जा सकेगा।

इसी कारण प्राचीन ग्रंथकारो ने लिखा है कि सर्वज्ञ अपने ज्ञान द्वारा जितना त्रिकालवर्ती तथा त्रिलोकवर्ती पदार्थों को युगपद् (समसामयिक) जानता है, उसका अनन्तवां भाग विषय उसकी वाणी से प्रगट होता है। जितना दिव्य-ध्वनि मे प्रगट होता है उसका अनन्तवां भाग चार ज्ञान-धारक गणधर अपने हृदय मे धारण कर पाते हैं। जितना विषय धारण कर पाते हैं तथा उनका अनन्तवाँ भाग शास्त्रो मे लिखा जाता है।

इस प्रकार जानने और उस जाने हुए विषय को कहने मे महान् अन्तर है। एक साथ जानी हुई बात को ठीक उसी रूप मे एक साथ कह सकना असम्भव है।

अतः जिस पदार्थ के विषय मे कुछ कहा जाता है तो एक समय मे उसकी एक ही बात कही जाती है, उस समय उसकी अन्य बाते कहने मे छूट जाती हैं; किन्तु वे अन्य बातें उसमे होती अवश्य हैं। जैसे कि जब यह कहा जाए कि 'राम राजा दशरथ के पुत्र थे'।

उस समय राम के साथ लगे हुए सीता, लक्ष्मण, लव-कुश आदि अन्य व्यक्तियो के पति, भ्राता, पिता आदि के सम्बन्ध कहने से छूट जाते हैं, जो कि यथार्थ हैं। यदि उन छूटे हुए सम्बन्धो का अपलाप कर लिया जाए (सर्वथा छोड़ दिया जाए) तो राम-सम्बन्धी परिचय अधूरा रह जाएगा और इसी कारण वह कहना गलत प्रमाणित होगा। इस गलती या अधूरेपन को हटाने के लिए जैन-धर्म-सिद्धान्त ने प्रत्येक वाक्य के साथ 'स्यात्' शब्द लगाने का निर्णय दिया है।

'स्यात्' शब्द का अर्थ 'कथंचित्' यानी 'किसी-दृष्टिकोण से' या 'किसी अपेक्षा से' है। अर्थात् जो बात कही जा रही है, वह किसी एक अपेक्षा से (किसी एक दृष्टिकोण से) कही जा —‌ है, जिसका अभिप्राय यह प्रगट होता है कि यह विषय अन्य दृष्टिकोणो से या अन्य अपेक्षाओं से अनेक प्रकार भी कहा जा सकता है।

तदनुसार राम के विषय मे यों कहेगे—स्यात् (राजा दशरथ की अपे 'स्यात्' (सीता की अपेक्षा) राम 'पति' हैं। स्यात् (लक्ष्मण की अपेक्षा) = स्यात् (लवाकुश की अपेक्षा) राम 'पिता' हैं। स्यात् (राजा जनक की (दामाद) हैं।

इस तरह 'स्यात्' शब्द लगाने से उस बड़ी भारी त्रुटि उपयुक्त पांच बातों में से एक ही बात कहने पर होती है, का सम्यक् परिहार हो जाता है। यानी—राम 'पुत्र' तो हैं किन्तु वे सर्वथा (हर तरह से) पुत्र ही नहीं है, वे पति, भाई, पिता, दामाद आदि भी तो हैं। हाँ, वे राजा दशरथ की अपेक्षा से पुत्र ही हैं। इस 'अपेक्षा' शब्द से उसके अन्य दूसरे पति, भाई, पिता, दामाद आदि सम्बन्ध सुरक्षित रहे आते हैं।

इस प्रकार 'स्यात्' निपात के संयोग से संसार के सभी सैद्धान्तिक विवाद शान्त हो जाते हैं और पूर्ण सत्य का ज्ञान हो जाता है।

जगत में विभिन्न मत-मतान्तर अपने अपने एक-एक दृष्टिकोण ही को सत्य मानकर दूसरों के दृष्टिकोण से प्रकट की गई मान्यता असत्य बतलाकर परस्पर विवाद करते हैं। उनका विवाद 'स्यात्' पद लगाकर दूर किया जा सकता है।

अनेकान्तवाद और सप्तभंगी स्याद्वाद के रूपान्तर हैं। स्याद्वाद एक वास्तविक अकाट्य सिद्धान्त है, किन्तु यह दार्शनिक गूढ़ विषय है, अतः कुछ कठिन है। अनेक व्यक्ति इसका स्वरूप ठीक न समझ सकने के कारण इसे गलत ठहराने का यत्न करते हैं। ऐसी त्रुटि साधारण व्यक्ति ही नहीं, बड़े-बड़े विद्वान् भी कर जाते हैं।



१६ | जैन संस्कृति का विकास

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

१. कालचक्र और प्रागैतिहासिक काल

धर्म और संस्कृति :

इतिहास अतीत की कहानी है और उसका एक उद्देश्य उन पुराण पुरुषो के पुण्यचरित्र की स्मृति का सरक्षण है, जिन्होंने मानव समाज के उन्नयन मे उल्लेखनीय योग दिया है। राजनैतिक, आर्थिक आदि लौकिक क्षेत्रो मे नेतृत्व करने वाले व्यक्तियो का इतिवृत्त लौकिक इतिहास मे दिया जाता है, तो सास्कृतिक इतिहास मे धार्मिक सस्कृति के विकास मे पथचिह्न बनने वाले और लोक को कल्याणकारी सुपथ दिखाने वाले महापुरुषो का चरित्र चित्रण होता है।

सस्कृति प्राय. सदैव से सर्वत्र धर्माश्रित रहती आई है और प्रत्येक सस्कृति की पृष्ठभूमि मे तत्तद धर्म की कतिपय मौलिक मान्यताये नीव के रूप मे रहती हैं। अस्तु, जब हम प्रदेश विशेष राजस्थान के परिप्रेक्ष्य मे जैन संस्कृति का अध्ययन करने के लिए उक्त सस्कृति के उद्गम एवं विकास का अनुसधान करते हैं तो वह तत्सम्बन्धी जैन परम्पराओ एव मान्यताओ के आश्रय से ही करते हैं, जो स्वाभाविक भी है, उचित और युक्तियुक्त भी।[1]

विश्व : अनादि-अनन्त :

जैनधर्म एव संस्कृति की यह असदिग्ध मौलिक मान्यता है कि चराचर जगत् या विश्व अनादि और अनन्त है। जो विभिन्न एवं विविध द्रव्य विश्व के उपादान हैं, जिनसे कि वह निर्मित है, वह सब भी अनादि और अनन्त है। असत् से सत् की उत्पत्ति नही होती, और सत् का कभी विनाश नहीं होता। अतएव, इस विश्व को न कभी किसी ने सृष्टि की, और न कभी किसी के द्वारा उसका अन्त ही होगा किन्तु साथ ही, इस शाश्वत जगत् मे उसके उपादान द्रव्यो मे निरन्तर परिवर्तन, परिणमन, पर्याय से पर्यायान्तर होते रहते है। वर्तमान पर्याय का नाश होता है और नवीन का उत्पाद और उसका निमित्त है कालचक्र।

१—गूरिनग, द डाक्ट्रिन ऑव जैनाज, पृ० १८

कालचक्र

काल का प्रवाह भी अनादि-अनन्त है। काल का सबसे छोटा अविभाज्य अंश 'समय' कहलाता है, और सबसे बडी व्यवहार्य इकाई 'कल्पकाल'। एक कल्पकाल का परिमाण बीस कोटाकोटि सागर' होता है जो स्थूलत सख्यातीत वर्षों का होता है। प्रत्येक कल्पकाल के दो विभाग होते हैं—एक अवसर्पिणी और दूसरा उत्सर्पिणी, जो एक के अनन्तर एक आते रहते हैं। अवसर्पिणी उत्तरोत्तर ह्रास एव अवनति का युग होता है। और उत्सर्पिणी उत्तरोत्तर विकास एव उन्नति का। इन दोनो मे से प्रत्येक छ भागो मे विभक्त होता है, और अवसर्पिणी के प्रारभ से उक्त छ युगा या कालो की गणना प्रारम्भ होती है। यथा—प्रथमकाल (सुखमा-सुखमा), द्वितीयकाल (सुखमा), तृतीय काल (सुखमा-दुखमा), चतुर्थकाल (दुखमा सुखमा), पचमकाल (दुखमा), और षष्ठकाल (दुखमा-दुखमा)।

इनमे से प्रथम काल मे मनुष्यो एव अन्य प्राणियो के शरीर का बल आकार, आयु आदि सर्वाधिक होते हैं और सबप्रकार का शारीरिक एव मानसिक सुख अत्यन्त होता है। दूसरे काल मे इन सब चीजो मे कमी होती जाती है, तीसरे मे और अधिक कमी होती है तथा साथ म दु ख का भी समावेश होने लगता है, तथापि ये तीना काल सुख एव भोग प्रधान होते हैं और जीवन पूर्णतया प्रकृत्याश्रित होता है, अतएव सामूहिक रूप से प्रथम तीना काल भोगयुग या भोगभूमि काल कहलाते हैं। चौथे काल से कर्मभूमि या कर्मयोग का उदय होता है। शरीर के आकार, बल, आयु सुख और भोग मे उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है, तथा दु ख की प्रधानता होने लगती है। मात्र प्रकृति पर निर्भर रहने से काम नही चलता। स्वपुरुषार्थ एव कृत्रिम उपायो का सहारा अनिवार्यत आवश्यक हो जाता है। अतएव इस चौथे काल मे ही तीर्थंकरो के रूप में महान् जननेताओ का आविर्भाव होता है, जो अपने-अपने समय मे मनुष्यो को सुकर्म और धर्म की शिक्षा देते हैं। पाचवें काल मे जीवन सघर्ष मे और अधिक वृद्धि हो जाती है तथा सुख नाम मात्र का ही रह जाता है। छठे काल म आत्यन्तिक दु ख की प्रधानता रहती है और इस काल के अन्त तक सर्वव्यापी पतन अपनी चरमावस्था को पहुँच जाता है तथा ह्रास चक्र की चरम सीमा स्पर्श करता है। उसके उपरान्त घडी के पेन्डुलम की भांति, कालचक्र पीछे को लौटता है—उसका प्रत्यावर्तन होता है और पुन छठे से प्रारम्भ होकर पाँचवा, चौथा, तीसरा, दूसरा, और पहिला काल क्रमश आते हैं। यह उत्सर्पिणी का युग उत्तरोत्तर विकास एव उन्नति का युग होता है।[1] इसके प्रथम तीन काला मे कर्मभूमि की व्यवस्था रहती है और अन्तिम तीन मे भोगभूमि की। इस अनादि कालचक्र म युगारभ एव वर्षारभ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा से होता है।

अनन्त आकाश के एक भाग म पुरुषाकार परिमित लोक है। उसी मे जीव अजीव आदि विभिन्न द्रव्य पाये जाते हैं, वही चराचर जगत् और हमारा विश्व है। उसके मध्यभाग को मध्यलोक कहते हैं। मध्यलोक के ठीक मध्य म जम्बूद्वीप है जिसके केन्द्र म सुमेरु पर्वत स्थित है और चारों ओर लवण समुद्र है। इस जम्बूद्वीप के ही एक भाग म, उत्तर म हिमवन पर्वत तथा दक्षिण म तीन ओर लवणसमुद्र से वेष्ठित भरत क्षेत्र है। इसके मध्य मे विजयार्ध पर्वत है। हिमवन पर्वत से निकल कर, अनेक सहायक नदियो के परिवार से युक्त होकर, एक पूर्व की ओर और दूसरी पश्चिम की ओर बह

१—शूब्रिंग, द डाक्ट्रिन ऑव जनाज, पृ० १८–१९

कर महासमुद्र मे मिलने वाली गंगा और सिंधु नाम की दो महानदियां उक्त भरत क्षेत्र को छ खण्डो मे विभाजित करती हैं। इन खण्डों मे से गगा और सिंधु का मध्यवर्ती प्रदेश आर्य खण्ड कहलाता है। प्राचीन भारत का मध्यदेश यही है। इसी प्रदेश मे तीर्थंकरो एव अन्य महापुरुषो का जन्म हुआ। यही भारतीय धन, विज्ञान, कला और सभ्यता तथा भारतीय संस्कृति की विभिन्न धाराओं का उदय, विकास एवं परिपोषण हुआ। वर्तमान राजस्थान भी भरत क्षेत्र के उसी मध्यदेश या आर्यखण्ड का एक अंग है।

इस समय कल्पकाल का अवसर्पिणी विभाग चल रहा है। वर्तमान अवसर्पिणी की यह विशेषता है कि इसमे कतिपय अपवाद या सनातन नियम विरुद्ध कुछ अनोखी बातें भी हो जाया करती हैं। अतएव सामान्य अवसर्पिणी से भेद करने के लिये इसे हुडावसर्पिणी कहते हैं। इसके प्रथम चार भाग व्यतीत हो चुके है और पाचवा भाग या आरा (आरक) चल रहा है जिसके लगभग अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और साढे अठारह सहस्र वर्ष शेष हैं।

कुलकर :

वर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम तीनो कालो मे जीवन अत्यन्त सरल, स्वच्छ, स्वतन्त्र एवं प्राकृतिक था। मनुष्यो की समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति दश प्रकार के तथाकथित कल्पवृक्षो से स्वत: हो जाया करती थी। मनुष्य शान्त एव निर्दोष था। कोई सघर्ष या द्वन्द्व नही था, अत. कोई मानवकृत व्यवस्था भी नही थी।[1] आधुनिक भूतत्व एव नृतत्व विज्ञान सम्मत आदिम युगीन प्रथम, द्वितीय एव तृतीय युगो की वस्तुस्थिति के साथ उपर्युक्त जैन मान्यता का अद्भुत सादृश्य है।[2] अवसर्पिणी के तीसरे काल के अन्तिम पाद मे जब भोगभूमि का अवसान होने लगा और कालचक्र के प्रभाव से होने वाले अवस्था-परिवर्तनो को देखकर लोग शकित एव भयभीत होने लगे तो उनका समाधान, मार्ग-दर्शन एवं नेतृत्व करने के लिये इस देश मे, एक के बाद एक, चौदह कुलकरो या मनुओ का प्रादुर्भाव हुआ। इस युग की वस्तुस्थिति आधुनिक पुराशास्त्रियो को प्रागैतिहासिक पाषाणयुगीन स्थिति से मेल खाती है।[3]

कुलकरो की सख्या तथा उनमे से कुछएक के नाम अथवा क्रम के विषय मे कतिपय मतभेद है।[4] बहुमान्य मत के अनुसार उस काल मे चौदह कुलकर हुये। जीवन की रक्षा एवं जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओ के लिये बढ़ते हुये संघर्षों के कारण उस युग के मनुष्य की सहज शान्ति जब भंग होने लगी तो उसने स्वयं को कुलो (जनो, समूहो या कबीलो) मे संगठित करना आरंभ कर दिया। इस प्रकार कुलो की व्यवस्था करने वाले और उनका नायकत्व एवं नेतृत्व करने वाले कुलमान्य व्यक्ति कुलकर कहलाये। वे आवश्यकतानुसार आदेश-निर्देश भी देते थे, मर्यादायें निर्धारित करते थे और

१–डॉ० हीरालाल जैन, भारतीय सस्कृति मे जैनधर्म का योगदान पृ० ६
२–डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ० २०–२१
३–कामता प्रसाद जैन, दी रिलीजन ऑव तीर्थंकराज, पृ० ३७–३८
४–जे० सी० सिकदार, कुलकर सिस्टम, जैनजर्नल VII–३, पृ० १४३, आ० हस्तीमलजी, जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग १, पृ० ४–६; शूब्रिग, वही, पृ० १६–२०।

व्यवस्था देते थे, इसलिये मनु भी कहलाते थे। उन्ही की सन्तति होने के कारण इस देश के निवासी मानव कहलाये।

सर्वप्रथम मनु या कुलकर प्रतिश्रुति थे। उन्होंने लोगो को सूर्य और चन्द्रमा के उदय एवं अस्त होने जैसी प्राकृतिक घटनाओं का रहस्य बताया। चन्द्रास्त एवं सूर्योदय एक साथ पहली बार जब लक्ष्य मे आये तभी मे दिन और रात्रि का व्यवहार और वर्ष का प्रारम्भ माना जाने लगा।[1] यह श्रावण कृष्ण प्रतिपदा का प्रातःकाल था। दूसरे कुलकर सन्मति ने लोगो को नक्षत्रो एवं तारिकाओं का ज्ञान दिया। वह सर्वप्रथम ज्योतिर्विद थे। तीसरे कुलकर क्षेमंकर ने वन्य पशुओं से निर्भय रहना और उनमे से कुछ को पालतू बनाना सिखाया। चौथे कुलकर क्षेमंधर ने सिंह आदि हिंसक पशुओं से स्वरक्षा के लिये दण्ड (डंडे), पाषाण आदि का प्रयोग सिखाया। पाचवें कुलकर, सीमंकर के समय तक अधिकतर कल्पवृक्ष नष्ट हो गये थे और जो बचे थे उनके स्वामित्व को लेकर झगड़े होने लगे, अतएव इस कुलकर ने प्रत्येक कुल के अधिकार क्षेत्र की सीमा निर्धारित करके उन्हें संघर्षों से बचाया। इन पाचो कुलकरो ने भोग युग के अवसान और कर्मयुग के आगमन की पूर्व सूचना देते हुये अपने अपने समय के मानव कुलों को बदलती हुई परिस्थितियो के अनुकूल जीवन बिताने की शिक्षा दी। अपराधियो के लिये वे 'हाकार' नीति का प्रयोग करते रहे, अर्थात अपराधी को 'हा' कह देना भर पर्याप्त था, और किसी दण्ड की आवश्यकता नही होती थी।

छठे कुलकर सीमंधर ने बचे खुचे कल्पवृक्षों पर वैयक्तिक अधिकार की सीमायें निश्चित कर दी—वैयक्तिक सम्पत्ति की कल्पना का प्रारंभ यही से हुआ समझा जा सकता है। सातवें कुलकर विमलवाहन ने हाथी आदि पशुओं को पालतू बनाकर बाधे रखना और सवारी आदि के लिये उनका उपयोग करना सिखाया। आठवें कुलकर चक्षुष्मान के समय मे भोगभूमिज युगलिया स्त्री-पुरुष अपनी युगलिया सन्तान को जन्म देकर भी जीवित रहने लगे और उन्हें देखने का आनन्द प्राप्त करके मरने लगे। इसके पूर्व वे सन्तान को जन्म देकर तुरन्त मर जाते थे। इस कुलकर ने उन्हें सन्तान सुख प्राप्त करना सिखाया। नौवें कुलकर यशस्वन ने लोगो को अपनी सन्तान से स्नेह करना और उनका नामकरण आदि करना सिखाया। दसवें कुलकर अभिचन्द्र ने बालको का रोना चुप कराने उन्हें खिलाने, बुलवाने और उनका पालन पोषण आदि करने की शिक्षा लोगो को दी। छठे से दसवें कुलकर तक 'हा' के साथ 'मा' (नही, मत करो) का भी दण्डनीति के रूप मे प्रयोग हुआ।

ग्यारहवें मनु चन्द्राभ थे। इनके समय मे लोग अति शीत, तुषार एवं वायु के प्रकोप से दुःखी और भयभीत हुये। कुलकर ने उनका समाधान किया। बालकों का लालन पालन, तथा अन्य उपयोगी बातें भी सिखाई। बारहवें कुलकर मरुदेव थे, जिनके समय मे मेघ गर्जन और बिजली की चमक के साथ वर्षा होने लगी, नदी नाले बहने लगे। लोग भयभीत हुए। मरुदेव ने उन्हें समझाया कि भोग भूमि समाप्त होने वाली है और कर्म भूमि अति निकट है, अतः कर्म करना प्रारंभ करो। उन्होंने नाव बनाकर लोगो को नदी पार करना तथा पहाडो पर चढ़ना भी सिखाया। तेरहवें कुलकर प्रसेनजित ने सद्यजात बालको की जरायु हटाने की तथा उनका भली प्रकार लालन-पालन करने की शिक्षा दी। चौदहवें कुलकर नाभिराय थे जिन्होंने सद्यजात शिशुओं की नाभिनाल काटने की विधि बताई

1—सी० आर० जैन, ऋषभदेव, फाउन्डर ऑव जैनिज्म पृ० ५२

संभवतया इन्ही के नाम पर इस देश का प्राचीनतम नाम अंननाभ या अननाभ प्रसिद्ध हुआ था। इस समय तक समस्त कल्पवृक्ष नष्ट हो चुके थे, किन्तु साथ ही सहज उत्पन्न विविध औपधियां, धान्य, फल-फूलादि उगने लगे थे। नाभिराय ने क्षुधानिवारण के लिये इन स्वतः उत्पन्न शालि, जौ, वल्ल, तुवर, तिल, उड़द आदि का भक्षण करना बताया। एक मतानुमार उन्होने अग्नि जलाना, अन्न पकाना और कपड़े बुनना भी सिखाया। अन्य मतानुसार ये आविष्कार उनके पुत्र ऋषभदेव ने अपने कुमारकाल मे किये थे।[1] अन्तिम चार कुलकरो के समय में दण्डनीति मे 'धिक्कार' का भी प्रयोग होने लगा था।

जैन परम्परा मे मान्य भोगभूमि की व्यवस्था तथा कुलकरो से सम्बन्धित वर्णन आधुनिक चिन्तको एवं विचारक मनीषियो के उस वर्णन के साथ अद्भुत सादृश्य रखते हैं जो वे मानवजाति की आदिम शैशावास्था मे मानवीय सभ्यता के उदयकाल तक हुये, उसके विकास-क्रम के सम्बन्ध मे प्रतिपादित करते हैं। कुलो, जनों, कबीलो आदि की मान्यता भी अमरीका के आदिवासियों तथा यूनान एवं रोम के आदिवासियो मे उसी प्रकार रही मानी एवं जानी जाती है।[2] ये तथ्य जहाँ इस जैन परम्परा को विश्वसनीय सिद्ध करते हैं, वही जैन धर्म एवं संस्कृति की अत्यन्त प्राचीनता के भी सूचक है।

तीसरे काल अर्थात् भोगभूमि और कुलकर युग के साथ वास्तविक प्रागैतिहासिक युग समाप्त हो जाता है और अनुश्रुतिगम्य इतिहास (प्रोटोहिस्टरी) का प्रारम्भ होता है। कर्मभूमि और सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास का भी वही से ॐ नमः होता है, और इस आने वाले युग के प्रमुख नेता चौबीस तीर्थंकर हैं तथा गौण नेता उनतालिस अन्य महापुरुष हैं जो सब मिलकर त्रिपष्टिशलाका-पुरुष कहलाते हैं।[3]

तीर्थ नाम धर्मशासन का है अतएव जो महापुरुष जन्म-मरण रूपी दुःख के आगार संसार सागर से पार करने के लिये धर्मतीर्थ की स्थापना या प्रवर्तन करते है, वे तीर्थंकर कहलाते है। आगे के समय मे ऐसे चौबीस तीर्थंकर हुये। उनके अतिरिक्त बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव (नारायण), नौ प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण) तथा नौ बलदेव (बलभद्र), इस प्रकार कुल मिलाकर त्रेसठ शलाका पुरुष हुये।

२. ऋषभ से नमि पर्यन्त–इक्कीस तीर्थंकर

ऋषभदेव :

अन्तिम कुलकर नाभिराय की चिरसंगिनी मरुदेवी की कुक्षि से प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ का जन्म चैत्र कृष्णा नवमी (अष्टमी) के दिन हुआ था। इनके जन्मस्थान पर ही अयोध्या (इक्ष्वाकु भूमि) नाम की नगरी बसी, जिसके अपरनाम विनीता और साकेत भी हुये। भगवान का लांछन वृषभ था। तथा ऋषभ शब्द का अर्थ धर्म है, और यह स्वयं धर्म के साक्षात्, सर्वप्रथम, सजीव रूप थे, अतएव इनका नाम

१–तिलोयपण्णति, IV गा० ४२१–५०६, पृ० १९७–२०६; आचार्य हस्तीमलजी, वही पृ० ३–५, ६११–६१२; सिकदार, वही, पृ० १४३–१४६; शूब्रिंग, वही पृ० १९–२०

२–सिकदार, वही, पृ० १४२–१४३, १५०; एन्जेल्स कृत दी ओरिजिन ऑव दी फैमिली, पृ० २४–२९, ८३–८४।

३–जिनसेन गुणभद्र कृत महापुराण तथा हेमचद्र कृत त्रिपष्टिशलाका पुरुषचरित्।

ऋषभ, ऋषभदेव या ऋषभनाथ (वृषभदेव या वृषभनाथ भी) प्रसिद्ध हुये। इनके गभ मे आते ही देवताओ ने जन्मस्थान मे स्वणवृष्टि की थी, इसी से ये हिरण्यगभ भी कहलाये। वयस्क होते ही इन्होने कुलो की व्यवस्था अपने हाथ मे ले ली अतएव ये कुलकर और मनु भी कहलाये साथ ही प्रथम मानव (मनुओ की स तान) भी थे। इस कल्पकाल मे मानवी सभ्यता के आद्य जनक होने के कारण आदि पुरुष भी थे। प्रथम लोकनायक होने के कारण आदिनाथ, परमात्मपद को प्राप्त होने वाले प्रथम व्यक्ति होने के कारण आदिदेव आदीश्वर, आदिब्रह्म तथा महादेव कहलाये। इन्होने जो कुछ किया स्वय किया, किसी अन्य की शिक्षा या उपदेश से नही किया, अतएव ये स्वयभू थे और प्रजा का विधिवत पालन करने के कारण प्रजापति भी कहलाते थे। इक्षुदण्ड (गन्ने) का रस निकालना और उस रस को भोज्य पदाथ के रूप मे पान करना इन्होने सवप्रथम लोगो को सिखाया। इसलिय वे इक्ष्वाकु एव काश्यप नामो से भी प्रसिद्ध हुये, जो कि उनकी सन्तति के क्रमश वश एव गोत्र नामो के रूप मे प्रचलित हुये इस प्रकार भगवान ऋषभ के अनेक साथक नाम लोकप्रसिद्ध हुए।

अनुश्रुति है कि इन आदि पुरुष ने ही सवप्रथम जनता को खेती करना, आग जलाना, आग मे अन्न को भूनना, पकाना, मिट्टी के बतन बनाना, कपडा बुनना, मकान बनाना, ग्राम नगर आदि बसाना सिखाया था। इन्होने लोगो को असि मसि-कृषि शिल्प वाणिज्य विद्या नामक पट कर्मो द्वारा जीविकोपाजन करने का तथा पुरुषो की बहत्तर और स्त्रियो की चौसठ कलाओ का ज्ञान तत्कालीन जनता की बुद्धि, ग्रहणशीलता एव लोकदशा के अनुरूप दिया था। समाज-व्यवस्था के लिय उन्होने मनुष्यो को उनके कर्म, रुचि एव प्रवृत्ति के अनुसार क्षत्रिय वैश्य एव शूद्र, इन तीन वर्णो मे विभाजित किया। यह वणभेद वण या प्रतिष्ठाभेद सूचक न था, मात्र कमभेद सूचक था और अपरिवतनीय भी नही था। भगवान ने कच्छ और सुकच्छ की पुत्रियो न दा और सुनन्दा (अथवा सुनन्दा और सुमगला अपरनाम यशस्वती) के साथ विवाह करके मानव समाज मे सवप्रथम विवाह प्रथा प्रचलित की। इन दोनो पत्नियो से उनके अनेक पुत्र और ब्राह्मी एव सुन्दरी नाम की दो कन्यायें उत्पन्न हुईं। उन्होने पुत्रियो को भी पुत्रो के समान ही शिक्षा दी—ब्राह्मी को अक्षर ज्ञान की शिक्षा देन के निमित्त से ही प्राचीन ब्राह्मी लिपि का आविष्कार हुआ और सुन्दरी को अक ज्ञान दिया। इस प्रकार भगवान ऋषभ ने प्रजा का सम्यक्‌रित्या पालन, पथप्रदशन एव नेतत्व चिरकाल तक किया। ज्ञान विज्ञान एव विविध कलाओ की शिक्षा, सामाजिक सगठन, अथव्यवस्था, राज्य प्रशासन आदि के रूप मे मानवीय सभ्यता एव सस्कृति के बीजारोपण का प्रधान श्रेय इन्ही आदि पुरुष को है।

एक दिन उनकी राज्य सभा मे नीलाजना नाम की नतकी की नृत्य करते करते मृत्यु हो गई। इस आकस्मिक दुघटना को देखकर[1] भगवान् को ससार-देह भोगों की अस्थिरता एव क्षण भगुरता का भान हुआ। उनके चित्त मे विराग उत्पन्न हुआ और उन्होने सवस्व का परित्याग कर वन मे जाकर प्रव्रज्या ले ली तथा सव परिग्रह विमुक्त हो निग्रन्थ मुनि के रूप मे इन योगिराज ने दुद्धर तपश्चरण द्वारा आत्मसाधन करना प्रारभ किया। अन्य अनेक व्यक्तियो ने उनका अनुकरण किया, किन्तु उनमे से प्राय कोई भी उक्त कठिन माग पर न चल सके और अपने पथ से विचलित हो गये। स्वय योगीश्वर भगवान ने एक स्थान पर ही कायोत्सग योग से खडे रहकर छ मास की

१—यह उल्लेख दिगम्बर मान्यता के अनुसार है—सम्पादक

समाधि लगाई। उस अवधि के बीतने पर पारणा करने के लिये यत्र-तत्र विहार किया। वे मौन रहते थे, और लोग जानते नही थे कि वे क्या चाहते हैं अथवा उन्हें क्या करना है। इस प्रकार छः मास और व्यतीत हो गये। एक बार वे गजपुर (हस्तिनापुर) पधारे वहा राजा सोमयश के अनुज श्रेयांस कुमार ने पूर्वजन्म के संस्कारो से प्रेरित होकर भगवान् को इक्षुरस का आहार दिया। वह वैसाख शुक्ला तृतीया का दिन था जो तभी से अक्षयतृतीया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस घटना की पुण्यस्मृति मे कुमार श्रेयास ने दानस्थल पर एक रत्नमय स्तूप का निर्माण कराया।

भगवान् वहा से विहार करके पुनः तपश्चरण मे लीन हो गये। एक समय जब वे पुरिमताल नगर (वर्तमान प्रयाग-इलाहाबाद) के बाहर एक वटवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ बैठे थे, उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। वे सर्वज्ञ, केवलि, जिन, अर्हत परमेष्टि हो गये और स्वपुरुषार्थ से उक्त परमपद को प्राप्त करने के कारण वे स्वयंभु थे। वह वटवृक्ष भी अक्षयवट के नाम से लोकप्रसिद्ध हुआ।

अब ये सर्वज्ञ—'वीतराग-हितोपदेशी जिनेन्द्र देश-देश मे विहार करके लोक कल्याणार्थ धर्म प्रचार करने लगे। इस धर्म तीर्थ प्रवर्तन द्वारा उन्होने अपना तीर्थंकर पद चरितार्थ किया। एक अनुश्रुति के अनुसार यह धर्म चक्र प्रवर्तन सर्वप्रथम तक्षशिला नगरी मे हुआ था। भारत महादेश के राष्ट्रीय ध्वज चिह्न 'धर्म चक्र' का इतिहास यही से प्रारंभ होता है। भगवान की व्याख्यान सभा मे सभी प्राणियो को विना किसी भेदभाव के धर्म लाभ लेने का समान अवसर प्राप्त था, इसी कारण वे सभायें 'समवसरण' कहलाती थी।

चिरकाल तक अपने धर्मोपदेश द्वारा लोकहित करने के उपरान्त फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी (मतान्तर से माघ कृष्णा त्रयोदशी) की रात्रि मे कैलाश पर्वत (अब चीन अधिकृत तिब्बत मे स्थित) पर भगवान् ने निर्वाण-लाभ किया और मुक्तिरूपी शिव लक्ष्मी का वरण किया। तभी से शिवरात्रि पर्व प्रसिद्ध हुआ।

ये युगादि पुरुष भ० ऋषभदेव इस कल्पकाल मे धर्म के सर्वप्रथम प्रवर्तक और जैन परम्परा के प्रथम तीर्थंकर थे।[1]

पौराणिक हिन्दू धर्म मे भगवान ऋषभ की गणना विष्णु के प्रारम्भिक प्रमुख अवतारो मे की गई है। भागवत्, विष्णु, ब्रह्माड आदि अनेक ब्राह्मणीय पुराणो मे जैन अनुश्रुति से प्राय. सर्वथा मिलता-जुलता ही उनका वर्णन मिलता है। प्राचीन ऋग्वेदादि वेद ग्रन्थो तथा उत्तरकालीन बौद्ध त्रिपिटको में भी भगवान् ऋषभ के एकाधिक उल्लेख मिलते हैं। सिन्धु घाटी की पाच-छः सहस्र वर्ष प्राचीन सभ्यता के अवशेषों के उत्खनन मे प्राप्त नग्न—कायोत्सर्ग-ध्यानस्थ योगियो की मृण्मुद्राओ से उस काल एव प्रदेश मे ऋषभ धर्म तथा ऋषभदेव की उपासना का प्रचलन रहा पाया जाता है। प्राचीन यूनानी लेखकों के मेरु पर्वत निवासी आद्य भारतीय महापुरुष डायोनिसस से भी आदि पुरुष ऋषभदेव का ही अभिप्राय है। कई विद्वान तो पौराणिक देवता शिव (महादेय या शकर) की कल्पना का मूलाधार ऋषभ को ही मानते हैं। सेमेटिक (यहूदी-ईसाई-मुस्लिम आदि) परम्पराओ

---

१ महापुराण; त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित, सी० आर० जैन, वही; का० प्र० जैन, वही, पृ० ४१-४५; हीरालाल जैन, वही, पृ० ११, आचार्य हस्तीमलजी, वही, पृ० १३-६३; ज्यो० प्र० जैन, वही, पृ० २२-२४।

के आद्य मानव बाबा आदम भी आदि पुरुष ऋषभदेव ही प्रतीत होते हैं।[1] आधुनिक दृष्टि से भगवान ऋषभ का सुनिश्चित समय निर्धारित करना तो अत्यन्त दुष्कर है, किन्तु उनका अस्तित्व था इस विषय में संदेह करने की गुंजाइश नहीं है।

ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र एवं उत्तराधिकारी महाराज भरत थे, जो प्रथम तीर्थंकर के श्रावकोत्तम एवं प्रधान श्रोता भी थे। जो व्यक्ति धर्मात्मा, मन्दकषायी, अल्प संतोषी एवं ज्ञान ध्यान में लीन रहने वाले थे, उन्हें भरत ने ब्राह्मण संज्ञा देकर चतुर्थ वर्ण की स्थापना की। भरत ही सम्य संसार के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट थे। उन्होंने छह खंड पृथ्वी को दिग्विजय करके वसुंधरा का उपभोग किया। उन्हीं भरत के नाम पर यह महादेश भारतवर्ष या भारत कहलाया।[2] यह तथ्य महापुराण आदि प्राचीन जैन ग्रन्थों से ही नहीं, भागवत, विष्णु आदि ब्राह्मण पुराणों एवं वैदिक साहित्य से भी भलीभांति सिद्ध है।

सम्राट भरत के अनुज बाहुबलि अत्यन्त वीर एवं बलशाली थे। उन्हें तक्षशिला का — मतान्तर से दक्षिण देशस्थ पोदनपुर का राज्य मिला था। जब चक्रवर्ती दिग्विजय के लिये निकले तो मात्र बाहुबलि ही ऐसे नरेश थे जिन ने बिना युद्ध किये उनकी प्रभुसत्ता मानना अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप दोनों भाइयों के बीच भीषण द्वन्द्व युद्ध हुआ जो अनिर्णीत रहा, किन्तु बाहुबलि संसार से विरक्त हो गये और राज्य का परित्याग करके मुनि हो गये। एक ही स्थान में निश्चल ध्यानावस्थित खड़े रहकर उन्होंने चिरकाल तक दुद्धर तप किया। इन्हीं गोम्मटेश्वर बाहुबलि की अति विशाल काय प्रतिमायें दक्षिण भारत के अनेक स्थानों में विद्यमान हैं और संसार के आश्चर्यों में गिनी जाती हैं।

बाहुबलि के एक पुत्र सोमयश गजपुर के नरेश थे—उन्हीं से प्राचीन क्षत्रियों का चन्द्र या सोमवंश चला। इनके एक वंशज कुरु के नाम से कुरु देश या कुरु जांगल देश और कुरु वंश प्रसिद्ध हुये, तथा एक अन्य वंशज हस्तिन के समय में गजपुर का नाम बदल कर हस्तिनपुर या हस्तिनापुर हुआ। हरिवंश आदि अन्य प्रमुख प्राचीन वंशों का प्रारंभ भी आगे-पीछे इसी काल में हुआ—यादव वंश हरिवंश की ही एक शाखा थी। कुलकरों और तीर्थंकरों का पूर्वोक्त वंश मूलतः मानव वंश कहलाता था—उसी की उपयुक्त शाखा प्रशाखायें होती चली गईं। इन मानववंशियों के अतिरिक्त नागफणि, ऋक्ष, यक्ष असुर गंधर्व, किन्नर, वानर आदि अनेक विद्याधर वंशी मनुष्य जातियां भी इस भूखण्ड के विभिन्न भागों में निवास करती थीं। अनेक आधुनिक विद्वानों के मतानुसार इन्हीं की वंशज तथाकथित द्राविड़ जातियां हैं। प्रागैतिहासिक सिन्धु घाटी आदि सभ्यताओं के जनक भी यही आर्येतर विद्याधर वंशी जातियां रही, ऐसा अनुमान किया जाता है। लौकिक विद्याओं और कलाओं में

---

१ ज्यो० प्र० जैन, वही पृ० २६-२८, तथा जैनिज्म दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन पृ० ४०-६१, हीरालाल जैन, वही, पृ० ११-१८ का० प्र० जैन, वही, पृ० ४४ ४७ ६०–६५, आ० हस्ती मलजी, वही, पृ० ५७-६३।

२ स्वामी कर्मानन्द—भारत का आदि सम्राट, तथा भरत और भारत, जयचन्द्र विद्यालंकार, भा० इति० की रूपरेखा, पृ० १४६ ३४३, ज्यो० प्र० जैन जैनिज्म दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन पृ० ४७ तथा भा० इति० एक दृष्टि, पृ० २४।

विद्याधर लोग मानवो की अपेक्षा कही अधिक वढे-चढ़े थे, किन्तु धर्म साधना, दार्शनिक चिन्तन एवं आध्यात्मिक सस्कृति के नेता मानव वशी ही प्रायः रहे ।[1]

अजितनाथ :

ऋषभदेव के निर्वाण के वहुत समय उपरान्त साकेत (अयोध्या) मे ही इक्ष्वाकुवशी-काश्यप गोत्रीय राजा जितशत्रु की रानी विजया (विजयासेना) की कुक्षि से दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ का जन्म हुआ । इनका लाछन हस्ति था । वहुत समय तक राज्य एव गृहस्थ का उपभोग करके इन्होंने दीक्षा ली, तपस्या की, केवल ज्ञान प्राप्त किया और यत्र-तत्र विहार करके धर्मोपदेश दिया । अन्त मे सम्मेदशिखर से निर्वाण लाभ किया । तीर्थंकर अजितनाथ के ही तीर्थ मे, उनके निर्वाण के कुछ समय पश्चात् उसी इक्ष्वाकु वंश एव अयोध्या नगरी मे राजा समुद्र विजय और रानी सुवला का पुत्र सगर भरत क्षेत्र का दूसरा चक्रवर्ती सम्राट हुआ । इस सगर चक्रवर्ती और उसके साठ हजार पुत्रो की कथा ब्राह्मणीय पुराणो मे भी पाई जाती है ।[2]

संभवनाथ :

तीसरे तीर्थंकर सभवनाथ भी इक्ष्वाकु वशी थे, किन्तु उनका जन्म श्रावस्ती (उत्तर प्रदेश के वहराइच जिले का सहेट महेट नामक स्थान) मे हुआ था । इनके पिता का नाम दृढराज (या जितारि) और माता का सुषेणा (या सेना) था । लाछन अश्व था । चिरकाल तक गृहस्थ सुख का उपभोग करके इन्होने वन की राह ली, तप किया, केवल ज्ञान प्राप्त किया, लोगो को धर्मोपदेश दिया और अन्त मे सम्मेदशिखर से निर्वाण प्राप्त किया ।"[3] प्राचीन श्रावस्ती के स्थान पर महेट-मेहट के खडहरो मे तीर्थ कर संभवनाथ के एक प्राचीन मदिर के भग्नावशेष अव तक खडे है । सिंधु देश के मौर्यकालीन सभूत्तर जनपद के निवासियो के पूर्वज तथा वे स्वय भ० संभवनाथ के विशेष भक्त रहे प्रतीत होते हैं । सिन्धु देश अश्वो के लिये प्रसिद्ध रहा है—अश्व का एक पर्यायवाची ही सैन्धव हैं । संभव है कि अश्व-पालन एवं प्रागैतिहासिक सिन्धु घाटी (मोहनजोदड़ो आदि को) सभ्यता के उदय का प्रारभ अश्व-लांछन तीर्थ कर संभवनाथ के तीर्थ मे ही हुआ हो ।

अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ :

चौथे तीर्थंकर अभिनन्दननाथ का लाछन वानर था, पिता का नाम स्वयवर (या सवर) और माता का सिद्धार्था था, वश इक्ष्वाकु, जन्म स्थान अयोध्या और निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर था ।[4] पांचवे तीर्थंकर सुमतिनाथ भी उसी वंश और उसी नगर मे उत्पन्न हुये थे, मोक्ष स्थान भी वही था । इनका लाछन चक्रवाक (क्रोच) था, पिता का नाम मेघरथ (मेव) और माता का मगला (या सुमगला) था ।[5] छट्ठे पद्मप्रभु का जन्म कोशाम्वी नगरी मे हुआ था, पितृवंश एव मोक्ष स्थान

---

१. देखिये—भा० इति० एक दृष्टि, पृ० २२-२३; का० प्र० जैन, वही, पृ० ५४-५८ ।

२ गुणभद्र—उत्तर पुराण, पर्व ४८. अजितादि आगे के तीर्थंकरो के वर्णन का मुख्य आधार यही पुराण ग्रन्थ बनाया गया है । दिगम्बर-श्वेताम्बर उभय सम्प्रदायों की इन तीर्थंकरो से संवधित अनुश्रुतियां प्रायः समान हैं । कही-कही कोई-कोई साधारण से अन्तर हैं ।

३. उत्तरपुराण, पर्व ४९, ४ वही, पर्व ५०, ५. वही, पर्व ५१

वही था, लाछन पद्म (लाल कमल) था, माता का नाम सुसीमा और पिता का नाम 'धरण' या (धर) था।[1] कोशाम्बी के निकट पभोसा (प्रभास) नाम की पहाडी इनका तप एव केवलज्ञान स्थान मानी जाती है। सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का लाछन स्वस्तिक था, पितृवश इक्ष्वाकु, जन्म स्थान वाराणसी, पिता का नाम सुप्रतिष्ठ (प्रतिष्ठ) और माता का पृथिवीषेणा (पृथ्वी) था, निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर था।[2] तीर्थंकर सुपार्श्व की प्रतिमायें बहुधा सप छत्र युक्त पाई जाती हैं। मथुरा का जैन स्तूप सर्वप्रथम इन्ही के समय मे देवो द्वारा निर्मित हुआ था, ऐसी अनुश्रुति है। नागजाति के विद्याधरो मे इनकी मान्यता विशेष रही प्रतीत होती है। प्राचीन सिन्धु घाटी सभ्यता का यह प्राय मध्य काल था। स्वस्तिक का वहा बहुत प्रचार था, सडकें भी प्राय स्वस्तिकाकार बनाई जाती थी। क्या आश्चर्य है कि योगिराज सुपार्श्व की मान्यता वहा विशेष रही हो।

चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ

आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का लाछन चन्द्रमा, जन्म स्थान चन्द्रपुर, वश इक्ष्वाकु, पिता का नाम महासेन, माता का लक्ष्मणा और निर्वाण स्थान सम्मेद शिखर था।[3] चन्द्रप्रभ अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय तीर्थंकरो मे से एक हैं। इनकी प्रतिमायें बहुलता से प्राप्त होती हैं। नौवें तीर्थंकर पुष्पदन्त का अपरनाम सुविधिनाथ था, पितृवश इक्ष्वाकु, पिता का नाम सुग्रीव, माता का जयरामा (रामा) था, जन्म स्थान काकदी नगरी (देवरिया जिले का वर्तमान खुखुन्दो) थी और मोक्ष स्थान सम्मेद शिखर था। इनका लाछन नक्र (मगर) था।[4] ब्राह्मणीय पुराण साहित्य मे इनका उल्लेख काकुत्स्थ नाम से हुआ लगता है।[5] सिन्धु घाटी सभ्यता का यह उत्कर्ष काल था और वहा नक्र प्रतीक की उस काल मे बडी मान्यता थी। इस प्रदेश का नाम ही मकरदेश प्रसिद्ध हो गया था।[6] अतएव तीर्थंकर पुष्पदत की उपासना यहां रही प्रतीत होती है। दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ का जन्म भद्रपुर (या भद्दिलपुर) मे हुआ था। इनका लाछन श्रीवत्स, वश इक्ष्वाकु, पिता का नाम दृढरथ और माता का सुनन्दा (नन्दा) था, निर्वाण स्थान सम्मेद शिखर था।[7] शीतलनाथ की गणना भी लोकप्रिय तीर्थंकरो मे है। इनके निर्वाणोपरान्त उन्ही के तीर्थकाल के अन्तिम भाग मे समीचीन जनधर्म की परम्परा कालदोष से समाप्त प्राय हो गई कही जाती है।[8] उसी भद्रिलपुर के राजा मेघरथ के शासनकाल मे मुण्डशालायन नामक एक ब्राह्मण ने अपने प्रभाव से ब्राह्मणो की पूजा करवाने और उन्हें भूमि-स्वर्ण आदि का दान देने की प्रथा चलवादी।[9] ऐसा लगता है कि भ० शीतलनाथ के समय तक इस देश मे तीर्थंकरो के धर्म का प्राय एकच्छत्र एव अविच्छिन्न प्रभाव और प्रचार रहता आया था, किन्तु अब देशज ब्राह्मणो के धार्मिक विचारों मे सर्वप्रथम क्रान्ति होनी प्रारभ हुई, त्याग के स्थान मे भोग की ओर, निवृत्ति के स्थान मे प्रवृत्ति की प्रधानता होने लगी। सभवतया यही वह युग था जब

---

१ वही, पर्व ५२, २ वही, पर्व ५३,

३ वही पर्व ५४ ४ वही, पर्व ५५

५ पिछले दिनों एक ब्राह्मण पंडित ने 'काकुत्स्थचरित' नामक पुस्तक लिखी थी, जिसमे यह समीकरण स्थापित किया था।

६ ज्यो० प्र० जैन—जैनिज्म, दी ओल्डस्ट लिविंग रिलीजन, पृ० ५२।

७ उत्तरपुराण, पर्व ५६ ८ वही, श्लोक ६३ ९ वही श्लोक ६४ ६६।

उत्तर-पश्चिमीय भारत मे आर्यो का तथाकथित प्रवेश हुआ, अथवा वैदिक आर्य ब्राह्मणीय धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का उदय प्रारंभ हुआ। तीर्थंकरो के अनुयायी मध्य देशीय ब्राह्मण भी उनके प्रभाव में आने लगे और प्रायः यही समय विद्याधरो की प्रागैतिहासिक सिन्धु घाटी प्रभृत्ति सभ्यताओ का अस्तकाल था।

श्रेयांसनाथ :

ग्यारहवे तीर्थंकर श्रेयांसनाथ का जन्म सिंहपुर (वर्तमान सारनाथ) नामक नगर मे हुआ था। इनका वंश इक्ष्वाकु था, पिता का नाम विष्णु और माता का नन्दा (या विष्णु देवी) था, लांछन गेंडा और निर्वाण स्थल सम्मेदशिखर था। भ० श्रेयासनाथ ने धर्म की टूटी हुई परम्परा को पुनः जोडा और तीर्थंकरो के धर्म का लोक मे पुनः प्रचार किया। इन्ही के समय मे पेदनपुर नरेश त्रिपृष्ठ हुआ जो नव नारायणों (वासुदेवो) में प्रथम था, अर्धचक्री और त्रिखंडी था। इनका भाई विजय (या अचल) नव बलभद्रो (बलदेवो) मे प्रथम बलभद्र था। दोनो भाई बडे प्रतापी थे और तीर्थंकर के परम भक्त थे। इनका प्रतिद्वन्द्वी प्रथम प्रतिनारायण (प्रतिवासुदेव) अश्वग्रीव अलकापुरी का राजा था, जो बड़ा अत्याचारी था। त्रिपृष्ठ और विजय द्वारा उसका अन्त हुआ।[1] इस प्रकार देश मे अत्याचारी राजाओ का प्रादुर्भाव और राजनीतिक संघर्षों एव राज्य सत्ता के लिये युद्धो का प्रारभ भी प्रायः इसी समय से हुआ लगता है।

वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ :

बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य का जन्म अगदेश के चम्पापुर नामक नगर (बिहार के भागलपुर जिले) में हुआ था, वंश इक्ष्वाकु, पिता का नाम वसुपूज्य, माता का जयावती और लाछन महिप था। इनका निर्वाण चम्पापुर के निकट मन्दारगिरि पर हुआ माना जाता है। इन्हीं के समय मे दूसरा बलभद्र अचल, दूसरा वासुदेव द्विपृष्ट तथा दूसरा प्रतिनारायण तारक हुये थे।[2] तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ का लांछन वराह और जन्म स्थान काम्पिल्य नगर था। वंश इक्ष्वाकु. पिता का नाम कृतवर्मा और माता का नाम जयश्यामा (सामा) था तथा निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर था। इनके समय मे सुवर्म (या भद्र) नाम का बलभद्र, स्वयंभू नाम का नारायण और मधु (मेरक) नामक प्रतिनारायण हुये, तथा मेरु और मन्दर नामक प्रसिद्ध गणधर एवं संजयंत नामक केवली हुये।[3] चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ का जन्म अयोध्या मे हुआ, निर्वाण सम्मेदशिखर पर। इनका लांछन सेही (श्येन) था, वंश इक्ष्वाकु, पिता का नाम सिंहसेन और माता का जयश्यामा (या सुयशा) था। इनके समय मे सुप्रभ बलभद्र, पुरुषोत्तम, नारायण और मधुसूदन (मधु कैटभ) नामक प्रतिनारायण हुये।[4]

धर्मनाथ :

पन्द्रहवे तीर्थंकर धर्मनाथ का जन्म रत्नपुर (फैजाबाद जिले का नौराई या रौनाइ) मे कुरुवंशी राजा भानु की पत्नि सुप्रभा (सुव्रता) की कुक्षि से हुआ था और निर्वाण सम्मेदशिखर पर। इनका लाछन वज्रदंड था। इनके समय मे सुदर्शन नामक बलभद्र, पुरुषसिंह नामक नारायण और

---

१ उत्तरपुराण, पर्व ५७,
२. वही, पर्व ५८
३. वही, पर्व ५६,
४. वही, पर्व ६०,

मधुक्रीड (या निशुंभ) नामक प्रतिनारायण हुये। धर्मनाथ के निर्वाण और सोलहवें तीर्थंकर के जन्म के मध्य अन्तराल में अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकु, या सूर्यवंशी दो चक्रवर्ती सम्राट कालान्तर से हुये— प्रथम का नाम मघवा था और दूसरे का सनत्कुमार।[1] अब तक के समस्त चक्रवर्ती अयोध्या में ही हुये, जिससे प्रतीत होता है कि पूरे देश की राजनीति में तब तक अयोध्या और उसके इक्ष्वाकु वंश का ही सर्वोपरि प्रभाव रहता रहा था। ये सब चक्रवर्ती तथा विभिन्न नारायण एवं बलभद्र भी तीर्थंकरों के भक्त थे। किन्तु इस अन्तराल में भी कुछ काल तक श्रमणधर्म मुनिमार्ग का विच्छेद रहा जिसे सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ ने पुनः स्थापित किया।[2]

शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ

शांतिनाथ तीर्थंकर होने के साथ ही साथ चक्रवर्ती सम्राट भी थे। उनका जन्म हस्तिनापुर (गजपुर) के कुरुवंशी नरेश विश्वसेन की रानी ऐरा (अचिरा) की कुक्षि से हुआ था, लाञ्छन हिरण था। चिरकाल पर्यन्त पृथ्वी का एकच्छत्र राज्य एवं गृह सुख का उपभोग करके उन्होंने दीक्षा ली, तपस्या की, केवलज्ञान प्राप्त किया, लोक को धर्मोपदेश दिया, मुनि मार्ग की पुनः स्थापना की और अन्त में सम्मेदशिखर से निर्वाण प्राप्त किया।[3] वे एक अत्यन्त लोकप्रिय तीर्थंकर हुये। आज भी उनकी उपासना का प्रभूत प्रचार है।

सत्रहवें तीर्थंकर कुंथुनाथ का जन्म भी कुरुजांगल देश के उसी हस्तिनापुर नगर में और कुरु वंश में ही हुआ था, पिता का नाम शूरसेन (या वसु), और माता का श्रीकान्ता (या श्रीदेवी) था, लाञ्छन अज था और मोक्ष स्थान सम्मेदशिखर। ये भी अपने समय के चक्रवर्ती सम्राट थे।[4]

अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ का जन्म भी उसी हस्तिनापुर में, सोमवंश नरेश सुदर्शन की पत्नी मित्रसेना (या महादेवी) की कुक्षि से हुआ था, लाञ्छन नन्द्यावर्त (मत्स्य) था और निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर। ये भी अपने समय के चक्रवर्ती सम्राट थे।[5] इन तीनों तीर्थंकरों के समय में श्रमण धर्म का प्रधान केन्द्र पश्चिमी उत्तर प्रदेशस्थ कुरु महाजनपद रहा जिसकी प्रधान महानगरी हस्तिनापुर थी। राजनीतिक प्रभुसत्ता भी अयोध्या से स्थानान्तरित हो चुकी थी, और हस्तिनापुर में स्थिर हुई। ऐसा लगता है कि इस समय तक वैदिक संस्कृति का प्रभाव एवं प्रसार पश्चिमोत्तर प्रान्त तक ही सीमित था, गंगा-यमुना के अन्तर्वेद में विशेष नहीं हो पाया था।

मल्लिनाथ

अरनाथ के निर्वाणोपरान्त उन्हीं के तीर्थ में सुभौम (सुभूम) नाम का चक्रवर्ती हुआ जिसके प्रसंग में परशुराम और कार्तवीर्य सहस्रबाहु के भीषण संघर्ष की कथा जैन अनुश्रुति में ब्राह्मणीय अनुश्रुति से बहुत कुछ मिलती जुलती पाई जाती है। इसी काल में नन्दिषेण (नन्दी) नामक बलभद्र पुण्डरीक नाम का नारायण और निशुंभ (बलि) नामक प्रतिनारायण हुआ।[6]

उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ का जन्म मिथिला नगरी में हुआ, वंश इक्ष्वाकु था, पिता का नाम कुंभ, माता का प्रजावती (या प्रभावती), लांछन कलश और मोक्ष स्थान सम्मेदशिखर था।

---

१ उत्तरपुराण, पर्व ६१
२ वही पर्व ६३ श्लोक ४११ १२
३ वही, पर्व ६३,
४ वही, पर्व ६४,
५ वही, पर्व ६५,
६ वही

इन्होने विवाह नही किया, बालब्रह्मचारी रहे। भ० मल्लिनाथ के तीर्थकाल मे वाराणसी नगरी मे पद्म नाम का चक्रवर्ती सम्राट हुआ तथा नन्दिमित्र नामक बलभद्र, दत्त नामक नारायण और बलीन्द्र, (प्रहलाद, प्रहरण) नामक प्रतिनारायण हुये।[1]

मुनिसुव्रत :

वीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ का जन्म राजगृही नगरी मे हरिवंशी महाराज सुमित्र की रानी सोमा (या पद्मावती) की कुक्षि से हुआ था। इनका लाछन कच्छप था और मोक्ष स्थल सम्मेद-शिखर।[2] इन्ही के तीर्थ मे अयोध्या के रघुवंशी महाराज रामचन्द्र और लंका के विद्याधर वशी महाबली रावण हुये तथा रामायण मे वर्णित घटनायें घटी। भगवान् राम उस युग के बलभद्र थे, उनके अनुज लक्ष्मण नारायण थे और रावण प्रतिनारायण। महारानी सीता की जैन परम्परा की सोलह सर्वोपरि सतियो मे गणना है। राम ने दीक्षा लेकर पद्ममुनि नाम से तपश्चरण की, अंर्हत केवलि हुये और उसी भव मे मोक्ष प्राप्त करके सिद्ध परमात्मा हुये। पवन्जय-अजंना सुत हनुमान का भी जैन परंपरा मे एक कामदेव तथा मोक्षगामी महापुरुष के रूप मे कथन किया गया है। जैन पद्म-पुराण मे इन महान् विभूतियो एव तत्सबंधी घटनाओ का विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। भ० मुनि-सुवृत के तीर्थकाल मे ही राजा वसुचैद्योपरिस्चर की राज्य सभा मे नारद और पर्वत का वह सैद्धान्तिक विवाद हुआ था जिसके फलस्वरूप याज्ञिक हिंसा—पशुबलि आदि का प्रचलन हुआ और प्रचार बढ़ा। हरिषेण नामक चक्रवर्ती भी इसी तीर्थकाल मे भोगपुर नगर मे हुआ था।[3] विष्णु-कुमार मुनि द्वारा बलिबंधन, सात सौ मुनियो की रक्षा और रक्षाबंधन पर्व की प्रवृत्ति की घटनाये भी संभवतया इसी काल की हैं।

नमिनाथ :

इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ का जन्म मिथिला नगरी मे इक्ष्वाकु वशी राजा विजय की रानी वप्पिला (वप्रा) की कुक्षि से हुआ था। इनका लांछन नील कमल और निर्वाण स्थल सम्मेद शिखर था। इन्ही के तीर्थ मे वत्सदेशस्थ कोशाम्बी नगरी मे जयसेन नामक चक्रवर्ती सम्राट हुआ।[4] हिन्दू पुराणो मे विदेहजनक के पूर्वज जिन मिथिलानरेश नमि[5] का उल्लेख आया है सभवतया वही इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ थे। मिथिला मे आग लग जाने पर इनकी अनासक्त वृत्ति का जो वर्णन जैन 'उत्तराध्ययन सूत्र' मे आया है, प्राय: वही महाभारत तथा बौद्धो के महाजनक जातक में आया है। तीनो परम्पराओ का यह समीकिरण तीर्थंकर नमि की ऐतिहासिकता का साधक है।[6] आगे चल कर जिस आध्यात्मवाद ने उपनिषदो की आत्मविद्या का रूप लिया उसका बीज इन विदेह नमि द्वारा ही मिथिला मे आरोपित हुआ था।

---

१. वही, पर्व ६६—श्वेताम्बर अनुश्रुतियो मे तीर्थंकर मल्लिनाथ को स्त्री रहा प्रतिपादित किया है।
२. वही, पर्व ६७
३ वही, पर्व ६७-६८,　　　　४. वही, पर्व ६९।
५. ये नमि प्रत्येक बुद्ध है, स्वय बुद्ध नही, अत तीर्थंकर नमिनाथ से ये भिन्न है—सम्पादक
६. डॉ० हीरालाल जैन, भा० स० मे जैन धर्म का योगदान, पृ० १९-२०।

ऐसा लगता है कि १८वें तीर्थंकर अरनाथ के उपरान्त ही मध्य देश में वैदिक ब्राह्मणीय धर्म और संस्कृति का द्रुतवेग से प्रसार हुआ, राज्य सत्ता भी श्रमण या व्रात्य क्षत्रियों के हाथ से निकलकर वैदिक क्षत्रियों के हाथ में आ गई। सिंधु घाटी की सभ्यता तथा उसकी अन्य शाखायें कभी की समाप्त प्राय हो चुकी थी, उनके निवासियों का भी स्वतन्त्र अस्तित्व प्राय कोई नहीं रह गया था। तीर्थंकरों के अनुयायी मानव वंश प्रसूत इक्ष्वाकु, सूर्य, सोम, हरि उग्र आदि वंशों में क्षत्रिय भी पराभूत हो गये थे, कम से कम मध्य देश से निष्कासित से हो गये थे। यह निरा संयोग ही नहीं है कि शान्ति, कुन्थु, अर नाम के तीन तीर्थंकर लगातार पश्चिमी उत्तर प्रदेश के हस्तिनापुर में हुये तो उनके बाद के तीन तीर्थंकर लगातार सुदूर एवं बिहार प्रदेश में हुये। वैदिक सभ्यता और सत्ता का यह चरमोन्नत काल था। इसी युग में श्रमण और ब्राह्मण उभय संस्कृतियों का पारस्परिक संघर्ष अपनी चरम सीमा को पहुंच गया था। तीर्थंकर परम्परा के लिये यह एक जबरदस्त झटका था।

३ अन्तिम तीन तीर्थंकर—नेमि, पार्श्व, महावीर

अरिष्टनेमि

बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) का लाञ्छन शंख था। उनका जन्म हरिवंश की यादव शाखा में हुआ था। शौरिपुर (वर्तमान आगरा जिले में स्थित) के संस्थापक यदुवंशी राजा शूर (शूरसेन) के वंशज अन्धकवृष्णि के कई पुत्र थे जिनमें सबसे बड़े समुद्रविजय थे और सबसे छोटे वसुदेव। समुद्रविजय की रानी शिवादेवी की कुक्षि से तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म शौरिपुर में हुआ था। वसुदेव कामदेव के समान अत्यन्त रूपवान एवं साहसिक थे। उनके साहसिक भ्रमणों एवं कामकलापों का अतिरोचक वर्णन हरिवंश पुराण में हुआ है। वसुदेव के पुत्र कृष्ण और बलराम थे जो अपने समय के क्रमशः नारायण और बलभद्र थे, बड़े वीर, प्रतापी और विचक्षणबुद्धि थे। उनका प्रतिद्वन्द्वी राजगृह नरेश जरासंध उस युग का प्रतिनारायण था। उसके आतंक से ही त्रस्त होकर यादव लोग शौरिपुर और मथुरा का परित्याग करके पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित द्वारका नगरी में जा बसे थे। कालान्तर में कृष्ण द्वारा ही जरासंध और उसके पक्ष शिशुपाल आदि साथियों का पराभव एवं अन्त हुआ। हस्तिनापुर के कुरुवंशी कौरव पांडवों का पारस्परिक संघर्ष और उनके मध्य कुरुक्षेत्र का सुप्रसिद्ध महाभारत नामक महायुद्ध इसी काल में हुआ। उस युग की राजनीति के प्रधान सूत्रधार अर्धचक्री, त्रिखंडी नारायण कृष्ण ही थे। वे पांडवों के मित्र थे, और उनकी विजय में प्रधान निमित्त हुये। यदि कृष्ण राजनीतिक नेता थे तो तीर्थंकर अरिष्टनेमि उस युग के धार्मिक एवं आध्यात्मिक नेता थे।

द्वारका के निकट जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की सुन्दरी कन्या राजुलमती के साथ कुमार नेमिनाथ का विवाह सम्बन्ध स्थिर हुआ। बड़े ठाठबाट से छप्पनकोटि यदुवंशी उस बारात में चढ़कर जूनागढ़ पहुंचे। वर यात्रा जब नगर के राजपथ से जा रही थी तो वर वेष में सुसज्जित रथारूढ़ नेमिकुमार ने मार्ग में एक ओर एक विशाल बाड़े में बन्द अनेक पशुओं को बिलबिलाते हुये देखा। कारण पूछने पर उन्हें बताया गया कि उन्हीं की बारात में आगत अतिथियों के भोज का आयोजन करने के लिये इन मूक पशुओं का वध किया जाने वाला है। करुणामूर्ति भगवान को यह सुनकर बड़ी ग्लानि हुई। संसार, देह भोगों से उनका चित्त विरक्त हो गया। वह तुरन्त रथ पर से कूद पड़े, समस्त पशुओं का बन्धन मुक्त एवं स्वतन्त्र किया वस्त्राभूषण उतार फेंके और वन की राह ली।

सबने भरसक अनुनय विनय की, किन्तु उस दृढ़ प्रतिज्ञ धर्मवीर ने एक न सुनी। वे निकटवर्ती गिरिनार पर्वत (उज्जंयंत या रैवत गिरि) के उत्तुंग शिखर पर जा चढ़े और दुर्द्धर तपश्चरण में लीन हो गये। जब सुकुमारी राजुलमती ने यह समाचार सुना तो उन्होंने निश्चय किया कि बिना विवाहे तोरण पर से लौट जाने वाले नेमिनाथ ही उनके पति हैं, और वह स्वयं उन्हीं का पदानुसरण करेगी। वह भी गिरिनार की एक गुहा में जाकर तपस्या में रत हो गई। नेमिनाथ और राजुलमती के हृदयद्रावक प्रसंग को लेकर अनेक जैनकवियो ने वियोग शृंगार के काव्य की सरिता बहाई है।

केवलज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त तीर्थंकर नेमिनाथ ने देशविदेश मे विहार करके अहिंसा धर्म का उपदेश दिया और अन्त मे गिरनार पर्वत से ही निर्वाण प्राप्त किया। गुजरात काठियावाड प्रभृति पश्चिमी प्रदेशो एव दक्षिणापथ मे जैनधर्म का विशेष प्रचार इसी समय मे हुआ। हरिवंश-पुराण, उत्तरपुराण, वसुदेवहिंडि, नेमिनाहचरिउ, पाडवपुराण आदि ग्रंथो मे उस युग की घटनाओ का सविस्तार वर्णन पाया जाता है। भगवान नेमिनाथ का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, स्कद-पुराण, महाभारत आदि प्राचीन ब्राह्मणीय ग्रन्थो मे भी हुआ है, और पुरातत्व आदि मे भी उनका अस्तित्व सिद्ध है। आधुनिक विद्वानो द्वारा उनकी ऐतिहासिकता प्रायः स्वीकृत है।[1] महाभारत के 'शांति पर्व' मे जो भगवान तीर्थविद् और उनके द्वारा दिये गये उपदेश का वृत्तान्त मिलता है, वह जैन तीर्थंकर द्वारा उपदेशित धर्म के समरूप हैं।[2] सभावना यही है कि महाभारत का अनाम का संकेत भगवान अरिष्टनेमि और उनके द्वारा पुरस्कृत विचारधारा की ओर है। तीर्थंकर नेमिनाथ का जब जन्म हुआ तो याज्ञिक वैदिक धर्म एव सभ्यता के बढते हुये प्रभाव एव प्रसार के सन्मुख श्रमण सस्कृति पराभूत प्रायः हो चुकी थी। यदि महाभारत युद्ध ने वैदिक क्षत्रियो की शक्ति, सत्ता और प्रभाव को जबरदस्त धक्का पहुचाया तो भगवान् नेमिनाथ के उपदेश ने उनके हिंसा-प्रधान धर्म एव सस्कृति को प्रायः वैसी ही ठेस पहुचाई। महाभारत का उपरान्त काल इतिहास मे उत्तरवैदिक युग कहलाता है और वही युग श्रमण पुनरुत्थान युग है जिसके कि सर्वमहान् प्रथम प्रस्तोता तीर्थंकर नेमिनाथ थे। मनुष्य के भोजन के लिये पशु-पक्षियो के वध को अधार्मिक कृत्य एवं पाप घोषित करके तथा मांसाहार का निषेध करके और निवृत्तिरूप तपः साधना का आदर्श प्रस्तुत करके उन्होंने भारी क्रान्ति की थी।[3] वस्तुतः अहिंसा को धार्मिक वृत्ति का मूल मानकर उसे सैद्धान्तिक रूप देना, श्रमण परपरा के लिये तीर्थंकर नेमिनाथ की विशेष देन रही प्रतीत होती है।[4]

नेमिनाथ के निर्वाण के कुछ समय उपरान्त काशी मे ब्रह्मदत्त नाम का शक्तिशाली नरेश हुआ जो जैन परम्परा के बारह चक्रवर्तियो मे अन्तिम था। उसकी ऐतिहासिकता भी मान्य की जाती है।

---

१. देखिए ज्यो० प्र० जैन—जैनिज्म : दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन, पृ० २०–२४; विद्यानन्द मुनि, 'विश्वधर्म की रूपरेखा' पृ० २४–२८, का० प्र० जैन, दी रिलीजन आफ तीर्थंकराज, पृ० ७७–७९
२ हीरालाल जैन, वही, पृ० २०
३. ज्यो० प्र० जैन—रिवाईवल आफ श्रमण धर्म इन लेटर वैदिक एज, जैन जर्नल, छः, २, पृ० ६०–६२; छः, ३, पृ० १०९–११३
४. हीरालाल जैन, वही, पृ० २०

पार्श्वनाथ

तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का लांछन सर्प या नाग था, और इनका जन्म भी जिस उरगवंश में हुआ था वह भी संभवतया प्राच्यक्षत्रियों की नागजाति की ही एक शाखा था। गोत्र इनका भी काश्यप था, और पिता काशिदेशस्थ वाराणसी नगरी के नरेश अश्वसेन थे तथा माता वामादेवी थी। पार्श्वनाथ का जन्म भगवान् महावीर के निर्वाण (५२७ ई० पूर्व) से ढाई तीन सौ वर्ष पहिले, ईसा पूर्व ८७७ में हुआ था। शैशवावस्था में ही ये अत्यन्त शांतिचित्त, दयालु, मेधावी और चिन्तनशील थे, किन्तु साथ ही अतुल वीर्य-शौर्य के धनी एवं परम पराक्रमी भी थे। उनके मातुल कुशस्थलपुर (कान्यकुब्ज) नरेश पर जब कालयवन नामक एक प्रबल आततायी ने आक्रमण किया तो कुमार पार्श्व तुरन्त सेना लेकर उसकी सहायता के लिये गये और भीषण युद्ध करके उन्होंने शत्रु को पराजित किया तथा बन्दी बनाया। कृतज्ञ मामा ने उन्हें साग्रह कुछ दिन अपना अतिथि बनाये रखा। वह अपनी पुत्री का विवाह भी इनके साथ करना चाहता था, किन्तु, इसी बीच एक दिन वन विहार करते हुये कुमार पार्श्व ने तापसियों का एक आश्रम देखा जहाँ उन्होंने एक भयंकर तापसी से एक नाग-नागिन युगल की रक्षा की। इस घटना के बाद उन्हें वैराग्य हो गया और पार्श्व आत्मसाधनार्थ तपश्चरण करने के लिये वन में चले गये।

पार्श्वनाथ ने कठोर साधना की है। इस साधना के बीच ही वे हस्तिनापुर में पारणा करके गंगा के किनारे किनारे वर्तमान बिजनौर के उस स्थान पर आये जो बाद में पारसनाथ किला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ से आगे चलकर वह उत्तर पांचाल की राजधानी परिचक्रा (पांचालपुरी या शंखावती) के निकटवर्ती भीमादेवी नामक महावन में पहुँचे। यह नगर (वर्तमान बरेली जिले की आंवला तहसील का राम नगर) ही बाद में अहिच्छत्रा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कालान्तार में योगिराज पार्श्व योगधारण करके कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ हो गये। इस अवसर पर वहाँ शंबर नामक एक दुष्ट असुर ने उन पर भीषण उपसर्ग किये। नागराज धरणीन्द्र और यक्षेश्वरी पद्मावती ने उक्त उपसर्ग के निवारण करने का यथा संभव प्रयत्न किया। उपसर्ग निवारणार्थ नागराज (अहि) धरणेन्द्र ने भगवान् के सिर के ऊपर जो छत्राकार सहस्रफण मंडप बनाया था, उसी के कारण वह स्थान अहिच्छत्रा नाम से लोक प्रसिद्ध हुआ। इस घटना के प्रतीकात्मक अंकन के रूप में ही तीर्थंकर पार्श्व की प्रतिमायें सर्पफण-छत्र से युक्त पाई जाती हैं। तभी भगवान को केवल ज्ञान हुआ और तदन्तर लगभग सत्तर वर्ष पर्यन्त उन्होंने देश विदेश में भ्रमण करके लोक को धर्मोपदेश दिया और एक सौ वर्ष की आयु में सम्मेद शिखर से, जो इसी कारण पारसनाथ पर्वत भी कहलाया, निर्वाण प्राप्त किया। यह घटना ईसा पूर्व ७७७ की है।[1]

तीर्थंकर पार्श्व की ऐतिहासिकता आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में भी असंदिग्ध है।[2] वस्तुतः

---

१ ज्यो० प्र० जैन, भारतवर्ष—कुमाऊं और जैन धर्म, पृ० १३-१७—तीर्थंकर पार्श्व के पौराणिक चरित्र के लिए देखिये—उत्तर पुराण, पद्मकीर्ति कृत पासनाहचरिउ, आदि पुराण ग्रन्थ, तथा आ० हस्तीमलजी, वही २८१-३१२

२ देखिए—ज्यो० प्र० जैन, जैनिज्म दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन पृ० १४-२०, भा० इति० एक दृष्टि, पृ० ४६, जैन जर्नल, भाग २ पृ० ८७-९४, हीरालाल जैन वही, पृ० २०-२१, का० प्र० जैन, वही पृ० ७६-८३, विद्यानन्द मुनि, वही पृ० २८-२६, आ० हस्तीमलजी, वही पृ० २८१-२८२

जैन तीर्थकरो मे पार्श्वनाथ प्रायः सर्वाधिक लोकप्रिय रहे हैं। भारतवर्ष के विभिन्न भागो मे जितने मंदिर, मूर्तिया और तीर्थस्थान इनके नाम से सम्बद्ध पाये जाते हैं, उतने शायद ही किसी अन्य तीर्थंकर के हो। गजपुर नरेश स्वयभू, कुशस्थलपुर का राजा रविकीर्ति, तेरापुर का स्वामी करकण्ड आदि कई भूपति इनके परम भक्त और अनुयायी थे। नाग, यक्ष, असुर आदि अनार्य देशी जातियो मे, जिनका ब्राह्मणीय साहित्य मे व्रात्य क्षत्रिय के रूप मे बहुधा उल्लेख हुआ है, तीर्थंकर पार्श्व का प्रभाव विशेष रहा प्रतीत होता है। उत्तर प्रदेश, बिहार एवं बंगाल मे ही नहीं उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश पर्यन्त इनका प्रत्यक्ष प्रभाव था। अनुमान तो यह भी किया जाता है कि देश की पश्चिमोत्तर सीमाओ को पारकर के मध्य एशियाई देशो एव यूनान आदि तक भी इनकी कीर्तिगाथा एव विचार प्रसारित हुये थे। पार्श्व के निर्वाण और महावीर के जन्म के मध्य लगभग पौने दो सौ वर्षो का अन्तर था और इस बीच पार्श्व का उपदेश एवं उनकी श्रमण शिष्य परम्परा अविच्छिन्न बनी रही। महावीर का पितृकुल एवं मातृकुल पार्श्व के ही अनुयायी थे। महावीर ने जब उपदेश देना प्रारभ किया तब तक भी पार्श्वपरम्परा के केशि प्रभृति प्रभावशाली श्रमण विद्यमान थे। पार्श्व द्वारा उपदेशित मार्ग को बहुधा चातुर्याम धर्म के नाम से उल्लेखित किया जाता है और कहा जाता है कि उन्होने अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह पर ही बल दिया था, ब्रह्मचर्य नाम के पृथक् से किसी व्रत का विधान नही किया था, जैसा कि महावीर ने बाद मे किया। धर्मसाधना मे भगवान पार्श्व चारित्रिक नैतिकता पर विशेष बल देते थे और तत्कालीन जनमानस मे नैतिकता का महत्त्व जमाने मे वे बहुत कुछ सफल भी हुये। इसके अतिरिक्त, पंचाग्नि जैसे कृश तपों और हठयोगादि की निरर्थकता एवं निर्दयता की ओर उन्होने लोक का ध्यान आकर्षित किया। तीर्थंकर नेमिनाथ ने यदि मनुष्य के भक्षण के लिये पशु हत्या का बहिष्कार किया तो तीर्थंकर पार्श्व ने धर्म के नाम से की जाने वाली साधना मे संभावित हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई। वस्तुतः तीर्थंकर पार्श्व, जो तत्कालीन जगत् मे 'पुरिसदानिय' (पुरुषश्रेष्ठ) के नाम से प्रसिद्ध हुये, उत्तर वैदिक काल के उस श्रमण धर्म-पुनरुत्थान के सर्वमहान एव सफल नेता थे, जिसका प्रारभ नेमिनाथ ने किया था। उन्ही के नैतिक एव आध्यात्मिक विचारो का प्रभाव था कि स्वय ब्राह्मण वैदिक परम्परा मे एक प्रभावशाली दल याज्ञिक हिंसा का विरोधी हो गया और उसने औपनिषदिक आत्मविद्या का प्रचार किया। पार्श्व के प्रचार क्षेत्र मे विदेह के जनक ही उपनिषदो की विचारधारा के सबसे बड़े पोषक एवं प्रचारक हुये।[1]

महावीर स्वामी :

सिंहलांछन भगवान् महावीर तीर्थंकर परम्परा के चरम, अन्तिम अर्थात् चौबीसवें तीर्थंकर थे। वीर, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमान आदि उनके अन्य नाम थे। जैन साहित्य में 'श्रमण भगवान् महावीर' और बुद्ध साहित्य में 'निगठनातपुत्र (निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र) के नाम से उनका बहुधा उल्लेख हुआ है।

ईसा पूर्व ५९९ की चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के शुभ दिन महानगरी वैशाली के निकटवर्ती

---

१. ज्यो० प्र० जैन—रिवाईवल आफ श्रमणधर्म इन लेटर वैदिक एज, जैन जर्नल, सात, २, पृ० ८९–९०

उपनगर कुण्ड ग्राम या कुण्डपुर में उनका जन्म हुआ था। इनके पिता सिद्धार्थ लिच्छवि जाति के ज्ञातृवंशी काश्यपगोत्री क्षत्रिय थे और माता त्रिशला (अपर नाम प्रियकारिणी एवं विदेहदत्ता) गणतन्त्रात्मक वज्जिसंघ के प्रधान वैशाली के महाराज चेटक की पुत्री (मतान्तर से भगिनी) थी। महावीर बाल्यकाल से ही बड़े शान्त चित्त, देह भोगों से विरक्त और चिन्तनशील थे, साथ ही अत्यन्त निर्भय, वीर और साहसी थे। प्राचीन ग्रन्थों में उनके शैशव एवं किशोरकाल की अनेक घटनाओं का प्रेरणाप्रद वर्णन प्राप्त होता है, जिससे उनके अतुल बल, वीर्य, शौर्य, बुद्धि और प्रतिभा का परिचय मिलता है। इससे बड़ी बात यह थी कि वे परदुख कातर थे, करुणा की साक्षात् मूर्ति थे। संसारी-जनों की दुःखग्रस्त दुर्दशा ने और चारों ओर के हिंसामयी वातावरण ने, जहाँ कि धर्म के नाम पर भी विविध प्रकार की घोर हिंसा होती थी, उन्हें गंभीर, विरक्त एवं चिन्तनशील बना दिया था। वर्णभेद, वर्गभेद, दास दासी प्रथा, स्त्री जाति को हीन समझना, क्रियाकांड, आडम्बर, व्यभिचार, भ्रष्टाचार और अनैतिकता का बोलबाला था। अपने स्वरूप से बेभान लोक झूठे सुख की चाह एवं खोज में भटक रहा था, और दुःख की दल-दल में अधिकाधिक फँसता जा रहा था। परिणामस्वरूप उस महावीर के हृदय में लोक के दुःख का निवारण करने तथा लोक का कल्याण करने की उत्कृष्ट भावना प्रतिदिन बलवती होती जाती थी। बन्धु-बान्धवों ने उन्हें विवाह बन्धन में बांधकर संसार में रमाये रखने का प्रयत्न किया। किन्तु उस वीर ने बालब्रह्मचारी रहना ही स्थिर किया (मतान्तर से महावीर ने विवाह किया था और उनके एक पुत्री हुई थी।)

तीस वर्ष की अवस्था होते न होते उन्होंने जो कुछ धन सम्पत्ति उनकी थी सब याचकों को मुक्त हस्त से दान कर दी, और समस्त सांसारिक सुख भोगों से मुँह मोड़ वन की राह ली। मार्गशीर्ष कृष्णादशमी के दिन उन्होंने पंचमुष्टि केशलोंच किया, दीक्षा ली और आत्म साधना के दुर्द्धर मार्ग पर चल पड़े। साढ़े बारह वर्ष की इस कठोर एवं अलौकिक साधना में अनगिनत उपसर्ग सहे, सभी प्रकार के कष्ट, लांछन, अपमान, तिरस्कार पूर्णतया समताभाव के साथ सहन किये। न किसी से राग था, न किसी से द्वेष। आत्मशोधन और सत्यान्वेषण की प्रक्रिया में एकनिष्ठ होकर लीन रहे। फलस्वरूप, वैशाख शुक्ल दशमी के दिन जब वे ऋजुकूला नदी के तट पर शालवृक्ष के नीचे एक शिला पट पर ध्यानस्थ अवस्था में आसीन थे तो उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। वे वीतराग, सर्वज्ञ, अर्हन्त, केवलि, जिन हो गये। छयासठ दिन[1] तक उपयुक्त शिष्य के समागम के अभाव में मौनावस्था में ही विहार करते हुये वह मगध की राजधानी राजगृह अपरनाम पंचशैलपुर के विपुलाचल पर्वत पर पधारे। एक निकटवर्ती ग्राम में वेद-वेदांग में पारंगत इन्द्रभूति नाम का गौतम गोत्रीय महा तेजस्वी, शीलवान ब्राह्मण अपने विशाल शिष्य समुदाय के साथ रहता था। उसे जीव, अजीव आदि तत्वों के विषय में शंका थी। भगवान का विपुलगिरि पर आगमन सुनकर शास्त्रार्थ की इच्छा से वह सदल बल वहाँ आया, किन्तु भगवान के समक्ष पहुँचते ही उसकी शंकायें विलीन हो गईं—उनके परमतेजोमय मौन से ही उसे अपनी समस्त शंकाओं का समाधान मिल गया। वह भक्ति से नतमस्तक हुआ और उनका प्रथम शिष्य बना। यही तीर्थंकर महावीर के प्रधान गणधर गौतम स्वामी थे। यह शुभ दिन आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा का था, अतएव लोक में गुरुपूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अगले दिन,

---

१ श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार भ० महावीर ने केवलज्ञान के दूसरे ही दिन इन्द्रभूति आदि को अपापापुरी में ही मत्रायों का निरसन कर प्रतिबोधित किया था। —सम्पादक

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा[1] को उसी स्थल पर अपनी समवसरण सभा मे भगवान ने अपना सर्वप्रथम उपदेश दिया, धर्मतीर्थ की स्थापना की और धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। यही दिन वीर शासनजयन्ति के नाम से प्रसिद्ध है। मगध नरेश श्रेणिक विम्बसार भी श्रोता रूप मे उपस्थित था। भगवान ने विना किसी भेदभाव के सभी प्राणियों को कल्याण का मार्ग दिखाया, अपना अहिंसामय उपदेश और सुखद संदेश दिया।

तदनन्तर, देश-देशान्तरो मे पदातिक विहार करते हुये निरन्तर तीस वर्ष पर्यन्त उस महाप्रभु ने जन-जन को, जनता की ही भाषा (लोक भाषा अर्धमागधी प्राकृत) में सच्चा एवं वास्तविक सुख प्राप्त करने का उपाय बताया—विश्वप्रेम, आत्मौपम्य, अहिंसा और अनेकान्त को समाविष्ट करने वाली तथा श्रमपूर्वक तप-त्याग-सयम द्वारा आत्मशोधन पर आधारित समीचीन रत्नत्रयी उस परम-स्वातन्त्र्य अथवा मोक्ष सुख की प्राप्ति की कुञ्जी और साधिका प्रतिपादित की।

अन्त मे, शक पूर्व ६०५, विक्रम पूर्व ४७० और ईसा पूर्व ५२७ की कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी (अमावस्या) की रात्रि के अन्तिम प्रहर मे, प्रत्यूष वेला मे, पावापुरी में तीर्थंकर महावीर का निर्वाण हुआ। उसी रात गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। लोगों ने दीपमालिका प्रज्वलित करके निर्वाण महोत्सव मनाया, और वह शुभ दिन लोक मे दीपमालिका, दीपावली या दीवाली के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[2]

विश्व मानव के इतिहास मे अन्तिम तीर्थंकर भगवान् वर्द्धमान महावीर के व्यक्तित्व, देन एव महत्त्व का मूल्यांकन गत अढ़ाई सहस्र वर्षो से होता आ रहा है। प्रत्येक युग अपनी-अपनी समस्याओ का समाधान उसमे ढूंढता और पाता रहा है।

---

१. श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार तीर्थ-स्थापना का शुभ दिन वैशाख शुक्ला एकादशी माना गया है। —सम्पादक

२ महावीर की तिथि के लिये देखिए—ज्यो० प्र० जैन—जैनसोर्सेज आफ दी हिस्टरी आफ एन्शेन्ट इण्डिया, पृ० ३२–५४

द्वितीय खण्ड



राजस्थान
में
जैन संस्कृति का विकास

१७ | राजस्थान की भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि

डॉ० रामगोपाल शर्मा

राजस्थान भारतवष का एक महत्त्वपूण राज्य है जहाँ के लोगो ने देश के इतिहास एव सस्कृति के निर्माण की प्रक्रिया मे महत्त्वपूण योग दिया है। विदेशी आक्रान्ताओ के विरुद्ध सघष मे राजस्थानी वीरो की प्रशसनीय भूमिका रही है। यही नही, यहाँ के लोगो ने सस्कृति के सरक्षण एव परिवद्ध न मे भी महत्त्वपूण योग दिया है। राजस्थान के इस ऐतिहासिक दाय को समुचित परिप्रेक्ष्य मे समझने के लिए आवश्यक है कि प्रारभ में उसकी भौगोलिक स्थिति तथा उसके व्यापक प्रभाव का अध्ययन किया जाय।

भौगोलिक पृष्ठभूमि

आकार मे राजस्थान एक विषमकोणीय चतुभु ज जैसा है। इसके पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम मे पाकिस्तान स्थित है और इसका उत्तरी तथा उत्तर-पूर्वी सीमान्त पजाब तथा उत्तर प्रदेश को स्पश करता है। चम्बल नदी राजस्थान की दक्षिण-पूव सीमा बनाती है। इसकी दक्षिणी सीमा वक्राकार रेखा के रूप मे मध्य भारत के आरपार जाती है और राजस्थान को मध्य प्रदेश तथा गुजरात से पृथक् करती है, जो क्रमश इसके दक्षिण-पूव तथा दक्षिण पश्चिम म स्थित हैं।

राजस्थान की भौगोलिक स्थिति की प्रमुख विशेषता अरावली पवत-शृ खला है जो उत्तर पूव तथा दक्षिण-पश्चिम में लगभग ४३० मील तक फली हुई है और जो सारे राज्य को दो भागो में विभाजित करती है। अरावली पर्वत के पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम में राजस्थान का मरुप्रदेश स्थित है जो लगभग ७०,००० वग मील में फैला हुआ है। इसके अतगत जैसलमेर, बीकानेर की पुरानी रियासतें तथा जोधपुर का अधिकाश भाग और जयपुर का शेखावाटी प्रदेश आता है, किन्तु अरावली पवत के पूव तथा दक्षिण-पूव का राजस्थानी प्रदेश इस मरुस्थल से सवथा भिन्न है। यह उपजाऊ प्रदेश है और इसमें मेवाड, हाडोती तथा जयपुर के मैदानी तथा पठारी क्षेत्र सम्मिलित हैं।

राजस्थान के जनजीवन में जलवायु तथा वर्षा का भी अपना महत्त्व है। यहाँ की जलवायु मुख्यत शुष्क है और अधिकाश भागा मे प्राय वर्षा का अभाव रहता है। लगभग ९० प्रतिशत वर्षा मानसून के समय होती है। यद्यपि राजस्थान के उत्तरी भाग म वर्षा का अभाव रहता है तथापि

चित्तौड़, कोटा तथा बांसवाडा के क्षेत्र अधिक वर्षा के लिए प्रसिद्ध है। जलवायु की विषमता के कारण विदेशी आक्रान्ताओं ने यहाँ अपना स्थायी प्रभुत्व स्थापित करने मे अधिक रुचि नहीं ली।

राजस्थान की उपर्युक्त भौगोलिक विशेषताओं का यहाँ के जन-जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। विषम प्राकृतिक स्थिति तथा जलवायु के साथ सतत् संघर्ष ने यहाँ के लोगों मे अदम्य साहस एवं दृढ़ता, असाधारण धैर्य एवं सहनशीलता तथा कर्मठता का संचार किया है। भौगोलिक परिवेश ने राजस्थान के इतिहास तथा संस्कृति को भी एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया है। अरावली पर्वत-माला का व्यापक प्रभाव इस सन्दर्भ मे विशेष उल्लेखनीय है। इस अरावली पर्वत की पश्चिमी तथा केन्द्रीय मेखला घनी और दुर्गम है तथा वह इस क्षेत्र के निवासियो के लिए सुरक्षा की महत्त्वपूर्ण प्राचीर रही है। इन पर्वतीय प्रदेशो व घाटियो मे बसने वाली, भील, मीणा, मेर आदि जन-जातियों ने बाह्य सपर्क से दूर रहकर अपनी विशिष्ट जीवन-पद्धति का विकास किया।

अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण राजस्थान समीपवर्ती प्रदेशों से निष्क्रमण करने वाली जन-जातियो के लिए आश्रय-स्थल भी रहा है। उत्तर-प्रदेश, पंजाब, मालवा तथा गुजरात के साथ मिलने वाली राजस्थान की सीमा पर ऊँचे पहाड़, नदी है और इसलिए वह अधिवासन के लिए उपयुक्त है, किन्तु इन सीमावर्ती क्षेत्रों के समीप ही दुर्गम थार का मरुस्थल तथा दुर्गम उच्च अरावली की पर्वत-शृंखला स्थित हैं जो आक्रान्ताओं के विरुद्ध संघर्ष मे उपयुक्त रक्षा-पंक्ति का कार्य करते है। यूनानियो के हाथो पराजित होने के बाद मालवगण ने राजस्थान में ही शरण ली। राजस्थान मे आकर बसनेवाली अन्य गण-जातियो मे यौधेय एवं अर्जुनायन मुख्य हैं जिन्होने यहाँ आकर अपनी स्वाधीनता की रक्षा की। मालव, यौधेय एवं अर्जुनायन गणो ने विदेशी शको को यहाँ से मार भगाया और शक्तिशाली कुषाण साम्राज्य के ध्वंस में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया। इस प्रकार राजस्थान को भारत के महान् गणराज्यो का क्रीड़ा-स्थल बनने का गौरव प्राप्त है।

राजस्थान की भौगोलिक विशेषताओ के फलस्वरूप ही यहाँ के वीर राजनेता भारतीय सास्कृतिक सरक्षण के लिए विधर्मियो के विरुद्ध सफलतापूर्वक संघर्ष कर सके। अरावली की घाटियो तथा गिरिगह्वरो में आश्रय ले, राजस्थानी वीरो ने विदेशियो का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया।

राजस्थान में दुर्गम पहाड़ी प्रदेशो का उपयोग धार्मिक स्थानो की सुरक्षा के लिए भी हुआ है। विधर्मियो के सतत् आघात से सुरक्षित रखने के लिए यहाँ के शासकों तथा समृद्ध परिवारों ने मन्दिरो तथा धर्म-स्थानो का निर्माण दुर्गम पर्वतीय प्रदेशो में करवाया। नागदा, एकलिंगजी, राणकपुर, सिहाड आदि के मन्दिर इसी दृष्टि से दुर्गम पर्वतीय प्रदेश में बनवाए गए हैं।

भौगोलिक विविधता के बीच भी राजस्थानी जन-जीवन मे एक मूलभूत एकता दृष्टिगोचर होती है। भाषा, धर्म, समान आचार-विचार तथा आदर्शों की समानता यहाँ के निवासियों में एकत्व की अनुभूति की निरन्तर पुष्टि करते हैं। विषम भौगोलिक स्थिति तथा जलवायु के कारण राजस्थान का उत्तरी-पश्चिमी भाग आर्थिक दृष्टि से अधिक विकसित नही हो सका है किन्तु अब राजस्थान नहर एव चम्बलघाटी जैसी विशाल योजनाओ के फलस्वरूप समस्त राजस्थान का आर्थिक भविष्य भी उज्ज्वल प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

'राजस्थान' नाम काफी अर्वाचीन है, किन्तु इस नाम से द्योतित प्रदेश हमारे देश के प्राचीन तम इतिहास तथा सस्कृति से सबद्ध रहा है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इस प्रदेश के विभिन्न नाम मिलते है जो या तो इस प्रदेश की भौगोलिक विशेषताओं से सबद्ध हैं या यहा बसने वाले लोगों से सबद्ध। इन नामो का अध्ययन हमे राजस्थान की राजनीति एव इतिहास की विकास प्रक्रिया का बोध कराता है।

राजस्थान का सबसे प्राचीन उल्लेख हमें 'मरु' नाम से ऋग्वेद मे मिलता है। मरुप्रदेश का उल्लेख महाभारत के वनपर्व[1] मे, बृहत्सहिता मे, सम्मोहतन्त्र मे, रुद्रदामन के जूनागढ अभिलेख (१५० ई०) मे तथा पाल अभिलेखो मे भी मिलता है। खरतरगच्छ पट्टावली[2] मे मरुप्रदेश के लोगों (मारवों) को गुजरो से भिन्न बताया गया है। मरुदेश प्रारम्भ में राजस्थान के रेतीले क्षेत्र का बोध कराता था, किन्तु कालान्तर मे उसका अर्थ अधिक व्यापक बन गया। जयसिंह सूरि की रचना 'हमीर मदमदन' मे जो उल्लेख है, उससे मरुप्रदेश के अन्तर्गत जालोर, चन्द्रावती, आबू तथा मेवाड के शामिल होने का भी सकेत मिलता है।

'जागल' नाम से भी राजस्थानी प्रदेश का उल्लेख प्राचीन साहित्य मे हुआ है। महाभारत मे कुरु और मद्र जनपदो के दक्षिण की ओर स्थित प्रदेशो के लिए क्रमश 'कुरु-जागल' तथा 'मद्र जागल' शब्दो का प्रयोग हुआ है। प्रारम्भ मे 'जागल देश' के अन्तर्गत हर्ष, नागौर तथा साभर के क्षेत्र सम्मिलित थे। जागल क्षेत्र पर शासन करते थे शाकम्भरी तथा अजमेर के चौहान शासक जो 'जांगलेश' भी कहलाते थे।[3] परवर्ती काल मे बीकानेर के राजा भी इस जागल देश के शासक होने के नाते स्वय को 'जागलधर बादशाह' कहते थे।

शाकम्भरी तथा अजमेर का चौहान राज्य केवल 'जागल' के रूप मे ही नही, 'सपादलक्ष' (सवालाख) के रूप मे भी विख्यात था। इसीलिए चौहान शासक 'सपादलक्षीय नृपति' भी कहलाते थे। सपादलक्ष नाम से चौहान राज्य का अनेक अभिलेखो तथा साहित्य मे उल्लेख हुआ है। इस प्रदेश का नामकरण 'सपादलक्ष' हुआ, क्योकि इसके अन्तर्गत बहुत से ग्राम रहे होगे। प्रारम्भ में सपादलक्ष केवल शाकम्भरी व अजमेर के चौहान राज्य का द्योतक था, किन्तु चौहान राजशक्ति के विस्तार के साथ साथ इसका प्रादेशिक क्षेत्र भी अधिक व्यापक होता गया। जब चौहान राज्य अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर था तब सपादलक्ष के अन्तर्गत जागल, शेखावाटी से रणथभोर तक का विस्तृत क्षेत्र, कोटा, मेवाड का माण्डलगढ़ दुर्ग, बूदी का पश्चिमी भाग, किशनगढ़ तथा अजमेर के क्षेत्र सम्मिलित थे।[4]

प्राचीनकाल में राजस्थान के विभिन्न प्रदेशों का नामकरण उनसे सबद्ध जन जातियों के नाम पर भी हुआ। ऐसे नामों मे मत्स्य शब्द विशेष उल्लेखनीय है। मत्स्य' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद म मिलता है जहाँ मत्स्यों को राजा सुदास का विरोधी बताया गया है। 'शतपथ ब्राह्मण' के

---

१ वनपर्व, २०१४ १ २ पृ० ३६

३ डॉ० दशरथ शर्मा, Early Chauhana Dynasty, पृ० 10, 11, 63, 70

४ गौरीशकर हीराचन्द ओझा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका II, पृ० १३० -८२

अनुसार मत्स्य लोग सरस्वती के समीप बसे थे और उनके राजा ने सरस्वती के तट पर अनेक अश्वमेध यज्ञ किए थे। महाभारत युद्ध के समय विराट् (वर्तमान बैराठ) मत्स्य के विस्तृत राज्य की राजधानी था और मत्स्यो ने पाण्डवो के प्रमुख सहयोगियों के रूप मे युद्ध मे सक्रिय भाग लिया था। महाभारत के 'कर्ण पर्व' मे मत्स्यो को सत्य के प्रति निष्ठावान् बताया गया है। 'अंगुत्तर निकाय' नामक बौद्ध ग्रन्थ मे मत्स्यों का उल्लेख शूरसेनो के साथ हुआ है। मत्स्य प्रदेश के अन्तर्गत किसी समय जयपुर तथा अलवर रियासत का कुछ भाग तथा अधिकाश भरतपुर रियासत का क्षेत्र शामिल था।

एक अन्य प्रादेशिक नाम 'शाल्व' का उल्लेख भी महाभारत मे मिलता है। शाल्वो की राजधानी शाल्वपुर थी जिसका समीकरण कनिघंम ने अलवर से किया है। शाल्व प्रदेश के अन्तर्गत अधिकांश अलवर राज्य का भाग सम्मिलित था।

प्राचीन साहित्य मे शूरसेन जनपद का भी उल्लेख मिलता है जिसके अन्तर्गत मथुरा, अलवर, भरतपुर, धोलपुर तथा करौली के समीपवर्ती भाग शामिल थे। यूनानी लेखको ने भी शौरसेन जनपद का उल्लेख किया है। शूरसेन जनपद 'भडाणक' भी कहलाता था जिसका समीकरण वर्तमान 'बयाना' से संभव है।

प्राचीनकाल मे दक्षिणी राजस्थान मे शिबि जनपद की भी स्थिति थी। इसका ज्ञान चित्तौड के समीप नगरी से प्राप्त सिक्को से होता है जिन पर लेख है—'मज्झिमिकय शिबि जनपदस अर्थात् शिवि जनपद से सबद्ध मध्यमिका। प्राचीन काल मे मध्यमिका एक महत्त्वपूर्ण नगरी थी और इसी-लिए भारत पर आक्रमण करने वाले बाख्त्री यवनो ने मथुरा के साथ-साथ मध्यमिका पर भी घेरा डाला था।[1]

मालवगण की भी राजस्थान के इतिहास में प्रमुख भूमिका रही। मालवगण की स्थिति के सूचक अनेक सिक्के जयपुर रियासत के उणियारा ठिकाने के अन्तर्गत नगर या कारकोट नगर से मिले हैं। इन सिक्को से भी अधिक महत्त्वपूर्ण रैड मे प्राप्त वह मुद्रा है जिस पर 'मालव जनपदस' लेख अंकित है।

राजस्थान प्रदेश से सबद्ध एक अन्य प्राचीन नाम है 'गुर्जर', जिसका उल्लेख चीनी यात्री ह्वेनसांग ने किया है। ह्वेनसाग के कथनानुसार गुर्जर प्रदेश की राजधानी पि-लो-मो-लो थी जिसका समीकरण वर्तमान भीनमाल से किया जा सकता है। उद्योतनसूरि भी अपनी 'कुवलयमाला कहा' मे गुर्जर देश तथा भिल्लमाल का उल्लेख करते हैं। गुर्जर प्रदेश के लिए 'गुर्जरात्र' शब्द भी प्रयोग किया जाता था जिसका अर्थ है—गुर्जरो द्वारा रक्षित प्रदेश। भोजप्रथम के दौलतपुर अभिलेख मे दण्डवानक विषय के अन्तर्गत 'शिव' ग्राम का उल्लेख मिलता है। दण्डवानक विषय का समीकरण वर्तमान डीडवाना से किया जाता है। प्रारम्भ मे 'गुर्जर' शब्द पुरानी जोधपुर रियासत के अधिकांश प्रदेश तथा वर्तमान गुर्जर राज्य के कुछ भागो का सूचक था, किन्तु बाद मे वह केवल गुजरात प्रदेश का समानार्थक बन गया।

मेवाड का उल्लेख मेदपाट नाम से भी मिलता है जो उसका सस्कृत रूप है। मेदपाट के

---

१ अरुणद् यवनः साकेतम्।

प्रयोग से यह सकेत मिलता है कि गुहिल शासकों के आधिपत्य से पूर्व मेवाड, मेद अथवा मेर कहलाने वाले लोगों के अधीन था। डॉ० गौ० ही० ओझा मेदो को शकों का वशज बतलाते हैं। जयसिंह कलचुरि के करणवेल अभिलेख से ज्ञात होता है कि मेदपाट का दूसरा नाम प्रागवाट भी था।[1] प्रागवाट शब्द पोरवाल वणिक् जाति का बोध कराता है जो मूलत मेदपाट अथवा प्रागवाट से सबद्ध रही होगी।

राजस्थान के अन्य क्षेत्रीय नामों में वल्ल, अवणि, माड, अनन्तगोचर तथा वागड उल्लेखनीय हैं। इन नामो का उल्लेख जोधपुर के कई अभिलेखों में हुआ है। वल्ल माड राज्य का सीमावर्ती प्रदेश था। माड' नाम अभी भी जैसलमेर क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता है। इसी से राजस्थान के एक लोकप्रिय माण्ड' नामक राग का उदय हुआ प्रतीत होता है। अनन्तगोचर नाम का उल्लेख अभिलेखों में प्रारम्भिक चौहानो की भूमि के रूप में हुआ है। यह वही क्षेत्र है जिसका नागपुरा अथवा नागौर प्रमुख नगर था। वागड राजस्थान में दो हैं। डूगरपुर तथा बासवाडा रियासतो के क्षेत्र अभी भी वागड कहलाते हैं और इसी ग्रथ में वागड का स्थानीय अभिलेखों में उल्लेख मिलता है। डॉ० गौ० ही० ओझा के अनुसार वागड शब्द की उत्पत्ति बगडा से हुई है जिसका अर्थ है जगल।[2] नरहड (पिलानी के पास), भाद्रा नोहर तथा रूनणा का क्षेत्र भी कभी वागड के रूप में प्रसिद्ध रहा है और इसी नाम से इस क्षेत्र का खरतरगच्छपट्टावलि में उल्लेख मिलता है। नाडोल का चौहान राज्य 'सप्तशत' कहलाता था। आबू का क्षेत्र 'अष्टादशशत' के नाम से प्रसिद्ध था, क्योंकि इसमें १८०० ग्राम शामिल थे। इस नाम का विनयचन्द्र की काव्य शिक्षा, उपदेश तरंगिणी तथा उपदेशसार में उल्लेख मिलता है।

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों के द्योतक उपयु क्त नामो मे समय समय पर परिवर्तन होता रहा, किन्तु मरु वागड तथा मेदपाट आदि नाम अपरिवर्तित रहे।

उपयु क्त विवेचन से राजस्थान का ऐतिहासिक महत्त्व निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है। भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे राजस्थानियो का स्वाधीनता प्रेम विशेष द्रष्टव्य है। प्राचीनकाल मे राजस्थान मालव, यौधेय अर्जु नायन जैसे स्वाधीनता प्रेमी 'गणो' की क्रीडास्थली रहा जब आठवीं शताब्दी मे अरबो ने आक्रमण किया तो जालोर के शासक नागभट्ट प्रथम ने सफलतापूर्वक उनका प्रतिरोध किया और महान् प्रतिहार साम्राज्य की स्थापना की। प्रतिहार साम्राज्य के पतन के बाद चौहानो ने हिन्दू धर्म एव सस्कृति की रक्षा के लिए सघर्ष जारी रखा। चौहानों के पराभव के बाद मेवाड के सीसोदियो–महाराणा कुभा, महाराणा सागा तथा महाराणा प्रताप ने स्वाधीनता की ज्योति को किसी न किसी रूप मे प्रज्वलित रखा। इन महान् विभूतियों का कार्यकलाप भारत के इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है जो युगों से हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है। भारत के स्वाधीनता आदोलन मे भी राजस्थान की सक्रिय भूमिका रही है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राजस्थान की राजनीतिक एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ। कई चरणों में राजस्थान राज्य का निर्माण हुआ। सर्वप्रथम १७ मार्च, १९४८ को 'मत्स्य' राज्य का

१ गौ० ही० ओझा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, II, पृ० ३३६
२ ओझा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, II, पृ० ३३७

निर्माण हुआ, जिसमे अलवर, भरतपुर, धोलपुर तथा करौली के प्रदेश सम्मिलित थे। २५ मार्च, १९४८ को कोटा, टोंक, बूंदी, झालावाड़, प्रतापगढ, डूंगरपुर, बासवाड़ा, किशनगढ, शाहपुरा एव कुशलगढ को मिलाकर राजस्थान की दूसरी इकाई का निर्माण किया गया जिनमें बाद में उदयपुर रियासत भी शामिल हो गई। यह इकाई 'राजस्थान' कहलाई। बाद में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर तथा जैसलमेर रियासतो के इसमे शामिल होने पर बृहत्तर राजस्थान का उद्घाटन ३० मार्च, १९४९ को सरदार पटेल के करकमलों द्वारा हुआ। बाद में मत्स्य राज्य और आबू भी इसमें शालिम हो गये और इस प्रकार राजस्थान की राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक एकता का स्वप्न साकार हुआ।

धार्मिक पृष्ठभूमि :

प्राचीनकाल से ही राजस्थान के जन-जीवन पर धर्म का व्यापक प्रभाव रहा है। राजस्थान का सास्कृतिक जीवन धार्मिक परिवेश मे ही पल्लवित होता रहा है। राजस्थान के धार्मिक जीवन की मुख्य धारा वैदिक एवं पौराणिक ढग का हिन्दुत्व रहा है और उसके समानान्तर जैन-धर्म की परम्परा भी निरन्तर प्रवाहमान रही है। यहाँ हम राजस्थान मे विभिन्न धर्मों की स्थिति एव व्यापकता का सक्षेप मे अध्ययन करेगे।

वैदिक मत :

प्राचीनकाल से ही राजस्थान मे यज्ञ की वैदिक परम्परा विद्यमान रही है। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के घोसुण्डी शिलालेख मे हमे अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन का उल्लेख मिलता है। नान्दसा यूप स्तम्भ लेख मे, जो तीसरी शताब्दी का है, षष्ठिरात्र यज्ञ करने का उल्लेख है। वैदिक यज्ञो की यह परम्परा राजस्थान मे बहुत बाद तक प्रचलित रही। मेवाड़ के महाराणा कुंभा ने अनेक वैदिक यज्ञो का आयोजन किया। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह ने ईसा की अठारहवी शताब्दी में भी वैदिक परम्परा को पुनर्जीवित कर अश्वमेध तथा अन्य कई यज्ञो का आयोजन किया। वैदिक यज्ञो तथा कर्मकाण्ड की परम्परा आज भी राजस्थान मे व्यापक रूप मे विद्यमान है।

राजस्थान में प्राचीनकाल से ही पौराणिक हिन्दू धर्म भी अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। पौराणिक धर्म के अन्तर्गत विष्णु, शिव, दुर्गा, ब्रह्मा, गणेश आदि विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा का विधान था। राजस्थान में पौराणिक देवताओं की आराधना के लिए चित्तौड़, ओसियाँ, पुष्कर, आहड़, आम्बानेरी, भीनमाल आदि नगरो मे अनेक मन्दिरो का निर्माण हुआ। राजस्थान मे विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य आदि देवता बहुत लोकप्रिय थे। आबू, नागदा तथा चित्तौड़ आदि स्थानो से अनेक शिलालेख प्राप्त हुए है जो पौराणिक देवी-देवताओं के स्तुतिगान से ओतप्रोत हैं। प्रतिहार काल मे राजस्थान मे सूर्य पूजा का भी काफी प्रचलन था। भीनमाल सूर्य पूजा का महान् केन्द्र था और वहाँ जगत् स्वामिन् का प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर था।

यद्यपि राजस्थान मे विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना प्रचलित रही तथापि परम्परागत धार्मिक-सहिष्णुता की भावना को इससे कोई आघात नही पहुँचा। हिन्दुओं की धार्मिक सहिष्णुता की भावना प्रतिहार काल मे समन्वित हिन्दू देवताओं की मूर्तियो के निर्माण मे अभिव्यक्त हुई है। बघेरा तथा बेडला से प्राप्त हरिहर की मूर्ति, हर्ष से प्राप्त तीन मुखवाले सूर्य की मूर्ति, झालावाड़ से प्राप्त सूर्यनारायण की मूर्ति, आभानेरी से प्राप्त अर्धनारीश्वर की मूर्ति और अजमेर म्यूजियम मे

उपलब्ध विष्णु तथा त्रिपुरुष की त्रिमूर्ति हिन्दू धम की समन्वयात्मक प्रवृत्ति की सुन्दर प्रतीक है।[1]

राजस्थान मे प्राचीनकाल से ही हिन्दुत्व के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय फलते फूलते रहे। इन सम्प्रदायो मे विशेष उल्लेखनीय हैं—शैव तथा पाचरात्र या वैष्णव मत।

शैवमत

राजस्थान मे प्राचीनकाल मे ही शैवमत का व्यापक प्रसार रहा है। पाशुपत, शैव घोप पाशुपत, कापालिक, कालमुख, लकुलीश आदि अनेक शैव सम्प्रदाय राजस्थान मे प्रचलित रहे हैं।[2] इनमे पाशुपत सम्प्रदाय विशेष लोकप्रिय रहा है। पूर्व मध्यकालीन शिलालेखो से ज्ञात होता है कि राजस्थान मे शिव की उपासना अनेक नामो से की जाती थी, जिनमे मुख्य हैं—एकलिंग, समिधेश्वर, चन्द्र चडामणि, भवानीपति, अचलेश्वर, शम्भू पिनाकिन् आदि। शैव उपासना के अन्तगत राजस्थान मे लकुलीश तथा नाथ सम्प्रदाय विशेष लोकप्रिय रहे हैं। मेवाड के महाराणाओ ने श्री एकलिंगजी को ही राज्य का स्वामी माना और स्वय को उनका दीवान। नाथ सम्प्रदाय का जोधपुर क्षेत्र मे विशेष जोर रहा है और राजस्थान के कई स्थलो मे उनके अखाडे हैं। राजस्थान में शैवमत की प्रगति यहाँ बने बहुत से शव मन्दिरो से स्पष्ट है।

शक्ति-पूजा

राजस्थान मे शक्ति के रूप मे देवी की उपासना का भी प्रचलन रहा है। देवी की उपासना महिषासुरमर्दिनी, दुर्गा, पार्वती, योगेश्वरी, अरण्यवासिनी, अष्टमातृका, लक्ष्मी, सरस्वती, अम्बिका, काली तथा राधिका के रूप मे होती रही है। देवी दुर्गा शक्ति की प्रतीक मानी जाती है, इसलिए राजस्थान के कई राजवश शक्ति को कुलदेवी के रूप मे मान्यता दे, उसकी आराधना करते रहे हैं।

पाचरात्र अथवा वैष्णव मत

पाचरात्र लोकप्रिय भागवत धम का ही पूव रूप था। इसका प्राचीनतम उल्लेख दूसरी शताब्दी ईसा पूव के घोसुण्डी अभिलेख मे मिलता है। इस अभिलेख में बलराम वासुदेव के पूजा-स्थान का उल्लेख है। कालान्तर में यह पांचरात्र सम्प्रदाय भगवद् गीता के अवतारवाद में परिणत हो गया। इस परिवतन से हिन्दुत्व में हर धार्मिक विचारधारा को आत्मसात् करने की आश्चयजनक क्षमता विकसित हुई। पांचरात्र तथा भागवत दोनो प्रकार का वैष्णववाद दीघकाल तक राजस्थान का प्रमुख धम बना रहा। वैष्णवमत के अन्तर्गत कृष्ण की पूजा का भी विकास हुआ। राजस्थान के कई मन्दिरों में कृष्ण लीला से सम्बन्धित दृश्य उत्कीर्ण हैं। कृष्ण चरित से सम्बन्धित कई आख्यान तक्षण कला के द्वारा व्यक्त हुए हैं और ओसियाँ, किराडू, सादडी आदि स्थानों से अनेक ऐसी कला कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं। महाराणा कुम्भा के काल में चित्तौड तथा कुम्भलगढ़ में कृष्ण मन्दिरो का निर्माण हुआ। राजस्थान में वष्णवमत राम की आराधना के रूप में भी प्रचलित रहा है।

भक्ति आन्दोलन

मध्यकाल में राजस्थान में धम सुधार की प्रवृत्ति भक्ति-आन्दोलन के रूप में प्रवाहित हुई।

---

१ डॉ० दशरथ शर्मा, Rajasthan through the Ages

२ उपमिति भवप्रपञ्चकथा, पृ० ३६६ ६७

धर्म के वाह्य कर्मकाण्ड तथा आडम्बर के स्थान पर ईश्वर की शुद्ध भक्ति पर जोर दिया गया और धर्म के संदेश को ब्राह्मणो के एकाधिकार से मुक्त कर, जन-साधारण तक पहुंचाया गया। राजस्थान में इस नई धार्मिक चेतना के अग्रदूत थे भक्तशिरोमणि धन्नाजी, जाम्भोजी, मीराबाई तथा दादू।

बौद्धधर्म :

वैराठ तथा झालावाड जैसे कतिपय स्थलो से पुरातत्त्वविदो को स्तूप व विहार आदि के कुछ ऐसे अवशेष मिले है जो प्राचीनकाल मे राजस्थान मे बौद्ध धर्म के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं, किन्तु बौद्धधर्म राजस्थान मे कभी लोकप्रिय न हो सका और शीघ्र ही यहाँ से लुप्त हो गया। राजस्थान से उसके विलोप का मुख्य कारण यहाँ निरन्तर बढती हुई वैष्णव तथा जैनमतों की लोकप्रियता थी।

जैनधर्म :

जैनधर्म शुरू से ही राजस्थान, गुजरात, मालवा एव सौराष्ट्र मे काफी लोकप्रिय रहा और उसने इस भ्रान्त धारणा का खण्डन कर दिया कि युद्ध-प्रिय राजपूत जन-जातियो द्वारा प्रशासित प्रदेशो में अहिंसा परक धर्मों का कोई स्थान नही है।

राजस्थान मे जैन-धर्म के उत्कर्ष का श्रेय उन जैन साधुओ की परम्परा को है जिसने जैन-धर्म व समाज मे सुधार के लिए विधि-चैत्य आन्दोलन का सचालन किया। यह एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन था जिसका शुभारम्भ जैन आचार्य हरिभद्रसूरि ने किया और उद्योतनसूरि तथा सिद्धर्षिसूरि जैसे आचार्यों ने जिसे व्यापक आधार प्रदान किया। हरिभद्रसूरि ने जैनमत मे प्रचलित बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाई और अपनी रचनाओ तथा उपदेशो द्वारा समस्त जैन चिन्तन को प्रभावित किया। उनकी रचनाओ मे 'अनेकान्तजय' तथा 'धर्मविन्दु' विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी मृत्यु के बाद उनके सन्देश का प्रसार दो महान् जैन लेखक—उद्योतनसूरि तथा सिद्धर्षिसूरि ने किया।

राजस्थान में अनेक जैन गच्छों का व्यापक प्रचलन हुआ। आबू मे बड़गच्छ की स्थापना हुई। बड़गच्छ का प्रभाव सिरोही तथा मारवाड क्षेत्रो मे भी रहा। खरतरगच्छ का जन्म गुजरात मे हुआ, किन्तु राजस्थान इसकी गतिविधि का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। खरतरगच्छ के आचार्यों ने राजस्थान मे जैनधर्म को लोकप्रिय बनाने मे विशेष योग दिया। उन्होने निरन्तर पद यात्रा कर अपने उपदेशो द्वारा जन-साधारण मे जैन-धर्म के प्रति नई चेतना जागृत की। जगह-जगह व्रत, उपवास तथा उत्सवों का आयोजन किया गया।

जैन साधुओ की राजस्थान को एक महत्त्वपूर्ण देन उनके द्वारा रचा गया विशाल साहित्य है। इन विद्वान् साधुओं ने ज्ञान की विभिन्न शाखाओ पर सहस्रों ग्रन्थ लिखे और उनका अपने धर्म स्थानों मे संरक्षण किया। भारतीय इतिहास, दर्शन एव साहित्य के ज्ञान के लिए जैन विद्वानो का यह विशाल साहित्य हमारी अमूल्य निधि है।

---

१८ | राजस्थान में जैन संस्कृति के विकास का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

डॉ० कैलाशचन्द्र जैन
डॉ० मनोहरलाल दलाल

[१]

महावीर के समय जैनधर्म

भगवान् महावीर के जीवनकाल में ही राजस्थान के कुछ भागों में जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार का ज्ञान परवर्ती जैन साहित्य से होता है। महावीर के मामा एवं लिच्छवी गणतन्त्र के प्रमुख चेटक की ज्येष्ठ पुत्री प्रभावती सिन्धु-सौवीर के शासक उदायन को ब्याही गई थी। उदायन जैन मतावलम्बी हो गया था। भगवती सूत्र के अनुसार उसने अपने भाणेज केशी को राज्य देकर अपने अंतिम समय में श्रमण दीक्षा स्वीकार करली थी। सामान्यतः सौवीर प्रदेश के अन्तर्गत जैसलमेर और कच्छ के हिस्से भी माने जाते हैं।[1] अवन्ति महाजनपद के अन्तर्गत राजस्थान के कुछ पूर्वी भाग भी सम्मिलित थे, जहाँ का शासक प्रद्योत महासेन महावीर का अनुयायी था क्योंकि इसे चेटक की चतुर्थ पुत्री शिवा ब्याही गई थी।

भीनमाल के १२७६ ई० के एक अभिलेख[2] से विदित होता है कि महावीर स्वामी स्वयं श्रीमाल नगर पधारे थे। आबूरोड से ८ कि०मी० पश्चिम में मुंगथल से प्राप्त १३६९ ई० के शिलालेख[3] से पता चलता है कि भगवान् महावीर स्वयं अर्बुद भूमि पधारे थे।

उपर्युक्त विवरण बहुत बाद के हैं इतिहास के प्रकाश में इनकी सत्यता प्रमाणित नहीं होती। यद्यपि महावीर युग में सिन्धु-सौवीर के शासक उदायन और अवन्ति महाजनपद के शासक प्रद्योत महासेन के जैन मतावलम्बी होने की सम्भावना को निरस्त नहीं किया जा सकता है।

---

१ Ancient India by Tribhuvanlal Shah Vol I p 215
२ Progress Report of Archaeological Survey of India Western Circle, 1907
३ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह अभिलेख संख्या–४८

[२]

राजस्थान में जैनधर्म

राजस्थान मे जैन-धर्म के प्रसार का सर्वाधिक ठोस प्रमाण ईसा पूर्व पञ्चम शताब्दी का बड़ली-शिलालेख[1] माना जाता है, जिसमे वीर निर्वाण संवत् के ८४ वें वर्ष तथा माभमिका का उल्लेख है। माभमिका की पहिचान चित्तौड के निकट स्थित 'नगरी' से की जाती है। पातञ्जल महाभाष्य[2] मे उल्लेखित माध्यमिका ही बड़ली-लेख की माभमिका है। माध्यमिका जैन-धर्म का प्राचीन केन्द्र रही है, जहाँ जैन श्रमण संघ की माध्यमिका शाखा की स्थापना सुहस्ती के द्वितीय शिष्य प्रियग्रंथ ने की थी।[3] जैन श्रमणों की माध्यमिका शाखा का स्थविरावलि मे उल्लेख है। प्रियग्रंथ का समय ई०पू० तृतीय शताब्दी माना जाता है, इसी समय का यहाँ से एक अभिलेख भी मिला है, जिसका अर्थ है—सर्वभूतो के निमित्त।[4] यह अभिलेख जैन या बौद्ध अनुयायी द्वारा सम्पन्न पुण्य कर्म से सम्बद्ध माना जा सकता है, चूंकि माध्यमिका जैन-धर्म के श्रमण सघ का केन्द्र थी, अतएव इस अभिलेख की स्थापना जैन धर्मानुयायी द्वारा की जाने की ही अधिक सम्भावना है। बड़ली-शिलालेख की प्रामाणिकता के सन्दर्भ मे मतवैभिन्य[5] है, अतः इसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। परन्तु प्रद्योत के प्रभाव क्षेत्र मे सूरसेन प्रदेश होने तथा अवन्ति के निकटवर्ती राजस्थान के क्षेत्रो पर अधिकार होने की सम्भावना के प्रकाश मे माध्यमिका का जैन-धर्मावलम्बियो के केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित होने के प्रति उपेक्षा भाव नहीं रखा जा सकता, अन्यथा प्रियग्रंथ माध्यमिका मे आवास नही कर सकते। मौर्यकाल तक माध्यमिका जैन-धर्म के प्रतिष्ठित केन्द्र के रूप मे जानी जाने लगी थी।

मौर्य युग में जैनधर्म :

मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासनकाल मे ही राजस्थान का क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग था। कलिंग देश के विजेता अशोक का वैराट से अभिलेख मिला है। चन्द्रगुप्त को जैनधर्मानुयायी[6] बताने वाले परवर्ती साहित्यिक एव आभिलैखिक साक्ष्यो को अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। चन्द्रगुप्त ने जैन-धर्म के प्रसार के लिये कई प्रयत्न किये। उसे अनेक मंदिरो की स्थापमा का श्रेय दिया जाता है, किन्तु ये अनुश्रुतियाँ विश्वसनीय नहीं हैं। जोधपुर से २६ कि०मी० पर स्थित घंघाणी ग्राम में पार्श्वनाथ का प्राचीन मन्दिर है तथा वहाँ के एक तालाब से १६०५ ई० मे कई जैन-मूर्तियाँ खोजी गई थी।

---

१ Nahar Jain Inscription, No 402, भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृष्ठ–२

२ The History of Rajputana, Vol. I, p. 110

३ Sacred Books of the East, Vol. 22 p. 293

४ उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ३५४-५८

५ Journal of the Bihar and Orissa Research Society, March 1954, p. 8

६ The Early History of India p. 154 (see also F. N. 3)

चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र बिन्दुसार अमित्रघात भी पिता का अनुगामी प्रतीत होता है, यद्यपि उसका पुत्र अशोक कलिंग युद्ध के पश्चात् बौद्ध-धर्म की ओर आकृष्ट हो चुका था। अहिंसा के प्रति अनुराग अशोक में सहज-रूप प्रतीत होता है। अशोक ने बराबर की पहाड़ियों में आजीविकों के वर्षावास हेतु गुफाएं खुदवाई थी तथा अपने अभिलेखों में 'निग्गथ' के प्रति उसने आदर भाव व्यक्त किया है, फलतः राजस्थान क्षेत्र में भी जैन धर्म फूलता फलता रहा होगा। अशोक का पौत्र सम्प्रति जैन इतिहास में अशोक के समान महान् माना जाता है। उसने जैन धर्म के प्रचार हेतु अथक प्रयत्न किये थे। जैन परम्परा में उसे राजस्थान, गुजरात और मालवा में अनेक मन्दिरों के निर्माण तथा मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करवाने का श्रेय दिया जाता है।[१] सम्प्रति ने अपने आचार्य आर्य सुहस्ती के संरक्षण में जैन धर्म के प्रसार के लिये सभा भी बुलाई थी तथा तीर्थयात्रा के लिये उसे संघ निकालने का भी श्रेय दिया जाता है। टॉड के अनुसार[२] कुंभलमेर का मन्दिर सम्प्रति ने निर्मित करवाया था, जोकि सत्य नहीं है। यह मन्दिर वास्तुशैली की दृष्टि से १३वीं शताब्दी का प्रकट होता है तथा बनावट में आबू के समकालीन मन्दिरों से समानता रखता है। नडूलाई के शिलालेख[३] से विदित होता है कि वि०सं० १६८६ में स्थानीय जैन संघ ने राजा सम्प्रति द्वारा निर्मित मन्दिर का पुनर्निर्माण करवाया था, इसे प्रमाण रूप से ग्रहण करना सम्भव नहीं है।

मौर्येतर काल में जैनधर्म

मौर्येतर काल में जैन धर्म का उत्थान शकों के शासन काल में ज्ञातव्य है। प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में जैन विद्वान् कालकाचार्य ने सौराष्ट्र, अवन्ति और सम्भवतः पश्चिमी राजस्थान तक जैन-धर्म का प्रचार किया था। आचार्य कालक की बहिन सरस्वती भी साध्वी रूप में धर्म प्रचार में साथ थी, परन्तु उज्जयिनी के शासक गर्दभिल्ल ने कामुकता वश अपरिमित सुन्दरी साध्वी सरस्वती का बलात् हरण कर लिया तथा स्थानीय जैन संघ और कालक के अनुरोध पर भी सरस्वती को मुक्त नहीं किया, फलतः प्रतिशोध लेने हेतु कालक पश्चिम में गया। पश्चिमी भारत के सिन्धु प्रदेश में शाही (शक) शासक को ज्योतिष विद्या से प्रभावित कर अपने ९५ सरदारों सहित अवन्ति पर चढ़ा लाया तथा गर्दभिल्ल के पराभव एवं मृत्यु के पश्चात् सरस्वती को मुक्त करवा लिया। इन शाहियों का उज्जयिनी पर १७ वर्ष राज्य रहा और तत्पश्चात् गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शकों को खदेड़ कर विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया। सम्भवतः कालक के प्रभाव से पश्चिमी भारत में जैन-धर्म लोकप्रिय हो गया था, क्योंकि जैन अनुश्रुति के अनुसार विक्रमादित्य ने जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर के प्रभाव से जैन धर्म स्वीकार कर लिया था,[४] जोकि मालव गणतन्त्र से सम्बद्ध था, जिसका शासन कालान्तर में अजमेर, जयपुर, टोंक के त्रिकोण प्रदेश पर होने की पुष्टि सिक्कों और अभिलेखों से होती है।[५]

---

१ T L Shah, Ancient India, Vol 2 pp 293 94

२ Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol 2, pp 779 80

३ Nahar Jain Inscriptions No 856

४ The Pattavaali Sammu hchaya, pp 46 p 106, Indian Antiquary, Vol 20

५ Epigraphia Indica, Vol 27 p 266 Catalogue of Indian Coins by Gardner, Pt XVII No 5

इस समय अजमेर एवं पुष्कर के बीच हर्षपुर एक समृद्धिशाली नगर था, जिसकी पहिचान 'हरसुर' से की जाती है। जैन परम्परा[1] मे हर्षपुर को जैन-धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र वर्णित किया गया है, जहां ३०० जैन मन्दिर थे। जैनो का हर्षपुर-कच्छ भी इसी स्थल मे प्रसिद्ध हुआ था, जिसका ग्यारहवी शताब्दी के अभिलेखो मे उल्लेख है।

कुषाण युग में जैनधर्म :

मथुरा से प्राप्त जैन अवशेषो, मूर्तियो एवं अभिलेखों से कुषाणो के शासनकाल में प्राचीन सूरसेन प्रदेश मे जैन-धर्म लोक प्रिय ज्ञात होता है। इस युग से जैनसघ का गण, कुल एवं शाखा मे विभक्त होने के उल्लेख भी मिलते हैं, अतएव मथुरा के निकट के राजस्थानीय क्षेत्रो मे जैन-धर्म की समृद्धि का आभास होता है। समन्तभद्र के प्रयासो से द्वितीय शताब्दी मे जैन-धर्म का प्रचार अधिक हुआ था। श्रवणबेलगोला के शक संवत् १०५० के शिलालेख[2] के अनुसार समन्तभद्र ने जैन-धर्म की विजय का डंका पाटलीपुत्र, मालवा एवं सिन्ध मे बजाने के बाद कांची होते हुए कर्नाटक तक प्रयाण किया था। इस समय मालव लोग जयपुर-टोंक-अजमेर के प्रदेश मे स्थापित थे। माध्यमिका, हर्षपुर आदि नगर कुषाणकाल मे जैनधर्म के प्रतिष्ठित केन्द्र माने जाते थे।

गुप्त एवं गुप्तेतर काल में जैनधर्म :

केशोराय पाटण मे सम्पन्न उत्खनन मे गुप्तयुगीन जैन मूर्तियां एवं कल्प वृक्ष पट्ट निकला था,[3] जिससे इस स्थल पर गुप्तकाल मे निर्मित जैन मन्दिर का ज्ञान होता है। व्हेनसांग ने भीनमाल और वैराठ के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी दी है, जिससे ज्ञात होता है कि बौद्धधर्म इन स्थानो पर पतनावस्था मे था,[4] जबकि अन्य धर्मावलम्बियो की जनसंख्या अधिक थी। इनमें ब्राह्मण धर्मो के साथ जैन-धर्म भी यहाँ विद्यमान रहा होगा। वसंतगढ से भगवान् ऋषभदेव की दो मूर्तियां मिली हैं, जिन पर ६८७ ई० का अभिलेख है।[5]

आठवी और नवमी शताब्दी मे राजस्थान मे जैन-धर्म के प्रसार का सम्पूर्ण श्रेय हरिभद्र-सूरि को है, जो आरम्भ मे चित्तौड़ के शासक जितारी के विद्वान् पुरोहित थे, किन्तु बाद में जैन श्रमण हो गये थे। इन्होने अपने ग्रंथ 'समराइच्यकहा' मे जैन-धर्म की स्थिति पर कुछ प्रकाश डाला है।[6]

[३]

राजपूतकाल में जैनधर्म

शक्तिशाली राजपूत शासको के राज्यकाल मे जैन-धर्म की अप्रत्याशित प्रगति हुई। ये शासक

---

१ Tribhuvan Lal Shah : Anciant India, III p. 140

२ हीरालाल जैन : जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, संख्यक ५४, पृष्ठ १०२

३ Jainism in Rajasthan by Dr. K.C Jain pp. 16

४ Thomas Watters : On Yuanchawang's Travels in India p. 249

५ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, संख्यक, ३६५

६ समराइच्चकहा, भूमिका पृष्ठ ५३; मूल पृष्ठ १८७-८८

शैव या शाक्त धम के अनुयायी थे, परन्तु सहिष्णुता एव जैन-धम के प्रति उदार दृष्टिकोण के कारण राजपूत शासकों ने जैन-धर्म की उन्नति मे हर प्रकार से सहयोग दिया। गुजरात, मालवा एव राजपूताना के शासकों ने जैन विद्वान् जिनसेन, हेमचन्द्र आदि के प्रभाव से जैन-धम की उन्नति मे सक्रिय सहयोग दिया था।

प्रतीहार-राजवश

गुर्जर प्रतीहार शासकों के राज्यकाल मे जैन-धम के प्रसार से सम्बद्ध उल्लेख आठवी शताब्दी के अतिम चरण से प्राप्त होते हैं। वत्सराज[१] के समय ओसिया मे महावीर स्वामी के मन्दिर का निर्माण हुआ था। इसी वत्सराज का जिनसेन ने ७८३ ई० मे लिखे गये अपने जैन ग्र थ 'हरिवश पुराण' मे विवरण दिया है। करीब ७९२ ई० मे वत्सराज का उत्तराधिकारी नागभट्ट हुआ, जिसे 'आम' नाम से भी उल्लेखित किया गया है। 'प्रभावक चरित' से स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'आम' एव नागावलोक अभिन्न राजा था, जिसने एक वणिक जैन-कन्या से विवाह किया था, इसी वणिक के वशज कमशाह[२] ने १५३० ई० मे शत्रु जय-तीथ का सस्कार करवाया था। नागभट्ट जन आचाय बप्पभट्टसूरि का बहुत सम्मान करता था तथा उनके आदेशानुसार इसने कई स्थलो पर जैन मन्दिरो का निर्माण करवाया था। प्रसिद्ध गुर्जर प्रतीहार सम्राट् मिहिरभोज के ८४० ई० मे गद्दी पर बैठने के पश्चात् जैन धम को और अधिक सरक्षण मिला क्योकि मिहिरभोज वप्पसूरि के दो शिष्यो-नन्नसूरि एव गोविन्दसूरि से प्रभावित था। ककुक, जोधपुर के निकट मडोर का प्रतीहार शासक था, जोकि सस्कृत का विद्वान् तथा जैन धम का सरक्षक था। घटियाला शिलालेख[3] से विदित होता है कि ककुक ने ८६१ ई० मे एक जैन मन्दिर निर्मित करवाया था।

चौहान राजवश

चौहान शासकों के राज्यकाल मे जन धम का प्रचार अधिक हुआ। प्रसिद्ध जैनाचाय धमघोष सूरि, जिनदत्तसूरि चौहानों के समकालीन थे, जिनके प्रति अगाध श्रद्धा के कारण जैनों को मन्दिरों को बनवाने हेतु अनुमति एव भूमिदान दी। ११०५ ई० मे शासनरत पृथ्वीराज प्रथम[४] न रणथम्भोर के जैन मन्दिरो मे स्वण कलश की प्रतिष्ठा की थी,[५] जो धार्मिक मामलो मे उसके उदार दृष्टिकोण का परिचायक है। इसके पुत्र अजयराज ने शैवमतावलम्बी होत हुए भी जैन धर्म के प्रति सहिष्णुता का परिचय देते हुए नव स्थापित अजमेर नगर मे जैन मन्दिरों के निर्माण हेतु जैना को अनुमति दी तथा पार्श्वनाथ मन्दिर हेतु एव स्वण-कलश भेंट किया।[६] अजयराज ने श्वेताम्बर जनाचाय

---

१ Archaeological Survey of India, Annual Report 1908 09 p 108

२ मुनि जिनविजय जन-लेख सग्रह, भाग-२, सम्यक-१२

३ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan p 19

४ Annual Report, Rajputana Museum, Ajmer, 1934, No 4

५ Catalogue of the Manuscripts in the Pattna Bhandaras p 316

६ Janamana, Yr 1, No 1, p 4

धर्मघोपसूरि एवं दिगम्बर गुणचन्द्र के मध्य धार्मिक वाद-विवाद मे निर्णायक का कार्य किया था। इसके उत्तराधिकारी अर्णोराज अथवा आन्नलदेव की जिनदत्त सूरि के प्रति अगाध श्रद्धा थी, जो ११३३ ई० के पूर्व सिंहासनारूढ हो चुका था। अर्णोराज ने जिनदत्त सूरि के दर्शन किये और उनके अनुयायियो को एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण करने हेतु भूमि दान दी थी।[1] यह स्थान दादा जिनदत्त सूरि के पश्चात् दादावाड़ी (दादा का उद्यान) के नाम से विख्यात हो गया।

अर्णोराज का उत्तराधिकारी करीव ११५२ ई० मे वीसलदेव विग्रहराज हुआ, जोकि सहिष्णुता एव धार्मिक उदारता का पक्षपाती था। जैनो हेतु उसने विहार वनवाये तथा उनके धार्मिक समारोह मे भाग लिया। जैन विद्वानो के प्रति श्रद्धालु होने के कारण धर्मघोप सूरि के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने हेतु वीसलदेव ने एकादशी के दिन पशुहिंसा वन्द[2] करवादी। इसके पश्चात् ११६९ ई० के विजोलिया शिलालेख से विदित होता है कि पृथ्वीराज द्वितीय ने वहाँ के पार्श्वनाथ मन्दिर के दैनिक खर्चो हेतु मोरकुरी ग्राम दान मे दिया था। पृथ्वीराज द्वितीय का उत्तराधिकारी उसका चाचा सोमेश्वर हुआ, जोकि अर्णोराज का पुत्र था। यह शासक प्रतापलकेश्वर के नाम से भी प्रसिद्ध है। उसने स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से रेवा नदी के तट पर स्थित पार्श्वनाथ मन्दिर को रेवाना ग्राम की सम्पूर्ण आय दान की थी।[3] सोमेश्वर का उत्तराधिकारी ११७९ ई० मे पृथ्वीराज तृतीय हुआ, जिसे धार्मिक वाद-विवाद का शौक था, फलतः उसके दरबार मे जिनपति सूरि एव पडित पद्मप्रभ के मध्य ११८२ ई० मे वाद-विवाद आयोजित किया गया,[4] जिसमे उपकेशगच्छीय चैत्यवासी पद्मप्रभ परास्त हो गये।

चौहानो की एक शाखा ने नाडौल मे ९६० से १२५२ ई० तक शासन किया था। अश्वराज चौहान सोलकी शासक कुमारपाल के अधीनस्थ था। अश्वराज ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था तथा अपने राज्य मे अहिंसा के पालनार्थ निश्चित दिनो मे पशु हिंसा का निषेध घोषित कर रखा था। इसके शिला लेखो से विदित होता है कि कई जैन मन्दिरो मे उसने दान दिये थे। अश्वराज ने अपने पुत्र कटुकराज को सेवादी ग्राम की जागीर दी थी, जहाँ पर वीरनाथ (महावीर स्वामी) का प्रसिद्ध जैन मन्दिर था। सेवादी से १११० ई० के प्राप्त शिलालेख मे अश्वराज के समय मे प्रदत्त दान का विवरण है। इस प्रज्ञापन के अनुसार पद्राड़ा, मेद्रचा, छेछड़िया एवं मेद्ड़ी ग्राम के प्रत्येक कूप वाले किसान को एक हारक यव (जौ) धर्मनाथ देव की दैनिक पूजा, अर्चना हेतु महास्थानीय उप्पलराक द्वारा समीपाटी-मदिर मे देने का आदेश था। १११५ ई० के दूसरे शिलालेख से विदित होता है कि कटुकराज ने आठ द्रम वार्पिक का अनुदान थल्लक को दिया था ताकि वह शिवरात्रि के दिन खत्तक मे प्रतिष्ठित शाँतिनाथ की पूजा करे।[5]

---

१. खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावली, पृष्ठ १६

२. Catalogue of the Manuscripts in the Patna Bhandaras, p. 370

३. Epigraphia Indica, Vol. XXIV, p. 84

४. खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावली, पृष्ठ २५–३३

५ Epigraphia Indica, Vol. XI, p. 30–32

महाराज रायपाल ने भी जैन धम को सरक्षण प्रदान किया था। नाडलाई अभिलेख मे विदित होता है कि रायपाल की राणी मानलदेवी और पुत्रगण—रुद्रपाल और अमृतपाल ने ११३२ ई० मे जैन साधुओ हेतु प्रति तेलघानी से राजभाग मे से दो पलिकाए तेल दानस्वरूप दिये जाने की घोषणा की थी।[1] नाडलाई से प्राप्त ११३८ ई० के शिलालेख से विदित होता है कि महाराज रायपाल के शासनकाल मे गुहिल ठाकुर राजदेव ने नेमिनाथ भगवान् की पूजा हेतु नडुलाडगिक से आयात-निर्यात होने वाले भार की आय का बीसवां भाग दान दिया था।[2] नाडलाई के ११४३ ई० के तृतीय शिलालेख मे महावीर के मन्दिर को महाराज रायपाल के राज्य म दी गई सुविधाओ का विवरण है, जबकि रावल राजदेव ठाकुर थे।[3] यहीं से प्राप्त चतुथ शिलालेख[4] म रावल राजदेव द्वारा ११४३ ई० मे मन्दिर हेतु प्रति घाणक दो पलिकाए तेल दान देने का आदेश है।

सोलकी कुमारपाल के सामत महाराज आल्हणदेव ने अपने स्वामी के पक्ष मे किराट कूप, लाटह्रदा एव शिवा ग्रामो मे ११५२ ई० मे[5] महाजनो तथा ताम्बुलिका के आत्म सतोष के लिये प्रति मास अष्टमी, एकादशी एव चतुदशी को पशु हिंसा का निषेध कर दिया था तथा इसका उल्लघन कर पशु हिंसा करने या पशु हिंसा का कारण बनने वाले के लिये उसने गम्भीर दण्ड का प्रावधान घोषित कर दिया था। यह कदम आल्हणदेव की जैन धम के प्रति अगाध श्रद्धा को व्यक्त करता है। ब्राह्मणो, पुरोहितो तथा मन्त्रियो को भी पशुहिंसा निषेध से सम्बद्ध इस प्रज्ञापन का पालन करने का आल्हणदेव ने निर्देश दिया था। आल्हण एव केल्हण के नाडोल दान पत्र से विदित होता है कि उन्होने राजपुत्र कीर्तिपाल को बारह ग्राम दिये थे तथा ११६० ई० मे नाडलाई मे सूय एव महेश्वर की आराधना कर स्नान करने के पश्चात् कीर्तिपाल ने अपने प्रत्येक ग्राम की ओर से नाडलाई के जिन महावीर मन्दिर हेतु दो द्रम वार्षिक दान की घोषणा लिखवाई थी।[6]

आल्हणदेव का पुत्र केल्हणदेव ने भी जनधम के उत्थान हेतु सहयोग प्रदान किया था। उसके ११६४ ई० के साडेराव के शिलालेख से विदित होता है कि राजमाता अण्हल्लदेवी ने सन्डेरक गच्छ के मूल नायक तीर्थंकर महावीर हेतु भूमिदान किया था।[7] लालराई के द्वितीय शिलालेख से विदित होता है कि सम्नाणक के स्वामी राजपुत्र लाखनपाल एव अभयपाल के अधीनस्थ कृषक—भीवडा, आशाधर एव अन्यो ने तीर्थंकर शातिनाथ से सम्बद्ध गुजरो के उत्सव के लिये चार सेर जौ अपने खेत—खाडिसीरा से[8] आत्म कल्याणाथ भेंट दिया था।

कीर्तिपाल ने चाहमान राजधानी नाडोल से जबालिपुर स्थानातरित कर ली थी, फलत जबालिपुर से भी जन धम के उत्थान के उल्लेख मिले हैं। महाराज आल्हण के पौत्र एव महाराज कीर्तिपालदेव के पुत्र महाराज समरसिंह के राज्यकाल के ११८२ ई० के जालोर शिलालेख के अनुसार

---

१ Epigraphia Indica, Vol XI, p 34–35
२ वही, पृ० ३७–४१
३ वही, Vol IX, पृ० ११६
४ वही, पृ० ६३–६६
५ वही, Vol XI, पृ० ४३–४६
६ वही, Vol IX, पृ० ६६–७०
७ वही, Vol XI, पृ० ४६–४७
८ वही, पृ० ५०–५१

श्रीमाल परिवार के सेठ यशोवीर ने अपने भाई एवं गोष्ठी के समस्त सदस्यों के साथ एक मण्डप निर्मित करवाया था।[1] चाहमान महाराज समरसिंह के आदेश से भण्डारी यशोवीर ने कुमारपाल द्वारा निर्मित पार्श्वनाथ मन्दिर का पुनरुद्धार ११८५ ई० मे जालोर मे करवाया था।[2] चाहमान शासक चाचिगदेव के शासनकाल में १२४५ ई० मे तेलिया ओसवाल नरपति ने भगवान् महावीर के मन्दिर के भण्डार मे ५० द्रम दिये थे।[3] १२७५ ई० के एक अन्य शिलालेख से विदित होता है कि सामतसिंह के राज्यकाल मे नरपति ने पार्श्वनाथ-मदिर मे भेंट अर्पित की थी।[4]

चौहानो के उदार राज्यकाल मे राजस्थान के मारवाड़, अजमेर, बिजोलिया, एवं साम्भर के क्षेत्रो मे जैन धर्म का उत्कर्ष और प्रसार हुआथा। चौहान शासको के जैनेतर धर्मों के अनुयायी होने पर भी हिन्दू देवी-देवताओं के साथ-साथ सहिष्णुतावश जैन तीर्थंकरों की भी अर्चना करते रहे तथा जैनमतावलम्बियो के उत्सवो मे भाग लेकर अपनी जैन-प्रजा के प्रति सौहार्द्रता का परिचय देते रहे।

चावड़ तथा सोलंकी राजवंश :

जैन धर्म को चावड़ एवं सोलकी शासको का संरक्षण प्राप्त हुआ था, इन राजवंशो के शासनकाल मे जैन धर्म का अधिक प्रचार हुआ। ये राजवंश शैवधर्मानुयायी थे, परन्तु जैन धर्म एवं साधुओं के प्रति सहिष्णुतावश आदर भाव रखते थे। कुछ शासकों ने स्वय भी जैन धर्म के प्रचार मे सहयोग दिया। प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्र के चरित्र, पांडित्य एवं प्रभाव के कारण जैन धर्म का गुजरात और राजस्थान में अत्यधिक प्रसार हुआ था। विद्वता तथा जीवन की पवित्रता की दृष्टि से हेमचन्द्र की तुलना शंकराचार्य से ही की जा सकती है।

अन्हिलवाड़ के संस्थापक वनराज ने चावड़ वंश की स्थापना की थी। वनराज ने शीलगुण सूरि को अपनी राजधानी आने को आमंत्रित किया तथा अपना सम्पूर्ण राज्य सूरिजी के चरणो में अर्पित करने की तत्परता व्यक्त की। शीलगुणसूरि के प्रति इतनी श्रद्धा का कारण यह बताया गया है कि जब वनराज जंगल में पलने पर सोया हुआ था, उस समय सूरिजी ने उसके शारीरिक लाञ्छनो को देखकर भविष्यवाणी की थी कि यह बालक आगे चलकर राजा बनेगा। निःस्वार्थ भाव रखने वाले त्यागी सूरिजी ने इसको स्वीकार नहीं किया, परन्तु सूरिजी के आदेशानुसार वनराज ने अणहिलपुर पाटन में पंचासर नाम के मन्दिर का निर्माण करवाकर भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित की।[5] वनराज ने अपनी नवस्थापित राजधानी अणहिलपुर पाटन मे बसने हेतु श्रीमाल तथा मरुधर देश के अन्य स्थानों के जैन व्यापारियो को आमंत्रित भी किया था।

मूलराज सोलकी ने वनराज के वंशज अंतिम चावड़ राजा से करीब ९४२ ई० में सत्ता हस्तगत कर ली। मूलराज शक्तिशाली शासक था, इसके राज्य क्षेत्र मे सारस्वत, सत्यपुरमण्डल तथा

---

१. Epigraphia Indica, Vol XI, पृ० ५२–५४
२. Progress Report of Archaeological Survey, Western Circle 1908–09, p. 55
३. वही, पृ० ५५
४ वही, पृ० ५५
५. प्रबन्धचिंतामणि, वनराज-प्रबन्ध, पृ० १५

कच्छ एव सौराष्ट्र के भाग थे। यह जन धर्म का सरक्षक एव प्रेमी था तथा इसने मूलराजवसहिका[1] नामक जैन मदिर निर्मित करवाया था।

जयसिंह सिद्धराज एव कुमारपाल की उदात्त भावना एव जैन धर्म के प्रति अनुराग के कारण इसका उत्थान एव प्रसार अधिक हुआ। जयसिंह यद्यपि शैव धम का अनुयायी था, फिर भी जैन धम के प्रति उसकी उदारता प्रशसनीय है। जयसिंह के दरबार मे दिगम्बर आचार्य कुमुदचन्द्र और श्वेताम्बर आचाय देवसूरि के मध्य ११२५ ई० मे वाद-विवाद हुआ था,[2] जिसे सुनने हेतु उसके राज्य क्षेत्र के जैन धर्मानुयायी एकत्रित हुए होंगे। जयसिंह विद्वानो का आश्रयदाता था, प्रसिद्ध जैन विद्वान् हेमचन्द्र भी कुछ समय तक उसके दरबार मे आते रहे। जयसिंह का उत्तराधिकारी कुमारपाल था, जो धीरे-धीरे हेमचन्द्राचार्य के प्रभाव म आकर जैन धर्मानुयायी हो गया था। कुमारपाल ने जैन धम के प्रचार के लिये कई उपाय किये तथा अपने राज्य को एक आदश जन राज्य के रूप मे सस्थापित करने का प्रयास किया। जन धम मे त्याज्य विलासप्रिय वस्तुओ को न केवल स्वय कुमारपाल ने त्यागा बल्कि अपनी प्रजा को भी तद्नुरूप अग्रसर होने का परामश दिया। इसने अपने राज्य मे जीव-वध पर पाबन्दी लगा दी तथा इसका पालन सजगतापूवक सख्ती से करवाया। द्वाश्रय-काव्य के अनुसार पाली देश के ब्राह्मणो को यज्ञ मे पशुबलि के स्थान पर अन्न का उपयोग करना पडता था। मेरुतुग के अनुसार सपादलक्ष के एक साधारण व्यापारी को एक यूपक को मारने के दण्डस्वरूप अपनी समस्त सम्पत्ति यूकाविहार बनवाने मे खच करनी पडी थी,[3] यद्यपि यह विवरण अतिरजित है, फिर भी जीव हिंसा निषेध का पालन कुमारपाल ने अपनी प्रजा से सख्ती से करवाया होगा।

कुमारपाल विद्या प्रेमी और विद्वानो का आश्रयदाता था, उसन अपने राज्य मे विभिन्न स्थानो पर २१ शास्त्र भण्डारो की स्थापना की थी।[4] वह एक महान् निर्माता भी था, मेरुतुग के अनुसार उसने १४४० मन्दिर निर्मित करवाये थे।[5] कुमारपाल से सम्बद्ध बहुसख्यक मन्दिर बताना अतिरजित हो सकता है, परतु उसन बडी तादाद मे जन मदिर अवश्य बनवाये थे। ११३४ ई० के अभिलेख[6] से विदित होता है कि उसने जालोर मे एक जैन मन्दिर का निर्माण करवाया था। कुमारपाल की मृत्यु के बाद राजनीतिक अस्थिरता के कारण जैन धम की उन्नति मे बाधा अवश्य आई, परन्तु जन राजनयिको के प्रभाव एव प्रयत्न से जन धम विकासोन्मुख बना रहा।

जैन धम ने विमल, वस्तुपाल और तेजपाल जसे महापुरुषो की सरक्षता मे उन्नति की। ये श्रावक जैन धम के प्रसार हेतु सदव प्रयत्नशील रह। चालुक्य शासक भीम प्रथम ने विमल को अपना प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था, इसने भीम और धन्धू के मध्य मैत्री स्थापित करवाई तथा धन्धू के

१ प्रबन्धचिंतामणि, मूलराज प्रबन्ध, पृ० २२
२ प्रभावक चरित्र, पृ० १७१–८२, प्रबन्धचिंतामणि, पृ० ७८–८२
३ प्रबन्धचिंतामणि पृ० ११०
४ प्रभावक चरित्र, पृ० ९२
५ प्रबन्धचिंतामणि पृ० ११८
६ Progress Report of Archaeological Survey, Western Cirle 1908–09, P 55

आदेश से १०३२ ई० मे आबू में आदिनाथ के एक सौन्दर्यपूर्ण एवं विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया।

वस्तुपाल एवं तेजपाल पहले भीम द्वितीय के मंत्री थे, जिन्हे वीरधवल के अनुरोध पर मैत्रीवश वाघेला राज्य की सेवार्थ भीम ने भेज दिया, फलतः वाद मे ये वीरधवल के मंत्री रहे। सोमसिंह के शासनकाल मे वस्तुपाल के अनुज तेजपाल ने १२३० ई० में आबू मे नेमीनाथ का मन्दिर निर्मित करवाया तथा अपने पुत्र लूणसिंह की स्मृति मे मन्दिर का नाम लूणवसही दिया। यह मंदिर कला का अद्भुत उदाहरण माना जाता है।

परमार राजवंश :

परमार शासकों ने भी जैन धर्म की उन्नति मे योगदान अर्पित किया था। सिरोही रियासत के दियाणा ग्राम के जैन मन्दिर मे ९६७ ई० के शिलालेख[1] मे कृष्णराज के शासन काल में विष्टित परिवार के वर्द्धमान द्वारा वीरनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित करने का विवरण है। ऐतिहासिक दृष्टि से दियाणा का यह जैन शिलालेख कृष्णराज परमार का समय निश्चित करने मे अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कृष्णराज, आबू के परमार राजवंश मे उत्पलराज का पौत्र एवं आरण्यराज का पुत्र तथा आबू के परमारों से सम्वद्ध यह सवसे प्राचीन अभिलेख है।

झाड़ोली के महावीर जैन मन्दिर के ११९७ ई० के शिलालेख[2] से ज्ञात होता है कि परमार राजा धारावर्ष की रानी शृंगारदेवी ने मन्दिर हेतु भूमिदान दी थी। चन्द्रावती के शासक आल्हणसिंह के शासन काल मे पार्श्वनाथ मन्दिर को भेंट देने का विवरण १२४३ ई० के अभिलेख से विदित होता है।[3] चन्द्रावती के महाराज वीसलदेव और सारंगदेव के शासनकाल मे दत्ताणी के परमार ठाकुर द्वय श्री प्रताप और हेमदेव ने पार्श्वनाथ मन्दिर के व्यय हेतु दो खेत १२८८ ई० मे दान दिये थे।[4] रावल महिपालदेव के पुत्र सूहडसिंह ने भी इसी मन्दिर को धार्मिक महोत्सव मनाने के लिये ४०० द्रम दान किये थे। दियाणा से प्राप्त १३३४ ई० के शिलालेख[5] से विदित होता है कि महाराज तेजपाल और उनके मंत्री कूपा ने एक हौज वनवाकर महावीर स्वामी के मन्दिर को भेंट किया था।

धार के परमार शासको ने भी जैन धर्म के प्रति सहिष्णुता दिखलाई। राजस्थान के विस्तृत क्षेत्र—मेवाड़, सिरोही, कोटा और झालावाड़ इनके शासनान्तर्गत थे। इन प्रदेशो मे जैन धर्म की लोकप्रियता का ज्ञान विखरे हुए जैन अवशेषो से होता है। धार का परमार शासक नरवर्मन शैव था, परन्तु जैन धर्म के प्रति आचार्य जिनवल्लभसूरि के कारण श्रद्धालु था। खरतरगच्छ की एक परम्परा के अनुसार नरवर्मन के दरवार मे दो दाक्षिणात्य ब्राह्मण एक समस्या के निदान हेतु धार आये थे, धार के विद्वानगण उक्त समस्या का सतोषप्रद हल नही कर सके; फलतः राजा ने उन ब्राह्मणों को जिनवल्लभसूरि के पास चित्तौड़ भेज दिया। सूरिजी ने तुरन्त संतोषप्रद हल निकाल दिया। जब जिनवल्लभसूरि धारा नगरी आये तो राजा नरवर्मन ने उनको राजमहल मे आमंत्रित किया

---

१. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, संख्यक ३११ २. वही, संख्यक ३११
३. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1909–10, No. 22
४. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, सख्यक ५५ ५. वही, संख्यक ४९०

तथा सूरिजी के विद्वतापूर्ण उपदेशो से अत्यन्त प्रभावित हुआ। नरवर्मन ने जिनवल्लभसूरि को तीन ग्राम या ३० हजार द्रम दान लेने की इच्छा व्यक्त की, जिसे सूरिजी ने स्वीकार नही किया। सूरिजी के अनुरोध पर नरवर्मन ने चित्तौड के चूगीगृह से वहा के खरतरगच्छ के दो मन्दिरो को दो द्रम दैनिक दिये जाने के आदेश दिये।[1]

हठुडी का राठोड राजवश

हठुडी, मारवाड मे बीजापुर के निकट है, जहा से दसवी शताब्दी मे राठोडो का शासन करना ज्ञात होता है। सामान्यत यह राठोड राजवश जैनधर्मावलम्बी विदित होता है।[2] वासुदेवाचार्य के उपदेश से प्रभावित होकर हठुडी मे हरिवमन के पुत्र विदग्धराज ने ऋषभदेव का मन्दिर निर्मित करवाकर भूमि दान मे दी थी। विदग्धराज के पुत्र ममत्त ने भी इसी मन्दिर को कुछ दान दिये थे। ममत्त के पुत्र धवल ने अपने पितामह द्वारा निर्मित इस मन्दिर का नवीनीकरण करवाया तथा जैन-धर्म की कीर्ति स्थापित करने हेतु प्रत्येक प्रकार के प्रयत्न किये। हठुडी के इस मन्दिर को 'हस्तिकुण्डी की गोष्ठी' ने पुन सुधरवाया था तथा उसके बाद वासुदेवाचार्य के शिष्य शातिभद्र के हाथो १०५३ ई० मे प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई थी, जिसमे कुछ जैन श्रावको ने भी सहयोग प्रदान किया था। इन राठोड शासकों का स्वर्ण से तुलकर, स्वर्ण गरीबो मे बाटने के भी सन्दर्भ मिलते हैं।[3]

सूरसेन राजवश

आधुनिक भरतपुर रियासत के क्षेत्रो पर प्राचीन सूरसेन राजवश ने छठी से बारहवी शताब्दियो तक शासन किया था। इनके शासनकाल मे जैन धर्म का प्रसार एव उन्नति होने के कतिपय साक्ष्य मिले हैं। कुछ सूरसेन शासको ने जैन धर्म को स्वीकार कर इसे सरक्षण दिया तथा कई मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई। प्रसिद्ध जैनाचार्यो ने सूरसेन प्रदेश की यात्रा की तथा कुछ ने इस क्षेत्र मे निवास भी किया था।

सूरसेन जनपद की प्राचीन राजधानी मथुरा तो जैनधर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था, परन्तु प्राचीन स्मारको को मुस्लिमो ने तोड फोड डाला। भरतपुर क्षेत्र मे जैनधर्म से सम्बद्ध उल्लेख दसवीं शताब्दी से मिलते हैं। मेवाड के राजा अल्लट न समकालीन प्रद्युम्नसूरि को सपादलक्ष एव त्रिभुवनगिरि के राज दरबारो मे सम्मानित किया गया था।[4] प्रद्युम्नसूरि के शिष्य अभयदेवसूरि ने धनश्वरसूरि को जैनसाधु होने की प्रेरणा दी थी। धनेश्वरसूरि 'त्रिभुवनगिरि का कर्दमभूपति' के नाम से प्रसिद्ध हैं, यद्यपि कर्दम इनका नाम था कि विरुद, अज्ञात है। धनेश्वरसूरि ने राजगच्छ की स्थापना की तथा ये धार के परमार शासक वाक्पति मुञ्ज के समकालीन माने जाते हैं,[5] मुञ्ज की अन्तिम तिथि

---

१ खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावली, पृष्ठ–१३
२ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, pp 26–27
३ Nahar Jain Inscriptions, Pt I, No 898
४ Peterson's Reports 3, pp 158–62
५ जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ १८७–८८

६६७ ई० थी। इस कर्दमभूपति की पहिचान ११५५ ई० के अनंगपालदेव के थाकरदा (डूंगरपुर) अभिलेख[1] मे उल्लेखित राजा पृथ्वीपालदेव उर्फ भर्तृपट्ट से की जाती है। इस अभिलेख मे पृथ्वीपालदेव उर्फ भर्तृपट्ट के पुत्र त्रिभुवनपालदेव, पौत्र विजयपाल एव प्रपौत्र सूरपालदेव के भी उल्लेख हैं, यद्यपि इनका राजवंश का नाम नही है, परन्तु ये सूरसेन शासक ही रहे होंगे।

दिगम्बर जैन कवि दुर्गदेव ने अपनी कृति 'ऋष्ट समुच्चय' की रचना १०३२ ई० मे राजा लक्ष्मीनिवास के शासनकाल में कुम्भनगर के शान्तिनाथ मन्दिर मे पूर्ण की थी।[2] इस कुम्भनगर की पहिचान भरतपुर के निकटवर्ती कामा से की जाती है। इसमे उल्लेखित राजा लक्ष्मीनिवास की पहिचान १०१२ के बयाना अभिलेख[3] मे वर्णित चित्रलेखा के पुत्र लक्ष्मणराज से की जाती है। राजा विजयपाल के शासनकाल के श्वेताम्बर काम्यकगच्छ के विष्णुसूरि एव महेश्वरसूरि के नामोल्लेखयुक्त बयाना के १०४३ ई० के शिलालेख[4] मे महेश्वरसूरि के निर्वाण का विवरण है। इसी विजयपाल को दुर्ग का पुनर्निर्माण एव विस्तार कर विजयमंदिरगढ नाम देने का श्रेय दिया जाता है। काम्यकगच्छ की स्थापना भरतपुर के निकटवर्ती कामा से मानी जाती है तथा इसी क्षेत्र मे श्वेताम्बरो के इस गच्छ का विस्तार भी ज्ञात है। बयाना से प्राप्त इन जैन अभिलेखो मे नगर का नाम श्रीपथ दिया है, जो कि बयाना का प्राचीन नाम था। बयाना तहसील के नरोली ग्राम से भी ११३६ ई० की लेखयुक्त जैन प्रतिमाए[5] मिली हैं, जिससे यह क्षेत्र जैन-धर्म का जीवन्त केन्द्र प्रकट होता है।

बयाना का अन्तिम सूरसेन शासक कुमारपाल था, जो कि ११५४ ई० मे सिंहासन पर बैठा। इस कुमारपाल को जैनसाधु जिनदत्तसूरि ने धार्मिक शिक्षा दी थी। यहा के शांतिनाथ मन्दिर पर स्वर्णकलश एव ध्वज जिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिष्ठित करवाने का समारोह बड़े उत्साह से मनाया गया था।[6] जिनदत्तसूरि के दो शिष्यो—जिनपालगणि एव धर्मशीलगणि ने यशोभद्राचार्य के निकट अध्ययन किया था। अपने गुरु जिनदत्तसूरि की आज्ञा मिलने पर ११८८ ई० मे त्रिभुवनगिरि के सघ को लेकर इन्होने तीर्थयात्रा की तथा अन्य सघो के साथ जिनदत्तसूरि से भेंट की।[7] त्रिभुवनगिरि के दुर्ग मे १२वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे वादिदेवसूरि ने किसी प्रकाड विद्वान् को वादविवाद में परास्त करने का गौरव अर्जित किया था।[8] त्रिभुवनगिरि मे उपकेशगच्छ से सम्बद्ध एक प्राचीन मन्दिर भी था।[9] उपर्युक्त विभिन्न उल्लेखों से भरतपुर के निकटवर्ती क्षेत्रो मे सूरसेन राजवश के अन्तर्गत जैनधर्म की प्रतिष्ठा एवं प्रसार का ज्ञान होता है।

[४]

राजस्थान की विभिन्न रियासतों में जैन धर्म

राजस्थान के विभिन्न देशी रियासतो मे विभाजित रहने के पश्चात् भी जैन-धर्म उन्नतिशील

१. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer 1915–16. p. 3
२. Singhi Jain Series Vol. 21 (Introduction)
३. Epigraphia Indica, Vol. 22, p. 120 ४. Indian Antiquary, Vol. 21, p. 57
५. Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1920–21, p. 116
६. खरतरगच्छ बृहदगुर्वावली, पृष्ठ–१६ ७ वही, पृष्ठ ३४
८. भारतीय विद्या, जिल्द २, भाग १, पृष्ठ ६२ ९. वही

बना रहा। मध्यकाल मे अनेक मन्दिर निर्मित हुए तथा उनमे मूर्तियो की प्रतिष्ठा की गई। अनेक पवित्र ग्रन्थो की प्रतिया तथा मौलिक ग्रन्थ लिखे गये। राजा एव राजनयिको ने जैन-साधुओ को आदर की दृष्टि से देखते हुए, जनधर्म के प्रति उदारता और सहिष्णुता का परिचय दिया, जिसके कारण राजस्थान मे जैन धर्म एव अहिंसा का प्रभाव अक्षुण्ण बना रहा।

मेवाड

मेवाड के महाराणाओ तथा उनके जैन मन्त्रियो ने जैन धर्म के प्रसार एव उन्नति हेतु कई प्रयत्न किये। मन्दिर निर्माण, मूर्तियो की प्रतिष्ठा, अहिंसा पालन की उद्घोषणा तथा जनाचार्यों का हार्दिक स्वागत एव प्रवचन श्रवण द्वारा मेवाड मे जनेतर धर्मावलम्बी होते हुए भी राणाओ ने जैन धर्म के प्रति सहिष्णुता बनाये रखी।

राणा भर्तृभट्ट (९४३ ई०) ने भर्तृपुर[1] बसाया तथा गुहिलविहार निर्मित करवाकर चैत्रपुरीय गच्छ के बुद्धगणि के द्वारा उसमे आदिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई[2]। इसके पुत्र अल्लट के मन्त्री ने आघाट मे मन्दिर बनवाकर पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा सन्डेरक गच्छ के यशोदेवसूरि द्वारा करवाई। जिनप्रबोधसूरि के समकालीन चित्तौड के महारावल क्षेत्रसिंह थे,[3] जिन्होने सूरिजी के करीब १२७७ ई० मे चित्तौड पदार्पण पर ब्राह्मणो, सामतो और कर्णराज के साथ भव्य स्वागत किया था[4]। महाराणा समरसिंह और उनकी माता जयतल्लादेवी, देवेन्द्रसूरि के उपदेश से प्रभावित होकर उनके भक्त हो गये। चित्तौडगढ के १२७८ ई० के शिलालेख[5] से मेदपाट और चित्रकूट के स्वामी तेजसिंह की रानी जयतल्लादेवी ने वहा पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया था। समरसिंह ने मन्दिर के पश्चिम मे प्रद्युम्नसूरि हेतु विहार बनाने को भूमिदान दी थी तथा भर्तृपुरीय गच्छ के जैन मन्दिर को साध्वी सुमाला के उपदेश से प्रभावित होकर अपनी माता जयतल्लदेवी के आत्मकल्याणार्थ कुछ भूमिदान मे दी थी।[6] देवेन्द्रसूरि के उपदेशो से प्रभावित होकर समरसिंह ने अपने राज्य मे पशुहिंसा का निषेध घोषित कर प्रजा को अध्यादेश मे मदिरा त्याग करने और न्यायपूर्ण एव धार्मिक जीवन व्यतीत करने का परामर्श भी दिया था। राणा के पुत्र तेजक ने अपनी पत्नी रत्नदेवी और पुत्र विजयसिंह के साथ जयतल्लादेवी के लिए १३०६ ई० मे एक जिनमूर्ति प्रतिष्ठित की थी, जो कि प्रतापगढ के मन्दिर के मूर्ति-लेख[7] से ज्ञात है।

महाराणा मोकल के खजाची ने अपने स्वामी के आदेश से १४२८ ई० मे महावीर मन्दिर बनवाया था।[8] नागदा के पार्श्वनाथ मन्दिर को १४२९ ई० मे पोरवाल जाति के एक व्यापारी ने निर्मित करवाया था।[9] मोकल के पुत्र महाराणा कुम्भा के शासनकाल म कई जैन मन्दिर और

---

१ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer Yr 1914–15 No 1

२ जैन सत्य प्रकाश, वर्ष ७, दीपोत्सवाक, पृष्ठ १४६–४७

३ जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ १९३ ४ खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावली, पृष्ठ ५६

५ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1922–23, No 8

६ वही, No 9 ७ वही, 1921–22, No 3

८ मध्यप्रान्त, मध्यभारत और राजपूताने के प्राचीन जैन स्मारक, पृष्ठ १३७

९ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1904–05 p 62

मूर्तिया वनी तथा स्वय महाराणा ने सादडी का प्रसिद्ध जैन मन्दिर बनवाया[1] जिसे राणकपुर का मन्दिर कहा जाता है। चित्तौड का प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ को बघेरवाल जीजा के पुत्र पुर्नसिंह ने अपनी पुत्री की प्रेरणा से तथा महाराणा कुम्भा की अनुमति से दुर्ग के अन्दर निर्मित करवाया था।[2] रणपुर एव कमलगढ़ के प्रसिद्ध चौमुखा मन्दिर कुम्भा के ही शासनकाल में बने थे। देलवाडा के जैन विहार के निकट पड़े शिलालेख से विदित होता है कि महाराणा कुम्भा के शासनकाल मे धर्मचिन्तामणि मन्दिर मे पूजा हेतु १४ टंका दान किये गये थे।[3] इसके शासनकाल मे एक व्यापारी सारंग ने नागदा के अद्भुदजी मन्दिर में शान्तिनाथ की मूर्ति १४३७ ई० मे प्रतिष्ठित की थी।[4] कुम्भा के कोषाधिकारी साह केल्हा के पुत्र भण्डारी वेलाक ने १४४८ ई० मे जैन तीर्थंकर शांतिनाथ का मन्दिर निर्मित करवाया था।[5] वसन्तपुर (वसन्तगढ़) चैत्य मे धनसी के पुत्र भादाक ने मुनि सुन्दरसूरि के द्वारा एक जैनमूर्ति की प्रतिष्ठा १४५३ ई० मे करवाई थी।[6] अचलगढ की कांसे की आदिनाथ मूर्ति के पादपीठ अभिलेख से विदित होता है कि जब महाराजाधिराज कुम्भा का कुम्भलमेरु पर शासन था, तब डूंगरपुर मे रावल सोमदास के शासनकाल मे बनी इसी प्रतिमा को तपागच्छ-संघ द्वारा आबू मे लाया गया था।[7]

राणा कुम्भा के पुत्र राणा रायमल के शासनकाल के १४९९ ई० के उदयपुर-अभिलेख से ज्ञात होता है कि महावीर और अम्बिका के मन्दिर बनवाये गये थे।[8] मेवाड़ के राणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के आदेश से सीहा एव समदा ने नादलाई मे आदिनाथ प्रतिमा का प्रतिष्ठा समारोह किया था।[9]

महाराणा प्रताप ने हीरविजयसूरि को मेवाडी मे पत्र लिखकर[10] धर्म-प्रचार हेतु मेवाड़ आने का १५७८ ई० मे निमन्त्रण दिया था। प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने भी जैनमन्दिर को १६०२ ई० मे दान दिया था।[11] महाराणा जगतसिंह के शासनकाल मे जैनधर्म की समृद्धि मे वृद्धि हुई। १६२९ ई० मे जयमल ने सम्पूर्ण संघ सहित नादोल[12] एव नादलाई[13] मे प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। आचार्य महाराज देवसूरि के गुणगान से प्रभावित होकर जगतसिंह ने उन्हे चातुर्मास हेतु उदयपुर आमन्त्रित

---

१. History of Indian and Eastern Architecture p. 240

२. अनेकांत, वर्ष ८, क्रमाक ३

३ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1923-24, No. 7

४. Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1905-6 p 61

५ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1920-21, No. 10

६ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1923-24 No. 8

७ वही, 1925-26, No 8

८ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1905-06, p. 60

९ वही, 1908-09, p. 43 10 राजपूताना के जैन वीर, पृष्ठ ३४१-४२

११ Progress Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1907-08 p 48-49

१२ वही, 1908-09 p 46 १३ वही, p. 43

करने के लिये अपने प्रधानमन्त्री झाला कल्याणसिंह को भेजा था। देवसूरि का उदयपुर मे शानदार स्वागत किया गया तथा उनके उपदेशो से प्रभावित होकर जीवहिंसा रोकने से सम्बन्धित आदेश निकाले, इनमे उदयपुर की पिछोला एव उदयसागर झील मे मछली पकडने पर रोक, महाराणा के जन्मदिन वाले मास, राज्याभिषेक की तिथि तथा भाद्रपद मास मे सम्पूर्ण राज्य मे जीवहिंसा की मनाही आदि प्रमुख हैं। वरकाना में वार्षिक सम्मेलन मे जाने वाले लोगो से राणा ने शुल्क नही लेने के चु गीघर को आदेश दिये तथा मचिन्द दुर्ग पर राणा कुम्भा द्वारा निर्मित जैन मन्दिर को उसने सुधरवाया। जगतसिंह को उदयपुर के जैनमन्दिर मे भगवान् ऋषभदेव की प्रतिमा की पूजा करने[1] का भी श्रेय दिया जाता है।

मेवाड के राजघराने के सरक्षण मे जनधर्म की उन्नति होती रही। महाराणा राजसिंह के प्रधानमन्त्री दयालशाह ने १६७५ ई० मे राजनगर मे जैन मन्दिर बनवाकर जैनाचार्य विजयसागर के द्वारा मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी।[2]

वागड

राजस्थान के डूगरपुर, बासवाडा और प्रतापगढ राज्यों का सम्मिलित क्षेत्र वागड कहलाता था। इन तीनो राज्यो मे शासको की सहिष्णुतापूर्ण नीति एव जैनानुयायी मन्त्रियो के कारण मन्दिरो का निर्माण हुआ तथा मूर्तियो की प्रतिष्ठाए भी ठाटबाट से सम्पन्न हुई। जन समाज के प्रभाव से अहिंसा का पालन तेली तक करते ज्ञात होते हैं। वागड सघ का सबसे प्राचीन उल्लेख ६६४ ई० के मूर्ति लेख से होता है।[3] वागड प्रदेश की प्राचीन राजधानी 'वटपद्र' थी, जिसकी पहिचान 'बरोद' से की जाती है। यहा पर एक चट्टान पर २४ तीर्थंकरों की प्रतिमाए उभारी गई हैं, जिन्हें १३०७ ई० के अभिलेख के अनुसार खरतरगच्छ के जिनचन्द्रसूरि ने स्थापित करवाई थीं।[4] मेवाड के धुलेवा में स्थापित केसरियाजी की प्रतिमा भी यहीं से ले जाई गई थी।[5]

डूगरपुर का प्राचीन नाम गिरिपुर था, जिसकी स्थापना १३५८ ई० में की गई थी। जयानन्द के 'प्रवासगीतिकात्रय' से विदित होता है कि १३७० ई० में यहां पाच जैन मन्दिर तथा नौ सौ जन परिवार थे।[6] रावल प्रतापसिंह के मन्त्री प्रहलाद ने १४०४ ई० में एक जैन-मन्दिर बनवाया था।[7] गजपाल के शासनकाल की चार ग्रन्थो की हस्तलिखित प्रतियां—पञ्चप्रस्थान विषमपद व्याख्या (१४२३ ई०), द्वाश्रय महाकाव्य सटीक (१४२८ ई०) द्वितीय खण्ड ग्रन्थाग्रन्थिय-सकलग्रन्था (१४२६ ई०) और कथाकोष (१४३० ई०), मिली हैं।[8] इसके मन्त्री साभा ने आतरी में शान्तिनाथ का मन्दिर बनवाकर तीर्थंकर की कांसे की मूर्ति प्रतिष्ठित की थी।[9] गजपाल के बाद उसके पुत्र

---

१ राजपूताना मे जैनवीर पृष्ठ ३४१ २ केसरियाजी तीर्थ का इतिहास, पृष्ठ–२७

३ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan p 32 (जयति श्री वागड सघ)

४ डूगरपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ–१ ५ वही, पृष्ठ–१५

६ मेवाड राज्य का इतिहास ७ श्री महारावल रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ ३६७

८ Annual Report of the Rajputana Museum Ajmer, 1915 16

६ श्री महारावल रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ३६८

सोमदास के शासनकाल में डूंगरपुर में निर्मित आदिनाथ की कांसे की विशाल प्रतिमा अचलगढ़ मे सपरिवार साभा सहित तपागच्छ के सघ द्वारा पधराई गई थी।[1] साभा के बाद उसका पुत्र साल्हा सोमदास का मुख्यमन्त्री बना, जिसने १४६४ ई० के अकाल के समय दो हजार व्यक्तियों को प्रतिदिन भोजन करवाया था।[2] गिरिपुर के पार्श्वनाथ मन्दिर को सुधरवाया था तथा अपने पिता साभा द्वारा निर्मित आंतरी के मन्दिर मे एक मण्डप एव देवकुलिकाएँ बनवाई थी, जिसका प्रतिष्ठा समारोह १४६८ ई० मे सोमविजयसूरि द्वारा सम्पन्न हुआ था। डूंगरपुर से पाच मील दूर अपने जन्म-स्थान धाना मे साल्हा ने एक विशाल जैन-मन्दिर बनवाना आरम्भ किया था, जो पूर्ण नहीं हो सका।[3] रावल सोमदास के शासनकाल मे सिद्ध-हेम वृहद-वृत्ति, श्री सुकुमाल-स्वामी-चरित्रम् और काव्यकल्प लता कवि शिक्षावृत्ति लिखी गई थी।[4] इसके शासनकाल मे जैन-मूर्तियो के प्रतिष्ठा समारोह १४६२ ई० एव १४७३ ई० मे सम्पन्न हुए थे।[5] सोमदास के समय का किसी जैन साधु का स्मारक भी मिला है।[6] बांसवाड़ा रियासत के नोगामा मे स्थित शान्तिनाथ मन्दिर के भीत्ति लेख से ज्ञात होता है कि १५१४ ई० मे राजा उदयसिह के शासनकाल मे हूबड़ जाति के दोसी चम्पा तथा उसके पुत्रो एवं पौत्रो ने यह मन्दिर निर्मित करवाया था।[7] डूंगरपुर एवं बासवाड़ा मे जैन-धर्म की लोकप्रियता एव उत्थान का ज्ञान परवर्तीयुग की प्राप्त बहुसख्यक मूर्तियो से होता है।[8]

प्रतापगढ रियासत मे जैन-धर्म के उत्थान का ज्ञान देवली, झांसदी, एव प्रतापगढ के जैन-मन्दिरो की १४वी और १५वी शताब्दियो की लेखयुक्त मूर्तियो से होता है। देवली मन्दिर की १३१६ ई० की पार्श्वनाथ के कांस्य-मूर्तिलेख से विदित होता है कि इसे घन्घलेश्वरवाटक निवासी श्रीमाल जाति के ठाकुर खेटाक ने प्रतिष्ठित करवाया था।[9] देवली के १७१५ ई० के शिलालेख से विदित होता है कि महारावल पृथ्वीसिह के राज्यकाल मे सारैया एव जीवराज नामक महाजनों के अनुरोध पर स्थानीय तेलियो ने वर्ष मे ४४ दिन अपने कार्य को बन्द रखने का निश्चय किया था।[10] इसी राजा के शासनकाल मे मल्लिनाथ का मन्दिर देवली मे सिघवी वर्धमान ने १७१७ ई० मे बनवाया था।[11] महारावल सामन्तसिह के राज्यकाल मे आदिनाथ का मन्दिर धनरूप, मनरूप एव अभयचन्द्र ने १७८१ ई० मे निर्मित करवाया था।[12] प्रतापगढ़ मे जैनमूर्तियो का एक विशाल प्रतिष्ठा समारोह १७७८ ई० मे सम्पन्न हुआ था।

कोटा :

कोटा रियासत मे बारां, कोपवर्धन (शेरगढ) श्रीनगर, अत्रु, विलास आदि जैन-धर्म के प्रसिद्ध प्राचीन केन्द्र थे। पद्मनन्दि ने बारां मे 'जम्बूद्वीपपण्णति' की रचना आठवी शताब्दी मे की थी, इस

---

१. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1929–30 No. 3
२. वही, 1925–26, No. 8 ३. डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ५८
४. श्री महारावल रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रथ, पृष्ठ ३९९
५ डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ७०–७१
६. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1916–17
७. वही, 1916–17 No. 5 ८. वही, 1914–15 ९. वही, 1921–22 No 6
१०. वही, 1934–35, No. 17 ११. वही, No. 18 १२ वही, No 20

ग्रंथ के अनुसार बारा जैन श्रावकों एवं मन्दिरों से परिपूर्ण था। 'जम्बूद्वीपपण्णत्ति' में उल्लेखित बारा की पहिचान कोटा रियासत के बारा से की जाती है, जो कि इस समय मूलसंघ के भट्टारकों का पीठ था।[१] शेरगढ़ में ग्यारहवीं शताब्दी में किसी राजपूत सरदार द्वारा प्रतिष्ठित तीन विशाल प्रतिमाएं हैं, जिनके पादपीठ-लेख से नगर का प्राचीन नाम कोषवर्धन ज्ञात होता है।[२] रामगढ़ के निकट पहाड़ियों में आठवीं-नवीं शताब्दी की कटी हुई जैन गुफाएं हैं। इस स्थल को श्रीनगर कहा जाता था। यहां जैनसाधु वर्षावास करते होंगे। गुफाओं के आस-पास जैन तीर्थङ्करों की कुछ मूर्तियां भी कोरी गई थी।[३]

कोटा जिले के अन्नू रेलवे स्टेशन के निकट मन्दिरों के अवशेष बिखरे पड़े हैं, इनमें दो जैन मन्दिर थे। हिन्दू मन्दिर धार के परमार शासकों के समय बारहवीं एवं तेरहवीं शताब्दियों में निर्मित हुए थे, सम्भवतः जैन-मन्दिर भी इसी समय बने होंगे। अन्नू के पूर्व में बारह मील पर पार्वती नदी के तट पर प्राचीन नगर कृष्णविलास के अवशेष हैं, इनमें आठवीं से ग्यारहवीं शताब्दियों के बीच बने जैन एवं हिन्दू मन्दिरों के भी अवशेष हैं। विलास के पूर्व में २५ मील दूर शाहबाद तथा वहां से पांच मील दूरी पर स्थित तालाब के निकट टीले पर जैन मन्दिरों के अवशेष हिन्दू मन्दिरों के साथ बिखरे हैं। इन विभिन्न भग्नावशेषों से यहां जैन धर्म की लोकप्रियता प्रकट होती है।

सांगोद के निकट चांदखेड़ी[४] में औरंगजेब के शासनकाल में १६८९ ई० में जब कोटा के शासक सामंत किशोरसिंह चौहान था, तब बघेरवाल कृष्णदास ने महावीर का एक मन्दिर बनवाया तथा अपनी पत्नियों और पुत्रों के साथ बहुसंख्यक मूर्तियों की प्रतिष्ठा की थी। औरंगजेब ने साम्राज्य-नीति के विरुद्ध मन्दिर निर्मित होने पर स्थानीय शासक से कई बार स्पष्टीकरण पूछा था, जिसको टालने हेतु अस्पष्ट उत्तर दिया जाता रहा।

सिरोही

सिरोही के शासकों ने जैन धर्म को प्रश्रय दिया तथा आचार्यों का सम्मान किया। कालन्द्री से प्राप्त १३२२ ई० के लेख[५] से ज्ञात होता है कि स्थानीय श्रमणसंघ के कुछ सदस्यों ने समाधिमरण (संथारा) के द्वारा निर्वाण प्राप्त किया था। सिरोही के शासक सोहज के समय वर्धमान ने १४०८ ई० में पिण्डवाड़ा में महावीरस्वामी का मन्दिर बनवाया था।[६] आबू रोड स्टेशन के निकट रायमल ने रायसिंह के शासनकाल में ऋषभ विहार १५४२ ई० में बनवाया था।[७] पिंडवाड़ा में महावीर के मन्दिर में दुर्जनसाल के शासनकाल में दो देवालय १५४६ ई० में लघुलडे एवं तेजपाल के कल्याणार्थ[८]

---

१ Indian Antiquary, Vol, 21 p 57 २ कोटा राज्य का इतिहास, पृष्ठ २८

३ Dr K. C. Jain Jainism in Rajasthan pp 35–36

४ Dr K C Jain : Jainism in Rajasthan, p 36

५ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1916-17, p 67

६ Annual Report of the Rajputana Museum, 1909 10, No 3

७ वही 1924- 25, No 10 ८ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, संख्या ३७६ एवं ३८०

तथा १५६५ ई० में उदयसिंह के शासनकाल मे दो देवालय बाई गोरंगदे एव लक्ष्मी के कल्याणार्थ[1] निर्मित हुए थे। अकबर के निमंत्रण पर जब हीरविजयसूरि फतहपुरसीकरी जा रहे थे, तब शासक सुरतानसिंह ने उन्हे ससम्मान सिरोही रोका था तथा मास, मदिरा एवं आखेट को त्यागकर एक-पत्नीव्रत की प्रतिज्ञा ग्रहण की थी और सूरि के परामर्श पर कुछ कर भी माफ किये थे।[2] इसके पुत्र महाराजा राजसिंह के समय सिरोही में चतुर्मुखा मन्दिर १५७७ ई० में बना था।[3] अखैराज धर्मदास के शासनकाल में १६६२ ई० में सिंहविजय की पादुका वीरवाड़ा (ब्राह्मणवाड़ा) मे चतुर्विधसंघ द्वारा प्रतिष्ठित की गई थी[4] तथा १६६४ ई० में उदयभान एव जगमाल[5] ने आदिनाथ और शीतलनाथ की मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई थी। इसी समय पेशुवा[6] में सम्पूर्ण सघ ने कुंथुनाथ की प्रतिमा का प्रतिष्ठा महोत्सव किया था।

मानसिंह के शासनकाल में पीठा ने १७१४ ई० में सूरि की पादुका प्रतिष्ठित की थी तथा भट्टारक चक्रेश्वरसूरि ने जनकल्याणार्थ १७३० ई० में मडार में अन्य साधुओ के साथ प्रतिष्ठा समारोह किया था।[7] राजा शिवसिंह ने वामणवाड़ा ग्राम का पशु और भूमि पर लगने वाला कर वहां के जैन-मन्दिर को १८१६ ई० में जागीर के रूप में प्रदान कर दिया था।[8]

जैसलमेर :

जैसलमेर के भाटी राजवश के अतर्गत इस प्रदेश में जैनधर्म का प्रसार हुआ। मरुस्थल के मध्य होने से विध्वंसको से शास्त्र भण्डारो, जैन-मन्दिरो एवं मूर्तियो की सुरक्षा बनी रही। मन्दिरो, मूर्तियो, जैनाचार्यों की पादुकाएं, शास्त्र भण्डरो आदि की स्थापना तथा स्थानीय श्रावक संघो द्वारा जैनतीर्थों की यात्राओ से भाटी शासको की सहिष्णुता एव जैनधर्म के प्रति श्रद्धा का ज्ञान होता है। जैसलमेर राज्य की पुरानी राजधानी लोद्रवा थी। जिसके नष्ट होने पर जैसलमेर हुई। करीब ९९४ ई० में यहां के शासक सगर को खरतरगच्छ के आचार्य वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि के वरदान से दो पुत्र—श्रीधर एवं राजधर उत्पन्न हुए, फलत. उसने पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया था,[9] जिसका पुनर्निर्माण १६१८ ई० में सेठ थाहरूशाह ने करवाया था।[10]

विक्रमपुर (अब वीकमपुर) खरतरगच्छीय जैनो का केन्द्र था, जहां इस गच्छ के कई आचार्य धार्मिक समारोहो में आते रहे। जिनवल्लभसूरि ने ११११ ई० में विक्रमपुर की यात्रा की थी[11] तथा जिनपतिसूरि तो ११५३ ई० में यही जन्मे थे। विक्रमपुर के कुछ जैनों ने जिनपतिसूरि से विभिन्न अवसरो पर दीक्षा ली थी तथा ११७५ ई० मे इन्होने भाण्डागारिक गुणचन्द्र-गणि के स्तूप का प्रतिष्ठा समारोह[12] सम्पन्न किया था। जिनपतिसूरि के साथ स्थानीय श्रावको ने अभयकुमार के नेतृत्व में अणहिलपट्टन से ११८५ ई० मे निकलने वाले संघ में सम्मिलित होकर तीर्थयात्राएं की थी।[13]

---

१. वही, सख्यक ३८३ एव ३८४
२ सूरीश्वर और सम्राट अकबर, पृष्ठ १८८
३. प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, सख्यक २५०
४. वही, सख्यक २९८
५. वही, सख्यक २४३ एव २५७
६. वही, संख्यक ५०४
७. वही, सख्यक १०१ एव १०३
८. वही, सख्यक ३०४
९ Nahar : Jain Inscriptions, pt. III No 2543
१०. वही, संख्यक २५४४
११. खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावली, पृष्ठ १३
१२ वही, पृष्ठ २४
१३. वही, पृष्ठ ३४

जिनप्रबोधसूरि ने महाराजा कर्ण के अनुरोध पर १२८३ ई० में चातुर्मास जैसलमेर में किया था।[1] जिनराजसूरि के उपदेशों से प्रभावित होकर राजा लक्ष्मणसिंह के शासनकाल में यहां चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर १४१६ ई० में निर्मित कर[2] लोद्रवा से पार्श्वनाथ प्रतिमा लाकर प्रतिष्ठित की गई थी तथा जैन प्रजा की राजा के प्रति श्रद्धा के कारण मन्दिर का नाम राजा के नाम पर 'लक्ष्मण विलास' रखा गया। इसके पुत्र वरीसिंह के समय पासड ने इस मन्दिर में सुपार्श्वनाथ की मूर्ति १४३६ ई० में प्रतिष्ठित की थी[3] तथा १४३७ ई० में साह हेमराज एवं पूना ने सम्भवनाथ का मन्दिर बनवाया,[4] जिसमें सम्भवनाथ-मूर्ति का प्रतिष्ठा समारोह १४४० ई० में हुआ और तभी जिनभद्र ने तीन सौ जैन प्रतिमाएं प्रतिष्ठित की थी। राजा वरीसिंह ने प्रतिष्ठा समारोह में भाग लिया था। इसी समय साह लोला ने भी पार्श्वनाथ की सहस्रफण प्रतिमा १४४० ई० में स्थापित की थी।[5] वैरीसिंह के पुत्र चाचिगदेव के शासन काल में सजाक,[6] सचोहराज[7] एवं सज्जा[8] ने क्रमशः नन्दीश्वरपट्टिका, शत्रुञ्जय गिरनारावतार पट्टिका और नन्दीश्वरपट्टिका की प्रतिष्ठा जिनचन्द्र सूरि के द्वारा १४६१ ई० में करवाई थी।

देवकरण के शासन में भी जैनधर्म को प्रोत्साहन मिला था। साखवालेचा सेठा एवं चोपड़ा पञ्चा ने १४७९ ई० में दो मन्दिर[9] शान्तिनाथ और अष्टापद के बनवाये थे तथा संघवी सेठा ने सपरिवार कई बार तीर्थयात्रा की और सम्भवनाथ मन्दिर में तपपट्टिका का प्रतिष्ठा समारोह किया। पाटन के धनपति ने १४७९ ई० में यहां के पार्श्वनाथ मन्दिर में शान्तिनाथ बिम्ब की प्रतिष्ठा की थी[10] तथा हमा[11] और भीमसी[12] ने जिनवरेन्द्र पट्टिका १४७८ ई० में निर्मित करवाई थी। देवकरण के ही शासनकाल में मरुदेवी की प्रतिमा[13] ऋषभ मन्दिर में प्रतिष्ठित की गई थी।

जैसलमेर के परवर्ती शासकों के समय भी जैनधर्म की उन्नति अविरल रही। भीमसेन के शासनकाल में संघवी पासदत्त ने १५६३ ई० में जिनकुशलसूरि की पादुका स्थापित की थी[14] तथा पार्श्वनाथ मन्दिर में स्तम्भ प्रतिष्ठा १६०६ ई० में सम्पन्न[15] हुई। कल्याणदास के राज्यकाल में जिनसिंहसूरि ने १६१५ ई० में जिनचन्द्रसूरि की पादुका[16] बनवाई और मंत्री टोडरमल ने १६१६ ई० में उपासरे का द्वार बनवाया[17] तथा १६२१ ई० में जिनसिंहसूरि ने जैसलमेर पधारकर लक्ष्मण विलास मन्दिर में लोद्रवा से लाई गई चिन्तामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा सम्पन्न की।[18]

बुधसिंह के शासनकाल में गंगाराम ने १७१२ ई० में [illegible]सुन्दरगणि के उपदेश पर प्रतिमाएं प्रतिष्ठित करवाई थीं।[19] अखैसिंह के राज्यकाल में जिनउदयसूरि की पुण्यपादुकाएं १७४९ एवं १७५५ ई० में उनके अनुयायियों ने स्थापित की थीं।[20] मूलराज के शासनकाल में जिनयुक्तसूरि का

---

१ खरतरगच्छ-बृहद्गुर्वावली पृष्ठ ५८ २ Nahar Jain Inscriptions pt III No 2112
३ वही पृष्ठ २११४ ४ वही, पृष्ठ २१३९ ५ वही, पृष्ठ २१४४ ६ वही पृष्ठ २११९
७ वही, पृष्ठ २११७ ८ वही, पृष्ठ २११८ ९ वही पृष्ठ २१५४ १० वही, पृष्ठ २१२०
११ वही, पृष्ठ २४०४ १२ वही, पृष्ठ २४०६ १३ वही पृष्ठ २४०० १४ वही पृष्ठ २४६४
१५ वही पृष्ठ २४६५ १६ वही, पृष्ठ २४६७ १७ वही पृष्ठ २४८३ १८ वही, पृष्ठ २४६८
१९ Nahar Jain Inscriptions, p III No 2501 २० वही, पृष्ठ २५०८ व २५०९

स्तूप, १७६८ ई० मे वनवाया गया था[1] तथा पडित रूपचन्द्र के द्वारा १७८६ ई० मे थम्ब पादुका[2] और श्रावक सघ द्वारा निर्मित ऋषभदेव-मन्दिर मे १८०४ ई० मे प्रतिमा[3] की प्रतिष्ठाएं सम्पन्न हुई थी। इसी तरह १७८४ ई० मे स्तम्भ प्रतिष्ठा[4] और १८१८ ई० मे एक स्तम्भ को ऊंचा[5] किया गया था।

मूलराज के उत्तराधिकारी गजसिंह के शासनकाल मे आचार्य जिनउदयसूरि का स्मृति महोत्सव स्थानीय संघ ने १८१९ ई० में मनाया था।[6] स्थानीय श्रावकों ने सपरिवार तीर्थयात्रा कर वहां भोज, पूजा, दान, रथयात्रा आदि पुण्यकर्म १८३४ ई० मे सम्पन्न किये थे।[7] महारावल गजसिंह के शासनकाल मे जैसलमेर मे ओसवालो ने जिनहर्पसूरि की भग्न पादुकाओ का पुर्ननिमाण[8] किया तथा १८४० ई० मे संघवी गुमानमल ने अमरसागर के निकट भग्न जैन-मन्दिर का संस्कार करवाकर आदिनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी थी।[9] इसी के शासनकाल मे जिनमहेन्द्रसूरि ने १८४४ ई. में जिनचन्द्र के शिष्य जितरगगणि की पादुका स्थापित की थी।[10]

रणजीतसिंह के शासनकाल मे जैसलमेर के जैनसघ ने १८४६ ई० मे आदिनाथ का मन्दिर वनवाकर मुनि डूंगरसी के द्वारा प्रतिष्ठा सम्पन्न की थी[11] तथा १८६० ई० में साहिबचन्द्र ने जिन-मुक्तिसूरि के द्वारा अमरसागर पर पादुका स्थापित करवाई थी।[12] इस प्रकार जैसलमेर के राजवंश ने जैन-धर्म एवं सांस्कृतिक आयोजनों की प्रगति मे सहयोग दिया।

जोधपुर :

जोधपुर के राठोड शासकों ने जैन-धर्म के प्रति सहिष्णुता तथा जैनाचार्यों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की, फलतः कई मन्दिर निर्मित हुए और जिन मूर्तियो के प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न हुए। जोधपुर राज्य की पुरानी राजधानी खेडा के शासक मल्लिनाथ के राठोड़ उत्तराधिकारियों द्वारा शासित 'नगर' जैन-धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था, जो जसोला से तीन मील की दूरी पर स्थित है। गोविन्दराज ने १५५६ ई० में मोदराजगणि के परामर्श पर यहा के महावीर-मन्दिर को रड्डा के शासनकाज मे दान दिया था।[13] रावल कुपकण के शासनकाल मे विरमपुर के सघ ने १५११ ई० के शिलालेख के अनुसार विमलनाथ मन्दिर में रंगमण्डप वनवाया था।[14] रावल मेघविजय के समय १५५७ ई० मे शांतिनाथ का नलिमण्डप निर्मित हुआ था[15] तथा १५८० ई. में एक मन्दिर मे सुधार कार्य किया गया था।[16] रावल तेजसिंह के शासनकाल मे स्थानीय सघ ने शांतिनाथ-मन्दिर मे सुधार कार्य करवाया था[17] तथा १६१० ई० मे ऋषभदेव-मन्दिर के अभिलेखानुसार कुछ पुर्ननिर्माण भी हुआ था।[18] स्थानीय जैनो ने रावल जगमल के शासनकाल मे महावीर-मन्दिर में नाकोड़ा पार्श्वनाथ हेतु चतुष्किका १६२१ ई० मे वनवाई थी[19] तथा १६२४ ई० मे निर्गम चतुष्किका और तीन खिडकिया पार्श्वनाथ मन्दिर मे जुड़वाई थी।[20]

---

१. वही, पृष्ठ २५०३ व २५०२ २. वही, पृष्ठ २५११ ३. वही, पृष्ठ २५७५
४. वही, पृष्ठ २५१० ५. वही, पृष्ठ २५०४ ६. वही, पृष्ठ २५०४ ७. वही, पृष्ठ २५३०
८. वही, पृष्ठ २५८५ ९. वही, पृष्ठ २५२४ १०, वही, पृष्ठ २४९९ ११. वही, पृष्ठ २५१८
१२. वही, पृष्ठ २५४२ १३. Nahar Jain Inscriptions, No. 931
१४. Progress Report of the Archaeslogical Survey, Western Circle, 1911-12 p. 54
१५. वही १६. वही १७. वही १८. वही १९. वही २०. वही

जोधपुर के राठोड शासको ने भी जैन धम के प्रसार और उन्नति म योगदान दिया था। सूर्यसिह के राज्यकाल मे वस्तुपाल ने १६१२ ई० मे पाश्वनाथ प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी।[1] गर्जसिह के समय १६२१ ई० मे भामा ने कापडा मे पार्श्वनाथ प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी[2] तथा जालोर मे जयमल ने १६२६ ई० मे आदिनाथ, पाश्वनाथ एव महावीर की नवनिर्मित मूर्तियो का प्रतिष्ठा समारोह किया था। गर्जसिह के शासनान्तगत मेडता[3] मे सुमतिनाथ की तथा पाली[4] मे पाश्वनाथ की मूर्तियो के प्रतिष्ठा समारोह १६२६ ई० मे सम्पन्न हुए थे। महाराजा अभयसिह के अधीनस्थ मारोठ मे भक्तसिह एव बैरीसाल के शासनान्तगत १७३७ ई० मे मूर्ति प्रतिष्ठा समारोह हुआ था।[5] अभयसिह के पुत्र रामसिह के शासनकाल मे गिरधरदास न १७४६ मे बिलाडा म मन्दिर बनवाया था[6] तथा इसके सामत मेडतिया राजपूत हुकमसिह के समय भट्टारक विजयकीर्ति ने १७६७ ई० में मारोठ की यात्रा की थी।[7]

बीकानेर

बीकाजी ने अपने अनुयायियो सहित जोधपुर छोडकर १४८८ ई० में बीकानेर बसाया था। इनके उत्तराधिकारियो ने जैन धम के प्रति श्रद्धाभाव बनाये रखा। महाराजा रायसिह ने १५८२ ई० में अक्बर से सिरोही से १०५० जनमूर्तिया अपने मत्री करमचन्द्र के अनुरोध पर प्राप्त की थी[8] तथा करमचन्द्र द्वारा लाहोर में आयोजित युगप्रधानपदोत्सव मे भाग लेकर जिनचन्द्रसूरि को शास्त्र-प्रतिया भेंट की थी।[9] जयचन्द्रसूरि के पट्टधर जयसिहसूरि से रायसिह का निकट सम्पक था तथा इनके शासनकाल में हम्मीर न नेमीनाथ की प्रतिमा १६०४ ई० मे प्रतिष्ठित की थी। कर्णसिह (१६३१ ई०) ने जैन उपासरा बनवाने हेतु भूमिदान दी थी। जैनधम के प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण के कारण जैनकवि धमवधन सूरि ने महाराज अनूपसिह के राज्यारोहण के अवसर पर प्रशस्ति रची थी। जिनचन्द्रसूरि से बीकानेर के शासको—अनूपसिह, जोरावरसिह, सज्जनसिह एव गजसिह का पत्र व्यवहार हुआ था। महाराज सूरतसिह (१७६५ ई०) ने जैन उपासरे हेतु भूमिदान दी थी तथा दादाजी के प्रति श्रद्धा के कारण दादावाडी को १५० बीघा भूमिदान में दी थी।[10] इनके उत्तराधिकारी रतनसिह (१८२८ ई०) ने भी जनधम एव जनाचार्यो के प्रति आदरभाव रखा था।

जयपुर

जयपुर के कच्छावा शासको, उनके जागीरदारो और ठाकुरो आदि ने जनधम को प्रश्रय दिया। इस राजवश के दीवाना में करीब पचास जैन थे। जयपुर राज्य मे अनेक शास्त्रो की प्रतिया

---

१ Nahar Jain Inscriptions, No 773 २ वही, पृष्ठ ६८१ ३ वही, पृष्ठ ७८३
४ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1907-8, p 45
५ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 43, F No 1
६ Nahar Jain Inscriptions, No 937
७ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 43
८ बीकानेर जन लेख सग्रह पृष्ठ २७ ९ वही, पृष्ठ ७ (प्रस्तावना)
१० बीकानेर जैन लेख सग्रह, पृष्ठ ८ ११ (प्रस्तावना)

लिखी गई, अनेक मूर्तियो की प्रतिष्ठाएं हुई और कई नवीन मन्दिर बनाये गये। करमचन्द्र के शासनकाल मे भविष्यदत्तचरित्र की एक प्रति १५३८ ई० में लिखी गई थी।[१] १५५६ ई० मे भारमल के समय नेमीनाथ मन्दिर में पाण्डव पुराण[२] और हरिवंश पुराण[३] तथा इसके उत्तराधिकारी भगवानदास के शासनान्तर्गत मालपुरा में वर्धमानचरित[४] की प्रति लिखी गई थी। मानसिंह के शासनकाल मे मालपुरा के आदिनाथ मन्दिर मे हरिवंश पुराण की प्रति १५८८ ई० मे लिखी गई थी[५] तथा १५९१ ई० मे खण्डेलवाल थानसिंह ने पावापुरी की यात्रा हेतु संघ निकाला था।[६] चम्पावती (चातसु) के भट्टारक चन्द्रकीर्ति ने १६०५ ई० में एक स्तम्भ स्थापित किया था।[७] मानसिंह के ही शासनकाल मे राजमहल (१६०४ ई०) एवं संग्रामपुरा (सांगानेर) में १६०५ ई० में हरिवंश पुराण की प्रति लिखी गई थी[८] तथा १६०७ ई० मे जेता ने बडी संख्या मे मूर्तियो का प्रतिष्ठा समारोह मौजमाबाद में किया।[९]

मिर्जा राजा जयसिंह ने शाहजहां के शासनकाल मे जैनधर्म को प्रश्रय दिया था। इसके मुख्यमंत्री मोहनदास ने आम्बेर मे विमलनाथ का मन्दिर बनवाया था।[१०] सवाई जयसिंह की सेवा तीन जैन मन्त्रियो—रामचन्द्र छाबड़ा, राव कृपाराम एव विजयराम छाबड़ा ने की थी। रामचन्द्र ने शाहबाद का जैन मन्दिर बनवाया था तथा भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के पट्ट महोत्सव मे भाग लिया था।' कृपाराम ने चातसु का जैन मन्दिर तथा जयपुर मे चाकसू का चौक, का विशाल जैन मन्दिर बनवाये थे। विजयराम ने १७४० ई० में संयुक्त समकित कौमुदी लिखवाकर पंडित गोवर्धन को भेट की थी।[११]

सवाई माधोसिंह का मुख्यमन्त्री जैन बालचन्द्र छाबड़ा था, जिसने अपने पूर्ववर्ती असहिष्णु ब्राह्मण श्यामराम द्वारा भग्न जैन मन्दिरो का पुनर्निर्माण किया तथा १७६४ ई० में इन्द्रध्वज पूजा महोत्सव' का जयपुर मे सफल आयोजन[१२] करवाया, जिसमे दीवान रतनचन्द्र शाह ने भी भाग लिया और एक जैन मन्दिर बनवाया। पृथ्वीसिंह के शासनकाल मे नन्दलाल ने १७६९ ई. मे भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति के परामर्श पर सवाई माधोपुर मे बडी सख्या मे मूर्तियो का प्रतिष्ठा समारोह किया तथा जयपुर और सवाई माधोपुर मे जैन मन्दिर निर्मित करवाये[१३]। दीवान केसरीसिंह कासलीवाल

---

१. कस्तूरचन्द कासलीवाल : प्रशस्ति सग्रह, पृष्ठ १४८   २. वही, पृष्ठ १२६   ३. वही, पृष्ठ ७७
४. वही, पृष्ठ १७०   ५. वही, पृष्ठ ७३
६ Dr K.C. Jain : Jainism in Rajasthan, p. 45 F. No. 6
७. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1927-28, No. 11
८. प्रशस्ति सग्रह, पृष्ठ ७२
९. Dr K C Jain : Jainism in Rajasthan p. 45 F. N. 10
१० Annual Report of Rajputana Museum, Ajmer, 1925-26, No 11 & 1933-34, No 13
११ Dr. K.C Jain : Jainism in Rajasthan p 46 F. No. 1 to 5
१२. वीरवाणी, पृष्ठ २९-३०
१३. Dr. K C. Jain : Jainism in Rajasthan p 47 F. No. 2

ने जयपुर का सिरमोरिया जैन मन्दिर बनवाया था। माधोसिंह के राज्यकाल मे कन्हैयाराम ने 'वैद्यो का चैत्यालय' नामक जयपुर का जैन मन्दिर निर्मित करवाया था।

बालचन्द्र छावडा का पुत्र रायचन्द्र जगतसिंह का मुख्यमन्त्री था, जिसने तीर्थयात्रार्थ सघो का नेतृत्व किया तथा भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति के परामर्श पर १८०१ ई० में जनागढ मे यत्र प्रतिष्ठा की[1] और १८०४ ई० मे जयपुर मे बडी सख्या में मूर्तियो का प्रतिष्ठा[2] समारोह सम्पन्न किया। जगतसिंह के दीवान बखतराम ने जयपुर में यति यशोदानन्दजी के नाम से प्रसिद्ध जैन मन्दिर तथा दुर्गापुरा में रोडपुरा का मन्दिर बनवाये थे। इसने अपनी जागीर अनतपुरा मे भी एक मन्दिर बनवाया था, जो चाकसू के निकट है।

जयपुर राज्य के सामतों ने भी जैन धर्म की उन्नति मे योगदान दिया। जोबनेर के सरदार विजयसिंह के शासन मे जैसा ने मूर्तिया प्रतिष्ठित १६६४ ई० मे की थी।[3] मालपुरा मे मारोठ के शासक अर्जुन गौड के शासन मे दशलक्षण यत्र की प्रतिष्ठा १६५३ ई० मे हुई थी।[4] मूलसघ के यशकीर्ति के परामर्श पर साह्जीतमल एव नथमल ने १६०४ ई० म आदिनाथ का मन्दिर रेवासा मे बनवाया था।[5] बैराट पर अकबर के अधीनस्थ इन्द्रराज शासन कर रहा था, उसने १५८७ ई० के अभिलेखानुसार विमलनाथ का मन्दिर बनवाया था।[6] तक्षकगढ (टोडारायसिंह) मे सोलकी शासक सूर्यसेन के समय उनियारा के निकट आनवा मे सघवी कालु ने १५३६ ई० मे मूर्तिया प्रतिष्ठित की थीं[7] तथा राव रामचन्द्र के शासनकाल में यशोधर चरित्र की दो प्रतिया १५५३[8] एव १५५५ ई०[9] मे लिखी गई थी। टोडारायसिंह के महाराजा जगन्नाथ के समय १६०७ ई० मे 'आदिनाथ पुराण' की प्रति आदिनाथ मन्दिर में लिखी गई थी।[10] तथा राजसिंह के मन्त्री वादिराज ने यहाँ १६७२ ई० में 'वाग्भटालकाराव चूरि कविचन्द्रिका' लिखी थी।[11]

चाकसू जनधर्म के प्राचीन केन्द्रों म एक है, जहा विभिन्न ग्रन्थों की प्रतिया १४२५ ई० से १५५६ ई० तक लिखी गई थीं।[12] इन प्रतियों मे लिखी गई प्रशस्तिया से तत्कालीन शासकों का ज्ञान होता है। १७२६ ई० मे जयपुर के निकट बासखोह में हृदयराम ने स्थानीय शासक चौहर्रसिंह के समय मूर्तियों की प्रतिष्ठा की थी।[13]

---

१ Dr K C Jain, Jainism in Rajasthan p 47 F N 3
२ वही F N 4 ३ वही p 48 F N 1 ४ वही F N 2
५ Annual Report of the Rajputana Museum Ajmer, 1934-35 No 11
६ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1909 10 pp 44
७ वीरवाणी, ४, पृ० १०६–१० ८ कासलीवाल प्रशस्तिसग्रह पृ० १६८
६ वही, पृ० १६३ १० वही, पृ० ८६
११ जनग्रन्थ प्रशस्तिसग्रह, सम्यक १४१
१२ कासलीवाल प्रशस्ति सग्रह, पृ० ६३, ५४, ६६, १७५ एव ६४
१३ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 49 F N 11

अलवर :

अजवगढ,[1] नीगामा[2] एवं राजगढ[3] मे ग्याग्हवी शताब्दी के जैन वास्तु अवशेष मिले हैं। फिरोज तुगलक के समय मुस्लिम बने खानजादास-शासको के काल मे भी जैन-धर्म की उन्नति के प्रतीक १५–१६वी शताब्दी के वास्तु-नमूने है। मध्यकालीन तीर्थमालाओ[4] मे अलवर के रावण-पार्श्वनाथ को स्थलरूप मे तीर्थ माना गया है। अलवर के निकट पारानगर के भग्नावशेषो से यह स्थल प्राचीन जैन केन्द्र ज्ञात होता है। जैन साधुओ ने अलवर की पवित्रता के कारण मध्य युग मे धार्मिक साहित्य का सृजन किया था।[5] यहाँ १५६७ ई० मे साधुकीर्ति ने 'मौन एकादशी'; १६४२ ई० मे शिवचन्द्र ने 'विदग्धमुखमण्डनवृत्ति'; १६२५ ई० मे लालचन्द्र ने 'देवकुमार चौपाई'; विनयचन्द्र ने १८२१ ई० मे 'महिपाल चौपाई आदि की रचना की थी तथा १५४३ ई० मे हसदत्त लघुसंवत्रयी और १५४६ ई० मे लघुक्षेत्रसमास की प्रति लिखी गई थी। खानजादास शासको के समय तिजारा और बहादुरपुरा मे कुछ ग्रथो की प्रतिया १५–१६वी शताब्दियो मे लिखी गई थी।[6]

१५१६ ई० के जैनशिलालेख से विदित होता है कि वहुद्रव्यपुर मे श्रीमाल सघ ने आदिनाथ चैत्य वनवाकर आचार्य पुन्यरत्न सूरि के द्वारा मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी।[7] अलवर में एक श्रावक ने १५३१ ई० मे सुमतिनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा[8] सिद्धसूरि से करवाई थी तथा १६१६ ई० मे काष्ठासंघ के भट्टारक भूषण ने एक मूर्ति का प्रतिष्ठा समारोह किया था।[9] आगरा निवासी ओस-वाल हीरानन्द के द्वारा अलवर मे रावण-पार्श्वनाथ का मन्दिर वनवाने का उल्लेख १६२८ ई० के अभिलेख मे है।[10]

राजस्थान मे जैन मन्दिर एव मूर्तिया राजपूत शासको के कारण मुस्लिम विध्वसको से सुरक्षित रही, फिर भी इन आक्रामको ने कई मन्दिरो को भूमिसात कर दिया तथा मूर्तियो और शास्त्र भण्डारो को नष्ट किया। जैन-मन्दिरो को मुस्लिमो ने तोड़-जोड़ कर मस्जिदो मे परिणित किया, जिसके श्रेष्ठ उदाहरण अजमेर स्थित 'ढाई दिन का झोपडा'; साचोर स्थित जामा मस्जिद, जालोर की मस्जिद, शाहवाद (कोटा) की मस्जिद आदि प्रमुख है। राजस्थान के विभिन्न नगरो मे कुतुवुद्दीन ऐवक, इल्तुतमीश, अलाउद्दीन एव नासीरउद्दीन खिलजी मुगल राजकुमार कामरान, औरगजेव आदि ने कई जैन-मन्दिरो को नष्ट करवाया था, जो जैन धर्म की उन्नति एव प्रसार मे बाधक हुआ। अग्रेजो के शासन काल मे राजस्थान प्रदेश के विभिन्न रजवाडो ने पूर्ववत जैनधर्म के प्रति सहिष्णुता एव उदारता की नीति रखी, जिसके कारण राजस्थान जैनो का जनसख्या की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रदेश वना रहा।

---

१ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1918–19 Nos. 4, 9 & 10

२. वही, 1919–20, Nos. 3 & 4

३. Archaeological Survey Reports, XX, p. 124

४ जैन सत्यप्रकाश, १०, पृ० ९९

५ अरावली, १, संख्यक १२

६. श्री प्रशस्ति सग्रह पृ० ९६, १०८, ११५, १२५ तथा ३५, ५४

७ Archaeolgical Survey Reports, XX पृ० 119

८. Nahar . Jain Inscriptions, No. 1464

९. भट्टारक सम्प्रदाय, संख्यक ६८६

१० Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1919–20 No. 15

[५]

राजस्थान मे जैन संघ, गण एवं गच्छ

कालप्रवाह के साथ जैनधर्म विभिन्न सम्प्रदायो मे विभक्त हो गया जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महावीर के जीवनकाल मे भी चातुर्याम धर्म मे विश्वास रखने वाले पार्श्वनाथ के अनुयायी विद्यमान थे, जो अन्तत महावीर द्वारा संस्थापित संघ मे समाविष्ट हो गये थे। जैनो के मुख्य दो विभाग दिगम्बर और श्वेताम्बर राजस्थान मे बडी संख्या मे निवास करते हैं। जैन साहित्य एवं अभिलेखो से जैनधर्मावलम्बियो के विभिन्न संघ गण एवं गच्छ के उल्लेख मिलते हैं। संघ एवं गण शब्द राजनीतिक इकाई के द्योतक हैं। भगवान महावीर और गौतमबुद्ध गणतन्त्र राज्यो से सम्बद्ध थे, फलत उन्होने अपने धार्मिक संगठन को भी उसी आदर्श पर संस्थापित किया था। गण के प्रधान को तत्कालीन भारत मे राजनीतिक एवं धार्मिक क्षेत्र मे गणधर कहा जाता था। जैनधर्म के अनुयायी विभिन्न संघ एवं गण म संगठित हो गये। कालान्तर मे गण को गच्छ नाम से अभिहित किया जाने लगा।

कल्पसूत्र[१] एवं कुषाणयुगीन अभिलेखो[२] से विभिन्न जैन गणो का ज्ञान होता है। कल्पसूत्र के अनुसार प्रथम गण—गोदास की चार शाखाए एवं कुल थे द्वितीय गण उद्देह की स्थापना आर्य रोहगुप्त की थी, जिसकी चार शाखाए एवं छ कुल थे, तृतीय गण उडुवाटिक की भी चार शाखाए एवं तीन कुल थ, चतुर्थ गण वेशवाटिक की स्थापना कामर्द्धि ने की थी तथा इसकी भी चार शाखाए एवं कुल थे, पञ्चम गण चारण की चार शाखाए एवं सात कुल थे, षष्ठ गण मानव की चार शाखाए एवं तीन कुल थे तथा सप्तमगण कौटिक की स्थापना सुस्थित ने की थी और इसकी सात सात शाखाए एवं चार कुल थे। कौटिक गण के आभिलेखिक उल्लेख उपलब्ध हैं, इनमे माध्यमिका शाखा का उद्भव चित्तौड के निकट वर्तमान नगरी के प्राचीन नाम माध्यमिका से हुआ था, जहाँ सुस्थित के द्वितीय शिष्य प्रियग्रन्थ ने इसकी स्थापना की थी।[३] संख्या मे ८४ गच्छ माने जाते थे, जिनकी संख्या करीब १५० तक पहुँच गई है, जो परम्परागत मात्र है। वास्तव म विभिन्न समय मे विभिन्न गच्छो की स्थापनाए हुई थी, इनमे सिरोही जैसलमेर, मारवाड एवं मेवाड प्रदेश मे स्थान, कुल, महापुरुष, पुण्यकर्म आदि नामो मे प्रसिद्ध गच्छो का आधिक्य ज्ञात है।

दिगम्बर संघ एवं गण

प्रारम्भिक अभिलेखो से विदित होता है कि राजस्थान के दिगम्बर आचार्य किसी संघ या गण मे सम्बद्ध नहीं थे, या नाम देने की परम्परा नहीं थी। रूपनगर के ९६१ ई० के स्तम्भलेख म मेघसेनाचार्य का[४] तथा १०१६ ई० के स्तम्भलेख[५] मे पद्मसेनाचार्य का उल्लेख है। झालरापाटन के १००९ ई० के स्तम्भलेख[६] मे नेमिदेवाचार्य एवं बलदेवाचार्य वर्णित हैं। अलवर के नौगामा[७] म दिगम्बर

१ Luders Epig Notes, I A XXXIII p 109,

२ Epigaphia Indica, Vol II, pp 382

३ Kalpsutra, S B E Vol XXII p 293

४ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle 1910–11 p 43

५ Annual Report of the Rajputana Museum Ajmer 1912–13 No 2

६ वही, 1919–20 No 3 ७ वही, 1919–20 No 4

जैन-मूर्ति-लेखो मे आचार्य विजयकीर्ति के शिष्य नरेन्द्रकीर्ति (१११८ ई०) का और ११३८ ई० के मूर्तिलेख मे आचार्य गुप्तनन्दि का उल्लेख है । राजस्थान के परवर्ती अभिलेखो में संघ, गण एवं गच्छ के उल्लेख मिलते है । मूलसंघ, कष्ठा संघ, द्राविड संघ, माथुर संघ आदि की स्थापना दक्षिण भारत मे हुई थी, जहा से आचार्यो के साथ-साथ यह परम्परा भी उत्तर भारत मे प्रचारित हो गई ।

मूलसघ :

दिगम्बर जैनो का सबसे प्राचीन सघ—मूलसंघ है, जिसके प्रणेता परवर्ती अभिलेखो से कुन्दकुन्दाचार्य ज्ञात होते हैं,[1] यद्यपि पट्टावलियो[2] में माघनन्दी माने गये हैं । चतुर्थ एव पञ्चम शताब्दी के दो अभिलेखो मे[3] कुन्दकुन्द एवं मूलसघ के छः आचार्यो का उल्लेख है, जिसके आधार पर कुन्दकुन्दाचार्य का समय द्वितीय शताब्दी माना जाता है । इन आरम्भिक अभिलेखों मे मूलसघ एव कुन्दकुन्दान्वय का एक साथ उल्लेख नही है, अतएव प्रथम शताब्दी मे दिगम्बर एव श्वेताम्बर भेद के समय से मूलसंघ का अस्तित्व प्रकट है । गुप्तिगुप्त के प्रभाव से स्थापित बलात्कार गण तथा पद्मनन्दि के चमत्कार से सरस्वती गच्छ के नाम से प्रख्यात गण का मूलसंघ से सम्बन्ध ग्यारहवी शताब्दी के अभिलेखो से ज्ञात होता है ।[4] राजस्थान मे चौदहवी से उन्नीसवी शताब्दी के बीच के अभिलेखो से मूलसघ के आचार्यों की लोकप्रियता तथा उनके उपदेशानुसार लिखित शास्त्र-प्रतियो, निर्मित मन्दिरो और प्रतिष्ठित मूर्तियो के उल्लेख उपलब्ध है । मूलसघ के परवर्ती आचार्यों का केन्द्र १०८३ से कोटा रियासत का बारा माघचन्द्र द्वितीय ने (५३ वे आचार्य) स्थापित किया था । ७७वें आचार्य वसन्तकीर्ति (१२०८ ई०) के समय केन्द्र अजमेर हो गया, इसके पूर्व बारा से ६४वे आचार्य ने मूलसघ का केन्द्र चित्तौड से स्थानातरित कर ७४वे आचार्य ने बघेरा स्थापित कर लिया था । अजमेर से ८४वे आचार्य पद्मनन्दि के द्वारा मूलसघ का भट्टारक केन्द्र वागड प्रदेश मे ईडर स्थापित हो गया क्योकि अजमेर से आचार्य प्रभाचन्द्र द्वितीय वागड प्रदेश मे मूर्तियो की प्रतिष्ठा करने जा नही सके थे, फलत. वागड़ प्रदेश के जैन श्रावको ने पद्मनन्दि को सूरि पद प्रदान कर १३२८ ई० मे धार्मिक प्रधान (भट्टारक) दे दी ।[5]

भट्टारक दिगम्बर जैनो हेतु धार्मिक शासक की बतौर थे । पद्मनन्दि के जीवनकाल मे ही उनके दो शिष्यो मे भेद हो गया और शुभचन्द्र ने चित्तौड़ में भट्टारक गद्दी स्थापित की[6] और सकलकीर्ति गुरु के उत्तराधिकारी हुए । चित्तौड़ मे भट्टारक जिनचन्द्र के दो शिष्यो मे प्रभाचन्द्र चित्तौड रहे और रत्नकीर्ति ने नागौर मे गद्दी स्थापित करली ।[7] नगौर मे पुनः विभेद उत्पन्न हुआ तो भट्टारक धर्मचन्द्र वही बने रहे और रत्नकीर्ति द्वितीय अजमेर मे सस्थापित हो गये ।[8] चित्तौड का भट्टारक केन्द्र चन्द्रकीर्ति ने चात्सु स्थानातरित कर दिया, जो कालान्तर मे सागानेर, आन्वा और आम्बेर स्थानातरित होते हुए अन्ततः जयपुर मे यह स्थापित हो गया ।[9] पद्मनन्दि के पूर्ववर्ती स्थानीय भट्टारको का इतिवृत्त एव कृतित्व अज्ञात है ।

---

१. जैन शिलालेख सग्रह, प्रथम खण्ड सख्यक ५ २. Indian Antiquary XX, p. 341
३. जैन शिलालेख सग्रह, द्वितीय खण्ड, सख्यक ९० एव ९४ तथा ९५ मे छः आचार्य ४६६ ई० मे वर्णित
४. वही सख्यक २०८ ५. Dr. K. C. Jain : Jainisum in Rajasthan p. 74–75
६. वही ७. वही ८. वही ९. वही

ईडरपट्ट

पट्टावलियो के अनुसार पद्मनन्दि १३२५ ई० में नागड के भट्टारक बने, जबकि मूर्ति लेखो से ज्ञात होता है कि ये १४१५ ई० तक जीवित थे। दिगम्बर पुरातत्व सग्राहलय उज्जैन के पाच मूर्ति लेखो[1] से १२५२ ई० में लाटवागड सघ के भट्टारक कल्याणकीर्ति के द्वारा मूर्तिया प्रतिष्ठित करवान का उल्लेख है जिन्हे वागडान्वय कहा गया है, अतएव वागड प्रदेश में भट्टारक गद्दी के सस्थापक पद्मनन्दि प्रथम भट्टारक नही थे क्योकि एक मूर्तिलेख मे[2] कल्याणकीर्ति को स्पष्ट रूप से भट्टारक कहा गया है। सम्भवत वागड की यह भट्टारक गद्दी मूलसघ से इतर थी और मूलसघ के अनुयायियो ने अपन भट्टारक के अभाव मे पद्मनन्दि को जैन श्रावको ने भट्टारक रूप मे सूरिमन्त्र देकर १३२५–२८ ई० मे ईडर मे प्रतिष्ठित किया होगा। पद्मनन्दि और उनके पट्टधर सकलकीर्ति ने कई मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई थी।[3] भट्टारक सकलकीर्ति की उल्लेखयुक्त १४३६ ई० की एक मूर्ति दिगम्बर सग्रहालय, उज्जैन मे है।[4] सकलकीर्ति के पट्टधर भुवनकीर्ति और इनके पट्टधर ज्ञानभूषण ने भी कई मूर्तिया प्रतिष्ठित करवाई थी। भट्टारक विजय कीर्ति (१५१३ ई०) शुभचन्द्र (१५१५–५६ ई०) गुणकीर्ति, वादिभूषण, (१६०४ ई०) रामकीर्ति, पद्मनन्दि द्वितीय, देवेन्द्रकीर्ति क्षेमकीर्ति (१६३६ ई०) आदि ईडर के भट्टारको के उल्लेखयुक्त मूर्तिलेख एव शास्त्र प्रतिया मिली हैं।

चित्तौडपट्ट

पद्मनन्दि के शिष्य शुभचन्द्र द्वारा स्थापित चित्तौड के भट्टारक पट्ट के भट्टारको ने मूर्तियो की प्रतिष्ठा एव शास्त्रो की प्रतिया लिखवाकर जैन धम की अनुपम सेवा की थी। शुभचन्द्र के पट्टधर जिनचन्द्र के उपदेश से गुजरान के शहर मुडासा मे जीवराज पापडीवाल ने १४६१ ई० मे बहुसख्यक मूर्तियो की प्रतिष्ठा कर दूर दूर तक बँटवाई थी, इनमे से कुछ राजस्थान के मन्दिरो मे है। चित्तौड पट्ट के भट्टारको मे चित्तौड से प्रभाचन्द्र, धमचन्द्र ललितकीर्ति, चात्सु से चन्द्रकीर्ति देवेन्द्रकीर्ति, नरेन्द्रकीर्ति, सुरेन्द्रकीर्ति, जगतकीर्ति, देवेन्द्रकीर्ति द्वितीय, आम्बेर मे महेन्द्रकीर्ति क्षेमेन्द्रकीर्ति आदि ने मूर्तियो की प्रतिष्ठा, शास्त्रो की प्रतिया एव मन्दिर निर्माण हेतु अपने अनुयायियो को प्रोत्साहित किया।[5] चित्तौड पट्ट के भट्टारको ने अपनी विद्वता एव लोकप्रियता से जैनधम के उत्थान मे अत्यत महत्वपूर्ण योगदान किया था।

नागौरपट्ट

जिनचन्द्र के दो शिष्य—प्रभाचन्द्र एव रत्नकीर्ति मे से रत्नकीर्ति ने नागौर मे अलग भट्टारक पट्ट स्थापित किया था, परन्तु इनकी मृत्यु १५१५ ई० मे अजमेर मे हुई थी जहा इनकी छत्री बनाई गई थी। रत्नकीर्ति के पट्टधर भुवनकीर्ति हुए, जिनके पट्टधर धमकीर्ति के अनुयायी न १५४२ ई० मे धर्मपरीक्षा की प्रति लिखवाई थी।[6] नागौर पट्ट के भट्टारकों मे विशालकीर्ति, लक्ष्मी-

---

१ मूर्ति सख्या—१७ २१, १३०, १६३ एव २२७ २ मूर्ति सख्या, १६३

३ Dr K C Jain Janism in Rajasthan p 75 (४) मूर्तिसख्या ४७

४ Dr K C Jain Jainism in Rajastban p 83–85

५ प्रशस्ति सग्रह, पृ० २१ ६ वही पृ० १०८

चन्द्र, सहस्रकीर्ति, नेमीचन्द्र, यशकीर्ति, भानुकीर्ति, भूषणकीर्ति, यशकीर्ति आदि से सम्बद्ध उल्लेख अधिक मिले हैं। भूषणकीर्ति के दो शिष्य—धर्मचन्द्र एवं रत्नकीर्ति थे। इनमें धर्मचन्द्र तो पट्टधर हुए तथा रत्नकीर्ति द्वितीय ने अजमेर में स्वतन्त्र भट्टारक गद्दी स्थापित की। धर्मचन्द्र के पश्चात् नागौर पट्ट के भट्टारकों में देवेन्द्रकीर्ति अमरेन्द्रकीर्ति, रत्नकीर्ति तृतीय आदि के उल्लेख मिलते हैं, जिन्होंने कई पुण्य कार्य सम्पादित करवाये थे।

अजमेर पट्ट :

नागौर पट्ट के भट्टारक भूषणकीर्ति के शिष्य रत्नकीर्ति द्वितीय ने अजमेर में भट्टारक पट्ट की स्थापना की थी, जिसके अनुयायी सघी जेमा ने १६६४ ई० में जोबनेर में मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई थी।[1] रत्नकीर्ति के पट्टधर विद्याधर हुए। अजमेर पट्ट के भट्टारकों में महेन्द्रकीर्ति, विजयकीर्ति, अनन्तकीर्ति, भुवनभूषण विजयकीर्ति द्वितीय, त्रिलोककीर्ति, भुवनकीर्ति, रत्नभूषण आदि द्वारा निर्मित छतरियों व चबूतरों और मूर्तिप्रतिष्ठा के विवरण उपलब्ध हैं।[2]

काष्ठासघ :

'दर्शनसार'[3] के अनुसार कुमारसेन ने ६९६ ई० में काष्ठासंघ की स्थापना की थी। राजस्थान में काष्ठासघ से सम्बद्ध प्रतिष्ठित मूर्तियां बाहर से लाई गई अथवा अग्रवालों ने स्थापित करवाई थी। उदयपुर के निकट धुलेवा का ऋषभदेव-मन्दिर काष्ठासघ के भट्टारक धर्मकीर्ति के अनुयायी साहावीजा ने १३७४ ई० में पुनर्निर्मित करवाया था।[4] उज्जैन के दिगम्बर जैनसग्रहालय में १४४९ ई० में प्रतिष्ठित मूर्ति के पाद पीठ पर श्री काष्ठासघे वागड सघे भट्टारक धर्मकीर्ति का उल्लेख है।[5] भट्टारक यशकीर्ति के अनुयायी ने १५१५ ई० में एक सभागृह एवं एक देवालय बनवाया था। काष्ठासघ के भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के समय भोज ने नवनिर्मित मन्दिर का प्रतिष्ठा समारोह किया था तथा भूपता ने १६६७ ई० में लघु देवालय बनवाया था।[6] राजस्थान में प्राचीन वागड प्रदेश (डूंगरपुर, बांसवाड़ा एव प्रतापगढ) काष्ठासघ के अनुयायियों का केन्द्र था।

माथुर संघ :

'दर्शनसार' के अनुसार माथुर सघ की स्थापना रामसेन ने काष्ठा संघ के दो वर्ष बाद की थी।[7] यह संघ माथुर देश वर्तमान मदुरा से सम्बन्धित दक्षिण भारत का जैनसघ था, परन्तु राजस्थान में ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दियों में माथुर सघ के आचार्यों ने मूर्तियां प्रतिष्ठित करवाई थीं। बघेरा के मूर्ति लेख में इस सघ के पडित महासेन का ११५८ ई० में उल्लेख है।[8] सांगनेर में प्राप्त ११६७ ई० में प्रतिष्ठित मूर्ति लेख[9] तथा मारोठ में प्राप्त ११७५ ई० के दो मूर्ति लेखों में पडिताचार्य यशकीर्ति

१ Ajmer Historical and Descriptive by Haribilas Sharda p. 48
२. Dr. K. C. Jain : Jainism in Rajasthan, p. 86-87
३. दर्शनसार पृ० ३८
४. Dr. K. C. Jain : Jainism in Rajasthan p. 72
५. मूर्ति सख्यक—३४   ६. उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४१
७ दर्शनसार, पृष्ठ १७   ८. वीरवाणी, ६, पृष्ठ ३५५
९. वही, ५, पृष्ठ ४१

का उल्लेख है ।[1] यशकीर्ति के पूर्ववर्ती माथुर संघ के आचार्य ललितकीर्ति और उनके गुरु पंडिताचार्य धर्मकीर्ति का उल्लेख दिगम्बर संग्रहालय, उज्जैन का एक ११७१ ई० के मूर्ति लेख में है ।[2] ११७० ई० के बिजोलिया आदि अभिलेख[3] माथुर संघ के एक महामुनि गुणभद्र तथा रूपहेली के मन्दिर स्तम्भ पर ११७६ ई० में पद्मश्री[4] का उल्लेख है । बारहवीं शताब्दी के बाद में राजस्थान में माथुर संघ के अनुयायियों का ज्ञान नहीं होता, सम्भवतः तत्पश्चात्, माथुर संघ का अस्तित्व राजस्थान में शेष न रहा ।

श्वेताम्बर गच्छ

राजस्थान में अभिलेखों एवं प्रशस्तियों से विभिन्न गच्छों का ज्ञान होता है तथा कुछ गच्छों का उद्भव एवं उत्थान स्थल सिरोही, मेवाड़, मारवाड़ आदि प्रदेश रहे प्रतीत होते हैं ।

बृहद गच्छ

उद्योतनसूरि अथवा सर्वदेव सूरि का आबू पर्वत पर स्थित तेली ग्राम के वटवृक्ष की छाया में समारोहपूर्वक सूरि पद प्रदान किया गया था, फलतः निर्ग्रन्थ गच्छ को वट गच्छ और बृहद गच्छ कहा जाने लगा ।[5] सिरोही के कोटरा में १०८६ ई०[6] और मारवाड़ के नाडोल में ११५८ ई०[7] से बृहदगच्छ से सम्बन्धित प्रारम्भिक अभिलेख मिले हैं । १२वीं १४वीं शताब्दी तक सिरोही और मारवाड़ प्रदेश में तथा १४वीं एवं १५वीं शताब्दियों में उदयपुर व जैसलमेर क्षेत्र में यह अत्यन्त लोकप्रिय था ।

खरतर गच्छ

दुर्लभराज के दरबार में चैत्यवासियों को परास्तकर जिनेश्वर सूरि ने १०१७ ई० में 'खरतर' विरुद प्राप्त किया था, फलत, उनका गच्छ खरतर कहलाया ।[8] राजस्थान के बाहर इसका उद्भव हुआ, परन्तु यहां इसकी कई शाखायें प्रचलित हो गई, जिनमें १४वीं से १६वीं शताब्दियों के बीच जैसलमेर प्रदेश में खरतर गच्छ की लोकप्रियता अधिक रही । खरतर गच्छ के दस गच्छ भेद हुए[9] इनमें प्रथम भेद जिनवल्लभ सूरि द्वारा ११०७ ई० में मधु खरतर शाखा के प्रादुर्भाव से हुआ । जिनसिंह सूरि ने १२७४ ई० लघु खरतर शाखा की स्थापना की, जो तृतीय गच्छ भेद था । धर्मवल्लभगणी ने १३६५ ई० में चतुर्थ गच्छ भेद के द्वारा वेगड़ शाखा की स्थापना की । मरु देश में आचार्य शांतिसागर ने १५०७ ई० में पष्ठ गच्छ भेद द्वारा आचारीय खरतर शाखा की स्थापना की । भावहर्षोपाध्याय ने सप्तम गच्छ भेद द्वारा भावहर्ष खरतर शाखा की तथा आचार्य जिनसागर सूरि ने अष्टम गच्छ-भेद द्वारा १६२६ ई० में लघुवाचार्यीय खरतर शाखा की स्थापना की थी । रंगविजयगणि ने १६४३ ई० में रंगविजय खरतर शाखा नवम् गच्छ-भेद द्वारा तथा दशम् गच्छ भेद द्वारा श्रीसारोपाध्याय ने श्रीसारीय

१ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 72 F N 2, 3

२ मूर्ति सख्या २७३

३ Epigraphia Indica, XXIV p 84

४ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1925-26, No 3

५ श्रमण भगवान महावीर, जिल्द ५, भाग २ स्थविरावली पृष्ठ २

६ प्राचीन लेख संग्रह १, सख्या ३

७ Nahar Jain Inscriptions No 833 & 834

८ Indian Antiquary, Vol IX, p 248,

९ वही, XI p 250

खरतर शाखा की स्थापना की थी। खरतर गच्छ की विभिन्न शाखाओं के आचार्यों द्वारा राजस्थान मे मूर्ति प्रतिष्ठा, तीर्थ यात्रा, मन्दिर निर्माण एवं शास्त्र-प्रतिया-लेखन का कार्य सम्पादित करवाया गया। जिनवर्धन सूरि ने १४१७ ई० मे पीप्पालक गच्छ की स्थापना की थी, जो खरतर गच्छ की शाखा थी।

तपागच्छ :

जगचन्द्र सूरि जीवनपर्यन्त आयम्बिल करके मेवाड के शासक जैत्रसिंह द्वारा १२२८ ई० मे 'तपा' विरुद से अलंकृत हुए थे, फलतः निर्ग्रन्थ गच्छ का तपागच्छ नाम पड़ गया।[१] इनके शिष्य विजयचन्द्र सूरि ने वृद्ध पौसालिक तपागच्छ की स्थापना की थी तथा देवेन्द्रसूरि ने लघु पौसालिक तपागच्छ की स्थापना की। सिरोही, मेवाड़ एवं जैसलमेर क्षेत्र मे तपागच्छ के अनुयायी अधिक हैं। कालान्तर मे खरतरगच्छ की तरह तपागच्छ की भी कई शाखायें ज्ञातव्य है। आचार्य महाराज विजयसेन के पश्चात् तपागच्छ के पाच भेद प्रभावशाली आचार्यों के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रथम शाखा आचार्य महाराज देवसूरि के नाम से देवसूरि गच्छ; द्वितीय शाखा आचार्य आनन्दसूरि के नाम से आनन्दसूरि गच्छ; तृतीय शाखा आचार्य सागर सूरि के नाम से सागर गच्छ, चतुर्थ शाखा विमल-सूरि के नाम से विमलगच्छ तथा पञ्चम शाखा पन्नयास सत्य विजयजीगणि के द्वारा संवेगीगच्छ नाम से प्रसिद्ध हुई।[२]

नागौरी तपागच्छ के आचार्य श्री साधुरत्नसूरि के द्वारा १५१५ ई० में दीक्षित पार्श्वचन्द्र ने अपने नाम पर पार्श्वनाथ गच्छ की स्थापना की थी।[३] इसी प्रकार साधु कृष्णर्षि ने कृष्णर्षि गच्छ की स्थापना की थी, जिसके प्रारम्भिक उल्लेख १४२६ ई० के जीरावला अभिलेख[४] तथा १४६८ ई० नागौर अभिलेख[५] मे है। कृष्णर्षि गच्छ की लोकप्रियता जैसलमेर मे पन्द्रहवी शताब्दी मे ज्ञात होती है।[६] सोलहवी शताब्दी मे तपागच्छ की एक शाखा कमल कलश भी सिरोही प्रदेश मे अभिलेखो[७] से विदित होती है। नाडलाई मूर्ति लेखो से तपागच्छ की एक शाखा कुटुवपुरा गच्छ का ज्ञान होता है।

आञ्चल गच्छ :

श्री विजयचन्द्र उपाध्याय द्वारा विधिपक्ष गच्छ की स्थापना की गई थी, जिसका नाम ११६६ ई० मे आञ्चल गच्छ कुमारपाल से सम्बद्ध अनुश्रुति के अनुसार पडा।[८] पन्द्रहवी शताब्दी के

---

१. श्रमण भगवान महावीर, जिल्द ५, भाग २ स्थविरावली पृष्ठ ७५।
२. श्रमण भगवान् महावीर, जिल्द ५, भाग २, स्थविरावली, पृष्ठ १७६।
३. वही
४. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक १३८ एव १४१।
५. Nahar : Jain Inscriptions Pt. II No 1275
६. वही, Pt. III.
७. वही, Pt. I, No. 970 & 971.
८. श्रमण भगवान् महावीर जिल्द ५, भाग-२, स्थविरावली पृ० ६५।

अभिलेखो से जसलमेर, उदयपुर, जीरावला एव नगर में इसके अनुयायियो तथा आचार्यों द्वारा कई मूर्तियो की प्रतिष्ठा करने के उल्लेख मिले हैं।[1]

पूर्णिमिया गच्छ एव सार्ध पूर्णिमिया गच्छ

सम्भवत पूर्णिमा से इसे पूर्णिमिया गच्छ कहा जाने लगा होगा, परन्तु इसे सार्ध पूर्णिमिया-गच्छ नाम से ११७९ ई० से अभिहित किया जाने लगा। जैसलमेर और सिरोही प्रदेश मे पन्द्रहवीं शताब्दी मे इस गच्छ की लोकप्रियता अभिलेखो से विदित होती है। इस गच्छ के अनुयायियों के अभिलेख जोधपुर, नागौर, अजमेर और उदयपुर मे भी मिले हैं।[2]

पूर्णिमिया गच्छ के दो आचाय शीलगुणसूरि एव देवभद्रसूरि आञ्चल गच्छ म सम्मिलित हो गये थे, परन्तु ११५७ ई० अथवा ११९३ ई० में इन्होने आगमिक गच्छ के नाम से अपनी अलग सम्प्रदाय की स्थापना की थी।[3] जैसलमेर, अजमेर, जयपुर, नागौर, बाडमेर एव ओसिया में अभिलेखों से पन्द्रहवीं शताब्दी मे आगमिक गच्छ की उन्नति ज्ञात है।

कुल से सम्बद्ध गच्छ

चन्द्र कुल ही कलान्तर मे चन्द्र गच्छ म परिवर्तित हो गया। इस गच्छ क अभिलेख ११८२ ई० का जालोर[4] से तथा ११२५ एव १४३५ ई० के सिरोही रियासत मे मिले हैं। इसी प्रकार नागेन्द्र कुल ही नागेन्द्र गच्छ के नाम से प्रसिद्ध हो गया था इसका राजस्थान म अस्तित्व १०३१ ई० के ओसिया अभिलेख[5] से ज्ञात होता है। तेरहवीं से सोलहवी शताब्दी के बीच नागेन्द्र गच्छ के अनुयायियो द्वारा सम्पन्न पुण्यकर्मों का ज्ञान जैसलमेर, पाली, नागौर सिरोही और उदयपुर मे प्राप्त अभिलेखो से होता है। सम्भवत निवृत्ति गच्छ भी निवृति कुल से उद्भूत हुआ क्योकि सिरोही प्रदेश के प्रारम्भिक अभिलेखो मे निवृति कुल का उल्लेख है, जबकि १४१२ ई० की उदयपुर की शीतलनाथ की धातु प्रतिमा-लेख[6] मे निवृत्ति गच्छ का विवरण है।

विख्यात आचार्यों द्वारा सस्थापित गच्छ

आचाय पिपपालाचाय द्वारा सस्थापित पिपपालाचाय गच्छ का अस्तित्व सिरोही रियासत म ११५१ ई० से ज्ञात होता है। महेन्द्रसूरि के नाम स स्थापित महेन्द्रसूरि गच्छ का उल्लेख तेरहवीं शताब्दी के अजारी अभिलेख[7] से होता है। सिरोही प्रदेश म आम्रदेवाचाय-गच्छ के अजारी एवं लोताणा से ग्यारहवीं शताब्दी के अभिलेख मिले हैं, जिनसे इसका सम्बन्ध निवृत्ति कुल से ज्ञात होता है।[8]

१ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan p 59
२ वही, p 60
३ श्रमण भगवान् महावीर, जिल्द ५, भाग २, स्थविरावली, पृ० ६६।
४ Nahar Jain Inscriptions No 899
५ वही, न० ७९२।
६ प्राचीन लेख सग्रह, सख्या १०६।
७ अबु दाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ४२५।
८ वही, सख्या ३९९, ४७०, ४७१, ४७२ एव ४७३।

मारवाड मे मेड़ता के १५१५ ई० के अभिलेख[1] मे प्रभाकर-गच्छ का उल्लेख है, जिसकी स्थापना प्रभाकर नामक आचार्य ने की होगी। कडाग्राशाह के नाम से १५०५ ई० मे कडोमति गच्छ की स्थापना हुई थी, इसका उल्लेख ओसिया के १६२६ ई० के अभिलेख[2] में है।

धर्म घोष-गच्छ की स्थापना धर्मघोषसूरि के नाम से हुई होगी, इससे सम्बद्ध १४वी से १६वी शताब्दियो के अभिलेख जैसलमेर, उदयपुर एव नागौर मे मिले हैं।[3] भावदेवसूरि के नाम से प्रख्यात भावदेवाचार्य गच्छ तथा भावदार एवं वड़ाहड-गच्छ का अस्तित्व जैसलमेर मे १३वी से १५वी शताब्दियो के अभिलेखो से ज्ञात होता है।[4] राजस्थान मे इस गच्छ का सर्वप्रथम उल्लेख ११५७ ई० के सीवेरा अभिलेख[5] में है। मल्लधारी गच्छ की लोकप्रियता जैसलमेर, उदयपुर और सिरोही प्रदेश[6] के तेरहवी से सोलहवी शताब्दी के अभिलेखो से ज्ञातव्य है। विद्याधरसूरि के नाम से विख्यात विद्याधर गच्छ के चौदहवी से सत्रहवी शताब्दी के अभिलेख ओसिया, नागौर, नाणा एवं जैसलमेर से मिले है।[7] विजय गच्छ से सम्बन्धित अभिलेख १६४२ ई० का भारज[8] से तथा १६६१ ई० का बालोतरा[9] से मिले है। उन्नीसवी शताब्दी मे अलवर के विजय-गच्छीय अनुयायी ने मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी।[10] रामसेनीय गच्छ का अस्तित्व राजस्थान में १४०१ ई० के नागौर अभिलेख[11] से ज्ञात होता है तथा मेवाड क्षेत्र में इस गच्छ के अनुयायियो का ज्ञान इसी शताब्दी के अभिलेखो[12] से होता है। आचार्य यशसूरि के नाम से प्रख्यात यशसूरि गच्छ का राजस्थान में अस्तित्व ११८५ ई० के अजमेर अभिलेख से सूचित होता है।[13]

स्थानीय गच्छ :

पूर्व मध्य काल में सिरोही राज्य में जैन धर्म लोकप्रिय था, फलतः इस राज्य के विभिन्न स्थानो के नाम पर कुछ गच्छ प्रसिद्ध हुए। ग्राम मडार से मडाहड़ गच्छ प्रसिद्ध हुआ। यहां इस गच्छ का १२३० ई० का आरभिक अभिलेख[14] मिला हैं। सिरोही राज्य में इस गच्छ के कई अभिलेख[15] मिलते हैं। जैसलमेर और उदयपुर से भी मडाहड गच्छ के १४वी एव १५वी शताब्दी के अभिलेख[16] प्रकाश में आये हैं। इसी प्रदेश के नाणा ग्राम से नानवाल गच्छ एवं झानकीय गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ, जिनके ११ शताब्दी के कई अभिलेख सिरोही राज्य में मिले हैं[17] तथा १३वी से १५ शताब्दी के अभिलेख

१. Nahar : Jain Inscriptions No. 764.
२. वही, न० ८६६.
३. वही pt. I to III,
४. वही Pt. III
५. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, सख्यक ३१६।
६. वही, सख्यक ८२, एवं १४२।
७. वही, संख्यक ३४८ तथा Nahar : Jain Inscriptions No. 798, 1313 & 2278
८. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, सख्यक ६२०।
९. Nahar . Jain Inscriptions, No. 738
१०. वही, No. 1000.
११. वही, No 1236.
१२. वही, No. 1017 और 1080.
१३. वही, No. 530
१४. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, सख्यक ६६।
१५. वही।
१६. Nahar : Jain Inscriptions Pt. I to III.
१७. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह।

जैसलमेर से[१] और १५वी एव १६वी शताब्दी के अभिलेख मेवाड[२] में भी मिले हैं। वृहद गच्छ की एक शाखा इस राज्य के जीरावली ग्राम से जीरावली गच्छ प्रसिद्ध हुई तथा यही से १४वी शताब्दी के अभिलेख[3] मिले हैं। ब्राह्मण गच्छ का प्रादुर्भाव इस राज्य के वर्मान ग्राम से हुआ था, जिसका प्राचीन नाम ब्राह्मण महास्थान था। ब्राह्मण गच्छ के १२वी से १६वी शताब्दी के अभिलेखो से यह प्रदेश इस गच्छ का केन्द्र विदित होता है। वर्मान में इस गच्छ के श्रावको द्वारा ११८५ ई० में बना महावीर मन्दिर है।[४] पाली से प्राप्त १०८७ ई० के अभिलेख[५] में इस गच्छ का उल्लेख है। ब्राह्मण गच्छ के अनुयायियों के १४वी एव १५वी शताब्दी के मेवाड मे तथा १५वी एव १६वी शताब्दी के जैसलमेर में अभिलेख मिले हैं। सिरोही राज्य के काछोली ग्राम के नाम पर काछोली गच्छ प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि यह पूर्णिमा गच्छ की ही शाखा थी। सिरोही प्रदेश में इसके १४वी एव १५वी शताब्दी के उल्लेख[६] मिले हैं।

मारवाड के ओसिया से उपकेश गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ, जहा से १२०२ ई० का इस गच्छ से सम्बन्धित अभिलेख[७] मिला है, यद्यपि प्रारम्भिक अभिलेख सिरोही राज्य के अजारी ग्राम मे ११३७ ई०[८] का प्रकाश मे आया है। उपकेश गच्छ की लोकप्रियता १३वी से १६वी शताब्दी के जैसलमेर, उदयपुर एव सिरोही राज्य मे प्राप्त बहुसख्यक अभिलेखो मे ज्ञात होती है। मारवाड के कोरण्ट ग्राम से कोरण्टक गच्छ का उद्भव हुआ, जिसका १०३१ ई० का प्रारम्भिक अभिलेख सिरोही राज्य के पीण्डवाडा से मिला है।[९] यह गच्छ सिरोही राज्य एव जैसलमेर में १६वी शताब्दी तक प्रसिद्ध रहा। यशोदेवसूरि ने मारवाड के साडेराव मे सण्डेरक गच्छ की स्थापना की थी, जिसके अनुयायी सम्पूर्ण राजस्थान मे फैले हैं। नाडोल में १२वी शताब्दी में यह अस्तित्व में था।[१०] १४वी से १६वी शताब्दी तक मेवाड में तथा १५वी शताब्दी में जसलमेर में सण्डेरक गच्छ की प्रधानता थी। मारवाड मे ही हस्तिकुण्डी से हस्तिकुण्डी गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका १३६६ ई० के उदयपुर अभिलेख[११] में उल्लेख है। १३वी से १६वी शताब्दी तक जैसलमेर एव उदयपुर में प्रसिद्ध चत्रवाल गच्छ और चत्रगच्छ का उद्भव मारवाड के चैत्रवाल नगर से हुआ होगा।[१२] पल्लिवाल गच्छ और पल्लि गच्छ के नाम से विख्यात गच्छ की उत्पत्ति पाली से हुई थी जिसके उल्लेख पल्लि गच्छ के नाम से १४०५ ई० के जसलमेर अभिलेख और १४८१ ई० के जयपुर अभिलेख में है[१३] तथा पल्लिवाल

१ Nahar Jain Inscriptions Pt III
२ वही, Nos 1111, 1143 & 1031
३ अबु दाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ७४ एव ११४
४ वही सख्यक ११० ५ Nahar Jain Inscriptions, No 811
६ अबु दाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह।
७ Nahar Jain Inscriptions pt I No 791
८ अबु दाचल प्रदक्षिणा जन लेख सदोह, सख्यक ४०४।
९ वही, सख्यक ३६६। १० प्राचीन लेख सग्रह, सख्यक ४ एव २३।
११ वही, सख्यक ४३।
१२ Dr K. C Jain Jainism in Rajasthan, p 65
१३ Nahar Jain Inscriptions, Nos 2478 & 577

गच्छ नाम से विवरण पन्द्रहवी शताब्दी के अजमेर से प्राप्त अभिलेखो में है।[१] वादिदेवसूरि के अनुयायी पद्मप्रभसूरि का १११७ ई० में नागौर में कठोर तप करने से नागौरिया तप विरुद प्रसिद्ध हो गया था, फलत: नागौर नाम से उनका गच्छ नागपुरीय गच्छ कहा जाने लगा।

श्री पार्श्ववर्धनाथ कुल की शाखा हर्षपुरीय गच्छ सम्भवत; अजमेर और पुष्कर के बीच हरसौर नामक स्थान में स्थापित हुआ होगा। इस गच्छ के अभयदेवसूरि के अनुरोध पर शाकम्भरी के चौहान शासक पृथ्वीराज प्रथम ने ११०५ ई० में रणथम्भोर के जैन मंदिर पर स्वर्ण कलश प्रतिष्ठित किया था तथा इनके शिष्य मलधारी हेमचन्द्र का जयसिंह सिद्धराज पर अत्यत प्रभाव था। नागौर मे इस गच्छ का १४९८ ई०[२] का अभिलेख मिला है। मारवाड के मण्डोवर में ही जिनमहेन्द्रसूरि ने १७४५ ई० में खरतर गच्छ की एक शाखा मण्डोवर गच्छ की स्थापना की थी।[३]

मेवाड़ के ग्राम भटेवर में भर्तृपुरीय गच्छ की स्थापना की गई थी, इस ग्राम का प्राचीन नाम भर्तृपुर था। इस गच्छ का उल्लेख तेरहवी शताब्दी के अभिलेख मे है।[४] रत्नपुरीय गच्छ की स्थापना मडाहड़ गच्छ की शाखा के रूप मे रत्नपुर (मेवाड) मे हुई थी, इसका उल्लेख उदयपुर की १४५३ ई० मे प्रतिष्ठित धातु प्रतिमा लेख मे है।[५] भरतपुर राज्य के कामा ग्राम मे काम्यक-गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ था, १०४३ ई० के बयाना शिलालेख[६] मे इस गच्छ के विष्णुसूरि और महेश्वरसूरि का उल्लेख है। दिल्ली के निकट रुद्रपल्लि मे ११४७ ई० मे जिनशेखराचार्य ने रुद्रपल्लीय गच्छ की स्थापना की थी[७], इसका प्रसार पन्द्रहवीं शताब्दी में नागौर, बालोतरा और जैसलमेर में ज्ञातव्य है।

खरतर गच्छ के जिनवर्धसूरि ने १४१७ ई० मे पीप्पालक गच्छ की स्थापना की थी[८], परन्तु पीप्पालक नामक ग्राम का पहिचान नही हो सकी है। इसी प्रकार जैनो की हुम्बड़ जाति और हुम्बड गच्छ की स्थापना किसी हुम्बड नामक स्थान मे हुई थी, इस गच्छ का उल्लेख १३९६ ई० के उदयपुर अभिलेख[९] में है। जल्येपिर गच्छ की उत्पति भी अज्ञात जोराउद्र ग्राम से हुई थी, इसका उल्लेख ११५६ ई० के अजारी अभिलेख[१०] मे है। भीमपल्लीय गच्छ का उद्भव भी किसी भीमपल्लीय ग्राम से हुआ था, जो पूर्णिमा गच्छ की शाखा थी तथा जोधपुर के १५४१ ई० के अभिलेख में इसका उल्लेख है।[११] इसी प्रकार तपागच्छ की एक शाखा कुटुबपुरा गच्छ की उत्पत्ति किसी कुटुबपुरा ग्राम में हुई थी; इस गच्छ द्वारा नाडलाई मे १५१२, १५१३ एवं १५१४ ई० मे मूर्तिया प्रतिष्ठित हुई थी।[१२]

---

१. वही, Nos. 533 & 539.   २. वही, नं० १२९५।

३. Indian Antiquary, XI, p. 249.

४. Annual Report of the Rajputana Musuem, Ajmer, 1923-24, No. 9.

५. प्राचीन लेख सग्रह, सख्यक ४९, १२४ एवं २५६।

६. Indian Antiquary, XIV, p. 8   ७. वही, XI, p. २४८

८. वही, p. २४९   ९. Nahar : Jain Inscriptions, No. 1059.

१०. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, सख्यक ४०८।

११ Nahar : Jain Inscriptions, No. 604.   १२. वही, Nos. 849, 850 & 851.

अन्य गच्छ

मारवाड में १५०८ ई० के जोधपुर अभिलेख से सिद्धान्ती गच्छ[1], नागौर के १४७७ ई० के अभिलेख से जापडाण गच्छ[2], रैनपुर के उन्नीसवी शताब्दी के स्तम्भ लेख से कवल गच्छ[3] तथा जोधपुर के ही मुनिसुव्रत मन्दिर मे १४४२ ई० के अभिलेख से तावडार गच्छ[4] का अस्तित्व ज्ञात होता है।

जैसलमेर राज्य मे ११०५ ई० और १२८१ ई० के जसलमेर अभिलेखो[5] मे वाटपीय गच्छ बारहवी और तेरहवी शताब्दी के लेखो से सरवाल गच्छ[6] तथा १३६४ ई० के मूर्ति लेख[7] मे बाहड गच्छ के ईश्वरसूरि का उल्लेख है।

जयपुर मे चाञ्चाल गच्छ का १४७२ ई० के मूर्तिलेख[8], राज गच्छ के पद्मानन्द का १४५२ई से मूर्ति लेख[9] तथा छहितेरा गच्छ का १५५५ ई० के अभिलेख[10] से अस्तित्व विदित होता है।

मेवाड मे १३१७ ई० के उदयपुर अभिलेख मे प्राया गच्छ[11], ११४४ ई० के मूर्तिलेख से देवाभिदित गच्छ[12] तथा १४३६ ई० अभिलेख मे निद्रांति गच्छ[13] के अनुयायियो द्वारा पुण्यकर्म सम्पादित करने के उल्लेख हैं।

बारहवी शताब्दी के सिरोही राज्य[14] और पन्द्रहवी शताब्दी में जैसलमेर[15] मे लोकप्रिय थारापद्रीय गच्छ एव थिराद्र गच्छ, सिरोही के कोटरा से प्राप्त ११५१ ई० के अभिलेख से पिप्पल गच्छ[16], जो १४वीं से १६वी शताब्दी तक जैसलमेर मे प्रचारित रहा[17], सिरोही राज्य के रोहिडा मे प्राप्त १४३६ ई० के अभिलेख[18] मे मधुकर गच्छ, जिसके अलवर से १४७० ई०[19] और जसलमेर से १५०६ ई०[20] अभिलेख मिले हैं, तथा जयपुर और नागौर मे १४वी एव १५वी शताब्दियो म लोकप्रिय वोकडिया गच्छ[21] भी राजस्थान के जन धर्मानुयायियो से सम्बद्ध रहे है।

जनाचार्यों, भट्टारको, पडितो एव साधुओ ने जैन समाज के उत्थान हेतु महत्वपूर्ण कार्य किये। मध्य काल मे जहा एक ओर मुस्लिम आक्रामको ने मन्दिरो शास्त्रभण्डारो एव मूर्तियो को

१ वही, न० ५६७ २ वही न० १२८८
३ Nahar Jain Inscriptions, No 717 ४ वही न० ६१६।
५ Nahar Jain Inscriptions Nos 2218 & 2232
६ वही, Nos 2220-22 & 2415 ७ वही न० 2269
८ वही, न० ११५६ ९ वही न० ११७४
१० वही, न० ११६४ ११ वही न० १०४२
१२ वही, न० १६६८ १३ वही, न० १०७८
१४ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सन्ख्या ६, ४५४ एव ४६६।
१५ Nahar Jain Inscriptions
१६ Nahar Jain Inscriptions No 966 १७ वही Pt III
१८ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सन्ख्या ४७४।
१९ Nahar Jain Inscriptions Pt I
२० वही, Pt III २१ वही न० ११६७, ११६६ एव १७४६

नष्ट किया तथा दूसरी ओर मराठो ने लूटमार की, फिर भी जैनाचार्यों एवं भट्टारको ने जैन धर्म की उन्नति के अथक प्रयत्न किये। आचार्यो के अतिरिक्त भट्टारक सकलकीर्ति एवं शुभचन्द्र भी अद्वितीय विद्वान थे, फलत: जैन साहित्य का संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओ में सृजन हुआ। शास्त्रों की प्रतियो के संरक्षण हेतु कई शास्त्र भण्डार स्थापित किये गये तथा जैन साहित्य के अतिरिक्त व्याकरण, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष आदि ग्रन्थों की प्रतियां भी लिखवाकर सगृहीत की गई। इनके प्रभाव से विभिन्न मन्दिरों का निर्माण तथा असंख्य मूर्तियो की प्रतिष्ठाएं सम्पादित हुई। भट्टारको ने कई हिन्दू एव मुस्लिम शासको द्वारा अहिंसा पर अमल हेतु फर्मान निकलवाये। जैन तीर्थो की यात्रा हेतु सघ निकलवाये और तीर्थो की सुव्यवस्था करवाई।

चैत्यवासी प्रथा :

राजस्थान मे चैत्यवासी प्रथा का भी प्रभाव रहा है। जैन साधुओ हेतु वर्षा के चातुर्मास के अतिरिक्त एक स्थान पर निवास करना वर्जित है, जोकि श्रमण संस्कृति का महत्त्वपूर्ण पक्ष है, परन्तु बौद्धो की तरह जैनो में भी यति एव भट्टारक के रूप में विरागी पुरुष चैत्यवासी के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। आचार्य धर्मसागर[१] ने अपनी पट्टावली में चैत्यवासी प्रथा का आरम्भ ३५५ ई० से निश्चित किया है, परन्तु मुनिकल्याण विजयजी[२] के अनुसार यह प्रथा प्राचीन है और इसका सुव्यवस्थित रूप ३५५ ई. मे स्पष्ट हुआ। वर्तमान में श्वेताम्बरो मे यति अथवा श्रीपूज्य तथा दिगम्बरो मे भट्टारक मठवासी हैं, जिन्हे सम्मिलित रूप से चैत्यवासी कहा जाता है।

राजस्थान मे चैत्यवासी प्रथा के उल्लेख आठवी शताब्दी से उपलब्ध हैं। जैनाचार्य हरिभद्र-सूरि और जिनवल्लभसूरि ने लोगो के समक्ष मन्दिरो मे निवास करने, उनकी सम्पत्ति का स्वयं के लिये प्रयोग करने, रगीन एव सुगंधित वस्त्र पहिनने, सुस्वादु भोजन करने और साधुओ को भिक्षा देने, सचित्त जल, फल और फूल का उपयोग करने, शिष्य बनाने हेतु बच्चो को क्रय करने आदि को चैत्यवासी साधुओ के कर्म निरूपित किये हैं। चैत्यवासियो के विरुद्ध वनवासियो ने शास्त्रार्थ किये, परन्तु राजस्थान में चैत्यवासी प्रथा की उन्नति होती रही।

श्वेताम्बर चैत्यवासियो ने मन्दिर निर्माण और मूर्ति प्रतिष्ठा को न केवल प्रोत्साहित किया बल्कि स्वय ने भी इन कार्यो को सम्पन्न किया। जीरापल्ली गच्छीय रामचन्द्रसूरि ने १३५४ ई. म जीरापल्ली में देवकुलिका[३] बनवाई थी। हेमतिलकसूरि ने अपने गुरु के हितार्थ १३८६ ई. मे वर्मान म मन्दिर का रगमण्डप बनवाया था।[४] पिप्पलाचार्य गच्छीय वाचक सोमप्रभसूरि ने १३६७ ई० में सुमतिनाथ की प्रतिभा अजारी में निर्मित करवाई थी।[५] वीरप्रभसूरि ने १४१८ ई० में एक मण्डप वीरवाटा ग्राम में बनवाया था।[६] काच्छोलीवाला गच्छीय विजयप्रभसूरि ने १४६४ ई० गुणसागर-सूरि के हितार्थ सिरोही के अजितनाथ मन्दिर मे देवकुलिका बनवाई थी।[७] जीरापल्ली के आदिनाथ मन्दिर में तिलकसूरि के हितार्थ भद्रेश्वरसूरि ने देवकुलिका निर्मित करवाई थी।[८] नाणक गच्छीय

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३५१, २. वही
३. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, संख्यक ११६।
४. वही, सख्यक ११३ ५. वही, सख्यक ४३२
६. वही, सख्यक २७८ ७. वही, सख्यक २४६-२४८ ८. वही, सख्यक ११६

पार्श्वदेवसूरि ने वेलरा ग्राम में लगिका[1] तथा नन्नसूरि ने वसन्तगढ में आदिदेव की मूर्ति बनवाई थी।[2]

दिगम्बर साहित्य मे चैत्यवासी प्रथा के उद्‌भव के सम्बन्ध मे निश्चित जानकारी उपलब्ध नही है, परन्तु दक्षिण भारत मे आठवी शताब्दी से इस प्रथा के उल्लेख मिलते हैं। राजस्थान मे इन भट्टारको के पास जागीर मे ग्राम और बाग थे तथा ये मन्दिर और मूर्ति निर्माण के अतिरिक्त साधुओ को भोजन भी देते थे। चैत्यवासी होते हुए भी आरम्भिक भट्टारक नग्न रहते थे, जो सम्भवत श्वेताम्बर यति अथवा श्री पूज्यों से भिन्नता प्रदर्शित करने हेतु आवश्यक रहा हो। वर्तमान मे भट्टारक भोजन करते समय वस्त्र त्याग देते हैं, जबकि शेष समय धारण करते हैं। सोलहवी शताब्दी मे भट्टारक श्रुतसागर ने लिखा है कि कलिकाल मे मुस्लिम नग्न यतियो के साथ दुर्व्यवहार करते थे, फलत मण्डपदुग मे बसन्तकीर्ति ने चर्या के समय वस्त्र पहिनने की अनुमति दे दी थी।[3] पट्टावली मे मूलसघ के चित्तौडपट्ट के भट्टारको मे एक बसन्तकीर्ति थे, जिनका समय १२०७ ई० ज्ञात है।[4] इस समय मुस्लिमो के आक्रमण अविरल थे, फलत भट्टारको ने चर्या के समय बाहर जाने पर वस्त्र पहिनने आरम्भ कर दिये होगे। चित्तौड, चात्सु, जालौर, अजमेर जयपुर आदि स्थान महत्त्वपूर्ण भट्टारक पट्ट रहे हैं।

धार्मिक प्रधानता के अतिरिक्त भट्टारक आत्मकल्याणार्थ पुण्यकर्म सम्पादित करवाते थे तथा आचार्यों एव पडितो को नियुक्त कर शासित करते थे। ये अपने श्रावको से विभिन्न प्रकार से धन प्राप्त करते तथा वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। धार्मिक अनुष्ठानो, मूर्ति प्रतिष्ठा, प्रतियां लेखन हेतु भट्टारक अपने अधीनस्थ आचार्यों एव पडितो की नियुक्तियां भी करते थे।

अमूर्तिपूजक

श्वेताम्बर एव दिगम्बर दोनो परम्पराओ मे अमूर्तिपूजक सम्प्रदाय का राजस्थान मे व्यापक प्रभाव है।

श्वेताम्बर परम्परा

अमूर्तिपूजक श्वेताम्बर सम्प्रदायो का विवरण इस प्रकार है—

लोका पथ

अहमदाबाद मे लोंकाशाह यति ज्ञानजी के उपासरा मे शास्त्रो की प्रतियां लिखकर जीवन निर्वाह करते थे। शास्त्रो की प्रतियां लिखते लिखते उन्हे विश्वास हो गया कि उनमे मूर्तिपूजा का प्रावधान नही है। इस तथ्य पर ज्ञानजी आदि से विवाद के पश्चात् लोंकाशाह ने अपने नाम से १४५१ ई० मे लोकापथ की स्थापना की। लोंका ने मूर्तिपूजा एव प्रतिष्ठा का विरोध और पौषध प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान एव ब्रह्मचर्य मे विश्वास प्रचारित किया। मुस्लिमो द्वारा मन्दिरो और मूर्तियो को नष्ट होने के कारण लोंकापथ की लोकप्रियता बढने लगी। चैत्यवासियो के विलासपूर्ण जीवन और धन सचय के प्रति घृणा ने भी लोकापथ के विकास मे सहयोग दिया। लोंकाशाह ने ३२ सूत्रो को अपना आधार निरूपित कर आवश्यक सूत्र को अपने सिद्धान्तो के अनुसार प्रचारित

१ वही सत्यक ३३७ २ वही, सत्यक ४४५

३ जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ३६३ ४ Indian Antiquary XX p 347

किया। सिरोही के निकटवर्ती भाण से लोका की भेट हुई, जिसने विना गुरु के संन्यास ग्रहणकर १५२१ ई० मे रूपकजी तथा १५३० ई० मे वृद्ध वरसिंह को अपना शिष्य वना लिया और इस प्रकार लोकाशाह के अनुयायियों ने लोका सम्प्रदाय मे साधुओ को दीक्षित कर पंथ को व्यवस्थित रूप प्रदान किया।

स्थानकवासी सम्प्रदाय :

लोकापथ के कुछ अनुयायियो ने भगवान् महावीर के समान कठोर तप को विशेप महत्त्व दिया तथा सूरत के एक गृहस्थ लवजी ने साधु वनकर तदनुरूप तपस्या की। लवजी की कठोर तपस्या से प्रभावित होकर कई लोंकापथी उनके अनुयायी हो गये और इस नवीन सम्प्रदाय को 'स्थानकवासी' संज्ञा दी। राजस्थान के सभी नगरो मे स्थानकवासी सम्प्रदाय के श्रावक वहुसंख्यक है।[1]

तेरापंथी सम्प्रदाय :

स्थानकवासी साधु (उनके लिये श्रावको द्वारा निर्मित) स्थानको मे वर्षावास करते हैं। इस तथा कुछ अन्य सैद्धान्तिक मान्यता भेद के कारण श्री भीखणजी ने अपना एक अलग सम्प्रदाय संस्थापित किया। इस सम्प्रदाय के साधु स्थानक के स्थान पर श्रावकों के घर ठहरते हैं। इस अमूर्तिपूजक सम्प्रदाय केअनुयायी राजस्थान मे काफी है।[2]

दिगम्बर परम्परा :

अमूर्तिपूजक दिगम्बर सम्प्रदायों का विवरण इस प्रकार है—

तेरापंथी सम्प्रदाय :

अमूर्तिपूजक दिगम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय का प्रवर्तन तारण स्वामी ने किया था, जिनका जन्म १४४८ ई० तथा मृत्यु १५१५ ई० मे हुई थी। लोंकाशाह की तरह तारण स्वामी ने भी मूर्तिपूजा का विरोध किया। इसके अनुयायी तारण द्वारा लिखित चौदह ग्रन्थो की पूजा करते है। राजस्थान मे भी उनके अनुयायी है।

भट्टारक विरोधी सांगानेर निवासी पडित अमरचन्द वड़जात्या ने मूर्तिपूजक तेरापथी सम्प्रदाय की स्थापना की थी, जो सत्रहवी शताब्दी मे सम्पूर्ण राजपूताना मे लोकप्रिय हो गया। इसका मूल नाम विधिमार्ग था, परन्तु विरोधियो द्वारा प्रदत्त तेरापंथी नाम से ही यह सम्प्रदाय प्रसिद्ध हो गया। भट्टारको की जीवन प्रक्रिया के विरोधी, इस सम्प्रदाय का विस्तार आगरा निवासी सुधारक पंडित बनारसीदास के समय अधिक हुआ। जीवन निर्माण से सम्बद्ध तेरह सिद्धान्तों के कारण भी इसका नाम तेरापंथी निरूपित किया जाता है।[3] तेरापंथियो ने भट्टारको की निन्दा की तथा उनकी धार्मिक श्रेष्ठता को अस्वीकार किया तथा मूर्तिपूजा मे फलो, फूलो, चन्दन और प्रक्षाल का प्रयोग अनुचित निरूपित किया क्योकि इनके प्रयोग से हिंसा होती है।

---

१. इस सम्प्रदाय के सम्वन्ध मे आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० का एक लेख 'राजस्थान मे स्थानकवासी परम्परा' आगे के पृष्ठो मे [१६६–७४] दिया गया है। —सम्पादक

२. इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध मे मुनि श्री नथमलजी का एक लेख 'राजस्थान मे तेरापथ सम्प्रदाय का अभ्युदय' आगे के पृष्ठो [१७५–७८] मे दिया गया है। —सम्पादक

३. जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ३६७

गुमानपथी सम्प्रदाय

जयपुर निवासी प० टोडरमल के पुत्र गुमानराम के नाम से यह सम्प्रदाय गुमानपथी नाम से प्रसिद्ध हुआ। १८वीं शताब्दी में विकसित इस सम्प्रदाय को शुद्धाम्नाय भी व्यावहारिक पवित्रता के कारण कहा जाता है।

अन्य सम्प्रदाय

बीसपथी सम्प्रदाय

भट्टारकों के अनुयायियो ने बीसपथी सम्प्रदाय नाम, विरोधी तेरापन्थियो मे श्रेष्ठता प्रदर्शित करने हेतु दिया था। भट्टारको द्वारा प्रतिपादित मान्यताए और जल, दीपक, फूल और चन्दन द्वारा मूर्तिपूजा को इसके अनुयायी मान्य करते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायी जयपुर, अजमेर नागौर, मारोठ आदि मे अधिक हैं।

तोतापथी सम्प्रदाय

भट्टारक विरोधी तेरापथी और भट्टारक पक्षीय बीसपथियो में पारस्परिक समझौतावादी इस सम्प्रदाय को 'साढी सोलह पथी' भी कहा गया, क्योंकि दोना सम्प्रदायो के सिद्धान्तो के सम्मिश्रण को इन्होने अपनाया। यह सम्प्रदाय नागौर तक सीमित है।

[६]

विभिन्न जैन जातियाँ एव गोत्र

उत्तर भारत की विभिन्न जैन जातियो और गोत्रों की उत्पत्ति राजस्थान मे हुई। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई अनुश्रुतिया प्रचलित हैं, जो प्राचीनता की द्योतक हैं, यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से इन जातियो की उत्पत्ति की प्राचीनता सातवी शताब्दी से पूर्व नहीं ले जायी जा सकती। राजस्थान में जन जातियो एव गोत्रा की उत्पत्ति का समय आठवी से तेरहवीं शताब्दी के बीच ज्ञात होता है, जबकि हरिभद्र सूरि, जिनवल्लभ सूरि, हेमचन्द्र सूरि आदि ने अहिंसा को प्रतिष्ठित कर राजपूतो, ब्राह्मणो और वैश्यो को बडी सख्या मे जैन धर्म मे दीक्षित किया था। जैनाचार्यों के अतिरिक्त जैन शासकों और विमल एव वस्तुपाल जैसे महापुरुषो ने भी जैन धर्म को जैन धर्म के रूप मे प्रतिष्ठित करने के कई लोकोपकारी कार्य किये फलत विभिन्न स्थानो, कुलो एव जातियो के लोगो ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तथा तदनुसार जैनो मे कई जातियो एव गोत्रो का प्रादुर्भाव हुआ।

ओसवाल

भारत के सभी महत्त्वपूर्ण नगरो में ओसवाल जाति प्रतिष्ठित है। इस जाति का उत्पत्ति स्थल जोधपुर से उत्तरपश्चिम में ५२ कि० मी० पर स्थित ओसिया है। नाभिनन्दनोद्धार प्रबन्ध और उपकेशगच्छ चरित के अनुसार पार्श्वनाथ की परम्परा के सप्तम पट्टधर रत्नप्रभसूरि ने वीर निर्वाण सवत् ७० (ई० पू० ४५७) में ओसवश की स्थापना की थी। भाटो के मत मे रत्नप्रभ सूरि के उपदेशो से विक्रम सवत् २२२ (१६५ ई०) में ओसवाल जाति की स्थापना उपकेशनगर में हुई थी परन्तु ये दोना मत अतिरंजित प्रतीत होते हैं। रत्नप्रभ सूरि द्वारा राजा उप्पलदेव और उनकी प्रजा को जैन धर्म में दीक्षित करने की घटना, आठवी शताब्दी में ओसिया के किसी प्रतीहार शासक को प्रजा सहित जैन धर्मानुयायी बनाने का पुण्यकर्म किसी जैनाचार्य के द्वारा सम्पन्न होने का अनुश्रुतिपूर्ण विवरण है।

गोत्र :

जैन धर्म स्वीकार कर लेने के वाद भी ओसवालों में वैभिन्य वना रहा, जिससे परम्परानुसार उनकी १८ गोत्रें वनी थी जो कालान्तर में शाखा-प्रशाखाओ के रूप में १४४४ हो गईं। यति श्रीपाल ने ओसवालो की ६०६ गोत्रे वर्णित की है[1] तथा अठारहवी शताव्दी के कवि रूपचन्द्र ने ४४० मानी है।[2] ओसवालो की ये गोत्रें स्थान सूचक, वैयक्तिक और कर्मानुसार प्रसिद्ध हुई हैं।

कुछ गोत्रे अपने उत्पत्तिस्थल के नाम से प्रसिद्ध हुईं। जैसलमेर में भणसाल के रावलसागर के दो राजकुमार श्रीधर एव राजेन्द्र को जिनदत्त सूरि ने वासक्षेप प्रदान किया था, फलतः राजकुमार एवं उनके उत्तराधिकारी और सम्वन्धी भणसाली[3] गोत्रीय कहलाने लगे। काछोली गोत्र की उत्पत्ति सिरोही राज्य के काच्छोल ग्राम से हुई थी। खरतरगच्छ के जिनवल्लभ सूरि ने उदयपुर के महाराणा के कांकरावत ग्राम के निवासी सामन्त भीमसी को जैन धर्म मे दीक्षित किया था, फलतः उनके कुल को काकरिया गोत्रीय कहा जाने लगा।[4] कोरण्ट गोत्र मारवाड़ के कोरण्ट ग्राम से; पूगल निवासी ओसवालों के अन्यत्र वस जाने पर पूगल गोत्र, मेड़ता ग्राम के निवासियों से मेड़तवाल गोत्र, कन्नोज से आकर वस जाने से कनौजिया गोत्र आदि की उत्पत्ति तेरहवी से पन्द्रहवी शताब्दियो के वीच होने का ज्ञान अभिलेखो से होता है।

ओसवालो की कुछ गोत्रें धन्धे के नाम से प्रसिद्ध हुईं। राथड़ राव चुण्डा ने थाकरसी को खजाने का प्रभारी वनाया था, फलतः वे कोठारी कहलाने लगे तथा कोपपाल का कार्य करने वाले लोग खजान्ची कहलाये। भण्डारियो के अनुसार उनके मूल पुरुष डाड्राव[5] ने ९१२ ई० मे सण्डेरक गच्छीय यशोभद्र सूरि से जैन धर्म स्वीकार किया था तथा वे भण्डार के प्रभारी थे, फलतः उनके वंशज भण्डारी कहे जाने लगे। घी का धन्धा करने वाले ओसवाल के वंशज घीया गोत्रीय प्रसिद्ध हुए। वैद गोत्रीय लोगो के मूलपुरुष ने उदयपुर की महाराणी की आंख की चिकित्सा की थी, फलतः उसे प्राप्त वद्य विरुद के कारण उसके वशज 'वेद' कहलाये।[6] धन्धे के कारण ही चण्डालिया, वम्बी और महाजनी गोत्रो की उत्पत्ति हुई थी।

ओसवालो मे कुछ गोत्रें प्रसिद्ध पुरुषो के नाम से भी आरम्भ हुईं। आदित्यनाग गोत्र[7] दान-पुण्य एव जन-कल्याण के कार्यों मे प्रसिद्ध आदित्यनाग से आरम्भ हुई। लालसिंह पँवार को १११० ई० मे जैन धर्म मे दीक्षित कर जिनवल्लभ सूरि ने लालानी गोत्र की स्थापना की।[8] लालसिंह का ज्येष्ठ पुत्र वलशाली (वण्ठ) था, फलत. उसके वशज बाँठिया कहलाये। गदाशाह के वशज गदहिया कहलाये।[9] लूणिया गोत्र की उत्पत्ति लूणसिंह द्वारा जिनदत्तसूरि से जैन धर्म स्वीकार कर लेने से हुई। जगदेव पवार को पूर्णतलगच्छ के हेमचन्द्र सूरि ने जैन वनाया,[10] फलतः उसके दो पुत्रों

---

१. जैन सम्प्रदाय शिक्षा, पृ० ६५६ २. जैन भारती, ५, अक ११
३. Nahar : Jain Inscriptions, III, p. 28 ४. History of Osawalas, p. 353
५ Some distinguished Jainas, p. 36 ६. History of Osawalas, p. 166
७. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, पृ० ११०६ ८. जैन सम्प्रदाय शिक्षा, पृ० ६२६
९. वही, पृ० ६२८ १०. Nahar : Jain Inscriptions, No. 2186

सूर से सुराणा तथा सांवला से[1] साखला गोत्र प्रसिद्ध हुई । जिनदत्तसूरि से दो भाइयों—दुगड एवं सुगड ने जैन धर्म को स्वीकार किया, फलतः उनके वंशज दुगड और सुगड गोत्रीय कहलाये ।[2] देलवाडा के शासक सागर के पुत्र वोहिथ से बोथरा गोत्र,[3] जिनकुशल सूरि से चौहान डूंगरसिंह ने जैन धर्म स्वीकार किया था, फलतः उसके वंशज डागा तथा दूधेरा नामक पुरुष के वंशज दुधेरिया गोत्र से प्रसिद्ध हुए ।

श्रोसवालो की कुछ गोत्र सम्पन्न किये गये विशिष्ट कर्म के कारण भी प्रारम्भ हुई थी—यथा तीर्थयात्रा के लिये संघ निकालने वाले लोग सिंघवी कहलाये । ग्यारहवीं शताब्दी में नाग व्यन्तर द्वारा नारायण को वर दिया गया था फलतः वरडिया गोत्र का प्रादुर्भाव हुआ ।[4] काकू नामक व्यक्ति को नगर सेठ का विरुद मिला था, फलतः उसके वंशज सेठिया प्रसिद्ध हुए ।[5] पासु रत्न परीक्षा में कुशल था, फलतः उसके वंशज पारख कहलाये ।[6] युद्ध भूमि से पलायन नहीं करने वाले के वंशज नाहटा तथा माण्डलगढ के सुलतान द्वारा भाजसिंह को राजदरबार में कटार ले जाने की अनुमति देने से उसके वंशज कटारिया कहलाये ।[7] जिनदत्त सूरि से खरतसिंह राठोड ने जैन धर्म स्वीकार किया था, इसके पुत्र अम्बदेव ने चोरों को पकड लिया, फलतः वह और उसके वंशज चोरडिया प्रसिद्ध हुए ।[8]

श्रीमाल

श्रीमाल जाति का मूल स्थान श्रीमाल था, जिसकी पहिचान जालोर जिले के भीनमाल से की जाती है । जैन धर्मानुयायी होने के बाद निष्क्रमण कर यत्र तत्र बसने से, ये लोग मूल स्थान से श्रीमाल प्रसिद्ध हुए । श्रीमाल जाति का सबसे प्रारम्भिक उल्लेख भारद्वाज गोत्रीय श्रीमाल टोडा का ७३८ ई० से सम्बद्ध है ।[9] उदयरत्न द्वारा रचित पञ्चपट रास से ज्ञात होता है कि शक संवत् ७०० में रत्नप्रभ सूरि श्रीमाल नगर पधारे थे और वहाँ उन्होंने श्रीमाल जाति की स्थापना की ।[10] एक अनुश्रुति के अनुसार उदयप्रभसूरि ने श्रीमाल के ब्राह्मण धर्मानुयायी राजा विजयन्त और ६२ सेठों को जैनधर्मानुयायी बनाकर श्रीमाल जाति की स्थापना की थी ।[11] उपर्युक्त उल्लेखों से श्रीमाल जाति का अस्तित्व तथा उत्पत्ति सातवीं अथवा आठवीं शताब्दी में होने की पुष्टि होती है ।

कालान्तर में, श्रीमाल दो वर्गों में विभक्त हो गये—लघु शाखा और वृहद् शाखा । श्रीमाल जाति की कई गोत्रों का विवरण अभिलेखों में उपलब्ध है । अधिकांश गोत्र की उत्पत्ति जैनदेवी अम्बिका से है । ऐलहर,[12] गोवलिया[13] पेवरिया,[14] गौतम,[15]

---

१ जैन सम्प्रदाय शिक्षा पृ० ६६७ २ वही, पृ० ६३८ ३ वही, पृ० ६३९–४१
४ वही, पृ० ६२२ ५ वही, ६३४ ६ वही, पृ० ६२८
७ वही, पृ० ६३४ ८ History of Osawalas, p 509
९ जैन साहित्य संशोधक एवं जैनाचार्य आत्माराम शताब्दी स्मारक ग्रंथ, गुजराती विभाग, पृ० २०४
१० प्राग्वाट इतिहास, प्रस्तावना, पृ० १२ ११ श्री जैन गोत्र संग्रह, सं० १३–२३
१२ Nahar Jain Inscriptions, No 1676 १३ वही, सं० ४१२
१४ वही, सं० ४१३ १५ वही सं० २६४

चण्डालिया,[1] डोड़ा,[2] डोसी,[3] नावरा,[4] भाण्डिया,[5] मीथिया,[6] मांथलपुर,[7] वहगटा,[8] श्रेष्ठी,[9] मीघाड़ा,[10] फोफलिया,[11] भाण्डवट,[12] मूसल,[13] सिद्ध,[14] नलुरिया, कुनीवाल, भूंगटिया आदि गोत्र पन्द्रहवी शताब्दी के अभिलेखो मे विदित होती है। सोलहवीं शताब्दी के अभिलेखों में श्रीमाल जाति की कुछ और गोत्रो—धीना,[15] पाटाणी,[16] मुहवगा[17] के उल्लेख उपलब्ध हैं।

पोरवाल :

श्रीमाल नगर के पूर्वी प्रवेश द्वार के निकट निवास करने वाले लोगों ने जैन धर्म स्वीकार किया था, फलत इन्हें पोरवाल कहा गया,[18] परन्तु यह मत समीचीन प्रतीत नही होता है। प्राचीन अभिलेखो और हस्तलिखित ग्र थो मे पोरवालो को प्राग्वाट भी कहा गया है,[19] जो कि मेवाड (मेदपाट) का अन्य नाम है तथा ये लोग अपना मूल स्थान मेवाड के ग्राम पुर को मानते हैं। श्रीमाल के समान पोरवाल भी लघु शाखा और बृहत शाखा मे विभक्त हैं। अभिलेखो और ग्रंथो मे पोरवालो की कुछ गोत्रो[20]—भूलग, मुथलिया, लीम्बा, मण्डलिया, कुलगिरा, पटेल, नवंट, लोनानिया, पोमग्रा, कोठारी, भण्डारी, अम्बाई, कोडकी, नाग आदि का ज्ञान होता है।

पल्लीवाल :

मारवाड़ मे पाली पल्लीवालो का उद्गम स्थल है, जिसका प्राचीन नाम पल्लिका था। ओसिया एव श्रीमाल की तरह पल्लिका के निवासी भी आठवी शताब्दी मे रत्नप्रभ सूरि के द्वारा जैनधर्मानुयायी बनाये गये होंगे।

खण्डेलवाल :

राजस्थान के सीकर जिले का खण्डेला ग्राम ही खण्डेलवालो का उद्गम स्थल है। अनुश्रुति के अनुसार जिनसेनाचार्य ने विक्रम सवत् १ मे खण्डेला के चौहान शासक और उसके ८२ राजपूत सामतो एव २ स्वर्णकारो को जैनमतानुयायी बनाया था, जिनसे ८४ गोत्रो की स्थापना हुई। आठवी शताब्दि से पूर्व खण्डेलवाल जाति की उत्पत्ति मानना कठिन है। इस जाति का आरम्भिक उल्लेख जयपुर के सिंघाजी मन्दिर के ११९३ ई० के मूर्तिलेख मे है।[21]

खण्डेलवालो के ८४ गोत्रो का विवरण अतिरंजित है; इनमे स्थानीय, कर्म एव उपनाम से सम्बद्ध गोत्र हैं, जिनकी सख्या धीरे-धीरे बढती रही। अजमेरा गोत्र की उत्पत्ति अजमेर से, पाटोदी

---

१. Nahar : Jain Inscriptions, No. 830 २. वही, स० ३८ ३ वही, सं० ३९१
४. वही, स० १९९३ ५ वही, स० १९७४ ६. वही, सं० १९५६
७ वही, स० १९९७ ८ वही, स० १९३२ ९ वही, सं० २०८५
१०. वही, स० १२२४ व १२२७ ११ वही, स० ७३७ व ८२३ १२. वही, स० ५७७
१३ वही, स० २३३३ १४. वही, स० २२९२ १५. वही, सं० २४२९
१६. वही, स० ७५० १७. वही, स० २३७० १८. श्री जैन गोत्र संग्रह पृ० १३–२३
१९ ओझा निबन्ध सग्रह, पृ० २५ २०. श्री जैन गोत्र संग्रह, प्रस्तावना, पृ० ५०
२१. Dr. K. C, Jain : Jainism in Rajasthan, p. 103, F. N. 2

गोत्र शेखावट के पाटोडा ग्राम से, कासलीवाल सीकर के निकट कासली ग्राम से, पाटनी गोत्र खण्डेला के निकट पाटन ग्राम से, टोंग्या गोत्र सभवत टोंक से तथा काला गोत्र चामू के निकट ग्राम कालादेवा से प्रसिद्ध हुई। कुछ गोत्र—वेद, सोनी, वोहरा आदि क्रमश वैद्य स्वर्ण एव लेनदेन के धन्धे के कारण स्थापित हुई। खण्डेलवालो की कुछ गोत्र उपनाम और विरुद के कारण भी प्रसिद्ध हुई थी यथा—साहा, चौधरी, छावडा, भौसा, बडजात्या, सेठी आदि। अभिलेखो और प्रशस्तियो से गोधा,[1] ठोल्या,[2] पहाड्या,[3] बिलाला,[4] गगवाल,[5] गोदिका,[6] पाण्ड्या[7] रावका,[8] कुरकुरा, सोगानी[9] आदि गोत्रों का ज्ञान होता है। खण्डेलवाल जाति के अधिकाश लोग मूल सघ के अनुयायी विदित होते हैं, जो कि उल्लेखनीय है।

बघेरवाल

इस जाति का उत्पत्ति स्थल प्राचीन अवशेषो का केन्द्र बघेरा है। बघेरा बारहवी शताब्दी मे भट्टारकों का पट्ट केन्द्र था।[10] एक अनुश्रुति के अनुसार दिगम्बर साधु रामसेन एव नमसेन ने बघेरा के राजा और प्रजा को जैनानुयायी बनाया था, सभवत यह घटना आठवी शताब्दी की होगी। प० आशाधर भी बघेरवाल थे। अभिलेखो एव प्रशस्तियो से बघेरवाल जाति की रायभण्डारी,[11] शालवाल,[12] शानापति,[13] धोला,[14] काटवा,[15] प्रभा,[16] मिरवाड या[17] आदि गोत्रों का ज्ञान होता है।

अग्रवाल

राजस्थान मे अग्रवाल उन्नतिशील जाति है, इसमे जैन और ब्राह्मण दोनो धर्मों के अनुयायी हैं। एक अनुश्रुति के अनुसार पजाब के अग्रोहा स्थान के नाम से अग्रसेन ने अग्रवाल जाति की स्थापना की थी। पट्टावलियो से विदित होता है कि लोहित्याचार्य ने अग्रवालो तथा उनके राजा दिवाकर को जैन धर्मानुयायी बनाया।[18] लोहिताचार्य वलभी वाचना के प्रमुख देवर्धिगणि (४५३ ई०) के अग्रज थे, जो तीस वर्ष पूर्व अर्थात् ४२३ ई० मे रहे होगे।[19] अग्रवाल जाति का अस्तित्व आठवी शताब्दी के पूर्व मानना कठिन है, अतएव यह अनुश्रुति विश्वसनीय नही है। अभिलेखो और प्रशस्तियो से अग्रवालो की गोयल,[20] गर्ग,[21] सिंघल,[22] बसल[23] आदि गोत्रो का ज्ञान होता है।

अन्य जैन जातियाँ

दिगम्बरो की नागदा और चित्तोडा जातियाँ मेवाड के नागदा एव चित्तोड नगरो मे प्रसिद्ध

---

१ वीरवाणी, सप्तम जिल्द, पृ० १२ २ वही, पृ० १२
३ Dr K. C Jain Jainism in Rajasthan p 105 ४ वही F N ६
५ प्रशस्ति सग्रह, पृ० ६६ ६ वही पृ० १६२ ७ वही पृ० १७०
८ वही, पृ० १७७ ९ वही, पृ० ४४ एव ७३ १० Indian Antiquary, XX p 57
११ Nahar Jain Inscriptions, No 438 १२ वही, स० ७२७ १३ वही, स० ६२८
१४ प्रशस्ति सग्रह, पृ० १४७ १५ वही, पृ० ६८
१६ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 106 १७ वही
१८ श्री भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, पृ० ५५० १९ वही, पृ० ५४८
२० प्रशस्ति सग्रह, पृ० ८५ २१ वही पृ० ११६ २२ वही, पृ० ९२ २३ वही, पृ० ६७

हुई हैं, जिनके प्रादुर्भाव का समय मध्ययुग रहा होगा। इन्होंने कई मंदिर, मूर्ति प्रतिष्ठा एवं शास्त्र प्रतियाँ लेखन वागड़ के मूल संघ और काष्ठा संघ के भट्टारकों की प्रेरणा से सम्पादित किये थे। पन्द्रहवीं शताब्दी मे भट्टारक ज्ञानभूषण ने नागद्रारास लिखकर नागदा जाति के इतिहास को प्रकाशित किया था। नरसिंहपुरा और जैसवाल दिगम्बर जातियों की उत्पत्ति मध्यकाल मे मेवाड़ के नरसिंह-पुरा और जैसलमेर मे हुई थी, फलतः जैनाचार्यों ने इनको स्थान सूचक नाम प्रदान किया होगा।

हूम्वड़ :

अन्य जातियों की तरह हूम्वड जाति भी किसी स्थल से सम्बद्ध रही होगी। राजस्थान में प्राचीन वागड प्रदेश हुम्वड़ जाति का केन्द्र है। इस जाति का उत्पत्ति काल अन्यों की तरह आठवीं शताब्दी माना जाता है। हूम्वड जाति की तीन शाखाएं—लघु शाखा, बृहत शाखा, वर्षावत शाखा तथा १८ गोत्र[१]—खरजु, कमलेश्वर, काकदेश्वर, उत्तरेश्वर, मंत्रेश्वर, भीमेश्वर, भद्रेश्वर, गंगेश्वर, विश्वेश्वर, सालेश्वर, अम्बेश्वर, चांचनेश्वर, सोमेश्वर, रजियानो, ललितेश्वर, कामवेश्वर, बुधेश्वर और सघेश्वर विभिन्न स्रोतों से विदित होती हैं।

धर्कट :

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों में धर्कट जाति का अस्तित्व है। धम्मपरीक्षा के लेखक हरिषेण इसी जाति के थे, इनका समय दसवीं शताब्दी माना जाता है।[२] १२३० ई० के देलवाड़ा अभिलेख[३] तथा आबू के दो अभिलेखों[४] मे धर्कट जाति का उल्लेख है, फलत. इस जाति का उत्पत्ति प्रदेश राज-स्थान ही प्रतीत होता है, यद्यपि वर्तमान मे यह जाति दक्षिण भारत मे अवस्थित है। हरिषेण द्वारा उल्लेखित सिरिउजपुरिय धक्कड कुल के आधार पर नाथूराम प्रेमी[५] धर्कट कुल को टोंक के सिरोज से तथा अगरचंद नाहटा[६] धकड़गढ से सम्बन्धित मानते हैं क्योंकि धकडगढ से ही महेश्वरी जाति की धाकड़ शाखा की उत्पत्ति मानी जाती है। दो प्रशस्तियों के आधार पर नाहटाजी ने धकडगढ की स्थिति श्रीमाल के निकट मानी है।[७]

श्रीमोढ़ :

श्रीमोढ बनिये वर्तमान मे भी वैभवशाली है। श्रीमोढ ब्राह्मण अपने को श्रीमोढ़ नामक स्थान से सम्बन्धित मानते है। दोनों जातियों का उद्गम स्थल अणहिलवाड के दक्षिण में स्थित प्राचीन नगर मोधेरा है। सोलंकी सम्राट कुमारपाल के गुरु तथा प्रसिद्ध जैन विद्वान् हेमचन्द्र सूरि का जन्म श्रीमोढ जाति मे ही हुआ था। इस जाति के अभिलेख बारहवीं शताब्दी से मिलते हैं।[८]

जैनों की उपर्युक्त सभी जातियों तथा गोत्रों के लोग वर्तमान राजस्थान मे अपनी सांस्कृतिक धरोहर एवं संस्कार को जीवित रखे हुए हैं। राजस्थान को इस बात का गौरव प्राप्त है कि अधिकांश जैन जातियों और गोत्रों का यह उत्पत्ति प्रदेश रहा है तथा यहाँ के निवासी भारत के सम्पूर्ण प्रमुख नगरों में प्रतिष्ठापूर्वक जीवनयापन कर रहे हैं। ●

---

१. प्रशस्ति संग्रह, पृ० १२४ २. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४६८
३. अनेकांत, ३, पृ० १२४ ४. वही, पृ० १२४ ५. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४६८
६. अनेकांत, ४, पृ० ६१० ७. जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह, सख्यक ५२ एवं ६३
८. Dr. K C. Jain . Jainism in Rajasthan, p 109

१६ | राजस्थान मे स्थानकवासी-परम्परा

०

आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०

वीरभूमि-धर्मभूमि

राजस्थान की वीर भूमि जो आज धर्म भूमि बनी हुई है, उसमे जैन सतो का बडा योगदान रहा है। जैन सन्तो और श्रावको ने इस प्रात के धार्मिक जागरण मे बडा उल्लेखनीय योगदान दिया है। ओसवाल समाज का तो उत्पत्ति स्थान ही राजस्थान माना जाता है। जोधपुर, उदयपुर, जयपुर और बीकानेर आदि भूतपूर्व राज्यो की शासन-व्यवस्था मे परम्परा से जैनो का बडा हाथ रहता आया था। सर्वत्र जैन आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। देश हित मे जैनो का त्याग बेजोड रहा है। भामाशाह का त्याग इतिहास मे आज भी अमर स्मृति बनाये हुये है। राजस्थान के पश्चिमी अचल मे श्वेताम्बर जैनो और पूर्वी अचल मे दिगम्बर जैनो का, सर्वतोमुखी विकास मे प्रमुख भाग रहा प्रतीत होता है।

स्थानकवासी समाज के सतो ने भी इधर काफी काम किया। गुजरात से सम्बन्धित होने के कारण लोकागच्छ की परम्परा राजस्थान मे बहुत शीघ्र फैल गई। जालोर सिरोही होते नागौर, बीकानेर और जतारण मे लोकागच्छ की गद्दिया प्रतिष्ठापित हो गई। क्रियाउद्धार[1] के क्रातिकारी माध्यम द्वारा बाह्याडम्बर के विरोध मे एक देशव्यापी लहर उठी। गुजरात मे उद्भूत वह लहर राजस्थान मे आसन जमा बैठी। सोलहवी-सतरहवी सदी मे यहा लोकागच्छ के अतिरिक्त पोतियाबध परम्परा का भी प्रसार होने लगा था।

उस समय स्थानकवासी सत जो बावीस सम्प्रदाय या ढू ढिया नाम से पुकारे जाते थे का प्रसार अल्प स्वल्प था। जहा-तहा यति वर्ग साधुओ के प्रवेश को हर प्रकार से रोकना चाहता था, फिर भी यत्र-तत्र जो आडम्बर विरोधी तत्त्व थे, सन्तो के त्याग, तप के प्रभाव ने उनके मन मे आदर उत्पन्न किया और उनके सहयोग मे शनै शनै सन्तों का प्रचार क्षेत्र बढने लगा।

---

१ प्रमुख क्रियोद्धारक थे—पूज्य आचार्य सर्वश्री जीवराजजी, लवजी, धर्मसिंहजी, धर्मदासजी हरजी और धनाजी।

— सम्पादक

राजस्थान में स्थानकवासी-परम्परा :

राजस्थान मे सद्धर्म का प्रचार करने वाले मुख्य पाच सन्त थे। पूज्य श्री जीवराज जी म०, पूज्य श्री हरजी जी म०, पूज्य श्री धन्ना जी म०, श्री पृथ्वीचन्द जी म० और पूज्य श्री मनोहर जी म०। इनमे पूज्य श्री जीवराज जी म० १७वीं सदी के प्रारम्भकालीन सन्त माने जाते है। 'सम्पत पट्टावली' के अनुसार आपने पीपाड मे पाच साथियो के साथ क्रियोद्धार किया। स्पष्ट परिचय के अभाव मे आपकी गुरु-शिष्य-परम्परा और विशिष्ट घटनाओं का निश्चित पता लगाना कठिन है। कुछ लेखक आपको कुंवरजी मन्त्र के जगाजी के शिष्य बतलाते है, जबकि श्री जीवराज ऋषि कृत 'चौवीसी' (स्तुति) मे आपका तोमजी के शिष्य होना प्रमाणित होता है। फिर भी इतना निश्चित है कि आप बडे प्रभावशाली, आचारनिष्ठ सन्त थे। आपका शिष्य समुदाय अल्प समय मे ही विभिन्न गणो के रूप मे सारे प्रान्त मे फैल गया। उनमे से पूज्य श्री अमरसिंह जी म०, पूज्य श्री नानकराम जी म०, पूज्य श्री शीतलदास जी म०, पूज्य श्री स्वामीदास जी म० और पूज्य श्री मनजी जी म० के साधु-साध्वी आज भी विद्यमान हैं।

पूज्य श्री अमरसिंह जी म० सा० बडे प्रभावशाली आचार्य हुए हैं। आपने बडे-बडे राजा-महाराजाओं को प्रतिबोध दिया। दिल्ली के बादशाह को प्रतिबुद्ध कर आपने रजवाडो मे हिंसाबंदी के हुक्म प्रसारित करवाये। आपने सं० १८११ मे स्थानकवासी सम्प्रदायो का मेडता मे एकीकरण किया। आपके साधु-समुदाय मे पूज्य श्री जीतमल जी म० बडे विद्वान, कलाप्रिय, कवि और उर्दू-फारसी के ज्ञाता थे। आपकी परम्परा मे अभी प्रवर्तक पं० श्री पुष्कर मुनि जी म० सा०, श्री देवेन्द्र मुनि जी म० सा० आदि सन्त और श्री महासती श्री शीलकंवर जी आदि सतिया हैं। भण्डारी श्री रघुनाथदास जी आपके भक्त थे।

पूज्य श्री जीवराज जी म० की परम्परा मे श्री नानकराम जी म० और श्री स्वामीदासजी म० दोनो बडे विद्वान सन्त हुए हैं। पूज्य श्री नानकराम जी म० बडे क्रिया पात्र थे। अजमेर के आस-पास के क्षेत्रो मे आपका अधिक विराजना रहा। आपके साधु-परिवार मे श्री माधोजी म० बडे कठोर क्रियापात्र थे। मास-मास की तपस्या आप बहुत बार किया करते थे। परिषह सहन के लिए आप शीतकाल मे प्रातः और गर्मी की ऋतु में दोपहर को विहार करते थे।

पुष्कर में उस समय जैन साधुओं को पण्डे लोग आने नहीं देते थे। एक बार श्री माधोजी म० को पुष्कर जाते देखकर पण्डो ने घेर लिया और कहा—बाबाजी ! आराम से जीना हो तो पीछे लौट जाओ, नहीं तो हम तुम्हारी हड्डिया बिखेर देंगे। इस पर महाराज श्री नाग-पहाड मे ध्यान लगा कर बैठ गये। २५ दिन तक उपवास मे रहे। अन्त में पुष्कर निवासियो को सूचना मिली कि पण्डो के सताने से एक जैन सत पहाड़ मे तपस्या कर रहे हैं और इसी पाप के फलस्वरूप हमारे नगर मे बीमारी चल पड़ी है। तब सब लोगो ने महाराज के पास जाकर क्षमा मागी और उनको नगर मे पधारने की विनती की। इस पर तपस्वी महाराज ने शान्त भाव से गांव मे आकर पारणा किया। लोगो पर बड़ा प्रभाव पडा।

माधोजी के अनन्तर भी कई प्रभावशाली सन्त हुए। आपकी परम्परा मे वयोवृद्ध श्री पन्नालाल जी म० सा० राजस्थान मे बीसवी सदी के सन्त हो गए हैं। आपने अपने ओजपूर्ण उपदेश

श्रौर तपोबल से कई जगह देवी देवो के नाम से होने वाली पशु हिंसा बन्द की श्रौर समाज-सुधार के काय किये। श्रापने समाज मे धम-प्रवृत्ति को निरन्तर जागृत रखने हेतु स्वाध्याय सघ की स्थापना की। श्री नानकराम जी म० की सम्प्रदाय मे सैंकडो साधु-साध्वी हुए। श्रभी प० श्री हुगामीलाल जी म० सा०, एव प्रवर्तक श्री कुन्दनमल जी म० सा० श्रादि सन्त विद्यमान हैं।

श्री स्वामीदास जी म० की परम्परा मे कई विद्वान एव प्रभावशाली सन्त हुये हैं। श्री बखतावरमल जी म० उनमे बडे चमत्कारी सन्त थे। गोडवाड प्रान्त मे उनका बडा प्रभाव था। वे श्रच्छे साधक श्रौर वचनसिद्ध पुरुष थे। वतमान मे श्रापकी परम्परा में मुनि श्री कन्हैयाल जी 'कमल श्रादि सत हैं।

पूज्य श्री शीतलदास जी म० की परम्परा भी राजस्थान श्रौर प्रमुखत मेवाड में धम का प्रचार-प्रसार करती रही है। पूज्य श्री प्रतापमल जी म० इस परम्परा मे प्रभावशाली सत हुए हैं। तपस्वी श्री वेणीदास जी म० ने करीब ५० वष तक छाछ के श्राधार पर तप किया। एक बार श्रापने बनेडा के नगर द्वार मे खडे रहने का व्रत किया। श्रापका श्रभिग्रह था कि बनेडा के राजा श्रपने पोते के साथ श्रावें श्रौर भवर जी कहे—"वेणा ! बैठणो व्है तो बैठ, नहीं तो चल जा," तो बठना श्र यथा खडे रहना। तपस्वी जी का वह सकल्प कुछ दिनो पश्चात पूरा हुश्रा। नगर मे धम की प्रभावना हुई। वतमान मे इस परम्परा की महासती जसकवर जी म० श्रच्छा धम प्रचार कर रही हैं। वेगू के पास जोगणिया देवी के नाम पर होने वाली हजारों मूक प्राणियो की हिंसा बद कराने में उनके उपदेश का वडा प्रभाव रहा। इस परम्परा के उ०प्र० श्री मोहन मुनिजो श्रौर मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल' धम-प्रचार का श्रच्छा काय कर रहे हैं।

पूज्य श्री जीवराज जी म० की परम्परा मे दूसरी शाखा श्री नाथूराम जो म० की रही है। श्रलवर, कोटा, भरतपुर, बीकानर श्रादि मे श्रच्छा धम प्रचार किया। इस परम्परा मे सन्तो की तरह महासत महाकवर जी, महासती भूर सुन्दरी जी श्रादि कई सतिया भी श्रच्छी धर्म प्रचारिकाए एव विदुषिया हुई हैं। वतमान में इस परम्परा के सुत्तागमे' के सम्पादक मुनि पुप्फ-भिक्खू श्रौर विश्वधर्म सम्मेलन के प्रवतक प० मुनि सुशीलकुमार जी धम-प्रचार मे बहुत श्रच्छा योगदान दे रहे हैं। बीसवीं सदी के दूसरे चरण के बाद इस समुदाय के साधुश्रों का श्रधिकाशत राजस्थान के बाहर भ्रमण होता रहा है।

पूज्य श्री जीवराज जी म० के समान राजस्थान में दूसरी सन्त-परम्परा पूज्य श्री धन्ना जी म० की रही है। पूज्य श्री धन्ना जी म० राजस्थान स्थित साचोर मालवाडा के निवासी थे। श्रापका जन्म पोरवाल वश के बाधाभूषा जो वहा के कामदार थे, उनके यहा हुश्रा। श्राप बाल्यकाल से ही धार्मिक रुचि वाले थे। सत्सग से श्राप कुछ वय पोतियाबध की श्रद्धा मे भी रहे। फिर पूज्य श्री धमदास जी म० का उपदेश श्रवण कर श्रापने पूरी तरह ससार त्याग कर मुनि धम स्वीकार किया। श्रापका राजस्थान क्षेत्र मे व्यापक प्रचार रहा। श्रापके ७ विद्वान शिष्य हुए। उन्होने चतुर्मुखी भ्रमण कर मारवाड के गाव-गाव मे धम का सन्देश पहुचाया। श्राप बडे तपस्वी श्रौर रसविजयी सन्त थे। एकान्तर तप के साथ श्रापने पांचो ही विगय का त्याग कर रखा था। स० १७३२ की एक प्रशस्ति से यह प्रमाणित होता है कि श्रापका मेडता के श्रासपास श्रच्छा धम प्रचार हो चुका था। यह चतुर्मास भी श्रापने मेडता मे किया श्रौर स० १७८४ में श्रापने समाधिपूर्वक देहत्याग भी मेडता में ही किया।

पूज्य श्री धन्ना जी म० के शिष्यो मे पूज्य श्री भूधर जी म० बहुत ही प्रभावशाली महापुरुष हुए है। आप बडे तपस्वी क्षमाशूर और प्रतापवान थे। आपका जन्म सोजत के मुणोत श्री माणकचन्द जी के यहा हुआ। वर्षो आपने राजकीय सेवा की। पूज्य श्री धन्ना जी म० के सत्संग से प्रतिबोध पाकर आप दीक्षित हुए। आपने देश-प्रदेश मे घूम-घूम कर धर्म का बड़ा उद्योत किया। मरुधरा के सेवाधिकारी भण्डारी खीवसी की प्रेरणा से आप दिल्ली पधारे और वहां आपने शाहजादी के प्राण बचाये। आपके सत्य ज्ञान से प्रभावित हो, भण्डारीजी ने जैन-धर्म स्वीकार किया, और सोजत के कोट के मोहल्ले का स्थान जो मस्जिद मे परिवर्तित था, समाज को धर्म ध्यानार्थ दिलाकर, उसे स्थानक रूप में बदल दिया। आपके अनेको विद्वान शिष्य हुए। उन्होने मारवाड के कोने-कोने मे घूमकर जालोर, साचोर, सिवाना, बालोतरा, पाली, पीपाड, जोधपुर, फलोदी, बीकानेर, थली सर्वत्र साधु-धर्म का प्रभाव जमाया और हजारो लोगो को सत्य-धर्म में दीक्षित किया। आपके ६ शिष्यों में पूज्य श्री रघुनाथ जी म०, पूज्य श्री जयमल जी म०, पूज्य श्री कुशला जी म० और पूज्य नारायण जी म० बडे प्रभावक महापुरुष हुए।

पांच-पांच की तपस्या करते हुए आप मेडता चातुर्मास हेतु पधारे और वही पर सं० १८०४ की विजयदशमी के दिन स्वर्गवासी हो गये।

पूज्य श्री भूधर जी म० के पट्टधर पूज्य श्री रघुनाथ जी म० और पूज्य श्री जयमल्ल जी म० संघ का संचालन करने लगे। साधु-साध्वियो के विशाल समुदाय का सुयोग्य रीति से शासन करते हुए चारों भाइयों का परिवार खूब फला-फूला।

पूज्य श्री भूधर जी म० के शिष्यो मे श्री रघुनाथ जी म० बड़े भाग्यशाली और प्रतापी थे। आप अमर होने की अभिलाषा लिए चामुण्डा को अपना सिर चढाने जा रहे थे। पर पूज्य श्री भूधर जी के उपदेश से प्रभावित हो, आपने संयम धर्म स्वीकार किया। आपके शासनकाल मे लगभग २२५ साधु-साध्विया श्रुत-चारित्र-धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। गुरुदेव पूज्य श्री भूधर जी म० के सं० १८०४ मे स्वर्गगमन के बाद पूज्य श्री रघुनाथ जी म०, पूज्य श्री जयमल जी म० और पूज्य श्री कुशलजी म० आदि शिष्य एवं शिष्यानुशिष्य हजारो साधु-साध्विया विशेष तत्परता से धर्म व सम्प्रदाय की सेवा मे जुट गये।

पूज्य श्री जयमल जी म० ने गुरुदेव के स्वर्गवासान्तर ही आजीवन शयन—निद्रा लेना छोड़ दिया। पूज्य श्री कुशल जी म० सा० भी गुरु भाई का पूरा साथ देते रहे। विद्वान और प्रभावशाली सन्तों से पूज्य श्री रघुनाथ जी म०, पूज्य श्री चौथमल जी म०, पूज्य श्री जयमल जी म०, पूज्य श्री महाचन्द जी म०, पूज्य श्री रूपचन्द जी म० और पूज्य श्री कुशल जी म० के अलग-अलग सघाडा चलने लगे।

पूज्य श्री रघुनाथ जी म० की परम्परा मे पूज्य श्री टोडरमल जी म०, श्री दीपचन्द जी म०, श्री सन्तोष जी म०, श्री छगनमल जी म०, श्री मानमल जी म० और श्री बुद्धमल जी म० अच्छे तपस्वी और विद्वान सन्त हुए। श्री रूपचन्द जी म० की परम्परा मे श्री जेठमल जी म० बडे चर्चा-वादी थे। उन्होने अहमदाबाद में चर्चाकर 'समकितसार' ग्रन्थ की रचना की। वर्तमान में इस परम्परा के मरूधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म० सा० विद्यमान हैं।

पूज्य श्री जयमल जी म० सा० की परम्परा मे पूज्य श्री रायचन्द जी म० सा०, श्री आसकरण जी म० सा० आदि अच्छे कवि और विद्वान सन्त हुए हैं। पूज्य श्री जयमल जी म० परम-विरागी, तपस्वी, कवि एव विविध शास्त्रो के ज्ञाता थे। वतमान मे आपकी परम्परा के स्वामी व्रजलाल जी म०, श्री मिश्रीलाल जी म० 'मधुकर' श्री जीतमल जी म०, श्री लालचन्द जी म०, आदि सत विद्यमान हैं।

पूज्य श्री कुशल जी म० की परम्परा मे पूज्य श्री गुमानचन्द जी म०, पूज्य श्री रतनचन्द जी म०, पूज्य श्री हमीरमल जी म०, स्वामी कनीराम जी म०, पूज्य श्री कजोडीमल जी म०, स्थविर श्री नन्दराम जी म० और तपस्वी श्री बालचन्द जी म० बडे प्रभावशाली सन्त थे।

आचार्य श्री रतनचन्द जी म० के समय जोधपुर नरेश श्री विजयसिंह जी और श्री तखतसिंह जी के राज्यकाल मे मेहता अखैचन्द जी, लखमीचन्द जी दीवान थे, जो पूज्य श्री के परम भक्त थे।

श्री कनीराम जी म० बडे वादलब्धि वाले थे। पूज्य श्री महा तेजस्वी सन्त थे। उनके बाद आचाय श्री विनयचन्द जी म० बहुश्रुत व परम स्मृतिधर थे। श्री नन्दलाल जी म० भी बडे विद्वान लेखक थे। उनके समय मे पूज्य श्री लाल जी म०, पूज्य श्री माधव मुनि जी म० सा०, पूज्य श्री ज्ञानचन्द जी म० आदि कई विशिष्ट सन्त और महासती श्री वरजू जी, महासती श्री आणदा जी, महासती श्री महाकवर जी, महासती श्री भमकू जी, महासती श्री नन्दकवर जी, महासती श्री रगू जी महासती श्री रिद्धू जी, महासती श्री केशर जी, महासती श्री छोगा जी, महासती श्री इन्द्रकवर जी, महासती श्री ज्ञानकवर जी, महासती श्री मल्लाव जी, महासती श्री जडाव जी, महासती श्री भमरकवर जी, महासती श्री धनकवर जी, महासती श्री केशर जी आदि सतिया भी अच्छी प्रभाव शालिनी हुई हैं।

पूज्य श्री शोभाचन्द जी म०[1] बडे शान्त सरल एव विनयमूर्ति, निराडम्बरी आचाय थे। आपके आचायकाल मे स्वामी जी श्री चन्दनमलजी म० विद्वान एव प्रभावशाली सत थे।

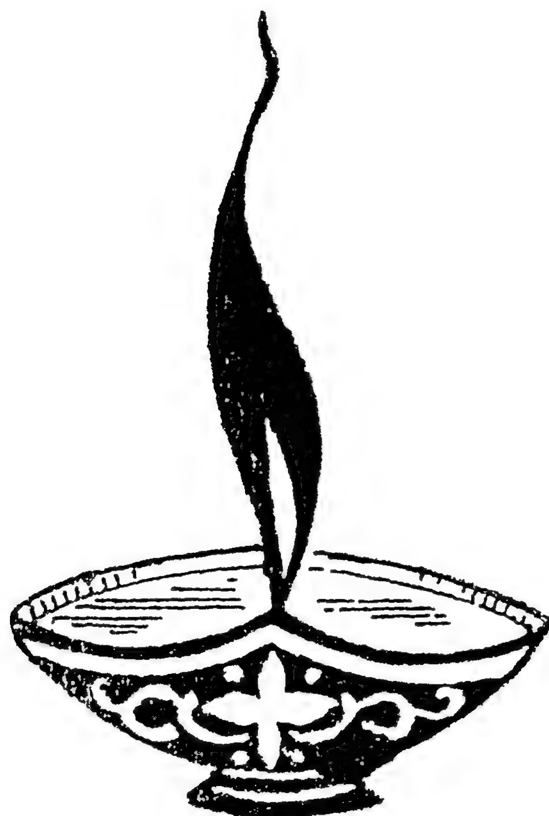
पूज्य श्री हरजी म० की मुख्य दो परम्पराए है। एक कोटा समुदाय की परम्परा और दूसरी पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म० की परम्परा। कोटा समुदाय की परम्परा के श्री गणेशमल जी म०, न जो 'खादीवाले' के नाम से प्रसिद्ध हैं दक्षिण मे विशेष धम-प्रचार किया। श्री रामकुमार जी म० के शिष्य श्री रामनिवास जी म० का माधोपुर विशेष विचरण-क्षेत्र रहा है। पूज्य हुकमीचन्द जी

---

१ इस लेख के लेखक आचाय श्री हस्तीमल जी म० सा० इन्ही के शिष्य हैं। आप वतमान मे इस परम्परा के आचार्य हैं। आपकी प्रेरणा से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के अन्तगत स्वाध्यायी सघ नैतिक शिक्षण और धम जागरण का अच्छा काय कर रहा है। आपकी ही प्रेरणा से गठित अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति ने जीवन को सयमित, सस्कारी और व्यसन-मुक्त बनाने की दिशा मे सराहनीय काय किया है। वतमान मे इस परम्परा में प० श्री लक्ष्मीचन्द जी म० ने स्थानकवासी परम्परा के कवियो पर अच्छा काय किया है। साध्वी श्री मैनासुन्दरी जी ओजस्वी व्याख्याता हैं। —सम्पादक

म० की परम्परा मे पूज्य श्री लाल जी म० परम विरागी वाल-ब्रह्मचारी आचार्य थे। इन्हो राजस्थान मे धर्म की अच्छी प्रभावना की। इस परम्परा के पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म० सा० ने राजस्थान के राजा-महाराजाओं मे अच्छी धर्म-प्रभावन की। मेवाड के महाराणा फतेहसिंहजी एवं भूपालसिंहजी आपके भक्त थे। वर्तमान श्रमण सघ उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म० इसी परम्परा से सम्बन्ध थे। वर्तमान में आचार्य श्री नानालाल ज म० की प्रेरणा से वलाई जाति मे सस्कार-शुद्धि का प्रभावशाली कार्य हो रहा है।

स्थानकवासी सन्तो के धर्माचार की विशेषता यह थी कि ये जातिवाद से दूर, शास्त्रानुकू १२ कुल की गोचरी और सब लोगो को उपदेश देते। जो लोग वहिष्कार करते वे भी धीरे-धीरे त्याग तप से प्रभावित हो, अनुयायी होने लगे। ये लोग बाजार की हट्टो, नगरद्वारों और छतरियो में निर्भ हो सार्वजनिक धर्म-उपदेश करते और घोर तप एव आतपन से अपने विरोधियों के दिल जीतते इन्होने कइयो से चर्चाएं भी कीं और बोध दिया। आजकल लाखो लोग इस परम्परा के मानने वा विद्यमान् है।



२० | राजस्थान मे तेरापथ सम्प्रदाय का अभ्युदय

●

मुनि नथमल

विक्रम की उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध (सवत् १८१७) मे एक विचार क्रान्ति घटित हुई। फलस्वरूप प्राचार्य भिक्षु की प्रतिभा ने तेरापथ को जन्म दिया। उस समय पूज्य रघुनाथजी स्थानकवासी परम्परा के सुप्रसिद्ध प्राचार्य थे। सत भीखणजी उनके पास दीक्षित हुए। कुछ विचार-भेद के कारण वे उस परम्परा से मुक्त हो गए। उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति, अनासक्ति विरक्ति, तपस्या और चतुर्मुखी प्रतिभा से जनता आकर्षित हुई। तेरापथ का उद्भव हो गया।[1]

जैन धर्म की दो मुख्य शाखाएँ—श्वेताम्बर और दिगम्बर पहले से प्रचलित थीं। श्वेताम्बर शाखा मे सवेगी और स्थानकवासी ये दो प्रशाखाए थीं। तेरापथ के उद्भव के बाद तीन प्रशाखाए हो गई। शाखा प्रशाखा का होना विकास का स्वाभाविक क्रम है। मेरी दृष्टि मे शतशाखी वृक्ष विशाल और रमणीय होता है। तेरापथ ने जैन परम्परा की विशालता और रमणीयता मे वृद्धि की है। आचार्य भिक्षु ने जिस सगठन की स्थापना की उसकी अपनी कुछ मौलिक विशेषताए हैं। उसकी तीन मुख्य आधार शिलाए हैं—निष्कर्म, हृदय-परिवर्तन सापेक्षता।

निष्कर्म

शरीर-धारणा के लिए कर्म की अनिवार्यता है। शुद्ध चेतना के जागरण के लिए निष्कर्म की अनिवार्यता है। कर्म और निष्कर्म का सन्तुलन ही धर्म का मर्म है। कोरा कर्म होता है, वहा स्पर्धा और सघर्ष के स्फुलिंग उछलते हैं। कोरा निष्कर्म होता है, वहां सघ नहीं होता, परम्परा नहीं होती। परम्परा, सघ और साधना तीनो की सर्मन्विति के लिए कर्म और निष्कर्म दोनो की सर्मन्विति अपेक्षित है। आचार्य भिक्षु ने स्पर्धा और सघर्ष के वातावरण को देख निष्कर्म को प्रधानता दी। इसीलिए उनके अध्यात्मवादी या निवृत्तिपरक विचारो को समझने मे कुछ कठिनाइयां

---

१ प्रारम्भ मे श्री भिक्षुगणी अपने साथी साधुओ सहित १३ की सख्या मे थे। राजस्थानी भाषा में तेरह को तेरा कहा जाता है। इस दृष्टि से यह पथ तेरापथ नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाद मे आचार्य भिक्षु ने इसे आध्यात्मिक अर्थ देते हुए कहा—हे प्रभो! यह तेरा अर्थात् तुम्हारा ही पंथ (रास्ता) है। दूसरा अर्थ उन्होने यह लगाया कि पाच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति, इस तरह नियमों का जो पालन करे, वह तेरापथ। —सम्पादक

हुई थी। आचार्य भिक्षु ने आचार्य कुंदकुंद की आध्यात्मिक परम्परा को नए सन्दर्भ मे उज्जीवित किया। स्थूल व्यवहार के स्तर पर चलने वाले लोग उसकी गहराई तक नही पहुँच सके। उन्हे यह धारा व्यवहार का उन्मूलन करने वाली लगी। इसलिए उसका विरोध भी हुआ। किन्तु सचाई यह है कि आचार्य भिक्षु ने तेरापथ के माध्यम से अध्यात्म की तर्कशुद्ध पद्धति प्रस्तुत की। सुप्रसिद्ध विद्वान डा० शतकरी मुकर्जी ने एक प्रसग मे कहा—'आचार्य भिक्षु मारवाड़ मे जन्मे, यदि वे जर्मनी मे जन्मे होते तो उनका दर्शन कांट से कम महत्त्व का नही होता।'

आचार्य भिक्षु ने निष्कर्म को केवल सैद्धान्तिक रूप मे ही प्रतिष्ठित नही किया। उसे व्यवस्था के स्तर पर भी प्रतिष्ठा दी। कर्म की बहुलता कामना की बहुलता से जुडी रहती है। निष्काम और निष्कर्म अलग-अलग नही होते। निष्कर्म होगा, वहां निष्काम होगा और निष्काम होगा, वहां निष्कर्म होगा। 'पद के लिए उम्मीदवार नही बनूंगा'—यह व्यवस्थासूत्र निष्कर्म और निष्काम दोनो की फलश्रुति है। पद कार्य के लिए है, सेवा के लिए है, प्रतिष्ठा के लिए नही है—इस सिद्धान्त के आधार पर तेरापथ के चतुर्थ आचार्य श्री जयाचार्य ने पद के समर्पण की व्यवस्था की। 'अग्रणी साधु-साध्वी चातुर्मास के बाद आचार्य के पास आये तब पद का समर्पण करदें'। इस व्यवस्था के अनुसार लगभग सवा सौ अग्रणी साधु-साध्विया आचार्य के पास उपस्थित होते ही इस व्यवस्था को दोहराते है—'मैं, मेरे सहगामी साधु (या साध्वी) तथा पुस्तकें आपके चरणो में प्रस्तुत हैं, आप जहा रखेंगे, वही हम रहेंगे। यह समर्पण या ममकार-विसर्जन की अन्तः प्रेरणा तेरापथ को नई शक्ति और नई स्फूर्ति प्रदान करती है।

हृदय–परिवर्तन :

आचार्य भिक्षु ने यह स्वीकार किया कि साध्य और साधन दोनो की शुद्धि हुए विना धर्म नही हो सकता। इस सिद्धान्त की व्याख्या मे हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त विकसित हुआ। हृदय-परिवर्तन के लिए विराट् प्रेम का होना जरूरी है। जिसके हृदय मे क्रूरता छिपी रहती है, वह हृदय-परिवर्तन करने मे सफल नही होता।

गोकुलदास नानजी भाई गाधी ने लिखा है कि आचार्य भिक्षु का साध्य-साधन की शुद्धि और हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त बीज श्रीमद्रायचन्द्र के पास पहुंचा और श्रीमद् के माध्यम से वह महात्मा गाधी तक पहुचा। मेरी दृष्टि मे साधन शुद्धि पर आचार्य भिक्षु और महात्मा गाधी ने जितना विशद चिंतन किया है, उतना अन्य चिंतको ने नही किया।

आचार्य भिक्षु ने सघ का विधि-पत्र लिख साधुओ की स्वीकृति के लिए उनके सामने प्रस्तुत कर दिया। उन्होंने कहा—'जिन्हें इन मर्यादाओ मे विश्वास हो, वे इस विधि-पत्र को अपनी स्वीकृति दें और जिन्हे विश्वास न हो, वे सकोचवश इसे स्वीकार न करें।' यह हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त सर्वत्र मान्यता प्राप्त कर चुका है। वैचारिक परिवर्तन राजनीतिक परिवर्तन से अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

सापेक्षता :

जैन धर्म मे सामुदायिक साधना की पद्धति बहुत पहले से मान्य है। इसीलिये जैन परम्परा मे सघ का बहुत महत्त्व रहा है। आचार्य भिक्षु ने इस महत्त्व का मूल्यांकन किया और सापेक्षता के

आधार पर सघ की व्यवस्था की। तेरापथ की साधु-सस्था ने सेवा के क्षेत्र से अनेक कीर्तिमान स्थापित किये। समता और सापेक्षता एक-दूसरे के पूरक हैं। तेरापथ ने अपनी व्यवस्था मे समता को इतना विकसित किया कि उसे जानकर श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा था—'तेरापथ की सघ-व्यवस्था मे सवा सोलह आना समाजवाद है।' धर्म का मूल समता है। भगवान् महावीर ने इसे सर्वाधिक महत्त्व दिया था। यह कटु सत्य है कि श्रावक समाज ने इस व्यवस्था का अनुगमन नहीं किया।

आचार्य भिक्षु की वाणी अनुभव की वाणी थी। उन्होने अनेक ग्रन्थ लिखे। वे राजस्थानी साहित्य के गौरव ग्रन्थ हैं। उनके चतुर्थ उत्तराधिकारी जयाचार्य ने लाखो पद्य लिखे। उनका गद्य साहित्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। आचार्य तुलसी और उनके शिष्य मण्डल ने अनेक रचनाए की हैं। उन्होने साहित्य जगत् को प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी म अनेक ग्रन्थ दिये हैं। एक साथ इतनी बडी सख्या में साधु-साध्वियो की साहित्यिक प्रतिभा का विकसित होना कोई नियति का योग ही है।

अणुव्रत आन्दोलन

आचार्य भिक्षु ने धर्म की व्यापकता स्वीकार की। भगवान् महावीर की वाणी के आधार पर उन्होने कहा—धर्म वेशातीत और सम्प्रदायातीत है। इस स्वीकृति ने तेरापथ के वर्तमान नवम् आचार्य,[1] आचार्य तुलसी को अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तन की प्रेरणा दी। अणुव्रत आन्दोलन किसी सम्प्रदाय और उपासना पद्धति से आबद्ध नही है। वह शुद्ध अर्थ मे धर्म की आचार-सहिता है। वह सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। इस आन्दोलन ने धर्म समन्वय के मच की भूमिका निभाई है और सब सम्प्रदायो के लोगो ने इसे अपनाया है।

अनुशासन का प्रतीक मर्यादा महोत्सव

तेरापथ के आचार्य अनुशासन को अत्यधिक महत्त्व देते रहे हैं। उनके अनुसार अनुशासन-युक्त सघ ही वास्तव मे सघ होता है। जो अनुशासनयुक्त नही होता, वह कोरा अस्थियो का ढेर मात्र होता है। तेरापथ के श्रमण श्रमणी सघ ने भी अपनी अनुशासन प्रियता के द्वारा सघ को शक्तिशाली बनाया है। प्रति वर्ष चातुर्मास के बाद आचार्य के पास आना, मर्यादाओं का पुनरावर्तन करना और आचार्य के निर्देशानुसार पुन विहार करना—समर्पण के सजीव चित्र हैं, जो भाग्य से ही किसी विरल सगठन की भित्ति पर आलेखित होते हैं। तेरापथ विक्रम सवत् १८२० से प्रति वर्ष मर्यादा का महोत्सव मना रहा है।

अध्यात्म ज्योति

अनुशासन यत्र है। यह व्यक्ति की चेतना को नियत्रित कर अन्तर की ज्योति को आवृत्त कर देता है। व्यवहार की भूमिका मे उसका मूल्य हो सकता है पर सत्य की भूमिका पर उसे मूल्य

---

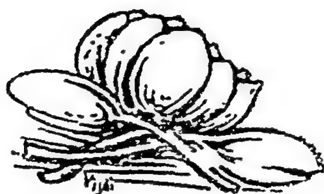
१ नौ आचार्यों का क्रम इस प्रकार है—
१ श्री भिक्षुगणी, २ श्री भारमल स्वामी, ३ श्री रायचन्द स्वामी, ४ श्री जीतमल स्वामी (जयाचार्य) ५ श्री मघवागणी, ६ श्री माणकगणी, ७ श्री डालगणी, ८ श्री कालूगणी, ९ श्री तुलसीगणी —सम्पादक

प्राप्त नहीं होता। वहां मूल्य होता है अन्तर्मुखी वृत्ति का, जो अनुशासन को आंतरिकता प्रदान करती है। आचार्य श्री तुलसी ने अध्यात्म साधना (या योग साधना) के विकास की दिशा में कुछ विशिष्ट प्रयत्न किए हैं। जैन परम्परा में ध्यान के नये उन्मेष लाने में, ये प्रयत्न बहुत मूल्यवान होंगे।

कला-कौशल :

'सत्य' हमारे अन्तर मे होता है, 'शिवं' हमारे परिपार्श्व में होता है और 'सुन्दरं' हमारे कार्य मे अभिव्यक्त होता है। कोई भी संगठन परिपूर्ण नही होता। विश्व की कोई भी रचना पूर्ण नही होती। अपूर्णता से पूर्णता की दिशा में बढने का प्रयत्न ही 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की उपलब्धि है। तेरापंथ के साधु-साध्वी समाज ने कला के क्षेत्र में विशेष प्रगति की है। सूक्ष्माक्षर की लिपि, सिलाई, रंगाई, धर्मोपकरणो का निर्माण—इन्हे आध्यात्मिक मूल्य न दिया जाय, फिर भी एकाग्रता और कौशल का मूल्य अवश्य दिया जायगा।

हमने सत्य के पक्ष में आध्यात्मिक और संगठन के पक्ष में व्यावहारिक जीवन जीना स्वीकार किया है, इसलिये हमारे संघ ने दोनो क्षेत्रो में समन्वित गति की है। तेरापंथ का विकास राजस्थान के लिए गौरव और जैन परम्परा के लिये महत्त्वानुभूति का विषय है। कोई भी तटस्थ इतिहासकार इस वास्तविकता को स्वीकृति दिये विना रह नही सकता।



तृतीय खण्ड



राजस्थान का सांस्कृतिक विकास
और
जैनधर्मानुयायी

२१ | राजस्थान मे जैन-धर्म की सास्कृतिक भूमिका

०

श्री रावत सारस्वत

नया चिन्तन नया बोध

ब्राह्मण धर्म की रूढिग्रस्तता ने जब दर्शन और धर्म के क्षेत्र मे नये चिन्तन को प्रेरणा दी तब सागर मथन म उद्भूत रत्नो की भाति भ० महावीर का तत्व चिन्तन एक क्रातिकारी विचार के रूप मे प्रकट हुआ जिसन भारतीय समाज की गुणग्राह्यता को आकृष्ट किया और समाज की वरिष्ठतम स्थितियो क विभिन्न समुदाय उस नव्य धारा मे दीक्षित हुए ।

प्राय इसी समय से राजस्थान मे जन धर्म का प्रसार रहा है । कालक्रम से राजस्थान की ऐतिहासिक घडियो के साथ जन धर्मावलम्बियो के सम्बन्ध खोजने के प्रयत्न किये जा सकते हैं । पर गुप्तकाल से पहिले की ऐतिहासिक सामग्री अत्यल्प मात्रा मे मिलने के कारण ऐसे प्रयास मे विशेष सफलता मिलना दुष्कर है फिर भी लगभग आठवी-नवी शताब्दी मे इस निरन्तर साहचर्य के साक्ष्य प्रचुर मात्रा में प्राप्य हैं ।

प्राच्य ग्रथागार

जन-धम के सास्कृतिक वभव की स्थूल सिद्धियां तो हमारे वे प्राच्य ग्रथागार हैं, जहां प्राकृतिक और मानवी दोनो प्रकार के आक्रमणो से सुरक्षित कर, जैन पडितों ने उपाश्रयों, मन्दिरों आदि मे इस अति महत्वपूर्ण साहित्य को छिपाये और सभाले रखा । इनके साथ हा व जन मूर्तियां, देवालय और धातु तथा शिलाओ पर उत्कीर्ण काल लिपियां भी हैं जो राजस्थान के इतिहास और सस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं । विशेषत जसलमेर, जालोर, बीकानर, आमेर और अन्य अनेक प्राचीन नगरों, कस्बों तथा गाँवों मे—जहां-जहां किसी श्रद्धालु जैन धर्मी का निवास था अथवा किसी विद्या-व्यसनी जैन मुनि का विहार-स्थल रहा, वहां-वहां इन विशाल हस्तलिखित भण्डार की रत्नावलियां

सुरक्षित रूप से प्राप्य है। सच पूछें तो शायद ही कोई ऐसा जैनधर्मियो का गांव रहा हो जहाँ कुछ-न-कुछ मात्रा मे जैन साहित्य और जैन संस्कृति के अन्य उपादान नही प्राप्य हों।

देवमूर्तियां और कलाप्रियता :

आबू, राणकपुर, नाकोड़ाजी, ऋषभदेव, श्रीमहावीरजी, सांगानेर, आमेर, राजोरगढ़, जयपुर, लाडनूं, बीकानेर, जैसलमेर, सिरोही, जालोर आदि अनेकानेक ऐतिहासिक स्थलो पर और कालोपेक्षित सहस्रो खण्डहरों मे जैन देवालय और देव मूर्तियां प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हैं। यह बडी प्रसन्नता का विषय है कि जहाँ-जहाँ जैन देवालय हैं उन्हें विधिपूर्वक और रख-रखाव से संभाला और सुरक्षित किया गया है। इसी प्रकार अनगिनत देवमूर्तियां भी प्रतिष्ठा प्राप्त की हुई पूजित और अर्चित हैं।

प्रायः सुनने और देखने में आता है कि खुदाई आदि के समय भूमिगत जैन मूर्तियां प्रकट होती हैं और उन्हे देवोचित प्रतिष्ठा के साथ देवालयों में समारोह पूर्वक आसीन किया जाता है। स्पष्ट है कि इन मूर्तियो को भावनाशील एवं श्रद्धालु धर्मावलम्बियो ने आततायियो के भय से, क्षति-ग्रस्त होने से बचाने के उद्देश्य से, स्वयं भूमिगत किया होगा। अन्य देवालयो मे विध्वस्त और विकृत मूर्तियों को देखने से इस धारणा मे संदेह का कोई भ्रम नहीं रह पाता।

ग्रंथागारो, मूर्तियों और देव भवनो के संगठन और निर्माण के साथ-साथ जैन धर्मावलम्बियो ने अपने भौतिक बल-वैभव और कलाप्रेम के कारण बडे-बडे भव्य भवन, उद्यान, तड़ाग, बावडियां और अनेक अन्य विहार-स्थल भी खडे किए। जैनेतर साहित्य और कलाओ को भी उनका प्रश्रय मिला—ऐसे दृष्टान्त कम मात्रा मे नही है।

धर्म-श्रवण और तीर्थयात्रा :

एक और उल्लेखनीय तथा अति महत्त्वपूर्ण पक्ष जीवन पद्धति से सम्बन्धित है, जिसमे जैनाचार्यो के नियमित धर्मोपदेशो के प्रभाव से श्रावक समाज और सभी अवस्था के नर-नारियों का तप-नियम-सयम की प्रक्रिया के साथ गतिशील होना प्रमुख है। जिस समाज मे वीतराग व्यक्तियो का सम्मान और उनके ज्ञान एवं अनुभव से लाभान्वित होने की भावना होती है, वह समाज कभी भी अध.पतन के कगारो की ओर नही जा सकता। यही कारण है कि भौतिक प्राप्तियो मे लिप्त रहते हुए भी जैन धर्मावलम्वी आज भी अपेक्षाकृत रूप से अधिक वैभव सम्पन्न और सुसस्कृत तथा सुखी हैं। इस सारी स्थिति के पीछे परोक्ष रूप से इस प्रवचन-श्रवण और साधुओ के प्रति सम्मान की परम्परा भी एक मुख्य कारण है। मनुष्य, जो कुछ निरंतर सुनता है, पढ़ता है, वही उसके मस्तिष्क के अर्द्ध-चैतन्य क्षेत्रो में समाकर, उसे अज्ञात रूप से प्रेरित करता है। इसलिए सुनने और पढ़ने का महत्त्व चिन्तन-मनन तथा क्रिया-प्रक्रिया की सारी गलियो मे व्याप्त हो जाता है।

ऋषि, मुनि एवं देव दर्शनार्थ तीर्थ यात्रा को जो धार्मिक महत्त्व प्रायः सभी धर्मों में दिया

गया है, उसकी परम्परा में जैन धर्म भी पीछे नहीं है। सैकड़ों वर्षों के उपाख्यानों तथा यात्रा विवरणों से इन जैन यात्रा संघों की जानकारी मिलती है। इन साहसपूर्ण यात्राओं के वर्णन बड़े मनोरंजक हैं।

साहित्य, संगीत और ज्ञान-विज्ञान

लोक भाषा, साहित्य और संगीत को प्रोत्साहित और प्रवर्द्धित करने का सराहनीय कार्य भी जैनों के द्वारा सम्पन्न हुआ। धार्मिक प्रवचनों को लोक तक पहुंचाने के लिए लोक द्वारा सहज बोधगम्य भाषा का माध्यम अपनाने की व्यावहारिकता जैन धर्माचार्यों की सूझ थी। संस्कृत की जकड़ी हुई रूढ़ियों में फँसे पंडित अपने ज्ञान को हवा महलों में ही समेट कर उसे पांडित्य प्रदर्शन और साधन सुविधा सम्पन्न लोगों तक ही सीमित बना पाये। संस्कृत-ज्ञान को जन साधारण तक पहुंचाने के लिए भाषा सरिता की नई धाराओं में अवगाहन नहीं किया गया। जैन आचार्यों ने न केवल लोक भाषा को अपनाया और उसमें प्रवचन व साहित्य सृजन किया, अपितु उन्होंने लोक साहित्य की सामग्री और लोक गीतों की धुनों को आधार बनाकर भी हित-साधन किया। ऐसे भूले बिसरे लोक गीतों की हजारों धुनें जैन साहित्य में ढालों के रूप में सुरक्षित हो गई हैं। इन सबसे हमारी सांस्कृतिक परम्परा के पद चिह्न विगत काल के अंधकार में भी सरलता से पहिचाने जा सकते हैं।

साहित्येतर विद्याओं में भी आयुर्वेद, ज्योतिष तंत्र मंत्र, इतिहास, संगीत, भूगोल, भाषा तथा अन्य अनेक विषय भी जैन विद्वानों द्वारा समुन्नत और प्रबुद्ध होते आये हैं। तत्कालीन समाजों के अविच्छिन्न और उपादेय घटकों के रूप में जैन-धर्म के विविध समुदाय सदैव अपना योगदान करते रहे हैं। उनकी इसी सक्रिय रुचि का परिणाम है कि विभिन्न विषयों में उनकी गति रहती आई है।

साक्षरता और ज्ञान विज्ञान के प्रचार-प्रसार के पुनीत कार्य में तो शायद ही कोई दूसरा वर्ग हो जिसने इतनी सेवायें की हों। नियमित स्वाध्याय, हस्तलिखित पुस्तकों की प्रतियों का लेखन, अध्यापन, प्रवचन आदि बातें इस दिशा में अनुकरणीय कही जा सकती हैं जो सैकड़ों वर्षों से बिना व्यवधान के चली आई हैं।

राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रसमृद्धि :

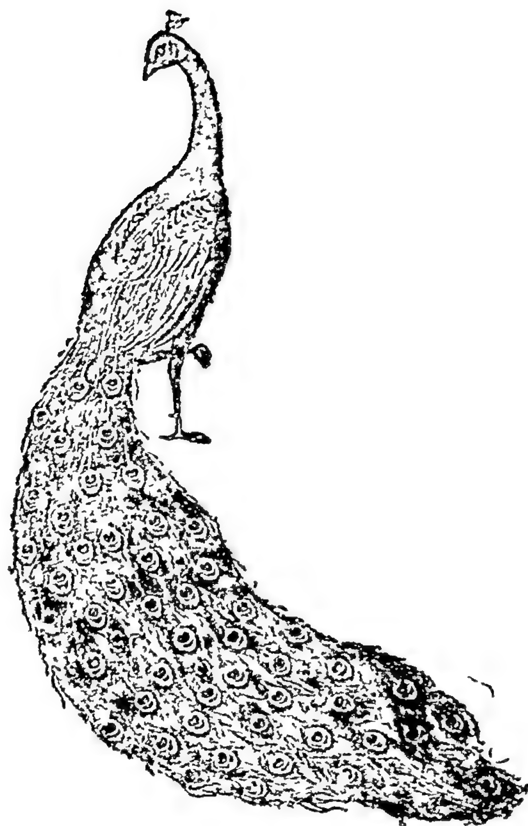
जैन समाज के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति बहुसंख्यक भूतपूर्व रियासतों में समय-समय पर दीवानगी तथा अन्य उच्च एवं महत्वपूर्ण पदों पर आसीन रहे हैं। उन्होंने तत्कालीन नरेशों को अपने बुद्धि-कौशल एवं व्यवहार चातुर्य से राज्य-संचालन में मदद दी है। राज्य के द्रव्य संबंधी संकटों में तो उनका सहयोग सदैव सराहनीय रहा है। इसके साथ ही तत्कालीन धर्माचार्यों ने भी देशी राज्यों के हित में मुगल सम्राटों तक को प्रभावित किया है, जो एक सर्वज्ञात तथ्य है। राजपूतों के ही मुख्य मोक से धर्म परिवर्तित कर जैन बनने वाले अनेक जैन परिवारों ने युद्धों में भी अपना कौशल दिखाया है और अनेक लड़ाइयों में विजय प्राप्त की है।

इस प्रकार जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जैन समाज का योगदान उल्लेखनीय कहा जा सकता है। जहां तक उद्योग-व्यवसाय का संबंध है, यह तो उनकी बपौती ही रही है। बहुसंख्यक जैनों के

कारण देशी राज्यो मे समृद्धि का दौर दौरा बना रहा है। सोने-चांदी और जवाहरात का धंधा करने वाले धनी सेठ प्रायः इसी समाज के रहते आये हैं।

सांस्कृतिक सौष्ठव :

जीवन के शाश्वत सत्य को पहिचानने और उसे काम मे, व्यवहार मे, वचन में और लक्ष्यो में समादृत और समाहित करते रहने का जो कार्य जैन-धर्म ने निस्पादित किया है, वह किसी भी धर्म के लिए एक आदर्श है। राजस्थान की धरती की गंध लिए, यहा के सांस्कृतिक सौष्ठव की सभी विशेषताओ के साथ जैन-धर्म ने राजस्थान मे एक ऐसी सांस्कृतिक भूमिका का निर्वाह किया है, जो हर युग मे चिरस्मरणीय रहेगी।





पुरातत्त्व और कला

२२ | जैन मूर्तिकला

•

डॉ० रत्नचन्द्र अग्रवाल

पिछले २५ वर्षों मे पुरातात्विक शोध, खोज एव खनन द्वारा राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला पर पर्याप्त प्रकाश पडा है। बीकानेर क्षेत्र मे सिन्धु सभ्यता से सम्बद्ध कई स्थान खोजे गये। इनमे कालीबगा के प्राचीन टीले मे प्राप्त मूर्तिया बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस युग की कोई जैन प्रतिमा अभी तक नही मिली है। यह स्थिति बाद मे भी दिखाई देती है। अजमेर क्षेत्र मे "बरली" के ईसा पूर्व के शिलालेख के विषय मे कुछ विद्वान यह धारणा रखते हैं कि यह भगवान् महावीर के निर्वाण के ८४ वर्ष बाद का था, जबकि कुछ लोगो की यह धारणा है कि इसमे ८४ खम्भो वाले भवन का उल्लेख किया गया है।

इसके बाद की शु ग-कुषाण या गुप्तयुगीन कोई जैन मूर्ति राजस्थान म कहीं भी उपलब्ध नही हुई है। इससे यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता है कि उस समय इस प्रदेश मे प्रतिमायें अविद्यमान थी। सम्भवत भावी शोध खोज द्वारा इस दिशा मे कुछ प्रकाश पड सके।

उदयपुर जिले मे "जगत' नामक ग्राम से हमे शिर विहीन मातृका की एक मूर्ति मिली थी जिसे उदयपुर सग्रहालय म तुरन्त सुरक्षित कर दिया गया। यहा मातृका के दाहिने हाथ म आम्रलुम्बि है व बाए हाथ से शिशु गोद म पकड रखा है। ये दोना अभिप्राय जैन देवी अम्बिका म देखने को मिलते हैं यद्यपि जगत ग्राम की इस मूर्ति म कोई ऐसा चिन्ह उपलब्ध नही है जिसके कारण इस जैन सज्ञा दी जा सके। यह मूर्ति छठी शताब्दी ईसवी म बनी होगी।

धातु मूर्तिकला

गुजरात से इसी समय की कतिपय जैन धातु प्रतिमायें मिली हैं जो बडौदा सग्रहालय की शोभा बढा रही हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि निकट भविष्य म राजस्थान से भी तत्कालीन प्रतिमायें मिल जावें। तारानाथ ने मरु प्रदेश के कलाविद "शृ गधर" का उल्लेख किया है जो महाराज शीलादित्य का आश्रित था। इस श्रुति के आधार पर पश्चिम राजस्थान मे कला-कौशल की जानकारी मिलती है।

सिरोही जिले मे 'वसन्तगढ़-पिण्डवाडा' नाम के स्थान पर कई जैन धातु प्रतिमाये मिली थी जो भारतीय शिल्प की अनुपम थाती सिद्ध हो रही हैं। इनमें शारदा सरस्वती की मूर्ति बहुत भव्य है जहां देवी के मुकुट के मध्य मे सूर्य का चक्र बना है व बाजू मे मकराकृतियां लम्बी नाक, चौड़ा माथा, मोटे होठ, लम्बी आंखे मूर्ति की शोभा बढ़ाने मे पूर्णतया समर्थ हैं। यह जैन मूर्ति अंकोटा से प्राप्त सरस्वती प्रतिमा की तुलना में किसी भी प्रकार कम आकर्षक नही है। कला सौष्ठव की दृष्टि से यह ईसा की सातवी शती मे बनी होगी।

सम्वत् एवं अभिलेख सहित अन्य जिनाकृति तो बहुत अलौकिक हैं। यह भी वसतगढ़ से मिली थी। कायोत्सर्ग मुद्रा मे खडे हुये जिन भगवान की चरण चौकी पर सम्वत् ७४४ का लेख खुदा है जिसमे यह स्पष्ट अंकित है कि इन दो पवित्र जिनाकृतियो के निर्माण का श्रेय शिल्पी 'शिव-नाग' को प्राप्त है जो साक्षात् पितामह अर्थात् ब्रह्मा समान कुशल था। इसी के साथ एक अन्य मूर्ति मिली है जो कायोत्सर्गमुद्रा स्थित भगवान आदिनाथ की है जिनके सिर पर घुंघराले बाल हैं जो कन्धों पर लटक रहे है। ये दोनो धातु मूर्तिया ईसा की ७वी शती की कला की साक्षी है व राजस्थान के जैन कला कौशल का बखान करती है। इस वर्ग की अन्य प्रतिमाये आज भी सिरोही मे सुरक्षित है।

राजस्थान मे जैन धातु मूर्तिकला को पर्याप्त प्रश्रय मिला। पूर्व मध्य, मध्य एवं उत्तर मध्य युग मे तो बहुत सी जैन मूर्तिया बनी जो आज राजस्थान के कोने-कोने मे पूजान्तर्गत है। अहाड़, बीकानेर व जोधपुर के राजकीय संग्रहालयो मे सुरक्षित जैन मूर्तियां भी इस दिशा मे उल्लेखनीय हैं। इन प्रारम्भिक मूर्तियो मे चौकी पर ग्रह सख्या आठ होती थी जो कालान्तर मे 'नौ' होने लगी। ईसा की १५वी शती मे डूंगरपुर नगर का तो जैन मूर्ति निर्माण मे बहुत योगदान रहा। अचलगढ़ दुर्ग पर इस समय की बनी कई विशाल धातु मूर्तियां पूजान्तर्गत है जिनके शिलालेखो द्वारा उनके शिल्पी बन्धुओ का भी उल्लेख मिलता है।

जोधपुर नगर से ३४ मील दूर 'ओसिया' ग्राम के प्राचीन मन्दिर सर्व प्रख्यात हैं। इनमे ८वी शती ईसवी का महावीर मन्दिर प्रतिहार 'वत्सराज' के राज्य काल मे बना था। इसके बाह्य भाग की प्रतिमाये पर्याप्त मात्रा मे बची हैं जिनमे एक मूर्ति 'चक्रेश्वरी' की भी है। अभी हाल मे जीर्णोद्धार कार्य द्वारा यहां कई जिनाकृतियां खुदाई से निकली है जो स्थानिक जैन विद्यालय के स्टोर मे रखी हैं। इनमे दो जीवत स्वामी की है।

गत वर्ष भरतपुर नगर के पास "कुम्हेर" नामक ग्राम से भी चक्रेश्वरी की भव्य मूर्ति मिली थी जो वहा तहसील कार्यालय मे सुरक्षित करदी गई है। जोधपुर मे ही 'घपियाला' ग्राम का नाम सम्वत् ६१८ के शिलालेख में 'रोहिसक्त' मिलता है। यहां 'खोखी माता की साल' का निर्माण प्रतिहार नरेश द्वारा कराया गया था। इसकी ताक मे प्राकृत भाषा का महत्त्वपूर्ण शिलालेख जड़ा है जिनके एक ओर सिंहारूढ अम्बिका की आकृति बनी है। राजस्थान की अम्बिका देवी मूर्तियो मे यह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इसी प्रकार डीडवाना से प्राप्त काले पत्थर की बनी विष्णु मूर्ति भी उल्लेखनीय है जहा चतुर्बाहु देव पद्मासन मे विराजमान हैं उनके नीचे के दोनो हाथो मे वनमाला है। ऐसी ही एक

प्रतिहार युगीन मूर्ति ग्रावानेरी' स्थल पर भी पडी है। यहा विष्णु के हाथो म शख चक्र, गदा व पद्म का सवथा ग्रभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि जन विचार धारा के प्रभाव मे विष्णु की ऐसी ध्यानस्थ मूर्तिया राजस्थान मे बनाई गई थी जो हर वग के ग्रनुयायियों द्वारा पूजी जाती हो। यह सब सम-वय का सूचक है। मारवाड के एक मध्यकालीन शिलालेख में ब्रह्म श्रीधर-शकरा ये जिन जगति विश्रुत' द्वारा भी यह स्पष्ट है। यहा ब्रह्मा विष्णु व महेश को 'जिन' सज्ञा प्रदान की गई है। विविधता मे एकता का भाव यहा स्पष्टरूपेण झलकता है।

सच्चिका देवी

इसी शृ खला मे यह भी स्मरणीय है कि ईसा की १२वी शती मे राजस्थान के जैन ब-धु महिषमर्दिनी दुर्गा को 'सच्चिका' देवी के नाम से पूजते थे। कुछ वर्ष पूव हमे जोधपुर सग्रहालय मे ऐसी सगमरमर की मूर्ति देखने को मिली थी जिसकी चौकी पर सम्वत् १२३४ का लेख खुदा था। इसमे देवी महिषमर्दिनी को सच्चिका सम्बोधित कर यह बताया गया कि इसकी प्रतिष्ठा एक जैन साध्वी द्वारा की गई थी। 'ग्रोसिया' ग्राम के प्रख्यात सचियामाता मन्दिर के गभगृह मे ग्राज भी महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति जन ब-धुग्रो द्वारा पूज्य है। इसके पीछे की ताका मे चामुण्डा चण्डी-भैरव शीतला की मूर्तियो के ग्रतिरिक्त प्रधान ताक मे महिषमर्दिनी की प्रतिमा जडी है, जिसके नीचे सम्वत् १२३७ का शिलालेख यह बताता है कि देवी का नाम 'सच्चिका' था। उपकेश गच्छ पट्टावलि नामक ग्र-थ मे भी इसका सविस्तार वणन उपलब्ध है कि किस प्रकार जैनाचाय रत्नप्रभसूरि ने हिंस देवी को 'सच्चिका' सज्ञा प्रदान कर जैन धम की ग्रोर प्रेरित किया था। 'लोदरवा (जसलमेर) के जैन मन्दिर मे पूजान्तर्गत एक गणेश प्रतिमा की चौकी के शिलालेख मे भी सच्चिका-पूजन का उल्लेख किया गया है। इस दृष्टि से ग्रोसिया व जोधपुर सग्रहालय की सच्चिका की प्रतिमायें भारतीय शिल्प की महत्त्वपूर्ण निधिया हैं। ग्रोसिया का सचियामाता मन्दिर तो ग्रोसवाल बन्धुग्रो का इष्ट स्थल है।

कला सौष्ठव

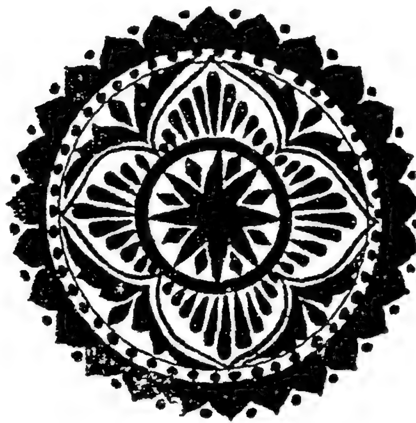
जैन कला सौष्ठव की दृष्टि से मारवाड मे 'घाणाराव' से ३ मील दूरस्थ राता महावीर' का १०वी शती का जिनालय विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। इसके बाह्य भागो पर जडी हुई विद्यादेवी व ग्र-य जन मूर्तिया देलवाडा, ग्राबू की तुलना मे किसी भी प्रकार कम ग्राकपक नही हैं। ग्राबू के मन्दिर मे एक शिला पर दो शिल्पी सरस्वती शारदा के दोना ग्रोर नमस्कार मुद्रा म खडे दिखाई देते हैं। दोनो ही सरस्वती के ग्रमर उपासक थे। इन कुशल कारीगरो द्वारा ही राजस्थान मे ग्राबू के मन्दिर का निर्माण हुग्रा था। दूसरी ग्रोर पाली जिले मे १५वी शती मे महाराणा कुम्भा के राज्य काल मे चतुमु ख प्रासाद का निर्माण राणकपुर मे हुग्रा था जो ग्राज भी जन शिल्प का ग्रनुपम भण्डार है।

राजस्थान के भरतपुर क्षेत्र से 'सवतोभद्र' ग्रादिनाथ की दिगम्बर मूर्ति विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। इसमें 'समवसरण विधि' के ग्रनुपम जटाधारी ग्रादिनाथ भगवान को ही चारो ग्रोर प्रदर्शित किया है जो राजस्थान की पूव मध्ययुगीन कला की महत्त्वपूर्ण देन है। ग्रब यह मूर्ति भरतपुर सग्रहालय म सुरक्षित है। इसी प्रकार प्रताप सग्रहालय उदयपुर की कु बेर मूर्ति महत्त्वपूर्ण है जो ईसा की ८वी ६वीं शती की कृति है। यह 'पारेवा' पत्थर को उकेर कर बनाई गई है। यहा कुम्भोदर कुबेर

के पीछे गजवाहन विद्यमान है । उनके दाहिने हाथ मे विजौरी फल व बाये मे नकुलाकृति वाली रुपयो की थैली है जिसे नोली कहा जाता है । कुवेर के शीर्ष मुकुट के बीच लघु जिनाकृति व उसके भी ऊपर एक अन्य लघ्वाकृति से इस मूर्ति के जैनभाव की पुष्टि होती है । यहा शिल्पी ने इन जिनाकृतियों को उकेर कर इसे जैन बन्धुओ के लिए इष्ट रूप मे प्रस्तुत किया है जो राजस्थानी जैन मूर्तिकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ।

नागौर जिले मे 'खीवसर' से प्राप्त व जोधपुर संग्रहालय मे सुरक्षित एक विशालकाय प्रस्तर मूर्ति तो अलौकिक है । यह ईसा की १०वी ११वी शती मे बनी थी । यहां भगवान महावीर को सिर पर मुकुट व शरीर पर अन्य आभूषणों सहित दर्शाया गया है जो उनके 'जीवंतस्वामी' स्वरूप का प्रतीक है । इस आशय की एक पांचवी-छठी शती की धातु मूर्ति बड़ौदा संग्रहालय की शोभा बढा रही है । जैन साहित्य मे इस वर्ग की प्रतिमाओ को जीवंतस्वामी कहा गया है । ऐसी एक प्रस्तर मूर्ति सिरोही के जिनालय मे गर्भगृह के बाहर विद्यमान है व एक धातु मूर्ति जोधपुर नगर मे पूजान्तर्गत है । पश्चिम भारत की ये विशिष्ट मूर्तिया जैन शिल्प की महत्त्वपूर्ण निधियां है । ऐसी कुछ मूर्तियां ओसियां के महावीर मन्दिर मे भी रखी है ।

इन फुटकर उदाहरणो द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि राजस्थान के भिन्न-भिन्न स्थानो से प्राप्त जैन मूर्तियां भारतीय कला के क्षेत्र मे कितनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है । निश्चय ही भावी शोध-खोज द्वारा इस दिशा मे उत्तरोत्तर नवीन तथ्यो के प्रकाश मे आने की पूर्ण सम्भावना है । राजस्थान के सैकड़ो जैन मन्दिरों मे तो भारतीय कला की असंख्य कृतिया संरक्षित की जा चुकी हैं जो कलाविदों के आकर्षण का केन्द्र बन गई है ।



२३ | जैन मन्दिर : शिल्प और स्थापत्य

•

श्री पूर्णचन्द्र जैन

सांस्कृतिक विरासत

विश्व के इतिहास मे भारत का बहुत ऊंचा व बडा स्थान है। यह उसकी प्राचीनता से अधिक, विश्व-मानव को उसने जो बडी देन दी, उस कारण है। अभी तक जिसे हम दो अढ़ाई हजार वर्ष का इतिहाससम्मत काल मानते थे, मोहनजोदडो व हडप्पा की खुदाई ने उसे पांच सात हजार वर्ष प्राचीन तो सिद्ध कर दिया है। एक लेखक के शब्दों मे अब हम भी सुमेर, अक्काद और बेबिलोनियनो के मुकाबले मे अपने खण्डहरो की बुजुर्गी से भी अपना बडप्पन प्रमाणित कर सकते है। कहना नही होगा कि भारतीय संस्कृति के इतिहास मे उसकी तीन—जैन, वैदिक और बौद्ध धाराओं का ही बडा भाग है तथा इस दृष्टि से जैन-संस्कृति विश्व के इतिहास मे अपनी विशेषता रखती है।

भारतीय धर्म और संस्कृति की परम्परा मे श्रमण-संस्कृति का अपनी प्राचीनता, अपने विशिष्ट तत्वज्ञान तथा दर्शन और अपनी कलाप्रियता तथा साहित्यिक रसिकता, राष्ट्रीय भावना और राष्ट्र के लिए की गई सेवाओ आदि के कारण विशेष महत्व का गौरवमय स्थान है। हिंसा, काम आदि मानवीय मानसिक व चित्त की दुर्बलताओं पर तप, साधना और संयम द्वारा विजय पाने के सिद्धात पर आधारित जैन संस्कृति की भारतीय संस्कृति पर गहरी छाप है। इसका पुनर्जीवन और पुनरोदय पार्श्वनाथ और महावीरस्वामी द्वारा पूर्वी भारत मे मगध व बिहार मे हुआ। लेकिन बाद मे इसका विकासक्षेत्र मुख्यत पश्चिमी और दक्षिण भारत रहा। मुसलमान काल मे और उससे पूर्व भी पुष्प (पुष्य) मित्र जैसे राजाओं की धर्मान्धता तथा शंकराचार्य जैसे विद्वानों की एकांगी दृष्टि और कट्टरता के कारण जैनों को स्थानान्तरण करना पड़ा। जैन जहां जहां और जब जब पहुंचे वहां वहां और उस उस समय मे उन्होने अपनी शिल्प, स्थापत्य, चित्र, साहित्यसृजन आदि सम्बन्धी कला भावना, धर्माराधना तथा सेवा और तन, मन, धन की उत्सर्ग भावना का विशेष उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया है। गहराई से देखेंगे तो भारतीय शिल्प, स्थापत्य, भारतीय चित्रकला, भारतीय वाङ्मय और साहित्य मे जैन-वीरो और धर्म वीरो की बहुत बड़ी देन रही है, और जैन संस्कृति की शिल्प, स्थापत्य, साहित्य आदि की सामग्री के इतिहास से ही भारतीय संस्कृति का एक शृंखलाबद्ध इतिहास बन सकता है। इस ओर कम दृष्टि गई है। इस कारण भी भारत का इतिहास क्रमबद्ध नहीं मिल रहा है।

पश्चिम भारत मे वर्तमान मालवा प्रदेश, गुजरात और राजस्थान जैन-धर्म और संस्कृति के विस्तार-विकास के क्षेत्र रहे हैं। राजस्थान मे मुख्यतः मारवाड़, मेवाड़, मेवात, हाड़ौती आदि क्षेत्र है। मारवाड मे जोधपुर व बीकानेर के उत्तरी भाग जांगल प्रदेश आदि शामिल हैं जिनकी राजधानी कभी अहिछत्रपुर (वर्तमान नागौर) थी। इसीके पास सपादलक्ष क्षेत्र था। आज का जैसलमेर, माड, वल्ल व भवाणी नाम से प्रसिद्ध था। मेवाड़ को मेदपाट तथा उसके कुछ हिस्से व श्रीमाल-भिन्नमाल आदि को प्राग्वाट कहते थे। चित्तौड या चित्रकूट के आसपास का क्षेत्र शिवी कहलाता था, जिसकी राजधानी माध्यमिका थी। अलवर आदि क्षेत्र मेवात मे थे जिसको उत्तरीय कुरू भी कहा जाता था। प्राग्वाट के कुछ क्षेत्र गुजरात मे भी थे और एक तरह गुजरात व राजस्थान बहुत कुछ मिलेजुले थे।

राजस्थान के सस्कृतिक विकास मे जैन सस्कृति का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। शासन और राजनैतिक क्षेत्रो को देखे, साहित्य के क्षेत्र को देखें अथवा शिल्प-स्थापत्य आदि क्षेत्र को तो राजस्थान के सर्वांगीण विकास और निर्माण मे जैन क्षत्रिय शासको, वैश्य महामात्यो, अमात्यो, मन्त्रियों, दण्डनायको और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि मे से जैनधर्म स्वीकार कर दीक्षा-सस्कार ग्रहण करने वाले श्रमण, साधु, यति, साध्वी वर्ग का उस बारे मे बहुत उज्ज्वल गौरवमय हाथ रहा है। आततायियो से सघर्ष करने मे, कला और साहित्य के सृजन, संरक्षण और प्रोत्साहन मे, अकाल आदि से उत्पन्न सकटकाल के समय तन-मन-धन से राहत व सेवा कार्य मे, कूटनीतिक और राजनीतिक सम्बन्धों के बनाने-बिगाड़ने मे, इस प्रकार समग्र मानवीय, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन मे जैनियो का हाथ रहा था। हरिभद्रसूरि, रत्नप्रभसूरि, जिनदत्तसूरि, हेमचन्द्रआचार्य, बप्पभट्टसूरि, संप्रति, कुमारपाल, वस्तुपाल, तेजपाल, धरणाशाह, ठक्कर फेरू, भामाशाह आदि इसके ज्वलंत उदाहरण है। जैन आचार्य और साधुओ ने राजाओ सहित समग्र जनता को धर्मोपदेश दिया था। कई गच्छपति अनेक क्षत्रिय वशो के कुल-गुरु थे और शासन को जनहितकारी व धर्मपरायण बनाने में इनका बड़ा हाथ रहा था। तीर्थो और मन्दिरो की प्रतिष्ठापना के लिये भी यह लोग प्रेरक शक्ति थे।

तीर्थ और मन्दिर :

अन्य धर्मों और संस्कृतियो की भाति जैन धर्म व सस्कृति के भी अनेक तीर्थ और मन्दिर है। राजस्थान के जैन मन्दिर भी जैन सस्कृति के उत्कर्ष, प्रकर्ष और जैन धर्मानुयायियों की उपासना, दानशीलता, वैभवशालिता आदि के प्रतीक हैं। इन मन्दिरो के निर्माण मे धर्म-गुरुओं व धर्माचार्यों की प्रेरणा तो मुख्य रही ही है, साथ ही गृहस्थ या श्रावक की सेवा भावना और कलाप्रियता का भी उसमे बहुत बडा स्थान है। अकाल या ऐसे अवसरों पर पीड़ित जनता को सहायता पहुँचाने की भावना भी कभी-कभी रही होगी। अपने वैभव व सत्ता के प्रदर्शन की भावना का कितना हाथ रहा, यह कहना कठिन है, किन्तु पिछले पाच-सात शताब्दियो में मूर्तियो व मन्दिरो के लेखों मे जिस प्रकार व्यक्ति के नाम, वश आदि की प्रशस्ति के आलेखन का क्रम चला है, उससे यह इन्कार सर्वथा नही किया जा सकता है कि वैभव व सत्ता के प्रदर्शन का लोभ इन कला-कृतियो के निर्माण मे कार्य नही कर रहा था। कलाकर, जिसकी आत्म-विस्मृति या तल्लीनता, आंख-हाथ-अंगुलियां आदि की एकाग्रता, तन्मयता और साधना ने धर्म व संस्कृति की प्रतीक इस सौन्दर्य-सृष्टि का निर्माण किया, उसकी नामावली या वशावली की प्रशस्ति का अभाव या उसका कही-कही पर प्रसगोपात उल्लेख मात्र भी उपर्युक्त बात की सम्पुष्टि करता है। लेकिन यह बात जैन मूर्तियो, लेखो, कलास्थानो पर ही नही, अन्य कला-

कृतियो, स्थापत्य व शिल्प के गौरवशाली गिन जाने वाले स्थानो आदि के सम्बन्ध में भी लागू है।

जैन धर्म या श्रमण-संस्कृति का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है और उसकी प्राप्ति के लिये सादे जीवन, कठोर तपश्चर्या, धर्माचरण, संयम साधना, भक्ति-उपासना आदि की श्रद्धा के द्वारा कर्म-क्षय का ही मार्ग बताया गया है। यह जहा एक ओर देश में चारो तरफ फैले वैष्णव, शैव, तान्त्रिक आदि की भक्ति व उपासना पद्धति के प्रभाव का परिणाम है वहा दूसरी ओर यह भी बतलाता है कि जैन धर्म और संस्कृति समाज के प्रति उदासीन नही रही है। एक लेखक के शब्दो मे इसीलिये कलाकारो ने अपने मानसिक भावो द्वारा मन्दिरो को ऐसा अलंकृत किया कि साधक आंतरिक सौन्दर्य की उपासना के साथ बाहरी पृथ्वीगत सौन्दर्य, नैतिक और पारम्परिक अन्तश्चेतना जगानेवाले उपकरणो के द्वारा वीतरागत्व की ओर बढ सकें। फिर भी यह विचारणीय है कि जैन मन्दिरो मे भी जो आडम्बर शृंगार, चमत्कार प्रदर्शित करने व फल-परचे देने की प्रवृत्ति बढ रही हैं वह जैन दर्शन और धर्म भावना के कितनी अनुकूल व कितनी प्रतिकूल है।

शिल्प और स्थापत्य

जो भी हो, राजस्थान के जैन मन्दिर अपनी उत्कृष्टतम स्थापत्य, शिल्पकला वैभव व समृद्धि-पूर्ण भूमिका, शांत व पवित्र भावनाओ को जगानेवाले अपने अन्तर्बाह्य वातावरण ग्रंथसाहित्य आदि के संरक्षण और साधना के केन्द्रस्थान होने के कारण भारत की संस्कृति के इतिहास में अद्वितीय स्थान रखते हैं। उन मन्दिरो की गणना कराना तो यहा कठिन है, पर उनके कुछ संक्षिप्त उल्लेख की जरूर आवश्यकता है। इन मन्दिरों मे अधिकांश क्या, लगभग सभी ही जगह उत्तर भारत मे प्रचलित रही आर्य या नागर शैली की स्थापत्य व शिल्पकला है। कही कही दक्षिण की द्राविड शैली का भी मिश्रण है। कला पूर्ण, बढिया खुदाई, कुराई और जडाई से अलंकृत तोरणद्वार, शिखर, गुम्बज ध्वज, आदि की विशेषता बाहर से ही बतला सकती है कि यह जैन मन्दिर है। मूल नायक की मूर्तिया अधिकांश बढिया सफेद पत्थर की हैं। कई जगह काले लाल व पीले पत्थर की और बालुका की भी मूर्तिया हैं और सोने, चादी, ताम्बे आदि धातुओं तथा हीरा पन्ना, स्फटिक आदि मूल्यवान पत्थर या जवाहिरात की भी छोटी मूर्तिया हैं। मूर्तियो के लिये पीतल, कासा, शीशा आदि व मिश्र धातुएं ठीक नहीं मानी जातीं, पर कई मन्दिरो मे पीतल की बडी-छोटी मूर्तिया भारी संख्या मे हैं।

मूर्तिया अधिकांश पद्मासनस्थित हैं, लेकिन कई जगह अर्द्ध पद्मासन और खडी कायोत्सर्ग की मुद्रा में स्थित मूर्तिया भी हैं। मन्दिरों के अन्दर के विभिन्न भाग, द्वार मंडप शृंगार-चौकी, गूढ-मंडप, गर्भगृह आदि अत्यधिक कलापूर्ण और भाव चित्रादि से अलंकृत बने हुए हैं। मूलवेदी के बाहर के सभामंडप की छत मे कहीं-कही तो एक जीवित सात्विक सौन्दर्यसृष्टि पुष्पावली-वल्लरी आदि के समूह और वाद्य-यन्त्र धारण की हुई तथा नृत्य मुद्रा मे स्थित पुतलिकाओ द्वारा कर दी गई है जिसे देखकर इस देश के ही नहीं विदेश व दूर-दूर के कलाविद् भी मन्त्रमुग्ध रह जाते हैं। मूल मन्दिरों मे तीर्थंकरो की ही मूर्तिया रहती हैं लेकिन बाहर और प्रकोष्ठ मे अम्बिका, चक्रेश्वरी, सरस्वती, क्षेत्रपाल, भैरव व भोमिया की मूर्तिया, मन्दिर के बाहर भीतर स्थापित की जाने लगीं और पूजी जाने लगीं। राणकपुर आदि कुछ एक मन्दिरो के द्वार-स्तम्भो, शिखर मंडप आदि में नग्न स्त्री-पुरुषों की मूर्तियां या तरुण-मूर्तिया भी हैं, वह भी इस प्रभाव का परिणाम ही दीखता है। इस प्रकार की कारीगरी का कुछ लोग जीवन के समग्र दर्शन व चित्रण की दृष्टि से औचित्य मानते हैं पर

यह तर्क समाज हित की दृष्टि से उपयोगी व उचित नही माना जा सकता ।

जैन तीर्थो मन्दिरो और विशेषतः स्थापत्य व शिल्पकला की उत्कृष्टता की दृष्टि से तथा ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए चित्रकूट (चित्तौड़), जावालिपुर (जालोर), जैसलमेर, नागौर, राणकपुर, अर्बुदाचल (कुंभारिया, जीरावला सहित), हस्तिकुंड (हट्टूंडी), धुलेवा (केसरिया नाथ), चवलेश्वर, वरकाणा, घाणेराव, पिंडवाडा, महावीरजी, सांगानेर, आमेर, अजमेर, आदि स्थान प्रसिद्ध हैं। आबू पर्वत पर विक्रम १०८८ सवत्सर मे बनवाया हुआ विमलशाह का 'विमलवसही' प्रासाद और १२८७ मे वस्तुपाल तेजपाल मंत्रीश्वर की ओर से शोभनदेव शिल्पी द्वारा निर्मित 'लुणिगवसही' प्रासाद तो जगत् प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टाड ने इन मन्दिरो को देखकर सन्त साइराक्यूज की भाति कहा था कि एराका ! (Eraka) अर्थात् मै ढूढता था वह मिलगया । राणकपुर मे धरणाशाह द्वारा बनवाया गया सहस्र से ऊपर कलापूर्ण स्तम्भो की छटावाला मन्दिर भी भारत की उत्कृष्ट कला का एक नमूना है। उसी प्रकार कुंभारिया के मन्दिर मे भी शिल्प के उत्कृष्ट नमूने हैं। इतिहासज्ञ फार्वस के कथन के अनुसार यहा किसी समय बड़ा नगर रहा था जिसमें ३६० जैन मन्दिर थे, किन्तु नगर भूकम्प से नष्ट हो गया । अभी वहा ५ जैन मन्दिर है, जो आलीशान और ऐतिहासिक है तथा आबू के देलवाड़ा मन्दिर जैसी दिग्मूढ़ करने वाली वहा की स्थापत्यकला है ।

जोधपुर के पास मडोर पर भी एक हजार वर्ष पुराना जैन मन्दिर बताया जाता है । जैन मन्दिरो में अनेक स्थानो पर उनके साथ ही ग्रन्थ-भंडार भी है जिनमे अलभ्य, अति प्राचीन ताड़पत्रादि के व अन्य हस्तलिखित ग्रन्थरत्न संग्रहित हैं। जैसलमेर का जैन ग्रन्थ-भण्डार तो प्रसिद्ध ही है, जो यवन आक्रमणो के समय सुरक्षा की दृष्टि से पाटन आदि स्थानो से लाया गया था। ऐसे ग्रन्थ-भण्डार नागौर, अजमेर, जयपुर, बीकानेर आदि जगहो पर अनेक मन्दिरो मे हैं, जहा ग्रन्थ, चित्र, ताम्रपत्र, लेख आदि काफी सामग्री किसी समय रक्षा, उपयोग, ज्ञानवृद्धि आदि की दृष्टि से एकत्रित की गई होगी, किन्तु आज उपेक्षा व प्रमाद के कारण अरक्षित पडी है, और कीड़े-मकोडे, चूहे-दीमक द्वारा जिसके नष्ट होने की आशका है ।

मुसलमानो से रक्षा के लिये कई जगह जैन मन्दिरो के पास मस्जिदो की मीनारे भी खडी की गई है । इन्हें धर्मसमन्वय की प्रतीक मानना तो गलत होगा, किन्तु इनसे रक्षा करने के एक तरीके की दूरदर्शिता तो प्रकट ही है। फिर भी कई मन्दिरो, जैसे चित्तौड के कीर्तिस्तम्भ आदि पर जैन मूर्तियो का जगह-जगह अंग-भंग व खण्डन किया गया है । यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि कुछ बड़े प्रसिद्ध जैन मन्दिरों के लिये जैन-सम्प्रदायो मे आपस में ही झगडे व तनातनी है और कही-कही पर जैनेतर लोगो ने भी जैन मन्दिरो पर अपना कब्जा कर लिया है और अपने या सम्प्रदाय के आराध्य देव की मूर्ति की स्थापना कर उसे अपना मन्दिर बना लिया है । भारतीय सस्कृति, कला और साहित्य की रक्षा की दृष्टि से राजस्थान के जैन मन्दिरो का वड़ा ऐतिहासिक तथा गौरवमय स्थान है । जैनियो पर तो इनके सरक्षण और इन सम्बन्धी प्रमाणिक विस्तृत विवरण के संग्रह की दुहरी जिम्मेदारी है, लेकिन जैनेतर लोगो पर भी इस अलभ्य निधि की ओर पूरा ध्यान देने का उत्तरदायित्व है ।

———

२४ | राजस्थान के प्रमुख जैन मन्दिर

[१]
श्वेताम्बर जैन मन्दिर[1]

श्री जोधसिंह मेहता

देलवाडा श्राबू के जैन मन्दिर—वि० स० १०८८ म विमलवसहि ने देलवाडा मे १८ करोड ५३ लाख रुपयो की लागत से सूत्रधार कीर्तिधर से अपने नाम से, 'विमलवसहि' नामक मन्दिर का निर्माण करवाया। इस मन्दिर मे भगवान श्री ऋषभदेव की मूर्ति विराजमान है। यह मन्दिर बहुत ही कलापूर्ण है। इसमे स्थान-स्थान पर २५६ शिलालेख खुदे हुए है। सबसे प्राचीन लेख स० ११११ का है। विमलवसहि मन्दिर के मुख्य द्वार के सामने विमलशाह की हस्तिशाला है जिसम समवसरण, मगमरमर के १० हाथी और विमल मन्त्री की अश्वारोही मूर्ति है।

लूणवसहि का मन्दिर—विमलवसहि मन्दिर के पार्श्व मे दूसरा मन्दिर 'लूणवसहि' है। इस मन्दिर को वस्तुपाल तेजपाल ने बनवाया था। इस मन्दिर का नाम उन्होने बडे भाई के नाम पर रक्खा। स० १२८७ मे आचाय श्री विजयसेनसूरि ने इस मन्दिर मे भगवान नेमिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाइ थी।

अन्य दर्शनीय मन्दिरो मे भगवान् श्री महावीर स्वामी का मन्दिर गुजर श्री भीमाशाह का पीत्तलहर मन्दिर और भगवान् चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर मुख्य हैं। पीत्तलहर मन्दिर में १०८ मन पीतल की भगवान् ऋषभदेव की मूर्ति है।

देलवाडा आबू के मन्दिर अपनी कलात्मकता एव महीन कारीगरी क लिए विश्वविख्यात है।

अचलगढ के मन्दिर—देलवाडा से ४ मील दूर आबू पवत पर ४,६०० फीट ऊचाइ पर अचलगढ स्थित है। यहा पर आदिनाथ भगवान् का दो मजिला चौमुखा मन्दिर है। इसमे विराजमान मूर्तिया पच धातु से निर्मित हैं। चतुमुख मन्दिर सबसे उन्नत शिखर पर है। इसके नीचे के स्थान पर भगवान् श्री ऋषभदेव का स० १७२१ का अन्य मन्दिर है। दूसरा मन्दिर गढ के दरवाजे के पास भगवान् कुन्थुनाथ का स० १५२७ का है। यहा मूल नायक भगवान् की कासे की मूर्ति है तथा अन्य पच धातु प्रतिमाएँ हैं। गढ के नीचे तलहटी में भगवान् शान्तिनाथ का विशाल और कलामय मन्दिर है जिसे गुजरात के राजा कुमारपाल ने बनवाया था।

---

१ पाठकों की जानकारी के लिये यह विवरण लेखक के विस्तृत लेख के आधार पर संक्षिप्त करके प्रस्तुत किया जा रहा है। —सम्पादक

मारवाड़ की छोटी पंचतीर्थी के मन्दिर—आबू रोड से २८ मील दूर पिंडवाड़ा है जहां से मारवाड़ की छोटी और बड़ी पंचतीर्थी की जाती है। यहां श्री महावीर भगवान् के बावन जिनालय वाले मन्दिर में धातु की दो बड़ी कायोत्सर्ग में खड़ी जिन प्रतिमाएं हैं। एक पर वि० सं० ७४४ का प्राचीन खरोष्ठी लिपि का लेख है। छोटी पंचतीर्थी में नाणा, दियाणा, नांदिया, बामनवाड़जी और अंजारी के तीर्थ स्थल आते हैं।

मारवाड़ की बड़ी पंचतीर्थी के मन्दिर—इसका केन्द्र स्थल सादड़ी (मारवाड़) है। राणकपुर, मुंछाला महावीरजी, नारलोई, नाडोल और वरकाणा पार्श्वनाथजी, ये पांचों तीर्थ सादड़ी के सन्निकट हैं।

राणकपुर—सादड़ी से ६ मील दूर स्थित यह मन्दिर अपनी कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध है। यह १४४४ कलाकृत स्तभों पर आश्रित है। इसमें ८४ भोयरे और ७२ देवकुलिकायें हैं। इसका निर्माण सेठ धरणाशाह ने करवाया। मूलनायक आदीश्वर भगवान् के सामने की दीवाल पर एक शिलालेख है जिसमें मेवाड़ के राणा बप्पा रावल से लेकर ४१ पीढ़ी तक की वंशावली का चित्रण है। यहां पर पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में बड़ी कलात्मक मूर्ति है। तीन मंजिल का यह चौमुखा मन्दिर ४८०० वर्ग फीट क्षेत्र में विस्तृत है। यहां नेमिनाथ और सूर्य देवता के मन्दिर भी हैं, जो स्थापत्यकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

नारलोई—यहां कुल ११ मन्दिर हैं। आदीश्वर भगवान् का १००० वर्ष पुराना मन्दिर स्थापत्य-कला की दृष्टि से श्रेष्ठ है।

नाडोल तीर्थ—यहां प्राचीन, कलात्मक एवं विशाल पद्मप्रभुजी का मन्दिर है। यहां कभी ९९९ जैन मन्दिरों का घटनाद होता था। कहा जाता है कि यहां वि० सं० ३०० में आचार्य श्री मानदेवसूरि ने प्रसिद्ध लघु शांति स्तव की रचना की थी।

वरकाणा पार्श्वनाथ तीर्थ—इस मन्दिर का निर्माण वि० सं० १२११ के पूर्व का माना जाता है। यहां प्रतिवर्ष पौष कृष्णा दशमी को मेला भरता है।

राता महावीरजी—जवाई बांध रेलवे स्टेशन से १४ मील पूर्व में यहां २४ जिनालयवाला श्री महावीर जी का मन्दिर है। इसमें राता (लाल) रंग की मूर्ति है।

कोरटा तीर्थ—यह तीर्थ एरनपुरा छावनी से ६ मील है। यहां शिखरबंध भगवान् महावीर का मन्दिर है।

सिरोही—बामणवाड़जी से करीब ८ मील पर यह क्षेत्र है। इसमें १८ जैन मन्दिर हैं। १५ मन्दिर एक ही मोहल्ले में होने से वह बस्ती देहराशरी कहलाती है। इनमें चौमुखा जी का मन्दिर प्रसिद्ध है।

मीरपुर तीर्थ—यह तीर्थ सिरोही से अणादरा के मार्ग पर है। यहां पहाड़ के नीचे प्राचीन भव्य और कलापूर्ण तीर्थस्थान है।

सुवर्णगिरि तीर्थ—यह तीर्थ स्थान जालोर जिले में है। इसे सोनागढ़ भी कहते हैं। यहां भगवान् महावीर का गगनचुम्बी मन्दिर है।

नाकोडा तीर्थ—यह बालोतरा रेलवे जंकशन से ६ मील दूरी पर है। यहा मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्ति है। इस मन्दिर मे दो बडे भोहरे हैं जिसमे १२वी से १७वी शताब्दी की मूर्तिया हैं। यहा ऋषभदेव, शान्तिनाथ भगवान् के विशाल कलामय मन्दिर है। यहा के अधिष्ठायक देव नाकोडा भैरवजी बहुत प्रसिद्ध और चमत्कारी हैं।

भिन्नमाल—प्राचीन काल मे हजारो शिखर बध जन मन्दिर यहा पर थे। इस समय यहा चार जन मन्दिर प्रसिद्ध हैं। श्री शातिनाथ भगवान् का मन्दिर, श्री पार्श्वनाथ भगवान् का मन्दिर, श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर और श्री शातिनाथ भगवान् का दूसरा मन्दिर।

साचोर—राणीवाडा स्टेशन से ३० मील दूर साचोर तीर्थ है। यहा भगवान् महावीर का भव्य मन्दिर है।

कापरडा तीर्थ—यह जोधपुर से ३२ मील पर है। यहा भगवान् श्री स्वयभूपार्श्वनाथ के मन्दिर की स्थापना वि० स० १६७८ मे हुई थी। जतारण निवासी भाणजी भडारी ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह भारत का एक मात्र जैन मन्दिर है जो चतुमुख के साथ साथ चार मजिल का है।

पाली—इस नगर मे ९ जैन मन्दिर हैं। जिनम से नवलखा पार्श्वनाथ का मन्दिर बावन जिनालय वाला प्रसिद्ध है।

घांघाणी तीर्थ—यह जोधपुर से दक्षिण पूर्व मे २० मील की दूरी पर है। यहा पद्मप्रभु जी का मन्दिर है। यह तीर्थ २२०० वर्ष पुराना माना जाता है। यह भूमि मे ७२ फीट ऊचा है।

ओसियाजी—जोधपुर से ४० मील दूर स्थित ओसिया म भगवान् महावीर का प्रसिद्ध गगनचुम्बी मन्दिर है। ओसवाल जनियो की उत्पत्ति का मूल स्थान यही ओसिया नगरी माना जाता है।

नागौर—यहां सात जन मन्दिर हैं जिनम से वि० स० १५१५ का धुमट बध श्री शातिनाथ भगवान् का मन्दिर प्राचीन है।

फलोधी तीर्थ—यह मेडता रोड जक्शन से २ फर्लांग दूर है। यहा मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् की श्याम वर्णीय मनोज्ञ प्रतिमा है। यहां वि० स० १२२१ का लेख मिलता है।

जैसलमेर—यहां के किले पर आठ मन्दिरों मे लगभग ६००० जिन मूर्तिया हैं। यहा का सबसे प्रसिद्ध चिंतामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर है। यहा १८ उपाश्रय और ७ ज्ञान भण्डार हैं। जिनमे श्री जिनभद्र सूरि ज्ञान भडार वृहत और प्रसिद्ध है।

जैसलमेर की पचतीर्थी म जसलमेर, अमरसागर, लोद्रावा पोकरन और ब्रह्मसागर के मन्दिर गिने जाते हैं।

बीकानेर—यहां लगभग ३० जन मन्दिर हैं। जिनमे भगवान् अजितनाथ का मन्दिर प्राचीन गिना जाता है। यहा पर ४-५ ज्ञान भडार हैं।

जोधपुर—यहा पर छोटे-बड़े १७ मन्दिर हैं, जिनमे से सं० १६०० का शिखरबद भगवान् श्री केशरियानाथ का मन्दिर प्रसिद्ध है। दूसरा मन्दिर भैरों बाग में भगवान् श्रीपार्श्वनाथ जी का है। जूनी मंडी मे भगवान् महावीर का सवत् १८०० का जैन मन्दिर है। यहा पर एक ग्रंथ भंडार भी है।

मेवाड़ के जैन तीर्थ—मेवाड़ की पचतीर्थी मे श्री केसरियाजी, नागद्रह, देलवाड़ा, दयालशाह का किला और करेड़ा माने जाते हैं। मेवाड़ मे करीब ३५० जैन मन्दिर हैं जिनमे से मुख्य इस प्रकार हैं।

उदयपुर—यहा कुल ३६-३७ मन्दिर हैं। इनमे बावन जिनालय वाला श्री शीतलनाथ जी का मन्दिर, भगवान वासूपूज्य जी का कांच का मन्दिर, ऋषभदेव जी का मन्दिर और सहस्रफणा पार्श्वनाथ जी का मन्दिर उल्लेखनीय है।

आघाटपुर (आहाड़) तीर्थ—उदयपुर शहर से २ मील दूर आहाड है। यहां ऋषभदेव भगवान, शातिनाथ भगवान, शंखेश्वर पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर हैं। ये १००० वर्ष पुराने भव्य और कलाकृत हैं। इसी प्राचीन नगरी मे राणा जैत्रसिंह (सं० १२७०-१३०८) के समय में हेमचन्द्र श्रेष्ठि ने सब जैन आगमो को ताड़पत्र पर लिखवाया था।

श्री केसरिया जी—उदयपुर से ४० मील दक्षिण मे धुलेव गाव मे यह तीर्थ स्थित है। यहा भगवान ऋषभदेव की श्याम मूर्ति बहुत प्राचीन और मनोज्ञ है। चैत्र कृष्णा अष्टमी को यहां बड़ा भारी मेला लगता है, जिसमें भील लोग काफी मात्रा में आते हैं। ये लोग केसरियाजी को कालाजी कहते हैं। यहा का सबसे प्राचीन शिलालेख सं० १४३१ का है। मन्दिर का स्थापत्य भव्य और कलामय है।

श्री अदबदजी या नागद्रह (नागदा) तीर्थ—उदयपुर से १३ मील दूर एकलिंगजी के बस मार्ग पर यह तीर्थ स्थित है। यहां मूलनायक श्री शांतिनाथ भगवान की अद्भुत और विशाल मूर्ति है जो ९ फीट ऊची है, जिसको अदबद जी कहते हैं। यहां खुमाण रावल का अनोखा मन्दिर भी है। यहा 'सास-बहू' का वैष्णव मन्दिर स्थापत्यकला की दृष्टि से सर्वोत्तम है।

देलवाड़ा—यह उदयपुर से १८ मील दूर है। यहा पाँच मन्दिर हैं। इस तीर्थ के अधिकतर मन्दिर और शिलालेख पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी के हैं। यहां के मन्दिरो का स्थापत्य देलवाड़ा आबू के विश्वविख्यात मन्दिरो के स्थापत्य से मिलता है।

दयालशाह का किला—उदयपुर से ४३ मील दूर बस मार्ग पर राजनगर कस्बे मे एक ऊंची पहाड़ी पर यह स्थित है। यहां वीर मन्त्री दयालशाह ने नौ मंजिला चतुर्मुख जिन प्रासाद निर्माण कराया और इसमे ऋषभदेव भगवान् की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। मन्दिर की कारीगरी महीन और मनोहर है। यहां पर 'राज प्रशस्ति' नामक २५ सर्ग का पाषाण शिलालेख है जो भारत का सबसे बड़ा शिलालेख है। राणा राजसिंह ने जितना धन राजसमन्द बंधवाने में व्यय किया, उतना ही धन उनके मंत्री दयालशाह ने इस मन्दिर के निर्माण में व्यय किया था।

करेड़ा पार्श्वनाथ—भोपालसागर स्टेशन से करीब १ मील पर करेड़ा पार्श्वनाथ नामक विख्यात बावन जिनालय वाला विशाल मन्दिर है। इस मन्दिर के कुछ लेख १२वी

और १९वी सदी तक के हैं। यहा पौष वदी १० को प्रतिवष वडा मेला लगता है। स्थापत्य कला की दृष्टि से इस मन्दिर की अपनी विशेषता है।

चित्तौडगढ़—यह प्राचीन तीथ चित्रकूट के नाम से विख्यात है। इस दुग पर बनी शृगार चवरी जिसका असली नाम अष्टापदावतार शान्ति जिन चैत्य है। इसमे चौबीस जन तीर्थंकरो की अष्टापद रचना बनी हुई है। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह बेजोड है। सतवीस दवरा—पहले सत्ताईस जिनालया का मन्दिर था। वि० स० १५०५ में कर्माशाह की देख रेख में इसका निर्माण हुआ था। मूलनायक ऋषभदेव की श्याम मूर्ति यहा विराजमान है। जन कीर्तिस्तम्भ सात मजिला और ८० फुट ऊचा है। चौदहवी सदी का यह स्मारक जैन शिल्प कला का अद्भुत नमूना है। इसके पास भगवान् महावीर का सुन्दर मन्दिर है।

चवलेश्वर पाश्वनाथ —भीलवाडा मे २६ मील दूर चवलेश्वर पाश्वनाथ तीथ है। यहा भगवान् पाश्वनाथ की मूर्ति अति प्राचीन है। पौष बदी दशमी को यहा मेला भरता है।

बिजोलिया —भीलवाडा से लगभग ४४ मील दूर बिजोलिया ग्राम है यहा भूतल मे आच्छादित भगवान् पाश्वनाथ का मदिर है।

कुभलगढ़ —कनल टॉड न यहा के तीन मजिले कलाकृत जन मन्दिर का वणन किया है जिसका जीर्णोद्धार महाराजा फतेहसिंहजी न करवाया था। इसके अतिरिक्त यहा दुग पर तीन मन्दिर और हैं—बावनजिनालय का वि स १५१५ का, वि स १६०८ का व सुन्दर खुदाई वाला गोलेरा का जैन मन्दिर जिसमे पीतल की मूर्तिया हैं।

अजमेर —यहां पार्व श्वेताम्बर मन्दिर हैं जिनमे से २ बडे मन्दिर सभवनाथ भगवान् के लगभग स० १८०० के हैं। शेष दो मन्दिर श्री गौडी पाश्वनाथ के और ऋषभ भगवान् के स १८५० के हैं। यहा ढाई दिन का झोपडा प्रसिद्ध स्थान है। वहा पर भी पहले जन मन्दिर था। नगर के बाहर विशाल दादावाडी है, जहा खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचाय श्री जिनचन्द्रसूरि की छतरी है।

किशनगढ़ —यहा पाच मन्दिर हैं। दो मन्दिर भगवान् श्री आदिनाथ और श्री शान्तिनाथ के स १६९८ के हैं। कस्बे के बाहर दादावाडी है।

जयपुर —यहा पर ९ श्वेताम्बर जैन मन्दिर हैं। उनम से भगवान् श्री ऋषभदेवजी का, श्री केसरियाजी का, श्री सुमतिनाथजी का (स १७८४), भगवान् श्री पाश्वनाथजी का (स १८००) और श्री महावीर स्वामी के मन्दिर प्रसिद्ध हैं।

आमेर —यहा श्री चन्द्रप्रभ स्वामी का शिखरबध स १८७७ का मन्दिर है।

अलवर —यहा पर दो श्वेताम्बर जन मन्दिर हैं, जिनम स एक स १८०० का श्री सघ द्वारा निर्माण करवाया हुआ विशाल पाश्वनाथ मन्दिर है। इसके मोहरे म बडी-बडी विशालकाय मूर्तियां हैं। दूसरा आधुनिक जैन मन्दिर बस स्टेण्ड के पास है।

श्री नागेश्वर तीथ —झालावाड जिले में नागेश्वर (उन्हैल) गाव के बाहर श्री नागेश्वर पाश्वनाथ तीथ है। इस तीथ मे नीले वण की फण वाली खडी श्री नागेश्वर पाश्वनाथ प्रभु की नौ फीट की सैकडो वष पुरानी प्रतिमा है।

[२]
दिगम्बर जैन मन्दिर[1]

पं० अनूपचन्द

सांवलाजी का मन्दिर, आमेर :—इसमे भ. नेमिनाथ की श्याम पाषाण की स० ११२० की मूर्ति है। कहा जाता है कि इसे हेमराज छाबडा ने बनवाया था। भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के समय मे यहा भट्टारक गादी स्थापित हुई। इसके साथ ही यहाँ विशाल शास्त्र भडार भी स्थापित किया गया।

संघीजी का मन्दिर, सांगानेर :—यह मन्दिर १२वी शताब्दी का बना हुआ है। अपनी स्थापत्य एव वास्तुकला के लिये यह प्रसिद्ध है।

गोदीको का मन्दिर, सांगानेर :—यहा सगमरमर की वेदी मे कुराई का बारीक कार्य दर्शनीय है।

चाकसू की नसियां :—चाकसू से डेढ मील दूर पहाड़ी पर जैन नसिया हैं। इस छोटी-सी पहाड़ी पर मन्दिर, चरण-चिह्न आदि है। सम्वत् १६२२ मे भट्टारक जगत्कीर्ति ने चाकसू मे पट्ट स्थापित किया।

पाटोदी का मन्दिर, जयपुर :—यह बीस पथ आम्नाय का प्रमुख मन्दिर है जो चौकड़ी मोदीखाने मे स्थित है। इसका निर्माण जोधराज पाटोदी ने करवाया था। यहा भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित है। आमेर के पश्चात् जयपुर के इसी मन्दिर मे भट्टारक गादी की स्थापना सं० १८१५ मे हुई, जिस पर क्षेमकीर्ति प्रथम भट्टारक हुए। इस मन्दिर मे एक विशाल और महत्त्व-पूर्ण हस्तलिखित ग्र थ भण्डार भी है। यहा स्वर्णाक्षरी, रजताक्षरी तथा ताड़पत्रीय ग्र थो की प्रतियो का भी संग्रह है।

सिरमोरियों का मन्दिर, जयपुर :—इसका निर्माण सम्वत् १८१३ मे श्री केशरीसिंह कासलीवाल ने कराया था। इस मन्दिर की नीव जयपुर नरेश महाराजा माधवसिंह ने अपने हाथ से रक्खी थी। यह मन्दिर कला की दृष्टि से अद्वितीय है। इसमे सबसे प्राचीन मूर्ति श्वेत पाषाण की सम्वत् १२२७ की है।

बड़े दीवानजी का मन्दिर, जयपुर :—यह जैन सस्कृत कॉलेज के निकट है। इसे दीवान अमरचन्द के पिता शिवजीलाल ने बनवाया था। इसमे भगवान् ऋषभदेव की श्याम पाषाण की भव्य प्रतिमा है। इसी मन्दिर के प्रागण मे स्व० प० चैनसुखदासजी प्रतिदिन शास्त्र वाचन करते थे।

महावीर स्वामी का मन्दिर, जयपुर :—गोपालजी के रास्ते मे स्थित यह मन्दिर कालाडेहरा के मन्दिर के नाम से भी जाना जाता है। इसमे १२वी शताब्दी की महावीर स्वामी की खड़गासन प्रतिमा है। यहां भगवान् महावीर के पूर्वभवो का सचित्र वर्णन उपलब्ध है, साथ ही अच्छा शास्त्र भण्डार भी है।

---

१. यह सक्षिप्त विवरण लेखक के विस्तृत लेख के आधार पर तैयार किया गया है। —सम्पादक

सघीजी का मन्दिर, जयपुर —इसमे काच की वेदी पर हरे पाषाण की पार्श्वनाथ प्रतिमा है। यहा भी शास्त्र भण्डार है।

पार्श्वनाथ मन्दिर (सोनियों का) जयपुर —खवास जी के रास्ते में स्थित इस मन्दिर मे सम्वत् १८६१ की भ० पार्श्वनाथ की विशालकाय खड्गासन प्रतिमा है। यहा प्राचीन ग्रथो का अच्छा सग्रह है।

बधीचन्दजी का मन्दिर, जयपुर —घी वालों के रास्ते मे स्थित यह मन्दिर गुमान पथ आम्नाय का है। यहा एक विशाल शास्त्र भण्डार है जिसमे प टोडरमलजी के स्वय के हाथ की 'मोक्ष मार्ग प्रकाश' एव 'आत्मानुशासन' की मूल पाडुलिपिया उपलब्ध हैं। इस मन्दिर मे बैठकर प टोडरमलजी ग्रथ रचना किया करते थे।

तेरहपथी बडा मन्दिर, जयपुर —यह तेरापथ आम्नाय का मन्दिर है। इसमे अनेक प्राचीन प्रतिमाए हैं। इस मन्दिर मे दो विशाल शास्त्र भण्डार है। बडे मन्दिर के भण्डार मे २६२९ ग्रथ तथा बाबा दुलीचन्द के भण्डार मे ८५० ग्रथो का सग्रह है। इसमे १६वी शताब्दी का सचित्र आदि पुराण है, जिसमे करीब ३०० चित्र हैं। यहा प सदासुख, जयचन्द छाबडा, जोधराज गोदीका आदि के स्वय के हाथ के लिखे हुए ग्रथ हैं।

पाड्या लूणकरण का मन्दिर, जयपुर —यह मन्दिर ठाकुर पचेवर के रास्ते मे स्थित है। इसमे हाथी, भैंस, चकवे, कबूतर आदि वाहनो पर बैठे शासन देवताओ की तथा चक्रेश्वरी और अम्बा माता की भव्य प्रतिमाए हैं। इसमे एक विशाल शास्त्र भण्डार भी है।

दि० जैन मन्दिर आदर्श नगर, जयपुर —मुलतान से आये जैनियो के सहयोग से यह मन्दिर बना है। मन्दिर अत्यधिक सुन्दर और कलापूर्ण है। इसमे विशाल शास्त्र भण्डार भी है। इसमे एक कीर्तिस्तम्भ (महावीर स्तूप) भी बन रहा है।

राणाजी की नसियां —जयपुर से ३ मील दूर सांगानेर नामक स्थान पर सगमरमर की विशाल नसिया हैं। इसी के प्रागण मे आचार्य वीर सागर जी का स्मारक (चरण चिह्न) है।

चूलगिरि क्षेत्र —राणाजी की नसिया के पीछे पहाड पर चूलगिरि क्षेत्र है। यहा भ० पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा है। मन्दिर के अहाते मे चारो ओर चौबीस तीर्थंकरों के चरण चिह्न तथा मूर्तिया हैं। यहा का प्राकृतिक दृश्य बडा मनोरम है। इस क्षेत्र की स्थापना आचार्य देशभूषणजी महाराज ने सन् १९६६ मे की थी।

जयसिंहपुरा खोर का दि० जैन मन्दिर —यह मन्दिर जयपुर से रामगढ रोड पर बंध की घाटी से डेढ़ मील दूर जयसिंहपुरा खोर मे है। इसका निर्माण स० १७८० मे बखतराम गोधा ने करवाया था। यहा भगवान् श्रेयासनाथ की स० १६६४ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

रामगढ का मन्दिर जयपुर से २८ मील दूर रामगढ का विशाल बांध है। बांध से ३ मील दूर रामगढ़ गाव के जैन मन्दिर मे भूगर्भ से प्राप्त १२वी शताब्दी की मनोज्ञ पाषाण प्रतिमाए हैं।

पदमपुरा क्षेत्र :—जयपुर से २२ मील की दूरी पर शिवदासपुरा के निकट इस अतिशय क्षेत्र का प्रादुर्भाव वि० सं० २००१ मे हुआ था। यहां पद्मप्रभु भगवान् की चामत्कारिक मूर्ति भूगर्भ से प्राप्त हुई थी। यहाँ विशाल कलापूर्ण मन्दिर का निर्माण-कार्य चल रहा है।

भट्टारकजी की नसियां :—जयपुर से २ मील दूर टोंक रोड पर रामबाग के पास ये नसिया स्थित हैं। इसमे भट्टारक महेन्द्रकीर्ति, क्षेमेन्द्रकीर्ति तथा सुरेन्द्रकीर्ति के चरण प्रतिष्ठित हैं। इसकी स्थापना सं० १८५३ व १८८१ मे हुई थी।

दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी :—यह प्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र है। यहां भगवान् महावीर की मनोज्ञ और आकर्षक मूर्ति है। महावीर जयन्ती के अवसर पर यहां प्रतिवर्ष एक विशाल मेला लगता है। यह एक ऐसा तीर्थ स्थान है जहां बिना किसी जातिगत भेदभाव के यात्री दर्शनार्थ आते हैं। यहा दर्शनार्थियों से प्राप्त धनराशि का उपयोग, प्राचीन साहित्य के संरक्षण, प्रकाशन, छात्र-वृत्ति, विधवा सहायता, धर्म प्रचार आदि सद्कार्यों मे होता है। यहा तीन शिखरो वाला कलापूर्ण मन्दिर, मानस्तम्भ, आदि दर्शनीय स्थल हैं।

चमत्कार क्षेत्र आलनपुर :—सवाई माधोपुर स्टेशन से २ मील दूर आलनपुर गाव मे एक भव्य जिनालय है। इसमे भूगर्भ से प्राप्त बिल्लौर की चमत्कार पूर्ण प्रतिमा है।

दीवानजी का मन्दिर, सवाई माधोपुर :—वि. स. १८२६ मे सवाई माधोपुर मे विशाल पंच कल्याणक महोत्सव हुआ था। उसमे हजारो प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हुई। उस समय की अनेक मूर्तियां इस मन्दिर मे हैं। यह तीन शिखर वाला मन्दिर है। यहा विशाल ग्रन्थ भण्डार भी है। यहां नसिया सहित ९ मन्दिर हैं जो कलापूर्ण हैं।

जैन मन्दिर, खण्डार :—सवाई माधोपुर से २० मील दूर खण्डार का किला है। इस किले का मन्दिर महत्वपूर्ण है। किले के रास्ते मे कुछ दूरी की चढाई पर चट्टान मे उकेरी गई अनेक छोटी प्रतिमाए भी हैं।

रणथम्भोर का जैन मन्दिर :—इस मन्दिर की पाषाण प्रतिमाएं १२वी शताब्दी से भी पूर्व की हैं।

पंचायती दि० जैन मन्दिर, भरतपुर :—यहा का पचायती दिगम्बर जैन मन्दिर प्रसिद्ध है। यहाँ सं० १२७२ की विशाल पाषाण प्रतिमाए हैं। इसके शास्त्र भडार मे ८०० हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह है।

पंचायती जैन मन्दिर, करौली :—यह मन्दिर भी बडा प्रसिद्ध है। यहाँ काच का सुन्दर काम है। यहा अच्छा ग्रन्थ भण्डार भी है। बयाना की स्टेशन की नसियां भी उल्लेखनीय हैं। यहा सीमंधर स्वामी की १२वी सदी की प्रतिमा है।

पंचायती बड़ा मन्दिर, कोटा :—यह मन्दिर रामपुरा मे स्थित है। यहा काफी प्राचीन मूर्तिया हैं। यह मन्दिर काच के काम के लिए प्रसिद्ध है।

झालरापाटन का शांतिनाथ मन्दिर :—यहा भगवान् शातिनाथ का विशाल मन्दिर। है

इसमे चारो ओर देवरिया बनी हुई हैं जिनमे अनेक धातु और पाषाण की मूर्तिया विराजमान हैं।

अतिशय क्षेत्र चादखेडी —झालरापाटन से कुछ दूरी पर चादखेडी है। यहा नदी के किनारे मन्दिर में भगवान् आदिनाथ की पाषाण प्रतिमा है। यह प्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र है।

जैन मन्दिर केशोरायपाटन (बून्दी) —यह मन्दिर बून्दी रोड रेल्वे स्टेशन से २ मील चम्बल नदी के किनारे स्थित है। यहा की प्रतिमाए काफी प्राचीन हैं। यहा केशवराय (श्रीकृष्ण) का विशाल कलापूर्ण मन्दिर भी है।

इसके अतिरिक्त डूगरपुर, सागवाडा, बासवाडा, गलियाकोट, सलूम्बर मे भी विशाल, कलापूर्ण, प्राचीन जैन मन्दिर हैं।

बीसा हुमड दि० जैन मन्दिर, उदयपुर —यह मन्दिर विशालकाय और कलापूर्ण है।

धानमण्डी (उदयपुर) का अग्रवाल जन मन्दिर, खण्डेलवाल मन्दिर, सभवनाथ मन्दिर, ग्रथ भण्डारों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

सेठजी की नसिया, अजमेर —यहा स्टेशन के नजदीक सेठजी की नसिया है। यहा की चित्रकारी का कार्य उल्लेखनीय है। चौक मे विशाल मानस्तम्भ है तथा मन्दिर मे मनोज्ञ प्रतिमाए। शहर मे सेठजी का काच का मन्दिर तथा भट्टारकीय बीस पथी मन्दिर और विशाल शास्त्र भण्डार महत्त्वपूर्ण हैं।

शातिनाथ मन्दिर, आवा (टोंक) —आंवा नगर मे भगवान् शातिनाथ का मन्दिर है। यहां सवत् १५६३ की प्रतिष्ठित शातिनाथ भगवान् की श्वेत पाषाण प्रतिमा है। पास की पहाडी पर भट्टारक शुभचन्द्र, धमचन्द्र आदि की निषेधिकाएं हैं।

इसके अतिरिक्त केकडी के पास बघेरा मे भी आकर्षक प्रतिमाएँ है।

अग्रवाल जैन नसियां, टोंक —यहा भूगभ से प्राप्त १३वी शताब्दी की विशाल २६ प्रतिमाए हैं जो दर्शनार्थियो के लिये आकर्षण का केन्द्र है। यहां आचार्य जिनसेन के चरण भी हैं।

दीवान जी की नसियां तथा बीस पथी मन्दिर, सीकर —यहा दीवान जी की विशाल नसियां है। यहा छात्रावास व साधु-मुनियो के आवास की अच्छी व्यवस्था है। यहा बीस पथी मन्दिर का बाह्य स्वरूप बडा भव्य है।

दि० जैन मन्दिर, लाडनू —यह भारत का कलापूर्ण जन मन्दिर है।

भट्टारकीय मन्दिर, नागौर —यह मन्दिर शास्त्र भण्डार के लिये प्रसिद्ध है। इसमे लगभग १२ हजार हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ हैं।

बडा मन्दिर नरायणा —यहा १२वी-१३वीं शताब्दी की मनोज्ञ और कलापूर्ण मूर्तियां हैं।

छोटा मन्दिर, नरायणा —यहां सवत् ११३५ की पाषाण की बाहुबलि की ३½ फीट की प्रतिमा है। यहां सवत् ११०२ की श्वेत पाषाण की सरस्वती की भी मूर्ति है।

दि० जैन अतिशय क्षेत्र, तिजारा —यहां पार्श्वनाथ का प्राचीन मन्दिर है।

जैन मन्दिर, मोजमाबाद —इस मन्दिर का निर्माण सवत् १६५० के आस-पास हुआ था। यह शिखरबन्द मन्दिर विशाल और कलापूर्ण है।

२५ | जैन चित्रकला

श्री परमानन्द चोयल

अजन्ता व राजस्थानी चित्रकला :

पर्सीब्राउन ने अजन्ता व राजस्थानी चित्रकला के बीच का काल, जो कि जैन चित्रकला का काल है, भारतीय कला का अन्धकार युग बताया है।[1] डब्ल्यू. जी. आर्चर भी यही बात दोहराते हैं जब वे ये शब्द लिखते हैं—'The early glowing rapture is totally wanting and it is as if we have entered a dark age of Indian Art.'[2] भारतीय कला समीक्षक श्री रायकृष्णदास ने तो यहां तक कह दिया है कि ये चित्र 'कुपड़ चित्रकारों' के बनाये हुये हैं।[3] काफी समय तक वे इसके नामकरण पर विवाद प्रस्तुत करते है, फिर मानवाकृतियो का नख-शिख वर्णन करते हुए इसके विकृत आलेखन की ओर ध्यान दिलाते है तथा अन्त में अपने सम्पूर्ण आक्रोश के साथ इसका अपभ्रंश शैली नाम रख देते है।[4]

वास्तव मे इस तरह के विद्वान् अजन्ता के मानदण्डों से ही हर चित्र शैली को तोलने का प्रयत्न करते हैं; इसीलिये जैन चित्रकला के साथ जिस न्याय की अपेक्षा थी, ये लोग नही कर पाये हैं। जिन्होने चित्रकला प्रक्रिया, तकनीकों एवं विधाओ का गहराई से अध्ययन किया है, जो आलोचना के नाम पर केवल ऐतिहासिक तिथियां ही नही गिनते रहे हैं तथा जो सौन्दर्य को आदमी-औरत के चेहरे मोहरो मे न देखकर कला तत्त्वों के माध्यम से संरचना मे पहचानने का प्रयत्न करते हैं, उनके लिये जैन चित्रकला एक नया ही अर्थ बोध उपस्थित करती है।

जैन चित्रकला :

जैन चित्रकला का काल ११वी शती से १६वी शती तक रहा है। इस बीच जैन धर्म से सम्बन्वित चित्र एवं अजैन चित्र बनते रहे, जिनकी शैली एक समान है। अतः जैन चित्रकला को, समग्र शैली-प्रसार के परिप्रेक्ष्य मे देखना चाहिये। विद्वानों ने जहां यह बात निभाई है, उनकी समालोचना का ढंग वहां बिल्कुल बदल गया है। उदाहरण के लिये बासिल ग्रे का यह—कथन यह शैली १५वीं-१६वी

---

१. हेरिटेज ऑफ इण्डियन पेन्टिग
२. इण्डियन पेन्टिग
३. भारत की चित्रकला
४ वही

शती मे अपने चरमोत्कर्ष पर थी, अकबर काल मे यह इतनी शक्तिशाली थी कि अकबर ने अपने पुस्तकालय विभाग के लिये गुजराती कलाकारो को चुना था,[1] श्री रायकृष्णदास द्वारा जैन चित्रकला के कलाकारो के 'फुपड' होने की बात के पूर्णतया विरुद्ध बठता है। इसी सन्दभ मे वामिन ग्रे की निम्न पक्तिया भी उल्लेखनीय हैं—[2]

"It showed from the beginning a livear, wiriness and vigour which was developed with great virtuosity, fine draughtsmanship which was combined rather strongly with bold massing of vibrant colours, red, blue and gold and with highly decorative designs in cloths and other textiles"

मारिये बुसाग्लि के मतानुसार जन चित्रकला 'कुछ अर्थों मे एकदम नवीन एव पूण क्रान्तिकारी शैली थी जिसने चित्रकला के विकास मे एक नया ही प्रकरण जोडा है।"[3]

रचना प्रक्रिया एव गठन

हर काल की कला अपने मे प्राचीन व नवीन दानो कलाओ के तत्त्व समेटे होती है। शैली का गठन एक जटिल प्रणाली है जिसमे कई प्रभावो का समावेश होता है, जैसे सामाजिक धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि। इन अवस्थाओ के अनुसार ही शैली आदश, प्रतीकात्मक, लाक्षणिक अथवा ग्रामीण आदि स्वरूप धारण कर लेती है। जन चित्रकला की समस्यायें अजन्ता से भिन्न हैं अत उसका बाह्य स्वरूप भी अजन्ता से भिन्न होना स्वाभाविक है। फिर अजन्ता के चित्र भीत पर बडे-बडे धरातलो मे धारावाहिक कथात्मक शैली की विशद योजना लेकर बनाये गये थे। भित्ति चित्र परम्परा जैन काल मे लगभग लुप्त हो गई थी। भीत के स्थान पर बहुत छोटे आयताकार ताड पत्रो पर व १४वी शती मे कागज के निर्माण के बाद थाडी सी बडे नाप की आयताकार पुस्तको मे छोटे-छोटे चित्र बनने लग थे। इसलिए दोनो शलियो की रचना प्रक्रिया एव गठन भिन्न प्रकार था। उनकी आवश्यकतायें भिन्न थी।

अजन्ता काल मे भारत बाहरी प्रभावो मे इतना आक्रान्त नही था जितना जैन काल म हो गया था। मुगलो के हमले भारत मे मोहम्मद गजनी के समय स ही लगातार हो रहे थे। उसके कारण व उनके भारत मे जमने की प्रवृत्ति के कारण उनकी सभ्यता व सस्कृति का यहा की कला पर प्रभाव पडने लगा था। लघुचित्रो व सचित्र पुस्तको का व्यापक रूप से प्रचलन भारत का इस्लाम के सम्पक मे आने के बाद ही माना जाना चाहिये। लघुचित्रो (miniatures) पर आरम्भ मे अवश्य ही परसिया का प्रभाव पडा है।[4] अत जैन चित्रो की सृजन प्रक्रिया म परम्परागत कला म आशातीत अन्तर हा आया है। फिर भी इस शली मे बीज रूप म भारतीय परम्परा विद्यमान है।

मुनि श्री जिनविजयजी ने जसलमेर के ज्ञान भण्डारो से जन कला के वे नमूने खोज निकाले हैं जो अजन्ता एलोरा कला व जन कला का सम्बन्ध जोड देते हैं। लकडी की करीब १४ सचित्र तख्तिया आपने ढूढ निकाली हैं जिनम कमल की बेल वाली पटनी अत्यन्त विलक्षण है जो अजन्ता

१ राजपूत पेंटिग पृ० ३ २ राजपूत पेंटिग, पृ० ३
३ इण्डियन मिनियेचर, पृ० ४३ ४ इण्डियन मिनियेचर, पृ० २२ मारियो बुसाग्लि

शैली की याद दिलाती है। एक चित्र मे मकर के मुख से निकलती कमल बेल बनाई है जो साची, अमरावती व मथुरा की कला-परम्परा से जैन कला को जोड़ती है।

सूक्ष्म दृष्टि से जाचने पर पता लगता है कि लघुचित्रण विधि मे भी भित्ति-चित्रण परम्परा अश मात्र मे विद्यमान थी। रेखाओं का प्रयोग भी शास्त्रोक्त है, जैसा कि भित्ति-चित्रो में देखने को मिलता है—स्पष्ट व प्रवाहात्मक। सिर्फ रग-ब्रुश के सचालन में अन्तर आ गया है। अजन्ता का चित्र-धरातल बड़ा था। अतः रेखा खेंचते समय कलाकार को ब्रुश बहुत दूर से पकड़कर भुजा के पूर्ण घुमाव के साथ हाथ चलाना पड़ता था और आकृतियों मे छाया व प्रकाश के आधार पर शारीरिक बनावट (modelling) के अनुकूल रेखाओ को मोटा व पतला बनाना होता था जबकि जैन पुस्तक-चित्रो मे इसके विपरीत (अत्यन्त छोटे चित्र-स्थल के कारण) ब्रुश को बिलकुल आगे से लगभग बालो के पास से पकडकर हथेली व उगली के बल पर रेखाएं खेंचनी पड़ती थीं। आकृतियां सपाट तलो वाली होती थी जिनको बांधने के लिये लोच की आवश्यकता नहीं थी; फिर राजस्थानी व मुगल चित्रो के समान सांस रोककर बारीक कारीगरीनुमा रेखायें खेंचने का न तो अवकाश था न श्रेय। इस कारण जैन चित्रो की रेखाए अपने मे भिन्न स्वरूप लिये हुए हैं। उनकी क्षिप्रता के अन्तर्गत ऐसा अटूट प्रवाह छिपा है कि उनकी कलात्मकता में किसी प्रकार भी सन्देह नही किया जा सकता। एक प्रकार की यह लिपि-शैली (calligraphic) थी जिसका अपना ही सौन्दर्य होता है।

जैन पुस्तक-चित्रों मे भारतीय कला का सर्व प्रथम परिवर्तित रूप दिखाई देता है। यहां भारतीय व ईरानी तत्त्व घुल मिल गये हैं। तत्कालीन अभिरुचि एवं नवीन आवश्यकताओ ने कला का बाना बदल दिया था। छाया प्रकाश व शारीरिक गढ़न (modelling) का अब पूर्ण अभाव हो गया। आकृतियां सपाट व समतल हो गई, जिनमे लाल, नीले, पीले, चटकदार द्वंविधात्मक रंग भरे जाने लगे।[1] वैज्ञानिक दृष्टिक्रम (perspective) के बजाय मानसिक दृश्या का प्रयोग किया जाने लगा। सारे चित्र को विभिन्न तलो मे विभक्त कर दिया गया और मानसिक मनःस्थिति के अनुसार संयोजित कर दिया गया। इस प्रकार की अभिव्यक्ति मे आकृतियो के यथार्थ स्वरूप का अतिरंजन या विघटन हो गया जिनमे अमूर्त चित्ररचना के लक्षण झलकने लगे जैसा कि ७वी व ८वी शती की आइरिश कला, १२वीं शती की रोमन कला एवं २०वी शती के आधुनिक काल की पिकासो की कला में दिखाई देता है।[2] इनकी रेखाएं स्वतन्त्र, एक दूसरे को क्रास करती, कोणात्मक तथा वेगवती थी। जैसे-जैसे कलाकार को तकनीकी अधिकार मिलने लगा, जटिल आकृतियां भी एक ही प्रवाह से युक्त अटूट रेखाओं मे बंधने लगीं। इनमें स्थिर व विश्रामास्थित आकृतियाँ प्रमुख हैं।

विघटन का तरीका मिलते ही मानवाकृति के विभिन्न अंगो को सुन्दरतम 'विजुअल' (visual) स्थिति मे प्रस्तुत करने की उत्प्रेरणा जागने लगी जैसा कि सवा चश्म चेहरे, लम्बी

---

१. प्रारम्भ में पृष्ठभूमि में लाल रंग भरा जाता था बाद मे परसिया के अधिक सम्पर्क के कारण सोने का रग भरा जाने लगा। नीला रंग (लाजवर्द) भी परसिया से ही मंगाया जाता था।

२. इण्डियन पेंटिंग पृ० ५-६ डब्ल्यू. जा. आर्चर

नुकीली नाक (एक ग्रोर से देखने की स्थिति मे–क्योंकि सम्मुख स्थिति के चेहरे मे नाक का नुकीलापन व लम्बाई की गरिमा दृश्या के कारण लुप्त हो जाती हैं), नाक से लेकर कान तक खिंचे मोटे व लम्बे नयन जिनके मध्य टिकी छोटी-छोटी गोल पुतलियाँ, चेहरे की सीमान्त रेखा को पार करती पृष्ठ भूमि मे लटकती ग्राख[1], छोटी गोल ठुड्डी, उभरा वक्ष (सामने की स्थिति म), क्षीण कटि व पूर्ण गोलाकार नितम्ब ग्रादि के अकन मे दिखाई देता है।

यह एक प्रकार का शैलीकरण (stylization) था जसा कि मिश्र की कला में भी भासित होता है। इसमे दो विपरीत स्थितियो के अग को एक साथ सुस्पष्ट दिखाने की जिज्ञासा थी जो पिकासो व ब्राक की १६०५ के ग्रास-पास की घनवादी कला जैसी थी।[2] इन चित्रो के रग भित्ति-चित्रो से समतोष्ण व विविध न होकर उष्ण व सीमित थे। तले सपाट व गहरे रगो मे पटे हुए। चटकीली लाल या सुनहरी पृष्ठभूमि के विरोध मे स्पष्ट स्थूल रेखाग्रो से मडित ग्राकृतिया उभरने लगी। यथार्थ का सदभ टूट जाने से ये ग्राकृतिया न रहकर ग्रब रेखाग्रो से ग्रनुबधित विरोधी रगो के सुसयोजित तले मात्र रह गये जैसा कि हेनरी मातिस की फॉवी कला मे देखने को मिलता है।[3]

जन ग्रथवा गुजराती चित्र सवप्रथम तालपत्रो मे बन मिलते हैं। ये सब चित्र पुस्तकों मे बने मिलते हैं। मुगलकला व राजस्थानी कला के ग्रारम्भ तक छिन्न चित्र व भित्ति चित्र बनाने की प्रथा समाप्त हो गई थी। यह शैली पोथियो की हस्तलिखित लिपि के ग्रनुरूप थी मानो ग्रक्षरो के स्वरूपो से ताल मेल बैठाने के लिये ही इसकी रचना की गई हो।[4] ग्राकृतियो की सरचना मे शायद जन धर्म का भी ग्राग्रह रहा हो। जैन धम के ग्रनुसार ग्रादमी-ग्रौरत, पशु पक्षी कीडे मकोड़े, पेड-पौधे ग्रादि सभी मे जान होती है जिनमे ग्रसीम शक्ति होती है ग्रत इन सभी को एक धरातल पर गिना जाना चाहिये। इसीलिये चित्र धरातल म ग्रालेखन के समय सब प्रकार के ग्रभिप्रायो के साथ एक समान ग्रलकरण की भावना रही है। कलात्मकता की दृष्टि से जन चित्रकला बिजन्टियम या रेवेना की कला के समान गिनी जा सकती है जो एक ग्रोर तो परम्परा से जुडी हुई है व दूसरी ग्रोर उसका विरोध भी करती दिखाई देती है।[5]

जैन चित्रशैली

जैन चित्र शली के दो रूप दिखाई देते हैं—जैन व ग्रजन।[6] प्रारम्भ मे जैन धर्म से सबधित चित्र प्रकाश मे ग्राये। य श्वेताम्बर जन धम से सबधित चित्र थे। निशीथाचूर्णि, ग्रगसूत्र कथारत्न

---

१ यह ग्राख जो वास्तव मे सवा चश्म चेहरे मे यथार्थ स्थिति मे बहुत ही कम दीखती है, परन्तु कलाकार ग्राख के मूल सौंदर्य को प्रस्तुत करना चाहता था। चेहरे के सदभ से हटाकर, इसीलिये उसके मन में दूसरी ग्राख भी पूर्णाकार बनाने की प्रेरणा जागी। यहा वैज्ञानिक दृश्या का उल्लघन किया गया है तथा मानसिक दृश्या का प्रयोग ग्रपनाया गया है।

२ इण्डियन मिनियेचर, पृ० २७ मारियो बुसाग्लि।

३ फ्रैंच का कलाकार जिसने २०वीं शती मे फॉवीवाद ग्रान्दोलन चलाया था।

४ इण्डियन मिनियेचर पृ० ४३ मारियो बुसाग्लि। ५ वही, पृ० ५१।

६ ग्रजैन कथानकों के चित्रण की शैली ग्रजन शली कही जाती है पर ११वी से १७वीं शती तक की चित्र शैली एक सी रही है केवल मर्म शन वह विकासोन्मुख होती रही।

सागर, संग्रहणीसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, कालका कथा, कल्पसूत्र व नेमीनाथ चरित्र आदि की एकाधिक सचित्र पोथियां रची जाने लगी। गुजरात व राजस्थान इनकी रचना के केन्द्र थे। राजस्थान मे उदयपुर, बीकानेर तथा जोधपुर इन कलाकारो का स्थान था जिन्हे 'गुरुओं' की जाति का कहा जाता है। राजस्थान मे बहुत अल्प पारिश्रमिक लेकर जैनपोथियो मे चित्र बनाना इनका व्यवसाय था।[1] बीकानेर के मथेरन या मथेर भी जैन चित्र लिखते थे क्योकि उनके पास आज भी चित्र लिखने का सादा कागज मिल जाता है। इनका कहना है कि ये 'कल्पसूत्र' पर या चौबीस तीर्थंकरो की 'चौवीसी' पर चित्र लिखते थे।[2] नागौर, जालोर, जोधपुर, बीकानेर, खेरडी, उदयपुर आदि जगह जैन पुस्तकें अधिक लिखी गईं। जोधपुर के एक जैन भण्डार मे पालम (दिल्ली) मे चित्रित पुस्तक मिली है। ऐसे ही पालम मे बने ग्रंथ श्री रामगोपाल विजयवर्गीय, श्री संग्रामसिंह व श्री मोतीचन्द्र खजाची के सग्रहो मे हैं। गुजरात मे खभात, पाटण, अहमदाबाद व सूरत इसके केन्द्र थे।

राजस्थान व गुजरात से बाहर भी इस शैली का प्रसार रहा है जहां जैन व अजैन दोनो प्रकार की सचित्र पुस्तकें लिखी जाती रही हैं। सारा भाई माणिकलाल नवाब ने 'चित्र कल्प द्रुम' ग्रंथ मे अथक परिश्रम से विभिन्न क्षेत्रो के बने सैकड़ो दुर्लभ चित्रो को संकलित कर सुलभ बना दिया है। इसमे माडू मे (मध्यप्रदेश) रचित चित्र भी शामिल हैं, जौनपुर (उत्तर प्रदेश) के चित्र भी हैं। १४६५ ई० का जौनपुर मे वेणीदास गौड कायस्थ का रचित एक जैन ग्रंथ श्री नवाब ने खोज निकाला है। और भी जौनपुर के तीन कल्पसूत्रो पर आपने प्रकाश डाला है।[3] जौनपुर मे बना एक ग्रंथ स्वर्णाक्षरो मे लिखा हुआ है जो बड़ौदा के नरसिंह जी के ज्ञान मन्दिर मे है।

अजैन चित्रो मे वसत विलास, लौरिक चदा, गीत गोविंद, बालगोपाल स्तुति, भागवत् पुराण, चौर पचाशिका आदि ग्रंथो का आलेखन गुजरात, मालवा, राजस्थान, पालम (दिल्ली) व उत्तर-प्रदेश मे होता रहा है। १४५१ ई० की गुजरात के शासक अहमदशाह कुतुबुद्दीन के समय की ४३६ इंच लम्बी व ९२ इंच चौड़ी वसंत विलास की खर्रेनुमा प्रति श्री एन. सी. मेहता ने खोज निकाली है। यह कालिदास की 'ऋतु संहार' रचना पर आवृत है तथा कथात्मक शैली मे इसका चित्रण हुआ है।[4] शैली की दृष्टि से अजैन चित्र भी एक ही परम्परा मे आते हैं। ये चित्र बाद के समय के हैं अतः इनकी शैली अधिक परिष्कृत होने लगी थी। गत्यात्मक कथानको के आग्रह के कारण यहां आकृतियो की जकड़न टूट गई है।

१२९९ ई० मे मुस्लिम सल्तनत के जम जाने के बाद भी स्थानीय अर्थ व्यवस्था व्यापारियो के हाथ मे थी। अतः चित्र रचना व पुस्तक निर्माण मे बाधा नही आई। अब लाल के स्थान पर नीली या सुनहरी पृष्ठभूमि बनाई जाने लगी। १५वी शती के चित्रो में परसिया की तुर्कमान शैली

---

१. आकृति, १९६६, अंक २, जैन चित्रकला—श्री रामगोपाल विजयवर्गीय।
२. आकृति, १९६६, अक २, जैन चित्रकला—श्री रामगोपाल विजयवर्गीय।
३. भारत की चित्रकला—श्री रायकृष्णदास।
४. स्टडीज इन इण्डियन पेंटिंग, पृ० १६, एन. सी, मेहता।

का स्पष्ट प्रभाव झलकता है ।[1] जिसके लक्षण थे-छाया, प्रकाश का अभाव, दृश्या का उन्मुक्त प्रयोग, गहराई की कमी आदि । जैनों का परसिया से व्यापारिक संबंध था । इनके रंग विशेषतौर पर नीला, (लाजवर्दी-'लेपिज-लाजली') परसिया से मंगाये जाते थे ।

विषय विभिन्नता के साथ ही रेखाओं में भी विविधता व गोलाई आने लगी । कपड़े झीने व पारदर्शक बनाये जाने लगे जो तरह-तरह के बेल बूटों से सुसज्जित होते थे । अंकन में धैर्य बढ़ने लगा । आकृतियों का 'स्पेस' में उचित स्थान होने लगा तथा वे और भी स्पष्ट उभरने लगीं—उनके आसनों में गति व वैविध्य आने लगा । रंग की श्रेणियां (टोंस) बढ़ गईं तथा अब वे अधिक संतुलित तलों में संयोजित होने लगे । शैली का आग्रह १६वीं शती में यथार्थ की ओर झुकता सा दिखने लगा, फिर भी तले एक दूसरे पर बनाना नहीं छूटा । आकृतियां वैसे ही सौंदर्यमूलक सूत्र के अनुसार विघटित होती रहीं । अभी भी चित्र द्वंविधात्मक ही बनते थे । इस शैली की महत्ता आने वाली चित्रकला की भूमि तैयार करने में थी । इस शैली ने भारतीय कला को नये आयाम दिये हैं- वे आयाम जिसके लिये यूरोप के कलाकार १६वीं शती के अंतिम चरण में व २०वीं शती के प्रारम्भ में प्रयत्न करते रहे । राजस्थानी चित्रकला निश्चय ही जैन चित्र शैली की देन है । इसकी मौलिकता व शक्ति को भुलाया नहीं जा सकता ।



---

१ इण्डियन पेंटिंग, डब्ल्यू जी आर्चर ।

२६ | लोककला और लोकसंस्कृति

•

डॉ० महेन्द्र मानावत

जैनी लोग धर्मजीवी होते है। उनका सारा जीवन धार्मिक ताने-बाने से गुंथा हुआ होता है। व्रत, उपवास, अनुष्ठान, तपस्या, ईश-आराधना एवं अन्यान्य धार्मिक क्रियाकलापो तथा विश्वासो में समर्पित भाव से अपने तन-मन-धन को लगाने मे ही उन्हें आनन्द की अनुभूति होती है। साहित्य, संगीत, संस्कृति एवं कला के उन्नयन तथा प्रचार-प्रसार मे जितना योग जैनियो का रहा है उतना अन्य किसी का नही। जैन ग्रन्थ-भण्डारों मे संरक्षित विपुल एवं समृद्ध सामग्री यदि विस्मृत कर दी जाय तो हमारे इतिहास की सांस्कृतिक पीठिका का नक्शा ही नगण्य हो जायगा। जैन मन्दिरो का कलात्मक शिल्प और वास्तुकारीगरी की कही कोई समता नही। मन्दिरो के भितिचित्र, हस्तचित्र तथा काष्ठ-चित्रों के संरक्षण एवं विकास मे भी इनका बेजोड़ योग रहा है।

सांस्कृतिक अभिरुचि :

जैनी लोग प्रारम्भ से ही वणिक अधिक रहे हैं। अपने व्यापार द्वारा विपुल धन कमाकर अधिकाधिक पैसा अपने धर्म-कर्मों तथा सास्कृतिक अभिरुचियों मे खर्च करने को उनकी तबियत रहती है। लोक-संस्कार जितने उत्साह और आनन्दपूर्वक जैनियों मे मनाये जाते हैं उतने अन्य जातियों मे नही। अन्य जातिया स्वतः मनोरंजित होती हैं, स्वयं नाचती गाती हैं परन्तु जैनियो के यहां अन्यान्य कलापेशा जातियां जो-जो अपना हुनर कर्म करती हैं, वे अपनी-अपनी कला की उत्कृष्ट कृतिया ऐसे प्रसंगों पर प्रस्तुत करती हैं। विवाह-शादी पर चित्रकार भांति-भांति के चितराम दीवालों पर अंकित करता है। विवाह के लिये ये चित्र मांगलिक समझे जाते हैं इसीलिए इनके बिना विवाह की शुरुआत हो ही नही सकती। यो अब तक की खोजो के अनुसार संसार की प्राचीन से प्राचीनतम कलाओ के उदाहरण भितिचित्रों के ही प्राप्त हुए हैं। ये भितिचित्र चाहे पुरातनगुफाओ के हो, चाहे धर्मस्थानों, राजप्रासादो अथवा सेठ श्रीमंतो की हवेलियों के हो, कलात्मक अंकनों मे सर्वाधिक महत्त्व इन्हीं भित्तिचित्रों का रहा है। प्राचीन ग्रंथो मे ऐसे वर्णन भी मिलते हैं जबकि श्रेष्ठिजन अपने उद्यानो में विविध प्रकार की काष्ठ, प्रस्त, चित्र तथा लेप्य कारीगरी से आलीशान चित्रशालाएं बनवाते थे। श्रुतांग 'नाया धम्म कहाओ' मे मणिकार श्रेष्ठिनन्द राजगृह के उद्यान मे एक इसी प्रकार की चित्रशाला बनवाता है जिसमे सैकड़ों स्तम्भ और नानाप्रकार की लकड़ी, चूना, रंग व मिट्टी तथा विविध प्रकार के द्रव्यो की आकृतियो का निर्माण कराता है।

विवाह के विविध प्रसंगों पर गाने बजाने वाले कलावंत पनपे, ढोल बजाने वाला ढोली, बांकिया बजाने वाला बांकियादार तथा ताशेवाला को संरक्षण मिला कारण कि गाजे-बाजे के बिना विवाहश्री का रंग ही फीका रह जाता है। इसी प्रकार कुं कु म के तिलक के लिए कलात्मक चोपडे, लडकी को देने के लिये कलात्मक बाजोट, दूल्हे के बांदने के लिए कलात्मक तोरण, कलात्मक खाट, कलात्मक रोडीथंभ, कलात्मक पेटियो की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए खैरादियों को धंधा मिला और उनकी सम्पूर्ण कलात्मक काष्ठकलाओं को संरक्षण मिला। विविध नृत्यमुद्राओं तथा वाद्य-भंगिमाओं में देवदासियों के सुंदर कलात्मक भवन मंदिरों में तथा घरों में सजावट के प्रसाधन बने। कठपुतलियों की हजारों वर्षों की परम्परा को जीवित रखने में भी जैनियों का ही विशेष योग रहा है। विवाह शादियां तथा अन्यान्य मौकों पर ये पुतली वाले अपनी पुतलियां लेकर आते और उनके विविध करतब दिखाकर इनाम इकराम पाते थे। आज तो यहां की यह धरोहर विदेशों तक को लुभाने चकित करने में कामयाब हुई हैं। प्रतिवर्ष विदेशों से आने वाले सैलानी इनके खेल देखकर दांतों तले अंगुली दबाते हैं। भारतीय लोककला मण्डल उदयपुर जैसी संस्था ने तो इन्हीं पुतलियों के आधार पर पारम्परिक पुतलियों का सर्वोच्च अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया था।

लोक साहित्य का सृजन और संरक्षण

लोक साहित्य के संरक्षण में भी जैनियों का कम योग नहीं रहा। पवाड़े, फागु, चर्चरी, बेली, रास, हीयाली आदि की विपुल रचनाकर इन्होंने लोक जीवन की इन समृद्ध विधाओं को विकसित और संरक्षित कर इन्हें लुप्त होने से बचाया। महाराणा कुम्भा के सम्मानित गुरु हीरानन्द सूरि पहुँचे हुए जैन कवि थे जिन्होंने सं० १४८५ में विद्याविलास पवाड़ा बनाया जो लोककथा सम्बन्धी राजस्थानी का पहला काव्य माना जाता है। सुप्रसिद्ध प्रेमाख्यान ढोलामारू के प्राचीन दोहों को एकत्र कर जैन कवि कुशललाभ ने ढोलामारू की चोपाई की रचना की। इसी प्रकार कवि हीरकलश की 'सिंहासन बत्तीसी', हेमानन्द की 'बैताल पचीसी' तथा 'भोजचरित्र चोपाई' भी लोककथाओं पर आधारित हैं। राजा विक्रम की लोककथाओं के सम्बन्ध की रास की रचना में मंगल माणिक्य ने विशेष नाम कमाया। इससे भी अधिक कार्य हुआ लोककथाओं और लोकगीतों की देशियों के आधार पर लोकसाहित्य के विपुल सृजन का। समय-सुन्दर, राजलाभ, महिमसमुद्र, हीरकलश, हेमानन्द, समयप्रमोद, ज्ञानविलास, जिनहर्ष, जयनिधान, धर्मसी, हंस प्रमोद, देपाल आदि कवियों का हीयाली साहित्य आज भी उत्कृष्ट साहित्य की लोकधरोहर बना हुआ है। विवाह शादियों में आज भी पग-पग पर जंवाई को हीयालियों के अर्थ छुड़ाने पड़ते हैं। यदि जंवाई इनके अर्थ नहीं छुड़ा सकता है तो उसे गीत में गालियां तक दी जाती हैं। मुकलावे पर जब जंवाई को साले में े दिया जाता है तो प्रातः बाहर बैठी औरतें नानाप्रकार की हीयालियां गाती हैं जिनका भीतर से जंवाई को जवाब देना होता है। इसी प्रकार भोजन के समय भी कई प्रकार की पारसियां-पारखियां गाई जाती हैं।

लेखन-कला

लेख लिखने के आधारपत्रों का भी अपना एक कलात्मक इतिहास है। इन आधारों में चर्म, काष्ठ, वस्त्र, लोह, ताम्र रजत आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इन पर लेखन की पद्धतियां भी कई थीं। इन पद्धतियों में अक्षर खोदकर लिखने की उत्कीर्णन पद्धति, छीलकर लिखने की स्यूत

पद्धति, बुनकर लिखने की व्यूत पद्धति, छेदकर लिखने की छिन्न पद्धति, भेदकर लिखने की भिन्न पद्धति, जला कर लिखने की दग्ध पद्धति, तथा ठप्पा देकर लिखने की संक्रान्तित पद्धति विशेष रूप मे प्रचलित थी। महीन से महीन लेखन लिखने की कला मे भी जैनियो मे मुख्यतः जैनसाधु का मुकाबला कोई नही कर सकता।

लोकनाट्य : ख्याल-तमाशे :

नाटको तथा ख्याल-तमाशों के क्षेत्र मे भी जैनियो का उल्लेखनीय योग रहा है। रास चर्चरी, फागुसज्ञक काव्य ग्रन्थों मे भी इनका उल्लेख मिलता है। ये नाटक गेय एवं अभिनेय होते थे, जो किन्ही मांगलिक प्रसंगो, उत्सवो, गुरु-आगमनो तथा मन्दिर की प्रतिष्ठा के मौको पर खेले जाते थे। प्रदर्शको के साथ-साथ दर्शक भी एकरस होकर उनके साथ गाते थे। इन खेलो मे डडियों का प्रयोग विशेष रहता था तथा नृत्य के समय तालियों का बडा जोर था। फाग काव्य फागुन मे विशेष रूप से खेले जाते थे इसलिए इनका यह नाम चल पडा प्रतीत होता है।

नाटकों तथा खेल तमाशो का यह जोर तो आज भी देखने को मिलता है। गन्धर्व जाति के लोग अपने सभी ख्याल जैन-मन्दिरो अथवा जैनियों की वस्ती मे ही करते हैं। जैनियो के अतिरिक्त ये कहीं अपना मंच नही मांडते। इनका पड़ाव मन्दिरो मे रहता है। जैनियो के वहीं ओसरे के अनुसार इनके खाने-पीने की व्यवस्था होती है और व्रत-नियमों में भी जैनियो की तरह ये बधे होते हैं। ये लोग रात्रिभोजन भी नही करते और बड़े सात्विक होते हैं। इनके सभी ख्याल धार्मिक आख्यानो से सम्बन्वित होते हैं। इन्हें प्रदर्शित करने के लिए तख्तो का मंच बनाया जाता है जो तीन ओर से खुला होता है। इस पर एक साधारण सा चंदोवा तान दिया जाता है। प्रारम्भ में सभी पात्र स्तुति-वंदन के लिए मंच पर आते हैं। मंच के एक ओर गाने बजाने वाले बैठ जाते हैं। इन्हीं के पास इनका पोथीवाचक प्रेरक बैठा रहता है जो प्रत्येक पात्र से सम्बन्वित बोल सुनाकर पात्र को गाईड करता रहता है। ये लोग मुख्यतः श्रीपाल-मैनासुन्दरी, सुरसुन्दरी, चन्दनबाला, सोमासती अंजना, सत्यवान राजा हरिश्चन्द्र आदि का खेल करते है। अलवर, भरतपुर तथा जयपुर मे इन लोगों की अच्छी बस्ती है।

राजस्थान में ख्यालो की वड़ी समृद्ध परम्परा रही है। ये ख्याल यहां गायकी, नृत्य-अदायगी तथा रंगशिल्प की दृष्टि से विभिन्न शैलियो मे प्रदर्शित किये जाते हैं। इनके सरक्षण मे भी जैनियो का भारी योग रहा है। जैनियों में कई अच्छे लेखक भी हुए हैं जिन्होने पारम्परिक रंगतों मे ख्यालो की उत्कृष्ट रचना की। ये ख्याल आज भी यहां प्रदर्शित होते हैं। तुर्रा-कलगी के ख्यालो के पीछे तो जैनियों ने सैकडो रुपयो की निछरावल तक करदी। सुप्रसिद्ध संत चौथमलजी महाराज ने ख्यालों की धुनों में धार्मिक कथानकों पर कई चरित्र लिखे, जिन्हे वे अपने व्याख्यानों मे नियमित रूप से गा-सुना कर लोगो को आनन्दमग्न कर देते थे। उनके व्याख्यान मे जात-पांत धर्म-कर्म का कोई भेदभाव नहीं रहता था। हजारों की तादाद मे सारा गांव उन्हे सुनने के लिए टूट पड़ता था।

उदयपुर में ख्याल-तमाशो का एक समय वड़ा जोर था। जसवंत सागर ने अपने उदयपुर वर्णन मे इनका वडे विस्तार से उल्लेख किया है। उसने यहां तक लिख दिया कि—

दूहा दसरावें दीवाली पै, तमाशा गणगोर।
एसहू उदयापुर पछै, ख्याल नही इन ठौर॥

इसी उदयपुर मे एक कवि देवीलाल हुए जिन्होंने कई ख्यालो की सरस रचना की। इनका एक गुटका कुछ वर्ष पूर्व मेरे देखने मे आया था जो लगभग सौ वर्ष पुराना था। इसमे छोटे-छोटे कोई आठ ख्याल लिखे हुए थे। सौ डेढ-सौ वर्ष पूर्व के देवीलाल की भाति आज भी उदयपुर में एक देवीलाल और हैं—श्री देवीलाल सामर, जिन्होने न केवल ख्याल तमाशो की रचना ही की अपितु भारतीय लोक कलामडल की स्थापना कर न केवल राजस्थान मे न केवल हिंदुस्तान मे बल्कि विदेशो तक मे यहा की लोककला को प्रतिष्ठित कर बेनजीर मिसाल कायम कर दी। यहा के कला विषयक कई प्रकाशन भी अपने क्षेत्र के अग्रणी सिद्ध हुए हैं। अब तो विश्वविद्यालयो मे पठन पाठन मे भी इनका उपयोग होने लगा है।

लोक चित्रकारी

जैसा कि पहले कहा जा चुका है चित्रकारी के क्षेत्र में जैनियो का जो योग रहा है वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। पाप-पुण्य धर्म-अधर्म सत्य झूठ सुकर्म-कुकर्म सदाचार-दुराचार से सम्बंधित सैकडो-हजारो प्रकार के शिक्षात्मक चित्रो द्वारा समाज को सदाचार तथा सुसस्कृतमय बनाने मे निश्चय ही निराली भूमिका निर्मित हुई है और इसमे मनुष्य सरल तथा सयमी जीवन जीने की ओर प्रवृत्त हुआ फलत अधिकाधिक सेवा तथा धर्माचरण की ओर उसका तन, मन तथा धन लगा। यही कारण है कि जितने भी धार्मिक कर्म प्रतिष्ठान हमें देखने को मिलते हैं उनमे से अधिकांश जैनियो द्वारा निर्मित प्रवर्तित हैं।

कुछ वर्ष पूर्व जैनियो द्वारा निर्मित मुझे चित्रमय एक ऐसा सापसीढ़ी का खेल प्राप्त हुआ जिसमें सभी ७२ खडो के विविध नाम अंकित किये हुए हैं। इनमे सबसे ऊपर गजलोक शिवलोक, वैकुंठ तथा ब्रह्मलोक हैं। सीढियो से प्राप्त होने वाले लोको मे चन्द्रलोक, सूरजलोक इन्द्रलोक, अमरापुर तपलोक तथा दिगपाल लोक प्रमुख हैं। ये सीढिया भी हरिभक्ति, देवतपस्या पूजाव्रतधारी माता पिता की भक्ति, दयाभाव, परमारथ जसे स्थान-खण्डो से प्रारम्भ होती हैं। सापो के काटने वाले खडो मे परनारी मिथुन, विश्वासघात, झूठ-चुगली गौ-हत्या, अधर्मी, मिथ्यावान, पशुहत्या, ब्रह्महत्या जसे खण्ड हैं जिनसे स्पष्ट है कि यदि मानव में उपयुक्त दुर्गुण हैं तो उसकी दुर्गति स्वाभाविक है और यह पतन साँप के द्वारा उसे ठेठ तलातल, रसातल नरक, पलीतयोनी जसे स्थानो पर पहुचाता है जहां मनुष्य को भारी यातनाओ की चक्की में पीसना पडता है। सापसीढ़ी जैसे सकडो चित्रो में मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्म के अनुसार फल चक्र मिलेंगे। पृथ्वी तथा अन्य ग्रहो के सम्बन्ध के भी अनेक चित्र मिलते हैं। तेरापथी साधुओ ने चित्रकारी तथा लिपिकारी में विशेष कौशल प्रकट किया है।

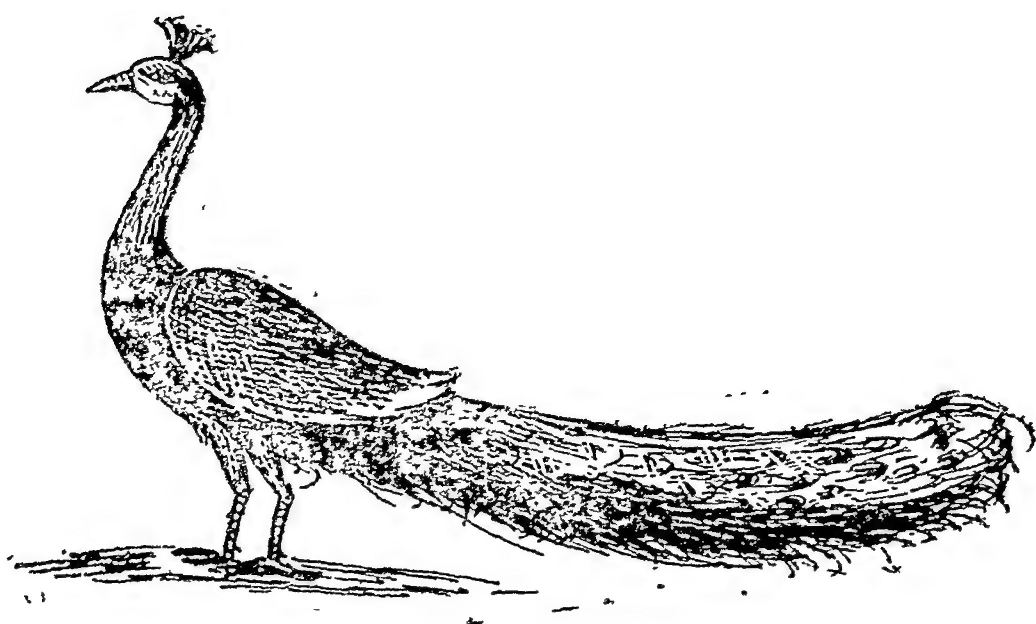
धर्मस्थानों का साहित्य

कहने का तात्पर्य यह कि लोककला लोकसस्कृति और लोकसाहित्य का कोई क्षेत्र और कोई विधा ऐसी नहीं जिसे जैनियो का सरक्षण और सृजन में योग नहीं प्राप्त हुआ हो। जनलेखको ने अपने अपने समय की कथा, कहानिया एव गीतो को धर्म का बाना पहनाकर जो सरक्षण दिया उससे तत्कालीन समाज, सभ्यता एव सस्कृति का भी भलीप्रकार अध्ययन-अनुशीलन किया जा सकता है। धर्मस्थानों में धार्मिक लोकसाहित्य की आज भी इतनी विधाएं मिलती हैं कि उन्हें देख-सुनकर हमें चकित होना पडता है। इनमें से कुछ भजन तवन ढालें ख्यावने, पासरो, लेगे चोरे, गणधर,

विरहमान, सपने, बधावे, स्तुतियां, थोकडे, आख्यान, गरभचितारणीयें, चूंदड़ियां, झूकडे, पटोदिये, बारहमासे, तिथिगीत, चौक, सरवण, झामटडे, गरवे, लावणियां आदि का सग्रह मैंने स्वयं ने किया है। अब तक इस संग्रह की ओर हमारा ध्यान नहीं के बराबर गया है। इस ओर अधिक सग्रह और संधान की आवश्यकता है।

लोककला के विविध रूप :

जैनियों का कला-संस्कृति के क्षेत्र में ही नहीं अन्यान्य समाज, जाति तथा वर्ग विशेष के उन्नयन-विकास में भी भारी योग रहा है। भीलो के सुप्रसिद्ध गवरीनाट्य में अन्य भारत गाथाओं के साथ वेलावाणिया का भारत भी सुप्रसिद्ध है। इससे भी जैनियो की कलाभिरुचि और समाज सेवा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। बाबा रामदेवजी के समय दला तथा लाखा वाणिया हुए जिनके लिखे कई भजन आज भी रामदेवजी की पूजक जातियों में सुनने को मिलते हैं। लोक संस्कृति के विशिष्ट स्वरूपो में थापो, भूमि अलंकरणों तथा मेंहदी मांडनों के प्राचीन हस्त पन्ने भी जैनियों के संग्रहों में विपुल रूप में मिलते हैं। लगभग ढाई सौ वर्ष पुराने त्योहारों के चौक पूरने से सम्बन्धित बहुरंगी मांडनें, पलंगो के पायों पर के रागरागनियों के लोकचित्र, दरियों पर विविध नृत्य मुद्राएं तथा पशु-पक्षियो की बड़ी सुन्दर बुनावट भी मेरे देखने में आई है। प्रतिदिन के प्रयोग-उपयोग में आने वाली हर छोटी से छोटी चीज को लोककलात्मक अंकन देकर उसे अधिकाधिक आकर्षक और नयन-सुखी रूप देने में शायद ही जैनियो की कोई समता कर सके।



२

भाषा और साहित्य

२७ | जैन साहित्य की विशेषताएँ

●

डॉ० नरेन्द्र भानावत

(१) विविध और विशाल

जैन साहित्य विविध और विशाल है। सामान्यत यह माना जाता है कि जैन साहित्य म निर्वेद भाव को ही अनेक रूपो और प्रकारों मे चित्रित किया गया है। यह सच है कि जैन साहित्य का मूल स्वर शान्त रसात्मक है पर जीवन के अन्य पक्षो और सावजनीन विषयो की ओर से उसने कभी मुख नहीं मोडा है। यही कारण है कि आपको जितना वैविध्य यहा मिलेगा, कदाचित अन्यत्र नही। एक ही कवि ने श्रृगार की पिचकारी भी छोडी है और भक्ति का राग भी अलापा है। वीरता का ओजपूण वणन भी किया है और हृदय को विगलित कर देने वाली करुणा की वरसात भी की है। साहित्य के रचनात्मक पक्ष से आगे वढकर उसने उसके वोधात्मक पक्ष को भी सम्पन्न बनाया है। व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, मन्त्र, तन्त्र इतिहास, भूगोल दशन, राजनीति आदि वाङ्मय के विविध अग उसकी प्रतिभा का स्पश कर चमक उठे हैं।

विषय की दृष्टि से सम्पूण जैन साहित्य दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है (१) आगम साहित्य और (२) आगमेतर साहित्य। आगम साहित्य के दो प्रकार हैं। अथआगम और सूत्रआगम। तीथकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट वाणी अर्थागम है। तीथकरो के प्रवचन के आधार पर गणधरो द्वारा रचित साहित्य सूत्रागम है। ये आगम आचार्यों के लिये अक्षय ज्ञानभण्डार होने से 'गणिपिटक' तथा सख्या में बारह होने से 'द्वादशांगी' नाम से भी अभिहित किये गये हैं। प्रेरणा की अपेक्षा से ये अग प्रविष्ट कहलाते हैं। द्वादशागी के अतिरिक्त जो अन्य उपांग, छेद, मूल और आवश्यक हैं वे पूवधर स्थविरो द्वारा रचे गये हैं और अनग प्रविष्ट कहलाते हैं।

आगमेतर साहित्य के रचयिता जैन आचार्य, विद्वान सन्त आदि हैं। इसमे गद्य और पद्य के माध्यम से जीवनोपयोगी सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। यह वविध्यपूर्ण जन साहित्य अत्यन्त विशाल है। हिन्दी क आदिकाल का अधिकाश भाग तो इसी मे धनी है। यह साहित्य निर्माण की प्रक्रिया आज तक अनवरत रूप से जारी है। इसका प्रकाशन बहुत कम हुआ है। इसके प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है। ज्यो-ज्यों यह विद्वानों की दृष्टि मे आयेगा त्यो त्यों साहित्य के इतिहास पर नया प्रकाश पडता जायेगा।

(२) विभिन्न काव्य रूपो का निर्माण :

जैन साहित्य की यह विविधता विषय तक ही सीमित नहीं रही उसने रूप और शैली मे भी अपना कौशल प्रकट किया। आगमेतर साहित्य को अभिव्यक्ति की दृष्टि से दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं (१) पद्य और (२) गद्य। ये विविध रूपो मे विकसित हुए। पद्य साहित्य के सौ से अधिक काव्य रूप देखने को मिलते हैं। सुविधा की दृष्टि से समस्त पद्य साहित्य के चार वर्ग किये जा सकते हैं। चरित काव्य, उत्सव काव्य, नीति काव्य और स्तुति काव्य। चरित काव्य मे सामान्यतः किसी धार्मिक पुरुष, तीर्थंकर आदि की कथा कही गई है। ये काव्य, रास, चौपाई, ढाल, पवाड़ा संधि, चर्चरी, प्रबन्ध, चरित, सम्बन्ध, आख्यानक, कथा आदि रूपों मे लिखे गये हैं। उत्सव काव्य विभिन्न पर्वो और ऋतु विशेष के बदलते हुए वातावरण के उल्लास और विनोद को चित्रित करते है। फागु, धमाल, बारहमासा, विवाहलो धवल, मगल आदि काव्य रूप इसी प्रकार के हैं। इनमे सामान्यतः लौकिक रीति-नीति को माध्यम बनाकर उनके लोकोत्तर रूप को ध्वनित किया गया है। नीति-काव्य जीवनोपयोगी उपदेशो से सम्बन्धित है। इनमे सदाचारपालन, कषायत्याग, व्यसनत्याग, ब्रह्मचर्य, व्रत, पच्चक्खाण, भावना, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, दान, दया, संयम, आदि का माहात्म्य तथा प्रभाव वर्णित है। संवाद, कक्का, मातृका, बावनी, छत्तीसी, कुलक, हीयाली आदि काव्य रूप इसी प्रकार के हैं। स्तुतिकाव्य महापुरुषो और तीर्थंकरो की स्तुति मे सम्बन्धित हैं। स्तुति, स्तवन, स्तोत्र, सज्झाय, वीनती, नमस्कार, चौवीसी, वीसी आदि काव्यरूप स्तवनात्मक ही हैं।

स्थूल रूप से गद्य साहित्य के भी दो भाग किये जा सकते हैं। मौलिक गद्य सृजन और अमौलिक गद्य, टीका, अनुवाद आदि। मौलिक गद्य सृजन धार्मिक, ऐतिहासिक, कलात्मक आदि विविध रूपो मे मिलता है। धार्मिक गद्य मे सामान्यतः कथात्मक और तात्विक गद्य के ही दर्शन होते हैं। ऐतिहासिक गद्य गुर्वावलि, पट्टावली, वशावलि, उत्पत्तिग्रन्थ, दफ्तर वही, टिप्पण आदि रूपों मे लिखा गया है। इन रूपो मे इतिहास-धर्म की पूरी-पूरी रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है। आचार्यो आदि की प्रशस्ति यहा अवश्य है पर वह ऐतिहासिक तथ्यो की हत्या नही करती। कलात्मक गद्य वचनिका, दवावैत, वात, सिलोका, वर्णक, सस्मरण आदि रूपो में लिखा गया है। अनुप्रासात्मक झंकारमयी शैली और अन्तर्तुकात्मकता इस गद्य की अपनी विशेषता है। आगमो मे निहित दर्शन और तत्व को जनोपयोगी बनाने की दृष्टि से प्रारम्भ मे निर्युक्तिया और भाष्य लिखे गये। पर ये पद्य मे थे। बाद मे चलकर इन्ही पर चूर्णियां लिखी गई। ये गद्य मे थीं। निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि साहित्य प्राकृत अथवा सस्कृत मे ही मिलता है। आगे चलकर टीकायुग आता है। ये टीकाए आगमो पर ही नही लिखी गई वरन् निर्युक्तियो और भाष्यो पर भी लिखी गई। ये टीकाएं सामान्यतः पुरानी हिन्दी मे लिखी मिलती हैं। इनके दो रूप विशेष प्रचलित हैं टब्बा और बालावबोध। टब्बा मे सक्षिप्त रूप है जिसमे शब्दो के अर्थ ऊपर, नीचे या पार्श्व मे लिख दिये जाते हैं। पर बालावबोध में व्याख्यात्मक समीक्षा के दर्शन होते हैं। यहां निहित सिद्धान्त को कथा और दृष्टान्त दे-देकर इस प्रकार विवेचित किया जाता है कि बालक जैसा मन्द बुद्धि वाला भी उसके सार को ग्रहण कर सके। पद्य और गद्य के ये विभिन्न साहित्य रूप जैन-साहित्य की ही अपनी विशेषता है।

(३) लोकभाषा का प्रयोग :

जैन-साहित्यकार सामान्यतः साधक और सत रहे हैं। प्रवचन, व्याख्यान, लोकोपदेश उनके

दैनिक कार्यक्रम का अंग रहा है। साहित्य उनके लिए विशुद्ध कला की वस्तु कभी नहीं रहा, वह धार्मिक प्रचार और साधना का अंग बनकर आया है। यही कारण है कि अभिव्यक्ति में सरलता, सुबोधता और सहजता का सदा आग्रह रहा है। भाषा विज्ञान का यह सामान्य नियम रहा है कि जब-जब साहित्यकारों ने किसी भाषाविशेष को व्याकरण के जटिल नियमों में बांधा है तब-तब जन साधारण ने सामान्य लोक-भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। जब वैदिक संस्कृत कठोर नियमों में जकड़ दी गई तब प्राकृत लोकभाषा के रूप में प्रचलित हुई। जैन-साहित्य के मूल-स्रोत सारे आगम प्राकृत भाषा में ही रचे गये हैं। यह वह युग था जब इन जनपदीय भाषाओं का तिरस्कार किया जाता था और अधम पात्रों के मुख से संस्कृतादि नाटकों में प्राकृत के बोल उच्चरित करवाये जाते थे। पर महावीर ने इस बात की परवाह नहीं करते हुए अपनी अमरवाणी का उद्घोष प्राकृत के माध्यम से ही किया। जब प्राकृत को भी नियमों की कठोर कारा में बन्दी बना दिया गया तब जैन साहित्यकार अपनी बात अपभ्रंश में कहने लगे। जब अपभ्रंश से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाएं विकसित हुई तो जैन-साहित्यकार अपनी बात इन्हीं जनपदीय भाषाओं में सहज भाव से कहने लगे। यह भाषागत उदारता उनकी प्रतिभा पर आवरण नहीं डालती वरन् भाषाओं के ऐतिहासिक विकासक्रम को सुरक्षित रखे हुए हैं।

(४) समन्वयात्मक सहज-सरल शैली

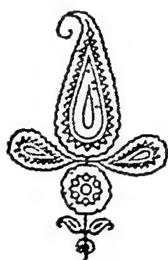
जैन साहित्यकार साहित्य को कलाबाजी नहीं समझते। वे उसे अकृत्रिम रूप से हृदय को प्रभावित करने वाली आनन्दमयी कला के रूप में देखते हैं। जहां उन्होंने लोक-भाषा का प्रयोग किया वहां भाषा को अलंकृत करने वाले सारे उपकरण ही लोक जगत् से ही चुने हैं। जनेतर साहित्यकारों ने (विशेष कर चारणी शैली में लिखित साहित्य) जहां भाषा को विशेष प्रकार के शब्द चयन द्वारा विशेष प्रकार के अनुप्रास प्रयोग (वयण सगाई आदि) द्वारा और विशेष प्रकार के छन्दानुबन्ध द्वारा एक विशेष प्रकार का आभिजात्य गौरव और रूप दिया है वहां जैन साहित्यकार भाषा को अपने प्रकृत रूप में ही प्रभावशाली और प्रेषणीय बना सके हैं। यहां अलंकारों के लिए आग्रह नहीं। वे अपने आप परम्परा से युगानुकूल चले आ रहे हैं। शब्दों में अपरिचित-सा अकेलापन नहीं, उनमें पारिवारिक सम्बन्धों का सा उल्लास है। छन्दों में तो इतना वैविध्य है कि सभी धर्मों, परम्पराओं और रीति रिवाजों से वे सीधे लिये चले आ रहे हैं। ढालों के रूप में जो देशियां अपनाई गई हैं उनमें कभी तो 'मोहन मुरली वाले छे' और कभी 'गोकुल नी गोवालणी महो बेचवा चाली'। लोकोक्तियों और मुहावरों का जो प्रयोग किया गया है, वे शास्त्रीय कम और लौकिक अधिक हैं। पर इस विश्लेषण से यह न समझा जाय कि उनका काव्यशास्त्रीय ज्ञान अपूर्ण था या बिलकुल ही नहीं था। ऐसे कवि भी जैन जगत् में हो गये हैं जो शास्त्रीय परम्परा में सर्वोच्च ठहरते हैं आलंकारिक चमत्कारिता, शब्दक्रीडा और छन्दशास्त्रीय मर्यादा पालन में जो होड़ लेते प्रतीत होते हैं। पर यह प्रवृत्ति जैन साहित्य की सामान्य वृत्ति नहीं है। शैलीगत समन्वय भावना में दर्शन यहां स्पष्ट हो जाते हैं, जहां वे नायक को मोहन और नायिका को गोपी कह देते हैं। लगता है जिस समय वैष्णव धर्म और वैष्णव साहित्य का अत्यन्त व्यापक प्रचार था, उस समय जन-साधारण को अपने धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए जैन साहित्यकारों ने अपने साहित्य में कृष्ण, राधा गायों गोप, गोकुल, मुरली यशोदा, जमुना, आदि शब्दों को स्थान दे दिया। विभिन्न देशियां तो लगभग वैष्णव प्रभाव को ही सूचित करती हैं।

लगता है कि यहा सामान्य रूप से प्रत्येक जैन कवि ने इन बडे-बड़े भव्य रूपको का सहारा लिया है। तात्विक-सिद्धान्तो को लौकिक व्यवहारो के साथ 'फिट' बैठाकर ये कवि गूढ से गूढ़ दार्शनिक भाव को बड़ी सरलता के साथ समझा सके हैं। निर्गुण सन्त कवियो की तरह विरोधमूलक वैचित्र्य और उलटबाँसियो के दर्शन यहा नही के बराबर हैं। फिर भी इतना अवश्य है कि कुछ कवियो ने चित्रालकार काव्य लिखकर अपनी चमत्कारप्रियता का परिचय दिया है। मयूरबन्ध, पद्मबन्ध, छतरीबन्ध, धनुषबन्ध, हस्तीबन्ध, भुजाबन्ध, स्वस्तिकबन्ध, आदि काव्य प्रकार इस सन्दर्भ मे द्रष्टव्य हैं।

(१०) शान्तरस की प्रधानता :

जैन-साहित्य मे यो तो सभी रस यथास्थान अभिव्यजित हुए हैं पर अगीरस शान्तरस ही है। जैन धर्म की मूल भावना आध्यात्मप्रधान है। वह ससार से विरक्ति और मुक्ति से अनुरक्ति की प्रेरणा देती है। शान्तरस का स्थायी भाव निर्वेद है। यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक कथा-काव्य का अन्त शान्त रसात्मक ही है। इतना सब कुछ होते हुए भी जैन-साहित्य मे शृंगार रस के बडे भावपूर्ण स्थल और मार्मिक प्रसग भी देखने को मिलते है। विशेष कर विप्रलंभ शृंगार के जो चित्र हैं वे बडे मर्मस्पर्शी और हृदय को विदीर्ण करने वाले है। मिलन के राशि-राशि चित्र वहा देखने को मिलते हैं जहा कवि 'सयमश्री' के विवाह की रचना करता है। यहा जो शृंगार है वह रीति-कालीन कवियों के भावसौन्दर्य से तुलना मे किसी प्रकार कम नही है। पर यह स्मरणीय है कि यहा शृंगार शान्त रस का सहायक बनकर ही आता है। इससे नायक विरत ही होता है। इस शृंगार-वर्णन मे मन को सुलाने वाली मादकता नही, वरन् आत्मा को जागृत करने वाली मनुहार है। शृंगार की यह प्रतिक्रिया आवेगमयी बनकर नायक को शान्तरस के समुद्र की गहराई मे बहुत दूर तक पैठा देती है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जैन-साहित्य की यह विचारधारा केवलमात्र आदर्शवाद कहकर टाली नही जा सकती। आज के इस भौतिक युग ने वैज्ञानिक प्रगति द्वारा जहा चरण को गति दी है, वहा दिशा नही, जहा मस्तिष्क को ज्ञान दिया है, वहा विवेक नही, जहा मन को शक्ति दी है वहा भक्ति नही। ऐसे समय मे इस साहित्य के चिन्तन-मनन द्वारा विषमता मे समता स्थापित करने की प्रक्रिया आरम्भ की जा सकती है।



२८ | प्राकृत जैन साहित्य

o

डॉ० के० ऋषभचन्द्र

उपलब्ध सामग्री के अनुसार आठवीं शताब्दी से राजस्थान में प्राकृत साहित्य सृजन के प्रमाण मिलते हैं। यह प्रवृत्ति सत्रहवीं शताब्दी तक चलती रही और ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी का काल समृद्ध रहा।

एक परम्परा के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि वीरसेनाचार्य ने चित्तौड़ में ही 'षट्खंडागम' और 'कषाय प्राभृत' सीखा था। उनके बाद साहित्य सृजन में जिनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा वे हैं हरिभद्रसूरि, उद्योतनसूरि, जिनेश्वरसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनप्रभसूरि इत्यादि। प्राकृत साहित्यकारों में श्वेताम्बरों की संख्या दिगम्बरों से काफी अधिक रही है। इन जैन साहित्यकारों में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वणिक भी रहे हैं परन्तु ब्राह्मणों की संख्या अधिक रही है। वणिकों में श्रीमाली और पोरवाल जाति का भी नाम आता है। साधुओं ने ही साहित्य रचना में मुख्य योगदान दिया है फिर भी एक दो गृहस्थों के नाम भी आते हैं। महिलाओं में गुण समृद्धि महत्तरा का नाम उल्लेखनीय है।

जिन जिन स्थलों का प्राकृत साहित्य सृजन से सम्बन्ध है उनमें जालौर और चित्तौड़ प्रमुख हैं। अन्य स्थलों के नाम इस प्रकार दिये जा सकते हैं—जैसलमेर बीकानेर, सांचोर, नागौर, कोटा, चन्द्रावती, नारनोल, ब्राह्मणवाडा, सिवाणा कुंभेरगढ़, डीडवाणा, मेड़ता, नरवर, मरुपुर, सांभर, लाडनू, फलोदी, अहिच्छत्र (नागोर), सागवाड़ा, छत्रपल्ली, कुचेरा इत्यादि।

वर्ण्य विषय

जिन जिन मुख्य विषयों पर लिखा गया वे हैं—जैन दर्शन, जैन धर्म जैन आचार और जैन कथा साहित्य। उनका विस्तार से विषय भेद इस प्रकार किया जा सकता है—दर्शन, योग सम्यक्त्व, आगम, साधु-आचार उनकी दैनिक चर्या और कर्तव्य, श्रावक आचार, दैनिक विधि और कर्तव्य, धर्म, कर्म, भूगोल, ज्योतिष, शकुन, व्यापार विषयक भविष्य, पूजा पाठ, मन्दिर प्रतिमा निर्माण तीर्थ, तिथि, पर्व, स्तुति इत्यादि। कथा साहित्य तो बड़े ही विपुल परिमाण में रचा गया। इनमें धर्मोपदेश और लोकोपदेश मुख्य तत्त्व रहे हैं। इस साहित्य में धार्मिक कथाओं के अतिरिक्त अनेक लौकिक कथाएं भी मिलती हैं। व्यंग्यपूर्ण कथाओं का भी अभाव नहीं है। चरित और प्रणय कथाओं का सृजन भी पर्याप्त हुआ है। प्रेमकथाओं में साहित्यिक और काव्य पक्ष उभर आया है। उदाहरण

के लिए समराइच्च कहा कुवलयमाला और सुरसुन्दरी चरित उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा व्याकरण और नाटक साहित्य की भी रचना हुई है।

प्रमुख साहित्यकार :

१. हरिभद्रसूरि :—वे एक युगप्रधान व्यक्ति थे। इनका समय आठवी शताब्दी माना जाता है। वे चित्तौड के रहने वाले थे। उनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था और वे राजपुरोहित थे। वे आचार्य जिनभटसूरि के शिष्य थे और याकिनी महत्तरा के धर्म पुत्र थे। 'विरहाक' उनका उपनाम था। वे वहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्हें अनेक दर्शनों का ज्ञान था और उन्होने साहित्य के अनेक क्षेत्रो मे कार्य किया। वे उद्योतनसूरि के दार्शनिक गुरु थे। उन्होने प्राकृत और संस्कृत में अनेक ग्रन्थों की रचना की। जिस तरह वे एक उत्तम दार्शनिक थे, उसी प्रकार एक कुशल कथाकार भी थे। उन्होने जैन धर्म के लिए जो कार्य किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। उनका विहार क्षेत्र चित्तौड़ के आस-पास राजस्थान और गुजरात का प्रदेश रहा है। उन्होने भिन्नलाल मे पोरवाड़ जाति को जैन वनाया था। उनकी प्राकृत रचनाए दर्शन, धर्म, आचार, कथासाहित्य-रूपकात्मक, व्यंग्यात्मक और उपदेशात्मक, भूगोल, ज्योतिप, आगम इत्यादि से सवधित अनेक विपयो पर उपलब्ध होती हैं जिनका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

धर्म सग्रहणी :—इस ग्रथ मे धर्म का स्वरूप निक्षेपो द्वारा वर्णित है। इसमे चार्वाक दर्शन का खडन भी है। जीव, ज्ञान, कर्म आदि पर अनेकान्त दृष्टि से विचार किया गया है और एकान्त-नित्यवाद, क्षणिकवाद और अज्ञानवाद का खडन किया गया है।

योगशतक :—निश्चय योग और व्यवहार योग को समझाते हुए वतलाया गया है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूपी मोक्ष है जिसको व्यवहार योग अर्थात् सम्यग्चारित्र से प्राप्त किया जाता है। पातजलयोग शास्त्र की तुलना में इसका अध्ययन करने योग्य है।

सम्यक्त्वसप्तति :—इसमे सम्यक्त्व का स्वरूप समझाया गया है। आत्मा के लक्षण और अस्तित्व पर चर्चा है।

श्रावक प्रज्ञप्ति :—इसमे श्रावक धर्म का विवेचन है और यह सर्वप्रथम स्वतंत्र रचना है। कोई इसे उमास्वामिकृत वतलाते है।

श्रावक धर्म विधि :—इसमे भी श्रावको की दैनिक विधि का प्रतिपादन है और सम्यक्त्व-मिथ्यात्व पर वर्णन है।

पंचवस्तु प्रकरण :—इसमे साधुओ के आचार का वर्णन है। दीक्षा की विधि, दिनचर्या, गच्छाचार, अनुज्ञा और सलेखना इसके विपय हैं।

पंचाशक प्रकरण :—इसमे ५०-५० गाथाओ के १९ विभाग हैं जिनमे श्रावक और मुनि आचार सवधी प्रायः सभी विपयों का समावेश हो गया है।

संवोध प्रकरण :—इसमे सच्चे देव और सच्चे गुरु के लक्षण वतलाये गये हैं। उस समय मे आचार की शिथिलता आ जाने के कारण कुगुरुओ और उनके दूपणों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है।

विंशतिविंशका —इसमें दर्शन, धर्म, आचार से सम्बंधित २० विंशिकाएं है। इसका ही एक भाग योगविंशिका है जिसमें योगशुद्धि का विवेचन किया गया है।

समराइच्च कहा —यह धर्म कथाकार एक महान् ग्रंथ है। इसमें कथाओं के परिणाम बतलाये गये हैं। इसमें अवान्तर कथाएं भी हैं। पूर्वजन्म, कर्म, निदान, व्रत और धर्मोपदेश से परिव्याप्त है। गद्यात्मक ग्रंथ होते हुए भी अनेक स्थानों पर पद्यात्मक अंश जड़े हुए हैं। कहीं कहीं पर काव्यात्मक वर्णन भी मिलते हैं। यह अपने ढंग का एक अपूर्व ग्रंथ है जो उपदेशात्मक उपन्यास के रूप में प्रथम ग्रंथ है।

धूर्ताख्यान —इसमें धूर्तों के पांच आख्यान हैं। इसमें अतिरंजित पौराणिक कथाओं पर विनोदात्मक ढंग से व्यंग्य किया गया है।

उपदेशपद —यह कथासाहित्य का अनुपम भंडार है। इसमें आत्मोन्नति के उपदेश, लौकिक कथायें, दृष्टांत, उदाहरण, रूपक, संवाद, सुभाषित और उक्तियां देखने को मिलती हैं।

लघुसंघयणी —इसका दूसरा नाम जम्बूद्वीप संग्रहणी है। जिसमें जम्बूद्वीप का वर्णन है परन्तु अनुपलब्ध है।

लग्न शुद्धि —यह एक ज्योतिष ग्रंथ है। इसका दूसरा नाम लग्नकुण्डलिका है।

आगमिक टीकाएं —प्रज्ञापना, दशवैकालिक, अनुयोग द्वार, नन्दी सूत्र और आवश्यक की टीकाओं में जो कथा भाग है उसे प्राकृत में सुरक्षित रखा है।

महानिशीथ सूत्र —उन्होंने महानिशीथ सूत्र का संशोधन भी किया था।

२ उद्योतनसूरि —ये क्षत्रिय घराने के थे। इनके पिता का नाम वटेश्वर और प्रपिता का नाम उद्योतन था। वे श्वेताम्बर थे और तत्वाचार्य के शिष्य थे। उन्होंने आचार्य वीरभद्र से सिद्धान्त में और आचार्य हरिभद्र से प्रमाण और न्याय में शिक्षा प्राप्त की थी। उनका अपरनाम दाक्षिण्य-चिह्न था। उन्होंने जालोर (जाबालिपुर) में अपना महा कथा ग्रन्थ 'कुवलयमाला' ई. स. ७७९ में पूरा किया था। यह काव्यात्मक शैली में लिखा गया एक चम्पू ग्रन्थ है। इसमें कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला की प्रणय कथा है। इस मुख्य कथा के अतिरिक्त इसमें करीब २५ अवान्तर कथाओं का समावेश हुआ है। क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह के दुष्परिणामों को समझाने के लिए पांच विशेष पात्रों का सृजन किया गया है। इसमें कहीं-कहीं पर अपभ्रंश, पैशाची और संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है। उस समय में प्रचलित भारत की अनेक भाषाओं के नमूने इसमें विद्यमान हैं। सांस्कृतिक सामग्री का यह अद्वितीय भण्डार है।

३ जयसिंहसूरि —ये श्वेताम्बर थे और कृष्णमुनि के शिष्य थे। उन्होंने ई० स० ८५८ में नागौर में 'धर्मोपदेशमाला विवरण' की रचना की थी। उनकी अन्य रचना 'श्री नेमिनाथ चरित' है। धर्मोपदेशमाला विवरण में ९८ गाथायें हैं और इन शिक्षाप्रद गाथाओं पर गद्य में १५० से भी अधिक कथाएं कही गई हैं। बीच में कहीं-कहीं पर संस्कृत का भी उपयोग हुआ है। इन कथाओं के द्वारा दान, शील, तप, अहिंसा, सत्य, संयम इत्यादि की महिमा बतायी गयी है।

४. पद्मनन्दि :—ये दिगम्बर थे और वालनन्दि के शिष्य थे। उन्होने वारा (जिला कोटा) मे 'जम्वूद्वीप प्रज्ञप्ति सग्रह' की रचना की थी। उनका समय १०वी-११वी शताब्दी माना जाता है। इस ग्रन्थ मे २३८९ गाथाए है। इसमे जम्वूद्वीप का जैन भूगोल दिया गया है। 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' और 'त्रिलोकसार' का प्रभाव इस पर स्पष्ट है। इसमे भ० महावीर से आचार्य परम्परा भी दी गयी है। उनकी अन्य रचना 'धर्मरसायण' है जिसमे १९३ गाथाओ मे धर्म का प्रतिपादन किया गया है।

५. दुर्गदेव :—ये दिगम्बर थे और वे सयम (संजय) देव के शिष्य थे। उन्होने सन् १०३२ मे कुंभनगर (कुंभेरगढ–भरतपुर) मे 'रिष्ट-समुच्चय' की रचना की थी। इसमे २६१ शौरसेनी गाथाए है। इसका दूसरा नाम 'कालज्ञान' है। इसमे मृत्यु-सूचक रिष्टो का वर्णन है जो शरीर, घटना, प्रकृति, स्वप्न आदि से सम्बन्धित संकेतो और सख्या तथा अक्षरो की आकृति के आधार पर भविष्यवाणी करते है। इस ग्रन्थ का आधार 'मरणकडिका' बतलाया गया है। यह ग्रन्थ अपने आप मे एक अनोखी रचना है। इनका दूसरा ग्रन्थ 'अर्घकाण्ड' है जिसके आधार से व्यापारी इस वात का पता लगा सकते है कि कौनसी वस्तु सस्तो होगी और कौनसी वस्तु महगी होगी। इसमे १४९ शौरसेनी गाथाएं हैं।

६. बुद्धिसागरसूरि :—ये जिनेश्वरसूरि के भाई और वर्धमानसूरि के शिष्य थे। उन्होंने सन् १०२३ मे जालौर मे प्राकृत और सस्कृत भाषा पर व्याकरण लिखा था। उस ग्रन्थ का नाम 'पंचग्रन्थी' अथवा 'बुद्धिसागर व्याकरण' था।

७. जिनेश्वरसूरि —ये ब्राह्मण कुल के थे और मध्यदेश (वनारस) के रहने वाले थे। वे वर्धमानसूरि के शिष्य थे जिन्होने खरतरगच्छ की स्थापना की थी। उन्होने डीडवाणा मे सन् १०५२ मे 'कथानक-कोष प्रकरण' की रचना की थी। इसमे ३० मूल गाथाएं हैं और गद्यात्मकवृत्ति मे करीब ४० कथाए है। इसमे वैयावच्य, दान, पूजा इत्यादि पर कथाए लिखी गयी हैं। जगह-जगह सस्कृत और अपभ्रंश गाथाए भी मिलती है। उनकी दूसरी कृति 'पंचलिंगीप्रकरण' है जिसमे १०१ गाथाएं है। इसकी रचना जालौर मे की गयी थी। इसमे सम्यकत्व और उसके पाच गुण प्रशम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था पर विचार किया गया है। उनका एक अन्य ग्रन्थ 'षट्स्थान प्रकरण' है। इसमे १०३ गाथाए है और यह श्रावक के षडावश्यको पर लिखा गया है।

८. धनेश्वर :—ये जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। उन्होने चन्द्रावती (आवू) मे सन् १०३८ में 'सुरसुंदरीचरित' की रचना की थी। १६ परिच्छेदो मे विभक्त यह एक प्रेम कथा है। इसमे यत्र-तत्र अपभ्रंश और ग्राम्यभाषा के शब्द मिलते है। इसमे अनेक अवान्तर कथाएं भी हैं और यह काव्य-गुणो से सिंचित है। कुल मिलाकर ४००० गाथाएं इसमे आती हैं।

९. जिनचन्द्रसूरि :—ये जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। उन्होने सन् १०६८ मे 'संवेगरंगशाला' की रचना की थी। यह उपदेशात्मक कथा ग्रन्थ है। इसमे १००५३ गाथाएं हैं। इसका मुख्य रस शान्त है और संवेग-जनक कथाएं कही गयी है।

१०. जिनवल्लभसूरि :—ये कुर्चपुर (कुचेरा–मारवाड़) की गादी के अध्यक्ष आचार्य जिनचन्द्र के शिष्य थे। उन्हे चित्तौड़ मे आचार्य पद से सुशोभित किया गया था। उन्होने अपने कुछ ग्रन्थ चित्तौड, नागौर, नरवर और मरुपुर के जिनालयो मे उत्कीर्ण करवाये थे। उन्होने 'सवेगरंगशाला'

का संशोधन किया तथा 'पिंडविशुद्धि' की १०३ गाथाओं में रचना की। उनकी दूसरी रचना 'द्वादशकुलक' है जिसमे सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्ज्ञान और कषाय आदि विषयो पर लिखा गया है। इनका अन्य ग्रन्थ 'सूक्ष्मार्थ सिद्धान्त विचार सार' अथवा 'सार्धशतक' कर्म विषयक है। 'आगमिक वस्तु विचार सार प्रकरण', प्रोषधविधि प्रकरण' 'भावारिवारणस्तोत्र' और 'अजितशांतिस्तव' इनकी अन्य रचनाएं मानी जाती हैं। इनका समय ११वी-१२वी शताब्दी माना जाता है।

११ जिनदत्तसूरि —ये मारवाड के कल्पवृक्ष माने जाते हैं। लोक ख्याति के कारण उन्हें 'दादा' की पदवी से सुशोभित किया गया था। वे जिनवल्लभसूरि के पट्टधर थे। चित्तौड में सन् १११२ मे उन्हें आचार्य पद मिला था। उनका स्वर्गवास सन् ११५४ में अजमेर में हुआ। बीकानेर, नागौर, जालोर और नारनौल इनके विशेष विहार क्षेत्र थे। उनके 'गणधर सार्धशतक' मे प्रसिद्ध आचार्यों के जीवन-चरित मिलते हैं। उनका 'सुगुरुपारतन्त्र्यम्' स्तुत्यात्मक ग्रन्थ है। उनके अन्य ग्रन्थ 'चैत्यवंदनकुलक', 'संदेहदोहावली', 'गणधर सप्तति' सर्वाधिष्ठायिस्तोत्र, विघ्नविनाशि स्तोत्र', इत्यादि हैं।

१२ हेमचन्द्र —ये अभयदेवसूरि के शिष्य थे। उन्होने सन् १११३ में मेडता और छत्रपल्ली मे 'भवभावना' नामक ग्रन्थ लिखा था। ५३१ गाथाओं में यह बारह भावनाओं पर लिखा गया है। संस्कृत गद्य और अपभ्रंश पद्य भी इसमें मिलते हैं। पद्यात्मक टीका में अनेक धार्मिक और लौकिक कथाएं आती हैं। 'उपदेशमाला प्रकरण' उनकी दूसरी ५०५ गाथाओं की रचना है जिसमे दान, शील, तप इत्यादि से कर्मों की निर्जरा समझायी गयी है।

१३ सिंहकवि —ऐसा उल्लेख है कि सिंहकवि ने १२वा शताब्दी में बमणवाड (ब्राह्मणवाट) सिरोही मे 'पज्जुण्णकहा' लिखी थी।

१४ जिनचन्द्रसूरि —इनका जन्म विक्रमपुर (जैसलमेर) में सन् ११०४ में हुआ था। ये जिनदत्तसूरि के शिष्य थे। उनकी रचना 'व्यवस्थाकुलक' में ७४ गाथाएं हैं जिसमें साधु साध्वी, श्रावक श्राविकाओं के कर्तव्य और गुरु के आदर के बारे में लिखा गया है।

१५ नेमिचन्द्र भण्डारी —ये मरुकोट के रहने वाले थे। ये जिनपतिसूरि के श्रावक थे। उनका समय १२वी-१३वी शताब्दी माना जाता है। उन्होने 'षष्टिशतक' की रचना की जिसमें सुगुरु, सम्यक्त्व, सुभक्त, जिनपूजा इत्यादि का वर्णन है।

१६ यशश्चन्द्र —ये शाकम्भरी (सांभर) के वणिक पद्मचन्द्र के पुत्र थे। उन्होंने 'मुद्रित कुमुदचन्द्र' नाटक संस्कृत में १२वी शताब्दी में लिखा था। उस नाटक में प्राकृत भाषी पात्र भी हैं। देवसूरि और कुमुदचन्द्र के बीच में हुआ वाद इसका विषय है।

१७ जिनप्रभसूरि —ये श्रीमाल वंश के थे। उनके गुरु जिनसिंहसूरि लाडनूं के श्रीमाल श्रमण थे। उन्होंने अहिछत्रा, सत्यपुर (सांचोर), फलोदी इत्यादि में विहार करके 'विविधतीर्थकल्प' नामक ग्रन्थ संस्कृत प्राकृत में सन् १३३२ में लिखा था। इसमें स्तुति, जीवन चरित, कथा और तीर्थ के विषय हैं। यह गद्य पद्यात्मक ऐतिहासिक प्रबन्ध है। 'विधिमार्गप्रपा' उनका दूसरा संस्कृत प्राकृत गद्य पद्य ग्रन्थ हैं। उनके अन्य लघुग्रन्थ 'तीर्थयात्रास्तोत्र', 'स्तुतित्रोटक' और 'देवपूजाविधि' हैं। उन्हें फिरवाडा में सन् १२८४ में आचार्य-पद मिला था।

१८. जिनकुशलसूरि :—ये सिवाणा के थे और जिनचन्द्रसूरि के शिष्य थे। उन्हें सन् १३२० मे नागौर मे वाचनाचार्य बनाया गया था। उन्होने 'जिनचंद्रसूरि चतु:सप्ततिका' की ७४ गाथाओं में रचना की थी। यह एक ऐतिहासिक चरित ग्रन्थ है।

१९. गुणसमृद्धिमहत्तरा :—राजस्थान के प्राकृत साहित्यकारो में यदि किसी महिला (साध्वी) का नाम मिलता है तो मात्र गुणसमृद्धिमहत्तरा का है। वे जिनचन्द्रसूरि की शिष्या थीं। उन्होंने ५०४ गाथाओं मे 'अजनासुन्दरी चरित' सन् १३५० में जैसलमेर में लिखा था।

२०. जिनहर्षगणि :—इन्होने १५वी शताब्दी में चित्तौड़ मे 'रत्नशेखरी कथा' गद्य-पद्य मे लिखी थी। इसमें संस्कृत अपभ्रंश पद्य भी मिलते हैं। इस कथा में तिथि और पर्वों के अवसर पर किये गये धार्मिक अनुष्ठान का फल बतलाया गया है। यह एक राजकुमार और राजकुमारी की प्रणय कथा है।

२१. हीरकलश :—इन्होने नागौर मे सन् १५६४ मे 'ज्योतिपसार' नामक प्राकृत ग्रन्थ का उद्धार किया था।

२२. भट्टारक शुभचन्द्र :—ये दिगम्बर थे और सागवाड़ा के भट्टारक थे। वे जिनभूपण के शिष्य थे और बलात्कारगण के थे। वे बड़े विद्वान् थे। उन्होने 'शब्दचिंतामणि' नामक प्राकृत व्याकरण लिखा। 'अंगपण्णत्ति' उनका दूसरा ग्रन्थ है जिसमें अग, पूर्व और आगमिक साहित्य का विवरण है। उनका समय १६वी शताब्दी माना जाता है।

२३. समयसुन्दर :—इनका जन्म सांचौर में हुआ था। वे पोरवाल थे। वे गुजराती-राजस्थानी के भापा-कवि थे। उन्होने सन् १६३० में 'गाथा सहस्री' की रचना की थी। इसमें ८५५ उपदेशात्मक धार्मिक गाथाओं का संग्रह प्राचीन जैन-अजैन साहित्य से किया गया है। उन्होंने अपनी रचनाएं मेडता और जालौर में की थी।

ज्ञान भण्डारों का योग :

राजस्थान के ज्ञान भण्डारो ने जैन शास्त्र और जैन साहित्य को सुरक्षित रखने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। वहां पर अनेक प्राकृत रचनाएं भी सुरक्षित रही है। कुछ रचनाएं तो अन्य स्थल पर अप्राप्य रही है और कुछ अप्रकाशित रही है। जिन-जिन प्राकृत ग्रन्थो की प्राचीनतम प्रतियां जैसलमेर के भण्डार में मिलती है उनके नाम इस प्रकार है :—अंगविज्जा, विमलसूरि का पउमचरियं, संघदास कृत वसुदेवहिंडी, जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का विशेपावश्यकभाष्य, उद्योतनसूरि की कुवलयमाला, शीलांक का चउप्पन्नमहापुरिसचरियं, कुतूहल की लीलावईकहा, जिनेश्वरसूरि का कथाकोपप्रकरण, जिनचन्द्रसूरि की संवेगरंगशाला, साधारणकवि की विलासवती कथा, गुणसमृद्धि-महत्तरा का अंजनासुन्दरीचरित इत्यादि।' जयसिंहसूरि के 'णेमिणाह चरियं' के कुछ अंश भी जैसल-मेर भण्डार में ही मुनि–जिनविजयजी को प्राप्त हुए थे। जैसलमेर के वृहद् ज्ञान भण्डार की स्थापना १५वी शताब्दी में जिनभद्रसूरि ने ही की थी। पद्मनन्दि के जम्बूदीवपण्णत्तिसंगहो की प्राचीनतम प्रति आमेर के शास्त्र भण्डार मे सुरक्षित रहीहै। इस प्रकार राजस्थान के जैन ज्ञान भण्डारों की भी प्राकृत साहित्य को अपनी विशिष्ट देन रही है।

२९ | अपभ्रंश जैन साहित्य

•

डॉ० प्रेमसुमन जैन

अपभ्रंश साहित्य ७वीं से १२वीं शताब्दी तक देश के विभिन्न विभागों में मुख्यतः जैनाचार्यों द्वारा लिखा गया है। अपभ्रंश की अधिकांश रचनाओं का सम्बन्ध राजस्थान से है। क्योंकि उनके लेखकों-जैनाचार्यों का कार्यक्षेत्र प्रमुखरूप से पश्चिमी भारत था। अपभ्रंश की उन कुछ प्रमुख रचनाकारों और उनकी रचनाओं का परिचय यहाँ प्रस्तुत है, जिनका किसी-न-किसी रूप में राजस्थान से सम्बन्ध रहा है।

१ हरिषेण —राजस्थान में चित्तौड़ जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। संस्कृत प्राकृत के प्रकाण्ड विद्वान् सिद्धसेन, ऐलाचार्य, वीरसेन एवं हरिभद्रसूरि जैसे आचार्यों के कार्यक्षेत्र होने का सौभाग्य चित्तौड़ को प्राप्त है। अपभ्रंश भाषा के प्रमुख विद्वान् हरिषेण भी इस नगरी की शोभा थे। उनके 'धम्मपरिक्खा' नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि हरिषेण के दादा हरि मेवाड़ देश के रहने वाले थे और सिरि उजपुर के धक्कड़ कुल के थे। हरि के गोवर्द्धन नाम का एक पुत्र हुआ, जिसकी पत्नी का नाम धनवती था। इनके पुत्र आचार्य हरिषेण थे, जिन्होंने वि० सं० १०४४ (९४३ ई०) में 'धम्मपरिक्खा' की रचना की थी। इस ग्रन्थ की रचना कवि ने अचलपुर में की थी। इस समय चित्तौड़ छोड़कर वे यहाँ आ बसे थे।

आमेर शास्त्र भण्डार में 'धम्मपरिक्खा' की कई प्रतियाँ उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थ में ११ सन्धियाँ हैं, जिनमें, २३८ कड़वक हैं। लेखक ने बुद्धि की सार्थकता प्रदान करने के लिए इस ग्रन्थ को लिखा है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति के उत्तम साधन का प्रतिपादन है। अन्य धर्मों की इसमें समीक्षा की गयी है।[1]

२ धनपाल (प्रथम) —कवि धनपाल ने राजस्थान के साचोर नामक नगर में स्थित महावीर जिनालय सम्बन्धी एक रचना अपभ्रंश में की है, जिसका नाम सत्यपुरीय महावीर उत्साह है। ये धनपाल महाराजा भोज के सभाकवि थे तथा संस्कृत, प्राकृत के भी पण्डित थे। इनकी इस रचना से महमूद गजनी द्वारा मूर्तिभंजन की एक घटना का पता चलता है, जिसमें वह सफल नहीं हुआ था। यह रचना विक्रम की ११वीं शताब्दी की प्रतीत होती है।

---

१ सोमाणी, रामवल्लभ महाकवि हरिषेण, जिनवाणी, अप्रैल १९६६, पृ० ४२-४४

३. धनपाल (द्वितीय) :—१०-११वीं शताब्दी में अपभ्रंश के प्रसिद्ध कवि एक अन्य धनपाल हुए हैं। इन्होंने 'भविसयत्तकहा' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। यद्यपि इनकी रचना में किसी स्थान-विशेष का उल्लेख कवि की जन्म भूमि के रूप नहीं किया गया है किन्तु इस समय कवि राजशेखर के अनुसार समस्त मरुभूमि में अपभ्रंश का प्रयोग होता था। अतः संभव है, ये धनपाल मारवाड़ प्रदेश में किसी नगर के निवासी रहे होंगे। धाकड़वंश का होने के कारण धनपाल को राजस्थान का माना जा सकता है। क्योंकि धाकड़ (धर्कट) राजस्थान की मूल जाति थी।[1]

४. धाहिल :—धाहिल १०वीं शताब्दी के अपभ्रंश कवि थे। इनका सम्बन्ध महाकवि माघ के वंश से है। अतः ये श्रीमाल वंशी गुर्जर वैश्य थे। इनकी जन्मभूमि भिन्नमाल रही होगी। इन्होंने 'पउमसिरी चरिउ' की रचना किस स्थान पर की इसका पता नहीं चलता। इनकी यह रचना धार्मिक होते हुए भी रम्य और रोमाण्टिक है।

५. लक्खण :—लक्खण कवि ने वि० सं० १२९५ में 'जिनदत्त चरिउ' की रचना की। इनकी वृत्ति से ज्ञात होता है कि ये त्रिभुवनगिरि के निवासी थे। इसकी पहिचान जयपुर के समीप 'तहणगढ' से की जाती है।

६. सिंह :—बारहवीं शताब्दी के सिंह कवि ने 'पज्जुन्नकहा' नामक अपभ्रंश काव्य की रचना बम्भणवाड में की थी, जो सिरोही में है।

७. विनयचन्द्र :—१३वीं शताब्दी में विनयचन्द्र नाम के दो अपभ्रंश के कवि हुए हैं। विनयचन्द्रसूरि ने 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' लिखी, जिसकी प्रति जैसलमेर भण्डार में है तथा विनयचन्द्र ने 'उपदेशमाला कल्याण' कृति लिखी, जिसकी प्रतियां नागौर के ग्रन्थ भण्डार में है। अतः एक कवि का जैसलमेर और दूसरे का नागौर कार्यक्षेत्र रहा होगा। विनयचन्द्र ने चूनडी आदि भी लिखी है।

८. जिनदत्तसूरि :—जिनदत्तसूरि युग प्रधान जैनाचार्य थे। इन्होंने प्राकृत के ग्रन्थों के अतिरिक्त अपभ्रंश की तीन रचनाएं लिखी हैं—चर्चरी, उपदेश रसायन-रास और कालस्वरूप-कुलकम्। चर्चरी इन्होंने वागड़ देश में लिखी थी। इनका जन्म वि० सं० ११३२ में तथा मृत्यु वि० सं० १२११ में अजमेर में हुई। अतः जीवन पर्यन्त ये राजस्थान में भ्रमण कर साहित्य-सृजन करते रहे। इनके जीवन एवं कार्य आदि के सम्बन्ध में श्री अगरचन्द नाहटा ने विशेष प्रकाश डाला है।[2] जिनदत्तसूरि की ये तीनों रचनाएं 'अपभ्रंश काव्यत्रयी' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं।

९. जिनप्रभसूरि :—जिनप्रभसूरि ने अपभ्रंश में नाणप्पयास (ज्ञानप्रकाश) की रचना की है। इसमें ११३ पद्य हैं। 'कुलक' के नाम से प्रसिद्ध इस कृति में ज्ञान का प्रतिपादन है। इनकी अपभ्रंश की दूसरी कृति धम्माधम्मवियार है। इसमें १८ पद्य हैं, जिनमें धर्म, अधर्म का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। इन्होंने 'सावगविहि' नाम की भी एक रचना की है जो दोहा-छन्द में अपभ्रंश के ३२ पद्यों की है। जिनप्रभसूरि संस्कृत-प्राकृत के भी अच्छे साहित्यकार थे। आपने दिल्ली पति महमूद तुगलक को भी अपनी प्रतिभा से प्रभावित किया था। अतः आप लगभग १४वीं शताब्दी के विद्वान् हैं। यद्यपि आपकी रचनाओं में रचना-स्थलों का संकेत नहीं है। किन्तु खरतरगच्छ की परम्परा में होने के कारण आप भी राजस्थान के रहे होंगे।

१. डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन : अपभ्रंश भाषा और साहित्य, पृ० ७४
२. द्रष्टव्य—युगप्रधान जिनदत्तसूरि

१० अमरकीर्ति —अमरकीर्ति १३वी शताब्दी (१२१७ ई०) के विद्वान् थे। आपकी 'षवकम्मोवएस' एव 'पुरंदरविधानकथा' अपभ्रंश कृतियां आमेर शास्त्र भण्डर में उपलब्ध है। आपके ग्रंथों में गोदहयनगर एव महियड नामक स्थानो का उल्लेख है जो पश्चिमी भारत के नगर थे। संभव है, आपका कार्यक्षेत्र राजस्थान एव गुजरात रहा हो।

११ श्रीचन्द्र —श्रीचन्द्र ११-१२वी शताब्दी के अपभ्रंश कवि थे। आपकी 'कथाकोश' एव 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' दो कृतियां प्राप्त हैं। इनमे श्रीमालपुर (सिरिवालपुर) नगर का उल्लेख है। इससे ये राजस्थानी कवि प्रतीत होते है।

१२ यशकीर्ति —१५वी शताब्दी के अपभ्रंश कवियो में यशकीर्ति प्रमुख कवि थे। आपने १४४० ई० में हरिवंश पुराण तथा १४४३ ई० में पाण्डवपुराण की रचना की थी। 'पाण्डवपुराण' हंसराज के अनुराध पर नागौर में तथा हरिवंशपुराण' जलालखा के राज्य इन्द्रपुर में लिखा गया था।[1] इन दोनो ग्रंथो की पाण्डुलिपियां आमेर और नागौर के शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध हैं। यश कीर्ति ने गुजरदेश के सिद्धपाल के अनुराध पर 'चन्दप्पहचरिउ' की भी रचना की थी।

१३ विबुध श्रीधर —श्रीधर १२वी शताब्दी के प्रसिद्ध कवि थे। आपने 'पासनाहचरिउ', 'सुकुमालचरिउ' एव 'भविसयत्तचरिउ' ये तीन रचनाए अपभ्रंश में लिखी हैं। अंतिम रचना इन्होंने माथुरवंशीय नारायणसाहु की प्रेरणा से लिखी थी। एक ग्रन्थ में वलड नगर का भी उल्लेख है। अतः राजस्थान और गुजरात दोनो समान रूप से इनका कार्यक्षेत्र रहा होगा।

अपभ्रंश के इन प्रमुख कवियो के अतिरिक्त धवल (पासनाहचरिउ), देवसेनगणि (सुलोचनाचरिउ), हरिभद्र (सनत्कुमारचरिउ) लक्ष्मदेव (णमिणाहचरिउ), धनपाल (बाहुबलि चरित) जयदेव (भावनासंधि) आदि अन्य कवियो का सम्बन्ध भी राजस्थान एव गुजरात से रहा है। यहां के राजाओं और श्रीमन्तो की साहित्य के प्रति रुचि एव संरक्षण-भावना के कारण संस्कृत, प्राकृत की भांति अपभ्रंश-साहित्य भी पर्याप्त समृद्ध हुआ है।

राजस्थान के ग्रंथ भण्डारो मे उपलब्ध अपभ्रंश रचनाएं

अपभ्रंश साहित्य की अधिकांश रचनाएं राजस्थान के ग्रंथ भण्डारो मे ही प्राप्त हुई हैं। यह इस बात का द्योतक है कि राजस्थान अपभ्रंश भाषा की कृतियो के सृजन मे जितना समृद्ध है, उतना ही उनकी सुरक्षा और प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में भी। डॉ० कासलीवाल ने ऐसी सौ अपभ्रंश रचनाओं का विवरण दिया है, जो राजस्थान में उपलब्ध हैं।[2] अभी हाल में डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री ने समस्त राजस्थान के ग्रंथ भण्डारों में उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य की ६६८ प्रतियो का विशद विवरण अपने ग्रंथ में दिया है।[3]

१ Dr Kasliwal Jain Granth Bhandaras in Rajasthan, p 140
२ जैन ग्रंथ भंडार्स इन राजस्थान परिशिष्ट ३
३ डा० शास्त्री, अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध-प्रवृत्तियां, तृतीय अध्याय पृ० ११३ १५

३० | संस्कृत जैन साहित्य

डॉ० प्रेमसुमन जैन

संस्कृत जैन साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि :

यद्यपि जैन आगमो की भाषा अर्द्धमागधी एवं शौरसेनी प्राकृत तथा आगमोत्तर साहित्य की अधिकांश रचनाएं भी प्राकृत मे लिखी गई है। किन्तु जनसमुदाय की रुचि के प्रति जैन आचार्यो की जागरूकता के कारण संस्कृत भाषा को भी वही प्रतिष्ठा दी गयी है जो प्राकृत व अपभ्रंश को। जिस समय से समाज मे वैदिक एवं बौद्ध सस्कृत साहित्य का प्रभाव अधिक बढा उसी समय से जैन साहित्य मे भी सस्कृत को स्थान मिलने लगा। धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र मे तर्क-पद्धति के विकास के कारण तथा वैदिक व बौद्ध आचार्यों से वाद-विवाद करने की दृष्टि से जैन आचार्यो ने सस्कृत को अधिक महत्त्व देना प्रारम्भ कर दिया। यह प्रवृत्ति ईसा की दूसरी सदी से आठवी सदी तक अधिक पायी जाती है। पश्चिमी भारत मे जैन विद्वानों मे आचार्य सिद्धसेन दिवाकर एवं हरिभद्र के संस्कृत ग्रन्थ इस प्रवृत्ति के परिणाम कहे जा सकते हैं।

८वी शताब्दी के बाद पश्चिम भारत में लिखित जैन सस्कृत ग्रन्थो की रचना की पृष्ठभूमि मे यहां की राजनैतिक, सामाजिक एव धार्मिक स्थिति अधिक प्रभावशाली रही है सामान्यतया जैनाचार्यों ने जिन प्रेरक तत्त्वो के कारण जैन सस्कृत साहित्य का निर्माण किया है, उनमे प्रमुख हैं—(१) जैन-धर्म के सिद्धान्तों के प्रसार की भावना, (२) प्रभावशाली राजा, राजमन्त्री, गुरु अथवा श्रावकों की प्रार्थना, (३) धार्मिक महापुरुषो का यशोगान। इनके अतिरिक्त एक कारण यह भी दृष्टिगत होता है कि बहुत से जैन आचार्य मूलतः ब्राह्मण थे। संस्कृत का अध्ययन वे बचपन से ही कर चुके थे अतः अपने ज्ञान एवं प्रतिभा के विकास के लिए भी उन्होने जैन सस्कृत साहित्य के निर्माण को माध्यम चुना होगा।

प्रचार-प्रसार के साधन :

पश्चिमी भारत मे सस्कृत साहित्य के प्रचार-प्रसार मे जैन विद्वानो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होने केवल सस्कृत मे जैन ग्रन्थ ही नही लिखे अपितु उनके प्रचार एवं प्रसार व सुरक्षा की पृष्ठभूमि भी तैयार की है। जिस प्रकार राजस्थान के राजाओं द्वारा राज्य के ग्रन्थ भण्डारो (पोथी खाना) को साहित्यिक गतिविधियो का केन्द्र बना दिया गया था, उसी प्रकार जैन आचार्यों ने भी मन्दिरो व उपासरो में जैन ग्रन्थ भण्डारो की स्थापना कर उन्हे संस्कृत शिक्षा व लेखन का केन्द्र

बना दिया था। इन ग्रन्थ भण्डारो में नये ग्रथ लिखे जाते थे, पुराने ग्रथो की प्रतिलिपिया तैयार की जाती थी तथा दूर दूर से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो को लाकर पुस्तकालय को विकसित किया जाता था ताकि लेखको को एक ही स्थान पर सदर्भ ग्रन्थ उपलब्ध हो जाय। इस प्रकार पश्चिमी भारत का जन सस्कृत साहित्य इन ग्रन्थ भण्डारो की समुचित सुविधाग्रो का ही परिणाम है।

जनसमुदाय में सस्कृत भाषा के प्रसार के लिए जनाचार्यों ने इन ग्रथ भण्डारो में शिक्षा केन्द्र खोल दिये थे, जिनमें बच्चो को प्रारभ से ही सस्कृत ग्रौर प्राकृत पढाइ जाती थी। सस्कृत के ग्रध्ययन म जन ग्रजैन की रचनाग्रो का भेद नही किया जाता था। इस क्षेत्र मे हेमचन्द्र, भट्टारक शुभचन्द्र, प्रभाचन्द्र, ज्ञानभूषण ग्रादि ग्राचार्यों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इनके सान्निध्य म सो सो छात्र रह कर सस्कृत सीखते थे। सस्कृत शिक्षा के प्रचार म उन श्रावको का योगदान भी सराहनीय है जो ग्राचार्यों ग्रौर शिष्यो को सकडो ग्रन्थो की प्रतिलिपि करा कर भेंट करते थे ताकि उनका ग्रध्ययन निर्विघ्न सम्पन्न हो सके।[1]

जन सस्कृत साहित्य के निर्माण एव प्रसार म पश्चिमी भारत के राजाग्रो व राज्य मन्त्रियो का सरक्षण भी एक प्रमुख कारण रहा है। गुजरात के तो ग्रनक राजाग्रो व मन्त्रियो ने जैनाचार्यों के ग्रन्थ निर्माण के लिए सुविधाए ही नही बल्कि प्रेरणा भी दी है। सिद्धराज, कुमारपाल, वस्तुपाल ग्रादि के नाम इस क्षेत्र म स्मरणीय रहेग। जन सस्कृत साहित्य का विकास समय समय पर ग्रायोजित शास्त्रार्थ के कार्यक्रमो के कारण भी हुग्रा है, जिसम ग्रजन, दिगम्बर, श्वेताम्बर सभी सस्कृत के ग्राचार्य सम्मिलित होते थ। पश्चिमी भारत के कई जनाचार्यों न ऐसे वाद विवादो म विजयी होने के लिए ग्रनेक चमत्कारिक सस्कृत ग्रथो की रचना की है। महाकवि समयसुन्दर का 'ग्रष्टलक्षी' नामक ग्रन्थ इस बात का प्रमाण है।

क्रमिक विकास

जन सस्कृत साहित्य के लेखन का प्रारम्भ ग्राचार्य उमास्वाति के 'तत्वार्थसूत्र' से होता है, जिस पर ग्रागे चलकर सस्कृत म वृहत्काय टीकाए लिखी गई हैं।[2] किन्तु पश्चिमी भारत म जन सस्कृत साहित्य का लेखन कब से प्रारम्भ हुग्रा ? सर्वप्रथम सस्कृत रचना कोनसी है ? यह कहना कठिन है। क्योकि बहुत कम प्राचीन सूचनाग्रो म उनके रचना स्थल ग्रादि का उल्लेख मिलता है। दूसरे पश्चिमी भारत के जैन सन्त गुजरात, राजस्थान, मालवा ग्रादि स्थानो म भ्रमण करते रहते थे। ग्रत उन्होने कहा पर रह कर ग्रन्थ रचना की इसका पता ग्रन्य ग्रोतो से लगाना पडता है। ऐतिहासिक सामग्री से ज्ञात होता है कि चित्तौड ग्रनेक जन ग्राचार्यों का कार्यक्षेत्र रहा है।[3] उनम से ५वी सदी के ग्राचार्य सिद्धसेन दिवाकर सस्कृत के प्राचीन लेखक कहे जा सकते हैं। सिद्धसेन दिवाकर ने जन न्याय पर 'न्यायावतार' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रथ लिखा है। इनके बाद ग्राठवीं सदी के ग्राचार्य हरिभद्र से पूर्व तक पश्चिमी भारत में जन सस्कृत साहित्य का कोई ग्रथ लिखा गया हो, एसा उल्लेख नही मिलता। ग्राठवीं सदी के बाद प्रचुर मात्रा म जनाचार्यों के द्वारा सस्कृत के ग्रथ लिखे गये हैं।[4]

---

१ प्रभावकचरित—हेमचन्द्र प्रबन्ध ग्रादि

२ भारतीय सस्कृति के विकास म जन धर्म का योगदान—डॉ० हीरालाल जैन

३ वीरभूमि चित्तौड-श्री रामवल्लभ सोमानी, चतुर्थ ग्रध्याय

४ ग्रागमिक तत्त्वाध्य, ६२, १६१

आचार्य हरिभद्र चित्तौड़ के राजा जितारि के राजपुरोहित थे। आपने लगभग सौ ग्रन्थों की रचना की है।[1] जिनमें 'षट्दर्शनसमुच्चय', 'अनेकान्तजयपताका', 'अष्टक-प्रकरण' आदि प्रमुख संस्कृत ग्रन्थ हैं। जैन संस्कृत साहित्य के इतिहास में आचार्य हरिभद्र प्रथम लेखक हैं जिन्होंने जैनागमों एवं पूर्वाचार्यों की प्रसिद्ध कृतियो पर संस्कृत में टीकाएं लिखने का सूत्रपात किया है। आचार्य हरिभद्र की परम्परा को दसवी सदी के उत्तरार्द्ध (सं० ९६२) में श्रीमाल नगर (भीनमाल) के निवासी आचार्य सिद्धर्षि ने आगे बढ़ाया है। आपकी 'उपमितिभवप्रपचकथा' भारतीय संस्कृत साहित्य की अनुपम कृति है। सिद्धर्षिरचित 'श्रीचन्द्रकेवलीचरित', 'उपदेशमालाटीका' और 'न्यायावतारविवृत्ति' आदि अन्य रचनाए भी प्राप्त हैं।

ग्यारहवी सदी में राजस्थान में खरतरगच्छ के आचार्यों का प्राधान्य शुरू हो जाता है। जिनेश्वरसूरि (स० १०८०) और बुद्धिसागरसूरि ने मौलिक संस्कृत ग्रन्थों के निर्माण को आगे बढाया। बुद्धिसागर ने 'पंचग्रन्थवृत्ति' नामक जैनन्याय का ग्रन्थ लिखा। इस गच्छ के अन्य आचार्यों में जिनवल्लभसूरि का 'शृंगारशतक'[2] एव 'प्रश्नोत्तरघटीशतक' तथा जिनदत्तसूरि की संस्कृत रचनाए अधिक महत्त्वपूर्ण है। इन सभी आचार्यों ने प्राकृत में भी अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। बारहवीं सदी के विद्वानो में वादिदेवसूरि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका 'स्याद्वादरत्नाकर' जैनन्याय का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ये वाद-विवाद करने में भी कुशल थे।

तेरहवी सदी के विद्वानों मे जिनपालसूरि (सं० १२१४-७७) विशेष उल्लेखनीय हैं। कहा जाता है कि इन्होने ६ शास्त्रार्थों में विजय प्राप्त की थी। इन्होने संस्कृत टीकाएं तथा स्तोत्र लिखे हैं। इनके शिष्यो में जिनपाल, सुमतिगणि, पूर्णभद्र एवं जिनेश्वरसूरि संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। जिनपाल उपाध्याय का 'सनत्कुमार महाकाव्य' तथा पूर्णभद्र का 'धन्यशालिभद्रचरित' उत्कृष्ट काव्यात्मक कृतिया हैं। इसी समय दिगम्बर आचार्य आशाधर ने अनगार एवं सागारधर्मामृत तथा वाग्भट्ट ने 'नेमिनिर्वाण', 'काव्यानुशासन' आदि रचनाओं द्वारा संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है। १४वी सदी मे जैन विद्वानों के द्वारा सस्कृत के महाकाव्य अधिक लिखे गये तथा प्राचीन ग्रन्थों पर टीकाएं भी की गई। लक्ष्मीतिलक (सं० १३११) का 'प्रत्येकबुद्धचरित', चन्द्रतिलक का (स० १३१२) 'अभयकुमारचरित', विवेकसमुद्र (१३३४) का 'नरवर्मचरित' एवं 'पुण्यसागरकथा' तथा जिनप्रभसूरि का 'श्रेणिकचरित' आदि इस युग की प्रसिद्ध संस्कृत रचनाएं कही जा सकती है। लगभग इसी समय नयचन्द्रसूरि ने 'हमीरमहाकाव्य' का निर्माण किया। सम्भवतः उन्होने इसकी रचना राजस्थान मे की थी।[3] यह कथात्मक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

१५वी एव १६वी सदी के संस्कृत ग्रन्थो मे रचना-स्थल का उल्लेख नहीं है। किन्तु उनमे से अधिकाश पश्चिमी भारत मे लिखे गये होगे। १७वी सदी मे जैन विद्वानो द्वारा अधिक मात्रा मे संस्कृत साहित्य लिखा गया है। आचार्य समयसुन्दर (१६५०) ने लगभग पांच सौ छोटी-बड़ी रचनाएं की हैं जिनमे १४ संस्कृत के ग्रन्थ राजस्थान में लिखे गये हैं। इस शतक मे तपागच्छीय जैन विद्वानो की संस्कृत सेवा महत्त्वपूर्ण है। हर्षकीर्ति व पद्मसुन्दर के संस्कृत ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

---

१. हरिभद्र के प्राकृत-कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन

२. 'संस्कृत के ६० शतक'—बरैया स्मृति ग्रन्थ, पृ० ५३४ पर अगरचन्द नाहटा का लेख द्रष्टव्य है।

३. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा, पृ० ३५, श्री अगरचन्द नाहटा

१८वी सदी के जन सस्कृत विद्वानो म उपाध्याय मेघविजय का योगदान महत्त्वपूण है। आपका सप्तसधान महाकाव्य विस्मयकारी है जिसमे रामकृष्ण एव पाच तीर्थंकरो के चरित का एक साथ वणन है। यशोविजय इस युग के दूसर उल्लेखनीय आचाय हैं जिन्होने सस्कृत ग्रन्थो के द्वारा जैन न्याय को पुन व्यवस्थित रूप प्रदान किया है।

उन्नीसवी सदी में जन विद्वानो द्वारा सस्कृत साहित्य बहुत कम लिखा गया है। सभवत क्षेत्रीय भाषाओ एव हिन्दी भाषा की लोकप्रियता इसका कारण रही हो। फिर भी जन आचार्यों की सस्कृत के प्रति रुचि बनी रही है। तेरापथी सम्प्रदाय के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि उनके प्रारम्भिक आचार्यों ने बडे परिश्रम के साथ सस्कृत का ज्ञान अर्जित किया एव सस्कृत लेखन को अपने मुनि समुदाय म जाग्रत किया। उसी का परिणाम है कि लगभग २०० सस्कृत ग्रन्थो का प्रणयन इस सम्प्रदाय के मुनियो द्वारा हो चुका है।[1] आज भी आचाय तुलसी के शिष्य अन्य भाषाओ के अतिरिक्त सस्कृत साहित्य की रचना में सलग्न हैं। अन्य जन सम्प्रदायो के विद्वानो द्वारा भी वतमान युग में कुछ सस्कृत ग्रन्थ लिखे गये हैं

जैन सस्कृत साहित्य की प्रमुख विधाए

पश्चिमी भारत के जन विद्वानो ने साहित्य की प्राय सभी विधाओ में सस्कृत के ग्रन्थ लिखे हैं। यद्यपि दाशनिक एव धार्मिक साहित्य का प्राधान्य अधिक है फिर भी उन्होने चरित, पुराण, काव्य, नाटक, स्तोत्र आदि विधाओ के माध्यम से धम दशन, इतिहास, भूगोल, गणित, ज्योतिष, व्याकरण, कोष, छन्द, अलकार आदि अनेक विषयो के साहित्य का सृजन किया है, जो भारतीय साहित्य के इतिहास म उल्लेखनीय है। इन सभी विधाओ से सम्बन्धित जन सस्कृत साहित्य का यहां परिचय देना सम्भव नही है। इन विधाओ को जन विद्वानो ने नया स्वरूप प्रदान किया है।

महाकाव्य जन विद्वानो द्वारा पौराणिक, ऐतिहासिक एव शास्त्रीय तीनों प्रकार के महाकाव्य लिखे गये हैं, जिन पर प्राचीन सस्कृत एव प्राकृत महाकाव्यो का प्रभाव है। जन सस्कृत महाकाव्यो की निजी विशेषताए भी हैं। यथा—इनमे भाषा को अधिक सरल बनाया गया है तथा दशज शब्दो का उपयोग किया गया है। अवान्तर कथाओ का सयोजन किया गया है। नायक का साधारणीकरण दृष्टिगत होता है तथा काव्यरस की अपेक्षा धमभाव का प्राधान्य है। जैन सस्कृत महाकाव्यो की इन प्रवृत्तियो का क्षेत्रीय भाषाओ एव हिन्दी के महाकाव्यों पर भी पर्याप्त प्रभाव पडा।

पुराण जन विद्वानो ने सस्कृत म पुराण साहित्य के लेखन में भी पर्याप्त उत्साह दिखाया है। आचाय रविषेण (६७८ ई०) ने सवप्रथम 'पद्मपुराण' लिखा। तदनन्तर राजस्थान के अनेक जन विद्वानो ने इसम योगदान दिया है। आचाय हेमचन्द्र, आसग, सकलकीर्ति, जिनदास, ब्रह्म जिनदास, शुभचन्द्र आदि के पुराण सस्कृत साहित्य के अनुपम ग्रन्थ हैं।[2] किन्तु जन सस्कृत पुराणो म तीर्थंकर के जीवनचरित के साथ अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियो के जीवन का भी वणन होता है तथा इनकी वर्णन शैली एव भाषा इतनी काव्यात्मक है कि इन्हें पुराण कहने के बजाय काव्य कहना अधिक उपयुक्त है। हरिवशपुराण (जिनसेन) को तो जैन सस्कृत साहित्य का महाभारत कहा जा सकता है।

१ भिक्षु स्मृति-ग्रन्थ

२ जन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान, पृ० १३८, डॉ० क० चो० कासलीवाल

चरित : जैन सस्कृत चरित-साहित्य को काव्य एवं कथा-साहित्य के मध्य मे रखा जा सकता है। संस्कृत चरित-साहित्य के द्वारा भाषा को प्रायः सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। जिससे जो व्यक्ति काव्य की क्लिष्ट भाषा नही समझ सकते वे चरित ग्रन्थो के अध्ययन द्वारा अपना मनोरंजन एवं ज्ञानवर्द्धन कर सकें। लगभग ९वी सदी से १७वी सदी तक यह साहित्य सस्कृत मे पश्चिमी भारत मे लिखा जाता रहा, जिनकी अनेक प्रतिया ग्रंथ भण्डारो मे प्राप्त होती हैं। सस्कृत के चरित ग्रन्थो मे प्रायः तीर्थंकरो की जीवनी पर प्रकाश डाला गया है।

कथा : सस्कृत मे कथा ग्रंथ प्राकृत की अपेक्षा कम लिखे गये है। लेकिन धार्मिक सिद्धातों को समझाने के लिए कथाओ का सबसे अधिक उपयोग किया गया है। पश्चिमी भारत के जैन विद्वानो ने भी इस माध्यम को अपनाया है। महेन्द्रसूरि (११३० ई०) की 'नर्मदासुन्दरी कथा', नरचन्द्र सूरि का 'कथारत्नसागर', राजशेखर का 'कथासग्रह', सोमचन्द्र गणि (१४४७ ई०) का कथामहोदधि, सोमकीर्ति की 'सप्तव्यसन कथा' तथा गुणाकरसूरि की 'सम्यक्त्व कौमुदी' आदि रचनाएं संस्कृत के अन्य कथा साहित्य से कम नही हैं। पंचतन्त्र की कथात्मक शैली का जैन संस्कृत साहित्य के इन कथाग्रंथो द्वारा पर्याप्त विकास हुआ है।

नाटक : जैन संस्कृत नाटको का लेखन अन्य विधाओ की अपेक्षा बाद मे प्रारभ हुआ है। सम्भवतः जैनाचार्य नाटक आदि विनोदों को धर्म की दृष्टि से हेय समझते थे। अतः उनके लेखन की ओर उनका प्रयत्न कम रहा। फिर भी १२वी सदी से जैन विद्वानों द्वारा संस्कृत के अनेक नाटक लिखे गये है। रामचन्द्र-गुणचन्द्र के 'रघुविलास', नवलविलास' आदि जयसिंहसूरि का 'कम्मीरमदमर्दन' तथा मेघप्रभाचार्य का 'धर्माम्युदय' आदि पश्चिमी भारत मे लिखित जैन संस्कृत साहित्य के प्रमुख नाटक है। 'अनर्घराघव' नाटक पर तीन जैन विद्वानो ने संस्कृत टीकाएं भी लिखी है।[1] जैन संस्कृत नाटको द्वारा केवल मनोरंजन ही नही होता अपितु धर्म-दर्शन के अनेक सिद्धान्तो का स्पष्टीकरण भी होता है।

पश्चिमी भारत मे लिखित जैन संस्कृत साहित्य मे इन उपर्युक्त विधाओ के अतिरिक्त स्तोत्र, सुभाषित, नीति, सन्देशकाव्य आदि विधाओ का पर्याप्त साहित्य मिलता है, जो यद्यपि काव्यात्मक दृष्टि से अधिक रसात्मक नहीं है फिर भी जीवन मे उसकी उपयोगिता अधिक है। जैन समाज मे भक्तिवाद के प्रचार मे इस प्रकार के साहित्य ने अधिक प्रभाव डाला है।

ज्योतिष एवं गणित . ज्योतिष एवं गणित से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ जैन विद्वानों ने सस्कृत मे लिखे है। 'सूर्यप्रज्ञप्ति', 'चन्द्रप्रज्ञप्ति' एवं 'ज्योतिष्करण्ड' प्राकृत के इन ग्रन्थो पर मलयगिरि ने सस्कृत में टीकाएं लिखी हैं। हरिभद्रसूरि ने 'लग्नसिद्ध', नरचन्द्र ने 'नारचन्द्रज्यातिशशास्त्र' तथा 'हर्षकीर्ति' ने 'ज्योतिशशास्त्र', जन्मपत्रीपद्धति 'लग्नविचार' नामक स्वतन्त्र ज्योतिषग्रन्थ लिखे है। गणित के क्षेत्र मे महावीराचार्य (८वी सदी) का 'गणितसारसग्रह', श्रीधराचार्य का 'गणितसार' तथा राजादित्य का 'व्यहारगणित' आदि रचनाये उल्लेखनीय है। ये ग्रन्थ भारतीय ज्योतिष तथा गणित के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

---

१ जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान, पृ० १७१, डॉ० कासलीवाल

जैनेतर सस्कृत ग्र थो पर टीकाए

पश्चिमी भारत के जन विद्वानो ने अनेक ग्रन्था पर मस्कृत टीकाए लिखकर सस्कृत साहित्य की अमूल्य सेवा की है। इससे एक ओर जहा प्रसिद्ध कवियो की सस्कत रचनाए समाज मे अधिक लोकप्रिय हुई हैं, दूसरी ओर उन कृतियो का मूल-स्वरूप भी सुरक्षित रह गया है। कालिदास, हप, माघ, भारवि, भट्टि, सोमेश्वर आदि के प्रसिद्ध ग्र थो की अनक पाण्डुलिपिया जैन ग्रन्थ भण्डारो मे प्राप्त हैं।[1] इन पर जिन जन विद्वानो न सस्कृत मे टीकाए लिखी हैं उनम प्रकाशवप (किरातार्जुनीयम्), धममेरु, सुमतिविजय, चारित्रवद्ध न (रघुवश), गुणरत्न (काव्यादश), मल्लिनाथ, विनयचन्द्र (मेघदूत आदि), जिनराजसूरि (नषधचरित) आदि टीकाकारो के नाम उल्लेखनीय हैं।[2] यह जैनविद्वाना का एक तरफ प्रयत्न था। यदि इसी प्रकार ब्राह्मण विद्वान् जैन प्राकृत साहित्य के ग्र थो पर टीकाए लिखते तो आज जन साहित्य इतना उपेक्षित नही रहता।

राजपुरुषो एव श्रावको द्वारा सस्कृत-सेवा

समय-समय पर पश्चिमी भारत मे अनेक राजपुरुष एस हुए हैं जिन्होने जन विद्वानो का राज्याश्रय एव अन्य सुविधाए प्रदान कर उन्हे सस्कृत साहित्य के लेखन मे सहयोग प्रदान किया है। स्वय भी अनक ग्रन्थो की रचना की है। इस क्षेत्र मे गुजरात के राजाओ एव राज्यमत्रिया का प्रमुख योगदान रहा है। सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल, वस्तुपाल तेजपाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। वस्तुपाल का निजी पुस्तकालय सस्कृत, प्राकृत के ग्रन्था स समृद्ध था। उसन विद्वानो की सुविधा के लिए तीन नगरो में पुस्तकालय भी स्थापित किये थे।[3] समय समय पर इन राजाओ द्वारा वादविवाद प्रतियोगिताए आयोजित होती रहती थी जिनम जनविद्वान् भी भाग लेते थे और सस्कृत की रचनाओ द्वारा चमत्कार दिखाते थे। जन गृहस्थो का मुक्त हस्त से दिया गया दान सस्कृत साहित्य की सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण था। कुछ श्रावको ने सस्कृत की रचनाए भी लिखी हैं, यथा—सेठपुत्र पद्मानन्द का 'वराग्यशतक' तथा नेमिचन्द्र भण्डारी क ग्र थ आदि।

जैन विद्वानो द्वारा लिखित सस्कृत अभिलेख

पश्चिमी भारत के कुछ जन विद्वाना का राज्या स घनिष्ठ सम्बन्ध था। राजाओ की सभा म रहन के कारण वे उनके अभिलख आदि लिखन का काय भी करते थ। कुमारपाल का चित्तौड अभिलेख (११५० ई०), बिजोलिया अभिलेख (११६८ ई०) तथा नूधा अभिलेख (१३१६ ई०) दिगम्बर जन विद्वाना द्वारा सस्कृत म लिखे गय हैं।[4] इस प्रकार के अन्य अभिलेख भी खोज जा सकते हैं जा न केवल एतिहासिक महत्त्व क हैं, अपितु उनका काव्य पक्ष भी अध्ययन क योग्य है।

---

१ जन ग्र थ भण्डार्स इन राजस्थान, पृ० २१७
२ मधुमती-जनतर सस्कृत साहित्य, श्री अगरचन्द्र नाहटा का लेख।
३ प्रबन्धकोष, पृ० १२६, वस्तुपालचरित, पृ० ८०
४ राजस्थान थ्रू द एजज—डॉ० दशरथ शर्मा, पृ० ५२४

३१ | राजस्थानी जैन साहित्य

•

डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत

राजस्थानी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाने में जैन साहित्यकारो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन साधु-साध्वियो का मुख्य दैनन्दिन कार्य-क्रम जनता को उनकी अपनी भाषा मे धर्मोपदेश देना रहा है। इस दृष्टि से वे जिस-जिस क्षेत्र में गये, उस-उस क्षेत्र की भाषा मे साहित्य रचना करते रहे। यही कारण है कि उनकी भाषा पर स्थानीय प्रभाव सर्वाधिक देखने को मिलता है। राजस्थानी साहित्य की पद्य और गद्य दोनो विधाओं मे सैकड़ों साहित्यसेवियो ने सहस्राधिक रचनाएँ की। उन सबका विवरण प्रस्तुत करना यहाँ संभव नही है। अतः प्रमुख साहित्यकारों का सक्षिप्त परिचय ही यहाँ दिया जा रहा है। साहित्य-रचना का यह क्रम तेरहवी शती से लेकर अद्यावधि यथावत् चालू है। युग प्रभाव से उसके कथ्य और शिल्प मे युगानुरूप परिवर्तन अवश्य आया है, पर मूल दृष्टि अध्यात्मप्रधान ही रही है।

१. शालिभद्र सूरि : ये राजगच्छ आम्नाय के प्रमुख आचार्य थे। देशी भाषा मे उपलब्ध रास ग्रंथो मे 'भरतेश्वर बाहु बलि रास' की गणना प्राचीनतम रास के रूप मे की जाती है। इसकी रचना सवत् १२४१ के फाल्गुन मास की पचमी तिथि को पूरी हुई थी। इनका एक अन्य रास 'बुद्धि रास' भी प्रसिद्ध है।

२. आसिग (आसगु) : इनके द्वारा रचित रचनाओ मे 'जीव दया रास' और 'चन्दन बाला रास' प्रमुख हैं। चन्दन बाला रास का रचना काल १२५७ के आसपास का है। प्रमाणों द्वारा स्पष्ट हुआ है कि इन दोनो रासो की रचना राजस्थान मे हुई थी।

३. सुमतिगणि : ये जिनपति सूरि के शिष्य कहे जाते हैं। इनकी कई रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमे से 'गणधर सार्ध शतक वृत्ति' सवत् १२९५ की रचित है। 'नेमिनाथ रास' आपकी प्रारभिक रचना है।

४. देल्हड़ : ये श्वेताम्बर श्रावक प्रतीत होते हैं। इनकी रचनाओ मे 'गयसुकुमाल रास' का प्राचीनता की दृष्टि से बडा महत्त्व है। रचनाकार ने श्री देवेन्द्र सूरि की प्रेरणा से इसकी रचना की। श्री देवेन्द्र सूरि सभवतः तपागच्छ के सस्थापक जगच्चन्द्र सूरि के शिष्य थे। जगच्चन्द्र सूरि का समय १३०० वि० के सन्निकट है, अतः इस रास का रचनाकाल १३वी शताब्दी माना जा सकता है।

५ जयसागर ये दरडा गोत्रीय खरतरगच्छीय महोपाध्याय थे। इनका जन्म सवत् १४५० के आसपास हुआ। 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' इनकी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक रचना है। राजस्थानी भाषा में रचित 'जिनकुशल सूरि सप्ततिका' का तो आज भी लोग पाठ करते हैं। इनकी छोटी-बडी कई रचनाएँ हैं, *यथा—चौबीस जिन स्तवन, वेग्रर स्वामी रास, अष्टापद तीर्थ बावनी, गौतमस्वामी* चतुष्पादिका, नेमिनाथ विवाहलो, अजितनाथ विनती, नेमिनाथ भावपूजा स्तोत्र, वीर प्रभु विनती सीमधर स्वामी विनती आदि।

६ देपाल इनका रचनाकाल सवत् १५०१ से १५३४ तक रहा है। ये नरसी मेहता के समकालीन थे। इनकी कुछ रचनाएँ इस प्रकार हैं—जावड भावड रास, चदनबाला चरित्र चौपई, जबू स्वामी पच भव वर्णन चौपई, स्थूलभद्र फाग, पार्श्वनाथ जीराउला रास, थावच्चा कुमार भास, श्रेणिक राजा रास, नवकार प्रबध, पुण्य-पाप फल चौपई आदि।

७ ऋषिवर्धन सूरि ये आचल गच्छ नायक जयकीर्ति सूरि के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—नल दवयती रास, जिनेन्द्रातिशय पचाशिका। इनका रचनाकाल सवत् १५१२ के लगभग रहा है।

८ मतिशेखर ये उपकेशगच्छीय शीलसुन्दर के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—धन्नारास, नेमिनाथ बसत फुलडा, कुरगडु महर्षि रास, मयणरेहा सती रास, इलापुत्र चरित्र *नेमिगीत* आदि।

९ पद्मनाभ ये १५-१६वीं शताब्दी के प्रतिभाशाली विद्वान् और प्रसिद्ध कवि थे। इनका चित्तौड से विशेष सम्बन्ध रहा। सघपति डूंगर के अनुरोध पर सवत् १५४३ मे इन्होंने बावनी (डूंगर-बावनी) की रचना की, जिसके विषय-नीति, व्यावहारिकता आत्म-दर्शन आदि हैं।

१० धर्मसुन्दर गणि ये खरतरगच्छीय जिनसागर सूरि की पट्ट परम्परा म विवेकसिंह के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—सुमित्रकुमार रास कुलध्वज कुमार रास, अवति सुकुमाल स्वाध्याय, रात्रि भोजन रास, प्रभाकर गुणाकर चौपई शकुतला रास सुदर्शन रास आदि।

११ सहजसुन्दर ये उपकेशगच्छीय उपाध्याय रत्नसूरि के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—इलायचीपुत्र सज्झाय, गुण रत्नाकर छन्द, ऋषिदत्तारास, रत्नसार कुमार चौपई, आत्मराज रास शुक साहेली कथा रास, जबू अतरग रास यौवन-जरा सवाद परदेशी राजा नो रास, आख कान सवाद, तरभवेलि आदि।

१२ पार्श्वनाथ सूरि ये नागपुरीय तपागच्छ के साधुरत्न के शिष्य थे। लोक भाषा में गद्य और पद्य दोनो म, प्रभूत रचनाओ की सृष्टि कर, इन्होंने जैन धर्म की महान् सेवा की। इनका जन्म सवत् १५३८ और स्वर्गवास १६१२ माना जाता है। इनकी छोटी-बडी कई रचनाएँ हैं। प्रमुख रचनाएँ हैं—साधु वदना, पाक्षिक छत्तीसी, चारित्र मनोरथ माला, श्रावक मनोरथ माला, वस्तुपाल तेजपाल रास, आत्म शिक्षा, आगम छत्तीसी, गुरु छत्तीसी, विवेक शतक, आदीश्वर स्तवन विज्ञप्तिका, शयन चरित्र सज्झाय, वीतराग स्तवन ढाल आदि।

१३. ठक्कुरसी : इनका समय सोलहवी शती रहा है। ये अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान और कवि थे। इनके पिता का नाम देल्ह था जो स्वय अच्छे कवि थे। ये चाटसू के रहने वाले पहाड़िया गोत्र के थे। अब तक इनकी ६ रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी, मेघमाला व्रतोद्यापन, कृपण गीत, शील बत्तीसी, पचेन्दिय वेलि (सवत् १५५०), गुणवेलि, नेमि राजमति वेलि, चिन्तामणि जयमाल, सीमधर स्तवन आदि।

१४. बूचराज : ये १६वी शताब्दी के प्रसिद्ध कवि थे। इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं—मयणजुज्झ, संतोष तिलक, जयमाल, चेतन पुद्गल, धमाल आदि।

१५ छीहल: ये सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध के कवि हैं। ये अग्रवाल जैन थे। इनके पिता का नाम नाथू था। ये अपने समय के प्रसिद्ध जैन विद्वान और कवि थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—पच सहेली (सवत् १५७५), आत्म प्रतिबोध जयमाल, उदर गीत, बावनी या छीहल बावनी (सवत् १५८४), पथी गीत या वेलि गीत।

१६ विनयसमुद्र : ये बीकानेर के रहने वाले व उपकेशगच्छीय वाचक हरसमुद्र के शिष्य थे। इनका रचना काल सवत् १५८३ से सवत् १६१४ तक रहा है। ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि व विद्वान थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—विक्रम पचदण्ड चौपाई, अम्बड़ चौपाई (सवत् १५९९), मृगावती चोपाई, चित्रसेन पद्मावती रास, सग्राम सूरि चौपाई, चन्दनबाला रास, नमि राजर्षि संधि, इलापुत्र रास आदि।

१७. राजशील : ये खरतरगच्छीय साधु हर्ष के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—विक्रम खापर चरित चौपाई (सवत् १५६३), अमरसेन वयरसेन चौपाई (संवत् १५९४), उत्तराध्ययन छत्तीस गीत, सिंदुर प्रकरण बालावबोध (गद्य रचना) आदि।

१८. पुण्यसागर : ये खरतरगच्छाचार्य जिनहस सूरि के शिष्य थे। ये अपने समय के प्रौढ विद्वानो मे अग्रगण्य थे। सं० १६५० मे इन्होने जैसलमेर मे जिनकुशलसूरि की पादुकाए प्रतिष्ठित की थी। इनकी आयु लगभग ८०-९० वर्ष की रही होगी। इनकी प्रमुख रचनाए हैं—सुबाहुसधि, (स १६०४), मुनिमालिका, प्रश्नोतर काव्यवृति, (१६४०), जम्बू द्वीप पन्नति वृत्ति (१६४५), नमि राजर्षि गीत, महावीर स्तवन, आदिनाथ स्तवन, अजित स्तवन, श्री जिनचन्द्रसूरि, अष्टकम् आदि।

१९. कुशललाभ : ये खरतरगच्छीय वाचक अभयधर्म के शिष्य थे। इनका जन्म सं० १५८० के लगभग हुआ प्रतीत होता है। इनका रचनाकाल स० १६१६ से स० १६२६ तक रहा है। ये अपने समय के ख्यातिप्राप्त प्रौढ कवि थे। इनका जैसलमेर के युवराज कुमार हरराबल से घनिष्ठ सम्बन्ध था। इनकी मुख्य रचनाएं हैं—माधवानल कामकन्दला चौपाई (१६१६), ढोलामारवणी चौपाई तेजसार रास (१६२४), अगड़दत्त रास (१६२५), भवानी छद, नवकारछद, जिनपालित जिनरक्षित संधि, पिंगल शिरोमणि, दुर्गा सात्तसी, आदि।

२०. मुनि मालदेव : ये भटनेर (हनुमानगढ़) के थे और वडगच्छीय भावदेव के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १६१२–१६१४ के आसपास प्रतीत होता है। इनका 'मन भमरा' और 'महावीर पारणा' आज भी लोकप्रिय हैं। इनकी प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं—पुरन्दर चौपाई, सुर सुन्दर

चौपाई, वीरागद चौपाइ, माल शिक्षा चौपाई, शीलबावनी स्थूलिभद्र धमालि चौपाई, भोज प्रबन्ध, देवदत्त चौपाई, सत्य की चौपाई, अजना सुन्दरी चौपाई, महावीर पचकल्याण स्त०, मृगाक पद्मावती रास, पद्मावती पद्म श्री रास, अमरसेन वयरसेन चौपाई, आदि।

२१ हीरकलश ये खरतरगच्छीय सागरचन्द्रसूरि शाखा के विद्वान् और कवि थे। इनका जन्म स० १५६५ मे और मृत्यु स० १६५७ के लगभग हुई। ये अपने समय के प्रख्यात कवि और ज्योतिष के पडित थे। इनकी प्रमुख रचनाए इस प्रकार हैं—सामायिक बत्तीस दोष कुलक (१६१५) दिनमान कुलक, जम्बू स्वामी चरित्र (१६१६) कुमति विध्वसन चौपाई, मुनिपति चौपाई (१६१८) सवजिन गणधर सख्या विनती, राजसिंह रत्नावती सधि, वृहद गुर्वावली (१६१६), वीर परम्परा नामावली, सोलह स्वप्न सज्भाय समकित गीत, सप्त व्यसन गीत, खरतर आचरण गीत, आराधन चौपाई, मोती कपासिया सवाद, जोइसहीर, आदि।

२२ कनकसोम ये खरतरगच्छीय अमर माणिक्य के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १६२५-१६५५ तक रहा है। इनकी प्रमुख रचनाए हैं–जइतपद वेलि जिनपालित जिन रक्षित रास, आपाढभूति चौपाई, हरिकेशी सधि, आर्द्र कुमार चौ० मगलकलश रास, थावच्चा सुकोशल चरित्र, कालिकाचाय कथा, जिनचन्द्रसूरि गीत, नेमि फाग आदि।

२३ हेमरत्न सूरि ये पूनमियागच्छ वाचक पद्मराज के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १६०३ से १६४५ तक रहा है। इनकी प्रमुखकृतियो म से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—शीलवती रास, महीपाल चौ०, अमरकुमार चौ०, गोरावादल चौ०, लीलवती रास, जगदम्बा बावनी आदि।

२४ ब्रह्म रायमल्ल ये अच्छे विद्वान् थे और भट्टारक अनन्तकीर्ति के शिष्य थे। इनका समय सत्रहवी शती रहा है। इनकी प्रद्युम्न रास, श्रीपाल रास, भविष्यदत्त कथा, हनुमत रास, सुदर्शन रास, नेमीश्वर रास आदि रचनाए प्रमुख है।

२५ हर्षकीर्ति ये सत्रहवी शती के कवि थे। इनकी 'पचगतिवेलि, प्रसिद्ध कृति है। अन्य कृतियो म छह लेश्या कवित्त, कम हिंडोलना, नेमिनाथ राजमति गीत, नेमीश्वर गीत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा लिखे हुए कई पद भी मिलते हैं।

२६ विद्याभूषण ये रामसेन परम्परा के साधु थे। इन्होने सोजत नगर मे 'भविष्यदत्त रास' की रचना सवत् १६०० म पूरी की।

२७ रत्नकीर्ति ये सूरत गद्दी के भट्टारक थे। स० १६४३ मे इनका पट्टाभिषेक हुआ और स० १६५६ तक ये भट्टारक रहे। राजस्थान से इनका काफी सम्बन्ध रहा। ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि एव साहित्यकार थे। इनकी उपलब्ध रचनाओ मे प्रमुख हैं—नेमीनाथ फाग, नेमिनाथ बारहमासा, नेमिनाथ हिंडोलना एव नेमीश्वर रास। इनके कई पद भी मिलते हैं।

२८ गुणविनय ये महोपाध्याय जयसोम के शिष्य थे। इनका रचनाकाल सवत् १६५४ स १६७६ तक है। सस्कृत के अनेक ग्रथो पर आपने टीकाए लिखी हैं। इनकी कतिपय राजस्थानी रचनाओ के नाम इस प्रकार हैं—नयवन्ता सधि, कलावतीरास, अजना प्रबन्ध, ऋषिदत्ता चौपाई, जीवस्वरूप चौ०, नलदमयती रास आदि।

२९ समयसुन्दर ये सत्रहवी शताब्दी के प्रमुख कवि थे। इनका जन्म सवत् १६२० क लगभग माना जाता है। इनके पिता का नाम रूपसी और माता का लालादे था। ये जिनचन्द्र सूरि के

शिष्य थे। इनका अष्टलक्षी साहित्य संसार का बेजोड़ ग्रन्थ है। ये संस्कृत, गुजराती और राजस्थानी के बड़े भारी विद्वान् थे। अब तक इनकी छोटी-मोटी ४०० रचनाएं उपलब्ध हुई हैं। इनकी रचनाओं का संग्रह 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' नाम से बीकानेर से प्रकाशित हुआ है। 'सीताराम चौपाई' इनकी प्रसिद्ध रचना है जो छप चुकी है। संवत् १७०२ में अहमदाबाद में इनका निधन हुआ।

३०. सहजकीर्ति : ये हेमनन्दन के शिष्य थे। इन्होंने संस्कृत और राजस्थानी दोनों में रचनाएं की। इनका रचनाकाल १६६१ से १६९७ तक है। राजस्थानी में रचित कतिपय रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—सुदर्शन चौ०, कलावती चौ० देवराज वच्छराज चौ०, शान्तिनाथ विवाहलो, शीलरास, हरिश्चन्द्र रास आदि।

३१. श्रीसार : ये रत्नहर्ष के शिष्य थे। इनका रचनाकल सं० १६८१–१६८९ तक रहा है। राजस्थानी में इनकी कतिपय रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—जिनराजसूरि रास, पार्श्वनाथ रास, जय-विजय चौ०, आनन्द श्रावक संधि, श्रीसार बावनी, उपदेश सत्तरी और स्तवनादि।

३२. जिनराजसूरि : ये जिनसिंह सूरि के पट्टधर आचार्य थे। इनका जन्म संवत् १६४७ में बीकानेर में हुआ। संस्कृत में इनकी 'नैषध काव्य' पर छत्तीस हजार श्लोक प्रमाण टीका है। राजस्थानी में इनकी कतिपय रचनाएं इस प्रकार हैं—शालिभद्र चौ०, चौबीसी, बीसी, शील बत्तीसी कर्म बत्तीसी, रामसीता रास, गजसुकुमाल रास, आदि। इनकी रचनाओं का एक संग्रह 'जिनराजसूरि कृति कुसुमांजलि' के नाम से बीकानेर से प्रकाशित हो चुका है।

३३. जोधराज गोदीका : इनका जन्म सं० १६७५ के आसपास हुआ। इनका निवास स्थान सांगानेर था। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं—धर्म सरोवर, सम्यक्त्व कौमुदी, प्रवचन सार भाषा, प्रीतंकर चरित्र, भाव दीपिका, कंवरपाल बत्तीसी, आदि।

३४. जिनहर्ष : ये खरतरगच्छीय पं० शान्ति हर्ष के शिष्य थे, दीक्षा से पूर्व इनका नाम जसराज था। इनकी समस्त कृतियों का परिमाण एक लाख श्लोकों के लगभग है। इनके बड़े-बड़े रासों की संख्या लगभग ५०-६० है। १७०४ से १७३६ की कालावधि कवि ने राजस्थान में व्यतीत की। इस समय की इनकी मुख्य रचनाएँ हैं—चंदनमलया गिरी चौ०, विद्याविलास रास, मंगल कलश चौ०, नंदबहुतरी, गजसुकुमाल रास, कुसुम श्री रास, मृगापुत्र चौ० आदि। सम्वत् १७३६ के बाद का कवि का समय पाटण (गुजरात) में बीता। वहां रचित रचनाओं की भाषा पर गुजराती का प्रभाव अधिक है।

३५. लाभवर्द्धन : ये जिनहर्ष के गुरु भाई थे। इनका रचनाकाल सं० १७२३ से १७७० तक रहा है। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं—विक्रम प्रबन्ध चौ०, लीलावती रास, विक्रम पंचदंड चौ०, लीलावती गणित रास, धर्मबुद्धि-पापबुद्धि चौ०, पांडव चौ०, शकुन दीपिका चौ० आदि।

३६ लब्धोदय : ये ज्ञानसार के शिष्य थे। इनका रचनाकाल संवत् १७०७ से लगभग १७५० तक रहा। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—पद्मिनी चौ०, मलयसुन्दरी चौ०, गुणावली चौ० आदि।

३७. धर्मवर्द्धन . खरतरगच्छ के विजय हर्ष के ये शिष्य थे। इनका रचनाकाल सं० १७१९

से लगभग सवत् १७६० तक रहा है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—श्रेणिक चौ०, अमरसेन वयरसेन चौ०, धम बावनी, छप्पय बावनी, शीलरास, श्रीमती चौढालिया, दशारणभद्र चौ० आदि। इनकी कृतियो का सग्रह बीकानेर से प्रकाशित हो चुका है।

३८ कीर्तिसुदर ये धमवद्धन के शिष्य थे। इनका रचनाकाल स० १७५७ से लगभग १७६५ तक रहा है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—अवती सुकुमाल चौ०, अभयकुमार चौढालिया, चौबोली चौढालिया, माकड रासो आदि।

३६ कुशलधीर ये जिनमाणिक्य सूरि शाखा के कल्याणधीर के शिष्य थ। इनका रचनाकाल स० १६६६ से १७२६ तक रहा है। इनके शिष्य कुशललाभ भी अच्छे कवि थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—वनराजर्षि चौ०, धम बुद्धि चौ० मल्लिस्तवन आदि।

४० जिनसमुद्र सूरि इनका रचना काल स० १७०६ से लगभग १७४० तक रहा है। इन्होने सवालाख प्रमाण श्लोको की रचना की। इनकी प्रमुख रचनाओ के नाम हैं—हरिबल चौ०, आतमकरणी सवाद, इलाचीकुमार, गुणसुदर चौ०, वसुदेव चौ० ऋषिदत्ता चौ० आदि।

४१ विनयचद ये ज्ञान तिलक के शिष्य थे। इनका रचनकाल स० १७५२ से लगभग स १७६० तक रहा है। इनकी प्रमुख रचनाओ के नाम है—उत्तमकुमार रास, ग्यारह अग सज्झाय आदि।

४२ जयमल्ल कविवर जयमल्ल जी का जन्म स० १७६५ भादवा सुदि १३ को लाबिया (जोधपुर) नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम मोहनलाल जी समदडिया तथा माता का महिमा देवी था। स० १७८८ मे इन्होने स्थानकवासी आचाय श्री भूधर जी म० के पास दीक्षाव्रत अगीकार किया। ये राजस्थानी के अच्छे कवि हैं। इनका ७१ रचनाओ का सकलन मुनि श्री मधुकरजी मा० सा० ने जयवाणी' नाम से किया है, जो आगरा से प्रकाशित हुआ है। इनके अतिरिक्त आपकी और भी रचनाएँ विभिन्न शास्त्र भडारो म प्राप्त हुई हैं, जिनम कुछ इस प्रकार हैं—चन्दनबाला की सज्झाय, श्रीमतीजी की ढाल मल्लिनाथ चरित, अजना रो रास, क्रोध की सज्झाय, मनुष्य जन्म की सज्झाय, नवतत्व की ढाल, लघु साधु वदना, वज्र पुरन्दर चौढालिया, सुरपिता का दोहा आदि। श्रीमती उषा बाफना ने डॉ० नरेन्द्र भानावत के निर्देशन मे इन पर 'सतकवि आचाय श्री जयमल्ल व्यक्तित्व और कृतित्व नामक लघु शोध प्रबन्ध लिखा था जिसका प्रकाशन जयध्वज प्रकाशन समिति मद्रास ने किया है।

४३ सत भीखण तेरापथ सम्प्रदाय के आद्य सस्थापक आचाय भिक्षु का जन्म स० १७८३ मे कटालिया ग्राम मे हुआ। ये स० १८०८ मे आचाय श्री रघुनाथ जी से दीक्षित हुए पश्चात् सम्वत् १८१७ मे इन्होने तेरापथ नाम के स्वतत्र मत का प्रवतन किया। ये राजस्थानी के महान् साहित्यकार थे। इन्होने ३५ हजार श्लोक प्रमाण ग्रन्थ रचना की। इनकी समस्त रचनाओ का सग्रह भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर नाम से तेरापथी महासभा, कलकत्ता द्वारा दो भागो मे प्रकाशित हुआ है।

४४ शोभजी ये स्वामी भीखण जी के निष्ठावन श्रावक थे। इनका जन्म चोरडिया परिवार मे हुआ। ये मेवाड के केलवा नामक स्थान के निवासी थे और रजवाडे मे काम करते थे। इन्हाने कई अध्यात्मप्रधान सरस पद और ढालें लिखी हैं।

४५. दौलतराम कासलीवाल : ये अपने समय के उत्कृष्ट कवि, गद्य लेखक और महान् विद्वान् थे। इनका समय सं० १७४६ से १८२६ रहा है। इन्होंने करीब १८ ग्रन्थों की रचना की। पद्म पुराण, हरिवंश पुराण, पुण्यास्रव कथाकोश आदि इनकी गद्य कृतियां हैं और विवेक विलास, अध्यात्म बारहखड़ी एवं जीवंधर चरित इनकी प्रमुख पद्यात्मक कृतियां हैं।

४६. टोडरमल : ये जयपुर के निवासी थे। इनका समय सं० १७८० से १८२७ तक रहा प्रतीत होता है। अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं व्युत्पन्न मति के कारण ये अपने समय के सर्वाधिक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् थे। भाषा-टीका लिखकर आपने ढूंढाड़ी गद्य को काफी समृद्ध बनाया। गोम्मटसार भाषा, आत्मानुशासन भाषा, त्रिलोकसार भाषा, मोक्षमार्ग प्रकाशक आपकी प्रसिद्ध कृतिया हैं।

४७. खुशालचंद काला : ये सांगानेर के निवासी थे। इनका जन्म स० १७५५ के आसपास हुआ था। ग्रन्थ-रचना मे इनकी विशेष रुचि थी। हरिवश पुराण, पद्म पुराण, यशोधर चरित, उत्तर पुराण, वर्धमान पुराण,जम्बू स्वामी चरित्र, चौबीस महाराज पूजा आदि इनकी प्रमुख रचनाएं हैं।

४८. जयचन्द छाबड़ा : इनका जन्म फागी ग्राम मे सं० १७९५ मे हुआ था। बाद मे ये जयपुर आकर रहने लगे। ये अच्छे विद्वान् थे। इनकी १६ से भी अधिक कृतिया हैं। प्रमुख रचनाओ के नाम इस प्रकार हैं—तत्वार्थ सूत्र भाषा वचनिका, सर्वार्थ सिद्धि भाषा वचनिका, द्रव्य संग्रह भाषा, समयसार भाषा, अष्ट पाहुड भाषा, आप्त मीमांसा भाषा, देवागमस्तोत्र भाषा, परीक्षा मुख भाषा आदि। इन्होने प्राकृत एवं सस्कृत ग्रन्थों का भाषानुवाद किया और इनके प्रचार मे महान् सहायक बने।

४९. रायचन्द : इनका जन्म सं० १७९६ की आश्विन शुक्ला एकादशी को जोधपुर में हुआ। इनके पिता का नाम विजयचन्द धाड़ीवाल तथा माता का नदादेवी था। सवत् १८१४ की आषाढ शुक्ला एकादशी को १८ वर्ष की अवस्था मे इन्होंने पीपाड शहर मे स्थानकवासी आचार्य श्री जयमल्ल जी से दीक्षाव्रत अगीकार किया। ६५ वर्ष की आयु मे स० १८६१ की चैत्र सुदी द्वितीया को इनका स्वर्गवास हुआ। ये अपने समय के प्रख्यात कवि और प्रभावशाली आचार्य थे। इनकी २०० से अधिक रचनाएं उपलब्ध हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—आषाढभूति मुनि को पंचढालियो, आठकर्मों पर चौपाई, आठ प्रवचन माता को चौढ़ालियो, एवन्ता ऋषि की ढाल, कलावती की चौपाई, करकंडू की चौपाई, गौतमस्वामी को रास,चन्दनबाला की ढाल, जम्बू स्वामी की सज्झाय, मेतार्य मुनि को चौढालियो आदि। इन्होंने पच्चीसी सज्ञक अनेक रचनाएँ लिखीं। कुमारी स्नेहलता माथुर ने 'कवि रायचंद और उनकी पच्चीसी सज्ञक रचनाएं' विषय पर लघु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है जो अब तक अप्रकाशित है।

५०. आसकरण : इनका जन्म जोधपुर राज्य के तिंवरी गांव मे हुआ था। इनके पिता का नाम रूपचन्द बोथरा तथा माता का गंगादेवी था। इन्होंने सम्वत् १८३० में आचार्य रायचन्द जी म० सा० के नेश्राय मे श्रमण दीक्षा अंगीकार की। इनकी छोटी बडी कई अध्यात्मिक भावपूर्ण रचनाएँ हस्तलिखित भंडारों में सुरक्षित हैं। अब तक जिन रचनाओ की जानकारी मिली है उनमे से

कुछ के नाम इस प्रकार हैं–दस श्रावको की ढाल, केशी गौतम चर्चा ढाल, साधुगुण माला, भरत जी री रिद्धि, छोटी साधु वन्दना गजसिंह जी का चौढाल्या, श्री धन्नाजी की सात ढाला, पूज्य रायचन्द जी म० के गुणो की ढाल आदि ।

५१ सबलदास इनका जन्म स० १८२८ मे भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को पोकरण मे हुआ । इनके पिता का नाम आनन्द राज जी लूणिया और माता का सुन्दर देवी था । १४ वष की अवस्था मे बुचकला ग्राम मे इन्होने आचाय श्री रायचद जी से मुनि दीक्षा धारण की । ६१ वप की आयु मे सवत् १९०३ मे वैशाख शुक्ला नवमी को सोजत म इनका स्वगवास हुआ । इनकी कई रचनाए व पद आ० विनयचद्र ज्ञान भडार म सुरक्षित हैं ।

५२ दुर्गादास इनका ज म स० १८०६ मे मारवाड जक्शन के पास मालरिया गाव मे हुआ । इनके पिता का नाम शिवराज तथा माता का सेवादेवी था । १५ वप की लघुवय म सवत् १८२१ मे इन्होने स्थानकवासी आचाय कुशलाजी म० के समीप दीक्षा अगीकार की । ये एक समथ कवि थे । इनकी रचनाओ का अभी पूरा पता नही चला है । स्फुट रूप से पद, सज्झाय, ढालें आदि रचनायें मिलती हैं । 'गौतम रास' और 'ऋषभ चरित इनकी अपेक्षाकृत बडी रचनायें हैं ।

५३ लालचन्द इनका जन्म कोटा राज्यान्तगत कातरदा नामक गाव म हुआ । ये कोटा परम्परा के आचाय श्री दौलतराम जी म० के शिष्य थे । इनकी रचनाए यत्र तत्र बिखरो पडी हैं । जिन रचनाओ की अब तक जानकारी मिली है, इनमे मुख्य हैं—महावीर स्वामी चरित, जबू चरित, चद्रसेन राजा की चौपाई, अठारह पाप के सवया बीस विरहमान का स्तवन, विजय कवर, विजया कुवरी चौढालिया, लालचद बावनी आदि ।

५४ बखतराम साह ये चाटसू (राजस्थान) के निवासी थे । इनके पिता का नाम पेमराम था । इन्होने 'मिथ्यात्व खडन' और बुद्धि विलास' की रचना की । 'मिथ्यात्व खडन' स० १८२१ की रचना है । इसम १४२३ दोहा चौपाई, छन्द हैं । इसी प्रकार बुद्धि विलास स० १८२७ की रचना है । इसम १५२३ दोहा-चौपाई हैं । इन रचनाओ के अतिरिक्त इनके पद भी पर्याप्त सख्या मे मिलते हैं ।

५५ नवलराम ये १८वी शताब्दी के कवि थे और बसवा (राजस्थान) के रहने वाले थे । महापडित दौलतराम कासलीवाल की प्रेरणा मे इनको साहित्यिक रुचि हुई । 'वधमान पुराण' इनकी स० १८२५ की रचना है । इसके अतिरिक्त इनकी रचनाओ म 'जय पच्चीसी' विनती रेखता आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । अब तक इनके २०० से अधिक पद भी प्राप्त हो चुके हैं । इनके अधिकाश पद भक्तिपरक हैं ।

५६ रत्नचन्द्र इनका जन्म स० १८३४ वशाख सुद पचमी को जयपुर राज्य के कुड नामक गाव म हुआ । इनके पिता का नाम लालचन्द्रजी और माता का हीरादेवी था । इनकी दीक्षा सम्वत १८४८ मे हुई और स० १८४९ मे इन्होने काव्य रचना करनी प्रारम्भ कर दी । ये आचाय श्री गुमानचन्द्रजी म० सा० के शिष्य थे । इनके द्वारा अनेक पद लिखे गये हैं जो स्तुति, उपदेश और धम कथा तीन भागो म बांटे गये हैं । स्तुतिपरक पदों मे तीर्थंकरो की स्तुति की गई है । औपदेशिक भाग म पुण्य-पाप, आत्मा-परमात्मा, बध मोक्षादि भावो का सुन्दर चित्रण किया गया है । धम कथा

खण्ड में जीवन को उदात्त बनाने वाली पद्यात्मक कथाएं हैं। इनकी रचनाओं का संग्रह सम्यग्ज्ञान प्रचारक मडल, जयपुर से 'श्री रत्नचन्द्र पद मुक्तावली' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसका सम्पादन पं० मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म० सा० ने किया है।

५७. बुधजन : ये जयपुर के रहने वाले थे। इनकी अब तक १७ रचनाए प्राप्त हो चुकी हैं। इनका रचनाकाल संवत् १८५४ से १८९५ रहा है। 'तत्वार्थ बोध' बुधजन सतसई, सबोध पचासिका, पंचास्तिकाय, बुधजन विलास, आदि इनकी प्रमुख रचनाए हैं। 'बुधजन विलास' मे इनकी स्फुट रचनाओ का संग्रह है।

५८. सदासुख कासलीवाल : इनका जन्म स० १८५२ के लगभग जयपुर मे हुआ। इनके पिता का नाम दुलीचन्दजी था। ये पं० टोडरमल की परम्परा मे होने वाले प्रमुख विद्वान थे। इनका निधन सं० १९२३ में हुआ। इन्होने अधिकाश ग्रंथ भाषानुवाद के रूप में ही लिखे है, जिनमे तत्वार्थ-सूत्र की अर्थ प्रकाशिका टीका, समयसार की हिन्दी गद्य टीका, रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा टीका आदि प्रमुख हैं।

५९. चौथमल : ये आचार्य श्री रघुनाथजी के शिष्य मुनि श्री अमीचन्दजी के शिष्य थे। इनका जन्म स० १८०० में मेड़ता के निकट भंवाल में हुआ। इनके पिता श्री रामचन्द्रजी व माता गुमानवाई वर्मन थी। इन्होने सं० १८१० मे दीक्षा अगीकृत की। ७० वर्ष का संयम-पालन के बाद स० १८८० मे इनका निधन हुआ। ये सुमधुर गायक और कवि थे। इनकी प्रमुख रचनाए हैं—जयवन्ती की ढाला, जिनरिख-जिनपाल, सेठ सुदर्शन, नन्दन मणियार, सनतकुमार चौढालिया, महाभारत ढाल सागर, रामायण, श्रीपाल चरित्र, दमघोष चौपाई आदि।

६०. जीतमल (जयाचार्य) : ये तेरापथ संप्रदाय के चतुर्थ आचार्य थे। इनका जन्म सं० १८६० में रोहट (मारवाड़) नामक स्थान पर हुआ। इन्होने सम्वत् १८६९ में ९ वर्ष की अल्पायु में प्रव्रज्या ग्रहण की। तेरापंथ सम्प्रदाय की नींव दृढ़ करने में इनका वडा हाथ रहा। इनका लगभग तीन लाख श्लोक परिमाण वाला विशाल साहित्य है। इनकी सर्वोत्कृष्ट कृति 'भगवती सूत्र' का राजस्थानी में रूपान्तरण है जो अनेक राग-रागनियों में है। इनका कथा-साहित्य भी वहुत विशाल है। अन्य रचनाओं मे प्रमुख हैं—भिक्षु जसरसायन, हेमनवरसा आदि। इनकी समस्त कृतियों का संक्षिप्त परिचय तेरापथी महासभा, कलकत्ता ने प्रकाशित किया है। सं० १९३८ में इनका देहावसान जयपुर में हुआ।

६१. कनीराम : ये पूज्य दुर्गादासजी म० के शिष्य मुनि श्री दुलीचन्दजी के शिष्य थे। इनका जन्म सं० १८५९ में खिवसर (जोधपुर) में हुआ। इनके पिता का नाम किसनदास तथा माता का नाम राऊदेवी था। स० १८७० में ये दीक्षित हुए। ये अत्यन्त सेवाभावी और चर्चावादी सत थे। सं० १९३६ में इनका स्वर्गवास हुआ। इनकी 'सिद्धान्त सार' व 'ब्रह्मविलास' (इसमें ८७ ढालें हैं) प्रसिद्ध रचनाए हैं। इन्होंने कई पद भी लिखे हैं।

६२. सुजानमल : इनका जन्म वि० १८९६ में हुआ। इनके पिता का नाम ताराचन्दजी और माता का नाम राई वाई था। इन्होने सं० १९११ में आचार्य श्री विनयचन्दजी म० सा० के पास दीक्षा अंगीकृत की। ये सुमधुर गायक और सरस कवि थे। इनकी रचनाओ का संग्रह सम्यग्ज्ञान

प्रचारक मण्डल जयपुर से 'सुजानपद सुमन वाटिका' नाम मे प्रकाशित हुआ है। इसका सम्पादन प० मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म० सा० ने किया है।

६३ महाचन्द य सीकर के रहने वाले थे और भट्टारक भानुकीर्ति की परम्परा में पाण्डे थे। इनकी त्रिलाकमार पूजा सबसे बडी रचना है, जिसका रचनाकाल सम्वत् १६१५ है। इन्होने कितने ही पदा की रचना की थी। इनके अधिकाश पद भक्ति, स्तुति एव उपदेशात्मक हैं।

६४ नेमिचन्द्र इनका जन्म वि० स० १६२५ मे आश्विन शुक्ला चतुदशी को बगडुन्दा (मवाड) म हुआ। इनके पिता का नाम देवीलाल लोढा और माता का नाम कमलादेवी था। ये जनाचाय श्री अमरसिंहजा म० सा० की परम्परा के छठे पट्टधर श्री पूनमचन्दजी म० सा० के शिष्य थे। य आशु कवि थ और चलते फिरते वार्तालाप मे या प्रवचन म शीघ्र ही कविता बना लिया करते थे। इनकी रचनाओ का एक सग्रह श्री पुष्कर मुनि न 'नेमवाणी' नाम से सम्पादित किया है जिसका प्रकाशन तारक गुरु ग्रन्थालय, पदराडा (उदयपुर) स हुआ है।

६५ श्रावक कवि विनयचन्द्र इनका जन्म जोधपुर भोपालगढ के बीच एक छोटे से ग्राम दईकडा मे हुआ। इनके पिता का नाम गोकुलचद कुम्भट था। य आचाय श्री हम्मीरमलजी के निष्ठावान श्रावक थे। य प्रज्ञाचक्षु थे। 'इनकी विनयचन्द चौबीसी' प्रसिद्ध रचना है जिसे कवि ने स० १६०६ म पूरी की थी। इनकी अन्य रचनाए हैं—पूज्य हमीर चरित्र, आत्मनिंदा, पट्टावली, फुटकर पद आदि।

६६ माधव मुनि य धमदासजी म० की परम्परा मे आचाय श्री नन्दलालजी म० के शिष्य थे स० १६४० के लगभग इन्होने दीक्षा अगीकृत की। य प्रखर चर्चावादी सन्त थे। स० १६८१ मे गाडोला (जयपुर) गाव के निकट इनका स्वगवास हुआ। य सरस कवि थे। इनके कई पद मिलते हैं।

६७ जेठमल य जयपुर के निष्ठावान श्रावक और प्रतिष्ठित जौहरी थे। इनके पिता का नाम श्री मूलसिंहजी था। य प्रसिद्ध सगीतज्ञ और चित्रकार थे। जम्बू चरित इनकी प्रसिद्ध रचना है जो प्रकाशित हो चुकी है। आपके कई पद भी रचित मिलते हैं जो बडे ही भावपूर्ण हैं।

साध्वी परम्परा की कवयित्रियाँ

भारतीय धम परम्परा मे साधुओ की तरह साध्वियो का भी विशेष योगदान रहा है। इन जन साध्वियो ने साहित्य निर्माण और उसके सरक्षण मे महत्त्वपूण योग दिया है। यहा प्रमुख कवयित्रियो के सम्बन्ध मे सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

६८ विनयचूला ये आगमगच्छीय हेमरत्नसूरि के समुदाय की शिष्या हैं। इन्होने सम्वत् १५१३ के आसपास 'श्री हेमरत्नसूरि गुरुफागु' नामक ११ पद्यो की रचना की। इसमे अमरसिंहसूरि के पट्टधर हेमरत्न सूरि का परिचय दिया गया है।

६६ पद्मश्री इनका सम्बन्ध आगमगच्छीय समुदाय स रहा है। श्री मोहनलाल दलीचद देसाई न 'जन गुजर कविओ' भाग ३, खण्ड १ के पृष्ठ ५३५ पर इनकी एक रचना 'चारुदत्त चरित्र' का उल्लेख किया है। पुष्पिका म लिखा है कि इस आगमगच्छीय धमरत्न सूरि ने स० १६२६ चत्र वदि १४ के दिन लिपिबद्ध किया। यह २५४ छन्दो की रचना है।

७०. हेमश्री : ये वडतपगच्छ के नयसुन्दरजी की शिष्या थी। 'जैन गुर्जर कविग्रो' भाग १ के पृ० २८६ पर इनकी एक रचना 'कनकावती ग्राख्यान' का उल्लेख मिलता है। यह ३६७ छन्दो की रचना है। इसकी रचना सम्वत् १६४४ वैशाख सुदी ७ मंगलवार को की गई।

७१. हेमसिद्धि : इनका सम्बन्ध खरतरगच्छ से था। श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' के पृष्ठ २१० और २११ पर इनके दो गीतों का पाठ दिया है। पहली रचना है—'लावण्य सिद्धि पहुतणी गीतम्' इस रचना मे साध्वी लावण्य सिद्धि का परिचय दिया गया है। दूसरी रचना 'सोमसिद्धि निर्वाण गीतम्' है। इसमे १८ पद्य है। यह रचना कवित्वपूर्ण है। इसमे कवयित्री का सोमसिद्धि के प्रति गहरा स्नेह और भक्तिभाव प्रकट हुआ है।

७२. विवेकसिद्धि : ये लावण्य सिद्धि की शिष्या थी। नाहटाजी ने ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' के पृ० ४२२ पर उनकी एक रचना 'विमल सिद्धि गुरुणी गीतम्' प्रकाशित की है। इस रचना के अनुसार विमल सिद्धि मुलतान निवासी माल्हू गोत्रीय शाह जयतसी की पत्नी जुगतादे की पुत्री थी। बीकानेर मे इनका स्वर्गवास हुआ।

७३. विद्यासिद्धि : नाहटाजी ने 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' के पृ० २१४ पर इनकी रचना 'गुरुणी गीतम्' प्रकाशित की है। प्रारम्भ की पक्ति न होने से गुरुणी का नाम ज्ञात नहीं हो सका है। बाद की पक्तियो से सूचित होता है कि ये गुरुणी साउसुखा गोत्रीय कर्मचन्द की पुत्री थी और जिनसिंह सूरि ने इन्हे पहुतणी पद दिया था। यह रचना सवत् १६६९ भाद्र कृष्णा २ को रची गयी।

७४. हरकू बाई : इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा से रहा है। आचार्य श्री विनय चन्द्र ज्ञान भण्डार जयपुर मे पुष्ठा स० १०५ मे ८८वी रचना 'महासती श्री अमरूजी का चरित्र' इनके द्वारा रचित मिलती है। इसकी रचना सवत् १८२० मे किशनगढ़ मे की गई। इन्ही की एक रचना 'महासतीजी चतरूजी सज्झाय' नाम मे नाहटाजी ने 'ऐतिहासिक काव्य संग्रह' मे पृष्ठ सं० २१४, २१५, पर प्रकाशित की है।

७५. हुलासा : ये भी स्थानकवासी परम्परा से सम्बन्धित हैं। आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर मे पुष्ठा स० २९८ मे ५०वी रचना 'क्षमा व तप ऊपर स्तवन' इनकी रचित मिलती है। इसकी रचना सम्वत् १८८७ मे पाली मे हुई थी।

७६. सरूपां बाई : ये स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्रीमलजी म० से सम्बन्धित हैं। नाहटाजी ने 'ऐतिहासिक काव्य सग्रह' मे पृ० १५६—१५८ पर इनकी एक रचना 'पूज्य श्रीमलजी की सज्झाय' प्रकाशित की है।

७७. जड़ावजी : ये स्थानकवासी परम्परा के आचार्य श्री रत्नचंद्रजी महाराज के सम्प्रदाय की प्रमुख रंभाजी की शिष्या थी। इनका जन्म सवत् १८९८ मे सेठो की रीया मे हुआ था। सम्वत् १९२२ मे ये दीक्षित हुईं। नेत्र ज्योति क्षीण होने से सम्वत् १९५० से अन्तिम समय सम्वत् १९७२ तक ये जयपुर मे ही स्थिरवासी बन कर रही। इनकी रचनाओ का एक सकलन 'जैन स्तवनावली' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमे इनकी स्तवनात्मक, कथात्मक, उपदेशात्मक और तात्विक रचनाए सग्रहित हैं। रूपक लिखने मे इन्हे विशेष सफलता मिली है।

७८. आर्या पार्वती : इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्री अमरसिंहजी महाराज की सम्प्रदाय से है। इनका जन्म आगरे के निकट खेड़ा भांडपुरी गाव मे चौहान रजपूत

बलन्वसिंह की पत्नी धनवती की कुक्षि स सम्वत् १६११ म हुआ । जन मुनि कु वरसेनजी के प्रतिबोध से सम्वत् १६२४ में इन्होन साध्वी हीरादेवी के पास दीक्षा ग्रहण की । 'जन गुजर कविग्रो' भाग ३, खण्ड १, पृष्ठ ३८६ पर इनकी निम्नलिखित चार रचनाग्रो का उल्लेख है—वृत मण्डली, ग्रजित सेन कुमार ढाल, सुमति चरित्र, ग्ररिदमन चौपाई । इनकी हस्तलिखित प्रतिया बीकानेर मे श्रीपूज्य जिनचारित्रसूरिजी के सग्रह में है । इनकी कई गद्य कृतिया भी प्रकाशित हैं ।

७६ भूरसुन्दरी इनका सम्ब ध स्थानकवासी परम्परा से है । इनका ज म सम्वत् १६१४ म नागौर के समीप बुसरी नामक गाव मे हुआ । इनके पिता का नाम ग्रखयचदजी राका तथा माता का नाम रामा बाई था । ११ वष की ग्रवस्था मे साध्वी चम्पा जी से इन्होने दीक्षा ग्रगीकार की । इनके प्रमुख प्रकाशित ग्रन्थ इस प्रकार हैं—भूर सुन्दरी जन भजनोद्धार, भूर सुन्दरी विवेक विलास, भूर सुन्दरी बोध विनोद, भूर सुन्दरी ग्राध्यात्म बोध, भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश, भूर सुन्दरी विद्या विलास । इनकी रचनाए मुख्यत स्तवनात्मक ग्रौर उपदेशात्मक है ।

८० रत्नकवर ये स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्री ग्रमोलक ऋषि जी महाराज क सम्प्रदाय की प्रवर्तिनी रही हैं । सम्वत् १६६२ मे ६१ ढालो म निबद्ध इनकी एक रचना 'श्री रत्नचूड-मणिचूड चरित्र' प्रकाशित हुइ ह ।

ग्राज भी विभिन्न सम्प्रदायो म कई जन साध्वी कवयित्रिया काव्य-साधना म लीन ह । तेरापथ सम्प्रदाय की हिन्दी कवयित्रियो के सम्बन्ध में एक निबन्ध उदयपुर स प्रकाशित होने वाली 'शोध पत्रिका' क जनवरी १६६६ ग्रक में प्रकाशित हुग्रा है । इस निबन्ध में डॉ० नरेन्द्र भानावत न साध्वी जयश्री, साध्वी मजुला, साध्वी स्नेह कुमारी, साध्वी कमल श्री, साध्वी रत्न श्री, साध्वी कानकुमारी, साध्वी फूलकुमारी, साध्वी मोहना, साध्वी कनक प्रभा, साध्वी यशोधरा, साध्वी सुमन श्री ग्रौर साध्वी कनक श्री की काव्य रचनाग्रो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया ह ।

जन काव्यधारा का प्रतिनिधित्व करन वाली इन साध्वी कवयित्रियो का हिन्दी कवयित्रियो में एक विशिष्ट स्थान है । इन्होन ग्रपनी काव्य माधुरी मे निर्मल, निर्विकार ग्रौर सदाचारमय जीवन जीने की प्रेरणा दी है ।



३२ | जैन चरित एवं चम्पू काव्य

•

डॉ० छविनाथ त्रिपाठी

आठवी शती से पूर्व न तो राजस्थान का प्रयोग एक प्रदेश-विशेष के अर्थ मे मिलता है, न उस समय के प्रचलित 'मरु' से ही आधुनिक राजस्थान का समग्र चित्र उभरता है।[1] साहित्य-सृजन की दृष्टि से पन्द्रहवी शती तक राजस्थान का जो वृहत्तर रूप सामने आता है, उसकी सीमा-रेखाएँ आगरा, यौधेय प्रदेश, सौराष्ट्र तथा राष्ट्रकूट तक फैली हुई दिखाई पड़ती हैं। इस शती से पूर्व की जैन कृतियो के सम्बन्ध मे यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि इनमे से कितनी राजस्थान मे लिखी गई या कौन-कौन सी रचनाए राजस्थानी जैन कवियो की देन है। कवियो के स्पष्ट इतिवृत्त के अभाव मे केवल इस तथ्य को ही प्रमुखता नही दी जा सकती कि राजस्थान के किसी जैन-भण्डार मे उपलब्ध होने के कारण ही वह राजस्थानी है, अथवा राजस्थान से बाहर उपलब्ध होने के कारण वह किसी राजस्थानी जैन कवि की रचना नही है। अधिकाश जैन रचनाए जैन-मुनियो की देन हैं और ये मुनि किसी भी एक स्थान से बध कर नही रहे, नही अपने भ्रमण मे इन्होने कोई प्रादेशिक सीमा का बन्धन स्वीकार किया।

जैन कवियो का मुख्य वर्ण्य त्रिपष्ठि शलाका पुरुषो का चरित रहा है, किन्तु इसका क्षेत्र विस्तृत होते-होते जैन मुनियो और श्रावक-श्राविकाओ के चरित-वर्णन तक पहुँच गया है। जनरुचि को आकृष्ट करने के लिए उन्होने धर्मकथाओ में काम कथाओ का समावेश किया और अत्यन्त निपुणता से धार्मिक प्रभाव की स्थापना के लिए साधन के रूप मे उनका उपयोग किया।[2] जैन कवियो के लिए काव्य-सृजन भी धार्मिक-साधना का एक अग था। जिन-वचन का ज्ञान, भावन और सवेग ही इनकी दृष्टि मे धर्म है[3] तथा काव्य के सृजन, पठन या श्रवण से इन तीनो की ही सिद्धी होती है। शलाका पुरुषो का चरित धार्मिक-चरित है, अतः धर्म का ज्ञान, भावन और सवेग इनमे सहज ही उपलब्ध हो जाता है।

---

१. 'मरु'—पउम चरिउ ३०।२, ८२।६

२. काम कहारत हितयस्स जणस्स सिंगार कहा वसेण धम्म चैव परिकहेमि।

—वसुदेव हिण्डी

३. एसो पुण जिणवर वयणाववोहओ जाय संवेग कारणो भावणामइओ सुह करणिज्जो धम्मोति। कुवलयमाला, पृ० ३ पंक्ति ११।

प्राकृत जैन चरित-काव्य-परम्परा

जन चरित काव्यो का आरम्भ विमल सूरि के पउम चरिउ और हरिवस चरिउ से माना जाता है। पउम चरिउ ११८ पर्वों मे शलाका पुरुष राम का चरित प्रस्तुत करता है जन परम्परा म प्राकृत की यह रचना वही स्थान रखती है जो वैष्णव परम्परा मे वाल्मीकि के रामायण को प्राप्त है। डॉ० जगदीशच द्र जैन के कथनानुसार इसमे आख्यायिका के गुण अधिक हैं।[1] विमल सूरि की दूसरी रचना अभी प्रकाश मे नही आई है। यह स्पष्ट है कि ईस्वी सन् की प्रथम शती से ही जन चरित काव्य उपलब्ध होने लगत हैं। यद्यपि डॉ० जन न विमल सूरि के बाद ग्यारहवी शती के गुणपाल के जम्बुचरिय का ही विवरण दिया है, कि तु कुवलयमाला की शरण ली जाय तो अपने पूर्ववर्ती कवियो का उल्लख करते हुए उद्योतन सूरि ने देवगुप्त के त्रिपुरुष चरित्र, प्रभजन के यशोधर चरित तथा रविषेण के पद्मचरित नामक प्राकृत काव्यो की चर्चा की है।[2] पाचवी शती के ही प्रवरसेनकृत सतुब घ और शूद्रक कृत कामदत्ता उपलब्ध हैं। अत कुवलयमाला के पूव का यह काल जन-चरित काव्यो से शून्य नही है।

प्राकृत के चम्पू काव्यो मे प्रथम स्थान कुवलयमाला (७७९ ई०) को ही प्राप्त है। यह एक वृहत् चम्पू काव्य है। इसके गद्य भाग की अलकृति एव गाढ बद्धता इसे चम्पू काव्य ही सिद्ध करती हैं। कवि ने इसे कामाथ-सभव धम कथा होने के कारण स्वय सकीर्ण कथा कहा है।[3] जन चरित एव चम्पू काव्यो की भाति नानाविध जीव परिणाम, भाव विभाव आदि इसमे भी वर्णित है,[4] तथा इसका भी मूल भाव निर्वेद और रस शा त ही है। आदि और अ त मे जिन तथा सिद्धादिको की व दना तो है ही, अ त मे कथाश्रवण का फल भी निर्दिष्ट है। इससे स्पष्ट है कि पौराणिक चरित-काव्या का प्रभाव इस पर भी है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि मे इसके कई स्थल अत्य त महत्त्वपूण माने जाते हैं।[5]

ग्यारहवीं शती से कुछ पूव की रचना जम्बुचरिय है। गुणपाल की इस कृति म सोलह उद्दे श हैं और यह गद्य पद्य मिश्रित चम्पू शली मे लिखी गई है। वास्तव मे यह रचना प्राकृत साहित्य की उस धारा का प्रतिनिधित्व करती है जो युग भावना के कारण अपनी सरलता से प्राकृत और अपभ्र श के चरित काव्यो को एक धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। मिश्र शैली मे लिखे होने के कारण ही यह चम्पू काव्य नही है। इसकी तुलना सस्कृत की गद्य-पद्य मिश्रित पचत त्र, हितोपदेश और वताल पचविंशतिका आदि से की जा सकती है। कवि ने इसे धमकथा कहा है।[6] कुवलयमाला का इस पर प्रचुर प्रभाव है। परवर्ती जन चरित काव्या मे से पात्रो की जैन धम म दीक्षा देनेवाली तथा त्रिषष्ठि शलाका पुरुषो एव स्थविरो के चरित प्रस्तुत करने वाली रचनाओ मे प्राकृत और अपभ्र श की कडी जोडने वाली कृति के रूप म ही यह मूल्यवान है।

---

१ प्राकृत साहित्य का इतिहास पृ० ५२८
२ कुवलयमाला-पृ० ३, प० २८ तथा ४।१
३ ता एसा धम्म कहा पि होउण कामत्थ सभवे सकिण्ण तण पत्ता। कु० मा पृ ४
४ कुवलयमाला ४।२१-२६ प०
५ वही, पृ० १५१-५४ तथा १६७-७६
६ जम्बुचरिय १।२१

कुवलयमाला और जम्बुचरियं के बीच मे केवल वसुदेव हिण्डी और समरादित्य कथा ही गद्य-पद्य मिश्रित रचनाएं दिखाई पड़ती है। पहली पांचवी शती की रचना है और दूसरी हरिभद्रसूरि की आठवी शती की कृति है। वसुदेव हिण्डी मे अनेक जैन कथाये सकलित है और गद्य के बीच-बीच मे कही-कही पद्य उपलब्ध होते है, किन्तु मात्रा की दृष्टि से समरादित्य कथा मे आर्या, द्विपदी और विपुला आदि छन्दो का प्रयोग उससे अधिक है। दसवी से पन्द्रहवी शती तक अनेक कथा एवं कथा कोप ग्रन्थ प्रस्तुत किए गये।[1] इनमे कही-कही पर पद्य-प्रयोग मिल जाता है किन्तु इन्हें चम्पू काव्य नही कहा जा सकता।

प्राकृत के अन्य चम्पू काव्यो मे पासनाह चरिय की रचना गुणचद्र गणि ने ११११ ई० मे की थी। इसमें पांच प्रस्ताव है। इसका गद्य भाग प्रौढ़ और समस्त पदावली सम्पन्न है तथा इसके पद्यो मे छन्दो की विविधता दिखाई पड़ती है।

इन कतिपय प्राकृत चम्पू काव्यो के अतिरिक्त पद्यबद्ध अनेक प्राकृत चरित काव्य उपलब्ध होते है।[2] प्रायः सभी चरित काव्य जैन धार्मिक उद्देश्यो की पूर्ति करते है। ग्यारहवी से चौदहवी शती तक के इन चरित काव्यो मे से अधिकाश तीर्थंकरो के चरित ही प्रस्तुत करते है। गणधरो और अन्य चरित्रो मे रत्नचूड, सुदर्शना, जयन्ती, मनोरमा, पुहवीचन्द, मुनि सुव्रत, सरण कुमार, तथा मल्लिनाथ के चरित्र मुख्य है। शील एव धर्म दृष्टि का प्रतिपादन इनका मुख्य लक्ष्य है। भापा की दृष्टि से ये प्राकृतापभ्रंश की रचनाएं है।

संस्कृत के जैन चरित और चम्पू :

सस्कृत के जैन महाकाव्यों मे सातवी शती का एक मात्र काव्य धनंजय कृत शत्रुञ्जय है। इसमे १४ मर्ग है और यह जैन दृष्टिकोण का प्रतिपादक होते हुए भी सस्कृत-काव्य-परम्परा का अनुसरण करता है।

विक्रम सवत् १०१६ मे सोम देव सूरि ने यशस्तिलक चम्पू लिखा। कवि राष्ट्रकूट के राजा कृष्ण तृतीय का समकालिक था जैन उत्तर पुराण इसका स्रोत है। कथा का अधिकांश भाग काल्पनिक है और पुनर्जन्म के विश्वास पर आधारित है। प्रारम्भिक चार आश्वासो मे कथा अविच्छिन्न गति से आगे बढती है, पर अन्तिम तीन आश्वास जैन धर्म के 'उपासकाध्ययन' का वर्णन करते है। इस कृति द्वारा सोमदेव के गहन अध्ययन, प्रगाढ-पांडित्य, भापा पर स्वच्छन्द प्रभुत्व एवं काव्य-क्षेत्र मे नये-नये प्रयोगो की उनकी अभिरुचि का परिचय मिलता है।[3] कवि ने इसे चरित, महाकाव्य और चम्पू कहा है।

ग्यारहवी शती के हरिचन्द द्वारा धर्मशर्माभ्युदय में तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित २१ सर्गो मे प्रस्तुत किया गया और सभवत. इसी कवि द्वारा जीवधर चम्पू की रचना की गई। इसका स्रोत भी गुणभद्र का उत्तर पुराण है। धार्मिक भावना और कवित्व पूर्ण अभिव्यक्ति का इसमे मजुल समन्वय

---

१. द्रष्टव्य-प्राकृत सा० का इति० पृ० ३७१ से
२. वही—पृ० ५२८ से
३. चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एव ऐतिहासिक अध्ययन [illegible]

हुआ है। कवि ने इस चरित को दुरितहन्ता कहा है और अन्त मे जीव धर द्वारा रत्नत्रय की उपलब्धि का उल्लेख किया है।[1]

बारहवी और तेरहवी शती के चरित काव्य मुख्यत तीर्थंकरो के चरित प्रस्तुत करत हैं, वाग्भट्ट द्वारा नेमि का चरित लिखा गया। अभयदेव कृत जय त विजय अमरचन्द्र कृत बाल भारत, वीरन दी कृत चन्द्रप्रभ चरित, देवप्रभकत पाण्डव चरित, वस्तुपाल कृत नरनारायणान द तथा बालच द्र सूरि कृत वसन्त विलास उल्लेखनीय रचनाए हैं।

तेरहवी शती म ही आशाधर ने भरतेश्वराभ्युदय और उनके शिष्य अर्हद्दास न पुरुदव चपू तथा मुनि सुव्रत काव्य लिखे। ये कृतिया सोनागिरि के भण्डार म उपलब्ध हुई हैं। कुछ ही समय बाद लिखे गये भरतेश्वर बाहुबलि रास को ध्यान म रखत हुए आशाधर के भरतेश्वराभ्युदय चपू का महत्त्व बढ जाता है। इसी काल का एक जैनाचाय विजय चपू भी उपलब्ध होता है, जिसके कवि का नाम ज्ञात नही है।

हेमचद्र ने बारहवी शती मे कुमारपाल चरित प्रस्तुत किया जिसक बीस सग सस्कृत म और आठ सग प्राकृत मे हैं। तेरहवी शती के नयनचद्रसूरि न हम्मीर महाकाव्य लिखा और इन दोनो ऐतिहासिक काव्यों ने सामा य श्रावक श्राविकाओ के चरित लिखन की ओर कविया का ध्यान आकृष्ट किया।

तेरहवी से अठारहवी शती तक सस्कृत के अनेक चरित काव्य जन कवियो द्वारा लिखे गए। य चरित काव्य मुख्यत पौराणिक चरित काव्य ही ह जा आदि पुराण या उत्तर पुराण का आधार मानकर लिखे गय। अनेक उपकथाओ का समावेश, उपदेश तत्त्व की प्रमुखता, वातावरण चित्रण की अपेक्षा सीधे कथा का आख्यान, वस्तु शथिल्य, कम फल एव जन्मान्तर वणन द्वारा चरित्रोत्थान की अभिरुचि, रत्नत्रय के साधन पर बल, कथारुढि का अनुसरण तथा कथानक की रोचकता को सुरक्षित रखते हुए जन सिद्धान्ता का प्रतिपादन आदि इन चरित काव्यो की विशेषताए हैं। डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री न वधमान (स० १४२०) के वराग चरित म लेकर धमचद (स० १७२६) के गौतम चरित तक ३५ बडे और ७ लघु चरित काव्यो का विवरण दिया है।[2] उन्ही के शब्दा म—

'अहिंसा धम और कम सस्कारो की प्रबलता का विश्लेषण करने के लिए हनुमान, सुदशन, श्रीपाल और यशोधर की कथा वस्तु मे काट-छांट कर पौराणिक चरित काव्या का प्रणयन इस युग की एक प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति है। पौराणिक चरित काव्यो म यत्र-तत्र अलकार, प्रकृति-चित्रण, कथा विस्तार एव पौराणिक मान्यताओ का निर्देश उपलब्ध होता है, पर लघु प्रबन्ध काव्यो मे केवल कथा का विस्तार ही उपलब्ध होता है। अलकार और वस्तु वणन अत्यन्त सक्षेप म अकित रहत हैं। कथा का विभाजन लघु प्रबन्धो म ६ सग स कम ही है।[3]

सस्कृत और प्राकृत क य चरित काव्य जन कवियो द्वारा रचित तो हैं ही, इनम से अधिकाश वतमान राजस्थान तथा कुछ वृहत्तर राजस्थान या उसके कवियो की रचनाए हैं।

---

१ जीवधर चपू ११।१२ तथा अन्तिम श्लोक लम्भ ११।
२ बाबू छोट लाल जन स्मृति ग्रन्थ–पृ० १११–११४
३ वही पृ० ११८

अपभ्रंश के चरित काव्य :

जैन चरित काव्य की दृष्टि से ही नहीं, अपितु हिन्दी-साहित्य की दृष्टि से भी आठवीं शती अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। महाकवि स्वयंभू ने पउम चरिउ की रचना कर ठीक वैसी ही काव्य-परम्परा की नींव डाली, जैसी संस्कृत मे वाल्मीकि और प्राकृत मे विमलसूरि ने डाली थी। पाच काण्डो और नव्वे सन्धियो मे विभक्त पउम चरिउ की अन्तिम सात सन्धियो के रचयिता स्वयभू के पुत्र त्रिभुवन हैं। पउम चरिउ का पर्याप्त अध्ययन किया जा चुका है और किया जा रहा है, तुलसी के रामचरित मानस के साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है, फिर भी इसका गम्भीर अध्ययन अभी बाकी है। इस काव्य के सम्बन्ध मे निम्न लिखित तथ्यो की ओर मैं अध्येताओं का ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा—

(१) स्वयभू ने रड्डा बन्ध मे यह चरित प्रस्तुत किया है, अत. काण्डो का विभाजन कवि कृत नहीं है; इस दृष्टि से भारतीय विद्या भवन और ज्ञानपीठ के सस्करण काव्य-बंध को स्पष्ट नहीं करते। कवि ने काव्य का विभाजन आश्वासो मे किया है और उन्हे तीर्थ माना है। कवि ने आश्वासों के अन्त मे ऐसे घत्ते दिए हैं, जिनमे कवि का नाम आ जाता है।[1]

(२) स्वयभू ने सर्वप्रथम पउम चरिउ की अडतालीसवी सन्धि मे रास का स्वरूप प्रस्तुत किया है। रिपुदारण रास (वि० ९६२) को सामने रखकर यह देखा जा सकता है कि वह प्रथम रास नहीं है। स्वयभू ने ही लघु रासो का स्वरूप सर्वप्रथम प्रस्तुत किया है।[2]

(३) बरवै का प्रयोग सर्वप्रथम रहीम ने नहीं किया। स्वयभू ने अंजना के विलाप के समय बरवै का प्रयोग किया है। दसवीं सन्धि मे अति बरवै भी है। स्वयंभू ने लगभग पचास प्रकार के छन्दो का उपयोग किया है, जिनमे दोहा, रोला, चौपाई बरवै आदि वे अनेक छन्द भी हैं, जिनको मध्यकाल के हिन्दी कवियो ने अधिक प्रश्रय दिया है।[3]

स्वयभू का रिट्ठणेमि चरिउ भी ११२ सन्धियो का काव्य है, जिसमे ९९ स्वयभू कृत, ११ त्रि-भुवन कृत तथा २ जसकीर्ति कृत है। यह जैन हरिवंश पुराण है। स्वयभू कृत अंशो मे कवित्व के साथ धार्मिकता है, परन्तु त्रिभुवन और जसकीर्ति के अंशो मे धार्मिकता अधिक उभरी है।

दसवी शती के दो महाकवियो ने जैन चरित और चम्पू काव्यो को दो दिशाएँ प्रदान की। सोमदेव सूरि का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पुष्पदन्त ने यशस्तिलक चम्पू के सदृश कथानक को लेकर ही जसहर चरिउ की रचना की। इनके अन्य चरित काव्य तिसट्ठि महापुरिस गुणालकार और णायकुमार चरिउ हैं। पुष्पदन्त भी कृष्ण तृतीय के आश्रित थे। दोनो ही कवियो का सम्बन्ध राज-नगर से विशिष्ट प्रतीत होता है। राष्ट्र कूट दरबार मे अनेक राजस्थानी जैन कवि थे जिनका संबंध वर्तमान राजस्थान के पश्चिमी भाग से था।

---

१. आश्वासों के अन्त में 'स इ भुज्जन्त थिय' है। पउम च० ७।१४, २०।१२ आदि।
२. विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य-सप्त सिन्धु, व० १३।अक ३।मार्च १९६६ में प्रकाशित मेरा लेख—महाकवि स्वयंभू की काव्य दृष्टि।
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २४३।

ग्यारहवी से पन्द्रहवी शती तक के चरित एव अन्य प्रकार की कृतियो की एक सूची डॉ० हरीश ने प्रस्तुत की है।[1] इस काल मे जो चरित काव्य लिखे गए हैं वे मुख्यत उत्साह, घोर, रास, चरित, चतुष्पदिका या चउपई सधि, फागु, विवाहलउ तथा गुर्वावली के रूप मे प्रस्तुत किए गए हैं।

इस काल की बहुचर्चित कृतियो मे शालिभद्र सूरि कृत भरतेश्वर बाहुबली रास (स० १२४१) है। इसे हिन्दी का आदि काव्य माना जाने लगा है। इसमे भरत और बाहुबली के युद्ध तथा बाहुबली के विजय को देखकर भरत द्वारा चक्ररत्न के प्रयोग के उपरान्त बाहुबली के निर्वेद का वर्णन किया गया है। सारा काव्य रास छद मे है और कवित्व तथा वर्णन कौशल एव अलकार-प्रयोग की दृष्टि से प्रौढ कृति के रूप मे मान्यता प्राप्त कर चुका है। इसके ठीक विपरीत स्थूलिभद्र फागु (स० १३६०) श्रृंगार रसानुप्राणित शान्त रस की रचना है। जिनपद्म सूरि की यह रचना भी एक घटनात्मक है। विनयचन्द्र सूरि की नेमिनाथ चउपई (स० १३५८) अपनी सवाद शैली और बारहमासा के प्रयोग के कारण ख्यात हुई है। जो अन्य कृतियाँ विवेचना का विषय बनी हैं उनमे नमिनाथ फागु, पचपाण्डव चरित रास, ज्ञान पचमी चौपाई तथा जम्बू स्वामी चरित मुख्य है। विशुद्ध ऐतिहासिक कृतियो मे सत्यपुरीय महावीर उत्साह, सघपति समरारास, पट्टाभिषेक रास, पथडरास आदि उल्लेखनीय हैं।

विक्रम की ग्यारहवी से पन्द्रहवी शती तक की राजस्थानी या हिन्दी कृतियो मे चम्पू काव्यो के अभाव का मुख्य कारण गद्य का अविकसित होना ही है। चौदहवी शताब्दी के आरम्भ से ही जैन मुनियो ने बालावबोधो के द्वारा गद्य को स्थिर रूप देना प्रारम्भ किया। चम्पू काव्य के लिए गद्य और पद्य दोनो भागो का प्रौढ एव अलकृत होना आवश्यक है। जैन मुनियो के गद्यात्मक प्रयोगो मे से एक जिनवर्धन सूरि की गुर्वावली (स० १४८२) है जिसमे महावीर से लेकर सोमसुन्दर सूरि तक अनेक गुरुओ का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसी समय माणिक्यचद्र सूरि ने पृथ्वीचद्र वाग्विलास (स० १४७८) का सृजन कर हिन्दी चम्पू काव्य का आदर्श प्रस्तुत किया। इसमे नायिका, तप एव भावना आदि का प्रौढ, अलकृत एव तुकान्त शैली मे उच्च कोटि का वर्णन किया गया। चम्पू काव्यो की हिन्दी मे परम्परा विकसित नही हुई। राजस्थानी मे भी वार्ता और वचनिका तथा दवावैत मे मिश्र शैली का प्रयोग अजैन कवियो ने किया, किन्तु उसके गद्य भाग की दुर्बलता ने उन कृतियो को चम्पू काव्य के स्तर तक नही पहुँचने दिया। इस मिश्र शैली की परम्परा मे जिन कुछ कृतियो की चर्चा की जा सकती है उनमे किशना जी के सदवच्छ सार्वलिगा री बात (स० १७६६) तथा जीवणदास की इसी नाम की वारता उल्लेखनीय हैं। पूर्व भव वर्णन के कारण इनमे जैन विश्वास तो दिखाई पड़ता है किन्तु इनकी शैली चारण शैली ही है। जीवणदास की कृति मे गद्य के बीच बीच मे दोहे हैं। उन्नीसवी शती के आरम्भ की एक विशुद्ध जैन कृति वस्तुपाल रचित जिनलाभ सूरि की दवावैत है, जिसमे गद्य के बीचबीच मे गीतो का प्रयोग किया गया है। इसका गद्य भाग भी मनोरम है।

सोलहवीं शती के बाद के राजस्थानी चरित काव्य

राजस्थानी का स्वतन्त्र विकास विक्रम की पन्द्रहवी शती मे ही आरम्भ हो चुका था। सधारू का प्रद्युम्न चरित आगरा मे लिखा गया था और रइधू ने अपने पाच चरित काव्यो तथा

---

१ आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध, पृ० २५५ २६२।

हरिवंश पुराण की रचना ग्वालियर मे की। सधारू ने सं० १४११ मे तथा रइधू ने सं० १४५० और स० १५४६ के मध्य अपने चरित काव्य प्रस्तुत किए। राजस्थान से बाहर के इन दोनो कृतिकारो को राजस्थानी कवियो मे गिना जाता है। डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ने राजस्थानी भाषा और साहित्य में देपाल को सोलहवी शती का आदि कवि माना है।[1] वस्तुतः तेजपाल ने स० १५०० मे अपना सभव-नाथ चरित भादानक (सभवत: वर्तमान भादरा) मे लिखा। चरित काव्य की दृष्टि से देपाल की रचनाओ से इसे पहले गिना जाना चाहिए। सोलहवी शती के आरम्भ से ही जो कृतियां मिलती हैं, उनमें कवियो ने प्राय: कृति के रचना-स्थल का उल्लेख भी किया है। एक ही कवि की अनेक कृतियो मे से कुछ मे तो ऐसे सकेत निश्चित रूप से मिलते हैं और उनके आधार पर निर्णायक रूप में यह कहा जा सकता है कि ये कृतियाँ राजस्थान मे ही लिखी गई हैं।

सोलहवी शती के आरम्भ से ही चरित काव्यो को—रास, चौपई, चरित, प्रबन्ध अवली और ढाल या संधि के रूप मे—प्रस्तुत किया गया है। ये चरित काव्य एक ओर तो पौराणिक चरितो या शलाका पुरुषो के चरित को प्रस्तुत करते है तो दूसरी ओर श्रावक-श्राविकाओं, गुरुओ मुनियो एवं ऐतिहासिक पात्रो तक उसका क्षेत्र विस्तृत कर देते है। हीरानन्द सूरि और कुशललाभ ने तो इन चरित काव्यों का क्षेत्र लोक-कथानको तक पहुचा दिया है। सोलहवी शती और परवर्ती काल मे चरित काव्य मुख्यत. चौपई या चौपाई तथा रास छन्दो मे लिखे गए। सन्धि और ढाल उनके बन्ध-कौशल रहे। चरित नामधारी काव्यो मे भी यही शैली अपनाई गई है। इन चरित काव्यो की संख्या सहस्रो में है जिनकी सूची यहा प्रस्तुत नही की जा सकती। कुछ प्रमुख कवियो और उनकी कृतियो मे चरित काव्यो की सख्या एव रचनाकाल आदि की एक झांकी ही यहां प्रस्तुत की जा रही है[2]—

सं०	कवि का नाम	रचना-काल (सं०)	ग्रन्थ सख्या
१.	देपाल	१५०१–१५३४	५ रास, ४ चौपई, १ प्रबन्ध, १ फाग
२.	ऋषिवर्धन	१५१२	१ रास
३.	मतिशेखर	१५१४–१५३७	३ रास, १ चरित्र
४.	धर्म समुद्र गणि	१५६७–१५८४	५ रास, १ चौपई
५.	सहज सुन्दर	१५७०–१५९५	८ रास, १ चौपई, १ छन्द
६.	पार्श्व चद्र सूरि	१५५४–१६१२	१ रास, २ चौपई, २ बन्ध
७.	मुनि पुण्य रतन (प्रथम)	१५८६	१ रास
८.	विनय समुद्र	१५९९–१६३६	६ रास, ६ चौपई, १ चरित्र, १ सधि

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २५०।

२ यह सूची डॉ० नरेन्द्र भानावत द्वारा सपादित श्री विनयचद्र ज्ञान भण्डार, ग्रन्थ सूची भाग-१ के आधार पर प्रस्तुत की गई है। आरम्भ के १७ कवियो का विवरण डॉ० माहेश्वरी ने भी दिया है।

स०	कवि का नाम	रचना-काल (स०)	ग्रन्थ सख्या
९	राजशील	१५६३-१५८४	२ चौपई
१०	पुण्य सागर	१६०४-१६४५	१ रास, १ चौपई, १ सधि
११	कुशल लाभ	१६१६-१६२५	२ रास २ चौपई १ सधि
१२	मालदेव	१६१२	१ रास, १० चौपई, १ प्रबन्ध
१३	हीर कलश	१६१५-१६५६	६ चौपई १ चरित, १ गुर्वावली, १ सधि
१४	कनक सोम	१६२५-१६५५	२ रास, २ चौ०, १ च०, १ सधि, १ कथा
१५	हेमरत्न सूरि	१६१६-१६७३	५ चौपई
१६	गुण विनय	१६५७-१६७६	५ रास, ७ चौपई, १ प्रबन्ध, १ सन्धि
१७	समय सुन्दर	१६७२-१७२२	१ रास, ६ चौपई १ चरित्र, १ ढाल
१८	जयवन्त सूरि	१६४३	१ रास
१९	जिनचन्द	१६६७	१ चौपई
२०	केशराज	१६८०	१ चरित्र
२१	मुनि श्री सार	१६८४	१ सन्धि
२२	रिखलालचद	१६९३	१ चौपई
२३	भुवन कीर्ति (प्रथम)	१७०६	१ रास, १ चरित्र
२४	खेम हर्ष	१७०९	१ रास
२५	मोहन विजय	१७१२-१७८३	१ चौपई, ३ चरित्र
२६	गजकुशल	१७१४	१ चौपई
२७	ज्ञान सागर	१७१४-१७२५	१ रास, १ चौपई, १ चरित्र
२८	जिन हर्ष	१७१७-१७४०	३ चौपई, १ ढाल
२९	न्याय सागर	१७२४	१ रास, १ ढाल
३०	मानसागर	१७२४-१७४७	१ चौपई, १ चरित्र
३१	भावप्रमोद गणि	१७२६	१ चौपई
३२	मति कुशल (प्र०)	१७२८	१ चौपई
३३	सुमतिवल्लभ (प्र०)	१७२९	१ चौपई
३४	रायचन्द	१७३१	१ ढाल
३५	जयरगगणि	१७३१	१ चौपई
३६	तत्त्वहस	१७३१	१ चौपई, १ चौढालिया
३७	यश विजय	१७३७	१ रास
३८	विनय विजय	१७३८	१ चरित (गद्य)
३९	लाभवर्धन	१७४२-१७६७	१ चतुष्पदी, १ चरित्र
४०	आनन्द-निधान	१७४८	१ चौपई प्रबन्ध
४१	आनन्द सागर (प्र०)	१७४८	१ चौपई
४२	समय सुजान	१७४९	१ सन्धि

स०	कवि का नाम	रचना-काल (स०)	ग्रन्थ-सख्या
४३.	जयतिलक सूरि	१७५१	१ चरित्र
४४.	कीर्ति सुन्दर	१७५६	१ चौपई, १ ढाल
४५.	प्रीतिसागर	१७६३	१ चौपई
४६.	दौलतराम	१७६७	१ रास
४७.	रायमल	१७६६	१ कथा पद्य
४८.	हीर मुनि	१७७५	१ रास
४९.	पूनमचन्द	१७८०	२ रास
५०.	केशराज	१७८५	१ रास, १ ढाल
५१.	जिनोदय सूरि		१ चौपई
५२.	राम विजय	१८१४	१ चरित्र
५३.	रायचन्द	१८२०–१८८१	१ रास, ५ चौ०, ६ च०, १३ ढा०, १ कथा
५४.	रत्नशेखर सूरि	१८३२	१ चरित्र
५५.	रिख सालदेव		१ चरित्र
५६.	ग्रासकरण	१८३६–१८५६	१ चौपई, २ चरित्र, ५ ढाल
५७.	सवलदास	१८६०–१६००	२ चौपई, ४ चरित्र, ३ ढाल
५८.	रत्नचन्द्राचार्य	१८५२	१ चरित
५९.	भगत विमल	१८५२	१ चौपई
६०.	जयसार	१८७२	१ चौपई
६१.	विनयचद्र	१८६५–१८८७	२ रास, २ चोपई
६२.	सेवक	१८९०	१ चरित्र
	हीरा सेवग		१ चौपई
६३.	चौथमल	१८१९–१८६८	४ चरित्र (१ गद्य)
६४.	जयमल	१८०२–१८७०	५ चरित्र, ५ ढाल
६५.	कुशलचंद	१९०४	१ चरित
६६.	मुनि मनिराम	१९०६	१ ढाल

इन कवियो के ग्रतिरिक्त ऐसे ग्रनेक राजस्थानी जैन कवि हैं जिनकी कृतियो मे रचना काल या रचना-स्थल का उल्लेख नही मिलता। ऐसे कवियो मे हर्ष कुशल, रूप विजय, खेतसी, ग्रानन्द निधान, विभव सुजस ग्रादि के नाम उल्लेखनीय है, जिन्होने रास, चरित या चौपई मे चरित काव्यो का सृजन किया है। ऊपर के ६६ कवियो की भी उन रचनाग्रो को छोड दिया गया है जिनकी छन्द-संख्या पचास से कम है।

इस सक्षिप्त सर्वेक्षण से कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते है—

१. जैन चरित काव्यो का प्रारम्भ प्रथम शती से हुग्रा ग्रौर विक्रम की बीसवी शती तक उसकी ग्रखण्ड ग्रौर ग्रविच्छिन्न धारा दिखाई पडती है।

२ इन चरित काव्या का सृजन प्राकृत म आरम्भ हुआ। अपभ्रंश मे उसे सर्वाधिक विस्तार मिला तथा अनेक कवियो ने संस्कृत म भी चरित काव्य प्रस्तुत किए। चम्पू काव्य का सृजन संस्कृत म ही हुआ। प्राकृत मे कथा नामक काव्य तो चम्पू शली के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, परन्तु चरित नामधारी काव्या म कुछ गद्य स्थल उपलब्ध होने पर भी वे चम्पू-काव्यत्व के स्तर को पूरा नही करते। चम्पू-काव्य-धारा के अवसान का मुख्य कारण राजस्थानी गद्य का १४वी शती तक प्रौढ़ रूप सामने न आना है। पन्द्रहवी शती के उपरान्त जब गद्य का विकास हुआ तो गद्यात्मक कृतियां म पृथ्वीचन्द्रवाग्विलास, कालकाचाय कथा आदि ने गद्य के स्वरूप को ही प्रौढ बनाया। मिश्र शली की वचनिका दवावैत और वार्ताओ के रूप म आन वाली कृतियो म यर्जन कृतियां ही मुख्य हैं। कान्हड द प्रब ध आदि म कुछ गद्य स्थलो के कारण व चम्पू काव्य नही बन जाते।

३ जन चरित काव्या मे विमल सूरि, स्वयभू, सोमदेव सूरि और पुष्प दन्त तथा हेमचन्द्र की कृतियो ने आधार भूमि तयार की और परवर्ती कविया ने उनस प्रचुर प्रेरणा ली।

४ बारहवीं शती स पन्द्रहवी शती के अ त तक का काल चरित काव्या की दृष्टि स सन्धि काल माना जा सकता है। संस्कृत के चरित काव्य तो शलाकापुरुषा, तीर्थंकरो या स्थविरो के चरित प्रस्तुत करते रहे किन्तु प्राकृत और प्राकृतापभ्र श मे चरित क्षेत्र का विस्तार हुआ। इस कडी म चन्द्र प्रभ का विजयचन्द्र कवली चरित्र (११२७) उल्लेखनीय है। भरतेश्वर बाहुबली रास और स्थूलि भद्र फाग को प्रचुर लोकप्रियता मिली है।

५ स्वयभू न सवप्रथम रास का आदश आठवी शती म प्रस्तुत किया और चरित काव्या क लिए भी यह एक लोकप्रिय धारा बन गई। पन्द्रहवी शती म पौराणिक चरितो क लिए भी दोहे चौपाई की शली प्रमुख बन गई, किन्तु रास परम्परा की लोकप्रियता ज्यो की त्यो बनी रही।

६ सम्वत् १५०० के पूव की अधिकाश जन-कृतियां भी राजस्थान म ही लिखी गई किन्तु अधिकांश के विवरण के अभाव मे उन्हे वृहत्तर राजस्थान की उपलब्धियां क रूप मे ही ग्रहण करना पडता है।

७ सालहवीं शती के बाद के उपलब्ध चरित काव्यों म स अधिकाश कृतियां पर रचना-काल और रचना-स्थल का उल्लेख मिलता है और निर्णायक रूप म इन कृतियों को राजस्थान का जैन चरित काव्य कहा जा सकता है।

८ पन्द्रहवी से बीसवी शती तक के कवियों म रचना परिमाण की दृष्टि स मतिसार, धम समुद्रगणि, सहज सुन्दर, पार्श्वचन्द्रसूरि, विनय समुद्र, मालदेव, हीरकलश, कनक सोम, हेमरत्न सूरि, गुण विनय, समय सुन्दर, जिनहर्ष, मोहन विजय, रायचन्द, आसकरण, सबलदास, विनयचन्द्र, चोथमल और जयमल को प्रथम वग म रखा जा सकता है। इनम स प्रत्येक न कई-कई चरित काव्य लिखे हैं।

९ पन्द्रहवीं शती में भाषा और काव्य-सृजन की धारा म महत्त्वपूर्ण परिवतन हुए और सोलहवी शती स बीसवी शती तक मुख्य रूप स—रास, चोपई चरित, बंध या प्रब ध तथा सधि या ढाल क रूप म ही चरित काव्य लिखे जाते रहे हैं। प्रबन्ध काव्यो म लौकिक और ऐतिहासिक

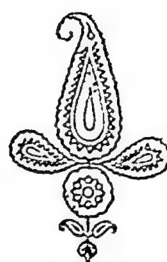
कथानको की ओर झुकने पर भी कुछ जैन कवियो को अपवाद रूप में छोड़कर अधिकाश इस ओर नही झुके ।[1]

१०. इन सभी चरित काव्यो का उद्देश्य दान, शील और भावना के साथ-साथ चरित्रोत्थान का स्वरूप उपस्थित करना ही रहा है, अतः इनका स्वर तो धार्मिक रहा ही है, सबका पर्यवसान भी निर्वेद या शान्त रस मे ही हुआ है ।

११. ऊपर दी गई सूची मे पचास छन्दो से बड़ी रचनाओ को ही लिया गया है फिर भी उनके विश्लेषण से पता चलता है कि चौपई या चतुष्पदिका के नाम से प्रस्तुत चरित काव्यों की संख्या सर्वाधिक (६१) है । उसके बाद के क्रम मे रास (५६) चरित (४१), ढाल (३४), सन्धि (८) तथा प्रबन्ध (६) या बन्ध को गिना जा सकता है । स्पष्ट है कि चरित काव्यो मे चौपई और रास को ही प्रमुखता मिली है । ये चरित रास है, उपदेश रसायन रास जैसे रास नही ।

१२. पौराणिक और लोकप्रिय स्थविरो के चरित्रो मे—राम, सीता, अजना और हनुमान तथा हरिवश, बलभद्र प्रद्युम्न, सुभद्रा, द्रौपदी और देवकी के चरित से सम्बन्धित काव्य मिलते हैं । लोकप्रियता की दृष्टि से अंजना का चरित्र आकर्षण का विषय रहा है । तीर्थंकरो मे नेमि इस काल मे भी अधिक वर्ण्य बने हैं । गणधरो एवं स्थविरो मे गौतमस्वामी, जम्बूस्वामी तथा गज सुकमाल तथा स्थूलिभद्र के चरित कवियो ने अधिक अपनाएँ हैं । शेष सभी चरित्र या तो मुनियो के हैं या श्रावक-श्राविकाओ के । इनमे राजा, सेठ, लोक कथानको के कुछ पात्र या धर्मबुद्धि जैसे कुछ काल्पनिक पात्र भी हैं । इन सभी कथानको मे उद्देश्य की एकरूपता बनी हुई है ।

इस प्रकार राजस्थान के जैन चरित एव चम्पू काव्यो मे भाषा और शैलीगत परिवर्तन तो युगानुसार होते गए हैं, पर जैन कवियो ने, विशेषतः राजस्थानी जैन कवियो ने चरित-काव्य-सृजन की अखण्ड परम्परा को कभी भी टूटने नही दिया है ।



१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २४६-४८ तक ४५ लोक कथानकों पर आश्रित कृतियों का उल्लेख किया गया है ।

३३ | राजस्थानी जैन कथा साहित्य

०

श्री श्रीचन्द्र जैन

जैन कथावाङ्मय

जन कथावाङ्मय का इतिहास उतना ही पुरातन है जितना जैन तत्त्वज्ञान और जन सिद्धान्त का इतिहास है। अनेकानेक कथाएँ तो जन वाङ्मय का सबसे प्राचीन भाग समझे जाने वाले आगमो मे ही वर्णित हैं। इन आगम-सूचित कथाओ की वस्तु का आधार लेकर, बाद मे होने वाले आचार्यों ने अनेक स्वतन्त्र कथा ग्रन्थ रचे और मूल कथावस्तु मे फिर अनेक अवान्तर कथाओ का सयोजन कर इस साहित्य को खूब ही विकसित और विस्तृत बनाया। इन कथाग्रन्थो मे से कुछ तो पुराणो की पद्धति पर रचे हुए हैं और कुछ आख्यायिकाओ की शैली पर। उपलब्ध ग्रन्थो मे पुराण पद्धति पर रचा हुआ सबसे प्राचीन और सबसे बडा प्राकृत कथा ग्रन्थ वसुदेवहिंडी है। इस ग्रन्थ की कथा के उपक्रम का आधार तो हरिवश अर्थात् यदुवश मे उत्पन्न होने वाला वसुदेव दशार है जो सस्कृत पुराण, महाभारत और हरिवश मे वर्णित कृष्ण वसुदेव का पिता है। परन्तु गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' की तरह इसमे सैकडो ही अवान्तर कथाएँ गुम्फित कर दी गई हैं, जिनमे प्राय सब ही जन तीर्थकरो के तथा अन्यान्य चक्रवर्ती आदि शलाका पुरुषो के एव अनेक ऋषि, मुनि, विद्याधर देव, दवो आदि के चरित भी वर्णित हैं। वसुदेवहिंडी' की कथाएँ प्राय सक्षेप मे और साररूप मे कही गई हैं। इन कथाओ मे से कुछ कथाओ को पुन चुनकर, पीछे के आचार्यों ने छोटे-बडे एव अनेक स्वतन्त्र कथा ग्रन्थो की रचनाएँ की और उन सक्षिप्त कथाओ को और भी अधिक पल्लवित किया।[१]

राजस्थानी साहित्य :

इसी प्राचीन परम्परा को सभाले हुए अनेक राजस्थानी जन कथाओ की रचना हुई तथा पद्यात्मक एव गद्यात्मक दोनो शलियो मे रचित राजस्थानी कथाओ की भी पर्याप्त सख्या है। राजस्थानी भाषा अपभ्रंश की जेठी बेटी मानी जाती है। अत कई शताब्दियो तक राजस्थानी रचनाओ पर अपभ्रंश का प्रभाव रहा और अपभ्रंश की परम्परा राजस्थानी साहित्य को सर्वाधिक रूप मे प्राप्त हुई है। तेरहवी शती मे राजस्थानी साहित्य का स्वतन्त्र विकास हुआ माना जाता है और तब से लेकर अब तक राजस्थानी साहित्य का निर्माण बराबर होता रहा है।[२]

---

१ जिनेश्वर सूरि विरचित कथाकोष प्रकरण, पृ० ९७–९८

२ राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा श्री अगरचन्द नाहटा पृ० ८४

यह तो हमे स्वीकार करना चाहिए कि राजस्थानी साहित्य के निर्माण में चारणो एव जैन विद्वानो का प्रमुख रूप से सहयोग रहा है और आज भी इनकी साहित्यिक सेवा बड़े गौरव से स्मरण की जाती है। राज्याश्रित होने के कारण चारणो का राजस्थानी साहित्य विशेषतः तत्कालीन राज-स्तवनपरक है लेकिन जैन मुनियो एव जैन विद्वानों ने जनता के हित को प्रधानता देकर ऐसा राजस्थानी साहित्य लिखा जो सार्वभौमिक होने के कारण कालजयी तथा युग-परिचायक होकर भी युगपरिधि से सदा परे है। इस प्रकार का जैन राजस्थानी साहित्य कथात्मक है अवश्य, लेकिन सामान्य जनता इसे सुविधा से याद कर सके एवं विभिन्न धार्मिक अवसरो पर इसे भक्ति विभोर होकर सामूहिक रूप मे गा सके, अत· ऐसे साहित्य का बाहुल्य है जो लघु होकर भी विभिन्न राग-रागनियों में गुम्फित हो। फलतः रास, फागु, चर्चरी, विवाहला, सधि, धवल, वेलि, रेलुका, सम्वाद, बारहमासा, सिलोका, हियाली आदि बहुसख्यक है, ऐसे काव्य रूप हैं जिनमे आराध्यो की महिमा है, प्रणम्य सती देवियो की आराधना है, धार्मिक कथाओ का गुम्फन है, धर्म-जागृति की तीव्र लालसा है और पुण्य-प्रसार की उत्कठा है।

राजस्थानी जैन कथाओ का उद्देश्य :

मानव-मन अत्यत चपल होता है और उसे स्थिर रखने के लिए ही इंसान ने न मालूम कबसे कितने प्रयत्न किये हैं। साधु-सन्तो ने कथाओ के द्वारा एक ओर मनोरजन के प्रयास किये हैं तो दूसरी ओर धार्मिक साधना का प्रसार-प्रचार करके मानव की दुष्प्रवृत्तियों के दमनार्थ जो उपाय प्रस्तुत किये हैं वे स्तुत्य हैं। लौकिक जीवन की विविध वासनाओ का उल्लेख इन कथाओं मे विद्यमान है लेकिन इन्हे शनै. शनै. परिष्कृत करने के भी यहाँ उपाय बताए गए हैं। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के स्वरूप की विशुद्ध व्याख्या करते हुए कथाकारो ने मानव को आकर्षक ढग से सासारिक जीवन बिताते हुए मोक्ष के पथ का अनुसरण करने की पूर्ण प्रेरणा दी है। इन जैन कथाओ मे धर्म की सर्वत्र प्रमुखता है और भौतिकता के परित्याग के हेतु विविध सम्बोधन-प्रबोधन हैं। धार्मिक सिद्धान्त बड़े गूढ होते हैं जो साधारण जनता की समझ में सुगमता से नही आ पाते। अतः विभिन्न क्षेत्रों मे भ्रमण करते हुए इन सत-साधुओ ने जनता की इस कमजोरी को पहिचाना और प्रचलित रूढ़ियो के सहारे कई रोचक कथाओ की यथावसर सृष्टि की तथा गहन सिद्धान्तो को बड़ी सरलता से बोधगम्य बनाया। नारी के यहाँ अनेक रूप चित्रित किए गए हैं। वह स्वाभिमानी है, कठोर-आराधना-परायणा भी है, तथा संघर्षप्रिय भी है लेकिन कथाकारो ने नारी की सहज प्रवृत्तियो को उद्घाटित कर उसके प्रशस्त मानवीय स्वरूप को अधिक चित्रित किया है।

राजस्थानी जैन कथाओ की विशेषताएँ :

प्रथमतः तेरहवी शताब्दी से अब तक प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की रचनाएँ मिलने के कारण भाषा के विकास की पूरी शृंखला मिल जाती है। दूसरी विशेषता है अनेक विधाओ या संज्ञाओ को अपनाना। तीसरी विशेषता है प्राचीन गद्य की प्रचुरता। चौथी विशेषता है ऐतिहासिक रचनाओ की अधिकता। जैनाचार्यो, मुनियो, श्रावको, तीर्थों आदि के सम्बन्ध मे छोटी-बड़ी सैकडो रचनाएँ हैं जिनमे जैन इतिहास के साथ राजस्थान और भारत के इतिहास एवं भूगोल पर भी अच्छा प्रकाश पडता है। जैन मुनि वर्ष मे केवल वर्षा काल के चार महीनो तक एक जगह रहते हैं, अन्य

समय घूमते रहते है। इसलिए उनकी रचनाओ में अनक स्थानो, वहा के शासको एव निवासियो का उल्लेख मिल जाता है। ग्रन्थो की रचना एव लेखन प्रशस्तियो मे भी अनेक ऐतिहासिक सूत्र एसे प्राप्त होते हैं जिनका अन्यत्र कही मिलना सभव नही।

पाचवी विशेषता —चारण कवियो की साहित्यिक शलो और भाषा रूढ सी है पर जन रचनाओ मे बोलचाल की सरल भाषा का उपयोग अधिक होन से भाषा के प्रान्तीय भेदा और बोलियो की अनकता के उदाहरण मिल जाते हैं।

छठी विशेषता —जन रचनाओ का उद्देश्य जनसाधारण को नीति और धम की ओर आकर्षित और अग्रसर करने का रहा है। अत नैतिक जीवन के उत्थान और धम की प्रेरणा, जन एव अध्यात्म की प्रेरणा जन रचनाओ से जितनी मिलती है उतनी अन्यत्र दुलभ है। चारणादि कवियो ने वीर-रस और शृगार रस का साहित्य अधिक लिखा है और जन कवियो ने शान्त रस का। इससे दोनो की रचनाए परस्पर पूरक सी हैं।

सातवी विशेषता —लोक कथाओ और लोक गोतो की देशियो को अधिकाधिक अपनाकर लोक साहित्य का बहुत बडा सरक्षण किया गया है। हजारो विस्मृत लोक गीत और कथाए जन रचनाओ द्वारा ही सुरक्षित रह सकी हैं। जनेतर साहित्य की सुरक्षा म भी जन लेखका का बडा भारी योगदान है।[1]

इसके अतिरिक्त अन्य कई विशेषताए है जिनका उल्लेख सक्षेप मे इस प्रकार किया जा सकता है[2] —

(१) यथाथवाद एव आदशवाद का समन्वय, (२) अध्यात्मवाद का प्राधान्य, (३) आजीविका के साधनो का विवरण, (४) जीवन के लौकिक एव पारलौकिक पक्षा का निरूपण, (५) पाप-पुण्य की रोचक व्याख्या, (६) विशुद्ध शृगार का चित्रण, (७) प्रकृति की मनोरम अभिव्यजना, (८) एतिहासिक तत्त्वो का निष्पक्ष निरूपण, (९) कल्पना का समुचित उपयाग, (१०) लोक-प्रचलित उदाहरणो की स्वीकृति एव प्रयोग, (११) शान्त रस की व्यापकता, (१२) सासारिक वभव की क्षण भगुरता, (१३) कम सिद्धान्त का समथन (१४) कौतूहल का पर्याप्त सम्मिश्रण (१५) विविध विषयो की समुचित चर्चा, (१६) कहानी की सुखद समाप्ति, (१७) सूक्तिया का प्रयोग, (१८) पुरातन परम्पराओ आदि का उल्लेख (१९) विविध यात्राओ का उल्लेख, (२०) रूपका एव प्रतीको का उपयोग, (२१) साधु-सन्तो की तपस्या का मार्मिक विवरण, (२२) उपसग-सहन की क्षमता का चित्रण, (२३) स्थानीय रगत का पुट, (२४) सशक्त वातावरण का सृष्टि, (२५) सत्य शिव, सुन्दर की व्यापक अभिव्यक्ति, (२६) कृत्रिमता का अभाव, (२७) श्रमण सस्कृति का प्रभावोत्पादक चित्रण, (२८) स्वप्न विचार, रत्न परीक्षा, वुद्धि-परीक्षण आदि की यथावसर चर्चा

१ श्री अगरचन्द नाहटा राजस्थानी साहित्य की गौरवपूण परम्परा।

२ इस सम्बन्ध म डॉ० नरेन्द्र भानावत का 'राजस्थानी साहित्य कुछ प्रवृत्तिया' पुस्तक म 'राजस्थानी बात साहित्य—एक पर्यालोचन' निबन्ध द्रष्टव्य है पृष्ठ २०–४३।

(२६) व्यसनों के परित्यागार्थ उपयुक्त प्रबोधन, (३०) ज्योतिष, योग, मंत्र-तंत्रादि की समयानुकूल उपयोगिता का समर्थन, (३१) नवरसों का समावेश ।

राजस्थानी जैन कथाओं का वर्गीकरण .

सागर की तरंगो के समान ये कथाएं अनन्त हैं[1] अतः इन्हें किसी विशिष्ट परिधि में आबद्ध करना कठिन है, फिर भी इन्हे इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :—

(१) राज कथा, (२) चोर कथा, (३) महामात्य कथा, (४) सेन कथा, (५) भय कथा, (६) युद्ध कथा, (७) अन्न कथा, (८) पान कथा, (९) वस्त्र कथा, (१०) शयन कथा, (११) माला कथा, (१२) गंध कथा, (१३) ज्ञाति कथा, (१४) यान कथा, (१५) ग्राम कथा, (१६) निगम कथा, (१७) नगर कथा, (१८) जनपद कथा, (१९) स्त्री कथा, (२०) पुरुष कथा, (२१) शूर कथा, (२२) विशाखा कथा (बाजारू गप्पें), (२३) कुंभ स्थान कथा (पनघट की कहानिया), (२४) पूर्व-प्रेत कथा, (२५) निरर्थक कथा, (२६) लोकाख्यायिका, (२७) समुद्राख्यायिका-दीर्घ निकाय १।८।

राजस्थानी जैन कथाओं की प्ररूढ़ियां ।

कथाओ के निर्माण मे प्ररूढियो का विशेष महत्त्व है । जिस प्रकार गृह के आकार को स्थूल रूप देने के लिए ईंट, पत्थर, चूना, लकडी आदि की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार कथा के स्वरूप में स्थिरता लाने एवं उसे विशेष मनोरंजक बनाने के लिए तथा उसमे रोमांस की अभिवृद्धि के हेतु प्ररूढ़ियो का प्रयोग अत्यावश्यक माना गया है । प्ररूढि को अभिप्राय भी कहते हैं । इसे अंग्रेजी मे मोटिफ नाम से अभिहित किया जाता है । डॉ० श्यामाचरण दुबे इस अभिप्राय को कथा का मूल भाव मानते हैं । डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी इसे कथानक रूढि के रूप मे स्वीकार करते हैं ।[2]

राजस्थानी जैन कथाओ की कतिपय प्ररूढियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) विलीन होते हुए मेघ को, श्वेत केश को, शव को, बिजली की चमक को, वृद्ध को, नृत्य करती हुई स्त्री की मृत्यु को, या कोढी को देखकर विरक्त होना ।
(२) अवधि ज्ञानी मुनि के द्वारा आयु की समाप्ति जानकर मुनि दीक्षा ग्रहण करना ।
(३) जल यात्रा करते समय जहाज का भग हो जाना तथा काष्ठ फलक के सहारे नायक-नायिका की प्राण रक्षा ।
(४) शिकार खेलते हुए राजा का मूर्छित होना तथा घोडे का निर्जन वन में पहुचना ।
(५) भविष्यवाणी और आकाशवाणी की योजना ।
(६) स्वप्न-दर्शन के माध्यम से प्रेम का प्रस्फुटन ।
(७) शकुनापशकुन के द्वारा शुभाशुभ भविष्य का सकेत ।
(८) मत्र-तंत्र जादू-टोना आदि का प्रभाव ।

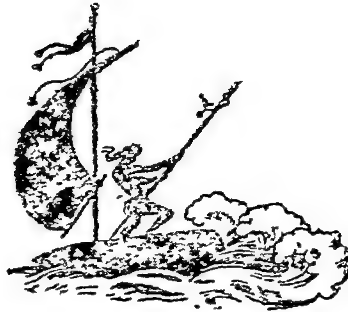
---

१ देखिए—श्री अगरचन्द नाहटा के लेख—प्राचीन जैन राजस्थानी गद्य साहित्य (शोधपत्रिका) एव आदिकालीन राजस्थानी जैन साहित्य (परम्परा) ।

२. जैन कथाओ का सास्कृतिक अध्ययन : श्रीचन्द्र जैन, पृ० ४२ ।

(९) स्वकीय पापा की आलोचना करते हुए विरक्त होना।
(१०) मत्रो के द्वारा सप दश का शमन होना।
(११) मत्रित पादुकाग्रो से आकाश मे उडना।
(१२) श्मशान म पुत्र-ज म।
(१३) राजकुमार के चुनाव मे हाथी द्वारा माल्यार्पण।
(१४) जलदेवी द्वारा आशीर्वाद।
(१५) अग्नि कु ड मे कूद कर निर्दोषता प्रमाणित करना।
(१६) सौतेली माता के दुर्व्यवहार स गृह-परित्याग।
(१७) शिशु को स दूक म वद करके जल मे प्रवाहित करना।
(१८) साधु के आशीष से रोग का नष्ट होना।
(१९) गधोदक से कुष्ठ रोग की समाप्ति।
(२०) पद-प्रक्षालन से पति की पहिचान।
(२१) पद-स्पश से वद किवाडो का खुलना और इस प्रकार सच्चरित्रता प्रमाणित करना।
(२२) पूव पुण्य के द्वारा समस्त कलाओ मे निपुणता प्राप्त करना।
(२३) मरणासन्न पशु-पक्षी का णमोकार मत्र सुनकर स्वर्ग मे जाना।
(२४) पशु-पक्षियो का मानव-वाणी म बोलना।
(२५) विदेश मे पति की मृत्यु हो जाने पर घर के वृक्ष का सूख जाना।
(२६) अन्य पशु-पक्षिया (हिंसक) द्वारा मुनि उपदेश से माम-भक्षण का त्याग।
(२७) पुण्य के प्रभाव से आग का जल म परिवर्तित हो जाना।
(२८) स्वमित्र क प्रबोधनार्थ स्वग से देवता का मध्यलोक तथा अधोलोक में आना।
(२९) जल म लिखे गए मत्र का पाँव से मिटाना तथा इस पाप से नरक जाना।
(३०) शास्त्राभ्यास तथा मुनि-दशन से जाति स्मरण ज्ञान होना।
(३१) चौपड खेलत हुए अगूठी का अपहरण।
(३२) पौरुष की विविध परीक्षाए।
(३३) साधु निन्दा स कोढी बन जाना एव पश्चात्ताप से रोग-मुक्ति।
(३४) कुपित सिंह का मत्र के प्रभाव स शांत हो जाना।
(३५) प्रभु स्मरण स विष का अमृत बनना।
(३६) पहेलिकाए पूछकर बुद्धि की परीक्षा।
(३७) भक्तामर स्तोत्र स कारागार-मुक्ति।
(३८) अतिशयधारी मुनि क प्रभाव स छ ऋतुओं का एक साथ आविर्भाव।
(३९) शीलवती क उपसग को दूर करन क लिए स्वग से इन्द्र का मध्यलोक में आना।
(४०) मिथ्या भाषण स स्वर्ण जीभ का कटकर गिरना।
(४१) तिलक आदि के पदों के प्रभाव स महामारी दुर्भिक्ष अपमृत्यु आदि रोगों का शमन।
(४२) सांकेतिक भाषा का प्रयोग।

(४३) द्यूत मे पराजित होकर पति का गृह-त्याग तथा पत्नी की चतुराई से पति का स्वदेश आगमन ।
(४४) आराध्य की आराधना से सन्तान-प्राप्ति ।
(४५) विद्यालय मे सह पठन से युवक-युवती का प्रेम अंकुरित होना ।
(४६) विशेष आकर्षण से विवाह के लिए हठ ।
(४७) रात में किसी वृक्ष के नीचे लेटे हुए व्यक्ति का पेड पर बैठे हुए देवी-देवता के वार्तालाप का सुनना ।
(४८) पति द्वारा दीवाल अथवा वस्त्र पर कुछ संदेश लिखकर विदेश चला जाना ।
(४९) पुरुषवेश मे वधू का स्वपति की खोज मे परिभ्रमण ।
(५०) अंधेरी रात मे शृगाल द्वारा विपत्ति के आगमन की सूचना ।
(५१) विविध लोक-विश्वासो का यथावसर उल्लेख ।
(५२) वृक्षो का वार्तालाप ।
(५३) अति मानवीय शक्ति का उपयोग ।
(५४) उबलते हुए तेल में हाथ डालकर अपनी सच्चाई सिद्ध करना ।
(५५) आत्म-दाह की धमकी ।
(५६) मेघ, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि के द्वारा सन्देश प्रेषण ।
(५७) जलते हुए दीपक का सहसा बुझ जाना और घर के प्रधान की मृत्यु होना ।
(५८) अशुभ कर्मोदय से काष्ठ की मोरनी का टंगे हुए हार का निगलना ।
(५९) सुन्दरी के पद-प्रहार से वृक्षो का पुष्पित होना ।
(६०) पशु के द्वारा णमोकार मत्र का शुद्ध उच्चारण ।
(६१) साध्वी के अवलोकन मात्र से सूखे कूप का निर्मल जल से भर जाना ।



३४ | जैन आयुर्वेदिक साहित्य

०

श्री राजेन्द्रप्रकाश आ० भटनागर

जन साधुओ और धनिको ने राजस्थान मे भारतीय कला, विज्ञान, शिक्षा और ज्ञान को अक्षुण्ण बनाये रखने मे अद्वितीय योगदान किया है। जन यतियो ने 'उपासरो' के माध्यम से इस कार्य को जीवित रखा। ये 'उपासरे' शिक्षा और वद्यक चिकित्सा के लोकप्रिय केन्द्र थे। इनमे रहते हुए जन यति शिक्षा देने के साथ-साथ चिकित्सा-कार्य द्वारा जनसामान्य को अनुप्राणित करते रहे हैं।

जन आगम साहित्य म वर्णित आयुर्वेद सबधी सदर्भों का पर्यालोचन डॉ० जगदीशचन्द्र जन ने अपने शोधप्रबध 'जन आगम साहित्य म भारतीय समाज'' मे पृष्ठ ३०७–३१८ पर किया है।

जैन आयुर्वेद की परम्परा :

जैन आयुर्वेद को 'प्राणावाय' कहा जाता है। जैन तीर्थंकरो की वाणी अर्थात् उपदेश को विषयो के अनुसार स्थूलरूप से बारह भागों म विभाजित किया गया है, इन्हें 'द्वादशाग' कहते हैं। इनमे स अतिम अग 'दृष्टिवाद' कहलाता है। दृष्टिवाद क पाच भेद होते हैं—१ परिकम, २ सूत्र, ३ पूवगत, ४ अनुयोग और ५ चूलिका। पूव १४ हैं। इनमे से १२वें पूव का नाम 'प्राणावाय (प्राणायु) है। कायचिकित्सा आदि आठ अगो म सपूर्ण आयुर्वेद का प्रतिपादन, भूतशांति क उपाय, विषचिकित्सा और प्राण अपान आदि वायुओं के शरीरधारण करने की दृष्टि से कम का विभाजन का जिसमे वणन किया गया है, उसे प्राणावाय' कहते हैं।

कायचिकित्साद्यष्टांगायुर्वेद भूतिकर्मजांगुलिप्रक्रम ।
प्राणापानविभागोऽपि यत्र विस्तरेण वर्णितस्तत् प्राणावायम् ।। '

—तत्त्वार्थराजवार्तिक, अ १ सू २०

इस पूव' मे मनुष्य क आभ्यतर–मानसिक और आध्यात्मिक तथा बाह्य शारीरिक स्वास्थ्य के उपायों जस यम-नियम, आहार विहार और औषधियो का विवेचन है। साथ ही, दविक, भौतिक अधिभौतिक, जनपदध्वसी रोगो की चिकित्सा का विस्तार स विचार किया गया है।

दिगम्बराचार्य उग्रादित्य न अपने प्रसिद्ध वद्यकग्रन्थ 'कल्याणकारक' म प्राणावाय' सम्बन्धी वद्यक ज्ञान के अवतरण और परम्परा का सुन्दर निदान किया है।

जब भरत चक्रवर्ती आदि भगवान् आदिनाथ के समवसरण मे मनुष्यो के रोगरूपी दु:खों की मुक्ति का उपाय पूछने के लिए उपस्थित हुए, तब भगवान् ने उन्हें पुरुष, रोग, औषध और काल, इन चार वस्तुओ के रूप मे समस्त आयुर्वेद को बाटकर, उनके भेद-प्रभेद बताते हुए, सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान प्रकटित किया। इस ज्ञान को सर्वप्रथम गणधरो और प्रति-गणधरो ने सीखा। उनसे श्रुतकेवलियों ने और श्रुतकेवलियों से बाद मे होने वाले अन्य मुनियो ने क्रमश: प्राप्त किया।

'प्राणावाय' की इस प्राचीन परम्परा का आयुर्वेद के अन्य ग्रंथों में उल्लेख नही मिलता। 'प्राणावाय' के ग्रन्थों मे मद्य, मांस व मधु का प्रयोग नही है। शल्यकर्म व हिंसा भी नही दिखाई देती। सभी योग वानस्पतिक व खनिज द्रव्यो से निर्मित है।

कालान्तर मे 'प्राणावाय' की परम्परा स्वतन्त्र नही रहकर, उसका साहित्य आयुर्वेदीय ग्रन्थों मे ही समाविष्ट हो गया।

जैन आयुर्वेदिक साहित्य की विशेषताएँ :

प्रस्तुत निबन्ध में राजस्थान के जैनसम्प्रदायानुयायी साधुओं आदि के द्वारा भारतीय चिकित्सा-विज्ञान—आयुर्वेद सम्बन्धी रचे गये साहित्य के सम्बन्ध मे परिचय उपस्थापित करने का प्रयास किया गया है। यह साहित्य अधिकांशत: मध्ययुग मे रचा गया। मुझे कोई हस्तलिखित ग्रन्थ वि० १६वी शती से पूर्व का निर्मित, उपलब्ध नही हुआ। इस साहित्य से सम्बन्धित विशेषताओ को निम्न बिन्दुओ में प्रकट किया जा सकता है—

(१) यह साहित्य (जैन साधुओं आदि के द्वारा निर्मित) प्राय: देशी भाषा—राजस्थानी, राजस्थानी मिश्रित गुजराती अथवा राजस्थानी मिश्रित हिन्दी मे लिखा हुआ मिलता है। फिर भी कुछ ग्रन्थ सस्कृत में रचित भी प्राप्त हुए है।

(२) ये ग्रन्थ अधिकांश में संग्रहात्मक है। कुछ मौलिक कृतियो की रचना भी हुई। संग्रहग्रन्थ विशेषकर चिकित्सा सम्बन्धी योगो के संकलन के रूप मे है।

(३) इनमे से कुछ ग्रन्थ तो ऐसे है, जो मध्यकाल मे राजस्थान के वैद्यक-व्यवसाय के मुख्य आधार बने रहे। राजस्थान में इन ग्रंथों का ही पठन-पाठन विशेष रूप से हुआ और वैद्य-समुदाय में इनके योगो का ही विशेष प्रचलन रहा। ऐसे अग्रणी और सर्वमान्य ग्रंथो मे हर्षकीर्तिसूरिकृत योग-चिंतामणि और हस्तिरुचिगणिकृत वैद्यवल्लभ विशेष उल्लेखनीय है।

(४) देशी भाषा में लिखे गये अनेक ग्रन्थो में लोक-प्रचलित औषधियों और उनके नामों का भी प्रयोग हुआ है। इससे तत्कालीन प्रचलित 'लोक-वैद्यक' का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। साथ ही, स्थानीय बोली में प्रचलित अनेक वनौषधियो का नवीनरूप से ज्ञान भी होता है, जिनका उल्लेख प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में उपलब्ध नही होता। इस दृष्टि से यह समूचा साहित्य नि.सदेह अधिक उपादेय है।

(५) इस साहित्य में कुछ नवीन औषधियों और योगों के प्रयोग वर्णित हैं, जो वस्तुत: अनुसंधेय हैं।

(६) कुछ ग्रन्थो में वैद्यक ग्रोषधियो के साथ रोगो के इलाज में मान्त्रिक प्रक्रियाओ का भी उल्लेख मिलता है। सामुद्रिकविद्या, ज्योतिष, अ गविद्या और कामशास्त्र के वैद्यकविद्या की सम्पुष्टि में अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।

(७) इन ग्रन्थो में प्राप्त योग प्राय छोटे-छोटे, अचूक और अनुभूत हैं। अत चिकित्साक्षेत्र में उनकी अधिक मान्यता और सफलता सिद्ध हुई है।

राजस्थान का जैन आयुर्वेदिक साहित्य

यहा कालक्रम से जन आयुर्वेद ग्र थकार और ग्र थो का परिचय दिया जा रहा है—प्रथम सस्कृत के, फिर राजस्थानी भाषा के ग्र न्थो का।

आयुर्वेद के सस्कृत ग्रथकार और ग्रथ

१ आशाधर —इनका नाम राजस्थान के आयुर्वेदज्ञ जन विद्वानो में सवप्रथम मिलता है। ये बहुश्रुत प्रतिभासम्पन्न और महान् ग्र थकर्ता के रूप में जन साहित्याकाश में जगमगाते नक्षत्र हैं। इनका न्याय, व्याकरण, काव्य, अलकार योग, वद्यक आदि अनेक विषयो पर अधिकार था। अपने ग्र थो (त्रिषष्टि स्मृति, जिनयज्ञकल्प आदि) में इन्होने अपने स्थान और वश के विषय में प्रशस्ति दी है इससे ज्ञात होता है कि ये मडलकर (माडलगढ, जिला भीलवाडा) नामक दुग के निवासी थे। ई० ११६३ में जब गजनी के शासक मोहम्मद गोरी का अधिकार अजमेर प्रात पर भी हो गया तो मुसलमानो के आक्रमण से रक्षा के लिए ये अनेक परिवारो सहित धारानगरी (मालवा) में आकर रहने लगे। इनके पिता का नाम सल्लक्षण, माता का नाम रतनी, पत्नी का नाम सरस्वती और पुत्र का नाम छाहड था। ये व्याघ्रेरवालवशीय (बघेरवालवशीय) जन वैश्य श्रावक थे। जन धर्म के उदय (उत्कर्ष) के लिए ये धार को छोडकर २० मील दूर 'नलकच्छपुर (नालछा) में आकर आजीवन रहे। आशाधर की रचनाओ में मालवा के राजा विन्ध्यवर्मा, अर्जुनवर्मा, देवपाल और जैतुगिदेव का उल्लेख मिलता है, जिनके द्वारा उन्हे सम्मान प्राप्त हुआ था। ये गृहस्थ रहते हुए भी ससार से उपरत रहे। नाथूराम प्रेमी ने इनका जन्मकाल वि स १२३५ के लगभग प्रमाणित किया है।[1] इनकी सब रचनाए वि स १२६० से १३०० के बीच की मिलती हैं। इनका उपलब्ध अन्तिमग्रन्थ 'अनगारधर्मामृत टीका वि स १३०० का है।

आशाधर के २० से भी अधिक ग्र थ मिलते हैं जो अधिकाश मे जन सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण पर हैं। इनके एक वैद्यक ग्रन्थ का भी उल्लेख मिलता है। वाग्भट के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टागहृदय' पर इन्होने उद्योतिनी' या 'अष्टागहृदयोद्योतिनी' नामक टीका सस्कृत म लिखी थी। यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है। पीटसन न अपनी सूची म और ऑफ्रेक्ट न अपने 'कॅटलोगस केटलोगोरम'[2] मे इस ग्रन्थ का उल्लेख तो किया है, परन्तु किसी हस्तलिखित प्रति का सदभ नही दिया है। 'अष्टाग-हृदय' पर हेमाद्रि (लगभग १२६० ई०) के बाद आशाधर ने ही टीका लिखी थी। निश्चित ही यह एक महत्वपूर्ण ग्र थ रहा होगा। यदि इसकी कही कोई प्रति मिल जाय तो 'अष्टागहृदय' के व्याख्या

---

१ जन साहित्य और इतिहास, पृ० १३३

२ Catalogus Catalogorum, Part I, p 36

साहित्य मे उससे महत्त्वपूर्ण वृद्धि होगी। इस टीका का उल्लेख हरिशास्त्री पराडकर[1] और पी० के० गोडे[2] ने भी किया है।

२. हर्षकीर्तिसूरि :—(वि. सं. १६६५ के आसपास) ये नागपुरीय (नागौरी) तपागच्छीय श्री चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य थे। इनका काल विक्रम की सत्रहवी शती का उत्तरार्ध ज्ञात होता है। इनके अधिकाश ग्रन्थ संस्कृत भाषा मे मिलते हैं, कुछ ग्रन्थ देशी भाषा मे भी प्राप्त होते हैं। श्री मोहनलाल द० देसाई ने "जैन गुर्जर कविओ" भाग १, पृ० ४७० पर इनके अपने गुरु के नाम की सारस्वत व्याकरण की टीका, नवस्मरण की टीका, सिन्दुरप्रकर टीका, शारदीय नाम माला कोष, धातुतरगिणी, योगचितामणि, वैद्यकसारोद्धार, वैद्यकसार संग्रह, श्रुतबोधवृत्ति, विजयपहुत्त और वृहत् शाति पर वृत्ति, स० १६६३ मे अनिटकारिका विवरण और स० १६६८ मे कल्याणमदिरस्तववृत्ति आदि सस्कृत मे रचे। अनेक ग्रन्थो का उल्लेख किया है।

श्री देसाई ने इनके धातुरत्नमाला, योगचितामणि, वैद्यकसारोद्धार और वैद्यसारसंग्रह नामक चार वैद्यक ग्रन्थो का उल्लेख किया है। वस्तुतः अंतिम तीन नाम एक ही ग्रन्थ के हैं। 'धातुरत्न-माला' की कोई प्रति हमारे देखने मे नही आयी। योगचितामणि के ही वैद्यकसारोद्धार और वैद्यकसार सग्रह अन्य नाम हैं। इसका रचनाकाल वि. स. १६६६ से किंचित पूर्व होना चाहिए। इस ग्रन्थ मे फिरग, चोपचीनी, अफीम और पारद का वर्णन उपलब्ध होने से डॉ० जोली ने भी इसका यही काल माना है। (J. Jolly, Indian Medicine, पृ० ४) यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ मे वैद्य और रोगी के लक्षण, नाडी, मूत्र, नेत्र, मुख, जिह्वा, मल, स्पर्श और शब्द परीक्षाएं, आयुर्विचार, आयुर्लक्षण, कालज्ञान, देशज्ञान, मानपरिभाषा, शारीरिक, सप्तकला, सप्त आशय, सप्त धातु, उपधातु और त्वचा का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् क्रमशः प्रथमादि षष्ठ अध्यायो मे पाक (३४), चूर्ण (६१), गुटिका (५६), क्वाथ (६४), घृत (२१), तेल (२२) के अव्यर्थ योगो का संग्रह किया गया है। सातवें मिश्रकाधिकार मे गुग्गुलुप्रकरण, (८ योग), शखद्राव, गधकविधि, शिलाजतु, स्वर्णादि धातु मारण, मृगाँकरस, ताम्र, वंग, नाग, सार, मडूर, अभ्रक का मारण और गुण, धातुसत्वपातन, पारद शोधन, आदि रसशास्त्र सबधी विषय, सिद्धरसौषधिया (२५), आसव-अरिष्ट (६), लेप (३७), पचकर्म, रक्तमोक्ष, वाष्पस्वेदन, विषचिकित्सा, स्त्रीचिकित्सा, गर्भनिवारण, गर्भपातन प्रभृति विविध विषय, तथा अ त मे कर्मविपाकप्रकरण दिया गया है। ग्रन्थ की प्राचीनतम ह०प्र० वि० सं० १६६६ की मिली है। कुछ ह० प्रतिया सटीक, बालावबोध और सस्तवक प्राप्त होती हैं। इससे ग्रन्थ की उपयोगिता अधिक प्रतीत होती है।

३. हंसराज मुनि :—ये खरतरगच्छीय वर्द्धमानसूरि के शिष्य थे। इनका काल सत्रहवी शती ज्ञात होता है। इन्होने नेमिचन्द्र कृत प्राकृत 'द्रव्यसग्रह' पर बालावबोध लिखा था। इनकी अन्य रचना 'ज्ञानद्विपंचाशिका-ज्ञानबावनी' भी मिलती है। इनका भिषक्चक्रचित्तोत्सव जिसे 'हंसराजनिदानम्' भी कहते हैं, चिकित्सा विषयक ग्रन्थ है।

यह ग्रंथ हसराजकृत भाषाटीका सहित वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हुआ है

---

१. हरिशास्त्री पराड़कर, अष्टागहृदय, उपोद्घात, पृ. २६
२. पी० के० गोडे, अष्टागहृदय, (बम्बई १९३९), इंट्रोडक्शन, पृ. ६

४ हस्तिरुचि —ये तपागच्छीय रुचि शाखा के यति थे। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार ज्ञात होती है—लक्ष्मीरुचि, विजयकुशल, उदयरुचि, हितरुचि, हस्तिरुचि। ये प्रकाण्ड विद्वान् और प्रसिद्ध चिकित्सक थे। इनका काल विक्रम की १८वीं शती का मध्य प्रतीत होता है। श्री देसाईजी ने इनके 'चित्रसेनपद्मावतीरास' (वि स १७१७) का उल्लेख किया है (जैन गुर्जर कविओ, भाग २ पृ १८६)। इनके निम्न दो आयुर्वेदिक ग्रंथ बताये जाते हैं —

(१) वैद्यवल्लभ —यह मूलत संस्कृत मे रचा गया था फिर इसका राजस्थानी मे अनुवाद किया गया। लेखक ने इसका प्रणयनकाल, वि स १७२६ लिखा है। इसमे आठ अध्याय हैं—ज्वर, स्त्रीरोग, कासक्षयादिरोग, धातुरोग, अतिसारादिरोग, कुष्ठादिरोग शिर कर्णाक्षिरोग स्तंभन। यह चिकित्सा संबंधी संग्रह ग्रंथ है। पश्चिमी भारत में यह बहुत प्रसिद्ध रहा है। इसकी लोकप्रियता इस तथ्य से ज्ञात होती है कि इस ग्रंथ की रचना के तीन वर्ष बाद ही अर्थात् सं० १७२९ में मेघभट्ट नामक विद्वान् ने इस पर संस्कृत टीका लिखी थी। यह टीकाकार शैव था। मेघ की संस्कृत टीका के अतिरिक्त इस ग्रंथ पर हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती में अनेक स्तवक और विवेचन लिखे गये हैं। भाषाटीका सहित वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से यह छप चुका है।

(२) वद्या (ध्या) कल्प चौपाई —नागरीप्रचारिणी सभा के खोजविवरण पृ० ३३ पर इनकी इस रचना का उल्लेख है। इसके अंतिम भाग में 'कहि कवि हस्ति हरिख दास' लिखा गया है। अत यह किसी अन्य की रचना प्रतीत होती है।

५ विनयमेरुगणि —ये खरतरगच्छीय जिनचन्द्र की परम्परा में वाचक सुमतिमेरु के शिष्य थे। इनका काल वि० १८वीं शती प्रमाणित होता है। इनके शिष्य मुनि मानजी के राजस्थानी में लिखे हुए कई वैद्यकग्रंथ (कविप्रमोद, कविविनोद आदि) मिलते हैं। ये बीकानेर क्षेत्र के रहने वाले थे। इनका एक वैद्यकग्रंथ 'विद्वन्मुखमंडनसार संग्रह' मिलता है। यह योगसंग्रह है। ग्रंथ अपूर्ण रूप में मुझे प्राप्त हुआ था (मस्तक रोगाधिकार तक)। रोगों की चिकित्सा इसका प्रतिपाद्य विषय है।

६ रामलाल महोपाध्याय —ये बीकानेर के निवासी तथा धर्मशील के शिष्य थे। ये जैनानुयायी थे क्योंकि ग्रंथ के प्रारम्भ में 'जिन' को नमस्कार किया है और ग्रंथारम्भ में जिनदत्तसूरि कुशलसूरि के नाम स्मरण किये हैं। इनके रामनिदानम् (अपरनाम रामऋद्धिसार) ग्रंथ में संक्षिप्त रूप से सब रोगों के निदान का वर्णन किया गया है। इसमें कुल श्लोकसंख्या ७१२ है।

७ दीपकचन्द्र वाचक —ये खरतरगच्छीय वाचक थे। संभवत इनको जयपुर में जयसिंह महाराजा द्वारा राज्याश्रय प्राप्त था। इनके गुरु का नाम दयातिलक था। इनके दो वैद्यक ग्रंथ मिलते हैं। एक संस्कृत में पथ्यापथ्यनिर्णय तथा द्वितीय बालतंत्र भाषावचनिका। प्रथम ग्रंथ का रचनाकाल सं० १७९२ माघ सुदी १ है। इसका संशोधन शंकर नामक ब्राह्मण ने सं० १८८६ में किया था। यह पथ्यापथ्य संबंधी ग्रंथ है। अर्थात् किस रोग में किस दिन क्या आहार दिया जाय और कौनसा पथ्य लिया जाय। ये सभी पद्य हजार-आरबाड़ भेद के हैं।

८ महेन्द्र जैन —ये संभवत मेवाड़ के निवासी थे। इनके पिता का नाम कृष्ण वैद्य था। वि सं १७०९ में इन्होंने 'द्रव्यावली समुच्चय' नामक ग्रंथ धन्वंतरिनिघण्टु के आधार पर उदयपुर (मेवाड़) में रचा था। यह संस्कृत में है और निघण्टु (द्रव्य औषधि का गुणधर्मात्मक) ग्रंथ है।

आयुर्वेद के राजस्थानी ग्रंथकार और ग्रंथ

१. रामचन्द्र :—ये खरतरगच्छीय यति थे। इनके गुरु का नाम पद्मरंग गणि था। पद्मरंग के गुरु पद्मकीर्ति हुए और पद्मकीर्ति के गुरु जिनसिंह सूरिराज हुए। जिनसिंहजी दिल्ली के शाहसलेम (सलीमशाह सूर) के काल मे मौजूद थे और अपने उपदेशों से बादशाह को दयावान बना दिया था। उनको मुगल सम्राट अकबर और सलीम दोनो के द्वारा सम्मान प्रदान किया गया था। रामचद्र यति औरंगजेब के शासनकाल में मौजूद थे। इसका समय वि. स. १७२०-५० माना जाता है।

वैद्यक और ज्योतिष पर इनका अच्छा अधिकार था। इनके पूर्व गुरु भी वैद्यक में निष्णात थे। वैद्यक पर 'रामविनोद' और वैद्यविनोद' की तथा ज्योतिष पर 'सामुद्रिक भाषा' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इनके काव्यसंबंधी चार ग्रंथ भी मिलते हैं—'समेदशिखरस्तवन' (स० १७५०), बीकानेर आदिनाथस्तवन' (स० १७३०), दश पच्चक्खाण स्तवन' (स० १७२१) मूलदेव चौपाई (सं० १७११)। ये सब ग्रन्थ राजस्थानी-हिन्दी मे पद्यमय हैं। कुछ फुटकर भक्तिपरक पद्य भी मिलते हैं।

(१) रामविनोद :—(वि. सं. १७२०) यह चिकित्साविषयक ग्रन्थ है। यह कृति सं. १७२० मिगसर सुदी १३ बुधवार को समाप्त हुई थी। इसे सक्कीनगर (सिन्ध) मे बनाया गया था।

(२) वैद्यविनोद :—इस ग्रन्थ की रचना-समाप्ति स. १७२६ बसंत ऋतु वैशाख पूर्णिमा को हुई थी। उस समय औरंगजेब का शासनकाल था।

यह ग्रन्थ मरोटकोट (बीकानेर राज्य) में रचा गया था। यह शार्ङ्गधरसंहिता का पद्यमय भाषानुवाद है। इसमे कुल २५२५ पद्य हैं। यह ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त है, उनकी पद्यसख्या क्रमशः ४५६, १२९२, ७७७=२५२५ है। सामान्य जनता के सुखबोध के लिए लेखक ने इसकी रचना की थी।

(३) नाड़ी परीक्षा और (४) मानपरिमाण :—रामचद्र यति की ये दोनो रचनाएं पृथक् से भी मिलती हैं, किन्तु रामविनोद की किसी-किसी प्रति मे मानपरिमाण के पद्य उसी में सम्मिलित मिलते हैं। अतः ये दोनो रचनाएं स्वतन्त्र न होकर 'रामविनोद' के ही अंश या पृथक्-पृथक् अध्याय हैं।

(५) सामुद्रिक भाषा :—यह स० १७२२ माघ कृष्णा ६ की रचना है। इसमे कुल २११ पद्य है। इसमे राजस्थानी भाषा में सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार स्त्री और पुरुष के लक्षणों का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ मे दो प्रकाश हैं—प्रथम में, ११७ पद्यों में नरलक्षण और द्वितीय में, ९४ पद्यो में नारीलक्षण बताये गये है। यह ग्रंथ मेहरा नामक स्थान पर रचा गया था।

२. जिनसमुद्रसूरि :—ये श्वेताम्बरी बेगडगच्छ शाखा के आचार्य थे। इनके गुरु का नाम जिणचंदसूरि और उनके गुरु का नाम जिनेश्वरसूरि था। ये जैसलमेर क्षेत्र के निवासी थे। इनका काल विक्रम की सत्रहवी शती का अंतिम काल ज्ञात होता है। इनके शिष्यों का नाम महिमहर्ष आदि था। इनकी रचनाएं राजस्थानी और अपभ्रंश भाषा में मिलती हैं। इनका वैद्यक पर एक ग्रंथ 'वैद्यचिन्तामणि' मिलता है। भर्तृहरिवैराग्यशतक की 'सर्वार्थसिद्धिमणिमाला' नामक अपभ्रंश-टीका तथा 'तत्त्वप्रबोधनाटक' भी मिलते है। अन्य छोटी रचनाएं 'नेमनाथ बारहमास' आदि भी मिलती

है। इनके वैद्यचिन्तामणि ग्रंथ के अन्य नाम 'वैद्यकसारोद्धार' और 'समुद्रसिद्धांत' या 'समुद्रप्रकाश-सिद्धान्त' दिये गये हैं। यह एक संग्रहग्रंथ है। इसमें रोगों के निदान और चिकित्सा का पद्यबद्ध समुच्चय किया गया है।

३ लक्ष्मीवल्लभ —ये खरतरगच्छीय शाखा के उपाध्याय लक्ष्मीकिर्ति के शिष्य थे। ये बीकानेर के रहने वाले प्रतीत होते हैं। ये अठारहवी शती के द्वितीय पाद में मौजूद थे। इनकी अधिकांश रचनाएं वि सं १७२० से १७५० के बीच में लिखी गई थी। इनका अन्य नाम 'राजकवि' भी मिलता है।

श्री देसाईजी ने 'जनगुजर कवियो' भाग १ पृ २४३ पर इनकी रचनाओं का उल्लेख किया है—यथा रतनहास-चौपाई' १७२५, 'अमर कुमार चरित्ररास' 'विक्रमादित्य पचदंड रास' सं १७२७, 'रात्रिभोजन चौपाई' सं १७३८। इनकी वैद्यक पर दो कृतियाँ मिलती हैं—कालज्ञान और मूत्रपरीक्षा कालज्ञान शम्भुनाथकृत संस्कृत के 'काल ज्ञानम्' का पद्यबद्ध भाषानुवाद है। इसका रचनाकाल सं० १७४१ है। ग्रंथ में कुल पांच समुद्देश (अध्याय) और कुल १७८ पद्य हैं। मूत्रपरीक्षा लेखक की अतिसंक्षिप्त कृति है (पत्र १) कुल पद्य ३७ हैं। प्राप्त हस्तलिखित प्रति का लेखनकाल सं० १७५१ है। संभवत यह किसी संस्कृत ग्रंथ का भाषानुवाद है।

४ मुनि मान —ये खरतरगच्छीय भट्टारक जिनचंद के शिष्य वाचक सुमतिसुमेर के शिष्य थे और बीकानेर के रहने वाले थे। वैद्यक पर इनकी दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं—कविविनोद और कविप्रमोद। इनकी अन्य रचना 'वैद्यकसार संग्रह' भी बतायी जाती है।

कविविनोद रोगों के निदान और औषधि के सम्बन्ध में लिखा गया है। इसमें दो खण्ड हैं, प्रथम में कल्पनाएं हैं तथा दूसरे में चिकित्सा दी गई है। इसका निर्माण लाहौर में सम्वत् १७४५ में किया गया था। कविप्रमोद बहुत बड़ी कृति है (कुल पद्य २९४४)। इसमें नौ उद्देश (अध्याय) हैं। इसका रचनाकाल सम्वत् १७४६ है। यह स्वयं कवि द्वारा इसी नाम से संस्कृत में प्रणीत ग्रंथ का पद्यमय भाषानुवाद है। वाग्भट, सुश्रुत, चरक, आत्रेय, खरनाद, भेड के ग्रंथों का सार लेकर इसका प्रणयन किया गया था। यह कवित्त और दोहा छंदों में बनाया गया है।

५ जोगीदास —ये बीकानेर निवासी थे तथा बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह और सुजानसिंह द्वारा राज्याश्रित व सम्मानित श्वेताम्बर जैन जसोराय मथेन के पुत्र थे। जोसीराय को सुजानसिंह के शासनकाल में वर्षासन, ग्रामदान और सिरोपाव देकर सम्मानित किया गया था। स्वयं जोगीदास सुजानसिंह के पुत्र महाराजा जोरावरसिंह के शासन में सम्मानित हुए थे। इनका अन्य नाम 'दास कवि' भी मिलता है। इन्होंने वैद्यकसार की रचना बीकानेर के महाराजा जोरावरसिंह की आज्ञा से सं० १७६२ में बीकानेर में की थी।

६ समरथ —ये श्वेताम्बर खरतरगच्छ के आचार्य जिनचन्द्रसूरि संतानीय मतिरत्न के शिष्य थे। दीक्षितावस्था का इनका नाम 'समयमाणिक्य' रखा गया। ये बीकानेर क्षेत्र के निवासी थे। इनके अनेक ग्रंथ मिलते हैं, यथा केशवदास की ब्रजभाषा में रचित 'रसिकप्रिया पर संस्कृत में टीका (सं० १७५५), 'भावनीगाथा', 'मल्लिनाथ पंचकल्याणकस्तवन' आदि। वैद्यक पर 'रसमंजरी भाषा टीका' मिलती है। यह शालिनाथ वैद्यनाथ के पुत्र शालिनाथ द्वारा प्रणीत संस्कृत के 'रसमंजरी' ग्रंथ की

पद्यमय भाषाटीका है। इसका रचना काल सं० १७६४ है। यह रसविद्या सम्बन्धी ग्रंथ है। इस मे कुल १० अध्याय हैं।

७. दीपचन्द्र वाचक :—संस्कृत ग्रंथो के संदर्भ मे इनका परिचय पूर्व में दिया जा चुका है। अहिच्छत्रानगर (वर्तमान नागौर) के निवासी रामचन्द्र के पौत्र और महिधर के पुत्र कल्याणदास ने संस्कृत मे 'बालतन्त्र' की रचना की थी। 'बालतन्त्र भाषावचनिका' नाम से इसकी भाषाटीका इन्होने की। इसमें बालचिकित्सा का वर्णन कुल १५ पटलो मे हुआ है।

८. चैनसुख यति :—ये खरतरगच्छीय जिनदत्तसूरि शाखा के लाभनिधान के शिष्य थे। इनका निवास स्थान फतहपुर (सीकर) था। इनके शिष्य चिमनीरामजी ने फतहपुर में सं० १८६८ मे इनकी छतरी (समाधि) बनाई थी। फतहपुर (शेखावटी) में इनकी परम्परा के यति आज भी विद्यमान हैं। ये अच्छे वैद्य थे। इनके वैद्यक पर दो ग्रन्थ राजस्थानी मे मिलते हैं—'सतश्लोकी भाषा टीका और 'वैद्यजीवनटबा' सतश्लोकी भाषा टीका बोपदेवकृत 'सतश्लोकी' का गद्य में (राजस्थानी) भाषा टीका है। इसकी रचना महेश की आज्ञा से इन्होने रतनचन्द्र के लिए की थी। इसका रचनाकाल सं० १८२० है।

९. पीताम्बर :—ये विजयगच्छीय आचार्य विनयसागरसूरि के शिष्य थे। विनयसागरसूरि अच्छे उपदेशक और रससिद्ध कवि थे। ये मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के शासनकाल में विद्यमान थे। यह काल मेवाड़ के सांस्कृतिक इतिहास में स्वर्णकाल माना जाता है और इस काल मे साहित्य, संगीत, शिल्प व चित्रकला का विशिष्ट विकास हुआ। सं० १७२५ मे औरंगजेब के मेवाड़ पर आक्रमण से मेवाड़ को दुर्दिन देखने पड़े। विनयसागरसूरि के लिए पीताम्बर के ग्रन्थ में–'वैद्यविद्या विशारद' आदि विरुद प्रयुक्त होने से उनका अच्छा चिकित्सक होना प्रमाणित होता है। पीताम्बर मेवाड़ के ही निवासी थे। और उन्होंने अपना ग्रन्थप्रणयन भी उदयपुर मे किया था। इनका एक ही ग्रन्थ मिलता है, जो गुटके के रूप में संकलित है। इस प्रकलन का नाम स्वयं लेखक ने 'आयुर्वेदसार-संग्रह' स्वीकार किया है। इसका रचनाकाल सं० १७५९ है। इसमें शताब्दियो से अनेक कुशल अनुभवी आचार्यों द्वारा अनुभूत प्रयोगों का संग्रह किया गया है। सम्पूर्ण प्रयोग वानस्पतिक हैं और सरलता से प्राय: सर्वत्र उपलब्ध हो जाते हैं। कुछ रस-प्रयोग (रस व धातुओ से निर्मित प्रयोग) भी दिये गये हैं। जिन विशिष्ट विद्वानों से योग प्राप्त हुए थे, उनके नाम भी संकलनकर्ता ने उल्लेखित किये हैं, जैसे खीमसी, जोशी भगवान्दास, ठाकुरसी नाणावाल, बालगिरि आदि। परीक्षित प्रयोगों को लौकिक भाषा (मेवाड़ी) में प्रस्तुत करना इस संकलन का प्रयोजन था। इसमें मेवाड़ के राज-परिवार में प्रयुक्त होने वाले योग भी संगृहीत किये गये हैं। ठाकरसी नाणावाल और जोशी भगवानदास ये दोनो उस समय मे उदयपुर के विख्यात चिकित्सक और रसायनशास्त्री थे। ये दोनो ही गुंसाई भारती के शिष्य और राजवैद्य थे। यह ग्रन्थ उदयपुर में रचा गया है। अतः इसमे विशेषरूप से मेवाड़ में प्राप्त होने वाली वनस्पतियों का प्रचुर प्रयोग दर्शाया गया है, जैसे 'गाठियांभड'। यह वातनाशक व अस्थिसंधानक है और एकलिंगजी के समीप राठासन की पहाड़ी पर बहुत होती है। लेखक ने धातुस्तंभन प्रयोगों मे 'सिंहवाहनी गुटिका' का प्रयोग लिखा है, जिसे महाराणा कुम्भा सेवन करते थे। इसमें द्रव्य साधारण है, परन्तु यह उत्तम गुणकारी है। इसी प्रकार राजा जगन्नाथ की 'कामेश्वर गुटिका' भी वर्णित हैं। विषनाशक प्रयोगो मे 'बाध्यबालविषनाश' के प्रयोग उल्लेखनीय हैं।

१० ज्ञानसार —ये खरतरगच्छीय जिनलाभसूरि के शिष्य रत्नराज के शिष्य थे। इनका जन्म वि० स० १८०१ मे बीकानेर राज्यान्तर्गत जागूल के समीप जगलेवास नामक ग्राम मे हुआ था। इनके पिता का नाम उदयचन्द्रजी साड और माता का नाम जीवनदे था। इनकी दीक्षा स० १८१२ में खरतर जिनलाभसूरि के शिष्य रायचन्द्र (रत्नराजगणि) के पास हुई थी। इन्होंने अपने अनुभव और परिश्रम से ही शास्त्राभ्यास किया। यह एक मस्त योगी, कवि और आध्यात्मिक पुरुष थे। बीकानेर के राजा सूरतसिंह, जयपुर नरेश प्रतापसिंह, जैसलमेर के रावल गजसिंह और जोरावरसिंह इनके भक्त और अनुरागी थे। स० १८९९ के लगभग इनका स्वर्गवास हुआ था। इनका प्रसिद्ध नाम 'नारायणी बाबा' था। सदासुख, हरसुख आदि इनके शिष्य थे। इनकी रचनाए प्राय हिंदी में और क्वचित् राजस्थानी मे मिलती हैं। वैद्यक के वाजीकरण पर इनका 'कामोद्दीपन ग्रन्थ' राजस्थानी-हिन्दी में मिलता है। इस ग्रन्थ की रचना इन्होंने स० १८५६ वैशाख शुक्ल ३ को जयपुर में महाराजा प्रतापसिंह (माधवसिंह के पुत्र) के शासनकाल मे गुरु रत्नराज की प्रेरणा और आग्रह से की थी।

११ प० लक्ष्मीचद जैन —ये नैनचन्द के शिष्य, मोतीराम के शिष्य, थोलाल के शिष्य थे। ये जैन श्रावक थे और पचारी शहर के निवासी थे। इनकी एक वैद्यककृति लक्ष्मीप्रकाश' के नाम से मिलती है। इस कृति की यह विशेषता है कि इसमे प्रयुक्त लगभग सभी योग स्वानुभवमूलक हैं, जिसकी सूचना लेखक ने स्थान-स्थान पर दी है। इसमें प्रथम रोग का निदान, पूर्वरूप लक्षण का और फिर शास्त्रीय चिकित्सा का वर्णन है। जिन व्यक्तियों से लेखक को योग प्राप्त हुए थे, उनका भी उल्लेख उसने किया है। इस ग्रन्थ के निर्माण मे वाग्भट, माधवनिदान, भावप्रकाश, योग चितामणि आदि ग्रन्थो की सहायता ली गई है। इस ग्रन्थ का रचना काल वि सम्वत् १९३७ है।

१२ मलूकचन्द —ये खरतरगच्छीय जैन श्रावक थे। सम्भवत इनका बीकानेर क्षेत्र निवास स्थान था। श्री अगरचद नाहटा ने इनका समय १९वीं शताब्दी माना है। इनकी 'वैद्यहुलास' कृति मिलती है। यह यूनानी चिकित्सा शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ तिब्ब सहावी' का भाषा मे पद्यमय अनुवाद है। इसमें कुल ५१८ पद्य हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान के जैन यतिमुनियों की आयुर्वेद को महान् देन रही है। अनेक व्यक्तिगत ग्रन्थागारों में अभी भी जैनानुयायियों द्वारा रचित सैकड़ों आयुर्वेदिक ग्रन्थ खोजे जा सकते हैं। प्रस्तुत निबन्ध में उनमें से कतिपय ग्रन्थों और उनके रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय मात्र दिया गया है।



३५ | हस्तलिखित जैन ग्रंथ भंडार

•

श्री अगरचन्द नाहटा

जैनधर्म का राजस्थान मे खूब प्रचार रहा है। गाव-गांव मे साधु-साध्वी विचरते थे। आगे चल कर चैत्यवासी आचार्य, भट्टारक व यति तो कई ग्राम नगरो मे स्थायी रूप से रहने लगे। उन यति एव मुनियों ने वहुत वड़ा साहित्य निर्माण किया और लाखो हस्तलिखित प्रतियां अपने हाथ से लिखी और श्रावक-श्राविकाओ को उपदेश देकर लहियो से लिखवाईं। उन हस्तलिखित प्रतियो के सग्रह का काम 'ज्ञानभडार' के रूप मे प्रसिद्ध है। जहां-जहां जैनाचार्य और यति, मुनि रहते थे उनके पास हस्तलिखित, प्रतियो का संग्रह होता ही था। इसलिये राजस्थान मे हस्तलिखित प्रतियो के सग्रह रूप ज्ञानभंडार हजारो की संख्या में थे। पर मुद्रण युग में छपी हुई पुस्तकें विना परिश्रम व थोड़े ही मूल्य मे अच्छे रूप मे मिल जाने लगी। तव हस्तलिखित प्रतियों का पठन-पाठन रूप उपयोग कम होता चला गया। फलतः वहुत से लोगो ने कोड़ियो के मोल अपना सग्रह वेच डाला। इसी तरह लाखो प्रतिया राजस्थान से अग्रेजों के राज्य मे अन्य प्रदेशो और विदेशों मे चली गईं। मुसलमानी साम्राज्य के समय अनेक ग्रंथ भडार नप्ट हो गये। उचित सारसंभाल के अभाव मे हजारो प्रतिया चूहो और दीमको की भक्ष्य वन गईं। वर्पा और सर्दी के प्रभाव से हजारो प्रतियो के पत्र चिपककर थेपड़े वन गये। उन्हे जलाने के काम मे ले लिया गया। इसी तरह हजारो प्रतियां पानी में भिगोकर कूटे के काम में ले ली गईं। इतना जवर्दस्त विनाश होने के उपरान्त भी राजस्थान मे अभी लाखो हस्तलिखित प्रतिया वच गई है। ज्ञानभडारो का सरक्षण जैनाचार्यों और श्रावको ने वहुत सावधानी से किया। नई प्रतिया लिखवाते ही रहे और यति लोग स्वय भी लिखते रहते थे। इसी का परिणाम है कि इतना वड़ा सग्रह राजस्थान मे ही वचा हुआ है। जैसलमेर मे अन्य प्रातो से लाकर भी ग्रथ सुरक्षित किये गये थे।

राजस्थान मे दिगम्वर[1] और श्वेताम्वर दोनो संप्रदायो के अनेको विशाल ग्रंथ भंडार हैं। इनमे से श्वेताम्वर ज्ञान भंडारो का ही यहां सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। इन भडारो मे कुछ तो व्यक्ति विशेप के पास हैं, कुछ संघ की देखरेख मे है। व्यक्तिगत सग्रह वहुत से विक गये और

---

१. दिगम्वर ग्रंथ भण्डारों की विशेप जानकारी के लिए डॉ० कासलीवाल का 'जैन ग्रंथ भण्डार्स इन राजस्थान' ग्रंथ द्रष्टव्य है।
—सम्पादक

अब भी बिकते हो जा रहे हैं। संघ की देखरेख वाले भंडार व्यक्तिगत संग्रहों की अपेक्षा अधिक बचे रहे हैं। गत ५० वर्षों में मेरी जानकारी में ही बीकानेर के कई संग्रह अब नहीं रहे। २० वर्ष पहिले हमारा 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ था। उसकी विस्तृत भूमिका में हमने बीकानेर के करीब ३० श्वेताम्बर हस्तलिखित ज्ञान भण्डारों का संक्षिप्त विवरण दिया था। राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथ भण्डारों के सम्बन्ध में मेरा एक विस्तृत लेख 'मरुभारती' में प्रकाशित हुआ था। जैसलमेर और बीकानेर के ज्ञानभण्डारों के सम्बन्ध में तो हमारे स्वतंत्र लेख भी प्रकाशित हो चुके हैं। जयपुर के डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने तो राजस्थान के ग्रंथ भण्डारों पर शोध प्रबन्ध ही लिख डाला है जो जैन साहित्य शोध संस्थान श्री महावीरजी तीर्थ क्षेत्र कमेटी जयपुर से (अंग्रेजी में) प्रकाशित हो चुका है। दिगम्बर ग्रंथ भण्डारों की सूचियां तैयार करने व प्रकाशित करने का काम भी उक्त संस्था से काफी अच्छे रूप में हुआ है। श्वेताम्बर ग्रंथ भण्डारों में विनयचन्द्र ज्ञानभण्डार जयपुर की सूची का एक भाग प्रकाशित हुआ है। इसका सम्पादन डॉ० नरेन्द्र भानावत ने किया है। बहुत वर्ष पहिले रत्न प्रभाकर ज्ञान भण्डार ओसियां की एक सूची प्रकाशित हुई थी। चूरू की सुराणा लाइब्रेरी की सूची बनी जरूर थी पर प्रकाशित नहीं हो सकी। अन्य राजस्थान के श्वेताम्बर ज्ञान भण्डारों की सूची प्रकाशित नहीं हुई। कई महत्त्वपूर्ण ज्ञानभण्डारों की सूचियां हमने भी तैयार की हैं। स्वर्गीय हरिसागर सूरिजी ने भी बीकानेर के क्षमा कल्याण ज्ञानभण्डार व उदयपुर के खरतरगच्छीय ज्ञानभण्डार की सूची बनाई थी। जैनेतर एवं राजकीय हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहालयों में भी हजारों जैन प्रतियां हैं जिनमें से कुछ की सूची जैनेतर ग्रंथों के साथ प्रकाशित भी हो चुकी है। कई ग्रंथ भण्डारों की सूची अभी तक बनी ही नहीं हैं। कइयों की पुराने ढंग की सूची बनी हुई है जिसमें केवल ग्रंथ का नाम व पत्र संख्या ही लिखी रहती है। कहीं कहीं रचयिता का नाम भी लिख दिया जाता है। आवश्यकता है विवरणात्मक सूची बनाने और प्रकाशित करने की।

अब सर्वप्रथम बीकानेर के ही जैन ज्ञानभण्डारों यानि हस्तलिखित प्रतियों के संग्रहालयों का विवरण दिया जा रहा है क्योंकि अपना निवास स्थान होने से उसकी ही सबसे अधिक जानकारी मुझे है। मेरी दृष्टि में राजस्थान में हस्तलिखित प्रतियों का संग्रह सबसे अधिक मैंने ही किया है फलतः बीकानेर में १ लाख हस्तलिखित प्रतियां संग्रहीत हैं जो राजस्थान के अन्य किसी भी नगर या स्थान में नहीं हैं। हस्तलिखित प्रतियों की खोज और संग्रह का मुझे गत ४५ वर्षों से व्यसन सा पड गया है। इसी के फलस्वरूप ६० हजार हस्तलिखित प्रतियां मैंने अपने अभय जैन ग्रंथालय में अब तक संग्रह करली हैं और वह संग्रह दिनों दिन बढता ही जा रहा है। क्योंकि उचित दामों में जहां कहीं से भी जितनी भी हस्तलिखित प्रतियां मुझे मिलती हैं उनको खरीद कर अपने ग्रंथालय में सुरक्षित रखने में मैं आगे पीछे नहीं देखता। वास्तव में ऐसी ही धुन से इतना बडा काम हो सकता है।

अभय जैन ग्रंथालय मेरे बडे भाई अभयराजजी नाहटा जिनका केवल २२ वर्ष की आयु में ही जयपुर में स्वर्गवास हो गया था उनकी स्मृति में स्थापित किया गया है। इस ग्रंथालय के विकास की कुछ जानकारी 'सम्मेलन पत्रिका' में प्रकाशित की जा चुकी है। इस ग्रंथालय में केवल जैन ग्रंथ ही नहीं हैं। वेद, पुराण, उपनिषद् काव्य, नाटक, छंद, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्रतंत्र आदि सभी विषयों के ग्रंथों का संग्रह किया गया है। राजस्थान से ही नहीं मध्य प्रदेश पंजाब और दक्षिण भारत से भी विविध लिपियों व विविध भाषाओं के ग्रंथ संग्रहीत किये गये हैं। इनमें बहुत से ऐसे भी ग्रंथ हैं जिनकी

विश्वभर मे अन्य कोई प्रति प्राप्त नहीं हैं। दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की सख्या तो सैकड़ों नहीं हजारो पर हैं। जहां कही भी जो भी महत्त्व की रचना मिली उसकी फोटू कॉपी और नकल करवा-कर के संग्रहीत करने का प्रयत्न किया गया है। वैसे साधारण और अपूर्ण ग्रंथ भी बहुत से हैं। फुटकर पत्र भी हजारों हैं। तो गुटके भी हजार से अधिक संख्या मे हैं जिनमे से १-१ गुटके में छोटी-मोटी १०-२० ही नही, पचासो और सैकड़ों रचनाये भी लिखी हुई हैं। अपने सारे जीवन की यही सबसे बडी उपलब्धि मैं मानता हूं। एक भी हस्तलिखित पत्र इधर-उधर पड़ा देखता हूं तो मुझे इतना दर्द होता है कि उसको लेने व सुरक्षित रखने मे मैं नहीं चूकता। सोचता हूं प्रति के लिखने वाले ने कितना श्रम और समय लगाया और किस आशा के साथ अपनी इच्छित सामग्री उपयोग और परोपकार के लिये लिखकर रखी, वह यो ही बर्बाद हो जाय तो इससे बड़ी कृतघ्नता व मूर्खता क्या होगी। इसकी मैं कल्पना ही नही कर सकता।

बीकानेर में खरतरगच्छ का प्रभाव बहुत अधिक रहा है। यहा के ओसवालों की २७ गवाड़ मानी जाती हैं। उसमें १३ गवाड़ तो केवल खरतरगच्छ के अनुयायियो की ही थी। बाकी १४ में भी खरतरगच्छ वालो के साथ-साथ तपागच्छ, पायचंदगच्छ, कवलागच्छ और लोंकागच्छ सभी का समावेश हो जाता है। खरतरगच्छ के दो श्रीपूज्यो की गद्दी बीकानेर मे है। पहली गद्दी के श्रीपूज्यजी भट्टारक कहलाते हैं और दूसरी गद्दी के आचार्य। संवत् १६८६ मे जिनराजसूरि और जिनसागरसूरि से खरतरगच्छ की ये दोनो शाखायें अलग हुईं। पहली शाखा का स्थान 'बड़ा उपासरा' है और ठीक उसी के पीछे आचार्य शाखा का उपासरा है। इन दोनों उपासरो में पहले सैकडो यति रहते थे। १७वीं शताब्दी में भी यहां अच्छा ज्ञानभण्डार था। बीकानेर के महाराजा रायसिंहजी ने भी कुछ जैन हस्तलिखित प्रतियां अकबर प्रतिबोधक युग प्रधान जिनचन्द्रसूरिजी को वहरायी थी। सवत् १६४९ मे लाहौर में वहराई हुई ऐसी कुछ प्रतियां हमारे देखने मे आई हैं, जो बीकानेर के ज्ञानभण्डार मे रखी गई होगी। पर वह प्राचीन ज्ञानभण्डार सुरक्षित नही रह सका इधर-उधर हो गया। बडा उपासरा श्रीपूज्यजी के सग्रह मे करीब ४००० हस्तलिखित प्रतियां थीं। वे 'राजस्थान प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान' में बीकानेर की शाखा मे दे दी गई हैं। संवत् १९५८ मे हिम्मतूजी (हितवल्लभगणी) ने बड़ी दीर्घ दृष्टि से बड़े उपासरे मे एक ज्ञानभण्डार स्थापित किया। इसमे ९ यतियो का सग्रह है जिनमें महिमा भक्ति और दानसागर इन दो यतियों का तो परम्परागत बडा संग्रह करीब ३-३ हजार, कुल ६ हजार प्रतियों का है। इसके अतिरिक्त वर्द्धमान, अभयसिंह, जिनहर्षसूरि, अबीरजी, भुवनभक्ति, रामचन्द्र, मेहरचन्द्र आदि की प्रदत्त प्रतियां करीब ४ हजार मिलाकर इस वृहद् ज्ञानभण्डार मे करीब १० हजार हस्तलिखित प्रतिया सुरक्षित हैं। यह खरतरगच्छ संघ का भण्डार है, जिसका मैं भी एक ट्रस्टी हूं। कई महिने तक निरन्तर परिश्रम करके इसकी विवरणात्मक सूची मैंने बनाई, जिसका संशोधन पुज्य श्री पुण्य विजयजी जैसे जैन ज्ञानभण्डारों के मर्मज्ञ विद्वान् के हाथ से हो चुका है। प्रतियो पर सफेद मोटा कागज लपेटकर के सुन्दर अक्षरो में नाम-पत्र सख्यादि लिखे हुए हैं। एक ताडपत्रीय प्रति भी है। १५-१६वी शताब्दी की कई महत्त्वपूर्ण संग्रह प्रतियां हैं। १७वीं से २०वी के पूर्वार्द्ध तक की तो हजारों प्रतियां हैं ही। कई गुटके भी बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। विद्या प्रेमी ९ यतियों के परम्परागत संग्रह होने के कारण यह खरतरगच्छीय वृहद् ज्ञानभण्डार बडे महत्त्व का है।

मुनि जिनविजयजी की प्रेरणा से बीकानेर के कुछ महत्त्वपूर्ण श्वेताम्बर ज्ञानभण्डार

राजस्थान सरकार के सरक्षण मे दे दिये गये हैं। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की शाखा के रूप मे यह जन यतियो का सग्रह अभी स्टेडियम मे रखा हुआ है जिसमे २१ हजार हस्तलिखित प्रतियां हैं। बीच मे जब मेरे ग्रथालय का मकान बन रहा था और प्रतियो को रखने की असुविधा थी तो मैंने राजस्थानी चित्रकला के प्रेमी व सग्राहक श्री मोतीचन्दजी खजान्ची को हस्तलिखित प्रतिया सग्रह करने की प्रेरणा दी और उन्होने थोडे ही वर्षों मे करीब ८ हजार प्रतिया सग्रहीत कर ली। जिसे उन्होने राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उक्त सग्रह मे दे दी हैं। इसी तरह बडे उपासरे के श्रीपूज्यजी का महत्त्वपूर्ण ज्ञानभण्डार जिसमे करीब ४ हजार प्रतिया हैं और दूसरा इसी तरह का बडा महत्त्वपूर्ण सग्रह उपाध्याय जयचन्दजी का (श्री जन लक्ष्मी मोहनशाला ज्ञानभण्डार) तथा अन्य कई यतियो का सग्रह राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान को बीकानेर मे ही सरक्षण के लिये दे दिया गया है। यह सग्रह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकी सूची का भी १ भाग तो प्रकाशनार्थ तैयार किया हुआ पडा है। प्रतिष्ठान के सचालको को उसे शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहिये।

बीकानेर के विश्वविख्यात अनूप सस्कृत लाइब्रेरी मे भी हजारो जन हस्तलिखित प्रतियां हैं। इस लाइब्रेरी के अन्य कई विभागो के तो सूचीपत्र छप भी गये है। उनमें भी बहुत से जन ग्रथ हैं, पर एक स्वतत्र जैन विभाग है उसकी सूची अभी तक प्रकाशित नही हुई है, ठीक से बनी भी नहीं है। पहले केवल ग्रथो के नाम व पत्र सख्या की सूची बनी थी वह भी कहीं इधर-उधर हो गई। महाराजा अनूपसिंहजी के विद्या प्रेम से आकर्षित होकर बडगच्छ, पायचदगच्छ, खरतरगच्छ आदि के आचार्यों एव यतियो ने हजारो प्रतिया महाराजा को दे दी थी। वे महत्त्व की तो हैं ही पर उसमे कुछ जैन ग्रथ ऐसे भी हैं जो अन्यत्र कही भी नही मिलते।

बडे उपाश्रय मे श्रीपूज्यजी और अन्य कई यतियो के पास कुछ हस्तलिखित सग्रह अब भी है ही। आचार्य शाखा के उपाश्रय का कुछ सग्रह तो इधर उधर हो गया। फिर भी कुछ बचा होगा। जिनकृपाचद्रसूरिजी का महत्त्वपूर्ण ज्ञानभण्डार भी उनके यति शिष्य ने बेच दिया। बीकानेर के अन्य ग्रथ भण्डार इस प्रकार हैं —

गोविन्द पुस्तकालय —गोविन्दरामजी भीखनचदजी मसाली की कोटडी में एक ग्रथालय है। जिसमें गोविन्दरामजी ने मुद्रित ग्रथो के साथ-साथ करीब १७०० हस्तलिखित प्रतिया भी सग्रह कर रखी हैं।

सेठिया जैन लाइब्रेरी —अगरचन्द भैरोदान सेठिया जन पारमार्थिक सस्था के अतगत यह पुस्तकालय छात्रावास और जन औषधालय से ऊपर के बडे हॉल म रखा हुआ है। इसम मुद्रित ग्रथों का तो बहुत अच्छा सग्रह है ही पर करीब १५०० हस्तलिखित प्रतिया भी हैं। स्वर्गीय भैरोदानजी सेठिया ने बहुत सी हस्तलिखित प्रतिया तो स्वय न लिखवाई थीं और बहुत सी पुरानी भी खरीद ली थी।

क्षमा कल्याणजी का ज्ञानभण्डार —सुगनजी के उपाश्रय में १६वीं शताब्दी के संवेगी उपाध्याय क्षमा कल्याणजी के सग्रह की करीब ७०० हस्तलिखित प्रतियां इस ज्ञानभण्डार में हैं।

हेमचन्द्रसूरि पुस्तकालय —आसानियों बाठियो की गवाड मे पायचन्दगच्छ के श्रीपूज्यजी के उपासरे के सग्रह में करीब १२०० हस्तलिखित प्रतियां हैं।

कुशलचन्द्रगरिण पुस्तकालय :—रामपुरियों की गवाड मे अवस्थित पायचन्दगच्छ के उपाश्रय मे स्थित इस पुस्तकालय मे मुद्रित ग्रंथों के साथ-साथ करीव ४५० हस्तलिखित प्रतिया है।

पन्नीवाई के उपाश्रय का ज्ञानभण्डार :—राव गोपालसिंहजी के जसवत भवन के पास की गली के उपासरे मे करीव ३०० हस्तलिखित प्रतियां है।

छतिवाई उपासरे का ज्ञानभण्डार :— नाहटो की गवाड़ के सुपार्श्वनाथजी के मन्दिर से संलग्न उपासरे मे करीव ३०० प्रतियां है।

कोचरों के उपाश्रय का ज्ञानभण्डार :—इसमे करीव ३० बंडल हस्तलिखित ग्रंथ हैं। जिसकी सूची वनी हुई नही है।

इनके अतिरिक्त वोथरों की गवाड मे जेठीवाई के ज्ञानभण्डार में करीव ५०० हस्तलिखित प्रतियां है। इसी गवाड़ मे मगलचन्दजी मालू के यहां भी शताधिक प्रतिया हैं। इसी तरह मानमलजी कोठारी, शिवचन्दजी भावक और रामपुरिया-परिवार आदि के पास तथा कुछ यतियो के पास हस्तलिखित प्रतिया हैं। कुल मिलाकर वीकानेर मे १ लाख से भी अधिक हस्तलिखित प्रतियां हैं।

हस्तलिखित प्रतियों का संग्रह वीकानेर के वाद जोधपुर और जयपुर का उल्लेखनीय है। जोधपुर मे राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान का प्रधान कार्यालय और भवन है। उसमे करीव ४० हजार हस्तलिखित प्रतिया हैं। जिसमे हजारों प्रतियां जैनो की लिखी हुई हैं। इसी तरह राजस्थानी शोध सस्थान चौपासनी मे भी १५,००० से अधिक हस्तलिखित प्रतियां है और जोधपुर महाराजा के पुस्तक प्रकाश मे भी अच्छा संग्रह है। जिनमे जैन प्रतियां भी काफी है।

स्वतंत्र जैन ज्ञानभण्डारो के रूप मे भी जोधपुर मे कई अच्छे संग्रह है। जिनमें केशरियानाथजी मन्दिर और अन्य एक जैन मन्दिर का ज्ञानभण्डार अच्छा है। स्थानकवासी सप्रदाय के जैन रत्न पुस्तकालय और मुनि मगलचन्दजी का सग्रह तो मेरी जानकारी मे है। पर मरुधर केशरीजी का ज्ञानभण्डार भी अच्छा होना चाहिये पर मैं उसे देख नही पाया। स्वर्गीय कानमलजी नाहटा ने भी मुझे कहा था कि स्थानकवासी संप्रदाय का एक अच्छा सग्रह उनकी देखरेख मे है। पर उसे भी मैं देख नही पाया। राजवैद्य चाणोद के गुरसां उदैचन्दजी के यहा भी पहले सग्रह था पर अव शायद नहीं रहा। वैसे और भी कई जैन मन्दिरो व स्थानको आदि मे संग्रह होगा।

जयपुर मे वहा के महाराजा की लाइब्रेरी पोथीखाना वहुत वडी है। उसमे १८,००० हस्तलिखित प्रतियां होने का सुना था। पर प्रतियो को दिखाने की कोई व्यवस्था नहीं है न पूरी सूची ही देखने को मिली। वहा के राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की शाखा मे जयपुर के श्रीपूज्य धरणेन्द्रसूरिजी ने अपना संग्रह दे दिया है जिसमे २ हजार से अधिक प्रतियां हैं।

जयपुर के स्वतत्र जैन ज्ञानभण्डारो मे दिगम्बर जैन मन्दिरो के शास्त्र भण्डार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जिनकी सूची श्री महावीरजी तीर्थ कमेटी के शोध–सस्थान द्वारा प्रकाशित भी हो चुकी है। आमेर का भट्टारकीय भण्डार भी उक्त शोधसस्थान मे ही रखा हुआ है।

श्वेताम्वर शास्त्र भण्डारो मे सर्वाधिक उल्लेखनीय लाल भवन (चौड़ा रास्ता) का आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञानभण्डार है। इसमे स्थानकवासी आचार्य श्री हस्तीमलजी म० की प्रेरणा व प्रयत्न से

इधर कुछ वर्षों मे ही बहुत बड़ा व अच्छा सग्रह हो गया है। इसमे ३० हजार हस्तलिखित प्रतिया है। यहा के ज्ञानभण्डार की सूची का एक भाग तो प्रकाशित भी हो चुका है। इसका सम्पादन डॉ० नरेन्द्र भानावत ने किया है।

जयपुर के पुराने सग्रहो मे खरतरगच्छ का पचायती भण्डार कु दीगर भैरु के खरतरगच्छ उपाश्रय मे है। इसमें करीब ३,००० हस्तलिखित प्रतिया थीं। अब कितनी रही यह पुरानी सूची से मिलान करने पर ही निश्चय हो सकेगा। सग्रह बहुत अच्छा है। हरिसागरसूरिजी आदि ने इसकी सूची भी अच्छे रूप में बनाई थी। इसी उपासरे में और सामने के शिवजीराम भवन में स्वर्गीय मुनि श्री कान्ति सागरजी की हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह है। खरतरगच्छ के श्रीमालो के उपाश्रय में भी सग्रह है पर मैं उसे देख नही पाया। इसी तरह तपागच्छ उपाश्रय में भी कुछ सग्रह है।

दिगम्बर सप्रदाय का सबसे बडा और महत्त्वपूर्ण नागौर का भट्टारकीय शास्त्र भण्डार है। कुछ वर्ष पहले तो यह बद पडा था। डॉ० एल० पी० टसीटोरी ने इसको देखने का काफी प्रयत्न किया था। पर तत्कालीन भट्टारकजी ने शास्त्र भण्डार खोला ही नही और आगे दीवार और खडी कर दी। कुछ वर्ष पहिले जैन ज्ञानभण्डारो के महान् उद्धारक पूज्य मुनि पुण्यविजयजी बीकानेर से नागौर पधारे तब मैं भी वहा गया था उस समय मैंने भट्टारकजी से अनुरोध किया कि वे अपना शास्त्र भण्डार पूज्य मुनिश्री को दिखादें। मेरे लेखो व साहित्य प्रेम से वे प्रभावित थे। फलत उन्होने शास्त्र भण्डार दिखाने की स्वीकृति दे दी। मैं मुनिश्री पुण्य विजयजी को लेकर वहा पहुँचा। वर्षों से बन्द उस शास्त्र भण्डार को खोलने पर हम बडा हर्ष हुआ कि हस्तलिखित प्रतियो के बडे-बडे गट्ठर इस तरह कसकर के बाधकर रखे हुए हैं कि उनमें १ भी प्रति खराब नही हुई। इस सुरक्षित ज्ञान भण्डार में प्राचीन व महत्त्वपूर्ण करीब १२,००० हस्तलिखित प्रतिया व १ हजार गुटके हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय का मेरी जानकारी में एक शास्त्र भण्डार (इतना बडा) और कोई नही है। भण्डार खोलने के बाद दिगम्बर जैन मन्दिर में सलग्न सरस्वती मन्दिर बना करके उसमें यह रखा गया और सूची भी बनवाई गई। इस सूची के प्रकाशित होने पर अपभ्रंश आदि ग्रथो की बहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रकाश में आयेगी। यहा की हस्तलिखित प्रतियो की लेखन प्रशस्तिया भी एतिहासिक दृष्टि से बडे महत्त्व की हैं।

भट्टारकों के पास परम्परागत बहुत ही महत्त्वपूर्ण ज्ञानभण्डार रहा करते थे। जिनमें से आमेर के भट्टारकीय भण्डार का उल्लेख ऊपर किया गया है। इसी तरह का अन्य भट्टारकीय भण्डार अजमेर के दिगम्बर जन मन्दिर में भी सुरक्षित है। उसमें भी कई दुर्लभ और महत्त्व के ग्रथ हैं। अजमेर में श्वेताम्बर जन मन्दिर और जन स्थानक आदि में भी हस्तलिखित प्रतियों का सग्रह है। अभी दादावाडी में खरतरगच्छ की लखनऊ गद्दी के श्रीपूज्यजी का जिनदत्तसूरि सेवा सघ को दिया हुआ ज्ञानभण्डार भी रखा हुआ है जिसकी सूची मैंने और मेरे भतीजे भवरलाल ने ३ दिनरात लगाकर बना डाली है। करीब १२०० प्रतियां हैं। स्थानकवासी मुनि श्री हगामीलालजी के सग्रह की सूची अभी बनी नहीं है।

बीकानेर राज्य के अन्य कई स्थानो पर भी उल्लेखनीय श्वेताम्बर जन ज्ञानभण्डार हैं। जिनमें से सरदार शहर में तेरहपथी सभा और श्रीचन्द गणेशदास गधैया की हवेली में बहुत अच्छा सग्रह है। उपकेश (कवला)गच्छ के श्रीपूज्यजी और यति प्रेमसुन्दरजी आदि के सग्रह इन दानो ज्ञान

भण्डारो मे पहुच गये। ये संग्रह भी महत्त्वपूर्ण हैं। तेरहपंथी सभा की सूची तो पहले बनी हुई थी। गधइयो के यहां की सूची भी अब प्रायः बन गई है। सरदार शहर के अन्य १-२ व्यक्तियो के पास भी हस्तलिखित प्रतियो का संग्रह है पर उनकी सूची शायद बनी हुई नही हैं।

चूरू में सुराणा लाइब्रेरी और खरतरगच्छीय यतिजी का ज्ञानभण्डार बहुत अच्छा है। सुराणा लाइब्रेरी की तो बहुत वर्ष पहले सुभकरणजी सुराणा ने कलकत्ते में सूची बनाई भी थी। पर वह प्रकाशित नही हो पाई। खरतरगच्छीय यतिजी के मन्दिर के निकटवर्ती उपाश्रय के संग्रह की सूची तो बनी हुई है। पर प्रतियो को देखने व उपयोग करने की सुविधा ट्रस्टियो की ओर से नही दी जाती। ट्रस्टियो से अनुरोध है कि वे उपयोग करने की सुविधा शीघ्र प्रदान करें। सुजानगढ़ में भी २ उल्लेखनीय संग्रह ह। जिनमे से पन्नेचन्दजी सिंघी के मन्दिर का ज्ञानभण्डार और दानचन्दजी के ग्रंथालय का संग्रह तो सुव्यवस्थित है पर वहा के प्रसिद्ध वैद्य लौकागच्छीय यति रामलालजी के पास लौकागच्छ व श्रीपूज्यजी का ज्ञानभण्डार अच्छा है पर हम उसे देख नही पाये। खरतरगच्छ के यतिजी के उपासरे मे भी शायद कुछ संग्रह हो। रतनगढ में यतिजी का अच्छा संग्रह था। वह अब वैदो की लाइब्रेरी मे होगा। राजलदेसर मे भी उपकेशगच्छ के यतिजी के पास कुछ संग्रह मैंने देखा था पर अब किसके पास रहा यह मालूम नही। बीदासर के खरतरगच्छीय यतिजी के यहा भी कुछ हस्तलिखित बंडल थे। लाडनूं में तेरहपंथी सम्प्रदाय का परम्परागत हस्तलिखित प्रतियो का संग्रह है।

जोधपुर राज्य मे कई स्थानो मे श्वेताम्बर ज्ञानभण्डार अच्छे है। पाली में खरतरगच्छ की आद्यपक्षीय शाखा के श्रीपूज्यजी का अच्छा संग्रह था। वहा के जैन स्थानक, खरतरगच्छ व तपागच्छ मन्दिर उपासरे मे तीन भण्डार है और बुबकियाजी के पास संग्रह था। बालोतरा में खरतरगच्छ की भावहर्षीय शाखा का अच्छा ज्ञानभण्डार था। पर अब बिक चुका है। यहा के खरतरगच्छीय अन्य यतिजी के पास अब भी संग्रह है। बाडमेर के खरतरगच्छीय मन्दिर या उपाश्रय मे तथा यति नेमचन्दजी के यहा संग्रह है। घाणेराव में हिमाचलसूरिजी का अच्छा ज्ञानभण्डार है पर सूची बनी हुई नहीं है। लोहावट में खरतरगच्छ के आचार्य हरिसागरसूरिजी का अच्छा ज्ञानभण्डार है, उसकी सूची भी बनी हुई है। इसमें कई प्रतिया नई लिखाई हुई है। बहुत सी खरीद करके संग्रह की हुई है। ओसियां के वर्द्धमान-जैन-विद्यालय में स्थित रत्नप्रभाकर ज्ञानभण्डार की हस्तलिखित प्रतियो की सूची छपी हुई है। फलोदी में संघ और साध्वीजी के छोटे तीन ज्ञानभण्डार ह। मेडता में पंचायती ज्ञानभण्डार पहले बहुत अच्छा था। अब भी कुछ बचा हुआ है, पर सूची बनी हुई नही है। स्थानक मे भी थोड़ी सी हस्तलिखित प्रतियां होगीं।

सिरोही मे तपागच्छ के उपासरे आदि मे कुछ प्रतियां हैं। सिरोही राज्य के तपागच्छ के श्रीपूज्यजी का ज्ञानभण्डार अच्छा होना चाहिये। पर मैंने देखा नही है।

कोटा मे खरतरगच्छ उपाश्रय, महो० विनयसागरजी, सेठजी, विजयगच्छ के श्रीपूज्यजी, के ज्ञानभण्डार हैं जिसमे खरतरगच्छ का ज्ञानभण्डार और विनयसागरजी का अच्छा है।

श्वेताम्बर ज्ञानभण्डारो मे सर्वाधिक प्रसिद्ध जैसलमेर का जिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार है, जिसका कुछ वर्ष पहिले मुनि जिनविजयजी ने बडे अच्छे रूप मे उद्धार करके नई सूची भी प्रकाशित करवादी

है। ताडपत्रीय और कागज की प्राचीनतम और दुर्लभ ग्रंथो की प्रतिया यही हैं। थाहरुसा, तपागच्छ, खरतरगच्छ आचार्य शाखा के उपाश्रय और लोकागच्छ के उपाश्रय मे भी अच्छा सग्रह है।

फतेहपुर के खरतरगच्छीय यतिजी और झुंझुनू के खरतरगच्छ के उपाश्रय म कई हस्तलिखित प्रतिया हैं। किशनगढ के श्वेताम्बर जन मन्दिर मे एव स्थानक मे भी कुछ हस्तलिखित बडल रखे हुए है।

आहोर मे राजेन्द्रसूरिजी का ज्ञानभण्डार बहुत अच्छा है। सोजत आदि अन्य कई स्थानो मे भी होगे। पीपाड का जयमल ज्ञानभण्डार, यति चतुरविजयजी का सग्रह भी उल्लेखनीय हैं, और भी कई ज्ञानभण्डार ऐसे हैं जिनकी पूरी जानकारी नही मिल सकी है।

राजस्थान के सबसे अधिक ज्ञानभण्डार जोधपुर और बीकानेर राज्य म हैं। दिगम्बर भण्डारो के सम्बन्ध मे तो इधर मे काफी जानकारी प्रकाश मे आ चुकी है। जैन साहित्य शोध-सस्थान, जयपुर से मुझे राजस्थान के दिगम्बर ग्रंथ भण्डारो की जो सूची प्राप्त हुई है। उसके अनुसार ६८ ज्ञानभण्डारो की सूचिया अब तक बन चुकी हैं, जिनम सबसे अधिक शास्त्र भण्डार, जयपुर मे ही हैं। करीब २०,००० हस्तलिखित प्रतिया जयपुर के दिगम्बर शास्त्र भण्डारो म हैं। उनके अतिरिक्त अजमेर, अलवर, दूनी, आवा, बूंदी, नैणवा, डबलाना, इन्द्रगढ, फतेहपुर, भरतपुर, डीग, कामा, टोडारायसिंह, कोटा, बयाना, बर, उदयपुर, बसवा, भादवा, डूगरपुर, मालपुरा, करौली, दौसा नरायणा, साभर, माधवपुर, खण्डार, महावीरजी, उणियारा, अलीगढ, (टोक) आदि स्थानो मे छोटे बडे अनेको शास्त्र-भण्डार हैं। लेख विस्तारभय से केवल स्थानो का उल्लेख मात्र करके ही सतोष करना पडता है।

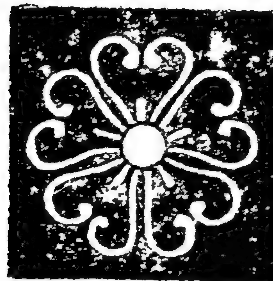
श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे तीन उपसम्प्रदाय हैं। मूर्ति पूजक, स्थानकवासी और तेरापथी, इनमे से तेरापथी सम्प्रदाय के ज्ञानभण्डार तो बहुत ही कम हैं। लाडनू, सुजानगढ, सरदारशहर, चुरू, रतनगढ, मे हस्तलिखित प्रतियो का अच्छा सग्रह है। इनमे से लाडनू का तो तेरापथ के आचार्य श्री तुलसीजी की देखरेख म हैं। बाकी शास्त्र सग्रह तेरापथी सभा एव श्रावको के सग्रह मे हैं।

स्थानकवासी सम्प्रदाय का राजस्थान म अच्छा प्रभाव रहा है। गत २००-२५० वर्षो म इस सम्प्रदाय के मुनियो एव आर्यिकाओ ने हजारों प्रतिया स्वय लिखी व इधर उधर स यतियो आदि के जो भी ग्रंथ सग्रह प्राप्त हुए, उनको अपनी देखरेख मे सुरक्षित रखा। इनमे से कई शास्त्र भण्डारो की सूचिया बन गई हैं। पर बहुत से अभी बिना सूची के पडे हैं। मरुधर केशरी मुनि मिश्रीमलजी से बातचीत करने पर मालूम हुआ कि स्थानकवासी मुनि जयमलजी व रघुनाथजी के समुदाय के बहुत से महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथ सग्रह हैं। मरुधर केशरीजी के देखरेख मे ही उन्होन जोधपुर, सोजत आदि म जो ज्ञानभण्डार बतलाये, उनम १० से २० हजार हस्तलिखित प्रतिया होगी पर अभी तक प्रयत्न करने पर भी मैं उनकी देखरख के एक भी भण्डार का देख नही पाया। आवश्यकता है — उन सब ज्ञानभण्डारो की सूचिया बनाकर प्रकाशित करवाई जायें। आचार्य श्री हस्तीमलजी ने इस दिशा म अच्छा काम किया है। उनम पूछने पर डॉ० नरेन्द्र भानावत ने जो भण्डारो के नाम भेजे हैं वे इस प्रकार हैं—रघुनाथ ज्ञानभण्डार, सोजत सिटी, जयमल ज्ञानभण्डार, पीपाड सिटी, जयमल ज्ञानभण्डार

जोधपुर, जैन रत्न पुस्तकालय, जोधपुर, मंगलचन्दजी ज्ञानभण्डार, जोधपुर, ऋषि-परम्परा सम्बन्धित ज्ञानभण्डार, प्रतापगढ, जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी ज्ञानभण्डार, अलवर, जैन दिवाकरजी से सम्बन्धित ज्ञानभण्डार, ब्यावर, नानकरामजी की सम्प्रदाय से सम्बन्धित ज्ञानभण्डार लाखनकोटडी, अजमेर, स्थानकवासी ज्ञानभण्डार भिनाय। इनके अतिरिक्त फलोदी, बालोतरा, बाडमेर, पिंडवाड़ा, सादडी, किशनगढ, लोहावट आदि मे भी ज्ञानभण्डार हैं।

इनके अतिरिक्त हमने कुछ ज्ञानभण्डार कई वर्ष पहले देखे थे, जैसे भीनासर के बहादुरमल जी बाठिया व चम्पालालजी वैद का संग्रह, देशनोक मे डोसीजी के पास, छापर में पूनमचन्दजी व मोहनलालजी दुधेडिया के पास, अलाय व किशनगढ़ के जैन मन्दिर में, मेडता मे पंचायती भण्डार, मारवाड़ जकशन मे यतिजी के पास, गढ़ सिवाने मे खरतरगच्छ ज्ञानभण्डार, झुंझुनू के जैन उपासरे मे, उदयपुर मे हाथीपोल की जैन धर्मशाला, शीतलनाथ मन्दिर आदि मे, चित्तौड़ मे राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान के शाखा कार्यालय में। जैतारण में पहले अच्छा ज्ञानभण्डार था। अब इसकी क्या स्थिति है, पता नहीं। किशनगढ़ के जैन मन्दिर में कुछ बडल पड़े हैं। चोहटण के महात्मा के पास कुछ प्रतियां हैं। जसोल आदि में कई यतियों के पास अच्छा संग्रह सुना है।

इस तरह राजस्थान के जैन ग्रंथ भण्डारो में अब भी लाखो हस्तलिखित प्रतिया सुरक्षित है। राजस्थान के जैन समाज, प्रातीय सरकार एवं विश्वविद्यालय आदि जैन-जैनेतर सभी हस्तलिखित ज्ञानभण्डारों के सर्वे का काम बडे पैमाने पर कई वर्षो तक करें, तो सैकड़ो अज्ञात कवियो, हजारो अप्रकाशित ग्रंथों व अज्ञात रचनाओ की जानकारी प्रकाश में आयेंगी एवं भारत भर के विश्व-विद्यालयो के शोधकार्य के लिये एक नया द्वार खुल जायेगा।



३६ | ग्रन्थो की सुरक्षा में राजस्थान के जैनो का योगदान

●

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

सारे देश म हस्तलिखित ग्रन्थों का अपूव सग्रह मिलता है। उत्तर स दक्षिण तक तथा पूव से पश्चिम तक सभी प्रान्तो मे हस्तलिखित ग्रन्थो के भण्डार स्थापित हैं। इनमे सरकारी क्षेत्रो मे पूना का भण्डारकर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, तजोर की सरस्वती महल लायब्रेरी, मद्रास विश्वविद्यालय की ओरियन्टल मेन्यूस्क्रिप्टस लायब्रेरी और कलकत्ता की बगाल एशियाटिक सोसाइटी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सामाजिक क्षेत्र म अहमदाबाद का एल० डी० इन्स्टीट्यूट जन सिद्धान्त भवन भारा, पन्नालाल सरस्वती भवन, बम्बई, जन शास्त्र भण्डार कारजा, लीवडी, सूरत, आगरा देहली आदि के ग्रन्थ भण्डारो के नाम लिये जा सकते हैं। इस प्रकार सारे देश म इन शास्त्रों भण्डारो की स्थापना की हुई है। जो साहित्य सरक्षण एव सकलन का एक अनोखा उदाहरण है।

लकिन हस्तलिखित ग्रन्थो क सग्रह की दृष्टि म राजस्थान का स्थान सर्वोपरि है। मुस्लिम शासन काल म यहा के राजा महाराजाओ ने अपने-अपने निजी सग्रहालयो म हजारों ग्रन्थो का सग्रह किया और उन्हें मुसलमानो के आक्रमण से अथवा दीमक एव सीलन म नष्ट होने से बचाया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राजस्थान सरकार न जोधपुर म जिस प्राच्यविद्या शोध प्रतिष्ठान की स्थापना की थी उसम एक लाख स भी अधिक ग्रन्थो का सग्रह हो चुका है जो एक अत्यधिक सराहनीय काय है। इसी तरह जयपुर, बीकानेर अलवर जसे कुछ भूतपूर्व शासको के निजी सग्रह मे भी हस्तलिखित ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण सग्रह है जिनम सस्कृत ग्रन्थों की सर्वाधिक सख्या है। लकिन इन सबक अतिरिक्त राजस्थान म जन ग्रन्थ भण्डारों की सख्या सर्वाधिक है और उनम सग्रहीत ग्रन्थो की सख्या तीन लाख से कम नहीं है।

ग्रथो की सुरक्षा एवं सग्रह की दृष्टि स राजस्थान क जनाचार्यो साधुओं, यतियो एव श्रावकों का प्रयास विशेष उल्लेखनीय है। प्राचीन ग्रन्थों की सुरक्षा एव नये ग्रन्थों के सग्रह म जितना ध्यान जैन समाज न दिया उतना अन्य समाज नहीं दे सका। ग्रन्थों की सुरक्षा म उन्होने अपना पूर्ण जीवन लगा दिया और किसी भी विपत्ति अथवा सकट क समय ग्रन्थो की सुरक्षा को प्रमुख स्थान दिया। जैसलमेर, जयपुर, नागौर, बीकानेर, उदयपुर एव अजमेर म जो महत्वपूर्ण ग्रन्थ भण्डार हैं वे सारे देश मे अद्वितीय हैं तथा इनमे प्राचीनतम पाण्डुलिपियों का सग्रह है। इन शास्त्र भण्डारों म

ताड़पत्र एवं कागज पर लिखे हुए प्राचीनतम पाण्डुलिपियो का संग्रह मिलता है। संस्कृत भाषा के काव्य, चरित, नाटक, पुराण, कथा एवं अन्य विषयो के ग्रन्थ ही इन भण्डारो मे संग्रहीत नहीं है किन्तु प्राकृत तथा अपभ्रंश के अधिकांश ग्रन्थ एवं हिन्दी राजस्थानी का विशाल साहित्य इन्हीं भण्डारो मे उपलब्ध होता है। यही नही कुछ ग्रन्थ तो ऐसे हैं जो इन्ही भण्डारो में उपलब्ध होते हैं, अन्यत्र नही।

ग्रन्थ भण्डारों मे बड़े-बड़े पंडित लिपिकर्ता होते थे जो प्रायः ग्रन्थो की प्रतिलिपिया किया करते थे। जैन भट्टारको के मुख्यालयो पर ग्रन्थ लेखन का कार्य अधिक होता था। इस दृष्टि से आमेर, नागौर, अजमेर, सागवाड़ा, जयपुर, कामा आदि के नाम विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं। ग्रन्थ लिखने मे काफी परिश्रम करना पड़ता था। पीठ झुके हुए, कमर एवं गर्दन नीचे किये हुए, आखें झुकाये हुए कष्ट पूर्वक ग्रंथों को लिखना पड़ता था। इसलिये कभी-कभी प्रतिलिपिकार नम्न श्लोक लिख दिया करते थे ताकि पाठक, ग्रन्थ का स्वाध्याय करते समय अत्यधिक सावधानी रखें।

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार प्राचीनतम पाण्डुलिपियो के लिये प्रमुख केन्द्र हैं। जैसलमेर के जैन शास्त्र भण्डार मे सभी ग्रन्थ ताड़पत्र पर हैं जिसमे सवत् १११७ मे लिखा हुआ 'ओघ निर्युक्ति वृत्ति' सबसे, प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसी भण्डार मे उद्योतन सूरि की कृति 'कुवलयमाला' संवत् ११३९ की कृति है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे यद्यपि ताड़पत्र एवं कागज पर ही लिखे हुए ग्रन्थ मिलते हैं लेकिन कपडे एवं ताम्रपत्र पर भी लिखे हुए ग्रन्थ मिलते है। जयपुर के एक शास्त्र भण्डार मे कपड़े पर लिखे हुए प्रतिष्ठा-पाठ की प्रति उपलब्ध हुई है जो १७वी शताब्दी की लिखी हुई है और पूर्णतः सुरक्षित है। इन भण्डारो मे कपडो पर लिखे हुए चित्र भी उपलब्ध होते हैं जिनमे चार्ट के द्वारा विषय का प्रतिपादन किया गया है। प्रायः प्रत्येक मन्दिर मे ताम्रपत्र एवं सप्तधातु पत्र भी उपलब्ध होते हैं।

इन भण्डारो मे ग्रन्थ लेखक के गुणो का भी वर्णन मिलता है जिसके अनुसार इसमे निम्न गुण होने चाहिये—

सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वभाषा विशारद ।
लेखक. कथितो राज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै ।।
मेधावी वाक्पटु धीरो लघुहस्तो जितेन्द्रियः ।
परशास्त्र परिज्ञाता, एवं लेखक उच्यते ।।

ग्रन्थ लिखने मे किस-किस स्याही का प्रयोग किया जाना चाहिये, इसकी भी पूरी सावधानी रखी जाती थी ताकि अक्षर खराब नही हो, स्याही नही फूटे तथा कागज एक दूसरे के नही चिपके। ताडपत्रो के लिखने मे जो स्याही काम मे ली जाने वाली है, उसका वर्णन देखिये—

सहवर भृंगः त्रिफला, कार्तास लोहमेव तोलो ।
समकरवाल बोलयुता, भवति मसि ताडपत्रानां ।।

जैसलमेर के ग्रन्थ भण्डार मे कई महत्त्वपूर्ण पाडुलिपिया सुरक्षित हैं। महाकवि दण्डी के 'काव्यादर्श' की पाण्डुलिपि सम्वत् ११६१ की उपलब्ध है जो इस ग्रन्थ की अब तक उपलब्ध ग्रन्थो मे

सबसे प्राचीन है। अन्य प्राचीनतम पांडुलिपियो मे अभय देवाचार्य की विपाक सूत्र वृत्ति (सन् ११२८), जयकीर्ति सूरि का छन्दानुशासन (सन् ११३५), अभय देवाचार्य की भगवती सूत्र वृत्ति (सन् ११३८), विमल सूरि द्वारा विरचित 'पउम चरिय' (सम्वत् ११९८) मुख्य हैं। 'पउम चरिय, की यह पाण्डु-लिपि महाराजाधिराज श्री जयसिंह देव के शासनकाल मे लिखी गयी थी। वर्द्धमान सूरि की व्याख्या सहित 'उपदेश पद प्रकरण' की पाण्डुलिपि जिसका लेखन अजमेर मे सम्वत् १२१२ मे हुआ था, इसी भण्डार म सग्रहीत है। चन्द्रप्रभ स्वामी चरित (यशोदेव सूरि) की भी प्राचीनतम पाण्डुलिपि इसी भण्डार मे सुरक्षित है, जिसका लेखन काल सम्वत् १२१७ है तथा जो ब्राह्मण गच्छ के पण्डित अभय कुमार द्वारा लिपिबद्ध की गयी थी। इसी तरह 'भगवती सूत्र (सम्वत् १२३१), व्यवहार सूत्र (सम्वत् १२३६), महावीर चरित (सम्वत् १२४२) तथा भव भावना प्रकरण' की सम्वत् १२६० की भी प्राचीनतम प्रतिया इसी भण्डार मे सग्रहीत है। ताडपत्र के समान कागज पर उपलब्ध होने वाले ग्रन्थों म भी इन भण्डारो मे प्राचीनतम पाण्डुलिपिया उपलब्ध होती हैं जिनका सरक्षण अत्यधिक सावधानी पूर्वक किया गया है। नये मन्दिरो मे स्थानान्तरित होने पर भी जिनको सम्हाल कर रखा गया तथा दीमक सीलन आदि से बचाया गया। इस दृष्टि से मध्य युग मे होने वाले भट्टारकों का सर्वाधिक योगदान रहा।

जयपुर के दि० जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे 'समयसार' की सम्वत् १३२९ की पाण्डुलिपि है जो देहली मे गयासुद्दीन बलबन के शासनकाल मे लिखी गयी थी। योगिनी-पुर जो देहली का पुराना नाम था उसम इसकी प्रतिलिपि की गयी थी। सम्वत् १३९१ मे लिखित महाकवि पुष्पदन्त के 'महापुराण' के द्वितीय भाग उत्तर पुराण' की एक पाण्डुलिपि आमेर शास्त्र भंडार जयपुर मे सग्रहीत है। यह पाण्डुलिपि भी योगिनीपुर मे मोहम्मद साह तुगलक के शासनकाल म लिखी गयी थी।

यहा एक बात और विशेष ध्यान देने की है और वह यह है कि जैनाचार्यों एव श्रावको ने अपने शास्त्र भण्डारो म ग्रन्थो की सुरक्षा मे जरा सा भेद भाव नही रखा। जिस प्रकार उन्होने जैन ग्रन्थों की सुरक्षा एव उनका सकलन किया उसी प्रकार जैनेतर ग्रन्थो की सुरक्षा एव सकलन पर भी विशेष जोर दिया। घोर परिश्रम करके जैनेतर ग्रन्थो की प्रतिलिपिया या तो स्वय ने की अथवा अन्य विद्वानो से उनकी प्रतिलिपि करवायी। आज बहुत से तो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनकी पाण्डुलिपियाँ केवल जैन शास्त्र भण्डारो म ही मिलती हैं। इस दृष्टि से आमेर, जयपुर, नागौर, बीकानेर, जैसलमेर, कोटा, बून्दी एव अजमेर के जैन शास्त्र भण्डारो का अत्यधिक महत्त्व है। जैन विद्वानो ने जैनेतर ग्रन्थो की सुरक्षा ही नही की किन्तु उन पर वृत्तिया, टीका एव भाष्य भी लिखे। उन्होंने उनकी हिन्दी म टीकायें लिखी और उनके प्रचार प्रसार म अत्यधिक योग दिया। राजस्थान के इन जैन शास्त्र भण्डारो म काव्य, कथा, व्याकरण, आयुर्वेद ज्योतिष, गणित विषयो पर सैकडो रचनायें उपलब्ध होती हैं। यही नहीं, स्मृति, उपनिषद एव सहिताओ का भी भण्डारो म सग्रह मिलता है। जयपुर के पाटोदी के मन्दिर म ५०० से अधिक एसे ही ग्रन्थो का सग्रह किया हुआ उपलब्ध है।

मम्मट के 'काव्य प्रकाश' का सम्वत् १२१५ की एक प्राचीनतम पाण्डुलिपि जैसलमेर के शास्त्र भण्डार म ही सग्रहीत है। यह प्रति शाकम्भरी के कुमारपाल के शासनकाल म अणहिलपट्टन

मे लिखी गयी थी। सोमेश्वर कवि की 'काव्यादर्श' की सम्वत् ११८३ की एक ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि भी यही के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। कवि रुद्रट के 'काव्यालंकार' की इसी भण्डार मे सम्वत् १२०६ की ताडपत्रीय पाण्डुलिपि उपलब्ध होती है। इस पर नमि साधु की सस्कृत टीका है। इसी विद्वान् द्वारा लिखित टीका की एक प्रति जयपुर के आमेर शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। इसी तरह कुन्तक के 'वक्रोक्ति जीवित', वामन के 'काव्यालकार', राजशेखर के 'काव्य मीमांसा' उद्भट कवि के 'अलंकार संग्रह', की प्राचीनतम पाण्डुलिपिया भी जैसलमेर, बीकानेर, जयपुर, अजमेर एव नागौर के शास्त्र भण्डारो में संग्रहीत हैं। कालिदास, माघ, भारवि, हर्ष, हलायुध एव भट्टी जैसे संस्कृत के शीर्षस्थ कवियो के काव्यो की प्राचीनतम पान्डुलिपिया भी राजस्थान के जैन शास्त्र भन्डारो मे संग्रहीत हैं। यह नही, इन भण्डारो मे कुछ काव्यो की एक से भी पाण्डुलिपिया हैं। किसी-किसी भण्डार मे तो यह संख्या २० तक भी पहुँच गयी है। जैसलमेर के शास्त्र भण्डार मे कालिदास को 'रघुवंश' की १४वी शताब्दी की प्रति है। इन काव्यो पर गुणरतनसूरि, चरित्रवर्द्धन, मल्लिनाथ, समयसुन्दर, धर्ममेरु, शान्तिविजय जैसे कवियो की टीकाओ का उत्तम सग्रह हैं। 'किरातार्जुनीय' काव्य पर प्रकाशवर्ष की टीका की एक मात्र प्रति जयपुर के आमेर शास्त्र भण्डार मे संग्रहीत है। प्रकाशवर्ष ने लिखा है कि वह कश्मीर के हर्ष का सुपुत्र है। उदयनाचार्य की 'किरणावली' की एक प्रति टीका सहित आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे उपलब्ध है। 'साख्य सप्तति' की पाण्डुलिपि भी इसी भण्डार मे संग्रहीत है, जो सम्वत् १४२७ की है। इसी ग्रन्थ की एक प्राचीन पाण्डुलिपि, जिसमें भाष्य भी है, जैसलमेर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध है और वह सम्वत् १२०० की ताडपत्रीय प्रति है। इसी भण्डार में 'साख्य तत्व कौमुदी' (वाचस्पति मिश्र) तथा ईश्वरकृष्ण की 'सांख्य सप्तति' की अन्य पाण्डुलिपियाँ भी उपलब्ध होती हैं। इसी तरह 'पातंजल योगदर्शन भाष्य' की पाण्डुलिपि भी जैसलमेर के भण्डार में सुरक्षित हैं। 'प्रशस्तपाद भाष्य' की एक १२वी शताब्दि की पाण्डुलिपि भी यही के भण्डार में मिलती है।

अलकार शास्त्र के ग्रन्थो के अतिरिक्त कालिदास, मुरारी, विशाखदत्त एव भट्टनारायण के सस्कृत नाटको की पाण्डुलिपिया भी राजस्थान के इन्ही भण्डारो मे उपलब्ध होती हैं। विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' नाटक, मुरारी कवि का 'अनर्घराघव', कृष्ण मिश्र का 'प्रवोध चन्द्रोदय' नाटक, महाकवि सुबन्धु की 'वासवदत्ता' आख्यायिका की ताड़पत्रीय प्राचीन पाण्डुलिपिया जैसलमेर के भण्डार मे एव कागज पर अन्य शास्त्र भण्डारो मे सगृहीत हैं।

अपभ्रंश का अधिकाश साहित्य जयपुर, नागौर, अजमेर एव उदयपुर के शास्त्र भण्डारो मे मिलता है। महाकवि स्वयंभू का 'पउमचरिउ' एवं 'रिट्ठणेमिचरिउ' की प्राचीनतम पाण्डुलिपियाँ जयपुर एवं अजमेर के शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत हैं। 'पउमचरिउ' की संस्कृत टीकायें भी इन्ही भण्डारो मे उपलब्ध हुई हैं। महाकवि पुष्पदन्त का 'महापुराण' 'जसहरचरिउ', 'णाय कुमार चरिउ' की प्रतियां भी इन्ही भण्डारो मे मिलती हैं। अब तक उपलब्ध पाण्डुलिपियो मे 'उत्तर पुराण' की सम्वत् १३९१ की पाण्डुलिपि सबसे प्राचीन है और वह जयपुर के ही एक भण्डार मे सग्रहीत है। महाकवि नयनन्दि की 'सुदसण चरिउ' की जितनी सख्या मे जयपुर के शास्त्र भण्डारो मे पाण्डुलिपिया संग्रहीत हैं, उतनी अन्यत्र कही नहीं मिलती। नयनन्दि ११वी शताब्दि के अपभ्रंश के कवि थे। इनका एक अन्य ग्रन्थ 'सयल विहिविहाण' काव्य की एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के आमेर शास्त्र

भण्डार म सग्रहीत है। इसम कवि ने अपने से पूव होने वाले कितने ही कवियो के नाम दिये हैं। इसी तरह शृ गार एव वीर रस के महाकवि वीर का जम्बूसामि चरिउ' भी राजस्थान मे अत्यधिक लोकप्रिय रहा था और उसकी कितनी ही प्रतिया जयपुर एव आमेर के शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध होती हैं। अपभ्र श म सबसे अधिक चरित काव्य लिखन वाले महाकवि रइधू के अधिकाश ग्र थ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध हुये हैं। रइधू न २० से भी अधिक चरित काव्य लिखे थे और उनम आधे से अधिक तो विशालकाय कृतिया हैं। इसी तरह अपभ्र श के अ य कवियों मे महाकवि यश कीर्ति, पडित लाखू, हरिषेण, श्रुतकीर्ति, पद्मकीर्ति, महाकवि श्रीधर, महाकवि सिंह, धनपाल, श्रीच द, जयमित्रहल, नरसेन अमर कीर्ति, गणि देवसेन, माणिक्यराज एव भगवतीदास जसे पचासो कवियो की छोटी-बडी सकडो रचनायें इ ही भण्डारो मे सग्रहीत हैं। १८वी शताब्दी मे होने वाले अपभ्र श के अ तम कवि भगवतीदास की सम्वत् १७०० की कृति 'मृगाकलखाचरित' की पाण्डुलिपि भी आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर में सग्रहीत है। भगवतीदास हि दी के अच्छे विद्वान थे, जिनकी २० से भी अधिक रचनायें उपलब्ध होती हैं।

सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्र श के समान ही जन ग्र थ भण्डारो में हि दी एव राजस्थानी भाषा के ग्रथो की पूण सुरक्षा की गयी। यही कारण है कि राजस्थान के इन ग्र थ भण्डारो में हि दी एव राजस्थानी भाषा की दुलभ कृतिया उपलब्ध हुई ह और भविष्य में और भी होने की आशा है। हि दी के बहुचर्चित ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' की प्रतियाँ कोटा, बीकानर, एव चूरू के जैन भण्डारो मे उपलब्ध हुई हैं। इसी तरह 'वीसलदेव रासो' की कितनी ही पाण्डुलिपियां अभय जन ग्र थालय बीकानेर एव खरतरगच्छ जैन शास्त्र भण्डार कोटा में उपलब्ध हो चुकी है। प्रसिद्ध राजस्थानी कृति क्रिसन रुकमणि री बेलि' पर जो टीकायें उपलब्ध हुई हैं, वे भी प्राय सभी जन शास्त्र भण्डारो में सरक्षित हैं। इसी तरह 'बिहारी सतसई', 'रसिकप्रिया', 'जतमोरासो', 'बताल पच्चीसी', 'बिल्हण चरित चौपई की प्रतियां राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारो में सग्रहीत है। हिन्दी की अन्य रचनाओ में राजसिंह कवि के 'जिनदत्त चरित' (सम्वत् १३५४) सधारू कवि के 'प्रद्युम्नचरित' (सम्वत् १४११) की दुर्लभ पाण्डुलिपिया भी जयपुर के जन शास्त्र भण्डारा में सग्रहीत हैं। ये दोनो ही कृतिया हिन्दी के आदिकाल की कृतिया हैं, जिनके आधार पर हि दी साहित्य के इतिहास की कितनी ही विलुप्त कडिया का पता लगाया जा सकता है। कबीर एव गोरखनाथ के अनुयायियो की रचनायें भी इन भण्डारो में सग्रहीत हैं जिनके गहन अध्ययन एव मनन की आवश्यकता है। 'मधुमालती कथा', 'सिंहासन बत्तीसी', 'माधवनल प्रब ध कथा', 'ढोलामारू रा दूहा' की प्राचीनतम पाण्डुलिपिया भी राजस्थान के इन जन भण्डारो में सग्रहीत हैं।

वास्तव में देखा जाये तो राजस्थान के जन शास्त्र भण्डारा ने हि दी एव राजस्थानी के जितने ग्र था को सुरक्षित रखा है, उतने ग्र था को अ य कोई भी भण्डार नही रख सके हैं। जन कवियो की सकडो गद्य-पद्य रचनायें इनमें उपलब्ध होती हैं जो काव्य, चरित, कथा, रास बेलि, फागु, धमाल, चौपई, दोहा, बारहखडी, विलास, गीत, सतसई, पच्चीसी, बत्तीसी, सतावीसी, शतक आदि के नाम स उपलब्ध होती हैं। जयपुर के लाल भवन स्थित आचाय श्री विनयचद्र ज्ञानभण्डार में स्थानकवासी परम्परा के शताधिक कवियो की सकड़ो पांडुलिपियां सुरक्षित हैं जो मध्य युगीन काव्य रूपा के अध्ययन की दृष्टि स बड़ी महत्वपूण हैं।

१३वीं शताब्दी से लेकर १९वीं शताब्दी तक निबद्ध कृतियों का इन भण्डारों में अम्बार लगा है, जिनका अभी तक प्रकाशित होना तो दूर रहा, वे पूरी प्रकाश में भी नहीं आ सकी हैं। अकेले ब्रह्म जिनदास ने पचास से भी अधिक रचनायें लिखी हैं, जिनके सम्बन्ध में विद्वत जगत् अभी तक अन्धकार में ही है। अभी हाल में ही महाकवि दौलतराम की दो महत्त्वपूर्ण रचनाओं—'जीवन्धर स्वामी चरित' एवं 'विवेक विलास' का प्रकाशन हुआ है। कवि ने १८ रचनायें लिखी हैं और वे एक से एक उच्चकोटि की हैं। दौलतराम १८वीं शताब्दी के कवि थे और कुछ समय उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के दरबार में रह चुके थे।[1]

पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त इन जैन भण्डारों में कलात्मक एवं सचित्र कृतियों की सुरक्षा भी हुई है। कल्पसूत्र की कितनी ही सचित्र पाण्डुलिपियां, कला की उत्कृष्ट कृतियां स्वीकार की गयी हैं, कल्पसूत्र की एक ऐसी ही प्रति जैसलमेर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। कला प्रेमियों ने इसे १५ वीं शताब्दी की स्वीकार की है। आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर में एक 'आदिनाथ पुराण' की संवत् १४६१ की पाण्डुलिपि है। इसमें १६ स्वप्नों का जो चित्र है, वह कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी तरह राजस्थान के अन्य भण्डारों मे 'आदि पुराण', 'जसहर चरिउ', 'यशोधर चरित', 'भक्तामर स्तोत्र', 'णमोकार माहात्म्य कथा' की जो सचित्र पाण्डुलिपियां हैं, वे चित्रकला की उत्कृष्ट कृतियां हैं। ऐसी कृतियों का संरक्षण एवं लेखन दोनों ही भारतीय चित्रकला के लिये गौरव की बात है।



१ देखिये—दौलतराम कासलीवाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व—डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल।

३७ | जैन पत्र और पत्रकार

●

डॉ० भँवर सुराणा

जैन पत्र

स्वतन्त्रता से पूर्व राजस्थान मे समाचार पत्र निकालना, समाचार पत्रो को सम्वाद भेजना अथवा समाचारपत्र मगा कर पढ़ना और पढ़ाना बड़े साहस का कार्य था। बाईस देशी राजाओ और उनके अधिकारियो का यह दृष्टिकोण था कि यदि जनता मे ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा उत्पन्न हो गई तो उनके उत्पीडक, शोषक रूप के प्रति विद्रोह जागृत होगा, जिसका परिणाम उनके अपने स्वार्थो और अधिकारो पर आघात के रूप मे होगा। राजस्थान के जातीय धार्मिक पत्रो ने समाज सुधार के प्रयत्न किये, तत्सम्बन्धी साहित्य सृजा और उसके माध्यम से लोगो के मन मे स्वतन्त्रता की ललक जगाई। समाज सुधार के साथ ही साथ उन्होने प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी शासन के प्रति विद्रोह का, संघर्ष का स्वर मुखर किया, प्रतिरोध किया और स्वशासन के प्रति जनता मे जागरण का शख फूका।

इन जातीय पत्रो ने राजस्थान मे लेखको, कवियो का एक ऐसा समुदाय निर्मित किया जो किसी भी प्रदेश के लेखको तथा कवियो की तुलना मे अधिक सक्षम और सशक्त अभिव्यक्ति मे सम्मानित स्थान प्राप्त कर सकता है।

राजस्थान मे सबसे पुराने जीवित समाचार पत्रो मे 'जैनगजट' अजमेर का नाम आता है जो जैन दर्शन से सम्बन्धित लेखादि के अतिरिक्त जैन समाज की, विशेष रूप से दिगम्बर जैन समाज की गतिविधियो के सम्बन्ध मे समाचार प्रकाशित करता है। इस साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन सन् १८९५ ई० मे प्रारम्भ हुआ था।

१९२३ मे श्री दुर्गाप्रसाद ने 'अहिंसा प्रचारक साप्ताहिक' का अजमेर से प्रकाशन प्रारम्भ किया था। अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स का मुखपत्र 'कान्फ्रेन्स प्रकाश' भी ब्यावर व अजमेर मे १९२४ मे प्रकाशित हुआ। ब्यावर मे धीरजभाई तुरखिया के सम्पादन मे जब यह पत्र निकलता था तब इसमे हिन्दी और गुजराती मे धर्म-दर्शन सम्बन्धी लेख एव समाचार

प्रकाशित होते थे। मुनियों के चातुर्मास, तपस्या तथा प्रवचनों के प्रकाशन पर अधिक जोर दिया जाता था। साधवाचार एवं व्यवहार के विभिन्न प्रश्नों पर विचार-विमर्श एवं मत-विमत भी प्रकाशित किये जाते थे। मूलतः इस पत्र का उद्देश्य श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज के विभिन्न सम्प्रदायो-आम्नायों के अनुयायियों और मुनियो, आचार्यों को सघवद्ध करने का प्रयत्न करना था जिसमे वह बहुत सफल रहा।

'खण्डेलवाल जैन हितेच्छु' खण्डेलवाल जैन समाज का १९२५ मे प्रकाशित मुख पत्र था जिसका प्रकाशन स्थल खण्डेलवाल जैन महासभा के अध्यक्ष व मन्त्री के चुनाव के साथ बदल जाता रहा है। कभी वह अजमेर से, कभी जयपुर से, कभी अलवर से तो कभी किशनगढ से उसका प्रकाशन होता था। समाज सुधार, रूढ़ियों पर प्रहार इस पत्र का लक्ष्य रहा है। साथ ही साथ समाज की गतिविधियों के प्रचार-प्रसार के माध्यम के रूप में भी उसका प्रयोग किया जाता रहा है। कविता और कहानी भी उसमे प्रकाशित किये जाते रहे है।

आबूरोड से प्रकाशित 'मारवाड़ जैन सुधारक' के सम्बन्ध मे विशेष विवरण प्राप्त नही है। वह १९२५ मे प्रकाशित हुआ था और उसका वार्षिक मूल्य दो रुपया था। उसी वर्ष अजमेर से 'जैन-जगत' के प्रकाशन का भी उल्लेख मिलता है। उसका भी वार्षिक मूल्य २) रुपया था।

जयपुर से रायसाहब केसरलाल अजमेरा जैन द्वारा १९३२ मे 'सुधारक' मासिक प्रकाशित किया गया। उसका भी मूल स्वर वही रहा जो पिछले पत्रो का था।

अजमेर से श्री मानमल जैन ने १९४१ में 'वीरपुत्र' मासिक प्रकाशित किया था। इस मासिक पत्र में जैन-धर्म से सम्बन्धित कथाओ को सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया जाने के अतिरिक्त कविताओ तथा चित्रो के माध्यम से भी जैन इतिहास को प्रस्तुत किया जाता था। इसका वार्षिक मूल्य ३) रुपया था तथा वह मोटे टाइप में बहुरग में प्रकाशित होता था। दीपावली तथा महावीर जयंती पर उसके विशेषांक भी प्रकाशित होते थे। आर्थिक दृष्टि से यह मासिक पत्र श्री जैन पर अत्यधिक बोझ ही बना रहा यद्यपि वे सभी सम्प्रदायो से सहयोग कर चलने के हामी थे। श्री जैन ने स्वतन्त्रता संग्राम में भी अपना दायित्व निभाया और दो बार जेल गये थे।

सन् १९४३ में आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से श्री जैनरत्न विद्यालय भोपालगढ़ से 'जिनवाणी' मासिक का प्रकाशन हुआ जो बाद मे जोधपुर से प्रकाशित होने लगा। सर्वश्री चम्पालाल कर्णावट, शान्तिचन्द्र मेहता, चांदमल कर्णावट, पारसमल प्रसून आदि इसके प्रारम्भिक सम्पादकों में से थे। इसमें हिन्दी के साथ अंग्रेजी का भी एक विभाग रहता था। जैन दर्शन, इतिहास व साहित्य की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण पत्र था। श्री विजयमल कुम्भट का इसे बड़ा सहयोग रहा। सन् ५८ के लगभग यह जयपुर से प्रकाशित होने लगा। श्री भंवरलाल बोथरा इसके व्यवस्थापक थे। जयपुर आने पर डॉ० नरेन्द्र भानावत ने अपने सम्पादन में इसे साहित्यिक स्तर प्रदान किया। इसके प्रबन्ध सम्पादको में श्री नथमल हीरावत व श्री प्रेमराज बोगावत का विशेष सहयोग रहा।

निम्बाहेडा से १९५२ में 'शाश्वतधर्म' मासिक का प्रकाशन श्री सोभागसिंह गोखरू ने प्रारम्भ किया। अब यह मन्दसौर से प्रकाशित होता है। १९५४ में 'वीरपुत्र' के सम्पादक-प्रकाशक मानमल

जैन ने 'ओसवाल' का प्रकाशन किया। उसी वर्ष श्री सी० एल० कोठारी ने अजमेर से ही 'जन कल्याण' मासिक प्रकाशित किया। १९६३ मे जयपुर से महावीर प्रसाद कोटिया ने 'जैन सगम' प्रकाशित किया। माणक चोरडिया ने अजमेर से १९६४ म 'ओसवाल समाज' मासिक प्रस्तुत किया। फतहचन्द महात्मा ने चित्तौडगढ से 'महात्मासदेश' मासिक प्रकाशित किया। उसे दो वष पश्चात् ही 'महात्मा ब धु' के नाम से प्रकाशित किया। १९६७ मे अजमेर से 'जन दशन' और साहित्य के सम्ब ध मे मिश्रीलाल ने 'श्रेष्ठी समाज' त्रैमासिक का प्रकाशन किया। १९५२ मे जोधपुर से श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज के श्री पदमसिह जन न 'तरुण जन' साप्ताहिक का प्रकाशन किया जो अपने सम्प्रदाय का मुख्य समाचार पत्र था। उस पत्र से इ दौर तथा अन्य स्थानो के पत्रकार भी सम्बन्धित रहे। 'तरुण जन' मे जैन धम सम्बन्धी कविताए लेख आदि भी प्रकाशित होते थे। इस समय मे लाला पदमसिह जैन के पुत्र फतहसिह उसको सचालित कर रहे हैं। इस पत्र से लम्बे समय तक मैं भी लेखक के रूप मे सम्बन्धित रहा। इन्ही दिनो विलाडा (मारवाड) से विजयमोहन जन एव अ य मित्रो न 'वीर लोकाशाह' साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ किया जिसमे मुख्यत जन मुनियो, आचार्यों के प्रवास वर्षावास के समाचार प्रकाशित होते थे। बीकानेर से १९५५ मे बख्शी चम्पालाल जन ने अहिंसा पशुबलि निषेध के पक्ष को लेकर 'अभय स देश का प्रकाशन किया। १९५६ म जालोर से 'मरुधर केसरी' का प्रकाशन आरम्भ हुआ जो आजकल प्रकाशित नही होता है। १९६४ मे जोधपुर से 'जैन प्रहरी' साप्ताहिक का प्रकाशन हुआ। वह भी आजकल ब द है।

पाक्षिक पत्रो मे जन धम तत्त्व दशन से सम्बन्धित 'अहिंसा' (जयपुर) प० इन्द्रचन्द्र शास्त्री के सपादन मे १९५३ मे प्रकाशित हुआ। १९५६ मे श्री सुमरमल कोठारी न चूरू से 'सुमति' का प्रकाशन किया। श्री जुगराज सेठिया व अन्य लोगो ने बीकानेर से 'श्रमणोपासक' पाक्षिक १९६३ मे प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। यह अ० भा० साधुमार्गी जनसघ का मुख पत्र है और नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है। मुनिया आचार्यों के प्रवचन, धम सम्ब धी लेख, दशन सम्बन्धी लेख, मुनियो आचार्यों सम्ब धी समाचार समाज की गतिविधियो से सम्बन्धित समाचारो का प्रकाशन इस पत्र की विशेषता है। वतमान म डॉ० शा ता भानावत इससे सम्बन्धित हैं। बालोतरा से १९६४ मे एक पाक्षिक पत्र 'श्री नाकोडा अधिष्ठायक भरव' लक्ष्मणदास के सम्पादन म प्रकाशित हुआ। जयपुर से प्रकाशित 'वीरवाणी' (आद्य सम्पादक श्री चनसुखदास जी न्यायतीथ) सम्पादक श्री भवरलाल न्यायतीथ, भीलवाडा से प्रकाशित 'धमज्योति' (मासिक), लाडनू-जन 'विश्वभारती' की त्रमासिक 'अनुसधान पत्रिका' (प्रव तुलसीप्रज्ञा) स० डा० महावीर राज गलडा, लाडनू से ही प्रकाशित 'युवादृष्टि', स कमलेश चतुर्वेदी, विजयसिह कोठारी जोधपुर से प्रकाशित शाति ज्योति', पहले जयपुर से और अब दिल्ली से प्रकाशित मासिक 'ज्ञानालोक', महावीरजी से मुमुक्षु महिला आश्रम से प्रकाशित 'महिला जागरण', महावीरजी से ही प्रकाशित 'श्रेयोमाग , जयपुर स प्रकाशित श्री रामरतन कोचर द्वारा सम्पादित 'वल्लभ स देश' (मासिक), जोधपुर से प्रकाशित 'जन शासन' आदि अन्य उल्लेखनीय पत्र हैं। अभी हाल ही म जोधपुर म विश्वेश्वर महावीर' (मासिक) प्रकाशित होन लगा है। इसक प्र० सम्पादक हैं श्री प्रकाश जन बांठिया।

जैन पत्रकार

राजस्थान म क्रान्ति का मशाल जलान वाल प० अजु नलालजी सेठी को कौन भुला सकता

है ? महामना बाल गगाधर तिलक के 'केसरी' से उनका बहुत निकट का सम्पर्क रहा है। उनके शिष्यो मे से कई फांसी के फन्दे को चूम गये। जोधपुर के राजा द्वारा 'दस नम्बरी' घोषित स्वतन्त्रता के यज्ञ मे आहूति देने वाले श्री आनन्दराज सुराणा, श्री जयनारायणजी व्यास के 'तरुण राजस्थान' के मूल सहयोगी थे। राजद्रोह के मुकदमो और काल कोठरियो मे रख कर उनको जो यातनायें दी गईं उनकी कल्पना मात्र से ही आज मन और मस्तिष्क सिहर उठता है। चित्तौड़गढ़ के श्री भीमराज घड़ोल्या मेवाड मे स्वतन्त्रता के लिये चलाये जा रहे आन्दोलनों के समाचार, रियासत से बाहर के समाचार-पत्रो में प्रकाशनार्थ भेजते थे और परिणामस्वरूप उनको राज्यसेवा से निष्कासित कर दिया गया। काकाजी शोभालालजी गुप्त अजमेर मे स्वतन्त्रता से पूर्वकाल मे अनेक पत्रों से सम्बद्ध रहे। उसके पश्चात् वे वर्षों 'दैनिक हिन्दुस्तान', नई दिल्ली से सम्बद्ध रहे। अजमेर के श्री जीतमलजी लूणिया गाधीवाद की ओर उन्मुख हुए और गाधीजी तथा नेहरूजी से सम्बन्धित अनेक प्रकाशनों का उन्होने सम्पादन किया। अजमेर के ही श्री मोहनराज भण्डारी 'दैनिक नवज्योति' के साथ ही साथ 'मीरा' आदि अनेक पत्रो से सम्बन्धित रहे। 'आजाद', अजमेर के सम्पादक घीसूलाल पाड्या ने समाजसुधार के कार्यों मे अपने पत्र के माध्यम से अधिक रुचि ली। श्री जीवनसिंह चौधरी ने भीलवाडा से 'दो-अक्टूबर' साप्ताहिक निकाला और अब भी उसे चला रहे हैं। 'जनता साप्ताहिक' से श्री यशवंतसिंह नाहर लम्बे अर्से तक सबद्ध रहे। जोधपुर मे 'ललकार' साप्ताहिक गुरुकुल प्रेस से श्री विजयमल कुंभट के संचालन मे निकलता था और उसके सम्पादक थे श्री शातिचन्द्र मेहता। आजकल यह पत्र श्री गोविन्दसिंह लोढा प्रकाशित कर रहे हैं और श्री मेहता चित्तौडगढ से 'ललकार' अलग से प्रकाशित कर रहे है। श्री पदमसिंह जैन का 'तरुण जैन' साप्ताहिक समाज सुधार की दिशा मे प्रमुखपत्र था। आजकल उनके पुत्र फतहसिंह जैन उसका सम्पादन कर रहे हैं। जोधपुर मे श्री श्रीपाल सिंघी 'अभयदूत-साप्ताहिक' और 'कृषिलोक' प्रकाशित कर रहे हैं। श्री माणक चोपड़ा 'जनगण दैनिक' निकाल रहे है और श्री शातिलाल सिंघी 'कन्ट्रोलर' के सम्पादक हैं। उदयपुर मे श्री कृष्णमोहन खाब्या 'कोलाहल' साप्ताहिक चला रहे हैं और श्री बहादुरसिंह सरूपरिया 'साधना' इन्फोरमेशन सर्विस चला रहे हैं। भारतीय लोक कला मण्डल के मासिक पत्र 'रगायन' का सम्पादन डॉ० महेन्द्र भानावत कर रहे हैं। यही से 'लोककला' अर्धवार्षिकी का भी प्रकाशन होता है जिसके सम्पादक हैं श्री देवीलाल सामर और डॉ० महेन्द्र भानावत। इनमे विशेष रूप से लोककलाओ पर अधिकृत सामग्री का प्रकाशन किया जाता है। चित्तौडगढ मे श्री रघुवीर जैन प्रात के अनेक समाचारपत्रों तथा 'समाचार भारती' के प्रतिनिधि हैं। वही से श्री गणेशलाल कूकडा 'उजाले की ओर' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन कर रहे हैं। भीलवाड़ा मे श्री जीवनसिंह बाफना 'प्राग्वाट' साप्ताहिक के सम्पादक-संचालक हैं। देवगढ से प्रकाशित 'शारदा' से श्री शकर जैन व श्री हीरालाल कटारिया सम्बद्ध रहे।

जयपुर मे जैन पत्रकारो की परम्परा बहुत पुरानी है। रायसाहब केसरीमल अजमेरा जैन ने अंग्रेजी-हिन्दी मे राजस्थान हेरल्ड प्रकाशित किया था। श्री सिद्धराज ढड्ढा, श्री जवाहरलाल जैन और श्री पूर्णचन्द्र जैन वर्षों 'लोकवाणी' व 'युगान्तर' से सम्बद्ध रहे। श्री गुलाबचन्द काला का 'जयभूमि'—साप्ताहिक अनेक पत्रकारो का दीक्षास्थल था। श्री प्रवीणचन्द्र छाबडा, श्री मिलापचंद डडिया आदि ने वही पत्रकारिता के पहले पाठ पढ़े। श्री कमलकिशोर जैन 'राष्ट्रदूत' मे कार्यरत रहे, सम्प्रति अभी राजस्थान सरकार मे जन सम्पर्क विभाग मे संयुक्त निदेशक हैं। श्री सोभागमल जैन

अभी भी 'राष्ट्रदूत' मे उपसम्पादक के पद पर हैं। श्री मोतीचद कोचर 'लोकवाणी' के सम्पादकीय विभाग मे रहे अब प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिया के वरिष्ठ सवाददाता हैं। श्री ईश्वरमल वाफना 'लोक जीवन' साप्ताहिक से सम्बन्धित रह हैं। श्री मिलापचद डडिया आजकल इकोनोमिक टाइम्स के सवाददाता ह। उन्होने 'समृद्धि' साप्ताहिक भी प्रकाशित किया था और एक फीचर सर्विस सिडिकेट इडियाना भी प्रारम्भ की थी। श्री महावीर प्रसाद जन 'फायनेन्सियल एक्सप्रेस के सवाददाता हैं। श्री राजमल साघी 'समाचार-भारती' के राजस्थान के ब्यूराप्रमुख हैं। श्री सरदार मल जन 'ग्रामराज साप्ताहिक के सम्पादक हैं। श्री निमलकुमार सुराणा 'युगचरण साप्ताहिक के सम्पादक हैं और श्री फतहचद जैन 'पूर्वोदय' के। श्री तेजसिह भीरीवाल 'वीकली स्टटमेन्ट' के सम्पादक हैं और श्री ज्ञानचद्र चोरडिया' 'अतमन की ओर' के सम्पादक। श्री धनपतिसिह टुकलिया आकाशवाणी मे उपसमाचार सम्पादक हैं और श्री एम आर सिघवी समाचार सम्पादक के पद पर। श्री सत्यप्रकाश जन आकाशवाणी पर विशेष सवाददाता हैं और बख्शी भागचद आकाशवाणी मे रिपाटरकम अनाउन्सर ह। 'राजस्थान पत्रिका' दनिक में श्री कपूरचद्र कुलिश, श्री विजय भडारी, श्री कानमल ढड्ढा कायरत हैं। श्री विद्याविनोद काला जवाहराता से सम्बन्धित एक मासिक पत्र प्रकाशित करत हैं। श्री भँवरमल सिंघी का नाम समाज सुधार से सम्बन्धित पत्रो के साथ जुडता आया है। श्री मनोहरलाल काला न जयपुर म ही 'उदय' का सम्पादन किया। महन्द्र जन वर्षा कथालोक का सपादन करते रहे हैं। 'परिवारिका' त्रमासिक की सम्पादिका सुश्री कमला जन थी। महन्द्र मधुप सप्रेषण, राजधम रोहतक से सम्बद्ध रह हैं। श्री जिनेन्द्रकुमार जन दैनिक 'यगलीडर' के सम्पादक हैं। श्री कैलाशच द्र वैद 'वीर अजु न' के प्रतिनिधि हैं। बल्लभ सन्देश' श्री रामरतन कोचर प्रकाशित कर रहे हैं। प्रतापचन्द पाटनी ने 'चित्र सवाद' निकाला था। शिवराज जैन 'युग की आवाज' के सम्पादक थे। 'ज्वाला' साप्ताहिक म श्री गुमानमल जन कायरत हैं। कोटा के श्री नाथूलाल जन, हीरालाल जन काग्रेस तथा प्रजामण्डल से सम्बन्धित पत्र पत्रिकाओ के प्रकाशन और प्रसारण से सम्बन्धित रह हैं। श्री वाघमल वाठिया ने कोटा से 'मशाल' और 'चोट्स' पत्र प्रकाशित किये। कानोड के श्री विपिन जारोली और श्री उदय जैन वसुमति' से सम्बद्ध रहे हैं। भीलवाडा के श्री सुभाप नाहर 'नारा' क सम्पादक थे। कोटा मे उम्मेदमल नाहटा ने 'स्वदेश' का प्रकाशन किया।

विलाडा के श्री विजयमोहन जन ने साप्ताहिक 'वीर लोंकाशाह' प्रकाशित किया जो आजकल बन्द है। श्री चिमनसिह लोढा और गजेन्द्र कुमार जन न व्यावर से वीर राजस्थान' साप्ताहिक और 'झलक' प्रकाशित किया था। वीकानेर म श्री नेमीचन्द आंचलिया अजमेर से प्रकाशित 'राजस्थान' स सम्बद्ध थे। बीकानेर मे राजा के विरुद्ध लेख लिखने पर उनको भीषण कारावास का दण्ड भोगना पडा। जोधपुर मे श्री लक्ष्मीमल्ल सिंघवी तथा जगदीश ललवाणी 'लहर' के सम्पादक रहे। अजमेर म श्री प्रकाश जन 'लहर' मासिक का सम्पादन कर रहे हैं। बीकानेर में श्री गुभू पटवा सप्ताहान्त साप्ताहिक प्रकाशित कर रहे हैं। श्री अगरचन्द नाहटा—'राजस्थान भारती' व अन्य कई पत्रो के सम्पादक मडल से सम्बद्ध रहे हैं। जोधपुर मे श्री नेमीचन्द्र जन 'भावुक' 'नव निर्माण, चेतन प्रहरी' 'साहित्य प्रवाह पत्रो से सम्बद्ध रहे हैं। सयुक्त राजस्थान समाचार वाहिना का भी उन्होंने श्रीगणेश किया था। आजकल वे नवभारत टाईम्स तथा हिन्दुस्तान समाचार के सवाददाता हैं। उदयपुर की सुश्री प्रमिला सरूपरिया 'तूलिका' पत्रिका से सम्बद्ध रही है। बोरून्दा क कोमल कोठारी 'वाणी

अव 'लोकसंस्कृति' के सम्पादक हैं। श्राप साहित्य श्रौर पत्रकारिता दोनों क्षेत्रों में समान रूप से जाने-माने विद्वान हैं। जोधपुर के प्रेम भडारी 'सहकार सवाद' तथा 'कविताएँ' के सम्पादक रहे हैं। बीकानेर में श्री ज्ञानप्रकाश जैन ने 'शुचि' का प्रकाशन किया था। मिश्रीमल जैन तरगित ने जोधपुर से 'चुलवुला' मासिक प्रकाशित किया था। कोटा की 'चिदम्वरा' के सम्पादक मडल में श्री श्रनूपचन्द जैन रहे है। उदयपुर के श्री संग्रार्मासह मुरड़िया ने 'टैगोर' मासिक प्रकाशित किया था। जोधपुर से माराक मेहता 'जलते दीप' दैनिक श्रौर साप्ताहिक प्रकाशित करते हैं। वही से देवराज मेहता ने 'नया राज्य' भी प्रकाशित किया। भीलवाड़ा के डालचन्द वोर्दिया ने 'ग्राम समाज' निकाला। उदयपुर मे भूपेन्द्रसिंह कोठारी ने 'युगदृष्टा' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। केकड़ी से सुगनचन्द जैन ने 'केकडी पत्रिका' निकाली। जोधपुर के रतनरूपचन्द भण्डारी 'ब्रेवेडो' श्रौर सुरेन्द्रसिंह लोढा 'जन प्रहरी' प्रकाशित कर रहे हैं। शिवगज के प्रकाश लोढा 'श्रर्बुद देव' प्रकाशित करते है। बाडमेर से मीठालाल चोपड़ा 'चोपड़ा साप्ताहिक' प्रकाशित कर रहे हैं। उदयपुर व कलकत्ता से श्रोकारलाल बोहरा 'विशाल राजस्थान' व 'विशाल भारत' का प्रकाशन कर रहे हैं। वालोतरा के मदनेश वाफना 'सीमात टाईम्स' के सम्पादक है। पाली से माणकचन्द राका ने 'हलकारा' प्रकाशित किया। उदयपुर की श्रीमती रूपकुमारी मेहता ने पाक्षिक 'गोरा वादल' निकाला। कोटा के क्रान्तिचन्द्र जैन कई दैनिक पत्रो के संवाददाता हैं। डूंगरपुर मे 'वागडवाणी' पाक्षिक श्री गम्भीरचन्द जैन प्रकाशित करते हैं। उगमलाल कोठारी 'नेता' तथा शान्तिलाल जैन 'उदयपुर टाईम्स' उदयपुर से प्रकाशित कर रहे है।

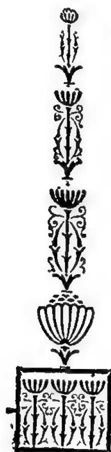
राजसमन्द के श्री देवेन्द्रकुमार कर्णावट 'संस्थान' से सम्वद्ध है। जोधपुर के श्री पदम मेहता ने 'जय जननी' साप्ताहिक प्रकाशित किया। कानोड के श्री विपिन जारोली 'काव्यांजलि' वार्षिक का प्रकाशन करते हैं तथा वे 'वीरभूमि' चित्तौडगढ़ से भी सम्बद्ध है। छोटी सादड़ी के श्री सूर्यभानु पोरवाल राजस्थान के अनेक पत्रो को सवाद भेजते रहते है।

जयपुर से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की श्रोर से 'जिनवाणी' मासिक का प्रकाशन, 'जैन दर्शन श्रौर साहित्य' को जनसाधारण तक पहुंचाने की दृष्टि से होता है। डॉ० नरेन्द्र भानावत वर्षो से इससे सम्वद्ध रहे है, वे वर्तमान में इसके मानद सम्पादक है श्रौर सम्पादक है श्रीमती (डॉ०) शाता भानावत। इसे साहित्यिक स्तर का पत्र वनाने मे इनका विशेप योग रहा है। इस मासिक पत्र के स्वाध्याय, सामायिक, तप, घ्यान, श्रावक घर्म, साधना श्रादि विशिष्ट विपयों पर महत्त्वपूर्ण विशेपाक प्रकाशित हो चुके है जिनमे श्रधिकारी विद्वानों श्रौर संतो ने इन विपयों का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत किया है। इसके सामान्य श्रंको मे साधु-सन्तो के चातुर्मास, स्वाध्याय सघो का विवरण व जैन समाज की सांस्कृतिक गतिविधियो के प्रमुख समाचार भी प्रकाशित किए जाते है।

जयपुर की राजस्थान जैन सभा पिछले १३ वर्पो से प्रति वर्प महावोर जयन्ती के अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन करती है। उसके संस्थापक सम्पादक प्रसिद्ध जैन विद्वान् पं० श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ थे। पिछले वर्पो मे इसके सम्पादन मे श्री प्रकाश पाटनी श्रादि ने भी सहयोग दिया। वर्तमान मे श्री भंवरलालजी पोल्याका उसका सम्पादन करते है। जयपुर के श्री पदमचन्द साह 'तीर्थंकर समाचार समिति' से सम्वद्ध है। राजसमन्द के श्री देवेन्द्र कुमार हिरन 'मेवाड़ कान्फ्रेंस' प्रकाशित करते है। श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ, जयपुर प्रतिवर्ष पर्युपण के अवसर पर

'मणिभद्र' प्रकाशित करता है। श्री महावीर नवयुवक मण्डल, जयपुर द्वारा गत तीन वर्षों से 'महावीर निर्वाण स्मारिका प्रकाशित होती रही है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि जैन पत्रो तथा पत्रकारो मे दो धारायें काम करती रही है। एक धारा के पत्र और पत्रकार मूलत जन-धम, दशन और समाज तथा जैन सस्कृति से ही सम्बद्ध है अथवा रहे हैं। दूसरी धारा से सम्बन्धित पत्र और पत्रकार राष्ट्रीय, राजनीतिक और सामाजिक परिवेश मे लोक जागरण, सास्कृतिक चेतना और समसामयिक प्रश्नो से जुडे हुए है। प्रथम धारा से सम्बद्ध पत्रो एव पत्रकारो ने जन समाज, उसकी धार्मिक प्रवृत्तियो, नतिक शिक्षण, आचरण शुद्धता, समाज सुधार आदि प्रश्नो पर तो अपनी प्रतिबद्धता दिखाई ही है, उन्होने जैन साहित्य और दशन को जन जन तक पहुचाने मे भी बहुमूल्य सहायता दी है। इन दोनो धाराओ के सम्मिलित प्रयास से राजस्थान के जनजीवन के परिष्कार मे जन पत्रो एव पत्रकारो ने जो योग दिया है, वह कभी भुलाया नही जा सकेगा।



३८ | आधुनिक जैन साहित्य की प्रवृत्तियाँ

श्री महावीर कोटिया
डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत

साहित्य की मूलभूत प्रेरणा और जैन साहित्य :

समाज, धर्म और साहित्य—तीनो परस्पराश्रित है। जिस प्रकार साहित्य को उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि से अलग करके नही समझा जा सकता, उसी प्रकार समाज विशेष की आध्यात्मिक विचारधारा को समझे बिना भी उसके साहित्य का अध्ययन अधूरा है। तात्पर्य यह कि साहित्य की भावभूमि गहरे रूप मे धार्मिक विचारधारा से प्रभावित रही है। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय भाषाओ मे जो विपुल जैन साहित्य उपलब्ध है, उस सबमे धार्मिक विचारधारा तथा मान्यताओ का प्रस्तुतिकरण मुख्य रहा है। चाहे काव्य-रूप कुछ भी रहा हो—पुराण, काव्य, नाटक, कथा-कहानी, चरित—सभी प्राथमिक रूप मे धार्मिक है। धार्मिक सिद्धान्तो के साये मे ही वहां कहानी विकसित हुई है, उस पर काव्य रचना हुई है और उसकी सीमा मे ही काव्य के विविध तत्वो का विकास हुआ है। जैन साहित्यिक कृतियो मे शान्त-रस-राजत्व इसी पृष्ठभूमि पर समझा जा सकता है। वहा सभी भावो का समापन निर्वेद मे हुआ है और सभी रसो की पूर्णाहुति शान्तरस मे।

हिन्दी जैन-साहित्य का प्रारम्भ और उसकी प्रवृत्तियां :

हिन्दी भाषा मे जैन-साहित्यिक रचनाएँ १२वी शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध से उपलब्ध है। तब से लेकर अब तक के जैन-साहित्य पर अगर हम दृष्टिपात करे तो प्राचीन साहित्य मे और इधर के कुछ वर्षो मे प्रकाशित साहित्य मे प्रवृति-मूलक अन्तर स्पष्ट दिखाई देते है। पुराने साहित्य की कतिपय विशेषताएँ हैं—(क) मुख्यत. प्रबन्ध काव्यात्मक होना। इनमे छोटी प्रबन्ध रचनाएँ—जो रास, फागु, वेलि, चउपई, चरित आदि नामो से अभिहित की गई है, अधिक महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक हैं। (ख) वृहदकाय छन्दबद्ध रचनाएँ, जो पुराण तथा चरित संज्ञक है, प्राय: सस्कृत ग्रन्थों के पद्यानुवाद है। (ग) पद्यानुवाद की तरह ही गद्यानुवाद की प्रवृत्ति भी प्राचीन जैन-साहित्य की एक प्रमुख प्रवृति रही है। (घ) जैन-कवियो द्वारा भक्तिपरक मुक्तक पदो की रचना तथा (ङ) तीर्थंकरो के भक्ति परक, लयात्मक, छन्दबद्ध पूजा-काव्य की रचना।

आधुनिक जैन-साहित्य :

परन्तु पिछले लगभग ५ दशक के जैन-साहित्य पर दृष्टिपात करें तो हमें इसके एक नये

स्वरूप के ही दर्शन होते हैं। जैन साहित्य का यह नया स्वरूप समानान्तर भारतीय-साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने में पूर्णत समर्थ है। अपनी प्राचीन धार्मिकता की परम्परा से जुडा होने पर भी आज यह साहित्यिक गुणो से अधिक सम्पन्न है। आधुनिक जैन साहित्यकार कथा सूत्रो के लिए तथा अपनी भावात्मक व वैचारिक प्रेरणा के लिए अपने परम्परागत साहित्य का ऋणी है, परन्तु अधुनातन साहित्यिक प्रवृत्तियो को अपनाते हुए वह अपने परम्परागत साहित्य को जन साधारण के निकट ले आया है। यह आज के जैन साहित्यकार की उपलब्धि है। इससे पहले का जैन साहित्य जैन धार्मिको की सकुचित सीमा में ही आबद्ध होकर रह गया था। उसका पठन-पाठन भी जैन धार्मिक स्थलो पर ही होता रहा है, जैनेतर समाज उसके विपुल दाय से अनभिज्ञ हो रहा परन्तु आज यह स्थिति बदल रही है। जैन-साहित्यकारो द्वारा उपन्यास, एकाकी, कहानी आदि के नये साचे में ढाला जाकर और नया नाम धारण करके आज यह साहित्य जनसाधारण में सुलभ हो रहा है और समसामयिक साहित्य के समानान्तर खडा हो रहा है। आज के जैन-साहित्य के लिए 'मात्र धार्मिक साहित्य' का लेबल बेमानी है, आज यह पहले साहित्य है, पीछे और कुछ।

जैन साहित्य की नई प्रवृत्तिया

इधर जो जैन साहित्य प्रकाशित हो रहा है, उसके आधार पर हम आधुनिक जैन साहित्य की कतिपय प्रवृत्तियो की ओर आसानी से सकेत कर सकते है। यहा पहले हम इन प्रवृत्तियो का उल्लेख कर रहे हैं और साथ ही लेख के परिशिष्ट भाग के रूप में आधुनिक साहित्य प्रकाशन की एक सूची (विधा के अनुसार) दे रहे हैं। यह सूची प्रवृत्तियो का स्वरूप स्पष्ट कराने की दृष्टि से है।

प्रमुख प्रवृत्तिया

(१) प्रबन्ध काव्य—महाकाव्य तथा खण्ड काव्यो की रचना—प्राचीन जैन साहित्य से कथानको का चयन कर—विशेषत जैन परम्परा में मान्य त्रिषष्ठि शलाका पुरुषो के पुराणो तथा चरित साहित्य में वर्णित कथानको को आधार रूपो में लेकर आधुनिक महाकाव्यो तथा खण्ड काव्यो की रचना की गई है।

(२) प्राचीन जैन कथाओ को आधुनिक कहानी के शिल्प में प्रस्तुत करना—आगमो चरित-ग्रन्थो, पुराणो आदि में इतस्तत उपलब्ध अनेक जैन कथाओ को आधुनिक कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। ऐसे बहुत से कहानी सकलन इधर प्रकाशित हुए हैं। जैन विचारधारा का आधार लेकर कुछ कहानिया स्वतन्त्र रूप से भी लिखी गई हैं।

(३) जैन आगमिक पौराणिक तथा ऐतिहासिक प्रसगो के आधार पर नाटको एव रग मचीय व रेडियो एकाकियो की रचना।

(४) प्रसिद्ध जैन आख्यानो, शलाका पुरुषो व ऐतिहासिक जैन विभूतियो को आधार बनाकर उपन्यास रचना। ऐसे कतिपय उपन्यास इधर के कुछ वर्षो में प्रकाशित हुए हैं।

(५) लघु उपन्यास लेखन की एक नई प्रवृत्ति पिछले कुछ ही वर्षों में हिन्दी साहित्य में प्रमुख रूप से उभर कर सामने आ रही है। पाकेट बुक प्रकाशन ने इस प्रवृत्ति को अधिक लोकप्रियता प्रदान की है। जैन साहित्य में भी यह प्रवृत्ति पनप रही है।

(६) जैन-सिद्धान्तो, जैन-तीर्थंकरो आदि से सम्बन्धित स्वतत्र मुक्तक कविताओं की रचना।

(७) जैन-सिद्धान्तो, जैन विचारधारा तथा दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाले तथा उनकी आधुनिक व्याख्या करने वाले निबन्धो की रचना। इस प्रकार का विपुल जैन-साहित्य पत्र-पत्रिकाओं तथा स्वतंत्र संग्रहो के रूप मे प्रकाशित हुआ है।

(८) प्राचीन जैन-साहित्य इसके पुरस्कर्ताओ तथा जैन साहित्यिक प्रवृत्तियों पर शोधपरक प्रबन्ध व अन्य समीक्षात्मक एवं परिचयात्मक पुस्तको का प्रणयन। इस प्रकार का साहित्य भी विपुल मात्रा मे प्रस्तुत किया गया है। इस प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलने का एक प्रमुख कारण विश्व-विद्यालयो मे जैन विषयों को लेकर डॉक्टरेट करने वाले अनेक विद्यार्थी है।

(९) प्रवचनात्मक साहित्य की एक नई प्रवृत्ति भी साहित्यिक क्षेत्र मे आजकल उभर रही है। विशिष्ट व अधिकारी विद्वानों के विषय विशेष पर भाषण आयोजित करना तथा उनका सकलन प्रकाशित करना एक आम बात हो गई है। आचार्य रजनीश का सम्पूर्ण साहित्य इसी कोटि का है। गांधीजी के साहित्य का भी एक बड़ा भाग इसी तरह का है। जैन साहित्य मे भी यह प्रवृत्ति प्रमुख रूप मे उभर रही है। साधु-सन्तो के प्रवचन सुसम्पादित होकर पत्र-पत्रिकाओं मे प्राय: प्रकाशित होते रहते हैं तथा उनके संकलन भी प्रकाशित हो रहे है। इसमे एक दृष्टि यह भी है कि जो बहुत से श्रद्धालु श्रावक किन्ही परिस्थितियोवश प्रत्यक्ष प्रवचनो का लाभ नहीं उठा पाते, वे इन्हें पढ़कर उसकी पूर्ति कर लेते हैं।

(१०) फिल्मी तर्ज पर गेय गीतो व भजनो की रचना की प्रवृत्ति। इस तरह के गीत तथा भजन मन्दिरो मे व धार्मिक समारोहो मे प्रचुरता से गाए जाने लगे हैं।

(११) आगम ग्रन्थो अन्य प्राचीन महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक ग्रन्थों, ग्रन्थ सूचियों, प्राचीन कवियो के पद संग्रहो तथा ग्रन्थावली-सम्पादन आदि की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृति भी आधुनिक जैन-साहित्य में परलक्षित हो रही है।

(१२) प्रभावशाली जैनाचार्यों एव तपस्वी मुनियों की जीवनियो का प्रकाशन भी आधुनिक जैन-साहित्य मे लोकप्रिय विधा के रूप मे स्थान पाने लगा है।

राजस्थान प्रदेश का आधुनिक जैन साहित्य :

ऊपर हमने आधुनिक हिन्दी जैन-साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों का सक्षेप मे सकेत किया है। ये प्रवृत्तियां आज के समग्र जैन-साहित्य का प्रतिनिधित्व करती है। सम्पूर्ण देश मे इस प्रकार का विपुल जैन-साहित्य पिछली कुछ दशाब्दियो में प्रकाशित हुआ है तथा हो रहा है। प्रस्तुत लेख की सीमा राजस्थान प्रदेश है, अतः यहां हम राजस्थान प्रदेश के आधुनिक जैन-साहित्य की एक सूची दे रहे हैं। इस सूची के निर्माण मे मुख्यत: निम्न तथ्यों को हमने ध्यान में रखा :है—(क) साहित्यकार, राजस्थान में पैदा हुआ हो अथवा रह रहा हो। (ख) कृति का प्रकाशन राजस्थान में हुआ हो। (ग) सूची मे केवल प्रकाशित ग्रन्थो (अप्रकाशित शोध प्रबन्धो को भी) का ही समावेश किया गया है। (घ) सूची-निर्माण उपर्युक्त प्रवृत्तियो के आधार पर है अर्थात् प्रत्येक प्रवृत्ति के शीर्षकान्तर्गत उस प्रवृत्ति से सम्बन्धित प्रमुख प्रकाशित ग्रन्थों का नामोल्लेख किया गया है।[1]

१. हमे जिन ग्रन्थो की सूचना व जानकारी प्राप्त हो सकी, उन्ही को इस सूची मे सम्मिलित किया जा सका है। बहुत से ग्रन्थो का नामोल्लेख सूचना के अभाव में रह गया है।

इस सूची के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि एक ओर जहां आधुनिक जैन साहित्य में सृजनात्मक ललित साहित्य, यथा-नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी एवं प्रबन्ध काव्यों की रचना तथा प्रकाशन सीमित मात्रा में हुआ है वहां सम्पादित साहित्य, प्रवचन साहित्य, निबन्ध आदि का प्रणयन तथा प्रकाशन पर्याप्त मात्रा में संभव हो सका है।

प्रमुख प्रकाशित ग्रंथों की विधापरक सूची

१ प्रबन्ध काव्य

आचार्य श्री तुलसी—भरत मुक्ति, अग्नि परीक्षा, आषाढभूति, श्री कालूयशोविलास। श्री गणेश मुनि—विश्व ज्योति महावीर। श्री नैनमल जैन—पवनांजना। मरुधर केसरी श्री मिश्री मल जी महाराज—पाण्डव यशोरसायन, संकल्प विजय, मरुधर केसरी ग्रंथावली भाग १-२। श्री मोतीलाल मार्तण्ड—ऋषभ चरितसार। श्री चन्दन मुनि—रयणवाल कहा (प्राकृत)। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—जैन आचार्य चरितावली।

२ कविता-संग्रह

श्री गणेश मुनि शास्त्री—वाणी-वीणा महक उठा कवि सम्मेलन, सुबह के भूले, गीतों का मधुवन, संगीत रश्मि, गीत झंकार। डॉ० नरेन्द्र भानावत—माटी कुंकुम, आदमी मोहर और कुर्सी, श्री कन्हैयालाल सेठिया—मेरा युग दीपकिरण, प्रतिबिम्ब, प्रणाम, मम, मीझर कूकू। आचार्य श्री तुलसी—श्री कालू उपदेश वाटिका। मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल'—श्रमण संस्कृति के ढाई हजार स्वर, प्यासे स्वर, मन के मोती, प्रकाश के पथ पर, फूल और अंगारे, विधि के खेल। मुनि श्री बुद्धमल जी—मन्थन, आवर्त। मुनि श्री मोहनलाल शार्दूल—पथ के गीत, आदमी की राह, मुक्तधारा। मुनि मोहन 'सुजान'—प्यास और दर्पण। मुनि रूपचन्द—कला अकला, अर्द्ध विराम खुले आकाश में, गुलदस्ता, इन्द्रधनुष। मुनि मोहनलाल 'आमेट'—तथ्य और कथ्य। मुनि चन्दनमल—मञ्जूषा। साध्वी श्री कनक प्रभा—सरगम। साध्वी श्री मञ्जुला—चेहरा एक हजारों दर्पण। साध्वी श्री संघमित्रा—साक्षी है शब्दों की, बूंद बन गई गंगा। साध्वी सुमन श्री—सांसों का अनुवाद, समय का चौराहा। मुनि श्री नथमल—फूल और अंगारे। मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीमल जी—उपदेश बावनी, बुध विलास। श्री केवल मुनि—गीत गुञ्जार, मेरे गीत, मधुर गीत, गीतावली, गीत लहरियां गीत सौरभ। श्री प्रकाश जैन—अन्तर्यात्रा। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—गजेन्द्र मुक्तावली भाग १-२। मुनि दुलीचन्द—खुली आवाज, मंगलमुक्ता। मुनि मधुकर—गुंजन। मुनि वत्सराज—आंख और पांख।

३ उपन्यास

श्री महावीर कोटिया—आत्मजयी, कूणिक (दोनों लघु-उपन्यास)। श्री ज्ञान भारिल्ल—तरंगवती, सूनी और सिंहासन, भटकते-भटकते। आचार्य अमृतकुमार—कपिल। कमला जैन 'जीजी'—अग्नि पथ। डा० प्रेम सुमन जैन—चितेरों के महावीर।

४ कहानी संग्रह, प्रेरक प्रसंग एवं गद्य काव्य

श्री गणेश मुनि शास्त्री—प्रेरणा के बिन्दु, जीवन के अमृत कण। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—धार्मिक कहानियां। डा० नरेन्द्र भानावत—कुछ मणियां कुछ पत्थर। श्री देवेन्द्र

मुनि—खिलती कलियां . मुस्कराते फूल, प्रतिध्वनि, फूल और पराग, बोलते चित्र, बुद्धि के चमत्कार , अमिट रेखाएं, महकते फूल। मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी प्रथम—जैन कहानियां भाग १ से २५। श्री मधुकर मुनि—जैन कथामाला भाग १-६। श्री भगवती मुनि निर्मल—लो कहानी सुनो, लो कथा कह दूं। मुनि श्री छत्रमल—कथा कल्पतरु। श्री रमेश मुनि—प्रताप कथा कौमुदी भाग १-४, महावीर के पावन प्रसंग। मुनि श्री महेन्द्र कुमारजी 'कमल'—भगवान् महावीर के प्रेरक संस्मरण (पद्यबद्ध)। श्री महावीर कोटिया—बदलते क्षण। श्री शान्तिचन्द्र मेहता—सौंदर्य-दर्शन। श्री चन्दन मुनि—अन्तर्ध्वनि। मुनि श्री चन्द्र 'कमल'—पद-चिह्न, रश्मियां। मुनि बुधमल्ल—आंखों ने कहा।

५. नाटक व एकांकी :

डॉ० नरेन्द्र भानावत—विष से अमृत की ओर। महेन्द्र जैन—महासती चन्दन बाला।

६. जीवनी साहित्य :

श्री शोभाचन्द्र भारिल्ल, डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री—पूज्य श्री जवाहरलाल जी महा० की जीवनी, सोलह सती। प० रत्न मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी महाराज—मुक्ति के पथ पर, (सुजानमलजी महा० सा० की जीवनी), तपस्वी मुनि श्री बालचन्द्र जी महाराज। पं० दुखमोचन झा—अमरता का पुजारी (आचार्य श्री शोभाचन्द जी महा० की जीवनी), आदर्श विभूतियां। श्री हीरा मुनि—जय शोभाचन्द। श्री राजेन्द्र मुनि—रा० केसरी पुष्कर मुनि जी महाराज। आर्या प्रेमकुंवर—महासती श्री जसकुंवर: एक विराट व्यक्तित्व। मुनि समन्तभद्र—विश्व चेतना के मनस्वी संत, (मुनि श्री सुशील कुमार जी की जीवनी)। श्री मधुकर मुनि— ज्योतिर्धर जय। मुनि नथमल—आचार्य भिक्षु : दी मैन एण्ड हिज फिलॉसफी, आचार्य तुलसी : लाइफ एण्ड फिलॉसफी। श्री देवकुमार जैन—पूज्य गणेशाचार्य जीवन-चरित्र। श्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटा—युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि। मुनि श्री 'महेन्द्रकुमारजी 'कमल'—दिव्य तपोवन (तपस्वी श्री वेणीचन्द्र जी म० की जीवनी)।

७ निबन्ध, समालोचना, शोध प्रबन्ध आदि :

आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग १-२। श्री गणेश मुनि शास्त्री-आधुनिक विज्ञान और अहिंसा, अहिंसा की बोलती मीनारें, इन्द्रभूति गौतम-एक अनुशीलन। डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल—तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पं० टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व। डॉ० नरेन्द्र भानावत—भगवान् महावीर : आधुनिक संदर्भ मे (सं०), साहित्य के त्रिकोण, राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तियां, राजस्थानी वेलि साहित्य। श्री देवेन्द्र मुनि—भगवान् महावीर : एक अनुशीलन, ऋषभदेव—एक परिशीलन, भगवान पार्श्व—एक समीक्षात्मक अध्ययन, भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्री कृष्ण, धर्म और दर्शन, साहित्य और संस्कृति, संस्कृति के अंचल मे, चिन्तन की चांदनी, अनुभूति के आलोक मे, विचार रश्मियां, विचार और अनुभूतियां। श्री पुष्कर मुनि—ओंकार : एक अनुचिन्तन। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—महाकवि दौलतराम कासलीवाल—व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, शाकम्भरी प्रदेश के सांस्कृतिक विकास मे जैन धर्म का योगदान, जैन ग्रंथ भण्डार्स इन राजस्थान। मुनि श्री नथमल—जैन दर्शन : मनन और मीमांसा, अहिंसा तत्त्व-दर्शन, उत्तराध्ययन एवं दशवैकालिक का समीक्षात्मक अध्ययन, मैं : मेरा मन . मेरी

शांति, चेतना का ऊर्ध्वारोहण, भिक्षु विचार दर्शन, श्रमण महावीर, सत्य की खोज अनेकान्त के आलोक में। श्री उमेश मुनि 'अणु'—श्रीमद् धर्मदास जी म० और उनकी मालव शिष्य परम्पराएँ। डॉ० मोहनलाल मेहता—जैन धर्म दर्शन, जैन आचार जैन साईकोलॉजी, जैन कल्चर, जैन फिलासफी, जैन साहित्य का बृहद इतिहास भाग २-३।

मुनि विद्यानन्द—पिच्छि कमण्डलु। मुनि दुलहराज—लॉर्ड महावीर लाइफ एण्ड टीचिंग, एपोटोम ऑफ जैनिज्म। मुनि शुभकरण—उडीसा में जैन धर्म। पं० उदय जैन—वीर विभूति। डॉ० शा ता भानावत—महावीर री ओलखाण (राजस्थानी भाषा में) मुनि श्री नगराज—जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान, आगम और त्रिपिटक, एक अनुशीलन, अहिंसा विवेक, महावीर और बुद्ध की समसामयिकता, अणुव्रत जीवन दर्शन, अहिंसा-पर्यवेक्षण। मुनि बुद्धमल—तेरापंथ का इतिहास, श्रमण संस्कृति के अञ्चल में। आचार्य श्री तुलसी—धर्म एक कसौटी, एक रेखा मेरा धर्म केन्द्र और परिधि, अणुव्रत के सन्दर्भ में भगवान महावीर। श्री श्रीचंद रामपुरिया—तीर्थंकर वर्द्धमान, अर्हत् अरिष्टनेमि और वासुदेव कृष्ण। डॉ० के० सी० जैन—लार्ड महावीर एण्ड हिज टाइम्स, जैनिज्म इन राजस्थान। श्री चांदमल सीपाणी—इतिहास की खोज। श्री गोपीचन्द धाडीवाल—धर्म और संसार का स्वरूप, अध्यात्म विज्ञान योग प्रवेशिका। पं० भद्रंकर विजय जी गणि—परमेष्ठि नमस्कार। मुनि कल्याण विजय जी—वीर निर्वाण संवत् और जैन-काल-गणना, भगवान् महावीर। पं० महेन्द्र कुमार—जैन दर्शन। मुनि सुखलाल—अणुव्रत की कसौटी पर। श्री उदय मुनि—प्रिय निबन्धोदय भाग १-२, आगमों में तीर्थंकर चरित्र। श्रीमती उषा बापना—संत कवि जयमल्ल व्यक्तित्व और कृतित्व। पं० चैनसुखदास—जैन दर्शनसार, भावना विवेक। पं० इन्द्रलाल शास्त्री—धर्म-सोपान, अहिंसा तत्त्व, तत्त्वालोक, आत्म वैभव। मुनि श्री कान्तिसागर—खण्डहरों का वैभव, खोज की पगडंडियां। डॉ० नेमिचंद शास्त्री—हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन भाग १–२, आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन, भारतीय ज्योतिष, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग १–४। श्री अगरचंद नाहटा—प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा, राजस्थानी साहित्य की गौरवमयी परम्परा। डा० कमलचंद सोगानी—जैन इथिक्स। महोपाध्याय विनयसागर—खरतर गच्छ का इतिहास। डॉ० प्रेमसुमन जैन—कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन। डा० हरीश—आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य। डॉ० बी० एल० जैन—सकलकीर्ति-एक अध्ययन।

डॉ० श्यामशंकर दीक्षित—तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य। डॉ० शांता जैन—जैन मिस्टीसिज्म। डॉ० छगनलाल शास्त्री-भिक्षु साहित्य का समालोचनात्मक अध्ययन। डा० लालचंद जैन—ब्रजभाषा के जैन प्रबन्ध काव्य। डॉ० मदन गोपाल शर्मा—सधारु कृत 'प्रद्युम्न चरित' काव्य के सन्दर्भ में प्रद्युम्न चरित काव्य परम्परा का तुलनात्मक और समीक्षात्मक अध्ययन। डॉ० सत्यनारायण स्वामी—महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ। डा० ब्रजनारायण पुरोहित—तेरापन्थ सम्प्रदाय का राजस्थानी और हिन्दी साहित्य। डॉ० ईश्वरप्रसाद शर्मा—महाकवि जिनहर्ष एक अनुशीलन। कु० मधु लता बाकीवाला—जयपुर क्षेत्रीय जैन राम-काव्य। कु० स्नेहलता माथुर—संत कवि रायचंद्र की पच्चीसी सतक रचनाएँ। श्रीमती कुसुम पाटनी—महाकवि दौलतराम व्यक्तित्व और कृतित्व। कु० मधु माथुर—संतकवि तिलोक ऋषि व्यक्तित्व और कृतित्व।

८. प्रवचन साहित्य :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज—जवाहर किरणावली भाग १-३५, जवाहर विचार-सार। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—आध्यात्मिक आलोक भाग १ से ४, आध्यात्मिक साधना भाग १-२, प्रार्थना प्रवचन। श्री पुष्कर मुनि—जिन्दगी की मुस्कान, साधना का राज मार्ग, रामराज, मिनख पणारो मोल। आचार्य श्री तुलसी—प्रवचन डायरी भाग १-४। श्री मधुकर मुनि—साधना के सूत्र, अन्तर की ओर भाग १-२। महासती श्री उमराव कुँवर जी,-'अर्चना' अर्चना और आलोक। साध्वी श्री मैना सुन्दरी जी—दुर्लभ अंग चतुष्ट्य। आचार्य श्री गणेशी लाल जी महाराज—जैन संस्कृति का राजमार्ग, आत्मदर्शन। आचार्य श्री नानालाल जी महाराज—पावस प्रवचनभाग १-४, ताप औरतप, समता-दर्शन और व्यवहार। मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीलाल जी—जैन धर्म में तप: स्वरूप और विश्लेषण, प्रवचन प्रभा, प्रवचन सुधा, धवलज्ञान धारा, साधना के पथ पर, जीवन ज्योति। जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमल जी जैन दिवाकर दिव्य ज्योति भाग १-२१। श्री समरथमल जी महाराज—समर्थ समाधान भाग १-२। श्री हीरालाल जी म० हीरक प्रवचन भाग १-१०।

९. प्राचीन साहित्य सम्बन्धी सम्पादित ग्रथ.

मुनि श्री जिनविजय जी—विविध गच्छीय पट्टावली सग्रह, खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह। पं० मुनि श्री लक्ष्मीचंद जी महाराज—सुजान पद सुमन वाटिका, श्री रत्नचद्र पद मुक्तावली। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—पट्टावली प्रबन्ध सग्रह। डॉ० नरेन्द्र भानावत—आचार्य श्री विनयचद्र ज्ञान भण्डार ग्रन्थ सूची भाग १, राजस्थानी गद्य : विकास और प्रकाश। डॉ० कस्तूरचद कासलीवाल, अनूपचंद न्यायतीर्थ—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग १-५। डॉ० कासलीवाल—प्रशस्ति-सग्रह, हिन्दी पद सग्रह। प० चैनसुखदास न्यायतीर्थ—प्रद्युम्न चरित, अर्हत् प्रवचन। डॉ० माता प्रसाद गुप्त, डॉ० कासलीवाल—जिणदत्त चरित। श्री अगरचद नाहटा—बीकानेर जैन लेख संग्रह, समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि, सीताराम चौपई, ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह, कविवर धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली, श्री ज्ञानसार ग्रन्थावली, श्री जिनहर्ष ग्रन्थावली। भवरलाल नाहटा—समयसुन्दर रासत्रय, जिनराज सूरि कृति कुसुमाञ्जलि, विनयचद्र कृति कुसुमाञ्जलि। मुनि दुलहराज—भरत बाहुबलि महाकाव्य। मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज—कर्म ग्रन्थ। श्री मधुकर मुनि—जयवाणी। श्रीचद्र रामपुरिया—तेरापन्थ आचार्य चरितावली भाग १-२, भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर भाग १-२, नव पदार्थ। मुनि कल्याण विजय जी—पट्टावली पराग संग्रह, तपागच्छ पट्टावली। डॉ० प्रेमसुमन जैन—प्राकृत चयनिका, अपभ्रंश काव्य धारा। महोपाध्याय विनयसागर—प्रतिष्ठा लेख सग्रह। श्री मोहनलाल बांठिया, श्रीचद चोरडिया—लेश्याकोश, क्रियाकोश। श्री धन मुनि 'प्रथम'—वक्तृत्व-कला के बीज, भाग १ से ९। श्री प्रेमराज बोगावत, प्रेम भंडारी—भक्तामर, रत्नाकर पच्चीसी व सामायिक पाठ।

•••



प्रशासन और राजनीति

चर्न्द ।

३९ | देशी रियासतो के शासन-प्रबन्ध मे जैनियो का सैनिक व राजनीतिक योगदान

●

डॉ० देव कोठारी

पृष्ठभूमि

जनधम मूलत अहिंसावादी होने क कारण उसके अनुयायियो पर प्राय यह आक्षेप लगाया जाता रहा है कि उनम सनिक और राजनीतिक योग्यता का अभाव है और यह एक धम भीरु जाति है, जो तलवार उठा कर शौय प्रदर्शित नही कर सकती है एव कूटनीतिक दाँव-पचो द्वारा राष्ट्र रक्षा व उसके निमाण के पुनीत काय म हिस्सा नही बटा सकती है। व्यापार वाणिज्य के माध्यम से धन अजित करन के सन्दभ म ही इस जाति का प्राय मूल्याकन किया जाता रहा है, किन्तु वीर प्रसविनी राजस्थान वसुन्धरा के स्वर्णिम इतिहास क कई ऐसे कहे अनकहे पृष्ठ हैं, जिन पर इतिहासज्ञो की दृष्टि नही पडी है फलस्वरूप जनधम के अनुयायी वीरो व नरपुगवो के बाहुबल कुशाग्र बुद्धि विवक, कूट नीतिक दूरदर्शिता एव सवस्व न्योछावर करने की उनकी त्यागमय लालसा का इतिहास म उचित तथा प्रामाणिक स्थान नही मिल पाया है।

राजस्थान के मध्ययुगीन इतिहास म जन धर्मानुयायी अनेक ऐस पराक्रमी पुरुषो क सन्दभ प्राप्त होत है, जिन्होन अनेक युद्धो का योग्यतापूवक नतृत्व या सचालन ही नही किया, अपितु अनेक राज्यो की स्थापना, सुरक्षा व स्थायित्व म मदद की तथा अशाति, विपत्ति और अस्थिरता क समय म कई प्रसिद्ध राज्यो एव उनके तत्कालीन शासको की सत्ता को अपन प्राणो की आहुतिया देकर भी कायम रखा। एस समय म अगर य चाहते तो उस समय की परिस्थितियो का लाभ उठाकर किसी भी राज्य क स्वय स्वामी हो सकत थे और अपन वश या नाम स नवीन राज्यो की स्थापना कर सकत थ, लकिन राष्ट्र-रक्षाथ उन्होन कभी विश्वासघात नही किया। अपनी बुद्धि और बाहुबल क द्वारा उन्होन जो कुछ किया, अपन स्वामी या राज्य की रक्षाथ किया। तात्पय यह कि स्वामी भक्ति, राजनीति, कूटनीति, अथनीति युद्धनीति आदि क द्वारा इन जन वीरो न तत्कालीन राज्य प्रबन्ध व इतिहास निर्माण म अपनी सम्पूण योग्यता व कुशलता क द्वारा अपूव तथा महत्त्वपूण योगदान दिया। जिसस प्रभावित होकर समकालीन व परवर्ती राजा महाराजाओ न उन्हे तथा उनक परिवार को खास रुक्को व ताम्रपत्रो क द्वारा गाव जमीन आदि भेंट की, उन्हे रक्षक क रूप म सम्बोधित किया तथा उनकी सेवाओ का मुक्तकठ स प्रशसा की।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व राजस्थान की देशी रियासतो विशेषकर मेवाड़ और मारवाड़ (अर्थात् जोधपुर व बीकानेर) राज्यों के राज्य प्रबन्ध में जैन मतावलम्बियो के सैनिक व राजनीतिक योगदान की विपुल सामग्री रुक्को, ताम्रपत्रो, पट्टे-परवानो, शिलालेखो, काव्य ग्रन्थो, गीतो, वंशावलियो, ख्यातो, वातो तथा भाटो की वहियो मे विद्यमान है, जिसका अगर शोधपरक व तटस्थ दृष्टि से मूल्याकन प्रस्तुत किया जाये तो मेवाड, जोधपुर, बीकानेर तथा अन्य राज्यो के इतिहास की अनेक लुप्त कडिया जुड सकती हैं।

इनकी इन्ही योग्यताओ से प्रभावित होकर मेवाड़ व मारवाड ही नही राजस्थान के अन्य राज्यो के तत्कालीन शासको ने जैनियो को सर्वोच्च पदो पर आरूढ किया तथा राज्य प्रबन्ध की दैनन्दिन गतिविधियो से वे निश्चिंत होकर रहे। इनके प्रति शासको के अगाध विश्वास का अनुमान इन्हीं तथ्यो से लगाया जा सकता है कि जैनियो को पीढी-दर-पीढी अपने पदो पर आसीन रखा, खजाने की चाबिया उनके पास रहने दी, सामरिक महत्त्व के किलो व गढो को उनके नेतृत्व मे सौंपा, सेनानायको के पद पर नियुक्त कर शत्रु के विरुद्ध सघर्ष मे सैन्य सचालन का दायित्व दिया, सुलह व सन्धि वार्ताओ तथा राज-काज के अन्य छोटे-मोटे कामो मे भी जैन समुदाय की सेवाएं वडे पैमाने पर प्राप्त की।

इन सेवाओ मे जैन समुदाय की विभिन्न जातियो का योगदान रहा है, जिनमे मेहता, कावडिया, सिंघी-सिंघवी, भण्डारी, कोठारी, वच्छावत, मुहणोत, लोढा, वाफना, गाधी, बोलिया, गलूडिया, कोचर मेहता, वेद मेहता, कटारिया मेहता, राखेचा, समदड़िया मूथा, आदि प्रमुख है।

शासन व्यवस्था के विभिन्न पद :

राज्य प्रबन्ध के सुचारु व कुशल सचालन के लिये मेवाड़ व मारवाड मे शासन-व्यवस्था को विभिन्न पदो के अधीन विभाजित कर रखा था, यथा—

(१) प्रधान	(२) दीवान	(३) फौजवक्शी
(४) किलेदार	(५) मुत्सद्दी	(६) अन्य

इन सव मे प्रधान का पद सर्वोच्च था। आंगल भाषा मे प्रधान को Prime-minister कह सकते हैं। ये राजा या महाराजा के प्रति सीधा उत्तरदायी तथा राजा के वाद राज्य का कर्त्ता-धर्त्ता होता था। इसलिये अत्यन्त विश्वासपात्र, बुद्धिमान, सतुलित, गभीर, विवेकशील, चतुर, नीति-निपुण एवं दूरदर्शी व्यक्ति को ही इस पद पर नियुक्त किया जाता था किन्तु राजा की इच्छा के अनुसार इसे नियुक्ति के वाद हटाया भी जा सकता था। ऐसी स्थिति मे जैनियो का इस पद पर नियुक्त होना उनकी विलक्षण प्रतिभा का ही परिचायक था।

दीवान का पद प्रधान से नीचे या अधीन होता था। दीवान को आंग्ल भाषा मे Minister के नाम पर से पुकार सकते हैं। प्रधान का पद सम्पूर्ण राज्य मे एक ही होता था, जवकि दीवान विभिन्न कार्यों व विभागो के अनुसार एकाधिक हो सकते थे। ये भी शासक के प्रति ही उत्तरदायी होते थे, किन्तु इनका सीधा सम्वन्ध प्रधान से होता था। कालान्तर मे धीरे-धीरे प्रधान व दीवान की उपर्युक्त परम्परा समाप्त हो गई और प्रधान व दीवान का पद एक ही माना जाने लगा अर्थात् प्रधान व दीवान शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची हो गये।

फौजबक्शी को Commander in Chief या सेनापति अथवा सनानायक कहा जा सकता है। इस पद के अधीन सेना का भार रहता था। यत्र तत्र युद्धो म सेना का सचालन, राज्य तथा प्रजा की सुरक्षा करना इनका मुख्य काय था।

किलेदार किसी गढ या किले (Fort) के प्रभारी (Incharge) होते थे। किले की सुरक्षा एव सम्पूण प्रबन्ध व्यवस्था करना किलेदार का प्रमुख काय होता था। किले व किले के निवासियो की सुरक्षा के लिये इनके पास भी सेना होती थी। अत्य त विश्वासपात्र, रणकुशल एव अनुभवी व्यक्ति को ही किलेदारी का दायित्व दिया जाता था।

मुतसद्दी एक प्रकार से प्रशासनिक व्यक्ति होता था, जिसमे हिसाब किताब, कानून-कायदे, कार्यालयी काय की दक्षता एव सनिक गुणो का होना आवश्यक था।

अन्य प्रकार के पद व थे, जिनम हाकिम, अहलकार, कामदार आदि सम्मिलित थे। समस्त पदो पर नियुक्ति वियुक्ति समकालीन शासक क विश्वास पर निभर होती थी।

सैनिक व राजनीतिक योगदान

उपयुक्त समस्त पदो पर जनियो का प्रभुत्व सर्वाधिक था, यह राजस्थान के इतिहास व इतिहास से सम्बन्धित सामग्री के विवरण स स्पष्ट है। इस निबन्ध म मेवाड (चित्तौडगढ-उदयपुर) तथा मारवाड (जोधपुर-बीकानेर) के विशेष सन्दभ के साथ अन्य राज्यो मे इन्ही जन प्रधानो, दीवानो, फौजबक्शियो, किलेदारो व मुतसद्दियो द्वारा राज्य प्रबन्ध म उनके द्वारा किय गय सनिक व राजनीतिक योगदान का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। ऐसे महापुरुषो की अब तक ज्ञात सख्या लगभग दो सौ है, अत सबका वृत्तान्त यहा प्रस्तुत करना सभव नही है इसलिय कतिपय प्रमुख चरित्रो के सक्षिप्त विवरण के साथ साथ अन्यो की राज्यानुसार मात्र सकेतात्मक सूचना ही दी जा रही है—

(क) मेवाड राज्य

राजस्थान का दक्षिणी भाग अर्थात् उदयपुर चित्तौडगढ व भीलवाडा जिल का क्षेत्र मेवाड के नाम से अभिहित किया जाता है। मेवाड का प्राचीन इतिवृत्त तथा उसकी शौय गाथाए इतिहास प्रसिद्ध हैं। पहले मेवाड की राजधानी चित्तौडगढ थी, किन्तु महाराणा उदयसिंह (वि० स० १५६४-१६२८) के समय मे उदयपुर नगर बसाकर इसे मेवाड की राजधानी बनाया गया तब से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक उदयपुर ही मेवाड की राजधानी रहा। इस मेवाड के राज्य प्रबन्ध म जनियो के सैनिक व राजनीतिक योगदान का महत्त्वपूण विवरण उपलब्ध होता है यथा—

जालसी मेहता मेवाड क इतिहास म जालसी महता का उल्लेख विक्रम की चौदहवी शताब्दी के प्रारम्भ म मेवाड उद्धारक एव अनन्य स्वामीभक्त के रूप म मिलता है। उस समय मेवाड पर अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार था और उसन जालोर क मालदेव सोनगरा को चित्तौड दुग सुपुद कर रखा था।[1] हमीर तब सिसोद गाव का स्वामी था। उसन अपन पैतृक दुग चित्तौड को पुन अपने अधिकार म करने क उद्देश्य स मालदेव क अधीनस्थ इलाको को लूटना एव उजाडना आरम्भ किया। अल्लाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् जब दिल्ली सल्तनत की दशा बिगडने लगी और उधर स किसी

1 ओझा–राजपूताने का इतिहास (उदयपुर खण्ड), प्रथम भाग, पृ० ६६६

प्रकार की मदद की आशा न देखी तो मालदेव ने अपनी पुत्री का विवाह हमीर से कर दिया,[१] ताकि वह उसके अधीन प्रदेश को लूटना व उजाड़ना बन्द करदे। नव-विवाहिता पत्नी ने हमीर को सलाह दी कि अपने पिता से इस अवसर पर वह किसी तरह का धन आदि नहीं मागे अपितु उसके दूरदर्शी कामदार जालसी मेहता को माग ले, जिससे उसकी मनोकामना पूरी हो सकती है। हमीर ने ऐसा ही किया और मालदेव से जालसी को माग लिया।[२]

कुछ समय पश्चात् हमीर की इस रानी से क्षेत्रसिंह (जो बाद मे महाराणा खेता कहलाया) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिषियो की सलाह के अनुसार चित्तौड़ के क्षेत्रपाल की पूजा (बोलवा) के निमित्त महाराणी को अपने पुत्र क्षेत्रसिंह के साथ चित्तौड जाना पड़ा।[३] जालसी मेहता भी उस समय साथ मे था। इस समय तक मालदेव की मृत्यु हो चुकी थी और उसका पुत्र जेसा सोनगरा चित्तौड़ का स्वामी था। जालसी ने यह उपयुक्त अवसर देखा, उसने कूटनीति से काम लेकर लोगों को जेसा सोनगरा के विरुद्ध उभारना आरभ किया, जब जालसी को विश्वास हो गया, वातावरण हमीर के पक्ष मे हो गया है, एव स्थिति अनुकूल है तो उसने हमीर को पूरी तैयारी के साथ अपने विश्वस्त सैनिकों को लेकर चित्तौड आने का गुप्त सदेश भेजा। योजना के अनुसार हमीर चित्तौड़ पहुचा। किले का दरवाजा खोल दिया गया एव घमासान युद्ध के बाद चित्तौड़ पर हमीर का अधिकार हो गया।[४] जालसी महता की इस राजनीतिक दूरदर्शिता एव सैनिक कुशलता से प्रसन्न होकर हमीर ने उसे अच्छी जागीर दी तथा उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।[५] इस प्रकार जालसी के सहयोग से हमीर वि. सं. १३८३ मे मेवाड़ का महाराणा बना और उसके बाद स्वतन्त्रता प्राप्ति तक मेवाड पर इसी सिसोदिया वंश का आधिपत्य रहा, जिसमे महाराणा कुभा, सागा, प्रताप और राजसिंह जैसे शक्तिशाली व इतिहास प्रसिद्ध शासक हुए।

भारमल : कावड़िया भारमल व उसके पूर्वज अलवर के रहने वाले थे। महाराणा सांगा (वि स १५६६–१५८४) ने भारमल की सैनिक योग्यता तथा राजनीतिक दूरदर्शिता से प्रसन्न होकर तत्कालीन सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रणथम्भोर के किले का किलेदार नियुक्त किया।[६] बाद मे जब हाडा सूरजमल (बूदीवाले) को रणथम्भोर की किलेदारी मिली,[७] उस समय भी भारमल के हाथ मे एतवारी नौकरी और किले का कुल कारोबार रहा।[८] महाराणा उदयसिंह (वि. सं० १५९४–१६२८)

---

१. ओझा–राजपूताने का इतिहास (उदयपुर खण्ड), प्रथम भाग, पृ० ५०३

२. (i) कर्नल जेम्स टॉड–एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान, हिन्दी सस्करण, पृ० १५९
   (ii) कविराजा श्यामलदासकृत 'वीर विनोद' मे (प्रथम भाग पृ० २९५ पर) जालसी का नाम मौजीराम मेहता दिया गया है, जो अशुद्ध है। (द्रष्टव्य–ओझा–राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग पृ० ५०६)

३ बाबू रामनारायण दूगड–मेवाड का इतिहास, प्रकरण चौथा, पृ० ६८

४ कर्नल टॉड कृत एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान, (हिन्दी) पृ० १५९–६०

५. ओझा राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० १३२४

६ वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृ० २५२

७. ओझा–राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ६७२ एव १३०२

८ वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृ० २५२

ने भारमल की सेवाग्रो से प्रसन्न होकर वि स १६१० म अपना प्रमुख सामन्त बनाकर एक लाख का पट्टा दिया था।[1] इस प्रकार एक किलेदार के पद से प्रमुख साम त के पद पर पहुँचना निश्चय ही भारमल की स्वामिभक्ति एव योग्यता का परिचायक था।

भामाशाह एव ताराचन्द ये दोनो भाई भारमल के पुत्र थे। हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध मे महाराणा प्रताप (वि स १६२८–५३) की सेना के हरावल के दाहिने भाग की सेना का नेतृत्व करत हुए लडे थे एव अकबर की सेना को शिकस्त दी थी।[2] भामाशाह की राजनतिक एव सनिक योग्यता को देख कर महाराणा प्रताप ने उसे अपना प्रधान बनाया। इसने महाराणा प्रताप सैनिक टुकडियो का नेतृत्व करते हुए गुजरात मालवा मालपुरा आदि इलाको पर आक्रमण किये एव लूटपाट कर प्रताप को आर्थिक सहायता पहुँचाई।[3] लूटपाट से प्राप्त धन का ब्योरा वह एक वही मे रखता था और उस धन से राज्य खच चलाता था। उसके इस दूरदर्शी एव कुशल आर्थिक प्रब ध के कारण प्रताप इतने लम्बे समय तक अकबर के शक्तिशाली साम्राज्य के विरुद्ध सघष कर सके थे। महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल (वि स १६५३–१६७६) मे भामाशाह तीन वष तक प्रधान पद पर रहा और अ त मे प्रधान के पद पर काय करते हुए ही इसका देहावसान हुआ।

ताराचन्द भी एक कुशल सनिक एव अच्छा प्रशासक था। यह भी मालवा की ओर प्रताप की सेना लेकर शत्रुओ को दबाने तथा लूटपाट कर आतक पदा करने के लिये गया था। एक बार जब वह मालवा की ओर से लौट रहा था तो उसे व उसके साथ के सनिको को अकबर के सेनापति शाहबाज खा व उसकी सेना ने घेर लिया। ताराचन्द बडी वीरतापूवक लडता हुआ बस्सी (चित्तौड के पास) तक आया किन्तु यहा पर वह घायल होकर गिर पडा। बस्सी के स्वामी देवडा साईंदास इसे अपने किले मे ले गया एव वहा घावो की मरहम पट्टी की व इलाज किया।[4] प्रताप ने ताराचन्द को गोडवाड परगने मे स्थित सादडी गाव का हाकिम नियुक्त किया, जहा पर रहकर इसने नगर की ऐसी व्यवस्था की कि शाहबाज खा जैसा खू खार योद्धा व सेनापति भी इस नगर पर कब्जा न कर सका। इसी तरह ताराचन्द यहा रहकर नाडोल की ओर से होने वाले अकबर की सेना के आक्रमणो का भी बराबर मुकाबला करता रहा।[5] सादडी मे इसने अनेक निर्माण कार्य कराये, एव प्रसिद्ध जन मुनि हेमरत्न से 'गोरा बादल पद्मिनी चौपाई' की रचना कराई।

रगोजी बोलिया महाराणा प्रताप के उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंह (वि स १६५३-७६) की राज्य सेवा मे नियुक्त रगोजी बोलिया ने अमरसिंह एव बादशाह जहागीर के मध्य प्रसिद्ध मेवाड मुगल सन्धि कराने मे प्रमुख भूमिका निभाई तथा मेवाड व मुगल साम्राज्य के मध्य चल रहे लम्बे सघष को सम्मानजनक ढग से बन्द करा कर अपनी दूरदर्शिता व कूटनीतिनता का परिचय दिया। सन्धि सम्पन्न हो जाने के बाद महाराणा अमरसिंह ने प्रसन्न होकर रगोजी को चार गाव, हाथी

---

१ (i) महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ, पृ० ११४
(ii) ओसवाल जाति का इतिहास, पृ० ७२ पर भारमल को महाराणा उदयसिंह द्वारा प्रधान बनाने का उल्लेख है।
२ महाराणा प्रताप स्मृति ग्र थ, पृ० ११४, ३ वही, पृ० ११५
४ ओझा राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० १३०३
५ मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १७५ ७६

पालकी आदि भेंट दिये व दीवान के पद पर आसीन किया। इस पद पर कुशलतापूर्वक कार्य करते हुए इसने मेवाड़ के गावो का सीमांकन कराया और मेवाड़ के गावों के जागीरदारों की रेख भी निश्चित्त की। जहागीर ने भी प्रसन्न होकर रगोजी को ५२ बीघा जमीन देकर सम्मानित किया।[1] रंगोजी ने मेवाड व मुगल साम्राज्य के मध्य सन्धि कराने में जो अहम भूमिका निभाई, उस सम्बन्ध के डिंगल गीत प्रसिद्ध हैं।

सिंघवी दयालदास : यह मेवाड के प्रसिद्ध व्यापारी सिंघवी राजाजी एव माता रयणादे का चतुर्थ पुत्र था। एक बार महाराणा राजसिह (वि. सं. १७०९-३७) की इनकी ही एक राणी ने हत्या करवा कर अपने पुत्र को मेवाड़ का महाराणा बनाने का षडयन्त्र रचा। षड्यन्त्र का एक कागज दयालदास को मिल गया उसने तत्काल महाराणा राजसिंह से सम्पर्क कर उनकी जान बचाई। दयालदास की इस वफादारी से प्रसन्न होकर महाराणा ने इसको अपनी सेवाओ मे रखा तथा अपनी योग्यता से बढ़ते-बढते यह मेवाड का प्रधान बन गया।[2] जब औरंगजेब ने वि. स १७३६ मे मेवाड़ पर चढ़ाई कर सैकड़ो मन्दिर तुड़वा दिये[3] और बहुत आर्थिक नुकसान पहुंचाया तो इस घटना के कुछ समय बाद महाराणा राजसिह ने दयालदास को सेना देकर बदला लेने के लिये मालवा की ओर भेजा। दयालदास ने अचानक धार नगर पर आक्रमण कर उसे लूटा, मालवे के अनेक शाही थानो को नष्ट किया आग लगाई और उनके स्थान पर मेवाड के थाने बैठा दिये। लूट से प्राप्त धन को प्रजा मे बाटा एवं अन्य बहुत सा धन ऊँटो पर लाद कर दयालदास मेवाड़ को लौट आया।[4] तथा महाराणा को नजर किया।

महाराणा जयसिंह (वि. सं. १७३७-१७५५) के शासनकाल मे वि. सं. १७३७ मे चित्तौड़-गढ़ के पास शाहजादा आज़म एवं सेनापति दिलावर खा की सेना पर रात्रि के समय दयालदास ने भीषण आक्रमण किया, किन्तु मुगल सेना संख्या मे अधिक थी, दयालदास बड़ी बहादुरी से लड़ा किन्तु जब उसने देखा कि उसकी विजय अनिश्चित है तो मुसलमानो के हाथ पडने से बचाने के लिये अपनी पत्नी को अपने ही हाथो मौत के घाट उतार दिया और उदयपुर लौट आया, फिर भी उसकी एक लड़की, कुछ राजपूत तथा सामान मुसलमानो के हाथ लग गया।[5] ऐसे वीर और पराक्रमी दयालदास की योग्यता एवं कूटनीतिज्ञता का विस्तृत वर्णन राजपूत इतिहास के ग्रन्थो के अतिरिक्त फारसी के समकालीन हस्तलिखित ग्रन्थो, यथा—"वाकया सरकार रणथंभोर" एवं "औरंगजेबनामा" मे भी मिलता है। जैन-धर्म के उत्थान मे भी दयालदास द्वारा सम्पन्न किये गये महान् कार्यों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।

मेहता अगरचन्द : महाराणा अरिसिंह द्वितीय (वि. सं. १८१७-२९) का शासनकाल मेवाड़ के इतिहास मे गृहकलह तथा संघर्ष का काल माना जाता है। ऐसे संकटमय समय मे मेहता पृथ्वीराज के सबसे बड़े पुत्र मेहता अगरचन्द ने मेवाड़ राज्य की जो सेवाएं की वे अद्वितीय हैं। अगरचन्द की

---

१. वरदा (त्रैमासिक), भाग १२, अंक ३, पृ० ४१-४७

२. ओझा-राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर) पृ० १३०५

३. वही, पृ० ८७०-७१

४. जती मान कृत राजविलास (महाकाव्य), विलास ७, छन्द ३८

५. (i) वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ६५०
   (ii) ओझा-राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ८९५

दूरदर्शिता, कार्यकुशलता तथा सैनिक गुणों से प्रभावित होकर महाराणा अरिसिंह ने इसे माडलगढ़ (जिला भीलवाड़ा) जैसे सामरिक महत्त्व के किले का किलेदार एवं उस जिले का हाकिम नियुक्त किया,[1] इसकी योग्यता को देखकर उसके बाद इसे महाराणा ने अपना सलाहकार तथा तत्पश्चात् वि. सं. १७६६ में दीवान के पद पर आरूढ़ किया और बहुत बड़ी जागीर देकर सम्मानित किया। मेवाड़ इस समय मराठों के आक्रमणों से त्रस्त तथा विषम आर्थिक स्थिति से ग्रस्त था। अगरचन्द ने अपनी प्रशासनिक योग्यता व कूटनीति के बल पर इन विकट परिस्थितियों पर बहुत कुछ सफलता प्राप्त की।[2] महाराणा अरिसिंह की माधवराव सिन्धिया के साथ उज्जैन में हुई लड़ाई में अगरचन्द वीरतापूर्वक लड़ता हुआ घायल हुआ एवं कैद कर लिया गया। बाद में रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह द्वारा भेजे गये बावरियों ने उसे छुड़ाया। माधवराव सिन्धिया द्वारा उदयपुर को घेरने के समय तथा टोपल मगरी व गगार की लड़ाइयों में भी अगरचन्द महाराणा के साथ रहा। अरिसिंह की मृत्यु के पश्चात् महाराणा हमीरसिंह द्वितीय (वि. सं. १८२६-१८३४) के समय मेवाड़ की विकट स्थिति संभालने में यह बड़वा अमरचन्द के साथ रहा। महाराणा भीमसिंह (वि. सं. १८३४-१८८५) ने इसे प्रधान के पद पर नियुक्त किया। अम्बाजी इंगलिया के प्रतिनिधि गणेशपन्त के साथ मेवाड़ की हुई विभिन्न लड़ाइयों में भी अगरचन्द ने भाग लिया।[3] अगरचन्द द्वारा मेवाड़ के महाराणाओं एवं मेवाड़ राज्य के लिये की गई सेवाओं से प्रसन्न होकर उपर्युक्त तीनों महाराणाओं ने समय समय पर अगरचन्द को विभिन्न रुक्के प्रदान किये, उनसे तथा "मेहताओं की तवारीख" से अगरचन्द के सैनिक व राजनीतिक योगदान की पुष्टि होती है।

मेहता मालदास ड्योढ़ीवाले मेहता वंश में मेहता मेघराज की ग्यारहवीं पीढ़ी में मेहता मालदास को एक कुशल योद्धा वीर सेनापति एवं साहसी पुरुष के रूप में सदा स्मरण रखा जायगा।[4] मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह (वि. सं. १८३४-१८८५) के शासनकाल में मराठा के आतंक को समाप्त करने के उद्देश्य से तत्कालीन प्रधान सोमचन्द गांधी ने जब मराठों पर चढ़ाई करने का निश्चय किया तो इस अभियान के दूरगामी महत्त्व को अनुभव कर मेहता मालदास के सेनापतित्व में मेवाड़ व कोटा की संयुक्त सेना मराठों को परास्त करने के लिए भेजी गई। उदयपुर से कूच कर यह सेना निम्बाहेड़ा निकुम्भ, जीरण आदि स्थानों को जीतती हुई जावद पहुँची, जहां पर नाना सदाशिवराव ने पहले तो इस सेना का प्रतिरोध किया किन्तु बाद में कुछ शर्तों के साथ जावद छोड़ कर चला गया। होल्कर राजमाता अहिल्याबाई को मेवाड़ के इस अभियान का पता चला तो उसने तुलाजी सिंधिया एवं श्री भाई के अधीन पांच हजार सैनिक जावद की ओर भेजे। नाना सदाशिवराव ने सैनिक भी इन सैनिकों से आ मिले। मन्दसौर के मार्ग से यह सम्मिलित सेना मेवाड़ की ओर बढ़ी। मेहता मालदास के सेनापतित्व में सादड़ी के राजराणा सुल्तानसिंह, देलवाड़े का राजराणा कल्याणसिंह, कानोड़ का रावत जालिमसिंह और सनवाड़ के बाबा दौलतसिंह आदि राजपूत योद्धा भी मुकाबला करने के लिये आगे बढ़े। वि. सं. १८४४ के माघ माह में हड़क्याखाल के पास भीषण भिड़न्त हुई। मालदास ने

१ प्रा०-वंश०, पृ० १३१४
२ शोध पत्रिका, वर्ष १८, अंक २, पृ० ८१-८२
३ ओझा राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० १३१४-१५
४ शोधपत्रिका, वर्ष २३, अंक १, पृ० ६५-६६

अपनी सेना सहित मराठों के साथ घमासान संघर्ष किया और अन्त में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ रणांगण में शहीद हो गया[1]। मेहता मालदास के इस पराक्रम की कथाएं आज भी मेवाड़ में प्रचलित हैं।

मेहता मालदास अदम्य योद्धा और श्रेष्ठ सेनापति ही नही योग्य प्रशासक भी था[2] समकालीन कवि किशना आढ़ा कृत 'भीम विलास'[3] तथा पीछोली एवं सीसारमा स्थित सुरह व शिलालेख[4] मे मेहता मालदास के कार्यों का उल्लेख उपलब्ध होता है।

मेवाड़ के राज्य प्रवन्ध मे जैनियो के सैनिक व राजनीतिक योगदान के अन्तर्गत उपर्युक्त कतिपय महत्त्वपूर्ण जैन पुरुषो का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त भी अनेक जैन महापुरुष हुए है, जिनके मूल्यवान योगदान का मेवाड़ सदा ऋणी रहा है, उपर्युक्त के साथ उनका सकेतात्मक उल्लेख निम्न है :—

प्रधान एवं दीवान

(१) नवलखा रामदेव :—महाराणा क्षेत्रसिंह (वि. स. १४२१-३६) एवं महाराणा लक्षसिंह (वि. स. १४३६-५४) के समय मे प्रधान।

(२) नवलखा सहणपाल :—महाराणा मोकल (वि. सं. १४५४-६०) तथा महाराणा कुंभा (वि. सं. १४६०-१५२५) के समय मे प्रधान।

(३) तोलाशाह :—महाराणा सांगा (वि. सं. १५६६-८४) के समय में प्रधान।

(४) कर्माशाह :—महाराणा रत्नसिंह द्वितीय (वि. सं. १५८४-८८) के समय मे प्रधान।

(५) वोलिया निहालचन्द :—वि. सं. १६१० मे चित्तौड़ मे महाराणा उदयसिंह (वि. सं. १५९४-१६२८) के समय प्रधान।

(६) कावड़िया भामाशाह :—महाराणा प्रताप (वि. सं. १६२८-५३) एवं अमरसिंह (वि. सं. १६५३-७६) के काल मे प्रधान।

(७) कावड़िया जीवाशाह :—अपने पिता भामाशाह की मृत्यु के बाद महाराणा अमरसिंह (वि. सं. १६५३-७६) के समय मे प्रधान।

(८) रंगोजी वोलिया :—महाराणा अमरसिंह एवं महाराणा कर्णसिंह (वि. सं. १६७६-८४) के समय मे दीवान।

(९) कावड़िया अक्षयराज :—महाराणा कर्णसिंह के समय में प्रधान।

(१०) सिंघवी दयालदास :—महाराणा राजसिंह (वि. सं. १७०९-३७) एवं महाराणा जयसिंह (वि. सं. १७३७-४५) के समय मे प्रधान।

(११) शाह देवकरण :—महाराणा जगतसिंह द्वितीय (वि. सं. १७९०-१८०८) के समय मे प्रधान।

---

१. ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ९८७-८८
२. टॉड—एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३५०
३. भीम विलास, छन्द सं. २९२-९७, हस्त प्रति सं. १२३, साहित्य संस्थान, उदयपुर
४. द्रष्टव्य—वीरविनोद, पृ० १७७४-७५ एवं १७७७-७८

(१२) मेहता अगरचन्द —महाराणा अरिसिंह (वि स १८१७-२६), महाराणा हमीरसिंह द्वितीय (वि स १८२६-३४) तथा महाराणा भीमसिंह (वि सं १८३४ ८५) के समय मे प्रधान।

(१३) मोतीराम बोलिया —महाराणा अरिसिंह (वि स १८१७-२६) के समय मे कुछ समय तक प्रधान रहे।

(१४) एकलिंगदास बोलिया —महाराणा अरिसिंह के समय मे कुछ समय तक दीवान, किन्तु उम्र छोटी होने से आपके काका मोजीराम काय देखते थे।

(१५) सोमचन्द गांधी —महाराणा भीमसिंह (वि स १८३४ ८५) के समय मे प्रधान रहे।

(१६) सतीदास गांधी —अपने बडे भाई सोमचन्द की मृत्यु के बाद महाराणा भीमसिंह के समय मे ही प्रधान।

(१७) शिवदास गांधी —महाराणा भीमसिंह के समय मे ही प्रधान।

(१८) मेहता देवीचन्द :—मेहता अगरचन्द के पौत्र थे महाराणा भीमसिंह ने वि स १८५६ मे प्रधान बनाया।

(१९) मेहता रामसिंह —वि स १८८१ मे महाराणा भीमसिंह ने अ ग्रेज सरकार की सलाह पर प्रधान नियुक्त किया।

(२०) मेहता शेरसिंह —महाराणा भीमसिंह के समय थोडे थोडे समय के लिये तीन-चार बार प्रधान रहे। तथा महाराणा स्वरूपसिंह (वि स १८९९-१९१८) के समय मे भी रहे।

(२१) मेहता गोकुलचन्द :—महाराणा स्वरूपसिंह (वि स १८९९-१९१८) के समय शेरसिंह के बाद ये प्रधान रहे।

(२२) कोठारी केसरीसिंह —महाराणा स्वरूपसिंह के समय मे वि स १९१६ २६ तक प्रधान रहे।

(२३) मेहता पन्नालाल —महाराणा शम्भूसिंह (वि स १९१८-३१) ने वि स १९२६ म प्रधान बनाया।

(२४) कोठारी बलवन्तसिंह —महाराणा फतहसिंह (वि स १९४१-८७) के समय मे महकमाखास का प्रधान।

(२५) मेहता भोपालसिंह —महाराणा फतहसिंह के समय म कोठारी बलवन्तसिंह के त्यागपत्र देने के बाद।

किलेदार एव फौजबख्शी

(१) मेहता जालसी —महाराणा हमीर प्रथम के समय में।

(२) मेहता चीलजी —महाराणा सांगा (वि सं १५६६ ८४), बनवीर (वि स १५९३ ९७) तथा महाराणा उदयसिंह (वि स १५९४-१६२८) के समय मे चित्तौड़गढ़ का किलेदार।

(३) कावड़िया भारमल —महाराणा सांगा के समय मे रणथम्भोर का किलेदार।

(४) मेहता मालदास —महाराणा भीमसिंह (वि स १८३४-८५) के समय में फौज बख्शी।

इसी प्रकार बोल्या रूपभान, सरदारसिंह तथा मेहता नाथजी भी फौजबख्शी रह चुके है।

(ख) जोधपुर राज्य

मारवाड में जोधपुर राठौड़ राजपूतो का प्राचीन राज्य माना जाता है। इसकी राजधानी पहले मण्डोर और तत्पश्चात् जोधपुर रही। सैनिक व राजनीतिक दृष्टि से इस राज्य की सेवा करने वालो में जैनियो का योगदान संख्या व गुण दोनो ही दृष्टियो से सर्वाधिक रहा।

राव समरा एवं नरा भण्डारी :— नाडोल के चौहान वंशी शासको के वंशज राव समराजी भण्डारी (जिनके पूर्वजो ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था) का तथा इनके पुत्र राव नरा भण्डारी का जोधपुर राज्य की स्थापना में वही गौरवपूर्ण स्थान है जो मेवाड़ में जालसी मेहता का है।

जब मण्डोर के शासक राव रणमल की चित्तौड़गढ में वि. सं. १५०० में हत्या कर दी गई[1], तो उसका पुत्र राव जोधा अपने सात सौ सैनिको को लेकर मेवाड से भाग निकला, किन्तु चूण्डा के नेतृत्व में मेवाड़ की सेना ने उसका पीछा किया और उस पर अनेक आक्रमण किये, जिसमें जोधा के कई सैनिक मारे गये[2]। जीलवाडा नामक गाव तक पहुँचते-पहुँचते जोधा के साथ केवल सात सैनिक शेष रह गये।

जीलवाडा में जोधा की राव समरा भण्डारी से भेंट हुई। समरा ने जोधा के संकट को अनुभव कर उसका साथ देने का निश्चय किया तथा अपने पुत्र नरा भण्डारी के साथ पच्चास वीर योद्धा देकर जोधा को मारवाड़ की ओर रवाना कर दिया। समरा स्वयं वही रह कर मेवाड़ की सेना का प्रतिरोध करने लगा। अन्त में अपने तीन सौ वीर सैनिको के साथ लडता हुआ मारा गया[3]।

नरा भण्डारी के साथ जोधा किसी तरह मण्डोर पहुँचा किन्तु मेवाड की सेना ने आक्रमण कर मण्डोर को भी अपने अधिकार मे कर लिया। जोधा थली प्रदेश के काहूनी गाव में जाकर रहने लगा[4]। जोधा के इस विपत्तिकाल में राव नरा भण्डारी बराबर उसके साथ रहा एवं सेना के संगठन में जुट गया। पर्याप्त सेना इकट्ठी हो जाने के पश्चात् मण्डोर पर आक्रमण किया गया। घमासान युद्ध के बाद वि. सं. १५१० में जोधा का मण्डोर पर अधिकार हो गया[5]। इस युद्ध में नरा भण्डारी ने अपूर्व शौर्य का परिचय दिया। बाद में जोधा ने जब मेवाड़ पर आक्रमण किया, उस समय भी नरा उसके साथ रह कर बहादुरी से लडा था।

राव नरा भण्डारी के सहयोग से जोधा ने मण्डोर विजय के पश्चात् वि. सं. १५१५ मे पास ही की चिड़ियाटूंक पहाड़ी पर नये गढ की नीव डाली तथा उसकी तलहटी मे अपने नाम से जोधपुर नगर बसाया[6]। उस प्रकार जोधपुर राज्य की स्थापना मे राव समरा एव नरा भंडारी की अविस्मरणीय सेवाओ को भुलाया नही जा सकता है।

---

१. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २२३-२५

२. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग पृ० २३५-३६

३. इस घटना से सम्बन्धित डिंगल मे एक गीत प्रसिद्ध है—

राव जोधारे कारणे समरे माजी कीध चढ़।
चवाण वेढ़ दिवाणसुं, नाडले नाडूलगढ़॥

४. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २३६, ५. वही, पृ० २३९

६. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २४१

भण्डारियो की ख्यात एव जोधपुर की ख्यात म राव नरा भण्डारी के वीरतापूण कार्यों की प्रशसा की गई है। राव जोधा ने भी नरा के सहयोग एव सेवाम्रो का बडा सम्मान किया। उसे प्रधान के पद पर नियुक्त किया तथा साठ हजार की जागीर के रूप मे भण्डारियो की ख्यात के अनुसार रोहट, *बीसलपुर*, *मजल*, *पलासणी*, *धूधाड*, *जाजावाला* और *वनाड* नामक सात गाव उसे भेंट मे दिये।

मुहणोत नैणसी —मुहणोत नैणसी का जन्म वि स १६६७ की मार्गशीर्ष शुक्ला ४ को हुआ[1]। इसके पिता का नाम जयमल और माता का नाम सरूपदे था। नणसी के तीन भाई और थे- सुन्दरदास, आसकरण और नरसिंहदास।

नैणसी ने दीवान पद प्राप्ति से पूव जोधपुर राज्य की ओर से कई महत्त्वपूण लडाईयो, में भाग लिया तथा सेना का नेतृत्व किया। वि० स० १६६४ ९५ में फलावी की लडाई[2], वि स १७०० म राडधरा की लडाई[3], वि स १७०३ म सोजत के रावत नारायण का दमन[4], तथा वि स १७०६ म पोकरण पर अधिकार[5] करन म नैणसी के अतुल्य शौर्य व कुशल सैन्य-सचालन का नही भुलाया जा सकता। नणसी की इस योग्यता एव सेवाओ स प्रसन्न होकर जोधपुर के तत्कालीन शासक महाराणा जसवन्तसिह प्रथम (वि स १६६४-१७३५) ने मियाँ फरासत खा को वि स १७१४ मे हटाकर नणसी को अपने राज्य का दीवान बनाया[6]। वि स १७२३ तक वह इस पद पर योग्यतापूवक काय करता रहा।

महाराजा जसवन्तसिह को मुगल सम्राट औरगजेब की ओर स प्राय अन्यत्र युद्धो म भाग लेना पडता था अथवा किसी प्रान्त का सूबेदार बनकर अपन राज्य से बाहर रहना पडता था। एसी स्थिति म मुहणोत नणसी ही राज काज देखता था। उस समय नणसी के पास प्राय सब अधिकार थे। यहा तक कि वह किसी को जागीर तक दे सकता था किन्तु महाराजा जसवन्तसिह पत्रो द्वारा समय समय पर राज्य काय सम्बन्धी निर्देश अवश्य द दिया करत थे।

जनता के सुख-दुःख की बातें भी नणसी गौर से सुनता था। वि स १७१८ के पौष मास में मडता परगन के लगभग दस गांवो के जाट एकत्रित होकर नैणसी क पास आये और तत्कालीन लाग व बेगार की पद्धति के बारे में विरोध प्रकट किया। नणसी ने उनके विरोध को गौर स सुना और सच्चाई का अनुभव कर लाग व बेगार माफ कर दी तथा तत्काल मडता परगन के हाकिम भण्डारी राजसी के पास तत्सम्बन्धी हुक्म भेजा।

नणसी तलवार और कलम दोनो का धनी था। इसन तत्कालीन जोधपुर राज्य का व्यापक सर्वेक्षण कराया। जोधपुर के साथ ही अन्य राज्यो के एतिहासिक व सांस्कृतिक तथ्यो व आंकडो को

---

१ रामनारायण दूगड़—मुहणोत नणसी की ख्यात, प्रथम भाग, (परिचय) पृ० १

२ बदरीप्रसाद साकरिया—मुहता नणसी की ख्यात, भाग चतुथ पृ० २७

३ ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ४१८, ४ वही, पृ० ४२०

५ साकरिया—मुहता नणसी की ख्यात, भाग चतुथ पृ० २७, ६ वही, पृ० २८

एकत्र किया। इस सम्बन्ध में नैणसी के दो ग्रन्थ ख्यात व विगत के रूप में भी उपलब्ध हैं।[1]

सिंघी इन्द्रराज : महाराजा भीमसिंह (वि० सं० १८४९–६०) के अन्तिम दिनों में उपद्रवी सरदारों का दमन करने,[2] जालौर पर जोधपुर का आधिपत्य जमाने,[3] भीमसिंह की मृत्यु के पश्चात् मानसिंह को जोधपुर का राज्य दिलाने[4] तथा महाराजा मानसिंह (वि० सं० १८६०–१९००) को बाद की विपत्तियों मे लगातार सहयोग देते हुए अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर देने वाले योग्य योद्धा व दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ के रूप मे सिंघी इन्द्रराज का जोधपुर राज्य के इतिहास में अद्वितीय स्थान है।

मानसिंह को जोधपुर की गद्दी पर आरूढ़ कराने में सिंघी इन्द्रराज द्वारा की कई बहुमूल्य सेवाओ से प्रसन्न होकर महाराजा मानसिंह ने उसे मुसाहिब के पद पर नियुक्त किया।[5] जब मेवाड़ की राजकुमारी कृष्णाकुमारी से विवाह के प्रश्न को लेकर उदयपुर, जोधपुर तथा जयपुर राजघरानों में टकराहट पैदा हो गई और स्थिति युद्ध तक आ पहुंची तो उस समय सिंघी इन्द्रराज ने सम्पूर्ण स्थिति को बड़ी बुद्धिमानी से सम्भाला। महाराजा मानसिंह पचास हजार की विशाल सेना लेकर मेवाड़ पर चढाई करने के लिए जोधपुर से रवाना हुए तो सिंघी इन्द्रराज ने मानसिंह को रोक लिया और स्वयं बीस हजार सैनिकों का नेतृत्व ग्रहण कर कृष्णाकुमारी का टीका जयपुर जाने से रोकने हेतु आगे बढ़ा। इसकी सूचना जब टीका ले जाने वालों के पास पहुँची तो वे शाहपुरा (मेवाड़) जाकर रुक गये। इन्द्रराज शाहपुरा पर चढ़ आया किन्तु शाहपुरावालों ने टीका पुन: उदयपुर भेजने की शर्त के साथ इन्द्रराज को वहां से रवाना कर दिया।[6] कुछ समय पश्चात् सिंघी इन्द्रराज ने जयपुर के दीवान रायचन्द से मिल कर और कूटनीति का सहारा लेकर जोधपुर व जयपुर के मध्य समझौता करा लिया। समझौते के अनुसार राजकुमारी कृष्णा कुमारी से दोनो में से कोई भी विवाह न करेगा तथा जोधपुर के महाराजा मानसिंह की कन्या का विवाह जयपुर के महाराजा जगतसिंह के साथ तथा जगतसिंह की बहन का विवाह मानसिंह के साथ किया जायेगा।[7]

परन्तु यह समझौता अधिक दिनों तक टिक न सका और जयपुर का महाराजा जगतसिंह विशाल सेना लेकर चढ़ आया। इधर महाराजा मानसिंह ने झूठी शिकायतो को सच मान कर सिंघी इन्द्रराज को कैद कर लिया।[8] किन्तु जब जयपुर की सेना के आक्रमणों से जोधपुर नगर की रक्षा करना असम्भव हो गया तो महाराजा मानसिंह ने इन्द्रराज को कैद से रिहा कर समयोचित प्रबन्ध

---

१. ये दोनों ग्रन्थ 'मुंहता नैणसी री ख्यात' एवं 'मारवाड़ रा परगणा री विगत' के नाम से राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित हो चुके हैं। ख्यात का हिन्दी अनुवाद भी नागरी प्रचारिणी सभा काशी से छप चुका है।

२. ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७७२, ३. वही, पृ० ७७५-७६

४. रेउ-मारवाड़ का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४०१-४०२

५. ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७७८

६. वही, पृ० ७८८-८९ ७. वही, पृ० ७८९

८. (i) ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७९१
(ii) जगदीशसिंह गहलोत—मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ० १८९

करने की आज्ञा दी।[1] सिंघी इन्द्रराज ने फिर कूटनीति से काम लिया। उसने जोधपुर के गढ को मानसिंह के अधिकार मे रख कर शहर को जयपुर की सेना के हवाले कर दिया। अमीर खा पिंडारी को तीस हजार रुपये देकर इन्द्रराज ने अपनी ओर मिला लिया और भण्डारी पृथ्वीराज तथा अमीर खा को सेना के साथ जयपुर पर आक्रमण करने व ढूढाड मे लूट-खसोट करने भेजा। कुछ समय बाद इन्द्रराज भी सेना लेकर इनसे आ मिला।[2] इन्होने सयुक्त रूप से जयपुर आदि को लूटा। इसकी सूचना जब महाराजा जगतसिंह को जोधपुर मे मिली तो वे जोधपुर का घेरा छोड कर जयपुर की ओर लौट चले। इन्द्रराज और अमीर खा विजयी होकर जब जोधपुर लौटे तो महाराजा मानसिंह ने इन्द्रराज का बडा सम्मान किया। खास रुक्का देकर गौरव बढाया, प्रधान का पद दिया एव जागीर दी।[3]

यही नही, सिंघी इन्द्रराज ने धौंकलसिंह व सवाईसिंह के मामले मे शुरू से ही महाराजा मानसिंह का साथ दिया तथा बीकानेर की लडाई म भी जोधपुर की सेना का नेतृत्व किया। परन्तु इन्द्रराज पर महाराजा मानसिंह के इस अत्यधिक विश्वास एव निर्भरता को देख कर अन्य राजपूत सरदार उससे अप्रसन्न रहने लगे। उन्होने अमीर खा पिंडारी को लालच देकर अपनी ओर मिला लिया तथा इन्द्रराज की हत्या करवा दी।[4] महाराजा मानसिंह इस घटना से इतना अधिक दुखी हुआ कि उसने राज्य-कार्य करना और बाहर आना जाना तक छोड दिया।[5] इन्द्रराज की स्वामिभक्ति व सेवाओ के बदले मे महाराजा ने उसके पुत्र सिंघी फतहराज को पच्चीस हजार की जागीरी, दीवानगी तथा महाराजकुमार की बराबरी का सम्मान और तत्सम्बन्धी रुक्का प्रदान किया। तथा उन्होने इन्द्रराज की स्मृति मे राजस्थानी में काव्य की रचना करके उसके प्रति श्रद्धाजलि भी अर्पित की—

गेह छुटो कर गेड, सिंह जुटो फूटो समद ।
अपना भूप अरोड, अडिया तीनू इन्दडा ॥
गेह सांकल गजराज, थहे रह्यो सादुल धीर ।
अकटी बाजो बाज, अकल प्रमाणे इन्दडा ॥
पडतो घेरो जोधपुर, अडता दला अथग ।
आप डीगता इन्दडा, पे दीधो भुज थभ ॥

जोधपुर राज्य के इतिहास म उपर्युक्त प्रकार के जैन महापुरुषो की सख्या लगभग १४१ है। इन सबका विवरण यहा प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। मात्र सक्षिप्त सकेतात्मक विवरण इस प्रकार है—

१ रेउ मारवाड़ का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४०९, २ वही, पृ० ४१०-११
३ (i) वही, पृ० ४१२ (ii) ओसवाल जाति का इतिहास, पृ० ६०-६१
(iii) ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ८०५
४ रामकरण आसोपा—मारवाड का मूल इतिहास, पृ० २७६-७७
५ गहलोत—मारवाड राज्य का इतिहास, पृ० १६३

प्रधान एवं दीवान

१. **भण्डारी नराजी**—समराजी का पुत्र । वि. स. १५१६ मे दीवान व वाद मे प्रधान रहे । राव जोधा के समय मे ।

२. **मुहणोत महाराजजी**—अमरसीजी का पुत्र । राव जोधा के समय मे दीवान तथा प्रधान रहे ।

३. **भण्डारी नाथाजी**—नराजी का पुत्र । वि. स. १५४४–४५ मे राव जोधा के समय मे प्रधान रहे ।

४. **भण्डारी ऊदाजी**—नाथाजी का पुत्र । वि. सं. १५४८ मे राव सातल के समय मे दीवान व प्रधान रहे ।

५. **भण्डारी गोराजी**—ऊदाजी का पुत्र । राव गागा (वि. स. १५७२–८८) के समय मे दीवान व प्रधान ।

६. **भण्डारी धनोजी**—डावरजी का पुत्र । राव चन्द्रसेन (वि. स. १६१९–३७) के समय मे दीवान ।

७. **भण्डारी लूणाजी**—गोराजी का पुत्र । वि सं. १६५१–५४ तक दीवान व प्रधान, मोटाराजा उदयसिह (वि. सं. १६४०–५१) तथा महाराजा सूरसिह (वि. सं. १६५१–७६) के समय मे ।

८. **भण्डारी मानाजी**—डावरजी का पुत्र । मोटाराजा उदयसिंह एवं महाराजा सूरसिंह के समय मे दीवान व प्रधान ।

९ **भण्डारी इमीरजी**—मोटाराजा उदयसिह के समय मे दीवान ।

१०. **भण्डारी रायचन्दजी**—जोधाजी का पुत्र । मोटाराजा उदयसिह के समय मे दीवान ।

११. **कोचर मूया वेलाजी**—जाजरजी का पुत्र । महाराजा सूरसिंह के समय मे दीवान ।

१२. **भण्डारी ईसरदासजी**—महाराजा सूरसिंह के समय मे दीवान ।

१३. **भण्डारी भानाजी**—मानाजी का पुत्र । वि. सं. १६७१–७५ मे महाराजा सूरसिह के समय मे दीवान व प्रधान ।

१४. **भण्डारी पृथ्वीराजजी**—महाराजा सूरसिंह के समय मे वि. सं १६७५-७६ मे प्रधान ।

१५. **भण्डारी लूणाजी**—गोराजी का पुत्र । वि. सं. १६७६-८१ मे प्रधान ।

१६. **सिघवी शहामलजी**—महाराजा गजसिंह (वि. १६७६-१६९४) के समय मे दीवान ।

१७. **मुहणोत जयमलजी** - नैनसी का पिता । वि. सं. १६८६ मे दीवान ।

१८. **सिंघवी सुखमलजी**—वि. स. १६९०-९७ तक दीवान । महाराजा गजसिंह और जसवंतसिह के समय मे ।

१९. **भण्डारी रायमलजी**—लूणाजी का पुत्र । वि. स. १६९४ से १६९७ की पौष कृष्णा ५ तक । महाराजा जसवतसिह के समय मे दीवान ।

२० सिंघवी रायमलजी—शोभाचन्दजी का पुत्र। वि स १६६७ की पौष कृष्णा ५ से दीवान।

२१ भण्डारी ताराचन्द नारायणोत—वि स १७१४ मे दीवान।

२२ मुहणोत नैणसी—जयमल का पुत्र। महाराजा जसवन्तसिंह के समय मे वि स १७१४ से १७२३ तक।

२३ भण्डारी विट्ठलदासजी—भगवानदास का पुत्र। वि स १७६२ मे दीवान तथा वि स १७६५ की श्रावण शुक्ला १३ से वि स १७६६ की कार्तिक वदी ६ तक दीवान व प्रधान। महाराजा अजीतसिंह के समय म।

२४ भण्डारी खींवसीजी—रासा भण्डारी का पुत्र। महाराजा अजीतसिंह के समय मे, वि स १७६६ से १७७० के मध्य दीवान व प्रधान।

२५ भण्डारी रघुनाथजी रायच दोत—वि स० १७६७ मे दीवान तथा वि स० १७७० चैत्र वि स १७८१ की फागुन वदी १२ तक दीवान।

२६ भण्डारी माईदासजी—देवराज का पुत्र। वि स १७६६ मे दीवान।

२७ समदडिया मूया गोकुलदासजी—वि स १७६६ म दीवान एव वि स १७८१ मे।

२८ भण्डारी रघुनाथसिंहजी—रायचन्द का पुत्र। वि स १७८२ से ८५ तक पुन दीवान

२९ भण्डारी अमरसिंहजी—खीवसीजी का पुत्र। वि स १७८५ की आषाढ सुदी १४ वि स १७८८ तक तथा वि स १७९९ की कार्तिक सुदी १ से वि स १८०१ के ज्येष्ठ तक महाराजा अभयसिंह वि स (१७८१-१८०६) के समय म दीवान।

३० सिंघवी अमरचन्दजी—सायमलजी का पुत्र। वि स १७९३ आसोज सुदी १० से वि स १७९४ चत्र सुदी ७ तक। महाराजा अभयसिंह के समय म दीवान।

३१ भण्डारी गिरधरदासजी—रतनसिंह का भाई। वि स १८०१ के ज्येष्ठ से वि स १८०४ के भाद्रपद तक। महाराजा अभयसिंह के समय में दीवान।

३२ भण्डारी मनरूपजी - पोमसीजी का पुत्र। वि स १८०४ के भाद्रपद से वि स १८०६ के मागशीष तक। महाराजा अभयसिंहजी के समय मे दीवान।

३३ भण्डारी सूरतरामजी—मनरूपजी का पुत्र। वि स १८०६ ७ मे दीवान।

३४ भण्डारी दौलतरामजी—थानसीजी का पुत्र। वि स १८०६ ७ म दीवान।

३५ भण्डारी सवाईरामजी—रतनसिंह का पुत्र। वि स १८०७ की आश्विन शुक्ला १० से वि स १८०८ के श्रावण कृष्णा २ तक। महाराजा बख्तसिंह (वि स १८०८-०९) के समय म दीवान।

३६ सिंघवी फतेचन्दजी—लखमल का पुत्र। वि स १८०८ के श्रावण कृष्णा २ स वि स १८१८ की आश्विन कृष्णा १४ तक। तथा वि स १८२३ की चत्र शुक्ला ८ स वि स १८३७ की आश्विन शुक्ला १० तक। कुल २५ वष तक दीवान। महाराजा विजयसिंह के समय म।

३७. **भण्डारी नरसिंहदासजी**—मेसदास का पुत्र। वि. सं. १८१९ के ज्येष्ठ सुदी ५ से १८२० की ज्येष्ठ सुदी ५ तक। महाराजा विजयसिंह (वि. सं. १८०९-५०) के समय मे दीवान।

३८. **मुहणोत सूरतरामजी**—भगवतसिंह का पुत्र। वि. सं. १८२० की ज्येष्ठ शुक्ला ५ से वि. सं. १८२३ की आश्विन शुक्ला ९ तक। महाराजा विजयसिंह के समय में दीवान।

३९. —दीवान पद खालसे रहा, किन्तु वि. स. १८३७ से १८४७ तक दीवान का सारा कार्य सिंघवी फतेचन्द के पुत्र ज्ञानमलजी देखते थे।

४०. **सिंघवी ज्ञानमलजी**—फतेचन्द का पुत्र। वि. स. १८४७ की मार्गशीर्ष शुक्ला २ से माघ शुक्ला ५ तक दीवान। महाराजा विजयसिंह के समय मे।

४१. **भण्डारी भवानीदासजी**—जीवनदास का पुत्र। वि. स. १८४७ के माघ शुक्ला ५ से वि. स. १८५१ की वैशाख कृष्णा १४ तक दीवान। महाराजा विजयसिंह तथा भीमसिंह (वि. स. १८५०-६०) के समय मे।

४२. **भण्डारी शिवचन्दजी**—शोभाचन्द का पुत्र। वि. सं. १८५१ की वैशाख कृष्णा १४ से वि. स. १८५४ की आश्विन शुक्ला १४ तक तथा वि. स. १८५५ की कार्तिक शुक्ला ११ से वि. सं. १८५६ की वैशाख शुक्ला ११ तक दीवान। महाराजा भीमसिंह के समय में।

४३. —वि. स. १८५४ आश्विन शुक्ला १ से १८५५ की श्रावण कृष्णा ६ तक दीवान पद खालसे रहा, किन्तु कार्य जोधराजजी के पुत्र सिंघवी नवलराजजी देखते थे।

४४. **सिंघवी नवलराजजी**—जोधराज का पुत्र। वि सं. १८५५ के श्रावण कृष्णा ६ से कार्तिक कृष्णा ९ तक दीवान। महाराजा भीमसिंह के काल में।

४५. **मुहणोत सरदारमलजी**—सवाईराम का पुत्र। वि. सं. १८५६ वैशाख शुक्ला ११ से वि. स. १८५८ के आश्विन शुक्ला ३ तक दीवान। महाराजा भीमसिंह के समय मे।

४६. —वि. सं. १८५८ के आश्विन शुक्ला ३ से वि. सं. १८५९ के भाद्रपद कृष्णा २ तक दीवान का पद खालसे रहा किन्तु काम सिंघवी जोधराजजी देखते थे।

४७. **भण्डारी गंगारामजी**—जसराज का पुत्र। वि. सं. १८६० के मार्ग शीर्ष कृष्णा ७ से ज्येष्ठ कृष्णा ४ तक दीवान।

४८. **मुहणोत ज्ञानमलजी**—सूरतराम का पुत्र। वि. स. १८६० के ज्येष्ठ कृष्णा ४ से वि. स. १८६२ के आश्विन शुक्ला ४ तक दीवान। महाराजा मानसिंह (वि. सं. १८६०-१९००) के समय में।

४९. **कोचर मेहता सूरजमलजी**—सोजत निवासी। वि. सं. १८६२ के आश्विन शुक्ला ४ से वि. सं. १८६४ के आश्विन शुक्ला ८ तक। महाराजा मानसिंह के समय मे दीवान।

५०. **सिंघवी इन्द्रराजजी**—भींवराज का पुत्र। वि. सं. १८६४ के आश्विन शुक्ला ८ से वि सं. १८७२ के आश्विन शुक्ला ८ तक। महाराजा मानसिंह के शासन काल मे दीवान।

५१. —वि. स. १८७२ के कार्तिक शुक्ला १ से माघ शुक्ला ३ तक दीवान पद खालसे रहा किन्तु काम मेहता अखेचन्दजी देखते थे।

५२ सिंघवी फतेराजजी—इन्द्रराजजी का पुत्र। अलग-अलग समय में कुल सात बार महाराजा मानसिंह के समय मे दीवान रहे, यथा—वि स १८७२ के माघ शुक्ला ३ से भाद्रपद शुक्ला १३ तक। वि स १८७३ की कार्तिक शुक्ला १२ से वैशाख शुक्ला १४ तक। वि स १८७६ को आषाढ़ वदी ६ से वि स १८८१ की चैत्र सुदी ४ तक। वि स १८८५ के कार्तिक कृष्णा १ से वि स १८८६ के श्रावण कृष्णा ३० तक। वि स १८८७ से वि स १८८८ के चैत्र शुक्ला ६ तक. वि स १८६२ के माघ कृष्णा १० से वैशाख शुक्ला १३ तक। वि स १८६४ के आश्विन शुक्ला १ से वि स १८६५ के चैत्र शुक्ला १ तक।

५३ मेहता अखेचन्दजी—खीवसी का पुत्र। वि स० १८७३ के वैशाख शुक्ला ५ से वि स० १८७४ श्रावण शुक्ला ३ तक दीवान। महाराजा मानसिंह के समय में।

५४ मेहता लक्ष्मीचन्दजी—अखेचन्द का पुत्र। ये महाराजा मानसिंह और महाराजा तख्तसिंह (वि स० १६००-२६) के समय में कुल चार बार दीवान पद पर अलग अलग समय में रहे यथा—वि० स० १८७४ श्रावण शुक्ला ३ से वि स० १८७६ वैशाख शुक्ला १४ तक। वि स० १८६६ चैत्र शुक्ला १ से वि स० १६०० के फाल्गुन कृष्णा ३ तक। वि स० १६०० के ज्येष्ठ से वि स० १६०२ के कार्तिक शुक्ला ६ तक। वि स० १६०३ आश्विन शुक्ला ३ से वि स० १६०७ आश्विन कृष्णा ७ तक

५५ —वि स० १८७६ वैशाख शुक्ला १४ से आषाढ कृष्णा ६ तक दीवान पद खालसे रहा, किन्तु काम सोजत निवासी मेहता सूरजमलजी करते थे। इसी तरह वि स० १८८१ की चैत्र शुक्ला ४ से वि स० १८८२ की पौष शुक्ला २ तक दीवान पद खालसे रहा। काम सिंघवी फोजराजजी देखते थे।

५६ सिंघवी इन्द्रमलजी—जोरावरमलजी का पुत्र। वि स० १८८२ की पौष शुक्ला २ से वि स० १८८५ कार्तिक कृष्णा १ तक दीवान। महाराजा मानसिंह के समय में।

५७ —वि स १८८६ के श्रावण से १८८७ तक दीवान पद खालसे किन्तु काम सिंघवी गुलराजजी के पुत्र फोजराजजी देखते थे।

५८ सिंघवी गम्भीरमलजी—फतेमल का पुत्र। वि स० १८८८ चैत्र शुक्ला ६ से वि स० १८८६ चैत्र कृष्णा १३ तक, वि स० १८६२ से १८६४ तक, वि स० १८६५ से वि स० १८६७ तक तथा वि स० १६०० मे कुल चार बार अलग अलग समय में तथा महाराजा मानसिंह के काल में दीवान रहे।

५६ मेहता जसरूपजी—नाथजी के कामदार थे। वि स० १८८६ चैत्र कृष्णा १३ से वि स० १८६० कार्तिक शुक्ला ४ तक दीवान। मानसिंहजी के समय में।

६० —वि स० १८६० कार्तिक शुक्ला ४ से वि स० १८६१ श्रावण कृष्णा १४ तक दीवान पद खालसे रहा। काम भण्डारी लखमीचन्दजी देखते थे महाराजा मानसिंह के समय में।

६१ भण्डारी लखमीचन्दजी—कस्तूरचन्द का पुत्र। वि स० १८६१ श्रावण कृष्णा १४ से वि स० १८६२ माघ कृष्णा १० तक। वि० स० १८६४ श्रावण कृष्णा ४ से आश्विन शुक्ला ४ तक तथा वि स० १८६७ वैशाख शुक्ला १२ से वि स० १८६८ चैत्र कृष्णा १४ तक। कुल तीन बार दीवान महाराजा मानसिंह के समय में रहे।

६२. सिंघवी इन्द्रमलजी—जीतमल का पुत्र। वि. सं० १८९७ आश्विन कृष्णा १२ से वैशाख शुक्ला १२ तक दीवान महाराजा मानसिंह के समय मे।

६३. कोचर बुधमलजी—मेहता सूरजमल का पुत्र, सोजत निवासी। वि. सं० १८९८ चैत्र कृष्णा १४ से वि० सं० १८९९ भाद्रपद शुक्ला १२ तक, मानसिंह के समय में दीवान रहे।

६४. सिंघवी सुखराजजी—वनराज का पुत्र। वि. सं० १८९९ भाद्रपद शुक्ला १२ से मार्गशीर्ष कृष्णा ६ तक। मानसिंह के समय मे दीवान।

६५. —वि. सं० १९०२ कार्तिक शुक्ला ९ से माघ कृष्णा ९ तक दीवान पद खालसे रहा किन्तु काम सिंघवी फोजराज, भण्डारी शिवचन्द, मेहता गोपालदास आदि देखते थे।

६६ भण्डारी शिवचन्दजी—लखमीचन्द का पुत्र। वि. सं० १९०२ माघ कृष्णा ९ से वि. स० १९०३ आश्विन शुक्ला ३ तक महाराजा तख्तसिंह (वि. सं० १९००–२९) के समय मे दीवान।

६७. मेहता मुकुन्दचन्दजी—लखमीचन्द का पुत्र। वि. स० १९०७ आश्विन शुक्ला ७ से कार्तिक कृष्णा ४ तक। वि. सं० १९०९ मार्गशीर्ष कृष्णा १ से वि. सं० १९१० माघ शुक्ला ९ तक। वि. सं० १९१६ आषाढ़ कृष्णा ८ से वि. सं० १९१९ श्रावण कृष्णा १ तक तथा वि. सं० १९२० से वि. सं० १९२२ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा ९ तक। कुल चार बार दीवान। महाराजा तख्तसिंह के समय मे।

६८. रावराजमल लोढ़ा—राव रिधमल का पुत्र। वि. सं० १९०७ चैत्र कृष्णा १० से वि. सं० १९०८ भाद्रपद शुक्ला १३ तक दीवान। महाराजा तख्तसिंह के समय मे।

६९. —वि. सं० १९०८ भाद्रपद शुक्ला १३ से पौष शुक्ला २ तक दीवान पद खालसे रहा किन्तु काम मेहता मुकुन्दचन्द, सिंघवी फोजराज, मेहता विजयसिंह आदि देखते थे। महाराजा तख्तसिंह के समय मे।

७०. मेहता विजयसिंहजी—कृष्णगढ निवासी मेहता करणमल का पुत्र। वि. सं. १९०८ पौष शुक्ला २ से वि. सं० १९०९ आश्विन कृष्णा १ तक। वि. सं० १९१३ पौष शुक्ला १० से वि. सं० १९१५ पौष शुक्ला ९ तक। वि. सं० १९२५ कार्तिक शुक्ला ५ से मार्गशीर्ष शुक्ला ५ तक दीवान अलग-अलग समय मे। तख्तसिंह के काल में।

७१. रा. ब. मेहता विजयसिंह—वि. सं० १९२९ कार्तिक शुक्ला १४ से वि. सं० १९३१ फाल्गुन शुक्ला ९ तक। तथा वि. स० १९३३ माघ शुक्ला १५ से १९४९ भाद्रपद शुक्ला १३ तक महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय (वि. सं० १९२९-५२) के काल में दीवान।

७२. मेहता गोपाललाल तथा मेहता हरजीवनदास गुजरात वाले—वि. सं० १९१५ में महाराजा तख्तसिंह के समय मे दीवान। अकेले मेहता हरजीवनदास वि. सं० १९३१-३२ मे भी दीवान रहे महाराजा जसवतसिंह द्वितीय के समय मे।

७३. रा. ब. लोढा सरदारमलजी—वि. सं० १९३३ भाद्रपद शुक्ला ८ से माघ शुक्ला १५ तक महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय के समय मे दीवान।

७४. मेहता सरदारसिंहजी—विजयसिंह का पुत्र। वि. सं० १९४९ भाद्रपद शुक्ला १३ से

वि स० १६५८ आषाढ़ शुक्ला ३ तक दीवान। महाराजा जसवंतसिंह तथा सरदारसिंह (वि स० १६५२-६७) के समय म।

७५ —दीवान पद निम्नानुसार खालसे रहा—वि स० १६१० मे किन्तु काम मेहता गोपालदास, मेहता हरजीवनदास एव मेहता शकरलाल देखते थे। वि स० १६१३ मे पोष मास मे किन्तु काम मेहता विजयसिंह, राजमल लोढा, मेहता हरजीवन देखते थे। वि स०१६-१६ के श्रावण चत्र मे किन्तु काम मेहता हरजीवनदास, सिंघवी रतनराज, आदि देखते थे। वि स० १६२३ कार्तिक से वि स० १६२४ के भाद्रपद तक किन्तु काम वेद मेहता, प्रतापमल, मेहता मुकुन्दचन्द, मेहता गोपाललाल तथा भण्डारी पचानदास देखते थे। वि स० १६२५ ज्येष्ठ से १६२६ आश्विन तक, काम मेहता विजयमलजी देखते थे। वि स १६२६ मे किन्तु काम मेहता हरजीवनदास, विजयसिंह सिंघवी, समरथराज आदि देखते थे।

फौज बक्शी

१ मुहणोत सूरतरामजी—वि स० १८०८ श्रावण कृष्णा ३ से वि स० १८१३ की श्रावण कृष्णा १३ तक। महाराजा बख्तसिंह एव विजयसिंह के समय म।

२ भण्डारी दौलतरामजी—थानसिंह का पुत्र। वि स० १८१३ श्रावण कृष्णा १३ वि स० १८१६ तक। महाराजा विजयसिंह के समय म।

३ सिंघवी भींवराजजी—लखमीचन्द का पुत्र। वि स० १८२४ फाल्गुन कृष्णा ११ वि स० १८३० तक तथा वि स० १८३२ भाद्रपद शुक्ला १४ से वि स० १८४७ ज्येष्ठ शुक्ला तक। महाराजा विजयसिंह के समय मे।

४ सिंघवी हिन्दूमलजी—चन्द्रभाण का पुत्र। वि० स० १८३० चत्र कृष्णा १२ से वि स० १८३२ भाद्रपद शुक्ला १४ तक। महाराजा विजयसिंह के समय म।

५ सिंघवी अखेराजजी—भींवराज का पुत्र। वि स० १८४७ ज्येष्ठ से वि स० १८५१ श्रावण शुक्ला ११ तक तथा वि स० १८५६ चत्र कृष्णा ६ से वि स० १८५७ की प्रथम ज्येष्ठ सुदी १२ तक कुल दो बार। महाराजा विजयसिंह एव भीमसिंह के समय मे।

६ भण्डारी शिवचन्दजी—वि स० १८५१ श्रावण शुक्ला ११ से वि स० १८५५ श्रावण कृष्णा १४ तक। महाराजा भीमसिंह के समय म।

७ भण्डारी भवानीरामजी—दौलतराम का पुत्र। वि स० १८५५ श्रावण कृष्णा १४ स वि स० १८५६ चत्र कृष्णा ६ तक महाराजा भीमसिंह के काल म।

८ सिंघवी मेघराजजी—अखेराज का पुत्र। वि स० १८५७ प्रथम ज्येष्ठ शुक्ला १२ से वि स० १८७२ कार्तिक कृष्णा १४ तक तथा वि स० १८७६ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा १२ से वि स० १८८२ माघ शुक्ला १२ तक महाराजा भीमसिंह एव मानसिंह के समय म।

९ भण्डारी चतुर्भुजजी—वि स० १८७२ कार्तिक कृष्णा १४ से वि स० १८७४ द्वितीय श्रावण शुक्ला ६ तक महाराज मानसिंह के शासनकाल म।

१० भण्डारी सागरचन्दजी—शिवचन्द का पुत्र। वि स० १८७४ द्वितीय श्रावण शुक्ला ६ स वि स० १८७६ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा १२ तक महाराजा मानसिंह के समय मे।

११. सिंघवी फौजराजजी—गुलराज का पुत्र। वि. सं० १८९३ श्रावण शुक्ला १ से वि. सं० १९१२ आषाढ़ कृष्णा ३ तक। महाराजा मानसिंह एव तख्तसिंह के समय मे।

१२. सिंघवी देवराजजी—पिता फौजराजजी की मृत्यु के पश्चात् यह फौज बख्शी नियुक्त हुआ किन्तु कार्य मुहणोत विजयसिंह तथा मेहता कालूराम वि. स० १९१२ आषाढ कृष्णा ३ से वि. सं० १९१९ श्रावण कृष्णा १ तक देखते थे। वि स० १९१९ आषाढ सुदी ४ से वि. म० १९२८ कार्तिक कृष्णा ६ तक स्वयं देखते थे, महाराजा तख्तसिंह के समय मे।

१३. सिंघवी समरथराजजी—सुखराज का पुत्र। वि स० १९२९ मार्गशीर्ष शुक्ला ३ से वि. सं० १९३१ चैत्र कृष्णा ६ तक महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय के काल मे।

१४. सिंघवी करणराजजी—सूरजराज का पुत्र। वि. स० १९३१ चैत्र कृष्णा ६ से वि. सं० १९३४ आश्विन शुक्ला ५ तक महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय के काल में।

१५. सिंघवी किशनराजजी—करणराज का पुत्र। वि. सं० १९३४ आश्विन शुक्ला ५ से वि. सं० १९३५ भाद्रपद कृष्णा ३ तक जसवन्तसिंह द्वितीय के समय मे।

१६. सिंघवी बच्छराजजी—भीवराज का वंशज। वि स० १९४५ से १९५६ तक। महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय तथा सरदारसिंह के शासन काल मे।

(ग) बीकानेर राज्य

जोधपुर राज्य के संस्थापक राव जोधा के पुत्र बीका ने नवीन राज्य की स्थापना से प्रेरित होकर तथा अपने पिता की स्वीकृति से चाचा कांधल एवं नापा साखला के सहयोग से जागलू प्रदेश को जीता और रातीघाटी पर वि. सं० १५४२ मे गढ की नीव डाली व उसके आसपास मे अपने नाम से बीकानेर नगर बसाया।[1]

बच्छावतो की ख्यात मे लिखा मिलता है कि बीका जब नवीन राज्य की स्थापना के लिये जोधपुर से जांगलू की ओर रवाना हुआ तो उस समय बोल्हा का सातवां वंशधर बच्छराज (या वत्स-राज) नामक एक जैन मुत्सद्दी भी उसके साथ था। बच्छराज एक कुशल योद्धा एवं धुरंधर राजनीतिज्ञ था। वह मण्डोर के राव रणमल तथा जोधपुर के राव जोधा के साथ रहकर भी काम कर चुका था। बच्छराज की इस योग्यता के फलस्वरूप बीका को नवीन राज्य स्थापना एवं उसके प्रारंभिक संचालन मे काफी सहयोग मिला। इससे प्रभावित होकर राव बीका ने उसे अपना मत्री बनाया, 'पर भूमि पचानन' की उपाधि से विभूषित किया तथा बच्छराज के नाम से 'बच्छासर' नामक गांव बसाया। इसी बच्छराज के नाम से इसके वंशज आगे चलकर बच्छावत के रूप में प्रसिद्ध हुए।

ओझाजी के अतिरिक्त बीकानेर राज्य के विभिन्न इतिहासों मे उक्त ख्यात का उपर्युक्त विवरण उपलब्ध नही होता अपितु बीका जब नवीन राज्य की स्थापना के उद्देश्य से जोधपुर से वि. सं० १५२२ मे रवाना हुआ तो कामदारो के रूप मे वेदलाला, लाखणसी, कोठारी चौथमल तथा बच्छराज के दोनो पुत्र—बच्छावत मेहता वरसिंह व नारसिंह आदि जैनवीरों का उसके साथ रवाना

1. ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ९६

होने का उल्लेख प्राप्त होता है ।[1] किन्तु डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा न बच्छावतो की ख्यात के उपर्युक्त वृतान्त का अवश्य समर्थन किया है और यह भी लिखा है कि वरसिंह, वेद मेहता लाला तथा लाखणसी आदि को बीका ने बीकानेर राज्य के दायित्वपूर्ण पदो पर भी नियुक्त किया था ।[2]

इन दोना ही विवरणो से यह स्पष्ट है कि बीकानेर राज्य की स्थापना मे बच्छराज तथा वदलाला, लाखणसी, कोठारी चौथमल, बच्छावत नारसिंह, वरसिंह आदि जैन महापुरुषो के रूप मे राव बीका को काफी सहयोग प्राप्त हुआ ।

मेहता कर्मचन्द बच्छावत

उपर्युक्त बच्छराज की चौथी पीढी मे सग्रामसिंह हुआ । यह सग्रामसिंह भी बीकानेर के महाराजा कल्याणमल (वि स० १५९८ १६३०) का तथा महाराजा रायसिंह (वि स० १६३० ६८) का दीवान रहा । इसकी मृत्यु के पश्चात् महाराजा रायसिंह ने उसके पुत्र कर्मचन्द को दीवानगिरी की खिलअत दी तथा सिरोपाव, हाथी, पालकी आदि भेंट स्वरूप प्रदान की । वि स० १६२८ के श्रावण शुक्ला ११ को कर्मचन्द के यहा रायसिंह गोठ जीमने गया, उस समय कर्मचन्द ने रायसिंह को पाच हजार रुपये नजर किये ।[3] महाराजा कल्याणमल तक बीकानेर राज्य के सम्बन्ध मुगल साम्राज्य मे अधिक अच्छे नही थे । उन दिनो मुगल सत्ता से बिगाड रखना राज्य के हित म नही था । कर्मचन्द इस तथ्य की गहराई को अनुभव करता था, अत उसन महाराजा रायसिंह को दिल्ली की बादशाहत से सम्बन्ध सुधारने की सलाह दी ताकि राज्य को स्थायित्व व शान्ति प्राप्त हो सके ।[4] रायसिंह न सलाह की उपयोगिता स्वीकार की और बादशाह अकबर से सम्बन्ध सुधारन का प्रयास किया जिसम काफी सफलता प्राप्त हुई । मेवाड के महाराणा उदयसिंह की पुत्री जसमादे से रायसिंह के विवाह के अवसर पर विवाह की सम्पूर्ण व्यवस्था का दायित्व कर्मचन्द ने ही निभाया ।[5] वि स० १६४५ मे बीकानेर क वर्तमान किले का निर्माण कार्य आरभ कराया जो वि स० १६५० मे पूर्ण हुआ । इस निर्माण कार्य की देख रेख का सम्पूर्ण दायित्व भी महाराजा रायसिंह न कर्मचन्द को ही सौपा ।[6]

कर्मचन्द कुशल प्रशासक ही नही, अपितु योग्य योद्धा भी था । नागपुर से मिर्जा इब्राहिम जब ससैन्य बीकानर पर आक्रमण करन आया तब कर्मचन्द ने उसका वीरतापूर्वक मुकाबला कर उसे पुन लौटने के लिए मजबूर कर दिया । गुजरात की चढाई और मिर्जा मुहम्मद हुसन को हराने मे भी कर्मचन्द महाराजा रायसिंह के साथ रहा । सोजत, जालोर तथा सिन्ध की विजय म भी कर्मचन्द का योगदान काफी स्मरणीय व महत्त्वपूर्ण रहा ।

कर्मचन्द पर बादशाह अकबर की भी विशेष कृपा थी । किन्ही कारणो से महाराजा रायसिंह जब कर्मचन्द से अप्रसन्न हो गया तो यह दिल्ली जाकर अकबर के पास ही मृत्यु पर्यन्त रहा ।[7]

---

१ ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास द्वितीय भाग पृ० ७५२, २ वही पृ० ७५२
३ डॉ० दशरथ शर्मा—दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० ६१
४ वही, पृ० ६१–६२, ५ वही, पृ० १०७
६ ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १७६
७ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० १३१३

कर्मचन्द के जीवन और कार्यों का वर्णन प्रमोद माणिक्य गणि के शिष्य जयसोम द्वारा रचित "कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्," मे विस्तार से मिलता है ।

वेद मेहता महाराव हिन्दूमल :

राव बीका द्वारा बीकानेर राज्य की स्थापना में एक प्रमुख सहयोगी वेद मेहता लाखणसी का सातवां वंशधर तथा वेद मेहता मूलचन्द का पुत्र हिन्दूमल बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह (वि. स० १८४४-८५) और रत्नसिंह (वि. स० १८८५-१९०८) का समकालीन एक प्रतिभा सम्पन्न और दूरदर्शी प्रशासक था । इसी की प्रबन्ध-कुशलता के फलस्वरूप जब तक यह जीवित रहा, बीकानेर मे पोलिटिकल एजेन्ट रखने की आवश्यकता अनुभव नही हुई । इसने राज्य के प्रत्येक कार्य को बड़े मनोयोग, बुद्धिमानी और चतुराई से निपटाया ।

यह महाराजा सूरतसिंह के समय मे वि. सं० १८८४ मे सर्वप्रथम राज्य-सेवा मे प्रविष्ट होकर दिल्ली मे वकील नियुक्त हुआ । दिल्ली मे सम्पन्न कार्यो व इसकी योग्यता से प्रसन्न होकर महाराजा रत्नसिंह ने इसे अपना दीवान बनाया तथा 'राजमुद्रा' लगाने जैसा विश्वसनीय व महत्वपूर्ण कार्य भी इसी ही सौंपा[1] वि. सं० १८८६ के श्रावण मास मे अंग्रेज अफसर जार्ज क्लार्क जब शेखावाटी में आया तो हिन्दूमल ने उस समय उससे भेंट कर बीकानेर राज्य में होने वाली लूटमार की बड़ी समस्या को सुलझाया, गढ़ियो को नष्ट करवाया एवं उनके स्थान पर थाने बिठवाये ।[2] वि. सं० १८८८ मे दिल्ली के बादशाह मुहम्मद अकबरशाह (द्वितीय) की ओर से महाराजा रत्नसिंह के पास जब खिलअत भेजी गई, उस अवसर पर किले के बाहर आयोजित समारोह मे वेद मेहता हिन्दूमल की सेवाओ से प्रसन्न होकर महाराजा रत्नसिंह ने उसे 'महाराव' का खिताब दिया एवं उसकी हवेली पर मेहमान होकर उसको सम्मानित किया ।[3]

वि सं० १८९१ मे अंग्रेज गवर्नर जनरल के एजेन्ट कर्नल एल्विस का एक पत्र महाराजा को प्राप्त हुआ, जिसमे बीकानेर राज्य के सीमा सम्बन्धी प्रबन्ध व निर्णय हेतु महाराजा रत्नसिंह को बुलवाया किन्तु महाराजा स्वयं नही गया और मेहता हिन्दूमल को भेज दिया ।[4] हिन्दूमल ने सीमा सम्बन्धी झगडो का निपटारा करवाया, जिसमे राज्य मे शान्ति स्थापित हुई । वि. सं० १९०२ में सिक्ख युद्ध के समय हिन्दूमल भी बीकानेर की सेना के साथ था । उस समय उसके द्वारा की गई सेवाओ से प्रसन्न होकर तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर जनरल सर हेनरी हार्डिन्ज ने उसको शिमला मे आमन्त्रित कर खिलअत प्रदान की ।[5]

महाराजा रत्नसिंह का वि. सं० १८९६ में उदयपुर के महाराणा सरदारसिंह की राजकुंवरी के साथ विवाह के अवसर पर हिन्दूमल भी महाराजा के साथ गया । उस समय वहां हिन्दूमल की कार्यकुशलता से प्रभावित होकर महाराणा ने उसे 'ताजीम' का सम्मान दिया तथा मेवाड के पोलिटिकल अफसरों के पास जो मुकदमे आदि चल रहे थे उनको तय कराने का दायित्व उसे सौपा गया, जिसे उसने बडी तत्परता व कुशलता से पूर्ण किया । इसी प्रकार महाराणा सरदारसिंह 'गया-यात्रा'

---

१. ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४१४,
२. वही, पृ० ७५६
३. वही. पृ० ४२० एव ७५६,
४. वही, पृ० ४२२,
५. वही, पृ० ४२७ एव ७५६-५७

सम्पन्न करते हुए वि स० १८९७ मे बीकानेर लौटे और महाराजा रत्नसिंह की राजकुवरी से विवाह किया तो महाराणा एव महाराजा दोनो ने ही हिन्दूमल की हवेली पर जाकर उसका आतिथ्य ग्रहण किया। कर्नल सदरलैंड का वि स० १९०४ मे जब बीकानेर आगमन हुआ तो हिन्दूमल बीमार होते हुए भी महाराजा के साथ वह उसकी पेशवाई को गया। वापस लौटते हुए उसकी हालत अधिक बिगड गई एव ४२ वर्ष की अल्प आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई।[1]

हिन्दूमल अपने विनम्र स्वभाव, कार्यकुशलता व प्रशासनिक योग्यता के कारण महाराजा रत्नसिंह का ही नही अपितु अग्रेज अधिकारियो का भी प्रिय बन गया। इसकी मृत्यु पर कप्तान जक्सन ने वि स १९०४ की माघ शुक्ला ७ के पत्र मे शोक प्रकट करते हुए हिन्दूमल की योग्यता की काफी प्रशसा की।[2] महाराजा रत्नसिंह ने अपने प्रिय दीवान की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिये 'हिन्दूमल कोट' नामक स्थान बनवा दिया।[3]

इसी प्रकार बीकानेर राज्य के शासन प्रबन्ध मे अनेक जैनियो ने सैनिक व राजनीतिक योगदान देकर अमूल्य सेवाए दी हैं। स्थानाभाव के कारण उन सबका वृत्तान्त यहा प्रस्तुत करना सभव नही है। अत उपर्युक्त जैन महापुरुषो के साथ उनका निम्नानुसार सक्षिप्त उल्लेख ही किया जा रहा है—

दीवान

१ वच्छराज या वत्सराज—राव बीका के समय मे दीवान।

२ वेद मेहता लाखणसी—राव बीका के समय मे तथा बीकानेर राज्य के आरम्भ काल मे दीवान।

३ मेहता करमसी वच्छावत—राव लूणकरण (वि स० १५६१–८३) के समय मे दीवान। यह वच्छराज का पुत्र था।

४ मेहता वरसिंह वच्छावत—करमसी का छोटा भाई। रावजैतसिंह (वि स० १५८३ ९८) के समय मे दीवान।

५ मेहता नगराज वच्छावत—वरसिंह का पुत्र। राव जैतसिंह के समय मे दीवान।

६ मेहता सग्रामसिंह वच्छावत—नगराज का पुत्र। राव कल्याण मल (वि स० १५९८ १६३०) के समय मे।

७ मेहता कर्मचन्द वच्छावत—सग्रामसिंह का पुत्र। राव कल्याणमल तथा महाराजा राय सिंह (वि स० १६३०-६८ के समय मे दीवान।

८ वेद मेहता ठाकुरसी—उपर्युक्त वेद मेहता लाखणसी का पाचवा वशधर। महाराजा रायसिंह के समय मे।

---

१ ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७५६-५७

२ पाउलेट—गजेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट, पृ० ८५

३ (i) ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७५७
(ii) यह स्थान बीकानेर सभाग और श्रीगगानगर जिले मे पाकिस्तान की सीमा पर स्थित है।

९. मेहता भागचन्द व लक्ष्मीचन्द—मेहता कर्मचन्द वच्छावत के पुत्र। महाराजा सूरसिंह (वि. सं० १६७०-८८) के समय मे वि. सं० १६७०-७१ के वर्ष मे।

१०. अमरचन्द सुराणा—महाराजा सूरतसिंह (वि. सं० १८४४-१८८५) के समय मे।

११. वैदमेहता महाराव हिन्दूमल—महाराजा रत्नसिंह (वि. सं० १८८५-१९०८) के समय में।

१२. मेहता किशनसिंहजी—महाराजा डूंगरसिंह (वि. स० १९२९-४४) के समय मे वि. सं० १९३५ में एक वर्ष तक।

१३. इसी प्रकार राखेचा मानमल जी तथा कोचर मेहता शहामलजी का उल्लेख भी बीकानेर राज्य के इतिहास मे दीवान के रूप मे मिलता है।

(घ) किशनगढ़ राज्य

किशनगढ़ अजमेर जिले मे स्थित है। जोधपुर के महाराजा उदयसिंह (वि. सं १६४०-५१) के छोटे पुत्र किशनसिंह ने बादशाह जहांगीर के शासनकाल मे अपने बाहुबल से सेठोलाव स्थान को जीतकर वि. सं० १६६८ की माघ शुक्ला पंचमी को गुन्दोलाव झील के सुरम्य तट पर अपने नाम से किशनगढ़ की स्थापना की तथा इसे अपने नवीन राज्य की राजधानी बनाया।[1] इस राज्य की स्थापना से लेकर आगे के काल में जो-जो जैन दीवान हुए, उनका संक्षिप्त विववरण इस प्रकार है—

१. मुहणोत रायचन्द्रजी—ये उपर्युक्त किशनसिंह के साथ जोधपुर से आये। किशनगढ राज्य व नगर बसाने मे काफी सहयोग दिया। महाराजा किशनसिंह (वि. सं० १६६२-७२) के समय मे प्रथम जैन दीवान बने तथा वि. सं० १७२० तक दीवान पद पर कार्य करते रहे।

२. मेहता कृष्णसिंह मुहणोत—महाराजा मानसिंह (वि. सं० १७१५-६३) के समय मे दीवान रहे।

३. मेहता आसकरण मुहणोत—महाराजा राजसिंह (वि. सं० १७६७-१८०५) के समय मे दीवान रहे।

४. मेहता रामचन्द्र मुहणोत—महाराजा बहादुरसिंह (वि. सं० १८०६-३८) के समय मे।

५. मेहता हठीसिंह मुहणोत—महाराजा बहादुरसिंह के समय मे दीवान रहे।

६. मुहणोत हिन्दूसिंह—महाराजा बहादुरसिंह के समय में माईदासजी के साथ दीवानगी की।

७. मेहता जोगीदास मुहणोत—महाराजा विड़दसिंह (वि सं० १८३८-४५) तथा प्रतापसिंह (वि. सं० १८४५-५४) के समय मे दीवान रहे।

८. मेहता चेनसिंह मुहणोत—महाराजा प्रतापसिंह के समय में दीवान रहे।

९. मेहता शिवदास मुहणोत—महाराजा कल्याणसिंह (वि. सं० १८५४-८९) के समय मे दीवान रहे।

१०. मेहता करणसिंह मुहणोत—वि. सं० १८७७-१८९६ के मध्य दीवान रहे। इनके द्वितीय पुत्र मेहता विजयसिंह तथा पौत्र सरदारसिंह भी जोधपुर में दीवान रहे।

११. मेहता मोखमसिंह—मेहता करणसिंह का पुत्र। वि. सं० १८९६ से वि. सं० १९०८ तक दीवान रहे।

---

१. किशनगढ़ राज्य और महाराजा सुमेरसिंह, पृ०, १७-१८

उपयु क्त मुहणोत परिवार के अतिरिक्त बोथरा परिवार के सदस्य भी दीवान रहे। मेहता उम्मेदसिंह, मेहता रघुनाथसिंह, मेहता माधवसिंह आदि जन वीरो ने किशनगढ राज्य मे फौजबख्शी के पद पर भी काय किया।

(ड) सिरोही राज्य

सिरोही दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान मे स्थित और गुजरात की सीमाओ से मिला हुआ चौहान राजपूतो की देवडा शाखा का प्रसिद्ध राज्य है। यहा पर जैन मतावलम्बी सिंघी परिवार के लोगों ने लम्बे समय तक दीवानगी की। दीवान पद पर काय करने वाले ऐसे महापुरुष निम्न हैं—

सिंघी श्रीवतजी, सिंघी श्यामजी, सिंघी सुन्दरजी, सिंघी अमरसिंहजी, सिंघी हेमराजजी, सिंघी कानजी, सिंघी पोमाजी, सिंघी जोरजी, सिंघी कस्तूरचन्दजी, रायबहादुर सिंघी जवाहरचन्दजी। इन सबमे सिंघी कानजी, कस्तूरचन्दजी तथा जवाहरचन्दजी ने अलग-अलग समय मे तीन-तीन बार दीवान पद पर काय किया। एक बार वाफना चिमनलालजी दवानीवाले भी दीवान रहे।

(च) अन्य

राजस्थान के अन्य राज्यो मे भी जन मतावलम्बी दीवान व फौजबख्शी पद पर आसीन रह हैं, यथा—

प्रतापगढ़ देवलिया म सुजानमलजी बाठिया दीवान पद पर, झालावाड मे सुराणा गगाप्रसादजी महाराणा पृथ्वीसिंह के समय मे फौजबख्शी तथा इन्ही गगाप्रसादजी के पुत्र सुराणा नरसिंहदासजी फौजबख्शी एव बासवाडा राज्य मे कोठारी परिवार के अनेक सदस्य दीवान पद पर आसीन रह हैं।

इसी तरह राजस्थान के अन्य विभिन्न राज्यो, जागीरदारो व ठाकुरो के यहा पर भी मुंशी कामदार, मुत्सद्दी, अहलकार, वकील, सनिक आदि पदो पर अनेक जनियो ने बडी योग्यता पूवक काय किया है, जिनकी सूची बहुत लम्बी होने के कारण यहा देना सभव नहीं है।



४० | जयपुर के जैन दीवान

•

पं० भंवरलाल जैन

जयपुर-निर्माण से पूर्व जयपुर राजवंश के पूर्वजों का इस ढूंढाड़ प्रान्त मे एक हजार वर्ष से दौरदौरा रहा है। विक्रम की १०-११वी शती से यह कछवाहा वश मध्यप्रदेश से आकर राजस्थान में वसा है और विभिन्न स्थानो पर इन्होने अपनी राजधानियाँ वनाई है। तभी से जैनो का इनके साथ विशेष सम्पर्क रहा है। नरवर—ग्वालियर से आकर इस वंश ने सर्वप्रथम दौसा मे जो उस समय धवलगिरि के नाम से विख्यात था—अपनी राजधानी वनाई। दौसा के वाद खोह रेवारियान—जो शांतिनाथजी की खोह के नाम से प्रसिद्ध है—वहाँ राजधानी वनी। इसके वाद रामगढ पर अधिकार हुआ और फिर आमेर मे। यह सब स्थान परिवर्तन ११-१२वी शताव्दी मे हो गया। तत्पश्चात् विक्रम संवत् १७८४ मे जयपुर वसाया गया। इस सुन्दर नगर को वसाने वाले अद्भुत प्रतिभाशाली महाराजा सवाई जयसिंह थे जिनका शासन काल वि० स० १७५६ से १८०० तक था। वे जैनों के काफी सम्पर्क में थे। कर्नल टाड ने अपने ग्रंथ मे लिखा है—जैनियों को ज्ञान-शिक्षा में श्रेष्ठ जानकर जयसिंहजी उन पर अत्यन्त अनुग्रह रखते थे। ऐसा भी प्रकट होता है कि उन्होने जैनियो के इतिहास और धर्म के सम्बन्ध मे स्वय शिक्षा प्राप्त की थी। [पृष्ठ ६०१]

उक्त राजवंश जब नरवर से इधर आया तब कई जैन घराने इनके साथ आये प्रतीत होते है। पहले भी इस प्रान्त मे जैन काफी थे व्यापार वढ़ा हुआ था। महाराजा सोढदेवजी सं० १०२३ मे दौसा मे राज्य गद्दी पर वैठे—उस समय निरभैराम छावड़ा नामक जैन दीवान थे—ऐसा उनके वंशजो से ज्ञात हुआ है। इनके वाद इस वंश में कई जैन दीवान हुए हैं।

११वी शती से लेकर शताधिक जैन दीवान हुए हैं—पर उनका कोई क्रमबद्ध इतिहास नही मिलता। लेखक को अब तक करीब ५५ जैन दीवानों की जानकारी मिली है पर वे सब १६वी शताब्दी के वाद के हैं। पहले की खोज अपेक्षित है। यहाँ प्रमुख जैन दीवानों का परिचय दिया जा रहा है।

रामचन्द्र छाबड़ा :—इनका दीवान-काल वि० सं० १७४७ से १७७६ तक था। इनके पिता और दादा भी दीवान रह चुके है। इन्होंने राज्य की महत्त्वपूर्ण सेवाये की हैं। अन्तिम मुगल सम्राट् औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उनके लड़को में राज्यगद्दी के लिए लड़ाई हुई। विजयी के विपक्ष में रहने के कारण तथा अन्य कारणो से आमेर पति जयसिंह से वहादुरशाह ने नाराज होकर सं० १७६४ मे आमेर पर अपना प्रवन्धक नियुक्त कर दिया और जयसिंह को आमेर छोड उदयपुर चला जाना

पड़ा। उनके साथ दीवान रामचन्द्र आदि भी थे। दीवान रामचन्द्र राज्य खोकर कैसे बैठते ? कुछ फौजें एकत्र की, कुछ और उपाय किये और स्वयं आमेर के प्रबन्धकों पर टूट पड़े और उन्हें मार भगाया। दीवानजी वीर थे और स्वाभिमानी भी। विभिन्न इतिहासकारों ने फौज आदि के सम्बन्ध में विभिन्न रूप से वर्णन करते हुए रामचन्द्र के नेतृत्व को स्वीकार किया है और मुगलों से आमेर खाली कराने का श्रेय इन्हें ही दिया है। मुगल दरबार में इससे रामचन्द्र के प्रति नाराजगी स्वाभाविक थी। शाहजादा जहाँ दाराशाह ने १७ जुलाई, सन् १७०६ के अपने पत्र में उदयपुर वालों को लिखा था कि जयसिंह के नौकर रामचन्द्र दीवान ने नालायक और बेहूदा कार्यवाही की—बादशाही नौकरों से लड़ाई की। अतः जयसिंह उसे निकाल दें। इससे दीवान रामचन्द्र का आमेर पर कब्जा करना स्पष्ट है।

दीवान रामचन्द्र जयसिंहजी के अधिक प्रिय थे। उस समय और भी दीवान थे, पर प्रमुख रामचन्द्र ही थे।

दीवान रामचद्र के दादा वल्लूशाह थे। मुगल बादशाह औरंगजेब के समय में छत्रपति शिवाजी के पास महाराजा रामसिंहजी की तरफ से वल्लूशाहजी ने सुलह की बातचीत की थी और शिवाजी को कैद कर लेने पर उन्हें छुड़ाकर लाने में पूरा सहयोग दिया था। यह संवत् १७२३ की घटना है

वल्लूशाह के पुत्र एवं रामचन्द्र के पिता विमलदास भी दीवान थे जो जाटों के साथ युद्ध में काम आये थे। लालसोट के पास इनकी छत्री बनी थी, ये वीर योद्धा थे। रामगढ़ में विमलपुरा नामक मोहल्ला इन्हीं के नाम से बसा था। इनकी हवेली वहाँ थी।

दीवान रामचन्द्र धार्मिक व्यक्ति थे। आमेर और रामगढ़ के बीच साहीवाड़ ग्राम में आपने संवत् १७४७ में एक मंदिर बनवाया था जो आज मौजूद है। जब रामचन्द्रजी राजा जयसिंहजी के साथ उज्जैन में रहते थे तो वहाँ भी एक मंदिर बनवाया और जब दिल्ली में रहते थे तो वहाँ भी मन्दिर बनवाया। संवत् १७७० में भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति के पट्ट महोत्सव में आप अगुआ थे। इनका जीवन धार्मिक था। राज्य सेवा के विशेष अवसरों पर इन्हें राज्य से इनाम, जागीर आदि मिले हैं। सांभर पर जयपुर जोधपुर में तनाजा होने पर आपने ही आधा-आधा हिस्सा का बटवारा कर झगड़ा मिटाया था। फलतः आपको सालाना नमक मिलने का पट्टा भी दिया गया था।

दीवान किशनचन्द —ये रामचन्द्रजी के पुत्र थे। राज्य सेवा में विशिष्ट कार्य करने से सं० १७६७ में इन्हें ६०० बीघा जमीन मिली। जयपुर की ओर से बसवा और बाद में टोंक के प्रबन्धक रहे। सं० १८१५ में इन्हें और जागीरें मिलीं और सं० १८१८ में इनका स्वर्गवास हो गया।

दीवान भीमसिंह —ये किशनचन्दजी के लड़के थे। सं० १८५५ से सं० १८५६ तक प्रधान दीवान रहे। वैसे सं० १८१६ से सं० १८६७ तक इनका राज्य सेवा काल था। सं० १८६७ में इनका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार इस वंश ने पाँच-छः पीढ़ी तक उच्च पद पर रहकर राज्य की सेवा की।

महामंत्री मोहनदास —ये मिर्जा राजा जयसिंह के महामंत्री थे। मिर्जा राजा का राज्यकाल सं० १६७८ से सं० १७२४ तक का था। मोहनदासजी के पूर्वज एवं वंशज में अनेक व्यक्ति दीवान हुए हैं। बड़जात्या गोत्रीय मोहनदास संघी कहलाते थे। इनके [illegible] में संघी उदा का नाम सबसे प्रथम

मिलता है। 'करकंडु चरित' की प्रशास्ति में इनका नाम आया है। इनके पौत्र डालू ने सं० १६६३ में व्रत के उद्यापन मे यह ग्रंथ भेंट किया था। उदा के पुत्र मल्लिदास के लिए 'संघभार' धुरन्धर 'संघही' शब्दों का प्रयोग शिलालेखो में हुआ है। इनके नाम कही मालीजै भौंसा, कही मल्लिदास, कही मालू और कही श्रीमाला मिलते हैं। ये वड़े प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। इन्ही के नाम से इनका वंश आज भी मालावत कहलाता है।

मल्लिदास के लड़के डालू थे जो राज्य मे दीवान थे। ये वडे ईमानदार और स्वाभिभक्त थे। किसी के वहकावे मे आकर राजा नाराज हो गये और इन पर जुर्माना कर दिया। डालू के भाई खेतसी थे और उनके लड़के मोहनदास। इनका जन्म सं० १६४५–५० के बीच होना संभव है। सं० १६६३ मे इनका विवाह हुआ। ये वडे विचक्षण थे। इनका राज्य सेवा काल मिर्जा राजा जयसिंह के राज्यकाल के प्रारंभ से ही था और सं० १७१६ के वाद तक रहा। सं० १७१४ में इन्होने आमेर मे तीन शिखर का विशाल मदिर वनवाना प्रारंभ किया और स० १७१६ मे उसकी प्रतिष्ठा हुई। इसका शिलालेख म्युजियम मे मौजूद है। ये वड़े धर्मात्मा, कुशल राजनीतिज्ञ और सफल प्रशासक थे।

दीवान कल्याणदास :—ये मोहनदास के लड़के थे। औरंगजेब द्वारा शिवाजी की पकड़, कैद और छद्मवेश मे निकलने आदि की सारी प्रतिदिन की घटनायें दीवान परकालदास आगरा से इन्हें आमेर मे लिख भेजते थे।

दीवान अजीतदास :—ये मोहनदास के तृतीय पुत्र थे। ये सं० १७७० में आयोजित भट्टारक देवेन्द्र कीर्त्ति के पट्टोत्सव मे सम्मिलित हुए थे। जयपुर वसने के साथ ये जयपुर में आ गये और सं० १७८८ मे विशाल मंदिर वनवाया।

दीवान संघी हुकमचन्द :—उक्त वंश मे चार पीढी वाद संघी हुकमचन्द और संघी झूंथाराम का नाम मिलता है जो प्रख्यात व्यक्ति थे। संघी हुकमचन्द फौज के इंचार्ज थे और स० १८८१ से स० १८९२ तक इनका राज्य सेवा काल माना जाता है। इनको राव वहादुर का खिताब था। ये वड़े वहादुर और वीर थे। जयपुर राजा के नावालगी मे ये संरक्षक भी थे। इन्होने एक मन्दिर वनवाया जो संघीजी की नसियां के नाम से जाना जाता है। इनके पुत्र विरधीचन्द भी दीवान थे, जिनका सेवा काल स० १८८८ के आसपास था।

संघी झूंथाराम :—ये सघी हुकमचन्द के छोटे भाई और वड़े प्रतिभा सम्पन्न, मेधावी राजनीतिज्ञ और शासन की अद्भुत योग्यता वाले व्यक्ति थे। इनका जीवन राजनैतिक उथलपुथल मे ही वीता। ये कठोर और ईमानदार शासक थे। इनके मंत्रित्व काल में कोई चोरी नही होती थी। गिरी हुई कोई भी चीज या तो स्वयं मालिक लेता या पुलिस। ये अपराधों पर कड़ी सजायें देते थे।

अंग्रेजों के साथ जयपुर की संधि सन् १८१७ में हुई जिसके अनुसार वार्षिक खिराज (टैक्स) देना तय हुआ। उस समय मुसाहिव रावल वैरीसालसिंह थे। संघीजी को यह गुलामी पसन्द नही थी। अंग्रेज तीन वार पहले भी प्रयत्न कर चुके थे—पर सफलता न मिली। अव की रावलजी को पक्ष में लेकर यह संधि हुई जिससे रावलजी से भी कई लोग नाराज रहने लगे। राजा जगतसिंह के युद्ध में रत रहने, शरावी और भोगविलासी होने तथा अंग्रेजों के टैक्स आदि के कारण खजाना खाली हो

गया और सन् १८१८ मे राजा का अपुत्र अवस्था म स्वर्गवास हो गया। फलत और लोग अपना हक जमाने लगे। पर भटियानी रानी गर्भवती थी। सन् १८१९ मे जयसिंह तृतीय का जन्म हुआ और राजमाता राज्य काय देखने लगी। वह स्वतत्रता प्रेमी थी। अग्रेजो का दखल उसे पसन्द नही था। सघी भी इसी प्रकृति के थे। आर्थिक स्थिति को दृढ करने हेतु सघीजी को राजस्व मत्री बनाया गया पर मुसाहिब रावलजी के साथ इनकी नही बनी। वे अग्रेजो के हिमायती थे और ये अग्रेजो के विरोधी, फलत दोनो मे अनबन बढती गई और राजनतिक पार्टिया बन गई। राजमाता ने रावलजी को बहुत समझाया। पर उन्हें अग्रेजो का बल था। सघीजी के विरुद्ध अग्रेजो को भडकाया गया। राजनतिक सघष म कभी कोई शक्तिशाली बनता और कभी कौन। सघी मुख्य मत्री बना। उसने शेखावटी के झगडे निपटाने का प्रयत्न किया, राजस्व बढाया और जनता मे अमन किया। पर ज्योही राजमाता मरी और सयोगवश जयसिंह तृतीय भी १७ वष की अवस्था मे काल कवलित हो गये सघी के विरोधियो को मौका मिला और इन्हें बदनाम किया गया—राजा का हत्यारा बताया। पर जयसिंहजी की रानी चन्द्रावतजी ने इसे झूठा इल्जाम माना और सघी को ईमानदार और योग्य व्यक्ति पाया। सघी ने त्यागपत्र दिया पर स्वीकार नही किया। चन्द्रावतजी भी स्वतत्रता प्रेमी थी। पर अग्रेजो के कुचक्र चलत रहे और वे कूटनीति से ताकत मे आते रहे। अग्रेजो के जमाने मे आजादी के दीवानो की जो स्थिति सारे देश मे हुई, वही सघी और उनके साथियो की भी हुई। राजा की हत्या का अपराध लगाया पर उसमे विरोधियो को सफलता नही मिली। राज्य विद्रोह के षड्यत्र का अपराध जो देश प्रेमियो के लिए लगाया जाता था उसी के तहत स० १८९२ मे इन्हें किले म नजर कैद किया गया। वही लगभग स० १८९५ मे चुनारगढ किले मे उनका स्वर्गवास हो गया।

इस प्रकार अग्रेजो और उनके पक्षपातियो का एक काटा निकल गया। कई इतिहासकारो ने सघी को बदनाम किया है पर वे इतिहासकार अग्रेजों से या विरोधियो स प्रभावित थे। निष्पक्ष इतिहासकार सघी को ईमानदार ही पायेंगे।

दीवान श्योजीराम एव अमरचन्द —जयपुर के इतिहास मे दीवान अमरचन्द बडे प्रख्यात हो गये हैं। देश और जनता की सेवा मे हसते हसते प्राणो की बलि देन वाले इस अमर शहीद का नाम सदा याद रहेगा। इनके पिता श्योजीराम भी दीवान थे। तीन राजाओ (१) महाराजा पृथ्वीसिंह (स० १८२४ से १८३५), (२) प्रतापसिंह (स० १८३५ स १८६०) और (३) जगतसिंह (स० १८६० से १८७५) के शासन काल मे स० १८३४ से १८६७ तक श्योजीरामजी के दीवान होन का उल्लेख मिलता है। ये बडे धर्मात्मा और वीर पुरुष थे। मनिहारो के रास्ते म स्थित बडे दीवानजी का जन मदिर तथा दि० जन सस्कृत कॉलेज भवन इन्ही का बनाया हुआ है।

दीवान अमरचन्दजी का दीवान काल स० १८६० से १८९२ तक का है। इन्होने बचपन स धार्मिक शिक्षा ग्रहण की। ये विलक्षण प्रतिभाशाली और शान्त स्वभाव के थे। गरीबो के सेवक, समाज सुधारक और मूक दानी थ। विवाह मे लडकी वालो को निकासी के समय मूठ (मुट्ठीभर रकम) देन का रिवाज उस जमाने मे था। गरीब लोगो को इससे परेशान देख आपने दो आने देन का रिवाज चालू किया जो गत २५ वष पूव था। आज तो मूठ देने का रिवाज ही उठ गया। इन्होने कई ग्रन्थ लिखाये। लालजी साड के रास्ते मे स्थित छोटे दीवानजी का मदिर इन्ही का बनाया हुआ है। ये राज्य और जनता के खरख्वाह थे और साथ ही स्वतन्त्रता प्रेमी। अग्रेजी राज्य जयपुर मे न

जमने देने मे इनका सहयोग था। संघी झूंथाराम के सहयोगी थे। फलतः अंग्रेज और अंग्रेजों के हिमायती इनके विरोधी हो गये। इन्हें गिरफ्तार किया गया और अन्त मे देशप्रेमियों को जो सजा दी जाती है, वह अमरचन्द को दी गई। फांसी के तख्ते पर लटककर सदा के लिए अमर हो गये, पर आजादी के अंकुर बढ़ते रहे।

दीवान राव कृपाराम पांड्या :—जयपुर के इतिहास में इस वश की महान् सेवायें हैं। इनके पूर्वज चाढमलजी बड़े प्रतापी नररत्न थे। चम्पावती नाम चाटसू इन्ही के नाम से पड़ा—ऐसा विख्यात है। ये चाटसू के रहने वाले थे और वहां चौधरी थे। इस वंश मे दीवान राव जगरामजी की मुगल दरवार मे पहुँच थी। ये जयपुर के सं० १७७० से १७६० तक दीवान थे।

इनके पुत्र राव कृपाराम वड़े विलक्षण व्यक्ति थे। इनका दीवान काल तो सं० १७८० से १७६० तक ही था पर ये मुगल दरवार में आमेर की ओर से प्रतिनिधि थे। वादशाह का इन पर काफी अनुग्रह था। लक्ष्मी की इन पर दया थी। इतिहासकार कर्नल टाड् इन्हें दिल्ली पति का कोषाध्यक्ष मानता है। जयपुर निर्माण मे इन्होने एक करोड़ रुपये दिये थे। इनकी पुत्री के विवाह मे महाराजा जयसिंहजी हथलेवा मे कुछ गाव की जागीर देना चाहते थे पर स्वयं धनिक, वादशाह तथा राजा के कृपा पात्र होते हुए भी समाज को महत्त्व दिया और मात्र दो रुपये हथलेवा में राजाजी से दिलवाये, जो रिवाज आज भी प्रचलित है। मुगल दरवार मे अत्यधिक पहुँच होने से रजवाडों के हुत से काम ये करवा देते थे। अतः सभी रजवाड़ो मे इनकी धाक थी।

आमेर

आमेर राज्य की ओर से कई बार विशेष सेवाओ के कारण इन्हें इनामें मिली हैं। मुगल दरवार से इन्हें मनसवदारी मिली थी। जयसिंहजी और उनके भाई विजयसिंहजी का झगड़ा इन्हीं ने निपटाया था। ये धार्मिक और अपने इष्ट के पक्के थे। सूर्य का इन्हें इष्ट था। जयपुर की गलता घाटी की चोटी पर जो सूर्य का मन्दिर है, वह इन्ही का वनाया हुआ है। आमेर आदि कई जगह इन्होंने सूर्य के मन्दिर वनवाये थे। भानु सप्तमी को जो सूर्य रथ जयपुर मे निकलता है, वह इन्हीं का चलाया हुआ है। स० १८०४ मे इनका स्वर्गवास हो गया।

इनके भाई राव फतहराम सं १७६० से १८१३ तक, फतहराम के पुत्र भवानीराम स० १८४३ से १८५५ तक तथा भवानीराम के पुत्र जोखीराम भी दीवान हुए हैं। इस वंश ने काफी राज्य सेवा की है।

दीवान वालचन्द छावड़ा :—जयपुर के दीवानो मे वालचन्द और उनके पुत्र रामचन्द काफी विख्यात हुए हैं। वालचन्दजी का दीवान काल सं० १८१८ से १८२६ तक था। जयपुर मे उस समय साप्रदायिक तत्त्व उभर रहे थे। श्यामराम नामक एक सांप्रदायिक व्यक्ति राजा के मुँह लगा हुआ था। उसने जैन दीवानो के साथ राजनैतिक विरोध को साम्प्रदायिक रूप देकर जैन समाज पर काफी जुलम ढाये। स० १८१७ मे ढूंढाड़ प्रान्त मे अनेक जैन मन्दिर साप्रदायिकता की लहर मे नष्टभ्रष्ट हुए। राजस्थान पुरातत्व विभाग से प्रकाशित 'बुद्धि विलास' मे इस घटना का सही वर्णन मिलता है। दीवान वालचन्द उदार थे। साम्प्रदायिक विद्वेष में न पड़कर नव निर्माण की ओर उन्होने ध्यान दिया और अनेक नये मन्दिर खड़े करवा दिये। सं १८२१ मे विशाल इन्द्र ध्वज पूजा महोत्सव इनके

सहयोग से हुआ जिसमे दूर दूर से काफी यात्री आये। इससे सकुचित विचार वाले और भी चिढे और स० १८२६-२७ मे पुन साप्रदायिक आग फली जिसमे पण्डित टोडरमलजी आदि विद्वाना की आहुति लगी।

दीवान बालचन्दजी के पुत्र जयच‍दजी और रायच‍दजी भी वडे प्रतिभाशाली सज्जन थे। जयच‍दजी का दीवान काल स० १८२५-१८५५ तक रहा। इनके पुत्र कृपारामजी और नानच‍दजी भा दीवान हुए।

दीवान रायच‍दजी छाबडा —दीवान वालच‍दजी के तृतीय पुत्र रायचन्दजी कुशल राजनीतिज्ञ, वीर और वडे धर्मात्मा हुए हैं। इनका राज्य सेवाकाल स० १८५० से १८६४ तक का है। स० १८६२ म उदयपुर महाराजा की लडकी कृष्णा कुमारी से विवाह करने के सम्व‍ध मे जयपुर जोधपुर म काफी तनाव हुआ। युद्ध के लिए कूच हो गया। पर जयपुर के दीवान रायच‍द और जोधपुर के दीवान श्री इ‍द्रराज सिघवी के बीचबचाव और प्रयत्न से युद्ध टला। पर यह सुलह स्थायी नही रही और पोकरण के ठाकुर द्वारा जोधपुर की गद्दी पर धोकलसिह को बिठाने के प्रयत्न मे पुन युद्ध भडका। दीवान रायच‍द न जगतसिहजी को काफी मना किया कि हमे ठाकुर पोकरण का पक्ष लेकर जोधपुर पर चढाई नही करना चाहिए पर जगतसिह ने नही मानी। फलत युद्ध मे विजय त हुई पर काफी धन वर्वाद हो गया और जयपुर सकट म पड गया। शेखावटी आदि के कई झगडे उस समय चल रहे थे जि‍न्हें रायच‍दजी ने निपटाये।

जोधपुर युद्ध के समय सब फौजें जोधपुर थी तो जोधपुर की ओर से अमीरखा पिंडारी ने जयपुर पर आक्रमण कर दिया और लूटखसोट करने लगा। जगतसिहजी ने जब यह सुना तो वे जयपुर रवाना हुए। पर माग मे अमीरखा तथा मारवाड वालो से पिंड छुडाना मुश्किल हो गया। फौजें थकी हुई थी। लुटेरे वडा जुल्म करने लगे। राजा हतोत्साह हो किंक्तव्यविमूढ हो गया तो दीवान रायचन्द न वणिक बुद्धि से काम किया और एक लाख रुपया पिंडारी को देकर जगतसिहजी को सकुशल जयपुर पहुँचाया और पिंडारी को वापस लौटाया।

रायच‍दजी जहाँ गूढ नीतिज्ञ, वीर योद्धा और कुशल प्रशासक थे वहाँ वे वडे धर्मात्मा भी थे। इ‍होने स० १८६१ म विशाल पचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई। इनका स्वगवास स० १८६४ मे हो गया। इनके दत्तक पुत्र दीवान सघी मन्नालाल ने दीवानगिरी की और फौजवख्शी रह।

दीवान विजराम तोतूका —ये सवाई जयसिह के समय म दीवान थे। जयसिहजी की वहिन का विवाह मुगल वादशाह अपने साथ करना चाहता था। राजा द्वारा इ‍कार करना वडा मुश्किल था। पर जब राजा जयपुर म नही थे, दीवान विजराम न बू दी के हाडा बुधसिहजी के साथ उनका विवाह कर दिया। मुगल बादशाह नाराज हुए पर रणबाकुरे बू दी के हाडा और जयपुर स वर मोल लेना उचित न समझा। मन मसोस कर रह गये। सवाई जयसिहजी दीवान विजराम से वडे खुश हुए और ताम्र पत्र दते हुए उसम लिखा कि 'शाबाश रे, तुमन कछावा वश का धम रखा, महान् काय किया। हम जो रोटी मिलगी, उसम आधी तुम्हें बाटकर खायेग और हमार वशज इस वायद से नही फिरेंगे।' इ होने और भी कई महत्त्वपूण काय किये।

यहां जानकारी की दृष्टि से जयपुर राज्य मे हुए जैन दीवानो की संक्षिप्त तालिका प्रस्तुत की जा रही है[1] :—

१. मोहनदास—मिर्जा जयसिंह के महामंत्री, सं० १७१४ के शिलालेख के आधार पर।
२. कल्याणदास पुत्र मोहनदास—स० १७७० मे मौजूद थे।
३. विमलदास छावडा—आमेरपति बिशनसिंह (सं० १७४६–५६) के दीवान थे।
४. रामचन्द्र छावड़ा—स० १७४७ से १७७६ तक दीवान रहे।
५. फतहचन्द छावड़ा—सं० १७६५ से १७७१ तक दीवान रहे।
६. किशनदास छावड़ा—सं० १७६७।
७. भीवचन्द छावडा पुत्र किशनदास—सं० १८५५ से १८५६ तक।
८. जगराम पाड्या—सं० १७७४ से १७६०।
६. ताराचन्द बिलाला पुत्र केशवदास—सं० १७७३ से १७६० तक।
१०. राव कृपाराम पांड्या पुत्र जगराम—सं० १७८० से १७६० तक।
११. फतहराम पाड्या पुत्र राव जगराम—सं० १७६० से १८१३।
१२. भगतराम पांड्या पुत्र राव जगराम—सं० १७६२ से १८००।
१३. विजयराम छावड़ा पुत्र तोलूराम
१४. नैनसुख तेरापंथी—सं० १७६६ से १७७०।
१५. श्रीचन्द छावडा—सं० १७७० से १७७१।
६. कन्हीराम वैद पुत्र खेमकरण—सं० १८०७ से १८२०।
१७. केसरीसिंह कासलीवाल—सं० १८०८ से १८१७।
१८. रतनचन्द साह—सं० १८२३ से १८२५।
१६. आरतराम खिन्दूका पुत्र ऋषभदास—सं० १८१४ से १८३५।
२०. मौजीराम छावड़ा
२१. बालचन्द छावड़ा पुत्र मौजीराम—सं० १८१८ से १८२६।
२२ नैनसुख खिन्दूका पुत्र मुकन्ददास—सं० १८२१ से १८२६।
२३. जयचन्द साह पुत्र रतनचन्द—सं० १८२४ से १८३५।
२४. मोतीराम संघी गोधा पुत्र नन्दलाल—स० १८२५ से १८३४।
२५. अमरचन्द सौगाणी पुत्र भमाराम—सं० १८२६ से १८३४।
२६. जयचन्द छावड़ा—सं० १८२६ से १८५५।
२७. जीवराज संघी—सं० १८३० से १८४०।
२८. मोहनराम पुत्र जीवराज संघी—सं० १८३४ से १८६७।
२६. भागचन्द पुत्र सीताराम—सं० १८४२ से १८४६।
३०. श्योलालजी खिन्दूका पुत्र रतनचन्द—सं० १८३४ से १८६७।
३१ भगतराम बगड़ा पुत्र सुखराम—सं० १८४२ से १८८५।

---

१. यह विवरण जयपुर जैन डायरेक्टरी (पृ० १–१८ से १–२०) से साभार उद्धृत किया गया है।
—सम्पादक

३२ भवानीराम पाड्या पुत्र फतेहराम—स० १८४३ से १८५५।
३३ सदासुख छावडा पुत्र जयचन्द—स० १८५७ से १८६४।
३४ राव जाखीराम पुत्र भवानीराम
३५ ग्रमरचन्द पाटणी—स० १८६० से १८६२।
३६ श्योजीलाल छावडा पुत्र चनराम—स० १८६५ से १८७५।
३७ मन्नालाल छावडा पुत्र रामचन्द—स० १८६६ से १८६६।
३८ कृपाराम छावडा पुत्र जयचन्द—स० १८६६ से १८७५।
३९ लिखमीचन्द छावडा पुत्र जीवनराम—स० १८६६ से १८७४।
४० लखमीचन्द गोधा पुत्र भगतराम—स० १८७४ से १८८१।
४१ नोनदराम खिन्दूका पुत्र ग्रारतराम—स० १८७८ से १८८१।
४२ ग्रमोलकचन्द खिन्दूका पुत्र नोनदराम—स० १८८२ से १८८६।
४३ सघी झूथाराम पुत्र मोतीराम—स० १८८१ से १८६१।
४४ सघी हुकमचन्द पुत्र मोतीराम—स० १८८१ से १८६१।
४५ विरधीचन्द पुत्र हुकमचन्द सघी—स० १८६६ से १८६६।
४६ सम्पतराम खिन्दूका पौत्र ग्रारतराम—स० १८६१ से १८६६।
४७ मानकचन्द ग्रोसवाल—स० १६०६ से १६१२।
४८ सघी नन्दलाल गोधा पुत्र ग्रनूपचन्द—स० १८१३ से १८२८।
४९ किशोरदास महाजन—स० १७४६ से १७७६।
५० गगाराम महाजन पुत्र कालूराम—स० १८४० से १८४५।
५१ कृपाराम छावडा रामचन्द के भतीजे—स० १८६६ से १८७५।
५२ रायचन्द
५३ प्यारेलाल कासलीवाल—स० १६७६ से १६७६।
५४ नथमल गोलेछा—माधोसिहजी के समय मे दीवान थे।

४१ | स्वतंत्रता-संग्राम एवं प्रशासन में जैनियों का योगदान

•

डॉ० भँवर सुराणा

राजस्थान की दुहरी-तिहरी गुलामी की अवस्था मे स्वतत्रता-सग्राम मे भाग लेने वालो का साहस और संगठन क्षमता सदा सर्वदा वन्दनीय-अभिनन्दनीय रहेगी। राजस्थान मे स्वतत्रता संग्राम को दिशा देने और उसके लिये मर मिटने वाले दीवानो को तैयार करने वालो मे पं० अर्जुनलाल सेठी का नाम सदा स्मरण किया जाता रहेगा। उन्होने वैलूर मे साढे सात वर्षों की जेल काटी और स्वयं लोकमान्य वाल गंगाधर तिलक ने जेल से वाहर आने पर उनका हार्दिक स्वागत किया। उन दिनों कहावत मशहूर थी "अंग्रेजो मे लार्ड कर्जन, भारत मे लार्ड अर्जुन।" अंग्रेजी, फारसी, संस्कृत, अरबी पाली और हिन्दी के विद्वान् और जैन-दर्शन ज्ञाता पं० सेठी ने जयपुर मे 'वर्द्धमान् विद्यालय' के माध्यम से देश की स्वतंत्रता के लिये मर मिटने वाला निष्ठावान वर्ग तैयार किया जिसमे माणकचन्द, मोतीचन्द (शोलापुर), जयचन्द, जोरावरसिंह सम्मिलित थे। रास विहारी वसु, चन्द्रशेखर आजाद आदि से उनका सम्पर्क था और शहीद अशफाकुल्ला तथा क्रांतिवीर शौकत उस्मानी आदि को उन्होने लम्बे अर्से तक अपने पास छिपाये रखा। आरा और निमेन काडो मे उनका नाम लिया गया। दिल्ली षड्यन्त्र केस मे उनको नामजद किया गया। सरकार ने उन्हे खतरनाक मान कर सन् १९१४ मे नजरवन्द कर दिया। सारे देश ने उनकी नजरवन्दी का एक स्वर से विरोध किया पर सरकार ने उन्हे जयपुर मे वदल कर वैलूर जेल मे भेज दिया। उन्होने सरकार द्वारा दुर्व्यवहार पर भूख हड़ताल की और अन्ततः सरकार को झुकना पड़ा। सन् १९२० मे जेल से छूटने के वाद सेठीजी ने सन् १९२१ मे अजमेर मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे भाग लिया। मध्यप्रदेश मे उन्होने १८ महिने का कारावास भुगता। वहां से लौट आने पर पुनः वे अजमेर आये और उसे अपना कार्यक्षेत्र वनाया। कांग्रेस के उग्रवादी और गांधीवादी खेमो की लडाई से सेठीजी इतने खिन्न हो गये कि उन्होने अपना सव कुछ छोड़कर हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये अनथक प्रयत्न किया और अन्तत. उनकी इच्छा के अनुसार २३ दिसम्वर, १९४१ को देहावसान हो जाने पर उनको एक कब्र मे दफना दिया गया।

श्री सेठीजी की ही परम्परा के दूसरे तेजस्वी पुरुष श्री मोतीलाल तेजावत थे। उदयपुर जिले के एक छोटे से ग्राम कोलियारी मे उनका जन्म हुआ और वही ठिकाने मे कामदार के रूप में कार्य करते हुए उन्होने किसानों-गरीवो पर जागीरदारो के अत्याचार एवं अन्याय के वीभत्स रूप के दर्शन किये। श्री तेजावत ने उन जुल्मो के प्रतिरोध में ठिकाने की नौकरी छोड़ दी और 'एकी-एकता'

ग्रान्दोलन मे इन किसानो व गरीवो-भीलो के ग्रान्दोलन का सूत्रपात किया । राशमी के पास तीर्थस्थल मातृकुन्डिया मे उन्होंने किसानो को जुल्म के विरुद्ध ग्रान्दोलन के लिये तैयार किया ग्रौर महाराणा फतहसिंह को एक 21 सूत्रीय ज्ञापन पेश किया जिसमे से महाराणा ने १८ मागें मान ली । तेजावत जी की सगठन क्षमता ग्रद्भुत थी ग्रौर उसी के कारण उन पर वार वार ठिकानेदारो ग्रौर उनके कारि दो ने मारने के लिय हमले किये । भीली क्षेत्र सिरोही, दाता, पालनपुर, इडिर, विजयनगर म वे एक छत्र नेता थ । विजयनगर राज्य के नीमडा ग्राम म जब राज्य के प्रतिनिधियो से बातचीत चल ही रही थी, राज्य की सेना न पडयन्त्रपूवक ग्रचानक गोलिया बरसाना प्रारम्भ कर दिया । निहत्थे लोग थे । लगभग १,२०० लोग वही मर गये । तेजावत जी स्वय पाव मे गोली व छर्रे लगने से घायल हुए । जलियावाला वाग से भी ददनाक यह घटना थी । घायल ग्रवस्था में ही तेजावत को भील उठा ले गये ग्रौर उनको ग्राठ वष तक राज्यो की कोपदृष्टि से बचाकर 'गुप्त वास' मे रखा ।

सरकार न एक ग्रन्य व्यक्ति का सिर काट कर यह प्रचार किया की तेजावत जी का सिर काट दिया है । यह उनके ग्रान्दोलन को कमजोर करने की एक चाल थी । उनकी खोज में उदयपुर, सिरोही, इडिर ग्रादि राज्यो की सरकारो न कई गावो को ग्राग लगादी । उनकी खोज में पुलिस के स्थान पर रियासती सेना भेजी जाती थी पर वे हाथ नही ग्राये । ग्रन्तत गाधीजी के ग्राश्वासन पर उन्होने इडिर में ग्रात्मसमपण किया किन्तु रियासती शासक तो जले भुने बठे थे । उदयपुर में उनको सन् १९२९ से १९३६ तक जेल में रखा ग्रौर उसके बाद भी उन्हें नजरबन्द रखा गया । १९३८ का प्रजा मण्डल ग्रादोलन तथा १९४२ के भारत छोडो ग्रान्दोलन में उनको जेल भेजा गया ग्रौर १९४५ तक उनको नजरबन्द रखा गया । १९४७ में भारत के स्वतन्त्र होने तक वे पुलिस के घेरे में रखे जाते थे, न वे कही ग्रा जा सकत थे ग्रौर न कोई काय ही जीवनयापन के लिये कर सकते थे । ग्राजादी के सग्राम का यह ग्रनन्य योद्धा ५ दिसम्बर, १९६३ को ग्रपनी इहलीला समाप्त कर गया ।

जोधपुर रियासत के श्री ग्रानन्दराज सुराणा का नाम प्रान्त में स्वतत्रता सग्राम में भाग लेन वाला में ग्रग्रगण्य माना जाता रहेगा । उनको स्वतन्त्रता के लिये सतत् सघपरत रहने की सीख ग्रपने पिता श्री चान्दमल सुराणा से विरासत में मिली थी । उनक राष्ट्रीय विचारो को बीकानेर के महाराजा गगासिंह सहन नही कर सके ग्रौर उन्हें न केवल नौकरी से ही निकाल दिया गया, ग्रपितु बीकानेर से निर्वासित भी कर दिया गया । जयनारायण व्यास तथा भवरलाल सर्राफ के सहयोग से एक राजनीतिक सम्मेलन का व ग्रायोजन कर रहे थे । जोधपुर का सामन्ती शासन उसे बर्दाश्त नही कर पाया ग्रौर इन नेताग्रो को बाडमेर, सिवाना ग्रौर नागौर के किलो में ठूस दिया । तीनों को राजद्रोह के ग्रपराध में पाच पाच वर्ष की कठोर श्रमसहित सजा ठोक दी गई । ग्रन्तत सन् १९३१ में गाधी इरविन समझौते से उनको काल कोठरी से मुक्ति मिली । देशी राज्य लोक परिषद् काग्रेस ग्रौर १९४२ के भारत छोडो ग्रान्दोलन में उन्होने सक्रिय भाग लिया । ग्रानन्दराज जी के सवधियो को भी पुलिस ने परेशान करने में कोई कसर नही रखी । ग्रानन्दराज जी ने पुलिस के चगुल से बच कर गाजियाबाद, ग्रजमेर, उदयपुर, जयपुर, हावडा ग्रादि ग्रनेक स्थानो पर छिप कर फरारी का समय बिताया । सन् १९४५ में जब उनका वारण्ट रद्द हो गया, वे दिल्ली लौटे ग्रौर काग्रेस में काम करने लगे । १९५५ से ५७ तक व दिल्ली में काग्रेसी विधायक रहे ।

जयपुर के श्री कपूरचद पाटनी का नाम स्वतन्त्रता सग्राम के सेनानियो म सदव श्रद्धा ग्रौर

सम्मान के साथ लिया जाता रहेगा। पं० अर्जुनलाल सेठी की छत्रछाया मे शिक्षित-दीक्षित श्री पाटनी राजस्थान-मध्यप्रदेश की खादी संस्थाओ के साथ ही साथ हरिजन-सेवा और पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी कार्य करते रहे। जयपुर राज्य के अन्नकर विरोधी आन्दोलन के वे प्राण थे। जयपुर मे प्रजामंडल की स्थापना मे उनका बहुमूल्य योगदान रहा। जयपुर मे सत्याग्रह करने पर उनको ६ माह की सजा दी गई। पं० हीरालाल शास्त्री की आत्म कथा 'प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र' के अनुसार पाटनी जी ने स्वय को सदैव पद से दूर रखा। उन्होने जयपुर राज्य की लोकप्रिय सरकार मे मंत्री पद लेने से इन्कार कर दिया था।

माडलगढ़ (भीलवाडा) जिले मे जाये जन्में श्री शोभालाल गुप्त, श्री विजयसिंह पथिक के विजौलिया आन्दोलन से बाल्यकाल से ही प्रभावित हुए। अजमेर मे विद्यार्थीकाल से उन्होने असहयोग आन्दोलन को अपनाया। राजस्थान सेवा सघ के वे आजीवन सदस्य बने और 'तरुण राजस्थान' के संपादक के रूप मे १९२४ मे राजद्रोह के अपराधी बनकर एक वर्ष की सश्रम सजा काटी। महात्मा गांधी के साबरमती आश्रम में कुछ दिन रहने के बाद अजमेर मे अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भाषण देने पर एक वर्ष की सजा उनको दी गई। रचनात्मक कार्यों मे लगने के बाद सन् १९४० में वे 'दैनिक हिन्दुस्तान' के सम्पादकीय विभाग में आ गये। अगस्त १९४२ में उनको गिरफ्तार कर दो वर्ष के लिये जेल भेजा गया।

मेवाड़ प्रजामण्डल के प्रथम अध्यक्ष (मास्टर) बलवंतसिह मेहता प्रताप सभा, भारत सेवक समाज आदि मे भी सम्बद्ध रहे है। लाहौर कांग्रेस (१९२९), करांची कांग्रेस (१९३०) में प्रतिनिधि बनकर गये। श्री मेहता अजमेर मे राजनीतिक गतिविधियो में भाग लेते रहे। नौजवान भारत सभा, भारत अनुशीलन समिति आदि क्रातिकारी सगठनो के सक्रिय सदस्य श्री मेहत्ता ने मेवाड़ में सन् १९३२ में कर विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व किया। मेवाड़ प्रजामंडल के आदोलनों, १९४२ के भारत छोडो आन्दोलन आदि में बार-बार गिरफ्तार हुए और आदिवासियों के आन्दोलनो में उन्होने सक्रिय भाग लिया। स्वतत्रता के पश्चात् उद्योग मन्त्री पद पर भी श्री मेहता रहे हैं।

राजस्थान के रचनात्मक राजनीतिक कार्यकर्ताओ में श्री भूरेलाल बया का नाम उल्लेखनीय है। साइमन कमीशन के विरोध मे उठ खड़े हुए श्री बया ने बम्बई में नमक सत्याग्रह में भाग लिया। आर्थर रोड तथा यरवदा जेल मे सजा काटी। बम्बई कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता, 'संदेश' मासिक के सम्पादक श्री बया वर्षो गांधीजी के सानिध्य में रहे और उसके बाद मेवाड़ प्रजामंडल के आन्दोलनों में भागीदार बने। आदिवासियो और किसानो के सत्याग्रहो में भाग लिया और आजादी के पश्चात् श्री माणिक्यलाल वर्मा तथा श्री हीरालाल शास्त्री के साथी मत्री बने। खादी ग्रामोद्योगो मे विशेष रुचि के कारण रचनात्मक सस्थाओ से अब भी सम्बद्ध हैं।

स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान देने वालों में श्री मोतीलाल तेजावत के पुत्र श्री मोहनलाल तेजावत को नहीं भुलाया जा सकता। भारत छोडो आन्दोलन में उन्हें ६ महिने की सजा दी गई और वे सतत् मेवाड़ प्रजामंडल से सम्बद्ध रहे। ऐसे ही दूसरे सेनानी हैं श्री रोशनलाल बोर्दिया। १९३२ के कर विरोधी आन्दोलन और १९३८ के मेवाड़ प्रजामण्डल के आन्दोलनो में वे गिरफ्तार कर लिये गये। १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में भी उन्होने भाग लिया और १९४८ में उत्तरदायी

शासन की माग के आन्दोलन में पुलिस की गोली से आहत हुए। उदयपुर के ही श्री चिमनलाल वोदिया भारत छोडो आन्दोलन और नमक सत्याग्रह, विदेशी वस्त्रो की होली आदि में गिरफ्तार किये गये और उदयपुर में कर विरोधी प्रदर्शन में भाग लिया। कानोड के श्री उदय जैन मेवाड प्रजामडल के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में सामन्ती व्यवस्था से लोहा लेने के अतिरिक्त 'भारत छोडो आन्दोलन' में गिरफ्तार किये गये और उदयपुर में उन्होंने जेल काटी। मेवाड प्रजामडल के ही एक अन्य कार्यकर्ता श्री हीरालाल कोठारी को १९४२ में गाधी जयती समारोह आयोजित करने के अपराध में ६ माह के लिये नजरबन्द किया गया। नाथद्वारा के श्री कज्जूलाल पोरवाल को भारत रक्षा कानून में ६ माह के लिये नजरबन्द रखा गया। उनके ही एक साथी फूलचन्द पोरवाल को भी उतने ही समय तक नजरबन्द रखा गया। 'भारत छोडो आन्दोलन' में ही श्री रतनलाल कर्णावट को उदयपुर तथा इसवाल जेल में १३ माह तक नजरबन्द रखा गया। छोटी सादडी के श्री पूनमचन्द नाहर १९३८ व १९४२ के आन्दोलनो में जेल गये और सामन्ती अत्याचारो का विरोध करते रहे। श्री सूर्यभानु पोरवाल भी १९४२ के आन्दोलन में नजरबन्द रहे।

भीलवाडा के श्री उमरावसिंह ढाबरिया आजादी से पहले मेवाड प्रजामडल के आन्दोलनो से सम्बद्ध रहे। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के सदस्य श्री ढाबरिया १९४२ के आन्दोलन में नजरबन्द रहे। आजादी के बाद व समाजवादी दल में सम्मिलित हुए और विधान सभा के सक्रिय सदस्य रहे। आजादी के बाद दर्जनो बार वे जेल में गये। कानोड के श्री बख्तसिंह चावल, सुखलाल उदावत, माधवलाल नन्दावत, अम्बालाल नन्दावत, भवरलाल डूगरवाल, चान्दमल भानावत १९४२ के भारत छोडो आन्दोलन तथा मेवाड प्रजामण्डल के कार्यकलापो से सम्बद्ध रहे हैं।

कुशलगढ़ के श्री डाडमचन्द दोषी ने भारत छोडो आन्दोलन में भाग लिया और दोहद के जिलाधीश भवन पर तिरगा राष्ट्रीय ध्वज फहराकर आठ महिने की साबरमती में सजा भोगी। श्री कन्हैयालाल नावडिया, श्री उच्छ्वलाल मेहता, मन्नालाल तलेसरा, खेमराज श्रीमाल, कन्हैयालाल जैन, कन्हैयालाल मेहता, बापूलाल लखावत, कान्तिलाल शाह पन्नालाल शाह, शातिलाल सेठ, गुमानमल लखावत, सुजानमल शाह, किशनलाल दोषी, सोनागमल दोषी आदि प्रजामण्डल के प्रमुख कार्यकर्ता थे।

कोटा के श्री नाथूलाल जैन विद्यार्थी काल से ही आजादी की लडाई में भाग लेते रहे हैं। कांग्रेस में भाग लेने के कारण उनको होल्कर कालेज और इन्दौर राज्य से निवासित कर दिया गया। अगस्त आन्दोलन में उसका सचालन किया। भूमिगत साथियों को सहायता देना, प्रचार बुलेटिन निकालना आदि उनके जिम्मे था। १९४२ में अजमेर व कोटा में नजरबन्द रखे गये। 'दीन बन्धु' पत्र का सपादन करते हुए बीकानेर व कोटा के तत्कालीन शासको से निरन्तर लोहा लिया और कई बार जमानतें दीं। प्रजामडल और कांग्रेस से निरन्तर सबद्ध रहे। श्री जैन आजकल राजस्थान लोक सेवा आयोग के सदस्य हैं।

कोटा के ही श्री बागमल बाठिया अनहयोग आन्दोलन तथा उत्तरदायी शासन के लिये आंदोलन करने वालों में सक्रिय थे। उन्होंने कोटा में ६१ माह से अधिक का जेल भुगती। कोटा के ही श्री मोतीलाल जैन, कोटा राज्य प्रजामडल के स्तम्भ रहे हैं। किसानों पर अत्याचार के विरुद्ध

उन्होने आन्दोलनों को नेतृत्व दिया और उन्हे सगठित किया । अगस्त क्रांति मे उन्हे २ माह २४ दिन नजरबन्द रखा गया । एक सभा की अध्यक्षता करने पर उन्हे कोटा मे गिरफ्तार किया गया । वे कोटा राज्य प्रजामंडल के प्रधानमन्त्री और अध्यक्ष रहे । कोटा के श्री हीरालाल जैन ने सरकारी नौकरी छोडकर देश सेवा का व्रत लिया और प्रजामंडल से जुड गये । १९४२ में उन्होने कोटा मे शासन ठप्प करने वाले आन्दोलन मे भाग लिया । १९४६ मे कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की और उग्रपंथी 'जयहिन्द' साप्ताहिक निकाला । गोआ आन्दोलन में १९५५ मे उन्होने भाग लिया । सम्प्रति समाजवादी दल से सवद्ध हैं ।

जयपुर के स्वतत्रता सग्राम मे भाग लेने वालो मे श्री गुलाबचन्द कासलीवाल, डॉ० राजमल कासलीवाल (आजाद हिन्द फौज) जस्टिस दौलतमल भडारी, बशीलाल लुहाड़िया (एडवोकेट), मुक्तिलाल मोदी, रूपचन्द सोगानी, विजयचन्द जैन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । श्री सिद्धराज ढढ्ढा भारत छोडो आन्दोलन मे दो वर्ष बनारस जेल मे रहे । राजस्थान मन्त्रिमण्डल के सदस्य रहे और वर्तमान मे सर्व सेवा संघ से सम्बद्ध हैं ।

श्री जवाहरलाल जैन, श्री पूर्णचन्द्र जैन, श्री अरविन्दकुमार सोनी, उमरावमल आजाद, कपूरचन्द छावडा, गेन्दीलाल छावडा. दीपचन्द वक्षी, दूनीचन्द जैन (वहावलपुर), नथमल लोढा, भवरलाल वोथरा, भंवरलाल सामोदिया, मिश्रीलाल जैन, मिलापचन्द जैन, राजरूप टांक, रतनचन्द काप्टिया, वसन्तीलाल वगीचीवाला, ज्ञानप्रकाशकाला, कपूरचन्द पाटनी (जोवनेर), कैलाशचन्द वाकीवाला, फूलचन्द जैन (विधायक) भवरलाल अजमेरा आदि जयपुर राज्य प्रजामण्डल, कांग्रेस आदि के आन्दोलनो मे भागीदार वने और समय-समय पर कृष्णमन्दिर की यातनाये भी सही । श्री रामचन्द्र कासलीवाल, सोहनलाल सोगाणी, सुभद्रकुमार पाटनी आदि ने भी इन आन्दोलनो मे सक्रिय भाग लिया ।

जोधपुर मे श्री अभयमल जैन ने आजादी की अलख जगाई और श्री जयनारायण व्यास के साथ मिल कर राजनीतिक चेतना को प्रज्वलित किया । अनेक आन्दोलनो के परिणाम स्वरूप वे कई वार जेल गये । मारवाड़ लोक परिषद् के संस्थापको में से एक श्री जैन ने 'भारत छोडो आन्दोलन' मे भाग लेकर दो वर्ष की सजा काटी । श्री मानमल जैन भी उनके ही साथी थे । उन्होने १९३२ मे व्यावर सविनय अवज्ञा आन्दोलन के डिक्टेटर के रूप मे भाग लिया और जेल गये । देशी राज्य प्रजा परिषद्, मारवाड़ लोक परिषद्, प्रजामण्डल आदि सभी सस्थाओ से संवद्ध श्री जैन ने उनके सभी आन्दोलनो में भाग लिया । श्री उगमराज मुहणोत क्रातिकारियो से सवद्ध रहे और छात्रावस्था मे ही एक वम केस मे उन्हे पकड़ कर डेढ वर्ष की सजा दी गई । (अभी वे जन सम्पर्क अधिकारी, वाडमेर हैं ।)

लाडनूं के श्री चम्पालाल फूलफगर, बिलाड़ा के श्री पुखराज, फलौदी के श्री सम्पतलाल सिंघी, लूंकड़, सरदारशहर के श्री नेमीचन्द आचलिया, सिरोही के श्री धर्मचन्द सुराणा, श्री दुलीचद सिंघी, श्री रूपराज सिंघी, श्री शोभाराम सिंघी, श्री हजारीमल जैन आदि अनेक वे लोग है, जिन्होने सामन्ती अत्याचारो का विरोध किया, राष्ट्रीय आन्दोलनो मे भाग लिया, जेल गये और जिनका परिवार सदैव कष्ट पाता रहा ।

पाली जिले में सादड़ी के निवासी श्री फूलचन्द वाफना, कोटा के श्री रिखवचन्द धाड़ीवाल

आदि ने स्वतत्रता सग्राम का ही अपना जीवन समर्पित किया और लोक परिषद्, प्रजामडल किंवा कांग्रेस के आन्दोलनो म भाग लेकर जेल जाते रहे। रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वासी श्री बाफना, श्री हीरालाल शास्त्री के मन्त्रिमडल में स्वायत शासन मत्री रहे और श्री घाडीवाल भी बाद में मत्री रहे। भीलवाडा के श्री मनोहरसिंह मेहता, अजमेर के श्री जीतमल लूणिया, लडनू के श्री मानमल जैन आजादी की लडाई के प्रमुख सिपाही रहे हैं।

म य जिलो के प्रमुख स्वतत्रता-सग्राम के सेनानी इस प्रकार हैं —

भीलवाडा—रोशनलाल चोरडिया, अजमेर—श्री मूलचन्द जैन, श्री टीकमचन्द जन, श्री कालूराम लाढा, श्री वृद्धिचन्द हेडा, हरदयाल मिश्रीलाल जन, अमोलकचन्द सुराणा, जैन (किशनगढ), वीरसिंह मेहता, मोतीलाल जैन। उदयपुर—हुक्मराज मेहता। भरतपुर—श्री रामचद जैन (कुम्हेर), श्री रामस्वरूप जन (डीग), नेमीचद जैन। जयपुर—श्री कपूरचन्द जैन, दौलतमल जन, श्री सरदारमल गोलेछा, श्री सोहनमल लोढा, श्री सुभापचन्द जैन। पाली—श्री तेजराज सिंघवी। सिरोही—श्री भारतमल बोवावत श्री धनराज सिंघी। कोटा—श्री दौलतमल जैन, सोभागचन्द्र, देवीचन्द। जोधपुर—श्री सुगनचन्द भडारी, श्री ऋषभराज जैन, इन्द्रमल जन, पारसमल खिवसरा, करोडीमल मेहता, सम्पतमल लूकड, पी० एम० लूकड, इन्द्रमल जैन, रिखवराज कर्णावट। चूरू—बद्रीप्रसाद सरावगी। चितौडगढ—श्री फतहलाल चडालिया, श्री भीमा राज धाडोलिया आदि।[1]

वर्तमान निर्वाचित प्रतिनिधि —राजस्थान से लोक सभा म श्री मूलचन्द डागा, श्री अमृत नाहटा तथा श्री नरेन्द्र कुमारी साघी वतमान म सदस्य हैं। राजस्थान मन्त्रिमण्डल मे श्री चन्दनमल वैद (वित्तमन्त्री) जैन समाज के प्रमुख अ ग हैं। वतमान विधायको म श्री यशवतसिंह नाहर, श्री शांतिलाल कोठारी, श्री वृद्धिचन्द जन, श्री फूलचन्द जन, श्री मोहनराज जैन, श्री गुमानमल लोढा, श्री प्रद्युम्न सिंह, श्री पुखराज कालानी, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

पिछली विधान सभाओ एव लोक सभा मे श्री माणकचन्द सुराणा, श्री उमरावसिंह ढावरिया, श्री फूलचन्द बाफणा, श्री प्रेमसिंह सिंघवी, श्री रिखवचन्द धाडीवाल, श्री जसवन्तराज मेहता, श्री लक्ष्मीमल्ल भडारी, श्री बलवतसिंह मेहता, श्री प्रतापसिंह आदि के नाम सदैव स्मरण किये जाते रहेंगे।

प्रशासनिक एव अन्य अधिकारी स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान के प्रशासको मे श्री भगवतसिंह मेहता का नाम सदव आदर से लिया जाता रहेगा। डा० मोहनसिंह मेहता, श्री सत्यप्रसन्नसिंह भण्डारी, श्री गोकुललाल मेहता, श्री जगन्नाथसिंह मेहता, श्री नारायणदास मेहता, श्री देवेन्द्रराज मेहता, श्री रणजीतसिंह कूमट, श्री अनिल बोरदिया श्रीमती मोतिमा बोरदिया, श्री मीठालाल मेहता, श्री जसवतसिंह सिंघवी, श्री पी० एन० भडारी, श्री बाबूलाल पानगड़िया, श्री हिम्मतसिंह गलूडिया,

---

१ इस लेख की सामग्री (स्व०) श्री सुमनेश जोशी के ग्रन्थ 'राजस्थान में स्वतत्रता सग्राम के सेनानी', जयपुर जन डायरेक्ट्री, राजस्थान सरकार द्वारा प्रसारित सूचना आदि स ली गई है। लेखक उनके प्रति आभार प्रकट करता है।

श्री हिम्मतसिंह सरुपरया, श्री कन्हैयालाल कोचर, श्री अर्जुनराज भंडारी, श्री पदमचन्द सिंघी, श्री प्रवीणचन्द जैन, श्री सम्पतराज सिंघवी, श्री सवाईसिंह सिंघवी, श्री बी० सी० जैन, श्री हरकराज भंडारी, श्री मनोहरसिंह मोगरा, श्री हीरालाल सिंघवी, श्री चन्द्रराज सिंघवी, श्री गुलाबसिंह दरड़ा, श्री नानालाल बया, श्री जोरावरसिंह पोखरना आदि अनेक जैन समाज के व्यक्तियों ने अपनी छाप प्रशासक के रूप मे छोड़ी है। न्यायिक सेवाओं मे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो के रूप में सर्वश्री इन्द्रनाथ मोदी, श्री दौलतमल भण्डारी, श्री सोहननाथ मोदी, श्री लहरसिंह मेहता, श्री चांदमल लोढा आदि की सेवायें विशेष उल्लेखनीय हैं। पुलिस विभाग मे उदयपुर रेंज के उपमहानिरीक्षक श्री ज्ञानचन्द सिंघवी ने पुलिस तथा सीमा सुरक्षा-दल मे अपनी उल्लेखनीय सेवाओ का परिचय दिया है। श्री कनकमल मेहता, डॉ० महेन्द्रकुमार दोषी, श्री दुर्गाप्रसाद जैन, श्री साहबलाल अजमेरा, श्री कन्हैयालाल मेहता, श्री हिम्मतसिंह मेहता, श्री विज्ञान भारिल्ल आदि अनेक अधिकारियों ने भी अपने-अपने विभागों में अपनी कार्यदक्षता व क्षमता का निर्णायक उपयोग किया है। भारतीय विदेश सेवा में श्री जगत मेहता का नाम सदैव सम्मान से लिया जाता रहेगा।



४

उद्योग और वाणिज्य

४२ | राजस्थान की आर्थिक समृद्धि मे जैनियो का योगदान

•

श्री बलवन्तसिंह मेहता

पृष्ठभूमि '

जैन धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव भारत मे सर्व प्रथम असि, मसि, कृषि और शिल्प जैसे लौकिक कर्मों के जनक माने जाते हैं और उन्हीं के पुत्र भरत के नाम पर हमारे देश का नाम भारत पडा तथा भरत ने ही सर्व प्रथम राज्य, दण्ड व विवाह व्यवस्था का आयोजन किया।

असि कर्मकर्ता क्षत्रिय, मसि कर्मकर्ता ब्राह्मण और कृषि कार्यकर्ता वैश्य कहलाये तथा इन तीनो ही कर्मों म जिनकी स्वाभाविक प्रवृति और गति नही थी, वे कर्मकार शूद्र कहलाये। आदि तीर्थंकर ने इन चारो ही वर्णों का समान माना और इनमे ऊच-नीच का कोई भेद नहीं रखा, जसा कि भगवान महावीर ने भी कहा है—

कम्मुणा बम्भणो होई, कम्मुणा होई खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो होइ कम्मुणा ॥

आज जो ससार मे धन कमाने की होडाहोड चल रही है और व्याप्त बेकारी फल रही है तथा कर्म मे अकुशलता बढ रही है उसका एक मात्र उपाय वर्ण व्यवस्था और आश्रम पद्धति है। जो भारतीय आर्यों की बहुत बडी देन है। जैन धर्म ने जाति पाति के भेदभाव व ऊच नीच की भावना को दूर कर कर्म द्वारा उसके शुद्ध स्वरूप म उसे प्रतिष्ठित किया। इसी तरह आश्रम व्यवस्था मे भी क्रांतिकारी परिवर्तन कर सबके लिये सब ही अवस्थाओ म उसके द्वार खोल दिये और स्त्रियो तथा शूद्रो तक के लिए कोई अपवाद नही रखा।

भारत की आर्थिक समृद्धि म आरम्भ से ही जैन जगत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही तथा वर्णों के जातीय स्वरूप ग्रहण करने पर भी जैन समाज ने व्यापार, वाणिज्य, कृषि और पशुपालन आदि सभी वर्गों म सर्वांगीण वृद्धि की है। देश की आर्थिक स्थिति और समृद्धि के प्रमुख स्तम्भ जैन, देश के हर भाग के आर्थिक क्षेत्रो के सयोजक व सचालक रहे हैं।

कृषि :

आरम्भ से ही कृषि जैनियों का उद्योग रहा है। कृषि की विभिन्न उपजो का सुदूर क्षेत्रों तक व्यापक रूप से वे व्यापार-वाणिज्य करते थे। ऐसे कृषि सम्पन्न जैनियों म वाणिज्य ग्राम के आनन्द

गृहपति की धन-सम्पत्ति में पांच सौ हलों की गिनती की गई है। एक हल के द्वारा सौ निवर्त्तन भूमि जोती जा सकती थी। 'उपासक दशांग' के अनुसार एक निवर्त्तन चालीस हजार वर्ग हाथ का माना जाता था। इससे स्पष्ट है कि गृहपति-श्रावक आरम्भ से ही कृषि भूमि के स्वामी रहे हैं। पर कृषि कर्म को फोडी कर्म मानने से कृषि मे भू-छेदन की हिंसा के कारण वैश्य-गृहपति श्रावक स्वयं कृषि नही करते, किन्तु अपने खेतो में किसानो से खेती करवाते थे। आज भी राजस्थान के गावों मे विरले ही ऐसे जैनी होगे जिनके घरू खेती न हो। शास्त्रों मे कई ऐसे गृहपतियों का वर्णन मिलता है जिनके पास हजार-हजार हल होने का उल्लेख पाया जाता है। जैन शास्त्रों के अनुसार वैश्य अन्न का विक्रय करते थे और किसान भी उनके माध्यम से अन्न का विक्रय करवाते थे। कृषि से सम्बद्ध होने के कई जातीय सम्बोधन आज भी जैन समाज मे विद्यमान है। वैश्यों द्वारा कृषि की सूचक अभी भी जैन समाज की 'खेतपालिया' जाति है। धान्यो को कोटि कुम्भो मे भर कर कोठार मे सचित करने वाले को 'नयतिक' कहा जाता था जो आज भी 'न्याती' के रूप मे सम्बोधित है। इसी प्रकार अन्न के भण्डारो के स्वामी को 'भण्डशाली',, 'सचेती' और 'कोठारी' कहा जाता था जो आज भी 'भंसाली', 'सचेती' और 'कोठारी' के रूप मे सम्बोधित हैं।

गो-रक्षा और गो-पालन :

कृषि के साथ गोरक्षा और गोपालन भी भारतीय अर्थ-संयोजन की आधारशिला तथा कृषि और व्यापार के पूरक रहे हैं। आरम्भ से ही गोरक्षा एवं गोपालन का दायित्व वैश्य कर्तव्य के अन्तर्गत गिना गया है। वैश्य वर्ण और उसके कर्म के लिये गोधन की अनिवार्य उपादेयता थी। वैलों के बिना न कृषि हो सकती है न प्राचीन भारत में व्यापारिक यातायात सम्भव था, क्योकि उस समय न तो व्यवस्थित सुपथ थे, न व्यापक यातायात के साधन। अतः वैश्य वर्ण को अपना स्थानांतर व्यापार करने के लिए बैलों की सहायता लेनी पडती थी। गोधन से उन्हे कृषि के लिए प्रचुर मात्रा मे श्रेष्ठ खाद भी सुलभ हो जाता था तथा गायों के कारण उनका घृत-व्यापार भी चरम सीमा पर था। इसीलिये वैश्यो के पास सहस्रो की संख्या मे गोधन होता था जिसे 'गोकुल' कहा जाता था। जैन-साहित्य और प्राचीन ग्रंथों मे गृहपति-श्रावकों के पास इस प्रकार के 'गोकुल' होने का उल्लेख मिलता है। राष्ट्र पिता गाधीजी ने गोरक्षा को हिन्दू धर्म का बहिर्मुख कहा है और वर्तमान मे इसकी उपेक्षा पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की थी।

व्यापार-वाणिज्य :

व्यापार-वाणिज्य वैश्य वर्ण का मुख्य कार्य था। जैसे वैदिक सभ्यता मे व्यक्ति की पहचान कर्म से होती थी वैसे ही वर्णों के जातीय स्वरूप ग्रहण करने पर विशेप कार्य-व्यापार के कारण कई वैश्य जातियो का जन्म हुआ, जो व्यवस्था और कार्य बदल जाने पर भी आज भी उन्ही प्राचीन नामों से सम्बोधित हैं।

'दुश्य' संस्कृत शब्द है जिसका प्रयोग महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण में वस्त्र के लिये किया है। यही शब्द प्राकृत में 'दुसअ' हुआ और इस वस्त्र का व्यापार करने वाले 'दोषी' कहलाते थे, जो आज भी गुजरात, राजस्थान और मध्यप्रदेश मे बड़ी संख्या मे पाये जाये जाते हैं। कपास की कृषि के घर गुजरात मे कपास का व्यापार करने वाले वैश्यो को 'कपासि' कहा जाता था, जो आज भी वहां बहुतायत से पाये जाते है। इसी प्रकार कुम्मट वृक्ष के गोद का व्यापार करने वाले व्यापारी

प्राचीन काल मे कूम्मट कहलाते थे, जो आज भी जैन समाज में एक पृथक गोत्र रूप मे उपस्थित हैं। हिरन हिरण्य का अथ अनगढ सोना है। इस तरह के सोने का व्यापार करने वाले 'हिरण' कहलाते थे। ये लोग सरकार का कर भी वसूल करते थे। यह जाति अभी भी जन समाज मे हैं। सोने के आभूषणो का व्यापार करने वाले 'सोनी' कहलाते थे, जो आज भी हैं। सोने के 'कवड्डिया', 'फदिया', 'गदैया' नामक सिक्को के व्यापारी कावडिया और फिरोदिया, गदैया कहलाते थे तथा सभी प्रकार के सिक्को के व्यापारियो को 'नानावटी' कहा जाता था। ये सभी गोत्र जैन समाज मे अभी भी ज्यो के त्यो हैं। इसी प्रकार घी बेचने वाले लोगो को घीया कहा जाता था। आज भी इस नाम की जाति जैन समाज मे है। नमक के व्यापारी 'लूणिया' और 'हिंग' के हिंगड कहलाते थे, जो आज भी हैं।

सस्कृत मे जहाज को बोहित्थ' कहा गया है। जनी व्यापारी जहाजो के द्वारा विदेशो मे भी व्यापार करते थे। जहाज के स्वामी एव सचालक को 'वोथरा' और 'वोहितरा' कहा जाता था, ये जातियाँ जैन समाज मे अभी भी हैं। इसी प्रकार 'वोहरा' शब्द व्योहार का विकृत प्राकृत शब्द है। शास्त्रो मे व्यवहार शब्द मुकदमें के तथा व्योहारी शब्द न्यायकर्ता के अथ में प्रयुक्त हुआ है। कालातर में यही शब्द लेन-देन का व्यापार करने वालो के लिए प्रयुक्त होने लगा। यह 'वोहरा' जाति भी जन समाज में अभी भी है। इसी प्रकार तलेसरा, गाधी व पटुआ जातिया भी व्यापार विशेष के कारण बनी हुई हैं। व्यापार में विशेष सहयोगी काय से भी जातिया बनी हैं। जैसे हिरण की भाति वस्तुओ की गिनती कर, कर का निर्धारण करने वाले लोग हिरण्य गणक अथवा ग ना कहलाते थे, जो आज भी गन्ना जाति के रूप में है। ऐसे ही हीरे जवाहरात का व्यापार करने वाले या इस परखपूण व्यापार में परख करने वाले लोग 'पारख' कहलाते थे, जो आज भी इसी नाम से अभिहित हैं। बोहरा जाति जन समाज के अतिरिक्त ब्राह्मण तथा मुसलमानो में व्यापारी वग मानी जाती है और गाधी जाति भी जन समाज के अतिरिक्त पारसियो में व्यापारी वग के अ तगत है।

कुछ जन जातियो का ज म क्षेत्रीय सम्बोधन के आधार पर भी हुआ है जो तब से अब तक उसी नाम से सम्बोधित है। पाणिनि ने अपने वैयाकरण में 'रकू' जनपद का उल्लेख किया है। यहा 'रकू' नाम की बकरिया के लम्बे बालो से बनन वाले कम्बल राकव कहलाते थे और कम्बलो के वेचन वाले व्यापारी 'राका' कहलाते थे। यह गोत्र आज भी जैन जाति में विद्यमान है। इसी प्रकार गोधेय, शिबी, मारभू, टाक, अच्छा, बूलीय आदि जनपदो एव गणराज्यो के आधार पर गोधा, शेवा, मारू, टाक, आच्छा, बोलिया आदि गोत्रो का उद्गम हुआ। क्षेत्रीय आधार के अ य परवर्ती गोत्र हैं—सिरोया, खिवसरा, चोरडिया, डू गरपुरिया, सरूपरिया, बांदिया, जालोरी, डागो, पु गलिया, नागोरी, ओसवाल, चडालिया, जाबलिया, नृसिहपुरा, पोखरना, श्रीमाल, भिन्नमाल, बघेरवाल खण्डेलवाल। सिंध क्षेत्र से आई वश्य व्यापारिक जातियो में वियाणी, सोमाणी, इ दाणी, कढवाणी, ललवानी, चोखानी, वीराणी आदि हैं।

पदो के अनुसार बनी वैश्य जातियो में नाहटा, ठाकुर, तातेड, चोधरी, मेहता, नवलखा, टाटिया, सिंघवी, पगारिया (वेतन चुकान वाला) ग ना आदि हैं।

काय के आधार पर बनी एक प्रमुख जाति 'पटुवा' है। ये लोग कपडो पर जरी का पक्का काम या कसीदे का काम करने के कारण पटवा कहलाते थे। प्राचीन काल में व्यापार का प्रमुख केन्द्र जसलमेर इन पटवा लोगो का उद्गम् स्थल है। ये पटवा लोग जन समाज की वापना गोत्र के अ तगत आज भी हैं।

वैश्य वर्ण की इन सभी व्यापारकर्मी जाति-गोत्रों के अतिरिक्त जैन धर्म ने कुम्हार, लुहार, और बढ़ई को आर्य जातियों में समादृत किया है तथा इन जातियों के घरों में जैन साधुओं के ठहरने और आहार लेने को उचित माना गया है। वैशाली की कम्मार शाला (लुहार की दुकान) में भगवान महावीर ठहरे थे। सद्दालपुत्र नामक पोलासपुर के कुम्भकार के यहा जैन श्रमणों के ठहरने का उल्लेख है। यह सद्दालपुत्र जैन धर्म का अनुयायी था तथा इसकी ५०० दुकानें थी जिन पर कई नौकर-चाकर काम करते थे।

प्रमुख श्रेष्ठि :

प्राचीन काल में राजस्थान में चित्तौड़, आयड़, मज्झमिका और वसन्तपुर देश के प्रसिद्ध व्यापार-केन्द्र थे। यहां के व्यापारी न केवल भारत में वरन् आयात-निर्यात द्वारा देश-विदेश मे व्यापार करते थे। पूर्व मे चीन, बर्मा, श्याम तथा पश्चिम में अरब की खाड़ी व यूनान तक व्यापार होता था। राजस्थान मे विदेशी आयात का माल भृगुकच्छ (भड़ौंच) से आता था।

दोषी गोत्र के चित्तौड़ के वैश्य व्यापारी तोलाशाह का व्यापार बंगाल व चीन तक होता था। चीन मे तोलाशाह की पेढ़िया थी। भड़ौंच से तोलाशाह के आयातित माल को बन्जारे बैलो की बालद से चित्तौड मे लाते थे। शत्रुंजय का अंतिम उद्धार करने वाला कर्माशाह इसी तोलाशाह का पुत्र था। यह अपने पिता के ही समान बहुत बड़ा व्यापारी होने के साथ-साथ महाराणा रत्नसिंह का अमात्य भी था। इसी कर्माशाह ने गुजरात के बादशाह बहादुरशाह को युवराज अवस्था में विपत्ति के समय १ लाख रुपया नकद और १ लाख रुपयो का सूती व रेशमी कपडा दिया था। इसी के उपलक्ष्य मे जब बहादुरशाह गुजरात का बादशाह बना, तब उसने कर्माशाह को शत्रुञ्जय का जीर्णोद्धार करने और भविष्य में अपने द्वारा कोई जैन मन्दिर नही तोड़ने का वचन दिया।

इसी प्रकार जैसलमेर के प्रसिद्ध सेठ थिरूशाह भंसाली ने अतुल राशि व्यय करके शत्रुञ्जय का प्रथम उद्धार करवाया था। जैसलमेर के भंसाली बहुत समृद्ध सेठ और बड़े-बड़े भण्डारों के स्वामी होते थे तथा इनका व्यापार ईरान और अफगानिस्तान तक होता था। ये सिंध नदी से जहाजों के द्वारा भी व्यापार करते थे।

थिरूशाह के ही समान जैसलमेर के रांका तथा पटवा जाति के सेठों ने अतुल धन सम्पत्ति व्यय करके वहां ऐसे अद्भुत महल तथा मन्दिर बनवाये जिनका शिल्प और कोरनी (खुदाई) का कार्य भारतवर्ष में अनुपम माना जाता है।

भारत का प्रथम जगतसेठ राजस्थान की ही देन था। नागौर निवासी इस सेठ का उड़ीसा, बंगाल और बिहार के अर्थतन्त्र पर पूर्ण प्रभुत्व था। देश के पूर्वी राज्यों मे इसकी सैकड़ो दुकाने व पेढ़ियां थीं। यह सेठ बादशाह फर्रुखशियार और बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला की भी समय-समय पर विपुल आर्थिक सहायता करता था। यह अपने समय मे विश्व का प्रमुख सामुद्रिक व्यापारी था।

इस जगत् सेठ के बारे में एक बहुत रोचक सत्य-कथा है। एक बार विदेशो में माल निर्यात करके इसके व्यापारिक जहाज भारत में खाली लौट रहे थे। तभी समुद्र मे तूफान उठने के लक्षण दिखायी दिये और विकराल लहरें जलपोतो को डगमगाने लगी। तब जहाज संचालकों व नियन्त्रकों ने जहाज को सन्तुलित रखने के लिये जहाज में एक जल-शैल-खंड के पत्थर डाल लिये। इन पत्थरों को जहाज जब लेकर भारत पहुंचा तब इन पत्थरों का सन्धान किया गया और ये पत्थर रत्न शिलाएं

निकलें, जिनसे जगत सेठ को असख्य रत्नो की प्राप्ति हुई। इस अतुल धन-सम्पदा के फलस्वरूप बादशाह ने इस नागौरी सेठ को जगत् सेठ की उपाधि दी।

इस प्राचीन परम्परा में एक महत्त्वपूर्ण नाम जैसलमेर के पटवा सेठ जोरावरमलजी का है। इनकी सारे देश में चार सौ से अधिक पेढिया व दुकानें थी। जोरावरमलजी का स्थायी निवास उदयपुर था तथा इनका जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, बू दी, टोक व इन्दौर के राज्यो के खजानो पर पूण प्रभुत्व था। ये इन राज्यो के खजाची थे। मेवाड जसा ऐतिहासिक राज्य कई वर्षों तक इनके पास गिरवी रहा। इनके पौत्र राय बहादुर सर सिरेमल बापना कई राज्यो के दीवान रहे तथा इन्होने लदन के पहले गोल मेज सम्मेलन म गाधीजी के साथ देसी रियासतो की ओर से भारत का प्रतिनिधित्व किया था। इन्होने एक विशाल जन तीथ सघ भी निकाला। इस विशाल धम सघ के अतिरिक्त सेठ जोरावरमलजी बापना ने अपने समय का २ करोड से अधिक रुपया दान-पुण्य म व्यय किया तथा २ करोड से अधिक रुपया आवास व धार्मिक भवनो के निर्माण म व्यय किया। इनके द्वारा जसलमेर में बनाये गये महल और इनकी हवेली आज भी शिल्प और कौरनो मे बहुत प्रसिद्ध है, जिन्हे असख्य पयटक देखने जाते हैं।

इसके अतिरिक्त आज भी देश भर मे जो ख्याति प्राप्त धनी व्यापारी हैं उनम से अधिकाश मूलत राजस्थान के ही निवासी हैं और आज भी ये अपने घर से सुदूर प्रा तो तक जाकर व्यापार-वाणिज्य से देश की आर्थिक समृद्धि के भागीदार बने हुए हैं।

तोलाशाह और कर्माशाह जसे प्रसिद्ध सेठो के निवास और व्यापार से स्पष्ट है कि प्राचीन काल मे चित्तौडगढ कितना महत्त्वपूण व्यापारिक के द्र था। इसी चित्तौड मे भामाशाह के श्वसुर भोमा नाहटा, जो अतुल सम्पत्ति का स्वामी था तथा भामाशाह का पिता भारमल जो १८ करोड का स्वामी और भारत प्रसिद्ध सेठ था, जसे धनी वैश्य रहते थे।

व्यापार केन्द्र

ईसा की चौथी शताब्दी पूव चित्तौड के पास 'नगरी' नामक नगर व्यापार और जन सस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। भारतवप मे सबसे प्राचीन शिलालेख यही मिला है, जो जन शिलालेख है। कालातर मे इसी नगरी का नाम 'मज्झमिका" पडा। यह मागधी का शब्द है जिसका अथ बडा और पवित्र नगर होता है। यहा के वस्त्र देश-देशा तर म प्रसिद्ध होने का उल्लेख करते हुए पाणिनि एव पतजली ने अपने भाष्यो मे यहा के लोगो तथा वस्त्र को 'माध्यमिकेय और 'माध्यमिक' लिखा है।

उदयपुर से कुछ दूर पूव मे स्थित वतमान आयड मोहनजोदडो कालीन सभ्यता का प्रमुख नगर गिना गया है। इसका तत्कालीन नाम "आघाटपुर" था तथा अधमागधी म इसे "आहाड" कहा गया है, जिसका अथ ही व्यापारियो को आकर्षित करन वाला नगर होता है। आयड मे कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश व पजाब के व्यापारिया का जमाव था। दसवी शताब्दी तक दक्षिण से यहा हाथी बिकने को आया करते थे। जो 'अल्लट' के समय के शिलालख से प्रमाणित होता है।

उद्योग :

राजस्थान म उद्योग का सबसे प्राचीन केन्द्र वस तपुर है, जिसका उल्लेख जन शास्त्रो में आता है तथा जो भारत भर मे सर्वाधिक प्राचीन केन्द्रो म से है। इसी वसतपुर के जन धम सघ ने सव प्रथम जैतक के नेतृत्व मे जावर की खानो मे उत्खनन का काय प्रारम्भ किया था। जहा से,

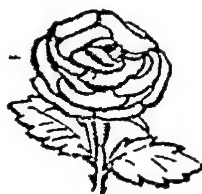
चादी, जस्ता और सीसा निकाला जाता था। जैतक ससार का पहला खनिज अभियता, श्रमिक नेता और सहकारधर्मी था। जैन धर्म के इन मुखिया ने जावर में चण्डिका देवी का विशाल मन्दिर बनवाया। जैतक ने १८ प्रदेशो से उत्खनन विशेषज्ञ बुलाये थे। खिनल में उत्खनन करने के कारण इन्हे उस समय "वैतालिक" कहा जाता था। उसी के अपभ्रंश रूप में जैन समाज की वर्तमान "वैताला" जाति है।

ससार में सर्वप्रथम पीतल की देन इसी जावर खान की है। पीतल, ताम्बे और जस्ते के मिश्रण से बनता है और यही ये दोनों धातुएं एक साथ उपलब्ध थीं। इन पीतल की छठी शताब्दी की ढली हुई जैन मूर्तिया आज भी पिण्डवाड़ा के जैन मन्दिरो में देखी जा सकती हैं।

राजस्थान में सामोली का शिलालेख[1] (सं० ७०३) क्षत्रियों का प्रथम शिलालेख माना जाता है। इस शिलालेख मे राजा के बजाय जैतक की, तीन बार नाम के साथ जयकार की गई है और राजा शिलादित्य का नाम स्मरण भर है। अत. यह शिलालेख जैतक का ही है और शिलादित्य का उल्लेख केवल राजा होने के कारण हुआ है, क्योकि उस शिलालेख मे किसी राजकार्य का उल्लेख नहीं है वरन् जैतक के महाजन सघ के मुखिया, खनिज अभियन्ता, श्रम विचारक और सहकार धर्मिता का वर्णन है।

प्रसिद्ध जैनाचार्य हरिभद्रसूरि ने वसन्तपुर का प्रमुख जैन तीर्थ एव व्यापारिक केन्द्र के रूप में उल्लेख करते हुए लिखा है कि यहा के देश-प्रसिद्ध व्यापारी दक्षिण मे क्षितिप्रतिष्ठानपुर और पूर्व में चम्पा जैसे सुदूर भागो मे जाकर व्यापार करते थे और वे अत्यन्त धनाढ्य थे। लगभग १६वीं शताब्दी तक बसन्तपुर एक प्रमुख जैन व्यापारिक नगर था। अभी यह मेवाड़ की सीमा पर पिण्डवाड़े के पास सिरोही जिले मे है।

उपर्युक्त सभी तथ्यो से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता हे कि देश भर मे कृषि, गोरक्षा, व्यापार-वाणिज्य और उद्योगो के सचालक राजस्थान के जैन कितने व्यापक स्तर पर अपने उद्योग व्यापार का विस्तार करते थे और कितनी समृद्धि अर्जित करते थे कि बादशाहो और राजकोषों तक को आर्थिक सहयोग प्रदान करते थे। इसके साथ ही हम इन धनाढ्य श्रेष्ठियो मे धर्मधुरीणता और लोकोपकार की भावना का प्राचुर्य पाते हैं। आज भी इनमे अपने कर्म और धर्म पर अविचल रहना व देश का आर्थिक दायित्व वहन करना पाया जाता है। अपने रक्त, वर्ण और कर्म की श्रेष्ठता और अनुपालन से आरम्भ से ही जैन भारतीय समाज मे सबसे समृद्ध व देश की आर्थिक स्थिति के सयोजक-नियोजक रहे है और इन्ही गुणो के कारण भविष्य में भी रहेंगे।



१. जयति वट नगर (वसन्तपुर) विनिर्गत महाजनो जैतक प्रमुख येनास्य, लोक जीवन उत्पाद्य आरण्य कूप गिरी एभिर्गुणैः युत तत्र जैतक महत्तर अरण्य वासिना देवकुलं चक्रे महाजनादिष्ट।

४३ | पूर्व मध्यकालीन जैन श्रेष्ठि

•

श्री रामवल्लभ सोमानी

७वीं शताब्दी के आसपास राजस्थान मे अभूतपूर्व उन्नति हुई। कई उल्लेखनीय नगर औद्योगिक केन्द्रो के रूप मे विकसित हुये। इन नगरो मे चित्तौड, जालौर, भीनमाल, आबू, मडोर, ओसिया, पाली, लोद्रवा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्थल मार्ग से सिंध, ईरान आदि की ओर व्यापार की निरंतर वृद्धि से प्रतिहार काल मे पश्चिमी राजस्थान का यह क्षेत्र बडा ही श्रीसम्पन्न था। कई उल्लेखनीय व्यापारी यहा निवास करते थे। दक्षिण भारत के राष्ट्रकूटों के लेखो मे भीनमाल से गये व्यापारियो का उल्लेख है। जैन साधुओ ने भी इसी काल मे बडी संख्या मे अजैन परिवारो को जैन धर्म मे दीक्षित किया था।

प्रतिहार काल की श्री सम्पन्नता का विवरण कुवलयमाला, समराइच्च कहा, शिशुपाल वध, उप मिति भव प्रपच कथा आदि ग्रथो मे मिलता है। जैन अनुश्रुतियो के अनुसार वि० स० ७६५ में उदयप्रभ सूरि ने भीनमाल के करोडपति सेठ समधर को जैन धर्म मे दीक्षित किया। प्रतिहार राजा नागभट (प्रथम) भी लगभग इसी समय जालौर और भीनमाल के स्वामी हुये। ये जैन धर्म से बडे प्रभावित थे। आबू क्षेत्र मे कई साधुओ के विचरण के उल्लेख यत्र तत्र मिलते हैं। घटियाला का वि० स० ९१८ का प्राकृत भाषा मे निबद्ध लेख बहुत ही उल्लेखनीय है। इससे पता चलता है कि प्रतिहार राजा जैन धर्म से प्रभावित थे। इस लेख से पता चलता है कि धनश्वरगच्छ के जाम्बव और आम्रक नामक साधु और भाउड नामक श्रेष्ठि उस समय वहा के उल्लेखनीय व्यक्तियों मे से थे। इस लेख मे बढते हुये व्यापार की ओर भी ध्यान दिलाया गया है। लेख मे "हट्ट" अर्थात् बाजार बनाने का उल्लेख है। इसके अवशेष आज भी वहा दृष्टिगत होते हैं। जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है बढते हुये व्यापार के कारण यह प्रदेश उस समय बडा उल्लेखनीय हो गया था। इस लेख मे मरु, माड, वल्ल, तमणी, गुजरात और साचोर प्रदेशो का उल्लेख है। इन प्रदेशो से वहा का व्यापारिक, सास्कृतिक और राजनैतिक सम्बन्ध रहा था। आज भी यहा खुदाई करने पर बाजार के भग्नावशेष मिलते हैं।

श्रेष्ठियो का प्रभाव

जैन श्रेष्ठियो का राजाओ पर बडा प्रभाव था। अहिंसा के प्रचार अमारिकी घोषणा आदि इसके प्रमाण हैं। राजपूत राजाओ के राज्य मे श्रेष्ठि वर्ग की स्थिति बडी ही उल्लेखनीय रही है। नगर श्रेष्ठि को कई प्रकार की सुविधाएं प्राप्त थी। 'समराइच्च कहा' में दिये गये वृतान्त के अनुसार

२ लेख आबू मे विमलवसही मे वि० स० १२४५ के लगे हुये हैं। अन्य २ लेख जालोर क्षेत्र ने मिले हैं। इनके पिता का नाम उदयसिंह और माता का नाम उदयश्री था। लेख में इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। लक्ष्मी और सरस्वती का एक साथ वरद हस्त इन पर होने का उल्लेख है।

(३) श्रेष्ठि यशोराज :

जालोर दुर्ग निवासी श्रेष्ठि यशोराज श्रेष्ठि यशोवीर (उपर्युक्त नं० २ से भिन्न) का पुत्र था। यह श्रीमाली जैन था। यह चद्रगच्छ के आचार्य चद्रसूरि के शिष्य पूर्णभद्र सूरि का भक्त था। जालोर के वि० स १२३९ के शिलालेख मे इसका उल्लेख है। शिलालेख में दिये गये वर्णन से पता चलता है कि यह परिवार अत्यन्त श्रीसम्पन्न था।

(४) नागपुरीय बरहडिया परिवार :

बरहडिया ओसवाल परिवार नागपुर का था। इसके द्वारा किये गये सद्कार्यो का विस्तार से वर्णन मिलता है। यह लक्षाधिपति था। वि० स० १२९६ के आबू के शिलालेख से पता चलता है कि इस परिवार ने शत्रुञ्जय, गिरिनार, आबू, जालोर, तारगा, पाटन, बीजापुर, लाठपल्ली, प्रह्लादनपुर आदि स्थानो की यात्रायें की और वहा कई देव कुलिकाए बनाईं एवं मूर्तियां स्थापित की। कई ग्रंथ भी लिखाये। इस परिवार पर मधुसुदन ढाकी ने स्वाध्याय पत्रिका मे विस्तार से एक लेख लिखा है।

(५) नागड़ श्रेष्ठि परिवार :

आबू परमार राजा धारावर्ष का मत्री नागर बहुत ही ख्यातिप्राप्त और श्रीसम्पन्न व्यक्ति था। वि० सं० १२५२ के झाडोली ग्राम के लेख में इसका विस्तार से उल्लेख है।

(६) वेसठ श्रेष्ठि परिवार :

इस परिवार का विस्तार से उल्लेख नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध नामक ग्रंथ मे मिलता है। वेसठ ओसियां का रहने वाला था। कुछ समय पश्चात् वह किराडू नगर मे जा बसा। वहा के परमार राजा जैत्रसिंह ने उसे नगर सेठ की उपाधि दी। किराडू गुजरात और सिंध के मध्य व्यापार के प्रमुख मार्ग पर होने से यह परिवार शीघ्र ही अत्यन्त श्रीसम्पन्न हो गया और कालान्तर मे गुजरात की ओर चला गया। जहां इसके वंशज समरसिंह ने शत्रुञ्जय का जीर्णोद्धार कराया था।

(७) राल्हा परिवार :

चित्तौड के निवासी श्रेष्ठि राल्हा खरतरगच्छ के साधुओ का भक्त था। इसने वि० सं० १२८७-८८ मे सघ यात्रायें की और कई हस्त लिखित ग्रंथ भी लिखाये। वि० स० १२९५ मे इसने नलकच्छपुर (नालछा) में सघ यात्रा की और वहा 'कर्मविपाक' नामक ग्रंथ भी उस समय लिखाया जो इस समय जैसलमेर भंडार मे है। युगप्रधान गुर्वावली और उक्त ग्रंथ की प्रशस्ति से पता चलता है कि यह परिवार अत्यन्त श्रीसम्पन्न था।

(८) श्रेष्ठि समधा :

मेवाड़ के निवासी श्रेष्ठि समधा का उल्लेख कई ग्रंथ प्रशस्तियो, ताम्रपत्रों, शिलालेखों आदि मे हैं। जैसलमेर भंडार मे संग्रहीत 'दश श्रावक चरित्र चूर्णि' वि० स० १३०९ में इसका

उल्लेख है। यह मेवाड के वर ग्राम का निवासी था। सम सामयिक राजमत्री समधा का भी उल्लेख मिलता है जिसका उल्लेख वि० स० १३१६ से लेकर १३२३ तक के कई लेखो म मिलता है। इसकी साली धाधी नामक श्राविका ने वि० स० १३५२ मे चित्तौड मे एक ग्र थ लिखवाया था। इस प्रकार वर ग्राम के प्रभवी श्रावक के पुत्र समधर का मेवाड के राजमत्री समधा से क्या सम्ब ध था, बताना कठिन है।

(९) श्रेष्ठि धाधल।

जसलमेर भडार मे सग्रहीत "चद्र दूत काव्य" की वि० स० १३४३ की प्रशस्ति मे एव युगप्रधान गुर्वावली के वि० स० १३३४ के वर्णन मे इस परिवार का उल्लेख है। धाधल के पुत्रो के नाम रत्ना और भीम था। करेडा के जन मदिर मे वि० स० १३१७ का धाधल श्रेष्ठि का शिला लेख है इसम इसके पिता का नाम आसराज दिया गया है। बडोदा म सग्रहित "निघटुशेष" नामक ग्र थ (वि स० १३४३) भी इसी सौवर्णिक धाधल के परिवार का मान सकते है।

(१०) मडोवर के श्रेष्ठि जेल्हा परिवार

बीकानेर म मडोवर मूल नायक प्रतिमा आज भी विराजमान है। अतएव पता चलता है कि मडोवर म बडी सख्या म जन श्रेष्ठि रहते थे। इनम श्रेष्ठि जेल्हा का परिवार बडा उल्लेखनीय है। आबू के विमलवसही के जीर्णोद्धार मे इसी परिवार ने वि० स० १३७८ के आसपास बडा ही महत्त्वपूर्ण काय किया था। इस परिवार के कई लेख आबू मे लग रहे हैं। १४ बार सघ यात्रा निकालने का उल्लेख होने से पता चलता है कि यह परिवार अत्यन्त श्री सम्पन्न था।

११) रामदेव नवलखा परिवार

महाराणा लाखा के समय देवकुलपाटक बहुत ही समृद्ध नगरो म माना जाने लगा। यहाँ कई श्रेष्ठि परिवार रहते थे इनम रामदव नवलखा का परिवार उल्लेखनीय है। वि० स० १४३१ म बडा भारी दीक्षा महोत्सव करेडा (जिला चित्तौड) म कराया था। मेरुनन्दन उपाध्याय ने देलवाडा म विनप्ति लेख की प्रतिलिपि वि० स० १४४५ म की जिसम इस परिवार का उल्लेख किया गया है। इसकी पत्नी का नाम मलादेवी था जो वि० स० १४८६ तक जीवित थी। इसके दो पुत्र साहण और सारग थे। इस परिवार ने कई प्रतिमाए बनवाई। कई ग्र थ लिखवाये।

(१२) वीसल श्रेष्ठि परिवार

उपर्यु क्त रामदेव श्रेष्ठि की पुत्री "खीमाई" की शादी ईडर निवासी वत्सराज के परिवार म वीसल के साथ हुई थी। वत्सराज के ४ पुत्र थे—(१) गोविन्द, (२) वीसल, (३) अक्करसिंह और (४) हीरा। गोविन्द द्वारा निकाले गये सघ का विस्तार से उल्लेख 'सोम सौभाग्य' काव्य म है। वीसल श्रेष्ठि को महाराणा लाखा ने मेवाड म बसने को कहा था। यह देलवाडा म रहता था और अपने समय का उल्लेखनीय व्यापारी था इसके २ पुत्र धीर और चम्पक नामक थे। क्रियारत्न-समुच्चय ग्र थ की दस प्रतिया इस परिवार ने लिखाई थी और आचार्य सोमसु दर सूरि को आमत्रित करके विशालराज को वाचक पद दिलाने हेतु बहुत बडा महोत्सव कराया। इसी प्रकार जिनकीर्ति को सूरि पद दिलाने हेतु भी उत्सव किया था।

(१३) श्रेष्ठि गुणराज परिवार :

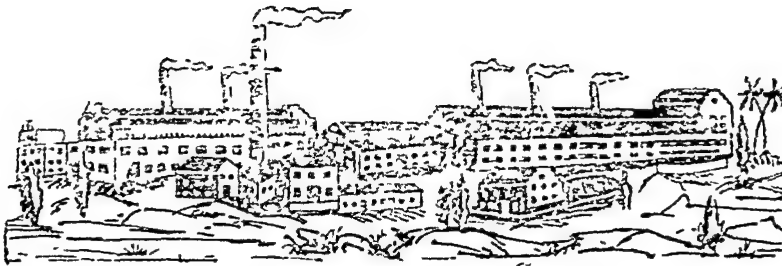
गुणराज चित्तौड का रहने वाला था और गुजरात मे व्यापार करता था। इस परिवार का विस्तार से उल्लेख वि० सं० १४९५ की चित्तौड़ की प्रशस्ति, राणकपुर की प्रशस्ति, सोम सौभाग्य काव्य आदि मे है। श्रेष्ठि गुणराज ने विशाल संघ निकाला था। गुजरात के बादशाह ने भी इसे सम्मानित किया था।

(१४) धरणाशाह परिवार :

राणकपुर मंदिर का निर्माता धरणाशाह बड़ा प्रसिद्ध है। इस परिवार वालों के कुछ लेख पिंडवाड़ा से भी मिले हैं। पिंडवाड़ा के वि० सं० १४६५ के शिलालेख के अनुसार श्रेष्ठि कुंरपाल के २ पुत्र रतना और धरणा थे। रतना का परिवार मोडू मे जाकर के रहने लगा। धारणाशाह ने आचार्य सोमसुन्दर सूरि के उपदेश से जगत्प्रसिद्ध राणकपुर के देवालय का निर्माण कराया। यह कार्य कराना एक व्यक्ति के लिये अत्यन्त कठिन है। ऐसा विशाल कार्य हाथ मे लेना यह प्रकट करता है कि धरणा शाह परिवार काफी अधिक धनवान परिवार था।

इन परिवारो के अतिरिक्त जैसलमेर मे कई उल्लेखनीय परिवार थे। यहा खरतरगच्छ का प्रसिद्ध केन्द्र था। मंडोर मे भी जैनियो की बहुत बडी बस्ती थी। डूंगरपुर में श्रेष्ठि साल्हा शाह एक उल्लेखनीय व्यक्ति रहा था। इसका उल्लेख आतरी के शिलालेख, गुरुगुण रत्नाकर काव्य आदि मे हो रहा है।

इस प्रकार पूर्व मध्यकाल मे जैन श्रेष्ठियो की स्थिति काफी उल्लेखनीय थी।



४४ | उन्नीसवीं सदी के राजस्थान के आर्थिक जीवन में कतिपय जैन परिवारों का योगदान

•

डॉ० कालूराम शर्मा

राजस्थान के इतिहास मे उन्नीसवी सदी सक्रमणकाल के रूप मे मानी जाती है। पिछली किसी एक सदी म इतना अधिक परिवर्तन देखने म नही आता है जितना उन्नीसवी सदी म दिखाई पडता है। सदी के प्रारम्भ म राजपूत राज्यो को जहा मराठा तथा पिंडारियो एव पठानो की लूट खसोट का सामना करना पडा वही साम तो एव शासको के आपसी सघर्ष का विनाशकारी परिणाम भी भुगतना पडा। १८१८ ई० मे राजपूताने के नाम मात्र के स्वत त्र राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आश्रित बन गये। फिर भी, शा ति और व्यवस्था के कायम होने म काफी वर्ष लग गये। सदी के अ त तक अग्रेजो ने राज्यो के आन्तरिक प्रशासन पर भी अपना पूर्ण नियत्रण स्थापित कर लिया।

राजनीतिक उथल-पुथल एव अव्यवस्था की इस सदी मे भी राजस्थान के सेठ साहूकारो ने राज्यो क आर्थिक जीवन को पगु नही होने दिया और व्यापार-वाणिज्य तथा लेन देन के काम को सुचारू रूप से जारी रखा। यह वास्तव मे विस्मयजनक है। उनकी इस सफलता तथा उपलब्धि में जैन साहूकारो का योगदान विशेष उल्लेखनीय रहा है।

व्यावसायिक दृष्टि स रुपयो का लेन दन और व्यापार वाणिज्य जन साहूकारो का परम्परा गत व्यवसाय था। कई जैन परिवार खालसा भूमि के राजस्व और सायर (चुगी) का इजारा लेने का काम भी करत थे। साहूकार के रूप में साधारण किसान से लेकर शासको तक को ब्याज पर ऋण देना उनका मुख्य व्यवसाय था। इस सदी में जन साहूकारो के कई घराने राज्यो के खजाची तथा बैकर्स बने हुए थे। रीयां वाले सेठ मुहणोत जीवनदास के घरान ने कई वर्षों तक जोधपुर, उदयपुर, किशनगढ़, टोंक आदि राज्यो के लिये बैकर्स का काम किया था। इन राज्यो के कामो में जो कुछ खच होता था, वह सेठ लोग दे देते थे और राज्यो की जो आमदनी होती थी वह सेठो के पास जमा करा दी जाती थी। साल के अ त में हिसाब कर लिया जाता था। सेठ हमीरमल के समय में इस घराने ने अग्रेजी सरकार के लिए भी खजाने तथा बैकस का काम किया। सेठ चादमल के समय में कोहाट, कुरम, मलाकान, पशावर, जालधर, होशियारपुर, सागर, सांभर, पचपद्रा, डीडवाना

आदि स्थानों पर ब्रिटिश खजाने का सारा काम-काज इसी घराने के अधिकार में था। १८७८-७९ में काबुल युद्ध के समय सेठ चांदमल ने अंग्रेज सरकार को एक करोड़ रुपये उधार दिये थे। इसी से इस घराने के ऐश्वर्य का पता चल जाता है।

बोहरगत के मामले में जैसलमेर के सेठ गुमानचन्द बापना का घराना भी काफी प्रतिष्ठित था। उनके पुत्र सेठ बहादुरमल के समय में कोटा, बून्दी, टोंक आदि रियासतों के खजाने का काम इसी घराने के हाथ में रहा था। अंग्रेजों की देवली एजेन्सी के खजाने का काम भी कई वर्षों तक इसी घराने के पास रहा था। बहादुरमल के दत्तक पुत्र सेठ दानमल के समय में इस घराने की प्रतिष्ठा और भी अधिक हो गई थी। गुमानचन्द के दो अन्य पुत्रों—मगनीराम और जोरावरमल ने मिलकर सुप्रसिद्ध "मगनीराम जोरावरमल" फर्म की स्थापना की। इस फर्म ने कई राज्यों के खजाने का काम किया। उदयपुर राज्य में नियुक्त अंग्रेज एजेन्ट कर्नल टॉड ने जोरावरमल को इन्दौर से बुलाकर उदयपुर राज्य का बैंकर तथा कोषाध्यक्ष नियुक्त किया। जोरावरमल ने अपनी पूंजी तथा सूझ-बूझ से उदयपुर राज्य की दयनीय आर्थिक स्थिति को सुधारने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उदयपुर राज्य की अंग्रेज एजेन्सी के खजाने का काम भी सेठ जोरावरमल को ही सौंपा गया। उनके पुत्र सेठ चांदमल ने १८५७ में अंग्रेज सरकार को लाखों रुपये उधार देकर उसकी स्थिति को मजबूत बनाने में योगदान दिया था।

अजमेर के मेहता गंभीरमल के घराने ने भी कई वर्षों तक कई राज्यों के लिए खजाने तथा बैंकर्स का काम किया था। मेहता प्रतापमल के समय में इस घराने का राजस्थान की बहुत-सी रियासतों के साथ लेन-देन का काम होता था। अजमेर के मेहता लालचन्द का घराना भी प्रतिष्ठित बैंकर था। उनकी फर्म "लूनकरण रिद्धकरण" का कई राज्यों के साथ लेन-देन था। अजमेर के सेठ कमलनयन हमीरसिंह लोढ़ा के घराने की गिनती भी प्रतिष्ठित बैंकरों में की जाती थी। जयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, टोंक आदि राज्यों के साथ उनका लेन-देन था। इस घराने के सेठ समीरमल को अलवर, कोटा और जोधपुर रेजीडेन्सियों तथा देवली और एरनपुरा की अंग्रेज सैनिक छावनियों के खजाने का काम भी सौंपा गया था। जयपुर और बाद में अजमेर बस जाने वाले सेठ पद्मसी नेनसी ढढ्ढा के घराने ने भी बैंकिंग व्यवसाय में काफी ख्याति अर्जित की। इस घराने का कई देशी रियासतों के साथ लेन-देन था। इसी घराने के सेठ अमरसी ने हैदराबाद दक्षिण में "अमरसी सुजानमल" फर्म कायम की और दक्षिण के भारतीय शासकों के साथ लेन-देन का काम शुरू किया था।

जयपुर के सेठ गुमानसिंह दानसिंह कोठारी का घराना भी प्रतिष्ठित बैंकर था। इस घराने का इन्दौर, बीकानेर, उदयपुर, ग्वालियर आदि राज्यों के साथ कई वर्षों तक लेन-देन रहा। जयपुर के ही सेठ देवीचन्द कोठारी का घराना भी लेन-देन का काम करता था। इस घराने के सेठ कपूरचन्द के समय में जयपुर राज्य ने लाखों रुपये उधार लिये थे। चूरू के सेठ केशरीचन्द गुलाबचन्द कोठारी के घराने ने पहली बार ब्रिटिश राज्य में अपनी बैंकिंग फर्म स्थापित की थी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ भी कई वर्षों तक लेन-देन किया।

उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल तक वस्तुओं के आयात-निर्यात का लेन-देन मुख्यतया हुंडियों के द्वारा ही किया जाता था। राजपूत राज्यों का आपसी लेन-देन और ब्रिटिश सरकार को दिये जाने

वाले खिराज का भुगतान भी हुडियो के द्वारा ही किया जाता था । सामान्य सनिक और राजकर्मचारी अपने-अपने घर रुपये भिजवाने के लिये भी हुडियो का सहारा लेते थे । हुडी-व्यवसाय मे जैन साहूकारों ने काफी अच्छी साख अर्जित की थी । कोटा राज्य का खिराज सामान्यत मगनीराम जोरावरमल की हुडियो के द्वारा ही जमा होता था । कई बार कोटा के शाह केशोराम शिवनाथ की हुडियो के द्वारा भी जमा कराया गया । अंग्रेज सरकार ने सेठ मगनीराम जोरावरमल को चार प्रतिशत कमीशन पर उदयपुर राज्य का खिराज हुडियो के द्वारा अजमेर खजाने में जमा कराने की आज्ञा दे रखी थी । जयपुर राज्य के सेठ गुमानसिंह दानसिंह कोठारी की हुंडिया इन्दौर, पूना, ग्वालियर, उदयपुर, अमरावती, बीकानेर, बम्बई आदि स्थानो के लिये की जाती थी । जयपुर के ही शाह देवीचन्द कोठारी की फर्म मालवा, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, फर्रुखाबाद आदि स्थानो के लिये हुडियो का काम करती थी । चूरू के केशरीचन्द गुलाबचन्द और उनके घराने की हुडिया सारे उत्तरी भारत में सिकारी जाती थी । अजमेर में हुडी का व्यवसाय करने वाले जन साहूकारो में कमलनयन हमीरसिंह, पदमसी नैनसी और लूनकरण रिद्धकरण की फर्में मुख्य थी । उदयपुर में मेहता बदनमल की हुडी व्यवसाय में काफी ख्याति थी । रीया वाले सेठ मुहणोत जीवनदास के घराने तथा जसलमेर के सेठ गुमानचन्द बापना के घराने ने इस क्षेत्र में अपूर्व कीर्ति अर्जित की ।

मध्यकालीन राजस्थान के व्यापार वाणिज्य की उन्नति मे उसकी भौगोलिक स्थिति का महत्वपूर्ण योगदान रहा । देश के उत्तरी, उत्तर पश्चिमी और दक्षिणी भारत के अधिकांश व्यापारिक मार्ग राजस्थान से होकर गुजरते थे । इस प्रकार, राजस्थान का भारत के दोनो प्रमुख क्षेत्रों से घनिष्ट व्यापारिक सम्पर्क बना रहा । अफ्रीका, यूरोप और एशिया के व्यापारी सिन्ध अथवा गुजरात के बन्दरगाहों से राजस्थान की प्रमुख मडियो तक आते थे और अपने सामान के बदले में उत्तरी, उत्तर-पश्चिमी भारत और मध्यएशिया की वस्तुए ले जाते थे । इसी प्रकार, मध्य एशिया के व्यापारी भी घोडो, सूखे मेवो तथा अन्य वस्तुओ के बदले म पूर्वी एशिया का सामान ले जाते थे । उन्नीसवी सदी के मध्य तक राजस्थान के व्यापार वाणिज्य की स्थिति पहले की भाति बनी रही और इसे बनाये रखने मे जन साहूकारो की भूमिका महत्वपूर्ण रही । उनका मुख्य काय कुटीर उद्योगों के उत्पादन तथा कृषि उत्पादन की वस्तुओ के निर्यात मे सहायता देना तथा स्थानीय आवश्यकता के अनुसार अन्य वस्तुओ का आयात करना था । उदाहरणार्थ, कोटा के शाह मोहनराम रिखबदास अफीम के बहुत बडे व्यापारी थे जिनके यहा से कच्चे माल से पुख्ता माल तैयार होकर अन्य राज्यों को भेजा जाता था । पाली मारवाड के सेठ कचरदास लोढ़ा भी अफीम के बहुत बड़े व्यापारी थे । अफीम के व्यापारियो मे सादडी के सेठ गगाराम बापना भी अग्रिम पक्ति मे थे । रतलाम और इन्दौर में भी उनकी दुकानें थीं जिन पर बडे पैमाने पर अफीम का व्यापार किया जाता था ।

कपडा, कपास, अनाज, किराणा आदि के व्यापार-क्षेत्र मे राजस्थानी जैन साहूकार सबसे आगे रहे । रीया के नगर सेठ मुहणोत जीवनदास की पूना, अजमेर तथा दक्षिण भारत के अनेक स्थानो मे दुकानें कायम थीं । हमीरमल के समय मे इस घराने का व्यापार वाणिज्य और भी अधिक विस्तृत हुआ तथा पजाब और मध्यभारत में कई दुकानें खोली गइ । जोधपुर राज्य की तरफ से इस घराने को विशेष सुविधाए प्रदान की गई । उनके व्यापार-वाणिज्य पर आधा महसूल माफ था और उनकी घरेलू आवश्यकता के लिये आने वाले समस्त सामान की पूरी चुगी माफ कर दी गई

थी। सेठ चांदमल के समय में इस घराने की लगभग ४०० दुकानें सम्पूर्ण भारत में फैली हुई थी। व्यापार-वाणिज्य के क्षेत्र में जैसलमेर के सेठ गुमानचन्द बापना के घराने ने विशेष प्रतिष्ठा अर्जित की। उनके पांच पुत्रो–बहादुरमल, सवाईराम, मगनीराम, जोरावरमल और प्रतापचन्द्र ने क्रमशः कोटा, झालरापाटन, रतलाम, उदयपुर और जैसलमेर, इन्दौर को अपना-अपना कार्यक्षेत्र बनाया और सम्पूर्ण भारत में सैकड़ो दुकानें कायम की। चीन में भी इस घराने की दुकान थी।

अजमेर के जैन साहूकार भी इस क्षेत्र मे पीछे नही रहे। मेहता प्रतापमल के घराने की दुकाने कलकत्ता, हैदराबाद, पूना, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, इन्दौर, टोंक, उज्जैन आदि स्थानों पर थी। मेहता लालचन्द की ग्वालियर, झांसी, फर्रुखाबाद, मिर्जापुर, भोपाल, जयपुर आदि स्थानो पर सराफे की दुकानें थी। इस घराने की "लूनकरण रिद्धकरण" फर्म की २५–३० शाखाएं उत्तरी-भारत में फैली हुई थी। अजमेर की ही "कमलनयन हमीरसिंह" फर्म की दुकानें जयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, फर्रुखाबाद, टोंक, सीतामऊ, कलकत्ता, बम्बई, कोटा, अलवर, सिरोंज आदि अनेक स्थानो पर कायम थी। अजमेर की एक अन्य प्रसिद्ध फर्म "पद्मसी नैनसी" थी जिसकी शाखाए दक्षिण-भारत मे मद्रास और पूर्व मे आसाम तथा उत्तर मे पंजाब तक फैली हुई थी। चूरू के जैन साहूकारो मे "रुक्मानन्द वृद्धिचन्द" की फर्म काफी प्रसिद्ध रही। बाद मे इसका नाम "तेजपाल वृद्धिचन्द,' पड़ा। यह फर्म मुख्यतः कपडे और बैंकिग का कारोबार करती थी और राजस्थान तथा आसाम-बंगाल मे इसकी कई शाखाएं थी

उदयपुर के मेहता बदनमल ने न केवल भारत मे ही अपितु रंगून, हांगकाग आदि सुदूर-पूर्वी स्थानों मे भी अपने फर्म की शाखाएं स्थापित की थीं। इसी प्रकार, जयपुर के गुलाबचन्द वेद जौहरी इंगलैण्ड से पन्ना मगाकर भारत मे बेचने तथा इंगलैण्ड को जवाहरात भेजने का व्यवसाय करते थे। जयपुर के 'गुमानसिंह दानसिंह" (कोठारी) की इन्दौर, पूना, ग्वालियर, उदयपुर, बीकानेर, अमरावती आदि स्थानो पर कई शाखाएं थीं। बम्बई में राजस्थानी साहूकारों की सर्वप्रथम शाखा खोलने का श्रेय भी उन्हीं को है। जयपुर के एक अन्य जैन साहूकार देवीचन्द कोठारी की मालवा, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, फर्रुखाबाद आदि स्थानो पर ५४ शाखाएं थीं। सरदारशहर के सेठ चैनरूप दूगड़ के घराने की "चैनरूप सम्पतराम" फर्म की कलकत्ता के बाजार मे काफी प्रतिष्ठा थी। यह फर्म विदेशी कपड़े का सीधे इंगलैण्ड से आयात करती थी। चूरू की ही एक अन्य फर्म "रुक्मानन्द-सागरमल" (बोथरा) जापान तथा इंगलैण्ड से विदेशी कपड़े का आयात करती थी। चूरू के त्यागी जैन साहूकार चिमनाराम मोदी के घराने की दुकानें भी अनेक स्थानो मे फैली हुई थी। दिल्ली में उनकी फर्म "जयदयाल भीमराज" के नाम से प्रसिद्ध थी तो कलकत्ते में "बैजनाथ बालचन्द" के नाम से विख्यात थी।

उन्नीसवीं सदी में कई जैन साहूकारों का मुख्य व्यवसाय भूमि-कर और सायर वसूली का इजारा लेना था। इसके साथ-साथ वे लोग जमीदारी का काम-काज भी करते थे। १८५१ ई० तक उदयपुर राज्य की सम्पूर्ण सायर वसूली का ठेका सेठ जोरावरमल के पास रहा था। अजमेर और ब्यावर की सायर वसूली का इजारा भी काफी वर्षों तक जैन साहूकारों ने ले रखा था। जैसलमेर राज्य से भूमि-कर वसूली का इजारा कुछ वर्षों तक सेठ गणेशदास बहादुरमल के पास रहा था।

सिरोही के बापना परिवार की "सूराजी फूलचन्द" फर्म भी भूमि कर उगाही तथा सायर वसूली के इजार लेने का काम करती थी। उदयपुर के प्रेमचन्द बापना का घराना भी इजारेदारी का काम करता था।

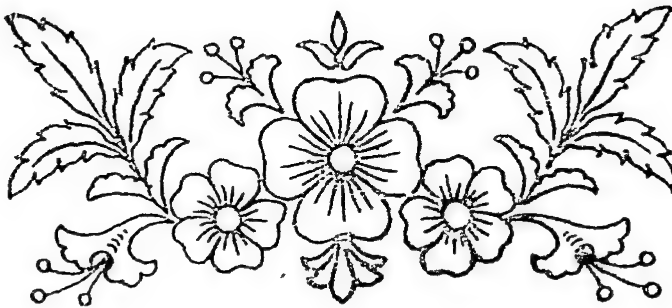
उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे राजस्थान की आर्थिक स्थिति मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुये। अंग्रेजो ने राजपूताना को भी अपनी आर्थिक साम्राज्यवादी नीति मे लपेट लिया। परिणामस्वरूप विभिन्न राज्यो म खानो का उत्खनन बन्द हो गया। नमक-उद्योग पर ब्रिटिश सरकार का एकाधिकार कायम हुआ। रेल मार्गों के खुल जाने मे हजारो बनजारो का व्यवसाय सीमित हो गया। पुराने व्यापारिक केन्द्रो का महत्त्व भी जाता रहा। भूमि बन्दोबस्त और चुगी की सशोधित व्यवस्था ने क्रमश भूराजस्व और सायर वसूली की इजारा प्रथा को समाप्त कर दिया। राज्यो मे आधुनिक खजानो की स्थापना ने राज्यो के साथ लेन-देन और ब्याज के व्यवसाय को भी काफी सीमित कर दिया। इस प्रकार, धन सम्पत्ति अर्जित करने के परम्परागत साधन सीमित होते गये परन्तु नये साधन उपलब्ध नही हुए। ऐसी स्थिति म राजस्थानी व्यापारियो और सेठ साहूकारो ने राजस्थान के बाहर ब्रिटिश प्रान्तो तथा अन्य देशी रियासतों म अपना भाग्य आजमाने का प्रयत्न किया। यह क्रम बीसवी सदी म भी जारी रहा।

राजस्थान के बाहर भाग्य आजमाने जाने वाले व्यापारियो एव साहूकारो मे भी जैन साहूकारो की सख्या अधिक रही। सुदूर अनजान प्रदेशो मे जाना और वहा बसना सरल काम नही था। फिर भी जैन साहूकारो ने अद्भुत साहस का परिचय दिया। बगाल, आसाम, मद्रास आदि प्रान्तो मे उन्नीसवी सदी के बीतते न बीतते अनेक प्रसिद्ध जैन गद्दिया का आविर्भाव हो गया। प्रारम्भ म वे लोग बेनियन हुए। फिर मुत्सद्दी, मुनीम और दलाल हुए। किन्तु बीसवीं सदी के प्रारम्भ मे हम उन्हे प्रमुख बैंकर, कपडे के बडे व्यापारी, प्रधान जूट बेलर, अग्रिम पक्ति के लोहे के व्यापारी, चाय बागानो के स्वत्वाधिकारी, अफीम के प्रतिष्ठित व्यापारी के रूप मे देखते हैं। कलकत्ता की प्रसिद्ध फर्म "रुक्मानन्द वृद्धिचन्द" जो बाद मे 'तेजपाल वृद्धिचन्द' के नाम से विख्यात हुई, चूरू के जैन साहूकारो की ही थी। इसी प्रकार, 'गणेश चनरूप सम्पतराम" फर्म सरदारशहर के जैन साहूकार की थी। जोधपुर के सेठ लालचन्द बोथरा ने बगाल मे "लालचन्द अमानमल" फर्म स्थापित की। चूरू के बोथरा परिवार ने भी कलकत्ता मे "रुक्मानन्द सागरमल" नामक फर्म स्थापित की। रतनगढ के सेठ माणकचन्द बद ने कलकत्ता म 'माणकचन्द हुकमचन्द" नामक फर्म कायम की। चूरू के बेद उदयचन्द पन्नालाल और राजलदेसर (बीकानेर) के सेठो की 'खड्गसिह लच्छीराम" फर्म कलकत्ते की प्रसिद्ध फर्मों मे से एक थी। पाली मारवाड के कोठारी नरसिंह के पुत्रो ने बम्बई म 'सागरमल निहालचन्द" फर्म स्थापित की। सेठ अमरसी ने हैदराबाद दक्षिण मे 'अमरसी सुजानमल" नामक सुविख्यात फर्म कायम की। इन लोगों के अतिरिक्त अनेक ऐसे जैन परिवारों का उल्लेख मिलता है जो कि एक लोटा डोर लेकर कमाने के लिए बाहर निकल पड़े और हजारो मील की दूरी तय करके अनजान इलाका म बस गये और वहा व्यापार-वाणिज्य द्वारा अच्छी सम्पत्ति अर्जित की और उन इलाको म राजस्थानी सस्कृति के साथ-साथ जैन धर्म का आलोक भी फैलाया।

राजस्थानी सेठ-साहूकारो ने शुरू में वाणिज्य को ही अपनाया। उद्योग और उत्पादन के क्षेत्र में वे काफी दर से उतरे। परन्तु इस क्षेत्र में भी जैन साहूकार अग्रणी रहे। जयपुर के कोठारी

चादमल ने सर्वप्रथम अजमेर में आइस फैक्टरी कायम की। उन्होंने अजमेर में एक आयरन एण्ड ब्रास फाउण्डरी, मंडावर में एक जिनिंग फैक्टरी तथा जयपुर में आइस फैक्टरी भी खोली। अजमेर के सेठ हमीरसिंह लोढ़ा ने ब्यावर में एडवर्ड मिल की स्थापना करके राजस्थान में वस्त्र-उद्योग को प्रोत्साहन दिया। जयपुर के गुलाबचन्द वेद ने जवाहरात उद्योग को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। राजस्थान के बाहर बसे राजस्थानी सेठ-साहूकारो पर ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाये गये विशेष प्रतिबन्धो के कारण वे लोग अपने-अपने राज्यो में कारखाने स्थापित करने में असमर्थ थे। यही कारण है कि चाहते हुए भी वे अपने राज्यो में उद्योग-धन्धो का विकास नहीं कर पाये।

इस प्रकार, उन्नसवीं सदी के राजस्थान में बोहरगत, हुंडी-व्यवसाय, व्यापार-वाणिज्य, इजारा व्यवसाय आदि सभी आर्थिक गतिविधियो में जैन साहूकारो ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया और व्यापार-वाणिज्य को उन्नत बनाये रखने मे अपना अथक सहयोग प्रदान किया।



४५ | बीकानेर राज्य के आर्थिक विकास मे जैनियो का योगदान

श्री गिरिजाशकर शर्मा

पृष्ठभूमि

बीकानेर राज्य के इतिहास मे जन धर्मावलम्बियो का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है। राज्य के स्थापना काल से लेकर राजस्थान मे इसके एकीकरण तक जन घराने बीकानेर राज्य को प्रशासनिक, सनिक एव राजनतिक सेवा मे सलग्न रह कर काफी ख्याति कमा रहे थे तो दूसरी ओर इन्ही घरानो के अन्य लोग राज्य के वाणिज्य व्यापार एव औद्योगीकरण मे भाग लेकर इसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ करने मे व्यस्त थे। जब राव बीका ने बीकानेर राज्य की स्थापना करने के लिये जोधपुर राज्य से कूच किया तो उनके साथ जन धर्मावलबी ओसवाल जाति के बच्छावत मेहता वरसिह, वैद महता लाला और लाखणसी व कोठारी चौथमल मुतसद्दी के रूप मे आये।[1] राज्य की स्थापना के बाद इन लोगो को राज्य मे अनेक उच्च पदो पर नियुक्त किया गया। इनके बाद इनके वशजों मे मुख्य रूप से कमचद, वद महता अबीरचद व मेहता हिन्दुमल तो अमात्य एव प्रधान अमात्य पदो को भी सुशोभित कर चुके थे। इन घरानो के अतिरिक्त सुराणा, राखेचा, एव नाहटा आदि कई जैन धर्मावलबियो के वशजो न राज्य के उच्च पदों पर रहकर सनिक एव राजनतिक सेवाएँ देने का अवसर प्राप्त किया था। यहा यह द्रष्टव्य है कि महाराजा सरदारसिंह के शासन तक (सन् १८७२) राज्य क उच्च एव दायित्वपूण पदो पर वश्य वग विशेषत जन ओसवालो की प्रधानता रही।[2] इस समय तक प्रधान मत्री का अपनी अ य जिम्मेवारियो के अतिरिक्त राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करना मुख्य जिम्मेवारी मानी जाती थी।[3] प्रस्तुत निबंध में हम उक्त घरानो एव समय-समय पर राज्य के विभिन्न भागो मे आकर बसन वाले वाणिज्य व्यापार मे सलग्न जन धर्मावलम्बी लोगो का, राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने म जो योगदान रहा उस पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

सन् १८७४ म जिस समय केप्टिन पाउलेट ने राज्य का गजेटियर तयार किया था, उस समय बीकानेर क अस्सी प्रतिष्ठित व्यापारिक घराने वद मेहता लाला को अपना पूवज मानते थे तथा

---

१ पाउलेट—गजेटियर ऑफ दी बीकानर स्टेट, पृष्ठ १।

२ गौरीशकर हीराचद ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास (द्वितीय भाग), पृष्ठ ७५३।

३ गौरीशकर हीराचद ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास (द्वितीय भाग), पृष्ठ ७५४।

पाच अन्य व्यापारिक घराने कोठारी चौथमल को अपना पूर्वज मानते थे।[1] ये दोनों राव बीका के साथ जोधपुर से आये थे। इनके अतिरिक्त बीकानेर के शासकों ने राज्य मे अनेक गांवों एवं कस्बों को बसाने के लिये समय-समय पर राज्य के बाहर के व्यापारियों को निमंत्रण दिया और यहां बसने के लिये उन्हें अनेक सुविधाएँ प्रदान की। इससे राजपूताने की अनेक रियासतों के व्यापारियों ने राज्य मे आकर अपना वाणिज्य व्यापार प्रारंभ किया। इन व्यापारियों मे भी जैन धर्मावलम्बी ही सबसे अधिक आकर बसे।[2] जैन लोग अधिकतर राज्य के सुजानगढ, सरदारशहर, रतनगढ, राजलदेसर, डूंगरगढ व चुरू मे आकर बसे थे। इनमें ओसवाल, सरावगी व जैन धर्म को मानने वाले अग्रवाल मुख्य थे। राज्य मे सन् १९२१ मे कुल व्यापारियों की संख्या ४५,१३३ थी जिनमें से आधे से अधिक २५,००० के लगभग केवल जैन धर्मावलम्बी २४,५५१, सरावगी ४४९ व शेष अग्रवाल जैन ही थे।[3] इस प्रकार राज्य में अनेक जैन जाति के घराने यत्र तत्र बिखरे हुए थे, उनमे मुख्य घरानो के मूल नाम इस प्रकार हैं :—

बाघचार, बडेर, धाड़ीवाल, भांडावत, शाह, मन्नी, साड, बूचा, मरोहठी, सेठिया, मालू, लोकड़ी, नाडवेंद, कोचर, सिरोहिया, वाफनिया, कोजतिया, भंडारी, भूरा, सजती, रवड़, लोनिया, सोनावत, चजलानी, ललवानी, फलोदिया, पनूचा, अभानी, बक्शी, दफ्तरी, कावडिया, आंचलिया, सिपानी, हीरावत, आसाती, भूपानी, नाहर, खटोल, रामपुरिया, दोगड़, मानोत, गोलछा, गलगलिया, खजांची, भडसाली, नाहटा, छाजेड, चोपड़ा, भादानी, मूड़ा, सुखानी, लढानी, वैद, वच्छावत, वडरिया, बेगानी, सावनसुखा, कोठारी, पारख, डड्ढा, बाठिया, कात्तेला, दसानी, लोढ़ा, लालानी, पटवा, डागा, जैसलमेरी, डागाराजानी, पारखजेठानी, पारख पंसारी, सिंघी, सुराना, गुड़िया, चोरड़िया, सेठी, बोथरा, सनावत, चडालिया, गद्दैया, जलेबी चोर, डोसी, छुरिया, सांकालिया, कुंडलिया, गुड़ावत, झावक, सुजानी, राखेचा, पुगलिया, रतानी, कांकरिया, कठोतिया व बाफना।[4]

राज्य की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था एवं जैन व्यापारी :

बीसवी सदी के प्रारंभ तक राज्य मे ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का आधार गांवो एव कस्बो मे रहने वाले साहूकार एवं महाजन ही थे, जो वैश्य जाति के प्रधान थे। सन् १९२१ तक राज्य मे ४७३४ व्यक्ति साहूकारी एवं महाजनी के कार्य मे व्यस्त थे जिनमे भी ओसवाल जाति के लोग ही सर्वाधिक थे।[5] प्रारंभकाल से ही बीकानेर कृषि एवं पशुपालन प्रधान राज्य था, तथा इसकी कुल

---

१. पाउलेट—गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, पृष्ठ १।

२. बीकानेर की परवाना वही, संवत् १८००–१९००, जो राजस्थान राज्य अभिलेखागार मे सुरक्षित है। इसके अनुसार विलाड़ा से रामचंद्र सुखानी, किशनगढ से मुहनोत आनन्दसिंह, फकीरदास व बुधाराम तथा अन्य ओसवाल व्यापारियों को राज्य मे आने का निमंत्रण दिया गया था। राज्य के शासक जैन सेठों को गांव अथवा कस्बों को बसाने के लिये चौधरी का पद भी इनायत किया करते थे। डूंगरगढ़ के भादानी व सुजानगढ़ के कठोतिया क्रमशः वहां के चौधरी थे।

३. सैंसस, बीकानेर स्टेट, सन् १९२१, पृष्ठ २९।

४ मुंशी सोहनलाल—तवारीख राज बीकानेर, पृष्ठ ४९।

५. सैंसस, बीकानेर स्टेट, सन् १९२१, पृष्ठ ३३।

जनसख्या का २/३ भाग केवल गावो मे रह कर ही अपना जीवन यापन करता था। किन्तु कम एव अनियमित वर्षा तथा नियमित अकालो के कारण ग्रामीण लोग अपना जीवन निर्वाह कठिनाई से किया करते थे। उनको अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु आर्थिक मदद के लिये, गाव अथवा पास के कस्बो के साहूकारो अथवा महाजनो पर ही मुख्य रूप से निभर रहना पडता था क्योकि राज्य मे इस समय तक राज्य की ओर से इस सम्बन्ध मे कोई विशेष व्यवस्था न थी।[1] कृषक एव पशुपालक बीज, हल एव पशु खरीदने से लेकर अपनी अन्य दैनिक आवश्यकताओ के लिये इन्ही साहूकारो एव महाजनो से रुपया उधार प्राप्त किया करते थे।[2] साहूकार एव महाजन ही मात्र ऐसा व्यक्ति था जिसे नियमित अकाल के कारण कृषक की फसल नष्ट होने का अनुमान होते हुए भी रुपया देने मे सकोच नही होता था, यही नही वह कृषक एव पशुपालक के अनुत्पादक खर्चों के लिये रुपया उधार दे दिया करता था। दूसरी ओर हम देखते हैं, राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ करने के लिय भू-राजस्व ही सबसे महत्वपूर्ण साधन था। राज्य मे नियमित भू-प्रबध से पूव गावो से भू-राजस्व वसूल करने मे इन वश्य जाति के महाजन एव साहूकारो का योग कम न था। राज्य के ग्रामीण अचलो म भू-राजस्व वसूल करन की मुख्य जिम्मेदारी गाव से सम्बद्ध हवलदार एव चौधरी की होती थी। अधिकाशत ये लोग भू-राजस्व की रकम ग्रामीण लोगो से सीधी वसूल न कर गाव के महाजन से एकमुश्त रकम प्राप्त करके गाव उसको सुपुर्द कर दिया करते थे तथा महाजन ग्रामीण लोगो से अपने पुश्तैनी लेनदेन के सम्बधो के कारण दी गयी रकम धीरे-धीरे वसूल कर लिया करते थे।[3] हालाकि गाव के इन साहूकारो एव ग्रामीण महाजनो की ऊँची ब्याज दर लेने के कारण आलोचना की जाती है किन्तु उस समय की राज्य की परिस्थितियो का अध्ययन किया जाय तो यह कहने मे कोई सकोच न होगा कि ग्रामीण अथ-व्यवस्था को सुदृढ करने मे जितना इस वग के लोगो ने योग दिया था उतना अन्य किसी ने नही।

राज्य का वाणिज्य-व्यापार एव जन व्यापारी

ग्रामीण अथ-व्यवस्था को सुदृढ करने मे ओसवाल जन व्यापारी जिस प्रकार योग दे रहे थे, उसी प्रकार राज्य के वाणिज्य व्यापार मे भी उनका योग कम न था। प्रारभ से ही राज्य का व्यापारिक दृष्टि से बहुत महत्त्व था। राजगढ़, चूरू व सुजानगढ़ आदि महत्त्वपूर्ण स्थान थे। इनमे से राजगढ़ तो बहुत बडा व्यापारिक स्थान था और भारत के उत्तरी भागो के सभी भागो से काफिले यहा आकर ठहरते थे। पजाब और काश्मीर की चीजें हासी और हिसार होकर सीधी यहा आती थी और पूर्वी भागो से दिल्ली, रेवाडी और दादरी होते हुए यहा रेशम, बढ़िया कपडा, नील, चीनी,

---

१ राज्य म सन् १६३० तक कृपको को देवी विपत्तिया के समय करो म कुछ छूट अवश्य दी जाती थी किन्तु राज्य की ओर से उनकी अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिय नकद भुगतान की विशेष व्यवस्था नही थी। इस समय तक किसी प्रकार की सहकारी समितियाँ भी सामने नहीं आई जो कृपको को ऋण दे सके।

२ राज्य म सकडों ओसवाल साहूकारो का राज्य की तरफ से साहूकारी कार्यों को करने के पट्टे भी मिले हुए थे।

३ फेगन—सटलमट रिपाट, बीकानर, पृष्ठ २०।

लोहा, तबाकू आदि आती थी। हाड़ौती और मालवा की तरफ से अफीम आता था जो राजपूताने की सभी रियासतों को जाता था। सिन्धु घाटी के प्रसिद्ध व्यापारिक स्थानो शिकारपुर और मुलतान से खजूर, गेहू, चावल, लूगी और फल आते थे। मारवाड मे पाली से विदेशो से समुद्री मार्ग से आयातित माल जैसे मसाले, दवाइया, नारियल आता था।[1] राजगढ से अनेक व्यापारी अपना माल रीणी होते हुए बीकानेर लाते थे तो कुछ लोग यहां से चूरू, रतनगढ एव सुजानगढ होकर फलोदी, नागौर और पाली की ओर चले जाते तथा अनेक व्यापारी यहा से पूगल होते हुए भावलपुर पहुंचा करते थे। इसके अतिरिक्त भिवानी से मारवाड जाने वाले व्यापारी भी अपने माल के साथ शेखावटी की अपेक्षा बीकानेर राज्य मे से ही गुजरा करते थे क्योकि बीकानेर मे केवल एक जगह राजगढ अथवा सुजानगढ़ में ही जकात देनी होती थी तथा इसके विपरीत शेखावटी मे वहां के ठाकुर इसे अनेक स्थानो पर वसूल किया करते थे। यहा यह द्रष्टव्य है कि उक्त व्यापार का कुछ भाग तो स्थानीय लोगो की आवश्यकता पूरी करता था परन्तु अधिकाश माल यहा से दूसरे स्थानो पर चला जाता था। इससे राज्य को राहदारी के रूप में अच्छी आमदनी होती थी। चुरू, रतनगढ, सरदारशहर, सुजानगढ़, डूगरगढ एवं भादरा आदि के कस्बे जो कि राज्य के मुख्य व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे, मे जैन व्यापारियो की सख्या सर्वाधिक थी। इन कस्बो के बाद राज्य की राजधानी मे भी इनकी सख्या काफी अधिक थी अतः ऐसा कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि उक्त व्यापार को सम्पन्न करवाने मे अन्य जाति के व्यापारियों की अपेक्षा जैन धर्मावलवियो का सहयोग ही सर्वाधिक था।[2]

इस समय तक ओसवाल लोग अफीम का सौदा, घी, गल्ला, कपडा, व्याज वट्टे व आढ़त का काम ही मुख्य रूप से किया करते थे तथा राज्य से माल का आयात भी किया करते थे।[3] परन्तु ज्योही ब्रिटिश भारत मे नयी व्यापारिक मडिया स्थापित हुई और यहा व्यापार मे लाभ के अधिक अवसर दिखायी दिये तो राजपूताने के अन्य व्यापारियो की भाति यहां के व्यापारियों का ध्यान भी उस ओर गया। दूसरी ओर राज्य मे बार-बार अकाल, जागीरदारो द्वारा सेठ-साहूकारो को तग करने एव महाराजा सूरतसिंह के समय गृह युद्ध एव बाहर के अनेक युद्धो के कारण असुरक्षा की भावना, ब्रिटिश नीति के कारण राज्य का परम्परागत व्यापार एवं व्यापारिक मार्गों के नष्ट हो जाने, राज्य मे कर भार अधिक होने एव अंत मे शासको द्वारा अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन ने यहां के व्यापारियों को अपने जीवनयापन के लिये ब्रिटिश भारत मे एव दक्षिण भारत की रियासतो मे जहां उन्हें उक्त सभी कठिनाइयो से छुटकारा मिलना सभव था, निष्क्रमण कर दिया।[4] इस प्रकार जैन जाति के ओसवाल एवं सरावगी भी अन्य जाति के साहसी एव अध्यवसायी लोगो के साथ ही देश मे दूर-दूर

---

१. टाड, राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ ११५४–११५५।

२. इस काल की परवाना वही एवं कागदो की वहियों मे जो राजस्थान राज्य अभिलेखागार मे सुरक्षित हैं, जैन जाति के सैकड़ो व्यापारियों का उल्लेख मिलता है, जो राज्य मे चारो ओर फैलकर व्यापार कार्य मे संलग्न थे।

३. मुंशी सोहनलाल, तवारीख राज बीकानेर, पृष्ठ ७१।

४. इस सम्बन्ध मे गिरिजाशंकर शर्मा का राजस्थान इतिहास कांग्रेस के अष्टम अधिवेशन अजमेर में पढ़ा गया शोध पत्र "बीकानेर के व्यापारियो का निष्क्रमण एवं उसके कारण" द्रष्टव्य हैं।

चारो ओर फल गये । परन्तु राज्य के ओसवाल जाति के व्यापारी अधिकतर बगाल, मालवा, सेन्ट्रल प्राविन्स, वम्बई, मद्रास, हैदराबाद व मैसूर मे पहुँचे । वहा जाकर उन्होने कपडा, अफीम, जवाहरात, सोना, चादी, जूट, रुई, बैकिंग, कमीशन एजेन्सी, फाटका व ठेकेदारी को अपने व्यापार का माध्यम बनाया । यही नही राज्य के ओसवाल प्रथम मारवाडी व्यापारी थे जिन्होने विदेशो मे ब्रिटिश फर्मों से सीधे ही कपडे का आयात करना प्रारभ किया था । इनमे से अनेक जूट प्रेसो के मालिक, शिपस व अनेक कारखानो के मालिक हो गये थ । इन्ही ओसवाला मे से कुछ वडे बडे बैंकर बनकर भारी मुनाफा कमा रहे थे जिन्हें ब्रिटिश भारत मे अच्छा सामाजिक सम्मान भी प्राप्त था ।[1] इतना होते हुए भी इन प्रवासी ओसवालो का अपन मूल निवास स्थान बीकानेर राज्य से बराबर सम्बन्ध बना रहा ।

ब्रिटिश भारत स्थित अपन व्यापारिक प्रतिष्ठानो के साथ-साथ अधिकांश लोगो ने राज्य मे भी अपन प्रतिष्ठाना की सहायक शाखाए खोल रखी थी जिन्हें दीवानखाने कहा जाता था जिनमे ब्याज बट्टा एव सर्राफी व हूडी चिट्ठी का काम मुख्य रूप स हुआ करता था । इन व्यापारियो मे साहूकारी का धधा अनेक रूप मे प्रचलित था । कुछ लोग तो राज्य के कस्बो जहा से वे सम्बद्ध होत थे एव उसके आसपास तक अपने धधे को सीमित रखत थे । परन्तु बहुत से लोगो न इसे अपने पैतृक धधे के रूप मे अपना रखा था और इनका अपनी ब्रिटिश भारत स्थित शाखाओ से बराबर सम्बन्ध बना रहता था । ये लोग हूडी लिखने का काम एव ब्याज पर रकम जमा करने के काय के साथ कमीशन एजे सी (आढत) का काम भी किया करते थे और कृषको एव पशुपालको द्वारा कस्बो मे लाई गयी उपज को बेचने आदि काय का दायित्व भी लेते थे । इन्ही मे से अनेक लोग राज्य के बडे-बडे कस्बो एव राजधानी बीकानेर म बैंकर का ही काम करते थे । वे रुपया, सोना, चादी जमा करते थे, चालू खातो पर रुपया निकालने की सुविधा देते थे, हूडी व अन्य कामर्शियल प्रलेखो जैसे रेल्वे रिसीप्ट आदि को वेचने एव खरीदने का काय करते और मुद्दती और दशनी हुडियो का लेनदेन में उपयोग करते थे । अनेक ओसवाल एव सरावगी व्यापारियो ने राज्य मे जब कम्पनीज रजिस्टड होने

---

१ इनमे मैसस चनरूप सम्पतराम दूगड, मैसर्स उदयमल चादमल, मैसस हस्तमल डागा, मैसस अगरचद जेठमल सेठिया, मैसस हजारीमल हीरालाल रामपुरिया, मैसस ताराचद मगराज, मैसस मन्नालाल सोभाचद सुराना, मैसस गिरधारीलाल रामलाल गोठी, मैसस जसराज जचन्दलाल वद, मैसस तिलोकचन्द जयमल, मैसस खेतसीदास कानूराम, मैसस जैसराज रिधकरण, मैसस नगराज माणकचद, मैसस खूमचद तोलाराम, मैसस कालूराम नथमल, मैसस लच्छीराम मेघराज, मैसस तेजमल विरधीचद, मैसस हजारीमल सिरदारमल, मैसस हजारीमल सागरमल, मैसस पन्नालाल सागरमल, मैसस गणेशदास मालचद, मैसस जैसराज गिरधारीलाल, मैसस पन्नालाल, गणेशदास, मैसस मगलचद उदयमल, मैसस मोजीलाल पन्नालाल वाठिया व मैसस गुलाबचद हनुवतराम बीकानेर राज्य की पुरानी ओसवाल व सरावगी फर्मे मुख्य थी जो ब्रिटिश भारत व दक्षिणी रियासतो मे विभिन्न प्रकार के व्यापार काय म सलग्न थी ।

लगी तो अनेक कम्पनियों को रजिस्टर्ड करवाया और उन्ही के माध्यम से व्यापार किया ।[1]

राज्य का औद्योगीकरण और व्यापारी :

राज्य मे सगठित उद्योगो का श्रीगणेश बीकानेर के महाराजा गंगासिंह द्वारा सत्ता के वास्तविक अधिकार प्राप्त करने (सन् १९०८) से ही माना जा सकता है । इनकी मृत्यु (सन् १९४३) तक राज्य मे अनेक उद्योग धधे खुल चुके थे जिनका अधिक विकास उनके पुत्र महाराजा शार्दूलसिंह के शासन (१९४३–४८) काल मे हुआ था । इससे पूर्व राज्य मे अनेक कुटीर लघु उद्योग भी प्रचलित थे जिनमे अधिकतर पशुपालन पर ही आधारित थे । इनमे ऊन उद्योग प्रमुख था । ऊन का न केवल निर्यात ही किया जाता था बल्कि उसको कातकर ऊनी लोइया, कम्बल व चटाइया बनाई जाती थी । पशुओ की खाल व चमड़े का भारी उत्पादन होता था, उससे अनेक प्रकार की वस्तुएं बनायी जाती थी जिनमे कुप्पिया बहुत प्रसिद्ध थी । इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रो मे घी का उत्पादन भी अच्छा होता था जो राज्य मे खपने के अतिरिक्त कुछ निर्यात भी किया जाता था । पशुपालन पर आधारित कुटीर उद्योग धंधो के अतिरिक्त हाथी दात की चूड़ियो पर सोने चादी के तार चढ़ाने का काम भी बहुतायत से हुआ करता था । घरो मे रसोई में काम आने वाले मिट्टी के बर्तन राज्य में उपलब्ध लाल मिट्टी या चिकनी मिट्टी के बनाये जाते थे । पीतल के बर्तनों पर पालिश का सुंदर काम किया जाता था । लाख के काम मे खिलौने, चूड़ियां, पीढ़े (स्टूल) और चारपाई के पांवों पर लाख का रग चढ़ाया जाता था । चीनी से मिश्री बनाने का काम भी भारत प्रसिद्ध था ।[2]

राज्य के औद्योगीकरण मे ब्रिटिश भारत एवं अन्य दक्षिणी रियासतो मे निष्क्रमण किये हुए बीकानेर के वैश्य वर्ग ने खुलकर भाग लिया । हालाँकि दुर्भाग्यवश अनेक कारणो से राज्य का उतना औद्योगिक विकास न हो सका जितना अपेक्षित था किन्तु जितने औद्योगिक प्रतिष्ठान स्थापित किये गये उनमे ओसवाल जैन जाति ने कम योग नही दिया । महाराजा गंगासिंह के शासनकाल में मध्यम श्रेणी के उद्योगो मे सेठ चादमल ढढ्ढा ने सर्वप्रथम १९२९ मे ऊन साफ करके कांटे निकालने की बरिंग फैक्ट्री स्थापित की ।[3] ये राज्य के ओसवालो मे बहुत ही प्रतिष्ठित सेठ थे । दूसरे

---

१. इस दृष्टि से बीकानेर के सेठ पूरनचंद चोपडा, जयचंदलाल पुगलिया, तेजमाल चौपडा, केशरीचद बोथरा व चम्पालाल बाठिया ने रुई व्यापार के लिये 'दी गगानगर इण्डस्ट्रीज लिमिटेड', चौपड़ा परिवार के लोगों ने व्यापार एवं बैंकिग कार्य के लिये 'दी जनरल इन्वेस्टमेट एण्ड ट्रेडिंग कम्पनी लिमिटेड', सेठ आसकरण, नथमल लोढा, व रतनलाल रामपुरिया ने शेयर व्यापार के लिये 'दी राजपूताना इन्वेस्टमेट सिन्डीकेट लिमिटेड', सेठ लहरचंद सेठिया, जुगराज सेठिया, मुन्नालाल वैद व जौहरमल सहवाग ने व्यापार व बैंकिग कार्य के लिये 'दी राजपूताना कार्मशियल कम्पनी लिमिटेड', सुजानगढ़ के सेठ एम. सी. चोटारिया, के. सी. सेठिया, टी. सी. दूगड़ व संतोपचंद वैद ने व्यापार व बैंकिग कार्य के लिये 'ओरियन्ट ट्रेडिंग कम्पनी और सेठ मन्नालाल सरावगी व रतनलाल काला ने व्यापार व बैंकिग कार्य के लिये 'ट्रेडर्स इन्वेस्टमेट कम्पनी' बना रखी थी ।

२. पोलिटिकल डिपार्टमेट, बीकानेर १९०६–१२ नं० एफ–IV/१३९, पृष्ठ ९४ ।

३. रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, १९३२ नं० ए० १२९५–१३३५, पृष्ठ ५७ ।

ओसवाल व्यक्ति भरूदानजी सेठिया थे जिन्होने राज्य मे ऊन की गाठ बाधने के लिये ऊन प्रेस की स्थापना की थी। यह राज्य के ऊन उद्योग के लिये एक क्रातिकारी कदम था क्योकि राज्य मे स्थानीय उद्योग के रूप म ऊन ही मुख्य वस्तु रही है जो राज्य के बाहर निर्यात की जाती थी। अग्रेजी बाजारों मे आस्ट्रेलियन ऊन की अपेक्षा बीकानर की ऊन की साख थी किन्तु यहा की ऊन को विदेशो मे भेजने से पूव उसको गाठ बधवाने के लिये राज्य के सीमात क्षेत्र फाजिल्का मे भेजा जाता था। वहा पर उसम पजाब की घटिया ऊन मिला दी जाती थी इससे विदेशो मे बीकानेरी ऊन की साख गिरने लगी थी। इन परिस्थितियो मे बीकानेरी ऊन की विदेशो मे साख पुन जमाने मे सेठ भैरूदान सेठिया ने बीकानेर मे सन् १९३० म वूलन प्रेस की स्थापना कर भारी योग दिया।[1] उक्त वूलन प्रेस आज भी उनके पुत्र सेठ जुगराज व ज्ञानपाल सेठिया चला रहे हैं। सन् १९३४ मे ऊन साफ करने की वर्रिग फक्ट्री भी भरूदान सेठिया ने लगाली थी।[2] इससे पूव एक अन्य ओसवाल सज्जन सेठ शिवचद भावक ने गगानगर म ऊन साफ करने की फक्ट्री कायम की थी।[3]

राज्य मे प्रथम मुद्रणालय की मशीन स्थापित करने मे ओसवालों ने ही पहल की थी। सेठ भरूदान सेठिया के पुत्र सेठ लहरचद सेठिया ने सन् १९२४ मे "सेठिया प्रिंटिंग प्रेस" खोलकर पुस्तक प्रकाशन म भारी योग दिया।[4] राज्य मे गगानगर क्षेत्र मे अनेक काटन जिनिंग एव प्रेसिंग फक्ट्रियो के मालिक बीकानेर के गगाशहर के ओसवाल जाति के ईसरदास चोपडा ही थे। राज्य मे बफ बनाने की अनेक फैक्ट्रिया स्थापित की गयी थी उनमे से बीकानेर मे श्री मोहनलाल रामपुरिया जो कि राज्य के प्रतिष्ठित ओसवाल रामपुरिया परिवार से सम्बद्ध थे, ने पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के आधार पर रामपुरिया आईस फक्ट्री" स्थापित की तथा चूरू मे भी उसी प्रकार की आईस फैक्ट्री की स्थापना ओसवाल सेठ धनपतसिंह कोठारी ने की थी।[5] राज्य की प्रथम पावरलूम फक्ट्री जो राज्य के सरदारशहर कस्बे म बडी सफलतापूवक चल रही थी के मालिक मैसस सागरमल मरूपचन्द ही थे।[6] मध्यम श्रेणी के उद्योगा के अतिरिक्त राज्य मे वृहत स्तरीय उद्योग खड़े करने म ओसवाल जन पीछे नहीं रहे। हालाकि राज्य मे गगानगर क्षेत्र म प्रथम चीनी मिल खोलने का सन १९३७ मे प्रयास किया गया था किन्तु वह फेक्ट्री सफल न हो सकी थी। इस पर सन १९४५ मे कोटा के एक ओसवाल दीवान बहादुर सेठ केसरी सिंह बाफना ने इसको खरीदकर पब्लिक लिमिटेड कम्पनी की स्थापना कर उसका नाम मैसस पोद्दार बाफना लिमिटेड' रखा।[7] इस कम्पनी की अधिकृत पूजी १ करोड रुपया थी। यह चीनी मिल बहुत ही सफलतापूवक चली। इसी फम ने राज्य डिस्टलरी, प्लास्टिक प्रोडक्ट्स फक्ट्री, कन्फेक्शनरी, काड बोड फक्ट्री, बिस्कुट फक्ट्री, फ्लॉर, सूजी व मदा मिल, स्टाच फक्ट्री, ऑयल मिल व सोप फक्ट्री स्थापित करन का प्रयत्न किया था जिनम से कुछ को ही खोलने मे सफलता मिल

---

१ रेवन्यू डिपाटमेट, बीकानर, १९३४ न० बी० ६०७–६१०।
२ श्रीमान धमभूषण दानवीर सेठ भरूदानजी सेठिया की सक्षिप्त जीवनी, पृष्ठ १८।
३ रेवन्यू डिपाटमेट बीकानेर सन् १९३२ न० ए १२९५–१३३५, पृष्ठ ४८।
४ होम डिपाटमेंट, बीकानेर, सन् १९२४ न० बी ३११४ ९५, पृष्ठ १०।
५ इण्डस्ट्रियल डेवलपमेट इन दी बीकानेर स्टेट, १९४३ ४६, पृष्ठ २१।
६ रिपोट ऑन दी एडमिनस्ट्रेशन ऑफ दी बीकानेर स्टेट, १९४४-४५ पृष्ठ ६५।
७ इन्डस्ट्रियल डेवलमेट इन दी बीकानेर स्टेट, १९४३ ४६, पृष्ठ २२।

सकी थी । राज्य मे प्रथम बोन क्रशिंग एण्ड बटन मेकिंग फैक्ट्री चलाने का प्रयत्न ओसवाल फर्म मैसर्स पद्मचन्द भागचन्द ने ही किया था ।[1] बड़े पैमाने के अतिरिक्त राज्य को छोटे उद्योगो मे जैसे आटा पीसने की चक्की, दाल मिल व आईस केन्डी फैक्ट्रिया चलाने मे ओसवाल लोगो ने काफ सहयोग दिया ।[2]

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर कहा जा सकता है कि बीकानेर राज्य के औद्योगीकरण मे जैनियो का योग काफी महत्त्वपूर्ण रहा ।

राज्य का बैंक व्यवसाय एवं जैन व्यापारी :

ज्यो-ज्यो वाणिज्य व्यापार एव उद्योग धन्धो मे वृद्धि हो रही थी, उससे राज्य मे आधुनिक पद्धति के बैंक खोलने की आवश्यकता महसूस हो रही थी । ओसवाल लोगों ने अपने अन्य जाति के सहयोगियो के साथ मिल कर राज्य मे प्रथम बैंक सन् १९४३ मे "पारीक कार्मशियल बैंक की स्थापना की जिसकी इस्यूड केपीटल १ करोड़ रुपयो तक पहुंच गयी थी तथा बम्बई, लाहोर, दिल्ली, कलकत्ता, जोधपुर एव जयपुर राज्य के अनेक स्थानो पर शाखायें स्थापित कर दी गयी थी । इसके निदेशक मंडल मे सेठ छगनमल चोपडा, पुरनचंद चोपडा एवं लहरचन्द सेठिया जैसे के प्रतिष्ठित सेठ थे ।[3] राज्य मे दूसरे प्रमुख बैंक "दी बैंक आफ बीकानेर लिमिटेड" की स्थापना सन् १९४५ में की गयी थी । उसकी अधिकृत पूंजी २ करोड रुपया थी तथा राजपूताने की अन्य रियासतो के साथ ब्रिटिश भारत मे उसकी सन् १९४७ तक ५२ शाखाए स्थापित हो चुकी थी उसके निदेशक मण्डल मे अन्य लोगों के अतिरिक्त सेठ भवरलाल रामपुरिया, सेठ बुधमल दूगड तथा बाद मे सेठ लालचंद कोठारी सभी (ओसवाल) प्रतिष्ठित साहूकार थे ।[4]

राज्य की विकास योजनाएं एवं जैन लोग :

प्रारम्भ से ही राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ न होने के कारण प्रायः समस्त विकास योजनाओ मे यहा के धनीमानी सेठ साहूकारो ने सहयोग दिया । ये शिक्षा प्रसार, स्वास्थ्य सेवायें, सिंचाई सुविधाएं, यातायात के साधनो को विकसित करने एव पेयजल की समस्या का समाधान करने से सम्बन्ध रखती थी । राज्य मे अकाल पड़ना एक साधारण बात थी, अत. उससे निपटने के लिये सेठ साहूकारो ने अधिक से अधिक आर्थिक सहायता की । इसके अतिरिक्त राज्य युद्ध के समय एवं आवश्यकता पडने पर अन्य अवसरो पर जनता से आर्थिक सहयोग प्राप्त करने के लिये ऋण जारी किया करता था उन ऋण-पत्रो को खरीदने मे सेठ साहूकार खुल कर सहयोग दिया करते थे । इन सेठ साहूकारो मे जैनियो का सहयोग द्रष्टव्य है । शिक्षा प्रसार के लिये मोमासर के सेठ इन्दरचद हीरालाल व गोरधन सचेती ने मोमासर मे अपर प्राइमरी एंग्लो वर्नाकुलर स्कूल को लोअर मिडिल स्कूल बनाने के लिये बिल्डिंग बना कर सहयोग दिया ।[5] सेठ ईसरचद चोपडा ने राजलदेसर में गर्ल्स

---

१. इन्डस्ट्रियल डवलपमेट इन दी बीकानेर स्टेट, १९४३-४६, पृष्ठ १८ ।
२. रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, १९३४ न० बी—१९४८, पृष्ठ १ ।
३. इडस्ट्रियल डेवलपमेट इन दी बीकानेर स्टेट सन् १९४३-४६, पृष्ठ ९-१० ।
४. इंडस्ट्रियल इन दी बीकानेर स्टेट, सन् १९४३-४६, पृष्ठ १-८ ।
५. होम डिपार्टमेट, बीकानेर, सन् १९३५ न० ए० १७३-१७७ पृष्ठ ४ ।

स्कूल के भवन के लिये १० हजार रुपया दिया था।[1] सेठ ईसरचद चोपड़ा ने गगाशहर मे 'भैरूदान चोपडा हाई स्कूल' के भवन का निर्माण करवाया था।[2] बीकानेर के जन समाज की ओर से राजधानी में एक जन पाठशाला व एक लडको एव लडकियो के लिय स्कूल चलता था।[3] भीनासर के सेठ कानीराम बांठिया ने भीनासर में एक एंग्लो वरनाकुलर प्राइमरी व बाद में लोअर मिडिल स्कूल स्थापित किया।[4] रतनगढ में स्कूल स्थापित करने में जालान घराने के साथ ओसवाल सेठ मालचद वद, गुरमुखराय नवलखा ने भी सहयोग दिया।[5] सरदारशहर के दूगड परिवार ने प्रारभ में एक हाई स्कूल का निमाण करवाया तथा बाद में गाधी विद्या मन्दिर के अ तगत यहा पर बेसिक हाई स्कूल, बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, बालबाडी, ग्राम ज्योति केन्द्र, आयुर्वेद विश्व भारती व सेठ बुधमल डिग्री कॉलिज की स्थापना कर सरदारशहर के एक पिछडे हुए छोटे से कस्बे का भारत के प्रमुख शिक्षा केन्द्रो में परिर्वतित कर दिया।[6] चूरू का जन श्वेताम्बर हाई स्कूल, सिघमुख का राजकीय हाई स्कूल, सुजानगढ का बगडिया हायर सेकण्डरी स्कूल, शिष्ट विद्यालय चूरू, सरदारशहर का सम्पतराम दूगड विद्यालय, राजकीय स्कूल परिहारा के अतिरिक्त बीदासर, छापर व डूगरगढ मे स्कूलो की स्थापना वहा के स्थानीय जन परिवारो के सहयोग से की गयी थी।[7] सुजानगढ में ओसवाल समाज के सेठिया परिवार ने लडकियो के लिये प्रथम सोनादेवी सेठिया गर्ल्स कॉलेज की स्थापना कर उच्च शिक्षा के लिय महान् काय किया।[8] बीकानेर के प्रमुख ओसवाल जाति के रामपुरिया परिवार ने प्रारभ मे रामपुरिया हाई स्कूल की स्थापना कर बाद में इसे बी० जे० एस० रामपुरिया जैन कालेज का रूप दिया।[9] बीकानेर के ही ओसवालो के सहयोग से बीकानेर में जन पोस्ट ग्रेजुएट कालेज चल रहा है। उक्त दोनो जन कॉलेजो का पुराना इतिहास रहा है।

राज्य के जन परिवारो ने स्कूल व महाविद्यालय ही स्थापित नही किये बल्कि ऐसे ऐसे पुस्तकालय स्थापित किय जिनकी भारत भर म प्रतिष्ठा है। चूरू के ओसवाल सेठ तोलाराम सुराना ने सन् १६२० म सुराना लाइब्रेरी की स्थापना की थी। इसम हजारो बहुमूल्य पुस्तको के अतिरिक्त करीब २००० अलभ्य मैन्युस्क्रिप्ट थ। आज भी यह पुस्तकालय उनके परिवार के सदस्य सेठ निरमलकुमार सिंह सुराना की देखरेख म है। श्री डूगरगढ पुस्तकालय की स्थापना (सन् १६४१) म ओसवाल सज्जनो का सहयोग सराहनीय था। राजलदेसर का शाति पुस्तकालय भी ओसवाल समाज का सहयोग प्राप्त करने पर ही स्थापित हो सका।[10] महाराज शार्दुलसिंह जी के समय कस्बे के विकासार्थ पठित

---

१ होम डिपार्टमेंट, बीकानेर, १६३५, न० ए० १३४-१४२ पृष्ठ ३।
२ रेवन्यू डिपार्टमेंट बीकानेर १६३४ न० बी ३००६ ३०२३, पृष्ठ २१।
३ रेवन्यू डिपार्टमेंट, बीकानेर, १६३४ न० बी २६५०-२६५३, पृष्ठ ५।
४ रेवन्यू डिपार्टमेंट, बीकानेर, १६३३ न० बी० १७२५-१७३६, पृष्ठ १८।
५ होम डिपार्टमेंट बीकानेर १६१४ न० ४३७ ४४२, पृष्ठ १२।
६ श्री भवरलाल दूगड स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ३१५-३२४।
७ राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स चूरू पृष्ठ २६४-२६७।
८ राजस्थान डिस्ट्रिकट गजेटियर्स चूरू, पृष्ठ २८४।
६ रेवन्यू डिपार्टमेंट, बीकानेर, १६३१ न० बी० २२४ २२६, पृष्ठ १।
१० राजस्थान गजेटियर्स, चूरू पृष्ठ २८६ ६०।

श्री राजलदेसर यूनियन क्लब की कार्यकारिणी में जैन परिवारो के लोग ही थे। सुजानगढ़ मे सेठ दानचन्द चोपड़ा ने एक पुस्तकालय की स्थापना की थी। वीकानेर का अभय जैन पुस्तकालय तो आज शोधजगत के अध्येताओ के लिये तीर्थ स्थल वन चुका है। इसके सस्थापक भारत के प्रसिद्ध जैन विद्वान श्री अगरचन्द नाहटा हैं। वीकानेर के दूसरे ओसवाल सेठ भैरूंदानजी सेठिया थे जिन्होने राजधानी मे सेठिया लाइब्रेरी स्थापित की थी, जो आज भी उनके पुत्रो के संरक्षण मे चल रही है। वीकानेर मे श्री गोविन्दराम भंसाली ने सन् १९३१ मे गोविन्द पुस्तकालय खोला। सन् १९३० मे श्री शकरदान नाहटा ने वीकानेर मे अगर जैन पुस्तकालय स्थापित किया। सन् १९१३ मे अगरचन्द भेरूदान सेठिया ने वीकानेर मे सेठिया वाचनालय खोला। सन् १९२४ मे श्री किशनचन्द पुस्तकालय, वीकानेर मे जैनियों द्वारा खोला गया था सन् १९२८ मे श्री शिखरचन्द कोचर, रामरतन कोचर व रतनचंद चोपड़ा ने वीकानेर मे जैन परधान वाचनालय खोला। सन् १९३५ मे भैरूंदान सुराना ने सुराना जैन पुस्तकालय खोला। सन् १९३३ मे सूरतगढ़ मे पारसनाथ जैन पुस्तकालय नानकराम डागा ने खोला था।

जिस प्रकार शिक्षा के प्रसार मे इस जाति ने सहयोग दिया उसी प्रकार स्वास्थ्य सेवा के प्रसार मे भी अच्छा सहयोग रहा। सन् १९३१ मे सुजानगढ़ के सेठ दानचन्द चोपडा ने वहा जनाना अस्पताल खोलने के लिये सव मिलाकर ७५,००० रुपये दिये।[1] गगानगर मे होस्पिटल खोलने के लिये वहां के सेठ भेरूंदान ईसरीचन्द चोपडा ने ११,००० रुपये चूरू के ओसवाल सेठ मूलचन्द मालचन्द कोठारी ने १,५०० रुपये, चूरू के ही सेठ तेजपाल विरधीचन्द सुराणा ने १०१ रुपये, वीदासर के सेठ भेरूंदान दूगड़ ने १,१००, सेठ नेमचन्द छाजेड़ सरदार शहर ने १,१०० रुपये दिये। इसके अतिरिक्त सरदार-शहर के सेठ नेमचन्द गद्दैया फूसराज दूगड़, आनन्दराज लूणिया व वीकानेर के सेठ भैरूदान सेठिया, कानीराम वाँठिया ने भी आर्थिक सहायता प्रदान की।[2] वीकानेर के सेठ भेरूदान सेठिया ने एक होम्योपैथिक औपधालय स्थापित किया तथा एक अन्य ओसवाल सज्जन भेरूदान कोठारी ने आयुर्वेदिक औपधालय खोला था। इसके साथ ही राज्य के अनेक भागो में इस जाति के सज्जनो ने आयुर्वेदिक औपधालय खोलकर जन सेवा की।

राज्य में जव महाराजा गंगासिंह को गगनहर लाने के लिये आर्थिक कठिनाई हुई तो अन्य सेठ साहूकारो के साथ ओसवाल सज्जनो में हजारीमल हीरालाल रामपुरिया ने ५ लाख रुपये सुजानगढ़ के दानमल चोपड़ा ने १,५०,००० रुपये एव सुजानगढ़ के ही वालचन्द आसकरण ने ५०,००० रुपयों के वोण्ड खरीद कर राज्य की सहायता की। इसी प्रकार से जिस समय राज्य की ओर से वारलोन के वोण्ड जारी किये गये थे, उन्हे ओसवाल सज्जनो ने भारी मात्रा मे खरीद कर राज्य की सहायता की। इनमें सरदारशहर का दूगड़ परिवार, चूरू के सेठ केसरीचन्द कोठारी, सुजानगढ के थानमल रामपुरिया व चूरू के सेठ सागरमल वैद के नाम उल्लेखनीय हैं।[3]

राज्य के पास अकाल से निपटने के साधन अपर्याप्त थे, अतः राज्य को इन अवसरो पर सेठ साहूकारो से आर्थिक सहायता की आवश्यकता रहती थी। अन्य जाति के सेठ साहूकारो के साथ इस जाति के लोगों ने भी राज्य को अकाल से उवारने के लिये धन देकर सहायता की सन् १८९९-

---

१. रेवन्यू डिपार्टमेंट, वीकानेर, १९३१ न० वी० २२४-२२६, पृष्ठ १३।
२. रेवन्यू डिपार्टमेंट, वीकानेर, १९३२ न० ए० १४६७-८०, पृष्ठ ३।
३. आदर्श श्रावक श्री सागरमल जी वैद, पृष्ठ ३३।

१९०० के भयकर अकाल के समय चूरू के गुरमुखराम सागरमल ने ४,००० रुपये सरदारमल कोठारी और विरधीचन्द ने ५००, सरदारशहर के चनरूप सम्पतराम दूगड ने १५,७५० रु० इन्दरचन्द ने २,०२५ रु०, बीजराज कालूराम दूगड ने ३,३७५ रु०, हीरालाल बाघमल नाहटा ने २,७०० रु०, मेघराज दूगड ने ९०० रु०, प्रतापमल चौथमल दूगड ने २,७०० रु०, कालूराम श्रीचद सेठिया ने १ ३५० रु०, राजलदेसर के सेठ छोगमल ओमचन्द बद ने १ ४२५ रु०, हीरालाल बोथरा ने १०५० रु व जयचन्दराय आसकरण बद ने ८,००० रु० दान दिये।[१] इसके अतिरिक्त सन् १९३८ ३९ के अकाल मे भी राज्य के ओसवाल अथसहयोग मे पीछे नही रहे। रतनगढ के सेठ मोहन लाल बद, लूणकरणसर के जेठमल बोथरा, बीकानेर के सेठ भैरूदान सेठिया, सरदारशहर के गिरधारीमल, सरदारमल बगडिया, चूरू के लखनलाल शिवप्रताप सरावगी, सेठ भैरूदान ईसरचन्द चोपडा, सेठ चम्पालाल बाठिया, सेठ अगरचन्द भैरूदान सेठिया, सेठ पूरनचन्द कोठारी व सेठ विरधीचन्द करवा, मगनमल कोठारी, सेठ चम्पालाल सरावगी, मालचन्द लोढा, रावतमल श्रीराम सरावगी, करनीदान रावतमल कोठारी, मूलचद बालकिशनदास कोठारी, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होने अकाल के समय अनेक रूपो मे धन से सहायता की।[२]

राज्य के आर्थिक विकास मे आने वाली बाधाओ को दूर करने मे जैन लोगों का योग

जिस प्रकार से इस जाति के लोग राज्य की विकास योजना मे धन से सहायता कर रहे थे तो दूसरी ओर इन्ही मे से अनेक लोग राज्य के आर्थिक विकास म आने वाली वाणिज्य व्यापार औद्योगिकरण, यातायात के साधनो, दूर सचार के साधनो के सम्बन्ध मे आने वाली बाधाओ को दूर करवाने के लिए राज्य सरकार पर जोर डाला करते थे। ओसवाल जाति के अनेक प्रमुख सेठ साहूकार राज्य विधान सभा के नामजद एव निर्वाचित सदस्य थे।[३] उन्होने राज्य सभा के सत्र अधिवेशनो म नियमित भाग लेकर राज्य सरकार को बाध्य किया कि जगात एव आयकर सम्बन्धी कानूनो में परिवतन कर। उद्योग स्थापित करने के लिए आवश्यक सुविधा प्रदान करे, राज्य को भारत के अन्य व्यापारिक केन्द्रो से जोडने के लिए रेल निर्माण करायें, दूर सचार के लिए तार घर व टेलीफोन आदि

---

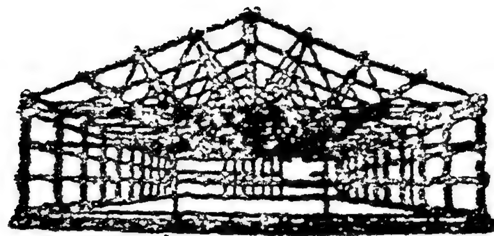
१ महकमा खास, बीकानेर, १९०० न० ९८, पृष्ठ ५९।

२ रिपाट आन दी फेमीन रिलीफ आपरेशन्स इन दी बीकानेर स्टेट १९३९ ४०, पृष्ठ २१-११३।

३ बीकानेर की राज्य सभा के प्रमुख जन सभा सदस्य ये थे जो सन् १९१३ मे १९४६ तक समय-समय पर नामजद एव निर्वाचित हुए—सेठ चादमल ढड्ढा, भैरूदान छाजेड, सेठ गणेशदास गद्हेया, सेठ दौलतराम भण्डारी, सेठ लक्ष्मीचन्द नाहटा, सेठ पन्नेचन्द सिघी, हरखचद भादानी, सेठ फूसराज दूगड, मूलचद कोठारी, रामलाल नाहटा, शुभकरण सुराना, सेठ मालचद कोठारी, सेठ पूनमचद नाहटा, सेठ चुन्नीलाल चोपडा, सेठ कानीराम बाठिया सेठ भैरूदान सेठिया, सेठ चम्पालाल कोठारी, सेठ विरधीचद करवा, सेठ मोहनलाल बद, सेठ दानमल चोपडा सेठ सूरजमल सरावगी, सेठ लहरचद सेठिया, सेठ भवरलाल रामपुरिया, सेठ इसरचद चोपडा, सेठ चम्पालाल बाठिया, सेठ श्रीचद सुराना सेठ सुमेरमल दूगड, सेठ बिरधीचद गद्हेया, सेठ पूनमचद बद, सेठ जसराज कठोतिया व सेठ रगलाल बगडिया।

की व्यवस्था करायें। वाणिज्य व्यापार को सम्पन्न करते समय अनेक समस्यायें खड़ी होती थी, उनके लिए कानूनों का निर्माण करायें। इसके अतिरिक्त राज्य मे आर्थिक मामलो के लिए राज्य सरकार ने अनेक कमेटियो का निर्माण किया उनमे जैन जाति के सेठ साहूकार भी नियुक्ति किए गए।[1] इन कमेटियों के माध्यम से राज्य सरकार को जो सलाह दी जाती थी उसे उसने स्वीकार कर राज्य में वाणिज्य व्यापार, वैंकिग एवं औद्योगिक विकास किया।

अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुचने मे कोई कठिनाई नही होती कि राज्य को लघुतम इकाई ग्राम, जहा कृषि एव पशु पालन ही मुख्य उद्यम था से लेकर बड़े-बडे कस्बो, शहरो एवं राजधानी बीकानेर जहा वाणिज्य व्यापार एव उद्योग बढे प्रगति पर थे का आर्थिक आधार तो राज्य का समस्त वैश्य वर्ग ही था किन्तु उसमे भी राज्य के जैन परिवारो का योग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। राज्य के जैन वर्ग ने यहा की व्यावसायिक महत्त्वपूर्ण प्रगति में तो योग दिया ही, प्रत्युत व्यावहारिक शिक्षा द्वारा राज्य के छात्रों को कर्मठ नागरिक बनाने की ओर भी उन्होने ध्यान दिया। उन्होने राष्ट्र की भावी प्रगति की जड़ को समय पर परख लिया था, उसी का ही परिणाम है कि आज देश में विभिन्न क्षेत्रों में जैन जाति व अन्य जाति के राजस्थानी लोग व्यापार व उद्योग में कुशलता से अपना कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं।



---

१. राज्य की उद्योग विकास समिति जो सन् १९२१ में स्थापित की गई थी में सेठ चांदमल ढड्ढा ओसवाल सदस्य थे।

४६ | जोधपुर के औद्योगिक क्षेत्र में जैन समाज का योगदान

•

श्री घेवरचद कानूगो

प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियो के कारण जोधपुर सदैव से ही औद्योगिक दृष्टि से पिछडा हुआ रहा है। स्वतन्त्रता क पश्चात् ही जोधपुर का औद्यागिक स्वरूप निखरा है। जोधपुर के औद्योगिक स्वरूप को परिष्कृत करने मे जन समाज का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। उच्च कोटि की औद्यागिक क्षमता और प्रबन्ध कुशलता क योग से जन समाज ने विषम भौगोलिक परिस्थितियो और अन्य अभावो के बावजूद भी जोधपुर के औद्योगीकरण म नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। इनके उद्यम, पूजी विनियोजन से राजस्थान के औद्योगिक मान चित्र म जोधपुर को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है।

जन धर्मावलम्बियो द्वारा स्थापित प्रमुख इकाइयाँ —जोधपुर मे भारी उद्योगा का अभाव है तथापि मध्यम श्रेणी व लघु श्रेणी क उद्योगा का सराहनीय विकास हुआ है। जन समाज क सदस्यो द्वारा स्थापित एसे उद्योगो की निम्न प्रमुख इकाइया हैं—

(१) ऊन उद्योग (२) अलोह धातु उद्योग (३) सूती वस्त्र उद्योग (४) उपभोक्ता सामग्री क निर्माता (५) विविध इकाइयां—(क) प्लास्टिक उद्योग, (ख) रासायनिक उद्योग, (ग) धातु उद्योग अलोह 'धातु, (घ) ग्वार गम उत्पादक इकाइया, (ङ) टट निर्माण इकाइया।

अलोह धातु उद्योग —एल्कोबेक्स मैटल्स प्रा० लि० इस क्षेत्र की एक मात्र इकाई है। इसका वार्षिक उत्पादन (कुल मूल्य म) ५ करोड रु० है। नान फरस मटल ब्रास, कोपर, एल्यूमिनियम, सिलिकोन, केडमियम, टलुरीयम रोड्स व ट्यूब्स इसका प्रमुख उत्पादन है।

ऊन उद्योग —जोधपुर वूलन मिल्स प्रा० लि० एक मात्र इकाई है। इसका वार्षिक उत्पादन अनुमानत ४ करोड रु० (कुल मूल्य म) है। गलीचे, होजरी, परिष्कृत ऊन, धागा इसक प्रमुख उत्पादन है।

सूती वस्त्र उद्योग —जोधपुर म सूती वस्त्र उत्पादन इकाइयां बहुलता म है। जन मतावलम्बियो की पन्द्रह इकाइया प्रति वर्ष अनुमानत ३ करोड़ रु० का उत्पादन करती है।

उपभोक्ता सामग्री के निर्माता:—इस क्षेत्र मे लाइफ टाइम प्रोडक्टस कारपोरेशन प्रमुख है। बर्तन, स्टोव, तगारी, वाटर जग, रक्षा सम्बन्धी सामग्री का उत्पादन इस इकाई मे होता है।

विविध इकाइयां:—लघु उद्योगो के रूप मे अनेक इकाइया विद्यमान हैं। टैटों के निर्माण में मारवाड़ टैट फैक्ट्री का नाम प्रमुख है। प्लास्टिक उद्योगो के अन्तर्गत भी कई इकाइया हं।

रसायन:—रासायनिक पदार्थों के उत्पादन की ओर भी कई इकाइया उन्मुख हैं। खाद्य-पदार्थों के उत्पादन की दृष्टि से ग्वार गम उत्पादन की कई इकाइया विद्यमान हे। लकड़ी पर आधारित कई औद्योगिक इकाइया भी हैं।

उत्पादन (कुल मूल्य रु० मे).—उपर्युक्त सभी औद्योगिक इकाइयां अपनी क्षमता के अनुरूप उत्पादन प्रक्रिया मे संलग्न है। कभी विद्युत् संकट, कभी श्रमिक अव्यवस्था एवं अन्य प्रतिकूल परिस्थितियो के बावजूद भी पर्याप्त उत्पादन होता है। जोधपुर की समस्त औद्योगिक इकाइयों द्वारा उत्पादन मे जैन समाज की औद्योगिक इकाइयो का काफी बड़ा भाग शामिल है। इन औद्योगिक इकाइयो के उत्पादन को अनुमानतः १-५ करोड़ रु० के मूल्य मे रूपातरित किया जा सकता है।

रोजगार व श्रम स्थिति:—जैन समाज के सदस्यों द्वारा स्थापित ये औद्योगिक इकाइया तकनीशियनो श्रमिको व अन्य शिक्षितो को रोजगार का अवसर उपलब्ध कराने में बहुत सहायक रही हैं। इन इकाइयो मे अनुमानत. ३ हजार श्रमिक लगे हुए हैं? अप्रत्यक्ष रूप से भी रोजगार के अवसर अनेक वर्गों को प्राप्त हुए हैं और उपलब्ध अवसरो मे वृद्धि भी हुई है। इन औद्योगिक इकाइयों मे श्रम स्थिति सतोषप्रद है। श्रमिको को वेतन श्रम विभाग इंजीनियरिंग वेज बोर्ड या श्रमिकों के साथ हुए समझौते के अनुसार मिलता है। अकुशल श्रमिक को न्यूनतम वेतन २५०/- प्रतिमाह मिलता है वेतन के अलावा अधिकाश औद्योगिक इकाइयो मे भविष्य निधि, फैमिली पैंशन, ग्रैच्यूटी, ग्रूप इन्स्योरस आदि की सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। प्रायः सभी श्रमिक यूनियनों से सम्बद्ध हैं और ये यूनियनें मान्यता प्राप्त है। औद्योगिक इकाइयो के प्रबन्धको व यूनियनो के बीच मधुर सम्बन्ध हैं।

निर्यात :—जैन समाज के सदस्यो द्वारा स्थापित कुछ इकाइयां निर्यात के क्षेत्र मे भी हैं। अपने श्रेष्ठ उत्पादनों से विदेशो में बाजार निर्मित किये हैं। मध्यपूर्व एशिया, श्रीलंका, नेपाल आदि इन औद्योगिक इकाइयो के बाजार हैं। इस प्रकार विदेशी मुद्रा प्राप्त करने मे इन औद्योगिक इकाइयो का महत्त्वपूर्ण योग है। एल्कोवेक्स मेटल्स प्रा० लि०, जोधपुर वुलन मिल्स प्रा० लि०, लाइफटाइम प्रोडक्टस इस क्षेत्र मे प्रमुख है। एल्कोवेक्स द्वारा उत्पादित विशिष्ट उत्पादनो ने इस क्षेत्र मे आयात मे कमी कर अमूल्य विदेशी मुद्रा की बचत में सराहनीय योग दिया है।

जोधपुर में औद्योगिक संभावनाएं :—जोधपुर औद्योगिक दृष्टि से अभी भी पिछड़ा हुआ है। यह पिछड़ापन प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियों व अन्य साधनो के अभाव के कारण है। फिर भी उपलब्ध साधनो खनिज पदार्थों, पूंजी और श्रम शक्ति को देखते हुए जोधपुर के औद्योगिक विकास की प्रचुर सभावनाएं हैं।

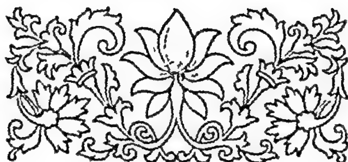
पशुओं पर आधारित उद्योग —जोधपुर क्षेत्र मे अच्छी नस्ल की भेडें बहुतायत से हैं जिनसे अच्छे किस्म की ऊन प्राप्त की जाती है। अधिकाश ऊन बाहर भेज दी जाती है। अतएव जोधपुर म ऊनी कपडा बनाने व ऊनी होजियरी की इकाइया स्थापित की जा सकती हैं।

पोर्टलैण्ड सीमेंट के कारखाने —जोधपुर के निकटवर्ती क्षेत्रो मे चूने के पत्थर के व जिप्सम के बडे भण्डार हैं। इतने विशाल भण्डार से देश के अन्य भागो की सीमेंट की आवश्यकता का पूरा किया जा सकता है। सफेद व रंगीन सीमेंट की इकाइयो की स्थापना भी जोधपुर म सभव है।

कांच बनाने का कारखाना —देश म काच की बढती हुई माग को देखकर जोधपुर म काच बनाने का कारखाना स्थापित किया जा सकता है, क्योकि जोधपुर क्षेत्र म काच बनाने की मिट्टी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है।

स्कूटर, मोटर साइकिलो, ट्रैक्टर व उससे सम्बन्धित यत्रों के कारखाने —जोधपुर इन उपकरणो के उत्पादन हेतु सर्वथा उपयुक्त स्थान है। राजस्थान नहर एव अन्य सिचाई परियोजनाए पूर्ण हो जाने पर ट्रैक्टर आदि की मांग बहुत बढ जाएगी अतएव ट्रैक्टर बनाने का कारखाना जोधपुर म शीघ्रता से स्थापित होना चाहिये।

इसी प्रकार इजीनियरिंग उद्योगो, सूती वस्त्र की मिलो की स्थापना यहां हो सकती है।



४७ | रत्न-व्यवसाय के विकास में जैनियों का योगदान

[१]
विकास की पृष्ठभूमि

श्री राजरूप टॉक

राजस्थान का इतिहास अतीत काल से ही शौर्य एवं पराक्रम के साथ-साथ कला और संस्कृति की गौरवपूर्ण परम्परा को लिए हुए कीर्तिमान रहा है। स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा सामाजिक चेतना के सदर्भ मे भी राजस्थान अग्रणी रहा। भूतपूर्व रियासतो का विलीनीकरण होकर नव-निर्माण के कार्यक्रमो को लेकर नये रूप मे राजस्थान का गठन हुआ। किन्तु इससे पहले भी और वाद मे भी क्या सामाजिक क्या राजनैतिक और क्या व्यावसायिक, सभी क्षेत्रो मे राजस्थान आगे रहा है। राजस्थान के विकास मे सभी का योगदान स्तुत्य है। तथापि विशेषकर जनचेतना और आर्थिक समृद्धि के क्षेत्र मे यहां के जैन मतावलम्बियो का बहुत ही योगदान रहा है।

राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर हर प्रकार के व्यवसाय और कलाओं का प्रमुख केन्द्र रहा है। जयपुर नगर के निर्माता सवाई जयसिहजी स्वय वहुत वड़े उद्योग उपक्रमी, गणितज्ञ, ज्योतिषी और कलाप्रेमी थे। उन्होने सभी वर्गों के लोगो को सम्मान दिया जिसके कारण आज भी यहा पर लगभग सभी प्रकार का काम अथवा व्यवसाय करने वाले मिलते हैं। जयपुर दस्तकारी का मुख्य केन्द्र है और इसमे खास कर जवाहिरात का जो काम यहा होता है वैसा ससार भर मे कही नही होता। जयपुर इसके लिए विश्व विख्यात है। इस ख्याति का श्रेय मुख्य रूप से उन लोगो को है जो सदियो से यहां रह कर परम्परा से काम करते आए हैं। उनका परम्परागत ज्ञान और कौशल अनुपम है।

जयपुर मे पुराने जौहरियों को वाहर से वुलाकर, जो अधिकतर दिल्ली से आए थे, यहा वसाया था। भारत मे पहले दिल्ली, लखनऊ, वनारस, कलकत्ता ये केन्द्र थे। नगीने की कला यही की मशहूर होती थी। जयपुर मे पुराने नामी जौहरियो मे मुकीम, जूनीवाल, जरगड़, फोफलिया, मालपानी ये लोग थे। इनके पश्चात् दिल्ली से श्री काशीनाथजी जौहरी आकर जयपुर मे वसे। इनके वाद श्री सुगनचन्दजी जरगड़ ने मुक्त रूप से इस कला को सिखाना शुरू किया, जिससे अधिक से अधिक लोगो को इसका ज्ञान और रुचि हो तथा व्यवसाय भी आगे वढ़े। सुगनचन्दजी के दो मुख्य शिष्य थे। इनके नाम हैं श्री वनजीलालजी ठोलिया और श्री रतनलालजी फोफलिया। ये दोनो ही रत्न जगत मे अत्यधिक प्रसिद्ध रहे है। इनकी परख और सूझबूझ अद्वितीय कही जाती थी। वनजीलालजी के पुत्र श्री सुन्दरलालजी ने भी अच्छी ख्याति प्राप्त की। उधर श्री रतनलजी ने

काफी लोगो को काम सिखाया और नई दिशा एव प्रेरणा प्रदान की। मुझको यह कहते हुए गर्व है कि मैंने भी इन्ही के चरणो म बैठकर काम सीखा, और उनके बताए हुए माग पर चलने का सतत् प्रयत्न करता रहा हूँ। इनके शिष्य श्री सुगनचन्दजी चौरडिया ने भी कई लोगो को काम सिखाया और इस व्यवसाय को नई दिशा देकर बढाया।

जयपुर म आज हजारो परिवार रत्न व्यवसाय म लगे हैं। यहा सभी प्रकार के रत्नो का काम होता है। कारीगर से लेकर बडा व्यवसायी और निर्यातकर्ता इस काम को गव के साथ निष्ठापूवक करत हैं। कहना न होगा हमारे देश की अयव्यवस्था को मजबूत बनाने मे हमारे रत्न व्यवसाय का स्थान प्रमुख है और इसके लिए इस व्यवसाय मे लगे सभी लोग उनके अच्छे योगदान के लिए बधाई के पात्र हैं।

[२]
विकास की दिशाएँ

श्री दुलीचन्द टांक

राजस्थान के निर्माण से पूव काल से ही अर्थात् देशी राजघरानो के जमाने से ही यहा पर जैन मतावलम्बी सम्मानित वर्ग के रूप मे रहते आए हैं। यहा के प्रमुख व्यवसाय रत्न व्यवसाय में भी अधिकतर बडे घराने जन ही हैं। पहले राजाओ के जमाने से लेकर अब तक भी इस व्यवसाय की महानता रही है। आज इस व्यवसाय के द्वारा करोडो रुपये की विदेशी मुद्रा देश के लिए अर्जित होती है। राजस्थान और इसमे सही माने म यहा की राजधानी जयपुर इसका मुख्य केन्द्र रहा है। जयपुर का कलात्मक काम विदेशो म प्रसिद्ध है और यह एक निर्विवाद सत्य है कि ऐसा काम ससार में कही पर भी नही होता।

जयपुर मे सभी प्रकार के रत्नो का काम प्रचुरता से होता है। रत्नो की घिसाई, कटाई व पालिश वगरह बडे ही कलात्मक तरीके से की जाती है। इसम केवल कारीगर का परम्परागत ज्ञान और कौशल होता है वरना वही साधारण स औजार और रग-रोगन काम आते हैं। यह सब कारीगर की कुशलता और सूझबूझ की बात है।

रत्न व्यवसाय के प्रशिक्षण के लिए हाल ही राज्य सरकार ने जयपुर में एक प्रशिक्षण केन्द्र खोला है। जयपुर मे ही 'जैम एण्ड ज्वैलरी कौसिल' ने एक टस्टिग लेबोरेटरी कायम की है। इससे व्यावसायिक आधार पर इस काम को बढावा मिलेगा। वसे हमारे यहा पर काफी पहले से ही काम सिखाया जाता रहा है। मेरे पिता श्री राजरूपजी टाँक अत्यधिक रुचि के साथ प्रशिक्षणार्थियो को बडे ही सरल और रोचक ढग से काम सिखलाते रहे हैं। उनकी बात सहज ही हृदयगम हो जाती है। आज हजारो की सख्या मे उनके शिष्य इस व्यवसाय में तरक्की की ओर अग्रसर हैं। काम सिखलाने के साथ ही साथ इसमे शोध एव विकास की ओर भी ध्यान दिया है। आधुनिक ढग से कटाई व घिसाई आदि से अवगत कराते हुए समुचित मागदशन देकर उन्होने लोगो का उत्साह बढाया है। इसीलिए आज इनके शिष्य वग को इस व्यवसाय में काफी सफलता प्राप्त हुई है। साथ ही हजारो कारीगरो को रोजीरोटी के साधन प्राप्त हुए हैं। कारीगरो को भी बिना किसी भेदभाव के ज्ञान कराया जाता रहा है।

बीकानेर के श्री प्रेमचन्द जी [illegible] के काम [illegible] रहकर बहुत-से लोग इसमें पारंगत हुए हैं।

हमारे यहाँ खनिजों की प्रचुर सम्पदा है। पन्ना, [illegible], [illegible] [illegible] हैं। पन्ना, माणक तो ही नहीं [illegible] जयपुर में सभी प्रकार के [illegible] होती है। जयपुर इस व्यवसाय के लिए प्रमुख मण्डी है। हम [illegible] हैं, जिससे इस व्यवसाय को आधुनिक ढंग पर [illegible] जा सके।[1]

१—जयपुर नगर के प्रमुख जैन रत्न व्यवसायी प्रतिष्ठान इस प्रकार हैः— [illegible], राजयान्स, एम. गुलाबचन्द लूनिया एण्ड [illegible], [illegible], बी. सी. दुर्लभजी, जेम्स ट्रेडिंग कारपोरेशन, [illegible] ट्रेडिंग [illegible], [illegible], उमरावमल चोरड़िया, एम० [illegible] एण्ड कम्पनी, [illegible], [illegible] ट्रेडिंग कारपोरेशन, [illegible], [illegible], जयपुर जेम्स [illegible], सोभागमल गोकुलचन्द ज्वैलर्स, [illegible], [illegible] कारपोरेशन, जेम्स एण्ड जेम्स, [illegible], [illegible] ट्रेडिंग कारपोरेशन, [illegible] ([illegible]), देवेन्द्र एण्ड पुष्पेन्द्र, इण्डियन जेम्स ट्रेडर्स, [illegible], [illegible], गुजराती ज्वैलर्स, [illegible] डागा एण्ड कम्पनी, [illegible] एण्ड [illegible], [illegible] ज्वैलर्स, के० डी० जवेरी, हजारीमल [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] एण्ड कम्पनी, शरद सुधीर एण्ड कम्पनी, [illegible] सुधीर कुमार [illegible], [illegible] जैन, चोरड़िया ट्रेडिंग कारपोरेशन, [illegible] उमरावमल [illegible], [illegible], ओवरसीज जेम्स कारपोरेशन, एन० सी० [illegible] एण्ड कम्पनी, [illegible], विजय जेम्स, [illegible] सदासुख दुगड़, प्रवीण एण्ड सजीवन ब्रदर्स, [illegible] मसाली, किशोरीलाल जैन एण्ड ब्रदर्स, गुलाबचन्द कमलकुमार [illegible], [illegible] कुमार बिराणी, जूनीवाल जेम्स ट्रेडिंग कारपोरेशन, जैम ज्वैलर्स (इण्डिया), सोभागमल [illegible] कोठारी, उमरावमल शाह ज्वैलर्स, ताराचन्द [illegible] जैन, [illegible] वैद, [illegible] पारसचन्द एण्ड कम्पनी, रीयल जेम्स, हेमचन्द्र पदमचन्द, मेसर्स [illegible] एण्ड कम्पनी, [illegible] विमलचन्द, के० जी० कोठारी, कैलाशचन्द मोतीचन्द, हजारीमल बोथरा एण्ड कम्पनी, जी० डी० डागा एण्ड कम्पनी आदि।

—सम्पादक

५

धर्म और समाज

४८ | जैन धार्मिक प्रवृत्तियो का जीवन और समाज पर प्रभाव

•

श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

धर्म व्यक्ति और समाज के सदर्भ मे

व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास की कला का ही दूसरा नाम 'धर्म' है। धर्म से व्यक्ति के जीवन का सुन्दर निर्माण होता है। व्यक्तियो के सगठित समुदाय से समाज का निर्माण होता है। अत जैसे व्यक्तियो का समुदाय होता है वैसा ही समाज का निर्माण होता है। भले व्यक्तियो से भले समाज का व बुरे व्यक्तियो से बुरे समाज का निर्माण होता है।

धर्म का कार्य है—व्यक्ति की बुराइयो एव राग-द्वेष, मोह आदि आन्तरिक विकारो को मिटाना। बुराइयो के मिटने से सुन्दर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सुन्दर व्यक्तित्व वाले मनुष्यों से सुन्दर समाज का निर्माण होता है। सुन्दर समाजो से सुराष्ट्र का निर्माण होता है। इस प्रकार धर्म से व्यक्ति परिवार, समाज व राष्ट्र का सुन्दर निर्माण होता है। जैन धर्म का इस कार्य मे अपना विशेष योगदान रहा है।

'जैन' शब्द का अर्थ है—अपने शत्रुओ पर विजय पाने का प्रयत्न करने वाला। शत्रु के स्वरूप का वर्णन करते हुए जैन दर्शन मे इस तथ्य को बहुत सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया गया है कि हमारे वास्तविक शत्रु बाहर—बाहर कोई नही है अपितु अपने ही अन्तर मे विद्यमान राग द्वेष, मोह, विषय-कषाय आदि, विकार, बुराइया व दोष ही हमारे वास्तविक शत्रु हैं। अत अपने इन दोषो का सहार करना, इनको मिटाना ही वास्तविक विजय है। इस विजय को प्राप्त करने का प्रयत्न करने वाला ही सच्चा जैन है।

धर्म समस्त दुखों के निवारण का उपाय।

जो व्यक्ति अपनी बुराइयों को जितना-जितना मिटाता जाता है, वह उतना ही पवित्र होता जाता है, परमात्मा के निकट पहुचता जाता है। पूर्ण निर्दोष व पवित्र हो जाने पर परमात्मा बन जाता है। परमात्मा के निकट पहुँचा हुआ व्यक्ति ही 'महात्मा' कहा जाता है। इस प्रकार धर्म से राग-द्वेष, हिंसा, झूठ, चोरी आदि दोषो को मिटाता हुआ व्यक्ति आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा बन जाता है।

यह सर्व विदित है कि सर्व दुःखो की जड़ बुराइया हैं फिर वह दुःख चाहे वैयक्तिक हो या पारिवारिक, सामाजिक हो अथवा राष्ट्रीय। ऐसा कोई दुःख नही है जिसकी जड़ में कोई न कोई बुराई न हो। अतः दुःख मेटने का उपाय है बुराई का निवारण और बुराइयो के निवारण का उपाय है 'धर्म'। अतः जगत के समस्त दुःखो के निवारण का उपाय धर्म ही है।

आत्मीय भाव का विकास ही आत्मा का विकास :

जैन धर्म मे बुराइयो के निवारण व गुणो के प्रकटीकरण को, कारण-कार्य के अनिवार्य नियम पर आधारित एक अति ही व्यवस्थित वैज्ञानिक पद्धति प्रस्तुत की गई है, जिसमे गुणस्थानो के क्रमारोहण के रूप मे गुणो के क्रमिक विकास के स्वरूप और उनकी उपलब्धि के उपाय का पूर्ण मनोवैज्ञानिक रूप मे विशद् विवेचन किया गया है।

जैन दर्शन प्राणी के विकास में प्रधान स्थान आत्मीय भाव या अहिंसा को देता है। हिंसा को पशुता, दानवता व प्राणी के अविकास की प्रतीक माना गया है। आत्मीयता सहृदयता का ही दूसरा नाम है। हृदयहीन प्राणी में आत्मीय भाव उत्पन्न ही नहीं होता है। हृदयहीनता में ही हिंसा जन्म लेती है जो पशुता की निशानी है। हिंसक शेर-चीते आदि पशु व गिद्ध, चील, बाज आदि पक्षी तड़फडाते जीवित प्राणियो को खा जाते हैं; उनके हृदय मे कंपन (अनुकम्पा) नहीं होती है। उनका हृदय कठोर, पत्थरवत जड़ होता हे। यह जडता चेतना के अविकास की द्योतक है। जो जितना कठोर व क्रूर हृदय है वह उतना ही अविकसित है और जो जितना सहृदय है वह उतना ही विकसित है। वस्तुतः आत्मीय भाव का विकास ही आत्मा का विकास है। आत्मीय भाव के ही जैन दर्शन मे दया, अनुकम्पा, अहिंसा, करुणा, वात्सल्य, सहृदयता, आदि अनेक रूप हैं। इन्हें ही प्राणी के विकास का आधार बनाया गया है।

आत्मीयता और मानवता :

जो व्यक्ति अपनी आत्मा के समान दूसरों की आत्मा है, ऐसा अनुभव करता है, उसी मे दूसरे प्राणी के प्रति आत्मीय भाव उत्पन्न होता है। उसका हृदय दूसरो के दुःख से द्रवित होता है। उसे दूसरे का दुःख वैसा ही असह्य होता है जैसा अपना दुःख। फलतः उसमे दूसरे का दुःख दूर करने की भावना प्रबल होती है। ऐसा व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए दूसरे को दुःख नही देता है। यदि किसी कारणवश देना भी पडे तो वह यथासभव कम से कम दुःख देता है और जितना सा उसके कारण से दूसरो को दुःख होता है उसके लिए भी उसे हार्दिक खेद होता है।

जैन दर्शन आत्मीय भाव बढ़ाता है जिससे हृदय की कोमलता बढती है और हृदय की कोमलता से उदारता बढती है तथा स्वार्थपरता घटती है। इससे दूसरे के हित के लिए प्रवृत्ति होती है। दूसरो के हित की प्रवृत्ति मे ही मानवता निहित है। मानवता ही से मानव और पशु का अन्तर प्रकट होता है अन्यथा खाना, पीना, सोना, आदि प्रवृत्तियां तो मानव में और पशु मे समान देखी जाती हैं। तात्पर्य यह है कि जैन धर्म मानवता को जागृत करता है और मानवता की भूमिका में ही नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण सभव है।

अहिंसा और समाज सेवा

मानवता का क्रियात्मक या प्रयोगात्मक रूप अहिंसा व सेवा है। जन समाज में अहिंसा को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि बच्चे को जन्म से ही यह पाठ पढाया जाता है कि किसी को मारना या कष्ट पहुचना बुरा है, पाप है और दूसरो को सुख पहुचाना ही हमारे जीवन का परम कर्त्तव्य है। इस सस्कार के फलस्वरूप उसमे सहज ही दूसरो की सेवा करने की भावना जन्म लेती है। यही कारण है कि सख्या की अल्पता को देखते हुए भारत मे सेवा कार्यों मे जितना योगदान जैन समाज ने दिया है उतना अन्य किसी समाज ने नही।

भारत मे जनियो की सख्या एक प्रतिशत से भी कम है फिर भी जितने सवजनोपयोगी कार्य जैन समाज कर रहा है उतना शायद ही कोई अन्य समाज कर रहा हो। जो औषधालय, विद्यालय, पुस्तकालय, अनाथालय, छात्रालय, धमशाला, गोशाला आदि जैन समाज के द्वारा खोले गये हैं उनकी सख्या सराहनीय है। कही बाढ आए या अकाल पडे, महामारी फले या कोई दुघटना घटे। जन लोग सव प्रथम पहुँच कर तन, मन, धन से सेवा करते रहे हैं।

किसी भी जैन के यहा कोई भी दान लेने आवे वह बिना भेदभाव के मुक्त हस्त से दान देता है। यही नही वह कार्यकर्त्ता के रूप मे बौद्धिक व शारीरिक सेवा भी देने को तत्पर रहता है। इस प्रकार जन धर्मानुयायी तन, मन, धन आदि से पूण योग प्रदान कर समाज व देश की महान् सेवा कर रहे हैं।

जैन धर्म की अहिंसा की बारीकियो ने भी जनियो को परोपकार भावना मे बहुत आगे बढाया है। जैन धर्म जल, आग, वनस्पति आदि एकेन्द्रिय तुच्छ प्राणियो को भी नही सताने पर पूरा जोर दता है। इस शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि हलते-चलते जीव चिऊँटी, मक्खी, मच्छर आदि क्षुद्र प्राणियो को सताने की भावना भी जैनियो म नही पदा होती, फिर मनुष्य और पशुओ को मारने या सताने की तो कल्पना भी नही की जा सकती। कहा भी है—जो नक्षत्र को लक्ष्य करके तीर छोडता है, उसका तीर उस व्यक्ति के तीर से ऊँचा जाता है जो वृक्ष के नीचे की टहनी को लक्ष्य बनाकर तीर छोडता है। इसी प्रकार जैनिया की अहिंसा या सेवाभाव का लक्ष्य बहुत ऊँचा है—वनस्पति आदि के जीवो को भी यथासभव बचाने का है, अत मानव के बचाव व सेवाभाव तो उसको प्राथमिक स्थिति मे ही आजाते हैं। यही कारण है कि जन श्रावक से किसी को कोई डर या हानि की सभावना नही है और आज भी कोई व्यक्ति अपरिचित जैन परिवार के घर मे ठहरने म किंचित भी भय या सदेह नही करता है तथा अपने जान-माल को पूण सुरक्षित समझ कर निश्चिन्त रहता है।

राष्ट्रीय सस्थाओ में भी सेवा देने मे जन समाज कभी पीछे नही रहा है। देशी रियासतो में विश्वासपात्रता के कारण प्राय मत्री जन ही हुआ करते थे। वे न केवल राज्य की शान्ति व समृद्धि की अभिवृद्धि म ही योगदान देते थे वरन् युद्ध के समय भी अपना कत्तव्य निभाने, साहस दिखाने मे कभी मुँह नही मोडते थे। शायद ही भारत में कोई ऐसा राज्य मिले जहाँ जन कायकर्त्ताओ ने अपनी सूझ-बूझ से वहा की जनता के सुख व शाति मे वृद्धि न की हो और राज्य का गौरव न बढ़ाया हो। स्वतत्रता आदोलन के समय तन, मन, धन स जन समाज ने जो योगदान दिया वह इतिहास में

चिरस्मरणीय है। आज भी कांग्रेस, समाजवादी, साम्यवादी, जनसंघ आदि राजनैतिक पार्टियों में सेवा देने वाले जैनियो की संख्या कम नही है।

जैन समाज ने देश के औद्योगिक विकास में जो अपना महत्वपूर्ण योग दिया है उसके पीछे भी राष्ट्र-सेवा व समाज सेवा की भावना ही कार्य कर रही है। जब कितने ही उद्योगपतियो से प्रश्न किया गया कि जब आयकर आदि देने के पश्चात् उद्योगो से कुछ लाभ बचता ही नहीं है तब फिर आप उद्योग चलाने की व्यर्थ परेशानी मोल ही क्यो लेते हैं ? उन्होने सहज भाव से उत्तर दिया—भले ही हमें लाभ न हो, देश के हजारो लाखो बेकार लोगो को आजीविका का लाभ तो मिलता ही है। राष्ट्र की सम्पत्ति तो बढ़ती ही है। यह भी अपना ही लाभ है। अपनी पेट-पूर्ति तो पशु भी कर लेता है मानव जीवन की विशेषता ही यह है कि वह सब के लाभ मे अपना लाभ समझे।

नैतिक उत्थान :

जैन धर्म में मद्य, मांस, चोरी, शिकार, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन और जुआ इन सात कार्यों को कुव्यसन कहा है और इनका निषेध बताया है। ये ही सात कुव्यसन अनैतिकता को जन्म देने वाले हैं।

अनीति उसे कहा जाता है जो अपने और दूसरे के लिए अहितकर हो, जो किसी के लिए भी हितकर न हो। शराब, जुआ, व्यभिचार आदि कुव्यसन मानव के वे महाशत्रु हैं जो उसकी शारीरिक, आर्थिक, बौद्धिक, मानसिक आदि शक्तियों व सम्पत्तियों का हरण कर उसे निर्बल, असहाय व दीन-हीन बना देते है। इनके चगुल में फंसे प्राणी का चित्त सदा भ्रमित व अशान्त रहता है। उसे अपने हित-अहित कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान नहीं रहता है। वह मानवता से च्युत् हो जाता है। वह शरीर से रुग्ण और धन से हीन हो जाता है। उसकी बुद्धि में जड़ता आ जाती है। मन का संकल्प-बल शिथिल हो जाता है। धीरे-धीरे उसके जीवन से सर्वगुण तिरोहित हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति किसी का विश्वासपात्र नहीं रहता। वह अलग-थलग पड़ जाता है। उसका जीवन नीरस व भारभूत हो जाता है। वह हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है। उसका जीवन इतना दुःखी व पतित हो जाता है कि वह जीने के बजाय आत्मघात कर मरना पसन्द करने लगता है।

वस्तुतः ये दुर्व्यसन समाज व राष्ट्र के प्रबल शत्रु हैं। इसीलिए प्रत्येक देश की सरकार शराब, जुआ, चोरी, वेश्या व परस्त्रीगमन आदि को अपराध मानती है। इन पर कानून बनाकर प्रतिबन्ध लगाती है और इनके सेवन करने वाले अपराधी को कड़ा दण्ड देती है। कोई भी अपराध-वृत्ति केवल गैर कानूनी घोषित कर देने मात्र से, समाज से मिट नही जाती कारण कि प्रत्येक प्रकार के अपराध की जड़ मानव के हृदय मे होती है। कानून ऊपर से लादा जाता है अतः वह ऊपर ही रहता है हृदय तक नही पहुँच पाता है, और जब तक वह हृदय तक नही पहुँचता, हृदय बदलता नहीं और हृदय के बदले बिना अपराध वृत्ति मिटती नही।

हृदय बदलने का उपाय है—ज्ञान और अभ्यास। यह काम कानून या विधान नहीं कर सकता है। यह कार्य वे ही कर सकते हैं जिन्होने स्वयं इनको हानिकारक समझकर पूर्ण रूप से त्यागा है। उन्ही के जीवन, व्यवहार व उपदेश का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है। यही कारण

जैनियो के कुछ पर हैं, उनके आसपास व उनके सपर्क मे आने वाले इन कुव्यसनो से स्वतः बचते हैं। हजारो की सख्या मे जैन साधु प्रतिदिन अपने प्रवचनों मे सब लोगो के हित व भले की कामना रखते हुए उनके समक्ष इन कुव्यसनो की बुराइयों व हानियो को प्रस्तुत करते हैं। उन्हें प्रेम से समझाकर इनको छोडने की प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार अपने सदुपदेशो मे जैन साधुओ ने दुर्व्यसनो व अनैतिकता का त्याग कराकर करोडो मानवो के जीवन को पतन के गर्त मे गिरने व बरबाद होने से बचाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

सामाजिक जागरण

जैन साधुओं के प्रतिदिन के भाषण का विषय ही कुव्यसन निवारण, कुरुढ़ियों व अनैतिकता के त्यागन तथा सेवा-सदाचार परोपकार, आध्यात्मिक शक्तियो के जागरण का रहता है। उनका यह उपदेश विश्वविद्यालयों के प्राध्यापको के समान केवल वाचिक नहीं होता है अपितु स्वय उनके जीवन के अनुभव से युक्त होता है अतः उसमे प्रभाव डालने की क्षमता होती है। उनकी आवाज अतःकरण से निकलती है अतः प्राणवान होती है। यह नियम है कि केवल मुख से निकला हुआ शब्द श्रोता के कानो तक ही पहुँचता है वह गले उतर कर हृदय तक नहीं पहुँचता है—जबकि अतःकरण से निकली हुई आवाज श्रोता के गले उतरकर अतःकरण मे पहुँचने मे समर्थ होती है।

अनैतिकता व दुर्व्यसन निवारण तथा सेवा, सदाचार, परोपकार प्रसारण का कार्य वेतन भोगी अध्यापको व कर्मचारियो के भाषणो से कदापि सभव नहीं है फिर वे भले ही एम ए या पी एच डी हो, कारण कि उनके जीवन मे सेवा व त्याग का बल नहीं होता है अतः उनके उपदेशों का प्रभाव नहीं पड़ता।

दूसरों को प्रेरणा देने व पथ प्रदर्शन करने मे वही समर्थ व सफल हो सकता है जो स्वयं सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दोनो का पक्षधार हो। केवल अभ्यास या प्रयोग करने वाला व्यक्ति दूसरों को समझाने मे असमर्थ होता है और केवल सिद्धान्त का ज्ञाता व्यक्ति प्रभाव डालने—प्रेरणा देने में असमर्थ होता है। जैन साधु इन दोनों पक्षो से युक्त होता है। वह सफल साधक के साथ-साथ सफल उपदेशक भी होता है।

जैन साधु जनसाधारण को जिस कर्त्तव्य का उपदेश देता है स्वय उस पर वह, उससे कई गुना अधिक चलता है। वह चींटी को चोट पहुँचाना तो दूर रहा, वनस्पति काय के जीवों तक को कष्ट नहीं पहुँचाता है। एक शब्द भी झूठ नहीं बोलता है। एक तृण मात्र को चीज भी किसी के दिये बिना नहीं लेता है। पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करता है। एक पैसा या धातु मात्र नहीं रखता है। पदल मार्ग पर चलता है। वस्त्र भी अति सीमित रखता है। वह मधुरभाषी, सर्वजीवो का हित चिंतक होता है अतः उसके उपदेश का प्रभाव स्वाभाविक रूप से सहज हो पड़ता है।

सामाजिक उन्नति का मूलाधार है—दूसरों से कम से कम लेना और उन्हें अधिक से अधिक देना। जैन साधु समाज से केवल जीवनरक्षार्थ भोजन लेता है और देता है समाज सेवा मे अपना

जीवन दान। वह समाज के नैतिक उत्थान व जागरण के रूप मे जो कुछ भी देता है उसके बदले में कुछ नही लेता है। उसका जीवन समाज का जीवन बन जाता है। इतिहास साक्षी है कि लाखों जैन साधुओ ने समाज व राष्ट्र के नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण के रूप मे देश की असीम सेवा की है। जनसाधारण को संस्कारित करने की दृष्टि से अनेक नैतिक, शिष्ट व संस्कारसम्पन्न समाजो का निर्माण किया है। ओसवाल समाज इसका जीता जागता प्रमाण है। दूर क्यों जायें, इसी शताब्दी मे स्वर्गीय दिवाकर श्री चौथमलजी म० मा० की नैतिक उत्थान के रूप मे की गई सेवा राजा से लेकर रक तक रही है। उन्होने एक ओर मेवाड के महाराणा फतेहसिंहजी आदि राज वर्ग के लोगो को उपदेश देकर उन्हें सेवा के लिए प्रेरित किया तो दूसरी ओर रेगर, चमार, बलाई, भील, हरिजन आदि पिछड़े वर्ग के लाखो लोगों को शराब, धूम्रपान, मास आदि कुव्यसनो का त्याग कराया। अगणित परिवारो मे आज भी वह परंपरा चल रही है। प्रवर्तक स्व० श्री पन्नालालजी मा० सा० ने राजस्थान मे फैली हुई मोसर, दहेज, पशु बलि आदि कुप्रथाओ (जो समाज को जर्जर कर रही थी, लाखो परिवारों को बरबाद कर रही थी) के विरुद्ध बिगुल बजाया। रूढ़िग्रस्त लोगों ने अनेक बार उन्हें मारने की धमकियां दी, संकट पैदा किये परन्तु आप अपने पथ से विचलित नही हुए। दिवाकरजी व प्रवर्तकजी द्वारा पशु बलि बद कराने, अगते पलवाने आदि के सैकड़ो पट्टे आज भी विद्यमान हैं। आपके ही उपदेशो से मीणा समाज मे सामाजिक जागरण की नई चेतना आई। जैनपुरी आदि ग्रामो मे जाकर मीणो के नैतिक उत्थान का कोई भी व्यक्ति साक्षात्कार कर सकता है।

जैन सतो के उपदेशो से हजारों खटीक परिवार, जिनका धंधा ही पशुवध करना था, मांस व खालें बेचना था, शराब पीने की जिनमे जातिगत लत थी, उन्होने अपना धंधा छोड़ दिया, सप्त कुव्यसनो का त्याग कर दिया तथा एक सभ्य व उन्नत, समाज का आदर्श अपना लिया। इस प्रकार एक नीति व सदाचार संपन्न 'वीरवाल समाज' की रचना हुई। आज उनमें प्रायः सभी ही कपड़े, किराने आदि के सफल व प्रामाणिक व्यापारी हैं। उनकी प्रामाणिकता व सदाचारशीलता ने ही उनको गरीबी से उबारा है।

आचार्य श्री नानालालजी म० सा० के सदुपदेशों से प्रेरित होकर हजारो बलाई परिवारों ने दुर्व्यसनो का त्याग कर 'धर्मपाल समाज' की रचना की है। परिणामस्वरूप धर्मपाल परिवारो की वर्तमान पीढी शिक्षा-दीक्षा मे पहले से बहुत आगे बढी है। अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर इन आदिवासियो के नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण के लिए बराबर प्रयत्नशील है। ये आदिवासी, जिनका प्रमुख कार्य पहले तीर-कमान रखना व शिकार करना था अब भारी संख्या मे शिकार, मांस तथा शराब का सर्वथा त्याग कर, कृषि आदि से अपनी आजीविका चलाने लगे हैं। उनमें सामायिक, स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी बढ़ी है।

आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से भगवान् महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के अवसर पर हजारों व्यक्तियो ने अपनी जातिगत शराब पीने, मांस खाने आदि की परंपरा का सदा के लिए त्याग कर दिया है। हजारो व्यापारियों ने प्रामाणिक माप तोल का नियम लिया है। इसके पूर्व भी आचार्य श्री योजनाबद्ध रूप से समय-समय पर नैतिक उत्थान, सामाजिक व

आध्यात्मिक जागरण के लिए बराबर प्रेरणा देते रहे हैं। आपने समाज में सम्यक् ज्ञान का विकास हो, एतदर्थ स्वाध्याय के प्रचार पर विशेष जोर दिया, फलतः सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर के अन्तर्गत स्वाध्याय संघ का जन्म हुआ। आज इस संघ में सैकड़ों सक्रिय स्वाध्यायी हैं जो समता व संयम की ओर बराबर आगे बढ़ रहे हैं तथा सैकड़ों ग्रामों में इनके द्वारा स्वाध्याय प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस प्रकार समाज में ज्ञान वृद्धि के साथ नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति में महत्त्वपूर्ण योगदान मिल रहा है। स्व० श्री पन्नालालजी म० की प्रेरणा से संचालित स्वाध्याय संघ गुलाबपुरा भी इसी प्रकार योजनाबद्ध तरीके से नैतिक उत्थान में उल्लेखनीय योगदान दे रहा है।

मेवाड़ कोकिला महासतीजी श्री जसकंवरजी म० सा० का भी ध्यान इस ओर सदा से रहा है। आप ही के सदुपदेश की प्रेरणा से इसी वर्ष जोगणिया देवी (बंदू) के यहाँ होने वाली सैकड़ों पशुओं की बलि प्रथा बंद हुई है।

तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसी के अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से नैतिक उत्थान व समाज-सुधार का जो कार्य हुआ है, वह प्रशंसनीय है। भ्रष्टाचार-निवारण व सदाचार प्रसारण के साथ-साथ इस आंदोलन से जैन एकता एवं सर्वधर्मसमभाव को भी बड़ा बल मिला है।

ऊपर केवल सांकेतिक रूप में जैन संतों द्वारा नैतिक उत्थान, सामाजिक जागरण व आध्यात्मिक विकास के लिए किए गए प्रयासों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार की अन्य भी अनेक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। सच्चाई तो यह है कि जैनधर्मानुयायी प्रत्येक संत प्रतिदिन इस प्रकार की जीवन निर्माण की कुछ न कुछ प्रेरणा देता ही है और इसी का प्रभाव है कि आज देश के अन्य प्रान्तों में जहाँ इतनी अनैतिकता व गुण्डागर्दी बढ़ गई है कि किसी का जान-माल सुरक्षित नहीं रहा है, रात को अकेले मकान से बाहर निकलना कठिन हो गया है, वहाँ राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि में, जहाँ जैन धर्म का प्रचार-प्रसार अधिक है, अब भी सुरक्षा व निश्चिंतता है। यह जैन धर्म के प्रचार प्रसार का ही परिणाम है।

जैन धर्मानुयायी गृहस्थों, श्रावकों का भी नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। श्रावक के लिए पाँचों अणुव्रतों का पालन अत्यावश्यक है। उसके अहिंसा अणुव्रत के पालन से क्रूरता मिटकर आत्मीयता, मित्रता व सर्वोदय की प्रवृत्ति का प्रसार होता है। सत्याणुव्रत से अविश्वास, झूठ-कपट, धोखा धड़ी मिटकर विश्वास, सरलता, प्रामाणिकता का प्रादुर्भाव होता है। अचौर्याणुव्रत से संपत्ति का अपहरण व शोषण मिटकर नैतिकता को बढ़ावा मिलता है। ब्रह्मचर्याणुव्रत से व्यभिचार, दुराचार मिटकर सदाचार का पोषण होता है। परिग्रह परिमाणुव्रत से संग्रहवृत्ति, विषमता, भ्रष्टाचार मिटकर समता व शांति का विस्तार होता है। पंच अणुव्रतों के पालन से परिवार, समाज व राष्ट्र में दुर्व्यसनों, दुराचारों, अत्याचारों में कमी होती है व क्षमा, विनय, सरलता, सज्जनता, सहृदयता, वत्सलता, मृदुता, मधुरता, नम्रता, सहकारिता का विकास होता है जो नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण का मूल है।

पहले कह आए हैं कि जैन समाज में शराब, व्यभिचार, जुआ आदि दुर्व्यसनों व अन्य बड़ा

बुराइयों का त्याग जातीय परम्परा से ही होता है। ये ही वे दुर्व्यसन हैं जिनमे व्यक्ति या परिवार दिवालिया होता है, पूंजी का बुरी तरह से अपव्यय होता है। जैन परिवार इस अपव्यय से बचता है। इससे उसकी आय से व्यय कम होता है और कुछ न कुछ बचत सदा होती ही रहती है। यही बचत धीरे-धीरे बढकर पूंजी का रूप ले लेती है। यह अर्थ शास्त्र का नियम है कि पूंजी मे पूंजी पैदा होती है। इसी पूंजी से जैनी उद्योग खोलते हैं। इस प्रकार देश की समृद्धि बढाने व लाखो लोगो की बेरोजगारी दूर करने मे अपना योग देते हैं। आज भी जैन लोग न केवल भारत के सब प्रान्तों में उद्योग व व्यवसाय से जनता की सराहनीय सेवा कर रहे हैं, अपितु विदेशो मे भी सफल व्यवसायियों व उद्योगपतियो मे गिने जाते हैं। देश के आर्थिक व औद्योगिक विकास मे जैन समाज का योगदान अपेक्षाकृत सबसे अधिक है।

कुछ लोगो की ऐसी धारणा है कि जैन लोग जनता का अधिक शोपण करते हैं। इसीलिए अन्य लोगो से अधिक सम्पन्न है। परन्तु उनकी यह धारणा यथार्थ न होकर भ्रमपूर्ण है। जैनियो की सम्पन्नता के लिए निम्नकारण विशेप रूप से उत्तरदायी हैं—

(१) जाति परम्परा के संस्कार के कारण जैन लोग पापभीरू होते हैं। अतः अपनी आजीविका चलाने के लिए ऐसे धन्धे करते हैं जिनमे हिंसा न हो। व्यापार मे अन्य सब धन्धों की अपेक्षा त्रसकाय की कम हिंसा होती है। अतः जैनों का आजीविका का साधन मुख्यतः व्यापार रहा है। व्यापार से अर्थोपार्जन अन्य धन्धो की अपेक्षा अधिक होता है।

(२) जैन जाति मे दुर्व्यसनों का त्याग होता है। कोई शराब पीता, मांस खाता या व्यभिचार करता है तो उसका जाति से बहिष्कार कर दिया जाता है। दुर्व्यसनों मे धन का बुरी तरह व्यय होता है। अतः जैनो मे दुर्व्यसन न होने से धन की बचत होती रहती है। यही बचत धीरे-धीरे बढ़कर पूंजी बन जाती है। फिर पूंजी से पूंजी बढ़ने का क्रम प्रारभ हो जाता है।

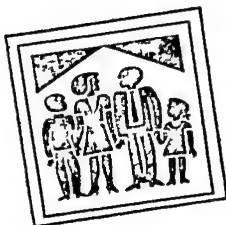
(३) जैनो में दुर्व्यसन न होने का एक लाभ यह भी है कि उनकी बौद्धिक क्षमता अन्य लोगो से अधिक होती है। अतः वे जो भी कार्य करते हैं उनमें प्रायः सफलता ही मिलती है कारण कि वे सफलता प्राप्ति के बीसों उपाय ढूंढ लेते है। व्यावसायिक सफलता ही जैनों की सम्पन्नता का कारण है।

इस संबंध में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अन्य संपन्न लोगों की अपेक्षा जैन लोग समाज सेवा करने व दान देने में अधिक उदार रहे है। कारण यह है कि जैन घर में जन्मे बच्चे को जीवन के प्रारम्भ से ही यह सुनने को मिलता है कि परिग्रह अर्थात् धन का संग्रह बुरा है। धन का सदुपयोग सेवा करने व दान देने में है, भोग-विलास में नहीं। वही बच्चा जब बड़ा होता है तो इन्ही संस्कारों से जहां भी सेवा का अवसर आता है, वहां वह सहर्ष तन, मन, धन से अपना योग देता है।

जैन उदारचित्त होता है अतः वह सेवा के क्षेत्र में भी अपनी दृष्टि कभी भी सकुचित नही रखता है। उसका सेवा का क्षेत्र केवल जैन जाति तक ही सीमित या संकुचित नही होता है। वह जहा भी जैसी आवश्यकता होती है, वहां जाति-पांति के भेदभाव को भुलाकर निःस्स्वार्थ भाव से सेवा करता रहा हैं। वस्तुतः सेवा जैन के जीवन का एक अंग है।

जैन साधुओं ने जन समाज को तो सेवा के लिए सतत प्रेरणा दी ही, साथ ही साथ अपने सार्वजनिक भाषणों में बार बार सेवा पर जोर देकर, अन्य जैनेतर समाजों में भी सेवा भाव का प्रचार-प्रसार करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। सेवा के इसी सूत्र को, मंत्र को यदि सब लोग अपना लें तो समाज और देश की सब समस्याएं सुलझ जाए।

आशय यह है कि जैन समाज ने देश के सर्वांगीण विकास में तन, मन, धन से पूर्ण योग दिया है। नैतिकता का कोई अंग ऐसा नहीं है, जिसके उत्थान में जैनियों का पूर्ण सहयोग न मिला हो, समाज का ऐसा कोई पक्ष नहीं है जिसके विकास में जैनियों का योग किसी से कम रहा हो। जैन समाज, संख्या में देश का एक प्रतिशत न होते हुए भी, देश और समाज के विकास में अपेक्षाकृत सबसे आगे रहा है। प्रत्येक जैन अपने जीवन की सार्थकता इसी में मानता है कि वह अपनी और दूसरों की बुराइयों को दूर करे व दूसरे के अधिक से अधिक काम आए। वह दूसरों के दुःख दूर करने व सुखी बनाने में अपना सौभाग्य समझता है। यही कारण है कि भारत के इतिहास में सामाजिक जागरण व सेवा के रूप में जैनियों का योगदान सभी युगों में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य रहा है।



४६ | राजस्थान में जीव-हिंसा-निषेध के प्रयत्न

●

श्री अगरचन्द नाहटा

मूलधर्म समता :

जैनतीर्थंकरो का मूल धर्म समता का है ! उसीसे अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त आदि सिद्धातों का विकास हुआ है। भगवान् महावीर ने तो अनेक जगह कहा है कि सभी जीव सुख चाहते हैं, जीना चाहते हैं। अतः किसी को भी दुःख देना और मारना अपना ही बुरा करना है। तुम दूसरे को दुःख देते हुए या मारते हुए अपने को ही दुःख दे रहे हो इसी भावना से प्राणीमात्र का रक्षण करो, अभय दो। सब आत्माओं को अपने समान देखो, यही अहिंसा है।

अहिंसा की सूक्ष्मता :

जैन धर्म मे सूक्ष्म जीवो का जितना अधिक विवेचन है उतना विश्व के किसी भी धर्म मे नही है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इन स्थावर एकेन्द्रिय जीवो को बतलाना केवलज्ञानी सर्वज्ञ तीर्थंकरो का ही काम है। आज तो अनेक यन्त्रों द्वारा वनस्पति आदि मे अन्य प्राणी जगत की भांति सुख दु ख की अनुभूति होती है, यह सिद्ध हो चुका है। पर भगवान महावीर या उससे पहले केवल आत्म विशुद्धि के बल पर ऐसा बतलाना अन्य किसी के लिए संभव ही नही था। केवल सूक्ष्म जीवो का निरुपण ही नही किया पर उनकी रक्षा के लिए भी उतना ही सजग उपदेश दिया व प्रयत्न किया। अत जैनधर्म की अहिंसा अन्य सब धर्मों की अपेक्षा बहुत ही सूक्ष्म है।

जीवहिंसा : महान् पाप :

जिस लोक मे हम मनुष्य रहते हैं उसी मे पशु, पक्षी आदि जीव भी निवास करते हैं। उनसे केवल सम्पर्क ही नहीं होता, परस्पर सम्बन्ध भी बने रहते हैं। कई बातो में तो हम उन सब जीवो के उपकृत भी है। इसलिए पशु-पक्षी जगत का विनाश करना तो बहुत ही हिंसा अर्थात् पाप का कारण है। उनकी हत्या अनेक कारणों से की जाती है। जिनमे सबसे पहला कारण तो है मांसाहार, दूसरा है पशुबलि, हिंसात्मक यज्ञ आदि, तीसरा शिकार और खेल-मनोरजन। पशु-पक्षियों मे से कई प्राणी तो हिंसक हैं उनसे अपनी रक्षा करने के लिए भी मनुष्यों को समय-समय पर उनकी हिंसा करनी पड़ती है। इनमें से सबसे अधिक हिंसा तो मांसाहार के लिए होती है। अतः जैन धर्म में मांसाहार को नर्क का कारण बतलाते हुए लाखो मनुष्यो को उपदेश देकर निरामिषहारी बनाया गया। इसी

तरह यज्ञ और बलि के निवारण के लिए भी पूर्ण प्रयत्न किया गया। भगवान महावीर और उनके अनुवर्ती आचार्यों, मुनियो और श्रावको के महान प्रयत्नो से बहुत बडी जीव हिंसा बन्द की जा सकी। यह जैनो के लिए बहुत ही गौरवपूर्ण बात है।

जैन धर्म और जैन धर्माचार्यों का प्रभाव

राजस्थान और गुजरात मे जैनधम का प्रचार सबसे अधिक रहा। फलत अन्य प्रान्तो की अपेक्षा शाकाहारियो की सख्या इन दो प्रान्तो मे सबसे अधिक है। यज्ञा मे जो अश्व, मनुष्य आदि का होम किया जाता था वह तो जनधम के प्रचार से सवथा बन्द ही हो गया। देवी देवताओ को प्रसन्न करने के लिए जो बकरे, भैस आदि की बलि दी जाती थी, वह भी काफी अशा म बन्द हो गयी। और राजाओ आदि के अतिरिक्त प्राय शिकार करना भी बन्द हो गया। सप्त व्यसनो मे मास के साथ साथ शिकार का भी निषेध किया गया है। इसी तरह जुआ, मदिरापान, वेश्यागमन, परस्त्री गमन, चोरी भी सात व्यसना मे सम्मिलित करके जैनो मात्र के लिए सप्त व्यसना का निषेध किया गया। इसका प्रभाव अन्य मत सम्प्रदायो पर भी और जनेतर जनता पर भी पडा।

उपकेशगच्छ की परम्परा के अनुसार भगवान महावीर के ७० वष म रत्नप्रभ सूरिजी ने ओसियानगरी मे लक्षाधिक अहिंसा प्रेमी जनी बनाये। इसी तरह अन्य ग्राम नगरो म श्वेताम्बर, दिगम्बर जनाचार्यो ने लाखो व्यक्तिया को प्रतिबोध देकर मास, पशुबलि, शिकार आदि पापा से विरक्त करते हुए उन्ह जैनी बनाया। यह जैनाचार्यों की सयम, तप त्याग और मन्त्रादि शक्ति का प्रभाव था। उन्ह अहिंसा प्रचार मे काफी कठिनाई हुयी फिर भी उन्होने अपना प्रयत्न निरन्तर जारी रखा और तनिक भी शिथिलता नही आने दी।

आचाय रत्नप्रभ सूरि जि होने सबसे पहले ओसवाल जैन बनाये उनके जीवन की ही एक घटना यहा दी जा रही है जिससे पता चलता है कि कितनी बडी कठिनाई को उन्होन कसे सुन्दर रूप मे हल कर दिया। इसका महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायक उल्लेख पट्टावलियो, वशावलियो आदि मे मिलता है। ओसिया नगर मे उस समय चामुण्डादेवी की बडी मान्यता थी। नवरात्रि के दिनो मे तो सकडो बकरो, भैसो आदि की बलि दी जाती थी। वसे प्राय प्रत्येक दिन ही देवी के सामने उन निरीह मूक पशुओ की निदयता पूण हत्या की जाती थी। जन साधारण म ऐसी मान्यता रूढ हो गयी थी कि जो देवी को बलि नही देगा उसका बडा अनिष्ट हो जायगा यह प्रश्न नये जैन बनन वालो के सामन भी आया। उन्होन देवी को पशु बलि नही दी तो कुछ दुघटनाए भी घटीं, उपद्रव भी होने लगे। तो उन्होन आचाय रत्नप्रभ सूरि से पुकार की, कि हम तो आपके उपदेश से अहिंसक बन गये, मास, पशु बलि, शिकार सबको छोड दिया पर चामुण्डा देवी बडी क्रूर है। इसको पशुबलि दिये बिना हमारी रक्षा कसे होगी ? तब आचाय श्री ने कहा कि अच्छा इसका उपाय किया जायगा। उन्होंने अपने ध्यान बल से देवी को आकर्षित किया देवी ने कहा—मेरी परम्परागत बलि को आप क्यो निषेध कर रहे हैं ? तब सूरिजी ने कहा कि तुम तो जगत की माता—अम्बा हो, जैसे मनुष्य तुम्हारे सेवक और भक्त हैं वैसे बकरे भी तुम्हारी सन्तान हैं। उनकी भी तो रक्षा तुम्हें करनी चाहिए। देवी न कहा कि आप कहत तो ठीक हैं पर लम्बे समय से लोग मुझे बलि दे रहे हैं उसके बिना मैं सतुष्ट नहीं होती, अभ्यास सा पड गया है। तब दृढता स साथ आचाय श्री न कहा कि हमतो अहिंसा धर्मी हैं पशु बलि तो तुम्हे किसी भी तरह नही चढा सकत। तुम मेरे प्रतिबोधित जनों का उपद्रव

करोगी तो मुझे फिर अन्य कोई टेढा रास्ता सोचना पडेगा। नही तो फिर मेरा कहा मानो। मैं तुम्हे अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ प्रचुर परिमाण मे चढाने को श्रावकों से कह दूंगा। हमारे श्रावको के लिए तो तुम्हे इसकी छूट देनी ही पडेगी। अन्त मे सूरिजी के तप तेज से प्रभावित होकर देवी ने उनका कहा माना उसने सोचा कि मैं यदि ऐसे महात्मा पुरुष का कहा नही मानूंगी तो मेरे लिए ही भारी पडेगा। जैनी मुझे मानना छोड देगे। मेरे से भी बडे देवी-देवता गुरुमहाराज के सेवक और भक्त हैं। अत: मैं विगाड करूंगी तो उनके द्वारा अशान्ति का निवारण हो जायगा।

देवी को प्रतिबोध देकर उन्होने उसे ओसवालो की कुलदेवी मान्य रखते हुए उसकी मान्यता जारी रखी। पर उसका चण्डिका नाम बडा क्रूर था उसे बदल कर उन्होने उस देवी का नाम सच्चिका-सत्यिका रख दिया। इस नाम वाली देवी के कई स्तोत्र जैनाचार्यो व मुनियो के रचे हुए मिलते है और उनके प्रतिष्ठित सत्यिका की कई मूर्तिया जोधपुर आदि म्यूजियम मे पायी जाती हैं।

ओसवाल समाज मूलतः क्षत्रिय समाज था जिसमे मासाहार, शिकार, बलि आदि का बोलवाला था। इसलिए जैनी बनने के बाद अधिकाश लोगो ने खेती, व्यापार करते हुए अपने को वैश्य के रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया। यद्यपि राजघरानो से भी उनका सम्बन्ध अच्छे रूप मे बना रहा। जैन जातियो की अलग स्थापना जैनाचार्यों ने बडी दीर्घ दृष्टि से इसीलिए की कि पूर्व सस्कार और आसपास के वातावरण और सम्पर्क से उनमे फिर हिंसा भाव का पनपना सम्भव है। इसलिए मासाहारियो, शिकारियों, पशुबलि आदि देने वालो से उनके रोटी, बेटी का व्यवहार बन्द कर दिया गया। इसी से जैनी आज भी पूर्ण शाकाहारी और पशु-पक्षी ही नही चीटी आदि छोटे-छोटे जन्तुओ की रक्षा के लिए भी सावधान रहते है। उनके इस अहिंसा पालन का प्रभाव आस-पास के सभी लोगो पर पड़ा। फलतः करोड़ो व असख्य जीवो को अभय दान मिल गया।

दया और करुणा भाव :

इतना ही नही पशु-पक्षियो के प्रति दया और करुणा भाव भी इतना जाग्रत किया गया जिससे उन्हें दाने, चुग्गे आदि के लिए अन्न, रोटिया आदि देना प्रत्येक गृहस्थ का आवश्यक कर्तव्य हो गया। और गाय, बैल आदि की रक्षा के लिए गोशालाएँ, कबूतरखाने आदि खोले गये। पशु-पक्षियो की रक्षा ही नही उनके संरक्षण और सवर्द्धन का भी प्रयत्न किया गया। पाठको को यह जानकर बहुत ही आश्चर्य सा होगा कि कुत्ते आदि कई मासाहारी पशुओ को भी जैन समाज, व इतर समाज ने नित्य नियमित रोटिया खिलाकर उनकी मासाहार प्रवृत्ति कम करदी और पालतू बनाकर अपने घरों आदि की रक्षा का प्रबन्ध भी किया गया।

अमारि की उद्घोषणा :

समय-समय पर जैनाचार्यों ने राजाओं और बादशाहों को अहिंसा धर्म का उपदेश देकर उनके राज्य भर मे अमारि (किसी जीव की भी हत्या नही की जाय न मारा जाय,) की उद्घोषणा करवा दी, फरमान जारी करवा दिये। उन सबका विस्तृत विवरण दिया जाय तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन सकता है। पर यहा थोडे से उदाहरण ही प्रस्तुत किये जा रहे है।

मल्लधारी अभय देव सूरि के उपदेश से राजा जयसिंह ने अमारि उद्घोषणा करवायी थी? मल्लधारी हेमचन्द्रसूरि के उपदेश से सिद्धराज ने वर्ष मे ८० दिनो तक जीव रक्षा के लिए एतवर पत्र

लिखकर दिए थे। बहुत से राज्यों के मंत्री सेनापति, कोषाध्यक्ष आदि जैनी ही थे। इसलिए अमारि उद्घोषणा व जीव हिंसा निषेध में अधिक सहूलियत मिली।

बीकानेर राज्य के बच्छावत कई पीढ़ियों तक मन्त्री रहे। उन्हें धन और मान की अपेक्षा धर्म अधिक प्रिय था। इसका एक ही उदाहरण दिया जा रहा है कि मंत्रीश्वर कर्मचन्द्र ने बड़ी सूझबूझ से सम्राट अकबर को प्रसन्न करके राव कल्याणसिंह जी के जोधपुर के राजगवाक्ष में बैठकर कमल पूजा करने का असम्भव सा मनोरथ पूर्ण कर दिया। इसके उपलक्ष में जब कल्याणसिंहजी ने मंत्रीश्वर को जो भी इच्छा हो मांगने को कहा तो कर्मचन्द्र ने और कुछ भी न चाहकर यही मांगा कि चातुर्मास में हलवाई, तेली आदि अपने तिल पिडनादि हिंसात्मक कार्य न करें। बकरी, भेड़, ऊंट आदि का कर न लिया जाय। इसी तरह समीयाणा के बन्दीजनों को रायसिंहजी की कृपा से सनिरा के हाथ से छुड़ाया। सं० १६३५ के महादुष्काल के समय १३ महिनों तक मन्त्रीश्वर ने दानशाला खोलकर दीन हीन रोगग्रस्त व्यक्तियों को खान पान, वस्त्र, औषध आदि देकर प्रशंसनीय सहायता की और आश्रितों को अपने खर्च से साथी देकर अपने स्थान पहुंचा दिया। उनके हृदय में कितनी दया व करुणा थी कि राज्य भर में अष्टमी, चवदस, पूनम, अमावस और चातुर्मास में कुम्हार, तेली आदि को हिंसात्मक कार्य निषेध करवा दिये। सारे वायु मण्डल में खेजड़ी आदि वृक्षों का छेदन निषेध करा दिया। सिन्धु देश की सतलज, रावि आदि नदियों में मच्छों की हिंसा बन्द करवा दी।

इसी तरह सम्राट अकबर जब हीरविजयसूरि, जिनचन्द्रसूरि और विद्वान जैन मुनियों से प्रभावित हुआ तो उसने आषाढ़ सुदी चौमासे के आठ दिन और पर्युषण के १२ दिन जीव हिंसा अपने सभी सूबों में फरमान भेजकर बन्द करवा दी। खम्भात के समुद्र की मछलियों को पकड़ना १ वर्ष तक बन्द करवा दिया। यहां तक कि प्रायः वर्ष में ६ माह तक पशु-पक्षी की हिंसा सम्राट अकबर जैसे मुसलमान ने बन्द करवादी। गोरक्षा का फरमान जारी कर दिया और स्वयं मांसाहार करना छोड़ दिया।

मुसलमान सम्राट अकबर ने हीरविजयसूरि व जिनचन्द्रसूरि को हिंसानिषेध के जो फरमान दिये थे उनकी नकल यहां दी जा रही है।

कसाइयों के मुचलके की नकल

बीकानेर में पर्युषणों के १० दिन कसाईवाडा चिरकाल से बन्द रहता है। तत्सम्बन्धी कसाइयों के मुचलके की नकल इस प्रकार है—

मरजुआ १५ अक्टूबर सन् १८८२ ईस्वी	श्री महात्मा म्युनिसीपल कमेटी
मोहर महकमा मुनिसीपल	राज श्री बीकानेर
कमेटी राज श्री बीकानेर	महाराज सवाईसिंह
सं० १६४७	

सिरणु धाराणी हाजी असीम वामन रो वा मसकु रीम रा वा गुलाबाग नोगे रो वा बहादर समस रो वा इलाहीबगस भाग रा वा मालाबगस मद रा वा कायमदीन असाम रा वा, फारू गारू रा वा कायमदीन गाजु रा वगैर समस्तों जोग तथा रहू लोग पजूषणों में पगता मिति भादवा वदि १२ सू मिती भादवा सु। ६ ता। करीमो रावता आयो छां और पत्ता कागवालों रा तरफ सू

लावरा, वीहा में वगैरह मे म्हाने मिलतो छो सु इया वरसा मे कम मिलने लाग्यो जै पर म्हे हर साल पंचान ओसवाल ने केवता रहा के हमारा बन्दोवस्त कर देणा चाहिजै लेकिन वारी तरफ से बन्दोवस्त नही हुआ सं हमे मैंनुसीपल कमेटी री मारफत मिती भादवा वदी १२ सु मिती भादवा सुदि ६ तांई कोई वैपारी जीव हत्या नहीं करसी और श्री रसोवडे री दुकान १ वाँ अजर साहव वहादुर री दुकान १ जारी रहसी जै मैं रसोवड़े री दुकान रो रमोवडे सिवाय दूजे ने नही देमी वा० अंजर री दुकान वालों सवाय हुकमत अंगरेज वहादुर औरां ने नही देसी। केई साल मे भादवा दो रे कारण पंजूसण दो होगा तो अगता दोणु पजुसण मे वरोवर राखसां रु० १००) सु ज्यादा नही मांगसा इयै मै कसर नही पड़सी। अगर इयै मै कसर घातां तो सिरकार सूं सजा कैद वा जरीवाने री मरजी आवे सु देवे। औ लिखत मैं म्हारी राजी खुशी सूं की यो छै। इये मै कही लाव कसर नही घात सां स० १६४६ मिति आसोज सुदी ६ ता. ३० सितम्वर सन् १८८२ इस्वी।

द० खुदावग्स वल्द भीखा वकलम— द० पीरवग्स

द० ....वगस द० इलाही वगस

द० मौलावग्स वल्द मदारी वकलम घाय भाई छोगो।

खत वा० फाजु वल्द गोलु वा० कायमदीन वल्द खाजु वा. हाजी अजीम वल्द वासल वकलम इलाहीवग्स। द० रहीम वल्द इलाईवग्स वा. मोलावग्स वल्द नूरा वा० समसु वा० कादर वा. अव्दुलो वा. कायमदीन वल्द अजीम वकलम धाय भाई छोगो।

द० रैमतउल्ला वकलम खाजू। द० करमतउल्ला वकलम खाजू।

द० खाजू वल्द वा० लखा वल्द अजीम वा० इलाईवग्स वल्द इमामवग्स वकलम इलाईवग्स वमुजव के णे च्यारा के द० करीमवग्स द० गुलाम रसूल।

फरमान अकवर वादशाह गाजी का

सूवे मूलतान के वडे-वडे हाकिम, जागीरदार करोड़ी और सव मुतमद्दी (कर्मचारी) जानलें कि हमारी यही मानसिक इच्छा है कि सारे मनुष्यो और जीव जन्तुओ को सुख मिले, जिसे सव लोग अमन चैन में रहकर परमात्मा की आराधना मे लगे रहें। इससे पहले शुभ चिन्तक तपस्वी जयचन्द (जिनचन्द्र) सूरि खरतरगच्छ हमारी सेवा मे रहता था। जव उसकी भागवद् भक्ति प्रकट हुई तव हमने उसको अपनी वड़ी वादशाही की महरवानियो मे मिला लिया। उसने प्रार्थना की कि इससे पहले हीर-विजय सूरि ने सेवा मे उपस्थित होने का गौरव प्राप्त किया था और हर साल वारह दिन मागे थे, जिनमें वादशाही मुल्कों में कोई जीव मारा न जावे और कोई आदमी किसी पक्षी, मछली और उन जैसे जीवों को कष्ट न दे। उसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई थी। अव मैं भी आशा करता हूँ कि एक सप्ताह का और वैसा ही हुक्म इस शुभचिन्तक के वास्ते हो जाय। इसलिये हमने अपनी-अपनी आम दया से हुक्म फरमा दिया कि आषाढ शुक्ला पक्ष की नवमी से पूर्णमासी तक साल मे कोई जीव मारा न जाय और न कोई आदमी किसी जानवर को सतावे। असल वात तो यह है कि जव परमेश्वर ने आदमी के वास्ते भांति-भाति के पदार्थ उपजाये हैं तव कभी किसी जानवर को दुःख न दे और अपने पेट को पशुओं का मरघट न वनावे। परन्तु कुछ हेतुओ से अगले वुद्धिमानों ने वैसी तजवीज की है। इन दिनो आचार्य जिनसिंह सूरि उर्फ मानसिंह ने अर्ज कराई कि पहिले जो ऊपर लिखे अनुसार हुक्म हुआ था वह खो गया है, इसलिये हमने उस फरमान के अनुसार नया फरमान इनायत किया है।

चाहिये कि जैसा लिख दिया गया है वैसा ही इस आज्ञा का पालन किया जाय। इस विषय में बहुत बड़ी कोशिश और ताकीद समझ कर इसके नियमों में उलट फेर न होने दें। ता ३१ खुरदाद इलाही सन् ४६।

हजरत बादशाह के पास रहने वाले दौलत खाँ का हुक्म पहुंचाने से उमदा अमीर और सहकारी राय मनोहर की चौकी और ख्वाजा लालचन्द के वाकिया (समाचार) लिखने की बारी में लिखा गया।

सम्राट जहांगीर ने भी कई खास दिनों में जीव हिंसा निषेध जारी रखा। इसके अनुकरण में राजस्थान के कई राजाओं ने भी अपने यहां अमारि उद्घोषणा करवा दी थी। यह सब जैनाचार्यों और श्रावकों के अहिंसा प्रचार की प्रबल भावना और प्रभाव का द्योतक है।

जीव हिंसा निषेध जैनों का एक आवश्यक कर्तव्य ही हो गया। इसलिए जब भी जैन पर्व आदि, कोई उत्सव होता तो सबसे पहला काम यही होता कि पशु-पक्षियों की हिंसा बन्द करवाई जाय। कसाई बाड़े बन्द रखवाये जाय, अगते पालन किये जाय, बकरों आदि को अमर बनाये जाय। इसके लिए वे अपने प्रभाव और प्रयत्न से राजाओं से आज्ञा जारी करवा देते। पैसे देकर कसाइयों से जीवों को छुड़वा दिया जाता। बीकानेर, जोधपुर आदि राज्यों में पर्युषणों आदि में कसाई बाड़ा बन्द रहता। बीकानेर राज्य में कसाईबाड़ा बन्दी का जो अन्तिम दस्तावेज था, उसकी नकल पीछे दी जा चुकी है। खेद है, जैन समाज की उपेक्षा के कारण यह प्रणाली कुछ वर्षों पहले बन्द हो गयी। फिर भी राजस्थान सरकार से कुछ खास दिनों के लिए[1] कसाईबाड़े बन्द रखवाये जाते हैं। अभी भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में राजस्थान सरकार ने हिंसा निषेध के कुछ आदेश जारी किये हैं। शताब्दी वर्ष के लिए शिकार बन्द करदी है।

पशु-पक्षि बलि निषेध विधेयक

भगवान महावीर ने अपने समय में व्याप्त धर्म के नाम पर की जाने वाली बलि प्रथा का सख्त विरोध किया था। वस्तुतः धर्म में बलि देने का जो विधान है वह किसी पशु या पक्षी से सम्बद्ध न होकर अपनी पशुता (पापवृत्तियों) को होमने का विधान है। व्यासजी का यह कथन इसी ओर इंगित करता है—ज्ञान रूपी पाल से घिरे हुए ब्रह्मचर्य और दया रूपी जल से परिपूर्ण पाप रूपी अग्नि कुण्ड में दम रूपी वायु द्वारा प्रज्वलित ध्यान रूपी अग्नि में कुकर्म रूपी ईंधन (समिधा) डाल कर श्रेष्ठ अग्नि होत्र करो। इसमें धर्म, अर्थ, और काम का नाश करने वाले कषाय (क्रोध, मान माया और लोभ) रूपी दुष्ट पशुओं का होम कर शान्तिमंत्र की आहुतियां देकर बुद्धिमान पुरुषों द्वारा विहित यज्ञ करो।

इसी धार्मिक भावना का अलख 'उत्तराध्ययन' सूत्र के बारहवें अध्ययन में भी प्रतिबिम्बित है—तप रूपी अग्नि है जीव अग्नि का स्थान है। मन, वचन और काया के शुभ व्यापार कुड़छी रूप

---

१ ये खास दिन (अगते) निम्नलिखित हैं—
महाशिवरात्रि, रामनवमी, महावीर जयन्ती, गणतन्त्र दिवस, तीस जनवरी, बुद्ध जयन्ती, गणेश चतुर्थी, ऋषिपंचमी, कृष्ण जन्माष्टमी, अनन्त चतुर्दशी, पन्द्रह अगस्त, गांधी जयन्ती, कार्तिक कृष्णा १५ (दीपमालिका), और कार्तिक शुक्ला १५। —सम्पादक

हैं। शरीर तप रूप अग्नि को उद्दीपन करने के लिये कंडा रूप है, अष्ट कर्म लकड़ी रूप हैं। संयम के व्यापार पाप-शमन के लिये शान्ति पाठ रूप है। इस प्रकार मैं ऋषियों द्वारा प्रशंसा किया गया, सम्यक् चारित्र रूप होम करता हूं।

पर व्यवहार मे ऐसा न होकर धार्मिक पूजा के सार्वजनिक स्थानों पर बलि का आयोजन कर लोग अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठे। वस्तुतः वह बलि प्रथा एक प्रकार की हिंसा ही है।

भगवान महावीर के इस निर्वाण वर्ष मे इस बलिप्रथा पर रोक लगाने के लिये पिछले दो वर्षों से निरन्तर प्रयत्न हो रहा था। श्री भीमसेन चौधरी ने सन् १९७३ मे राजस्थान पशु एवं पक्षी बलि निषेध विधेयक राज्य विधानसभा मे प्रस्तुत किया था जो बाद मे १५ सदस्यीय प्रवर समिति को विचारार्थ सौंप दिया गया था। प्रवर समिति ने चार बैठकें आयोजित की। उसकी सिफारिश के आधार पर यह बिल २९ मार्च १९७५ को राज्य विधान सभा मे पारित किया गया। अब यह अधिनियम बन गया है। इस बिल के मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं।

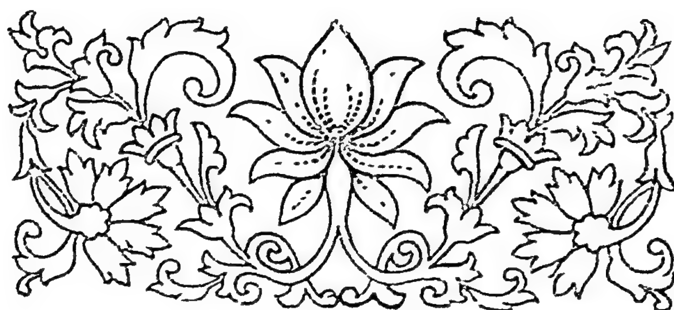
१. राजस्थान राज्य मे मंदिरो के अन्दर अथवा मन्दिरों के परिसर मे अथवा धार्मिक पूजा के सार्वजनिक स्थानो मे पशुओ एवं पक्षियो की बलि निषिद्ध कर दी गई है।

२. 'बलि' से अभिप्रेत है किसी देवी देवताओ को प्रसन्न करने के इरादे अथवा प्रयोजन मे किसी पशु अथवा पक्षी को मारा जाना अथवा उसका अंग-भंग किया जाना।

३. न तो कोई व्यक्ति किसी भी पशु अथवा पक्षी की बलि देगा और न ही किसी को बलि देने में सहायता प्रदान करेगा।

४. जो कोई इसका उल्लंघन करेगा अथवा उल्लंघन किये जाने के लिये सहायता अथवा दुष्प्रेरणा करेगा, अपराधी ठहराये जाने पर छह माह तक की जेल अथवा पांच सौ रुपये तक का जुरमाना अथवा दोनो से एक साथ दण्डित किया जा सकेगा।

राजस्थान राज्य ने यह विधेयक पारित कर बहुत ही महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य किया है। यह विधेयक एक प्रकार से प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भाव का मांगलिक दस्तावेज है।



५० | नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण मे जैन धर्म की भूमिका

०

[१]
अहिंसा का प्रभाव

श्री मधुकर मुनि

भारतवर्ष मे अहिंसा का सर्वतोमुखी प्रचार व प्रसार जितना जनधम ने किया है, उतना किसी अन्य धम न किया हो, यह मेरी जानकारी मे नही है। अहिंसा के दो विभाग हैं—एक निषेध रूप और दूसरा विधि रूप। न+हिंसा=अहिंसा, यह अहिंसा का निषेध रूप है। किसी भी प्राणी के प्राणो का हनन नहीं करना व किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार की पीडा न पहुचाना-आदि सिद्धात अहिंसा के इस विभाग के अतगत हैं। अहिंसा का दूसरा विभाग जो विधि रूप है वह यह है-दया, अनुकम्पा, विश्व प्रेम व प्रति-प्राणि मगल कामना आदि। सर्वे सुखिन सन्तु' व 'जीओ और जीने दो' ये दोनो सिद्धात भी अहिंसा के विधि रूप विभाग के ही फलितार्थ हैं। ससार के सभी प्राणी जीना चाहते हैं। मृत्यु को चाहने वाला कोई भी प्राणी नही है, अत किसी भी प्राणी का वध मत करो व उसे मत सताओ—यह अहिंसा के निषेध रूप विभाग का अमर उद्घोष है। अपना सवस्व समर्पित करके भी मरते हुए या किसी के द्वारा मारे जाते हुए प्राणी का सरक्षण करो व प्रत्येक प्राणी के साथ सहानुभूति रखो—यह अहिंसा के विधि रूप विभाग का सुमधुर सन्देश है। अहिंसा के ये दोनो सिद्धात जन धर्मावलम्बियो के जीवन के अणु अणु मे उतर आए थे, इसलिए जन धम की छाप यत्र, तत्र, सवत्र असीमित रूप म पडी थी।

यज्ञ म होने वाली पशु बलि को रोकने का प्रयास विशेषत जन धम ने ही किया था। जन जन पर भी जन धम का ऐसा प्रभाव पडा कि उनके मानस म भी याज्ञिक हिंसा के प्रति अनास्था हो गई।

आज जो यह राजस्थान है, इसम अनेक रियासतो का विलीनीकरण हुआ है। यहाँ की प्राय सभी रियासतों मे जनो की खासी अच्छी बस्ती रही है। अपने सुमधुर स्वभाव के कारण जन धर्मावलम्बियों का जनतर लोगो पर गहरा प्रभाव पडा है। यही कारण है कि अद्यावधि निम्नस्तर के लोग

भी किसी भी प्राणी को मारते हुए हिचकिचाते रहते हैं। जहा अन्य देशों के लोग सर्प बिच्छू आदि जहरीले जन्तुओ को देखते ही मार डालते हैं, वहा राजस्थान के निम्नस्तर वाले लोग भी ऐसे जन्तुओं को पकड कर दूर फेंक देते है परन्तु उनका वध कभी नही करते।

मरुधरा राजस्थान का एक प्रान्त है। यहा की 'ओसिया' नगरी में ओसवाल सघ की स्थापना हुई थी। ओसवाल सघ अर्थात् जैनो का एक विशिष्ट सघ। इस संघ मे प्रवेश पाने का अधिकार उन व्यक्तियों को मिला था जो मदिरा, मास, व रात्रि-भोजन का परित्याग करने के लिए तैयार थे। अनेक प्राणियो के सहार पर ही मदिरा बनती है। पचेन्द्रिय प्राणियो के वध से ही मांस-भोजन तैयार होता है और रात्रि-भोजन में अनेक जीव-जन्तुओ का सहार सुनिश्चित है। अतः इस सघ में प्रवेश पाने के अभिलाषियो का मदिरा, मांस व रात्रि-भोजन का परित्याग करना अतीव आवश्यक था, परन्तु यह त्याग सरल नही था। फिर भी इस कठिन तप-त्याग को स्वीकार कर सहस्रश: व्यक्तियो ने इस संघ में प्रवेश किया। यह जैन धर्म की एक बहुत बड़ी विजय थी। जो इस सघ में अपना स्थान नहीं बना सके, वे भी जैन धर्म से इतने प्रभावित हुए कि मदिरा, मांस की ओर तो उनकी अरुचि बढी ही, वे साथ में रात्रि-भोजन से भी घृणा करने लगे।

अन्य देशों की अपेक्षा राजस्थान विशेषत: जैन मुनिराजो की विहार-स्थली बनी हुई है। इस भूमि में विचरण करने वाले मुनिराजो ने स्थान-स्थान पर प्राणी-वध को रुकवाया है :

एक समय था, राजस्थान में वर्षों से जागीरदारी प्रथा थी। जागीरदार प्रायः राजपूत लोग ही होते थे। छोटे-मोटे जागीरदारो पर जैन मुनिराजो का अच्छा प्रभाव था। उनके उद्बोधक उपदेश से अनेक जागीरदारो ने पर्व तिथियो पर शिकार खेलने व अन्य जीवहिंसा का परित्याग कर दिया था। कुछ जागीरदार तो ऐसे भी रहे कि उन्होने अपने अधिकृत क्षेत्र में सर्वथा जीव-हिंसा का निषेध कर दिया। वर्षावास काल में सूक्ष्म जीवो की उत्पत्ति विशेष रूप से होती है। इसलिए ऐसे समय में अतिहिंसाजनक कर्मों से दूर रहना, अहिंसा (जीव-दया) का एक सूत्र है। घाणी चलाना, भट्टी जलाना आदि अति-हिंसाजनक कर्म माने गए हैं। जिन लोगो को ये कर्म आजीविका के साधन थे, वे लोग भी इन दिनो में अपनी आजीविका के साधनभूत इन कर्मों से विरक्ति लेते थे। आज भी यत्र-तत्र यह प्रणाली प्रचलित है। इसमें जैन लोगो का सुमधुर व्यवहार व प्रभाव ही काम करता था।

देवी-देवताओ के स्थान पर होने वाला पशु-वध भी जैनों के प्रभाव से अनेक स्थानों पर रुका है।

होली के दिनो में राजस्थान के कुछ प्रान्तो में एक सामूहिक शिकार 'आहेडा के नाम से हुआ करती थी। निम्न जाति के पहाडी लोग एक बहुत विशाल समूह के रूप में एकत्रित होकर, चारो ओर से पहाड को घेर कर उसमें घूमने वाले हिरण, खरगोश आदि वन्य पशुओं को बडी बेरहमी से मारते थे। जैनो के सतत प्रयासो से यह क्रूरतम कर्म भी काफी अंशों में रुक गया है। ऐसे अनेक जीव दया के कार्य हैं, जो जैनो द्वारा राजस्थान में किये गए हैं। सचमुच यह जैन धर्म की राजस्थान को एक महान् देन है।

[२]
जागरण की दिशा

डॉ० नरपतचन्द सिंघवी

जागरण का अथ है—कर्मक्षेत्र मे अवतीण होना और कमक्षेत्र क्या है ? जीवन सग्राम। सामाजिक जागरण से इस सदभ म अभिप्राय है—सामाजिक कुरीतियो का उन्मूलन कर, मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करना, मनुष्य मात्र के हित के लिए सघप करना। जैन समाज ने इस दृष्टि से अप्रतिम योगदान दिया है। प्रेम और करुणा, आत्म निग्रह और सयम, नतिकता तथा सदाचार आत्मविसजन और आत्मसमपण आदि उदार मानवीय भावो को अपने मे समाहित कर जन समाज ने राजस्थान के जन जीवन मे नई चेतना का सचार किया और मानव-मुक्ति, समता समानता, भ्रातृत्व जसे मधुर आदर्शों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया।

राजस्थान म जैन साधुओ एव श्रावको ने सामतीकारा से शूद्र और नारी को मुक्त कर तथा उन्हे नया व्यक्तित्व देकर, भगवान् महावीर के आदर्शों एव सिद्धातो का पालन करते हुए अस्पृश्यता वण भेद तथा धार्मिक और सामाजिक जडताओ से जीवन को उबारकर अपने समाज सुधारक व्यक्तित्व का परिचय दिया। रस्किन के शब्दो मे वही समाज सदा सुखी रहता है जिसने नतिक गुणों को अपने जीवन मे आत्मसात् कर लिया है। जन समाज ने भगवान् महावीर द्वारा दी गई आचार-सहिता के पाच व्रतो—१ अहिसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचय व ५ अपरिग्रह का पालन करना अपने जीवन का ध्येय समझकर अहिंसामूलक सस्कृति का निर्वाह करते हुए वैचारिक एव व्यावहारिक सघप को टाला तथा सामाजिक जीवन म परस्पर सौहाद बनाए रखने का सद्प्रयत्न किया।

जैन समाज मे भी दो बडी श्रेणिया हैं—एक, जिनके पास भूख से अधिक भोजन है और दूसरी वह जिसके पास भोजन से अधिक भूख है। जैन मतावलम्बी—चाहे वह किसी सम्प्रदाय का हो यदि अपरिग्रह के व्रत का सच्चा अनुयायी है तो अपनी उदारता एव दानशीलता का परिचय दुबल वग की आर्थिक सहायता कर प्रस्तुत करता है। जयपुर अजमेर एव जोधपुर क्षेत्रो में अनेक ऐसी सस्थाए हैं जो अथ से कमजोर वर्ग की सहायता कर अपने को कृताथ समझती हैं।

भगवान महावीर ने श्रावको की आचार सहिता मे श्रावक के लिए चार प्रकार के दानो का विधान किया है—१ औषधिदान २ शास्त्रदान ३ अभयदान और ४ आहारदान। राजस्थान के प्राय प्रत्येक जिले मे जैन समाज ने औषधालय तथा चिकित्सा-गृहो की स्थापना कर प्रत्येक जाति के लिए नि शुल्क चिकित्सा तथा स्वास्थ्य-सेवा की व्यवस्था उपलब्ध करा कर नये कीर्तिमान स्थापित किए हैं। राजस्थान में जन समाज द्वारा सचालित महाविद्यालय, विद्यालय, छात्रावास, पुस्तकालय आदि सैकडो की सख्या में हैं। इससे व्यावहारिक एव नतिक शिक्षण को बडा बल मिला है। जयपुर उदयपुर, अजमेर, बीकानेर, जोधपुर आदि नगरो में जैन-समाज द्वारा स्थापित अनेक ट्रस्ट हैं जो प्रति वष कई लक्ष रुपया की छात्र वृत्ति प्रदान करते हैं। जन-श्रावको द्वारा आहार दान की परम्परा आज भी प्रचलित है। बाढ, अकाल, भूकम्प आदि प्राकृतिक विपत्तिया के अवसर पर वे कल्याणकार्यों में मुक्तहस्त से सहयोग करते हैं। राजस्थान के प्रमुख नगरो में सावजनिक उपयोग के लिए प्याऊ कूप धमशालाए आदि के निर्माण की परम्परा जनियो द्वारा आज तक निभायी जा रही है।

जर्मन दार्शनिक गेटे के मतानुसार सबसे अधिक सुखी समाज वह है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति परस्पर हार्दिक सम्मान की भावना रखता है। जैन-समाज पारस्परिक सौहार्द की भावना रखता है। पापकर्म से यथासम्भव दूर रहना, निरन्तर पुण्य में तत्पर रहना, अच्छी मनोवृत्ति रखना और शुभाचरण करना, जन-कल्याण के साधनो को अपनाना, सत्य का अन्वेषण करना तथा व्यापक और सामञ्जस्यपूर्ण जीवन-बोध करना एव कराना—इन उत्तम साधनो को व्यवहृत कर जैनसमाज सामाजिक जागरण की भूमि तैयार करने में अधिकाशतः लगनशील रहता है। स्वानुभूत सत्य और आत्म-चिन्तन की प्रतिष्ठा कर सामाजिक सुधार को जैन-समाज मूल स्वर प्रदान करता है। जैन-समाज ने भारतीय इतिहास के प्रत्येक काल में साधारणतया परन्तु आधुनिक काल में विशेषतया, सुधारवादी धार्मिक और सामाजिक सस्थाएं एव सस्थान स्थापित किए और मानव मात्र के जागरण एव कल्याण के स्वर निनादित किये। जैन साधु-सतो ने मनुष्य मात्र की व्यथा समझने, मानव की मुक्ति का उद्घोष करने तथा प्राणी मात्र के प्रति आत्मीयता की भावना का विकास करने की प्रेरणा प्रदान की। जैन-मतावलम्बियो ने समय-समय पर सती-दाह, बाल-हत्या, नर-बलि, पशु-बलि, यज्ञ, कर्मकाण्ड, बाल-विवाह, मृत्युभोज विवाह में फिजूलखर्ची जैसी कुरीतियो के विरोध में स्वर बुलन्द किया और इनसे यथासम्भव दूर रहने की प्रतिज्ञाएं की।

जन साधारण की यह सामान्य मान्यता है कि जैन-समाज एक सम्पन्न, धनाढ्य समाज है और यह मान्यता अधिकाशतः उचित ही है क्योकि जैन-समाज निर्व्यसनी है तथा इसके नव्वे प्रतिशत सदस्य संयमी हैं। महावीर के अनुयायी हर युग में जनमानस में आत्म-विश्वास और मानववादी स्वर की दृढता का संचार करते रहे हैं। उन्होने सदैव सामाजिक जागरण में नैतिकता और धर्म का समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की, श्रम की महत्ता प्रतिपादित की, अस्पृश्यता-निवारण तथा नारी-मुक्ति की जोरदार अपील की। दलित और पीडित के प्रति अनन्त सहानुभूति के द्वार खोले, जीवन-मूल्यो की नैतिक स्थापना की, धार्मिक अन्धविश्वास और जडता से मुक्ति की कामना की, दरिद्रता के प्रति क्षोभ प्रकट किया तथा मानव अधिकारों के सजग प्रहरी की भूमिका अदा की। अपनी दुर्बलताओ एवं सीमाओ के बावजूद भी जैन-समाज ने राजस्थान में सामाजिक जागरण को विशेष स्वर प्रदान किया।

साधक के लिए सबसे बड़ा प्रतिबन्ध कीर्ति की चाह है। जैन-साधको ने सदा ही यश या कीर्ति की मृगतृष्णा में भटकने से अपने को बचाया है तथा जैन श्रावकों ने उत्तम साध्य के लिए सदैव उत्तम साधन ही अपनाये। व्यापक सामाजिक बन्धुत्व और उदार धार्मिक वातावरण मे जैन समाज ने राजस्थान मे सामाजिक जागरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है, यही आज का विश्वास है और जैन-समाज मानव-गरिमा की प्रतिष्ठा मे भविष्य में क्रातिदर्शी भूमिका निभायेगा, यही कल की आशा है।

[३]

जैन संतों का योग

श्री मिट्ठालाल मुरड़िया

त्याग, बलिदान, स्वदेशप्रेम और वीरता मे राजस्थान का गौरव सर्वोच्च रहा है। साधु-सतो का सम्मान भी यहा कम नही हुआ है। श्रमणो की अमृत वाणी और वैराग्य भावनाओ से यहा का

प्राचीरें और किले आज भी गूंज रहे हैं। यहा की एक एक ईंट और एक-एक पत्थर म वीरता के भाव व्याप्त हैं। यहा का कण कण वीरता की कहानी कहते सुनाई देता है। युद्ध और प्रेम के आख्यान आज भी उत्तग घाटियो और मैदानी तलहटियो में प्रतिध्वनित हो रहे हैं। यहा के वीरो ने सचमुच जीवन और मृत्यु को खेल ही माना है। यह खेल यहा के राणा जीवन भर खेलते रहे। यहा की वीर नारियें भी कम नही थी। वीरो का सम्मान कर वीरता को आदर देना यह उन्होंने धार्मिक-व्रतो से सीखा था। इसी वीर भूमि न पन्नाधाय जसी वीर माता को जन्म दिया जिसन छाती पर पत्थर रखकर, अपने लाडले लाल का नगी तलवार से टुकडे करते देखकर भी, चू नही किया और मेवाड की वश परम्परा कायम रखने के लिए उदयसिंह की रक्षा की थी। इसी भूमि मे मीरा ने अपनी भक्ति साधना का प्रेम स्त्रोत बहाकर सारे रेगिस्तान को हरा भरा कर दिया। सन्तो के सामीप्य क कारण मीरा की भक्ति भावना वढी चढी थी। मीरा प्रेम सदन की नही भक्ति मन्दिर की साधिका थी। मीरा के भजनो की स्वर लहरिया आज भी देश मे लहरा रही हैं।

जनता युद्ध की विभीषिकाओ से परेशान थी। सुख का नाम नही था ऐसे समय समाज का जागरण कसे होता ? उनकी आशा आकाक्षाओ को सम्मान कहा मिलता ? पर जन सत इस विकट परिस्थिति म भी नीति और धर्म का उपदेश देते हुए ग्रामानुग्राम विचर रहे थे, साधारण जनता का भय दूर कर, अहिंसात्मक कथाए सुनाते हुए आगे बढ रह थे। तप त्याग की छाप डालकर उन्हे व्रत नियम दिलवा रहे थे। एक तरफ युद्ध का आतक था, दूसरी ओर धम का शान्ति सदेश। एक ओर अशान्ति थी और दूसरी ओर धम की मगलवाणी। यह सन्तो के उपदेश का ही परिणाम था कि कोई राजा किसी निहत्थे शत्रु पर वार नही करता था। धम का यह सकल्प वे जीवन पयन्त पालते रहे।

जहा यह वीर भूमि सकल्प और आन-बान और शान के लिय प्रसिद्ध रही है। वहा यह धरा अधविश्वास, भरू भवानी, जादू टोना, मन्त्र-तन्त्र और अशिक्षा मे ग्रस्त भी रही हैं। अधविश्वास के कारण कई माताए दिन दहाडे ठगी जाती थी। शिक्षा की दिशा म राजस्थान इतना पिछडा था कि अन्य राज्यो की तुलना में इसकी स्थिति विशेष चिन्तनीय थी। किसानो भीलो, मीणो, जाटो, लुहारा मेहतरों और रेगरो का बुरी तरह शोषण होता था। कही कही तो एक कुल्हाडी का मूल्य नही चुकाने पर ब्याज दर ब्याज से भैंस तक देनी पडती थी। एक धोती के बदले २ बीघा जमीन और ५) पाच रुपये के बदले २ गाडी गेहूँ देन के उदाहरण आज भी सुनने म आते हैं।

राजाओ की ज्यादती, ठाकुरो की मनमानी, मेणो का आतक और पुलिस की जोरजबरदस्ती से जनता परशान और भयभीत थी। उनकी बात को टालने पर खडे खडे कोडे लगवा दिये जात थे। किसानो की चार मास की खरी कमाई का अनाज लूट लिया जाता था। बिचारा किसान कडी मेहनत करने के बाद भी, अपने बच्चा सहित भूखा ही सोता था।

इस आतक से समाज म हाहाकार मचा हुआ था। शासको की लापरवाही से प्रजा पीडित थी मगर साधारण जन कुछ नही कर सकता था। मौत का भय सदा उनके सिर पर मडराता रहता था। ऐसी स्थिति मे जन श्रमणो ने राजाओ को बोध देकर जनता की भलाई की ओर उनका ध्यान

खींचा । इधर देश मे आजादी की लहर उमड़ रही थी । फिर, भला राजस्थान इस लहर से कैसे अछूता रहता ? राष्ट्रीय जागरण से लोक मानस का आलस्य टूटा । सभी ओर से अन्याय के खिलाफ बगावत होने लगी । देशप्रेम की लहर के साथ ही साथ सामाजिक जागरण की चेतना जगी । शिक्षा प्रसार से अंध विश्वास टूटने लगा । भैरू-भवानी का प्रभाव मिटने लगा और सामाजिक बुराइयां कम होने लगी । राष्ट्रीय आन्दोलनो, बुद्धिजीवियो के आह्वान और जैन सन्तों के शिक्षात्मक उपदेशो से सामाजिक कुरीतियो के बन्धन ढीले पड़ने लगे । जनता सन्तो के जीवन के निकट आकर व्रत-उपवास, धर्माराधन आदि करने लगी ।

इधर संतो ने कहा कि एकता से ही समाज का जागरण सम्भव है । जब समाज की जागृति हो जायगी तो फिर धीरे-धीरे समाज का नैतिक उत्थान भी होगा । सन्तो ने गाव-गांव, नगर-नगर घूम कर बोध दिया कि बाल-विवाह न्यायोचित नही है । इससे धन, जन और स्वास्थ्य की बर्बादी के साथ देश का गौरव घटता है । विधवाओ का जीवन कष्टपूर्ण था । पति की मृत्यु के बाद वे घर के परकोटे से बाहर नही जा सकती थीं । समाजोत्थान से विधवाओ के प्रति आदर भाव बढ़ा और उनमे सुषुप्त नारीत्व का तेज जागृत हुआ । वे समाज-सेवा के कार्यों मे सक्रिय हुई । बार बार साधु-सन्तो के आगमन से गावो मे धूम मचने लगी । समूचा राजस्थान जाग उठा, ललकारे और हुंकारें होने लगी, उत्साह और जोश एक साथ उमड़ पड़ा । ज्यो-ज्यो सन्तो के उपदेशों से सामाजिक जागरण और नैतिक उत्थान होने लगा, त्यों-त्यो व्रत, उपवास और धर्मोपासना बढ़ने लगी । समाज सुधार की मगल भावनाओ का प्रभावोत्पादक असर डाकुओ, लुटेरो पर पड़ा । वे सन्तो के निकट आकर धर्म लाभ लेने लगे । चोरो ने चोरी न करने, शराब न पीने और मास न खाने का सकल्प लिया और भविष्य मे आम जनता की तरह उज्ज्वल जीवन जीने में उनका विश्वास जमा ।

जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी म० एक ऐसे निर्गन्थ थे जिन्होने सामाजिक जागरण और नैतिक उत्थान के लिये जो कार्य किया, राजस्थान उनकी सेवाओ को कभी विस्मरण नही कर सकेगा । उन्होने जनता को सरल भाषा मे उपदेश दिया जो सामाजिक रूढ़ियां तोड़ने और अन्धविश्वास दूर करने मे कारगर सिद्ध हुआ । अपने शिष्यो के बहुत बड़े समुदाय के साथ पैदल घूम-घूम कर इस निर्गन्थ ने दया और करुणा की, प्रेम और सत्य की जो ललकारें की, उससे राजाओ का आलस्य टूटा और वे सन्मार्ग गामी बने । इनके प्रभाव से लाखो व्यक्तियो ने शराब, मास, बीडी, सिगरेट और जीव हिंसा छोड़ी तथा वे उत्तम मार्ग के राही बने । इनके व्याख्यानो में राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार, हाकिम, सरदार, ठाकुर, नाई, धोबी, कुम्हार, मुसलमान, मीणा और बोरे सभी आकर अपने जीवन को धन्य बनाते थे । राजस्थान की दलित जाति के नैतिक उत्थान मे इनका जो सहयोग रहा है, वह कभी भूला नही जा सकेगा ।

स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहर लालजी म० ने लोक कल्याण के लिए थली प्रान्त को विशेषतः अपना विहार-क्षेत्र बनाया, जनता में आत्म जागृति कर मगलमयी भावनायें फैलाईं । उनका कहना था कि लोग साहस पूर्ण तरीको के साथ सम्मान पूर्वक जीवन व्यतीत करें और अपना कार्य ईमानदारी के साथ करें । जीवन के प्रत्येक व्यवहार में विवेक और धर्म को न छोड़े । अच्छे कपड़े पहिनने और अलकारो से लदने से ही व्यक्ति बड़ा नही बनता । बडे बनने के लिए गुण आवश्यक हैं । व्यक्ति अपने आत्मीय गुणो से ही बड़ा बनता है । वे राष्ट्रीय विचारो के क्रातिकारी संत थे । उन्होने स्वातन्त्र्य

सग्राम में जुटे रहने की प्रेरणा दी । वे सत्याग्रह और स्वदेशी आंदोलन के बडे हिमायती थे । खादी पहिन और राष्ट्र धम को महत्त्व देकर उन्होंने राष्ट्रीय भावना के विकास में बडा योग दिया ।

स्वर्गीय आ० श्री गणेशलालजी म०, आचाय श्री हस्तीमलजी म० मरुधर केशरी, श्री मिश्रीमलजी म०, श्री पूरणमलजी म०, स्व० श्री समरथ मलजी म०, आचाय श्री नानालालजी म० आचाय श्री तुलसी आदि का नाम भी राजस्थान के नतिक उत्थान में विशेष उल्लेखनीय हैं ।

इस दिशा में साध्वियो का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है । समाज को माग दशन देने, बुराइया निकालने, बहिनो को जगाने व उनमें आत्म विश्वास पदा करने में साध्वी समुदाय के योग को कभी विस्मृत नही किया जा सकता ।

आत्म कल्याण के इन पथिको को किसका भय ? जो दूसरो को भयभीत करते हैं, वे सदा भयभीत होते हैं, जो दूसरो को डराते हैं, व सदा डरते हैं किन्तु जो निडर होते हैं उन्हें डरने की आवश्यकता नही रहती है ।

राजस्थान में जन निग्र थो ने समाज-जागरण और नतिक उत्थान का जो अभूतपूर्व कार्य किया, सरकार सैकडो अफसरो को नियुक्त कर लाखो रुपये व्यय करके भी यह काय नही कर सकती थी । जनता में जो आज सत्य, अहिंसा दया, करुणा, उपकार और प्रेम की जो भावनाए दिखाई देती हैं, वह इन सन्तो के प्रताप का ही परिणाम है । राजस्थान की कोई ऐसी जाति नहीं होगी जिसे इन सन्तो ने उद्बोधन न दिया हो ।

[४]
व्यसन-मुक्ति और सस्कार-निर्माण

श्री रिखबराज कर्णावट

यो तो इस अवसर्पिणी काल (वतमान समयचक्र) के जनो के प्रथम तीथकर श्री ऋषभदेव ने समाज व्यवस्था कायम की तभी से जन धर्मावलम्बियो द्वारा इस बात का सतत प्रयास रहा कि समाज में नतिकता का उल्लघन न हो । व्यसन सदा ही समाज की बुराई व नतिक मूल्यो के उल्लघन माने जाते रहे हैं । मद्यपान, मासभक्षण, शिकार, जुआ, चोरी, व्यभिचार तथा वेश्यावृत्ति की गणना सात कुव्यसनो में की जाती है । जन धम के सभी तीथकरो ने आत्मिक उत्थान पर अधिक बल दिया है । सासारिक सुख वभव, भोगविलास में लोगबाग न फसें, इस हेतु सदा ही उन्हें सावधान रखने का प्रयास किया जाता रहा । फलस्वरूप बुराइयो से निवृत्ति व सद्विचारो में प्रवृत्ति का उपदेश जन धर्मोपदेशक देते रहे ।

इस काल के अन्तिम तीथकर भगवान् महावीर के साधु साध्वियो, श्रावक, श्राविकाओं ने मानवों को व्यसनो से बचाकर सुपथ पर लाने का काम किया तथा आज भी उनके अनुयायी इस काम को रुचिपूर्वक कर रहे हैं । मध्य काल में अनेक जनाचार्यों ने योजनाबद्ध तरीके से यह काय किया । ओसवाल जाति की उत्पत्ति व्यसन निवृत्त समाज के रूप में ही हुई । दादागुरु रत्नप्रभ सूरि, जिनदत्त सूरि एव आचाय हरि विजयसूरि आदि ने सामूहिक स्तर पर इस काय को सम्पन्न किया । वस्तुत सभी जन धर्मोपदेशक लोगो से व्यक्तिगत सम्पर्क रखकर उन्हें व्यसन मुक्त करने में लगे हुए हैं । इसी

शताब्दी मे प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर मुनि श्री चोथमलजी महाराज ने राजस्थान व मालवा मे राजवर्गी लोगो, जागीरदारों व नरेशों से संपर्क कर, स्थान-स्थान पर अगते (व्यसन मुक्त दिन) रखवाने के घोषणा-पत्र जारी करवाए और व्यसनों में फंसे सहस्रों लोगों को व्यसनों का त्याग करवाया। स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज ने महात्मा गांधी से संपर्क कर राष्ट्र उत्थान हेतु गांधीजी के परामर्श के अनुसार सहस्रो लोगों को सदाचार से रहने का व्रत दिया। अन्य अनेक सतो ने भी अपना समय इस काम में दिया। इन सब महान् पुरुषों के कार्य का विवरण दिया जाय तो एक वडा ग्रंथ तैयार हो जाये।

वर्तमान समय मे भी जैनों के सभी संप्रदायों के आचार्य अपने साधु-साध्वियो व अनुयायियो के माध्यम से व्यसनो के वढते हुए प्रचार को रोकने तथा व्यसन-मुक्त समाज के निर्माण मे लगे हुए हैं। इस बात को समझने के लिये कुछ थोडे से संतों व संस्थाओं का संक्षिप्त उल्लेख करना उपयोगी होगा। तेरापंथ समाज के आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत समाज की स्थापना की और अणुव्रत के माध्यम से शराब, मांस आदि कुव्यसनो के निवारण का तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना का बड़ा अभियान प्रारम्भ किया और उसका काफी असर भारत के अनेक प्रांतों मे हुआ। अभी-अभी आचार्य तुलसी की प्रेरणा से 'संस्कार-निर्माण समिति' की स्थापना हुई और स्थान-स्थान पर विशेषकर थली प्रदेश मे इस समिति की शाखायें खुली हैं। यह समिति वर्षों से पददलित एवं शोषित अनुसूचित जातियो मे जागरण व उनको व्यसनों से मुक्ति दिलाने का काम करती है। आचार्य तुलसी की आज्ञा से लगभग ६०० साधु-साध्वी तथा सैकड़ों गृहस्थ इस काम में योग दे रहे हैं।

इसी भांति स्थानकवासी जैन समाज के आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० की प्रेरणा से अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति की स्थापना हुई थी। जिसने हजारों लोगों को शराब, मांस आदि व्यसनो से मुक्ति दिलाई है और नैतिक कर्तव्यों की ओर अग्रसर किया है। स्थानकवासी समाजके ही एक अन्य आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० ने भी धर्मपाल संघ की स्थापना कर हजारों लोगों को व्यसनों से छुड़ाया है। एक अन्य मुनि श्री समीर मुनि जो ने भी वीरवाल संघ बनाकर इस दिशा मे काफी काम किया है। राष्ट्रीय विचारो के धनी मुनि श्री संतवाल जी तथा मुनि श्री नेमिचन्द्रजी ने भी व्यसन-निवारण की दिशा में बड़ा महत्त्वपूर्ण काम किया है। गुजरात और पंजाब के जैन संतों ने विशेष रूप से व्यसन-निवारण संबंधी काम को हाथ मे लेकर उसे क्रियान्वित किया है।

आज भी सभी आचार्य व अन्य साधु-साध्वी व श्रावकवृन्द व्यसन-मुक्ति व नैतिक उत्थान के काम मे दिन-रात लगे हुए है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पाश्चात्य हवा का असर हमारे देश मे जोरो से बढ रहा है। फलस्वरूप नई पीढ़ी के लोग व्यसनों की तरफ झुक रहे हैं यहां तक कि जैन जाति के युवक भी इस हवा मे प्रगतिशीलता के नाम पर, वहने लगे हैं, यद्यपि उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है, परन्तु इसका हल्ला ज्यादा है; फिर भी जैन संतों की कृपा से उनके धर्म के संस्कार पारिवारिक तौर-तरीको पर कायम है। जो लोग व्यसनों मे फंसे भी हैं तो वे प्राय: छिपे रूप मे और व्यसनो मे लिप्त होने के काम को बुरा मानते है। जो भी हो, वर्तमान मे भी जैन संतो का और उनकी प्रेरणा से जैनो का योगदान व्यसन-मुक्ति में निरंतर चालू है।

[५]
धर्मस्थानको की भूमिका

श्री सम्पतराज डोसी

सवना ने प्राणीमात्र को अहिसा, दया, इन्द्रियो एव मन का निग्रह रूप सयम, और स्वाध्याय, ध्यान, अनशनादिरूप तप को ही धम और सुख का प्रमुख उपाय बताया। धम की शुद्धि और परीक्षा के लिये किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

"निज आतम कू दमन कर, पर आतम कू चीन।
परमातम को भजन कर, सोई मत परवीन ॥"

ऐसे परमोत्कृष्ट मगल रूप धम की साधना जिस स्थान विशेष पर की जाय, उसे धम स्थानक कहते ह।

वसे स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन, मनन तथा सतकम आदि सभी क्रियायें विशेषकर आत्मा और मन से सम्बन्ध रखती हैं इसलिये कोई भी स्थान या समय इनके लिये साधक या वाधक नहीं हो सकता है फिर भी अधिकाश साधको के लिये स्थान, वातावरण और सगति का प्रभाव होना सभव है। सासारिक या घर के वातावरण म लडाई झगड़े, होहल्ला, शुभाशुभ शब्द, रूप आदि का विक्षेप रहता है पर धम स्थान मे स्वाध्याय, ध्यान, चिंतन, मनन, व्याख्यान, स्तवन आदि का वातावरण रहता है, जो साधक के लिये मन, वचन और काया के योगा को अशुभ से हटाकर शुभ की ओर लगाने मे निमित्त बनता है। जिन जिन धम स्थानो म छ काय के आरम्भ समारम्भ, या नाच गायन आदि राग-रग अथवा निंदा विकथा आदि पाप प्रवृतियो का सेवन होता हो वह स्थान भी उस समय धम स्थानक कहलाने योग्य नही रहता।

पुराने समय मे भी शख जसे प्रमुख श्रावक थे जो अपनी साधना के लिये घर से अलग पोषधशाला रखा करते थे। धम साधना मे प्रमुख निमित्त सत समागम, व्याख्यान, चोपाई, प्रश्नोत्तर आदि भी धम स्थानक मे ही ज्यादा मिल सकता है। इसके अलावा भी घर की अपेक्षा धम स्थानक मे धम साधना करने से निम्न लाभ हैं —

(१) धम स्थान म सामायिक आदि करने पर अपने ज्ञान का लाभ दूसरों को व दूसरों के ज्ञान का लाभ अपन ले सकते हैं।

(२) अच्छे क्रियावान श्रावका की सद् सगति से कुव्यसन आदि अनकों दुगुणो स छुटकारा मिल जाता है।

(३) प्रमाद वश सामायिक स्वाध्याय आदि म अनियमितता आ जाय तो धम स्थानक में हमेशा आप धम ध्यान करने वालो स पुन प्रेरणा मिलती रहती है।

(४) घर पर सामायिक, स्वाध्याय आदि करते नींद आदि भी आ सकती है पर धम स्थानक में कोई चेता भी सकता है।

(५) बहुत लोगो के साथ मे सामूहिक रूप से धर्माराधना करने से समाज मे धर्म का वातावरण बनता है।

(६) धर्म स्थानको मे यदि धार्मिक उपकरण हो, पुस्तकालय हो, तो उनकी सार-संभाल की जा सकती है नही तो उनमे कचरा जम कर दीमक आदि जानवरो से सामग्री नष्ट हो सकती है।

एक ही धर्म स्थानक मे अनेकों धार्मिक एवं सामाजिक कार्य जैसे प्रार्थना, सामायिक, स्वाध्याय, दया, पौषध, व्याख्यान, धार्मिक पाठशाला, पुस्तकालय, वाचनालय, आदि-आदि हो सकने के कारण हर छोटे या बड़े क्षेत्र मे इनका होना अत्यन्त आवश्यक है। उपयुक्त स्थान के अभाव मे हर क्षेत्र मे उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियो का सुचारु रूप से चलना संभव नही हो सकता। कई गांवो में तो धर्म स्थानको के अभाव मे ये प्रवृत्तियां रुकी रहती हैं पर कई गांवो व बडे नगरों मे अनेक स्थानक एक ही नगर मे होने पर भी उपर्युक्त प्रवृत्तियो के अभाव मे वे सूने पड़े रहते हैं। उनमे धूल ही जमा होती है सिर्फ वर्षाकाल में जब साधु-सतियो का पदार्पण होता है तभी वहां का कचरा निकलता है और कुछ चहल-पहल भी होती है। जिन-जिन गावो व नगरो मे स्थानक हैं उन-उन के श्रावक सघो के अधिकारियो को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि वहां नियमित प्रार्थना, सामायिक, स्वाध्याय, वालको के धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था तथा पर्यूषण पर्व मे स्वाध्यायियो को बुलाना तथा ग्रीष्मावकाश मे स्थानीय शिविरो का आयोजन आदि करने की व्यवस्था हो। ताकि समाज मे धर्म वातावरण बना रहे तथा स्थानको का भी उपयोग हो सके। हर छोटे से छोटे गाव मे तथा बडे-बड़े शहरो में हर मोहल्ले-मोहल्ले में एक-एक धर्म स्थानक हो और वहां नजदीक मे रहने वाले हो सके तो हमेशा, नहीं तो कम से कम रविवार, चतुर्दशी, पक्खी आदि के रोज वहां जाकर सामूहिक प्रार्थना, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि करें तो समाज में वालको, नवयुवको आदि में भी धार्मिक संस्कार पड़ सकते हैं।

धर्म स्थानक समाज और देश की वे व्यायामशालाएं है जहा जाकर बच्चे से लेकर वृद्ध तक अहिंसा, दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा, सेवा, सन्तोष, सरलता, विनय, परोपकार आदि सभी सद्‌गुणो रूप धर्म का ज्ञान व अभ्यास रूप साधना करके व्यक्ति से लेकर विश्व तक मे सच्चे सुख और वास्तविक शान्ति का वातावरण बनाया जा सकता है। स्व और पर सब के कल्याण, तथा इस जीवन मे और भवान्तर मे भी सुख-शान्ति की प्राप्ति के उपाय उपर्युक्त गुण ही हैं। इन स्थानको मे निराकार परमात्मा के साकार उपासको की सत्संगति, व्याख्यान, आदि का लाभ उपलब्ध होता है। परन्तु ये सब लाभ तभी प्राप्त हो सकते हैं जब कि स्थानक मे जाकर व्यक्ति ज्ञान या क्रिया की आराधना करें। स्थानक मे चले जाने मात्र से या खाली रूढ़ क्रियाओं तक करके सन्तोष धारण कर लेने से जीवन बदल नहीं सकता और धर्म जीवन मे उतरे विना धर्म का सच्चा सुख और वास्तविक शान्ति मिल नही सकती। बडे-बडे आचार्यों, सन्तों, महासतियां आदि के उपदेशों का उनकी संगति का लाभ इन्ही धर्म स्थानको मे प्राप्त हो सकता है। स्कूलो और कॉलेजो मे मात्र भौतिक उत्थान की शिक्षा मिल सकती है जिससे मात्र अपना या परिवार का पेट भरा जा सकता है परन्तु स्व के साथ प्राणी मात्र की कल्याण की भावना और आचरण की शिक्षा इन्ही धर्म स्थानको मे ही मिल सकती है। इनसे बढकर विश्व भर मे कोई पवित्र स्थान नही हो सकता।

कुछ प्रमुख धम स्थानकों का परिचय —वसे जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, उदयपुर, अजमेर आदि नगरो मे एक-एक मे अनेक बडे तथा छोटे स्थानक हैं तथा गाव-गाव मे गिनती की जाये तो राजस्थान म ही सकडो स्थानक हैं। पर सब का परिचय देने से तो स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन जाय। इस कारण मात्र कुछ प्रमुख धम स्थानको के नाम व सक्षिप्त परिचय ही यहां दिया जा रहा है।

जोधपुर —यहा के प्रमुख धमस्थानक इस प्रकार हैं —

(१) सवाईसिंहजी की पोल—यह स्थानक काफी बडा व पुराना है तथा इसमें "जन रत्न पुस्तकालय" भी है। इसके कुछ हिस्से मे व्यावहारिक स्कूल भी चलती है। २ ३ हजार व्यक्ति व्याख्यान का लाभ ले सकते हैं। यह धार्मिक पाठशाला के उद्देश्य से खरीदा गया था।

(२) श्री साधुमार्गी जैन ज्ञान भवन सिटी पुलिस—यह कपडा बाजार मे सिटी पुलिस के सामने है, तथा तीन मजिला बना है। श्रावक वग के धम ध्यान, दया, पौषध हेतु खरीदा गया। परठने की सुविधा छतो पर है।

(३) श्री वर्द्धमान जैन कन्या पाठशाला भवन घोडा का चौक—यह भी तिमजिला बना हुआ है। पाठशाला हेतु खरीदा व बनाया गया। धार्मिक पाठशाला भी चलती हैं। पुस्तकालय व वाचनालय के साथ स्वाध्याय सघ व वीर निर्वाण समिति का कार्यालय भी यहां है।

(४) जैन ज्ञान भवन रायपुर हाउस—यह अभी नया खरीदा गया तथा कपडा बाजार के बीच मे आम रास्त पर है। निर्माण काय चालू है। बडे व्याख्यान हाल के साथ, बडा लाइब्रेरी हाल साथ म धार्मिक बोर्डिग भी बनाने की योजना है। रात्रि मे धार्मिक पाठशाला चलती है।

(५) कपड़ा बाजार का स्थानक—यह भी कपडे बाजार म सडक पर ही है। यहां भी २५-३० व्यक्ति रोज सामायिक करत हैं। रात्रि मे धार्मिक पाठशाला भी चलती है।

(६) महावीर जैन भवन कुम्हारियावास—यह भी दुमजिला स्थानक है तथा धार्मिक पाठशाला चलती है।

(७) कोठारी भवन, सरदारपुरा—यहां भी पाठशाला चलती है तथा दुमजिला अच्छा स्थानक है।

(८) जैन भवन, नेहरू पाक, सरदारपुरा—यह भी दुमजिला स्थानक है तथा काफी बडा है।

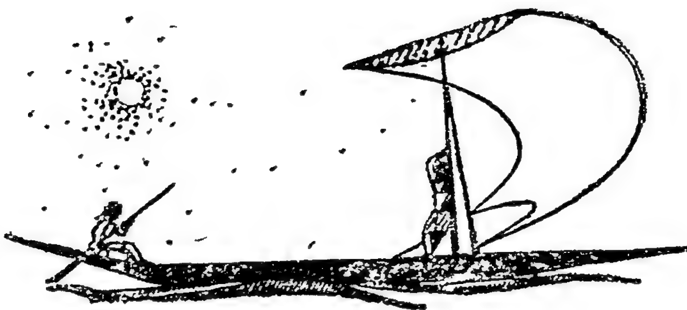
जयपुर—यहा चोडा रास्ता स्थित लालभवन प्रसिद्ध स्थानक है। यह तीन मजिला बडा स्थानक है। ३ ४ हजार व्यक्ति व्याख्यान का लाभ ले सकते हैं। आचाय श्री विनयचन्द ज्ञान भण्डार जसा विशाल हस्तलिखित सग्रहालय तथा पुस्तकालय इसी म है। यहां धार्मिक पाठशाला चलती है। १० १५ व्यक्ति रोज सामायिक स्वाध्याय म भाग लेत हैं।

यहा वारह गणगौर के रास्ते पर एक अन्य स्थानक भी है जहां साध्वियां जी म० सा० ठहरती है, तथा महिलाएं सामायिक, स्वाध्याय करती हैं। इसी से जुडा हुआ सुबोध बालिका विद्यालय है।

अजमेर—यहा लाखन कोटड़ी का तीन मजिल का काफी बड़ा स्थानक है। २-३ हजार व्यक्ति व्याख्यान श्रवण का लाभ ले सकते हैं।

बीकानेर—यहां रागड़ी मोहल्ले मे स्थित सेठिया जी की कोटड़ी नाम से प्रसिद्ध दुमजिला स्थानक है, और काफी बड़ा है।

अन्य स्थानको में सवाईमाधोपुर, आलनपुर, कोटा, भरतपुर, उदयपुर, ब्यावर, कानोड़ जैसे अनेक नगरो के काफी अच्छे स्थानक हैं। मारवाड़ मे वाड़मेर, सांचोर, जालोर, विलाडा, भोपालगढ़, बालेसर, भावी, जैतारण, हरसोलाव, मेड़ता, नागौर, खीचन, फलोदी, लोहावट, कुचेरा आदि तथा मेवाड मे देलवाड़ा, भादसोडा, डूंगला, धासा, डबोक, आकोला, फतेहनगर, बड़ीसादड़ी, सनवाड़, खैरोदा, वल्लभनगर, नाथद्वारा, कांकरोली, देवगढ़ आदि सैकड़ो स्थानक हैं।



५१ | राजस्थान मे लोकोपकारी जैन संस्थाएँ[1]

•

श्री महावीर कोटिया
डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत

जन धम लोक धम है । इसके सिद्धा त लोक-कल्याण की भावना क प्रतिबिम्ब हैं । भगवान् महावीर ने लोक सेवा को महान् धम बतलाया था । उन्होने एक ऐसे समाज का स्वप्न देखा था, जहा न केवल मनुष्य ही अपितु पृथ्वी का छोट से छोटा जीव जन्तु भी निभय रहकर अपने जीवन का आनन्द ले सके । इसलिए उन्होने अहिंसा को परम धम कहा । इस विचारधारा के अनुसार प्रत्येक समर्थ, शक्तिवान एव सम्पन्न का यह पवित्र कतव्य है कि वह समाज के असहाय, पीडित, अभावग्रस्त लोगो की सहायताथ अपनी शक्ति व धन का सदुपयोग करे और परमाथ को जीवन मे आवश्यक समझे । इस दृष्टि ने जन धर्मानुयायियो को सदा ही लोक कल्याणकारी काय करने की प्रेरणा दी है । जन साधु तथा साध्वियो ने भी धम के इस स्वरूप को श्रावको के समक्ष प्रस्तुत करते रहने का अत्यधिक महत्त्वपूण काय किया है । यही कारण है कि अनेक लोकोपकारी जन सस्थाओ के निमाण के मूल मे उन विद्वान साधुओ की सद्प्रेरणा प्रमुख रही है । एमे समय साधुओ की विद्वता, निस्पृहता और लोक सेवा भावना का श्रावक समाज मे सदव आदर व सम्मान रहा है । लोकोपकार की इस भूमि पर ही धम का सच्चा रूप प्रकट हो पाया है, धम सामाजिक बन सका है । प्रस्तुत पृष्ठो में जन धम के इस सव प्राणी हिताय सामाजिक रूप के दिग्दशन का छोटा सा प्रयास किया गया है । हमने प्रयत्न किया कि हमें अधिकाधिक सस्थाओ का परिचय प्राप्त हो सके, जो कुछ प्राप्त हो सका वह पाठको के समक्ष है ।

(क) शैक्षणिक सस्थाएँ

मन की पवित्रता व्यक्ति को स्वत ही धर्मोमुख बनाती है । जन धम इस पवित्रता को

---

1. हमारे अनुरोध पर जिन सस्थाओ एव व्यक्तियो ने अपने क्षेत्र की सस्थाओ का परिचय भेजा है उसके आधार पर यह सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है । अन्य स्रोतो से भी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है । जिनका परिचय प्राप्त नही हो सका है, उन सस्थाओ का मात्र नामोल्लेख ही किया जा सका है । फिर भी यह सम्भव है कि प्रदेश की कई सस्थाओ की जानकारी इस परिचय म आने से रह गई है । इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं ।

प्रेरणा के लिए सतत् चेष्टारत रहा है। जैन धर्म में स्वीकृत पंचाणुव्रत इसी आधार-भित्ति पर प्रतिष्ठित हैं। इसी कारण से जैन धर्म मे अध्ययन-मनन, स्वाध्याय-चिन्तन आदि को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। ज्ञान का समुचित प्रकाश पाकर ही मानव अपने स्वरूप को पहचान सकता है। अपने को पहचान कर और पाकर ही मानवतात्मा मुक्ति की राह पकड़ सकती है। जैन धर्म का प्राणीमात्र के लिए निर्दिष्ट पथ है—स्वप्रयत्नो से आत्मा को क्रमशः ऊर्ध्वगामी वनाते हुए परम लक्ष्य को प्राप्त करना, मुक्त होकर, स्वयं शुद्ध-प्रवुद्ध परमात्मा वन जाना। और कहना नही होगा, इस लक्ष्य प्राप्ति का प्रथम सोपान—आधारभूत सोपान 'शिक्षा' है, ज्ञान है। इसलिए जैन धर्मावलम्बियों में—साधु वर्ग तथा श्रावक वर्ग—दोनो मे ही स्वय ज्ञान पाने तथा ज्ञान का प्रचार-प्रसार करने की परम्परा रही है। विशेषतः जैन साधु वर्ग की दिनचर्या का अधिकतम अंश स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, लेखन तथा श्रद्धालुओ को ज्ञान वोध देने आदि मे ही व्यतीत होता है। इस पृष्ठभूमि पर जैन धर्मावलम्बियो द्वारा राष्ट्र के शैक्षणिक व सांस्कृतिक जीवन मे, उसके महत्त्वपूर्ण योगदान का चित्र स्वतः ही उभरने लगता है। जैनियो द्वारा राष्ट्र के विविध भागो मे अनेक शिक्षा-सस्थाओ का निर्माण व सचालन, पुस्तकालयो-वाचनालयो की स्थापना व संचालन अध्ययनरत छात्रो की सुविधा के लिए छात्रावासों का सचालन साहित्य का प्रणयन व प्रकाशन, स्वाध्याय, मनन व चिन्तन के लिए अन्य धार्मिक व सार्वजनिक सस्थानो की स्थापना, शास्त्र व सत्साहित्य के पठन व श्रवण की परम्परा, ज्ञान गोष्ठियो का प्रायः आयोजन, जिनका विना भेदभाव के सभी लाभ उठा सकते हैं, शिक्षण-शिविरो का आयोजन आदि अनेक प्रवृतिया हैं, जिनके माध्यम से जैन समाज देश मे व्याप्त अज्ञानान्धकार को नष्ट कर, ज्ञान की समुज्ज्वल प्रभा विकीर्ण करता रहा है। प्रस्तुत विवरण मे शैक्षणिक विकास के कार्यों मे रत राजस्थान प्रदेश की प्रमुख जैन संस्थाओ का परिचय देने का प्रयत्न किया गया है।

शिक्षा की दृष्टि से राजस्थान देश के अत्यधिक पिछडे प्रदेशो मे से था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय इतने वडे प्रदेश मे कोई विश्वविद्यालय तक नही था। राजस्थान विश्वविद्यालय की स्थापना १९४७ मे हुई। इसी प्रकार स्कूल कॉलेजो का भी अभाव था। राज्यों की राजधानियो के अतिरिक्त अन्य नगरो मे कालेज प्राय. नही थे। जिन राज्यों के विलय से राजस्थान राज्य का निर्माण हुआ है, उन सभी मे स्वतन्त्रता से पूर्व निरकुश राजतन्त्र था। ये राजागण अधिकांशतः अपने ही स्वार्थ की वात अधिक सोचते थे, जन-जागरण से तो उन्हे प्रत्यक्ष भय ही था। अतः शिक्षा के प्रचार-प्रसार मे उनकी अधिक रुचि नही रही। फलतः ग्राम अञ्चलो में तो माध्यमिक स्तर तक के विद्यालय भी प्राय तहसील केन्द्र पर भले ही थे, ग्रामो मे तो प्राथमिक पाठशालाएँ भी नही के वरावर थी। ऐसे वातावरण मे जैन साधुओ ने तथा उनकी प्रेरणा से धनी श्रावको ने जनजागरण का यह महाशख फूंका। इन लोगो के परिश्रम, सद् विचार तथा सद् प्रयत्नों ने अनेक शैक्षणिक सस्थाओ को जन्म दिया। ये सस्थाएँ आज फलफूलकर राजस्थान प्रदेश मे शिक्षा के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। आगे दी जाने वाली शिक्षा-संस्थाओ की सूची से यह तथ्य स्पष्ट है।

जैन शिक्षा-संस्थाओं को सूची

महाविद्यालय

१. श्वेताम्वर स्थानकवासी जैन सुवोध कॉलेज, जयपुर

२ बी० जे० एस० आर० जैन कॉलेज, बीकानेर
३ सोना देवी सेठिया विद्या मन्दिर (कन्या), सुजानगढ़
४ एस० पी० यू० कॉलेज, फालना
५ श्री जैन स्नातकोत्तर कालेज, बीकानेर
६ श्री जैन टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, अलवर
७ श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेज, जयपुर
८ सी० आर० जे० बी० एन० वाणिज्य महाविद्यालय, राणावास
९ श्री प्राज्ञ जैन महाविद्यालय, विजयनगर
१०, श्री वीर बालिका महाविद्यालय, जयपुर
११ श्री जवाहर विद्यापीठ स्वायत्त ग्रामीण महाविद्यालय, कानोड़।

उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

१ श्री शान्ति जैन सैकण्डरी स्कूल, ब्यावर
२ श्री दि० जैन आदर्श महिला विद्यालय, श्री महावीर जी (सवाई माधोपुर)
३ श्री के० डी० जैन हा० स० स्कूल, मदनगंज, किशनगढ़
४ श्री जैन सैकण्डरी, स्कूल, अलवर
५ श्री महावीर दि० जैन हा० स० स्कूल, जयपुर
६ श्री एस० एस० जैन सुबोध हा० सै० स्कूल, जयपुर
७ श्री श्वेताम्बर जैन सैकण्डरी स्कूल, जयपुर
८ श्री दि० जैन हा० सै० स्कूल, सीकर
९ श्री जैन हा० स०, स्कूल, बीकानेर
१० श्री जैन श्वे० तेरापंथी सैकण्डरी स्कूल चूरू
११ श्री ओसवाल सैकण्डरी स्कूल, सुजानगढ़
१२ श्री वर्द्धमान जैन सैकण्डरी, स्कूल, आसिया
१३ श्री जैन रत्न विद्यालय सैकण्डरी स्कूल, भोपालगढ़
१४ श्री महावीर हा० स० स्कूल, लाडनू
१५ एस० पी० यू० सैकण्डरी स्कूल, फालना
१६ श्री सुमति शिक्षा सदन (हा० स० स्कूल), राणावास
१७ श्री मरुधर केसरी विद्यालय (सैकण्डरी स्कूल) राणावास
१८ श्री पार्श्वनाथ सैकण्डरी स्कूल, वरकाणा
१९ श्री महावीर हा० स० स्कूल, भीलवाड़ा
२० श्री डी० सी० सेठिया उच्चतर विद्यालय, बीदासर
२१ श्री गांधी उच्च माध्यमिक विद्यालय, गुलाबपुरा
२२ श्री जवाहर विद्यापीठ हा० स० स्कूल, कानोड़ (उदयपुर)
२३ श्री गान्धी जैन हा० सै० स्कूल छोटी सादड़ी
२४ श्री वीर बालिका विद्यालय सैकण्डरी स्कूल, जयपुर

२५. श्री पद्मावती कन्या विद्यालय (सै० स्कूल), जयपुर
२६. श्री मरुधर बालिका विद्यापीठ, विद्यावाड़ी, रानी
२७. श्री दि० जैन सैकण्डरी स्कूल (कन्याएँ), उदयपुर
२८. श्री सरदार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जोधपुर

अन्य संस्थाएँ

१. श्री तेरापंथी मिडिल स्कूल, जयपुर
२. श्री महावीर विद्यालय मिडिल स्कूल, सरदारशहर
३. श्री वर्धमान जैन मिडिल स्कूल, जोधपुर
४. श्री महावीर विद्यालय मिडिल स्कूल, बूंदी
५. श्री वर्धमान जैन मिडिल स्कूल, मोतीभवन, भीलवाड़ा
६. श्री विमलसागर जैन विद्यालय, भीलवाड़ा
७. श्री पी० सी० एम० सी० जैन मिडिल स्कूल, उदयपुर
८. श्री पार्श्वनाथ जैन दि० मिडिल स्कूल, उदयपुर
९. श्री महावीर दि० जैन बालिका विद्यालय (मि० स्कूल), जयपुर
१०. श्री एल० के० एस० जैन कन्या पाठशाला, बीकानेर
११. श्री जैन केसर बालिका विद्यालय, चूरू
१२. श्री महावीर कन्या पाठशाला जोधपुर
१३. श्री भ० यशकीर्ति दि० जैन माध्यमिक विद्यालय, प्रतापगढ़
१४. श्री रमण बहिन दि० जैन कन्या शाला, प्रतापगढ़
१५. श्री फूलचन्द जैन कन्या पाठशाला, सवाई सिंह जी की पोल, जोधपुर
१६. श्री भट्टारक यशकीर्ति दि० जैन गुरुकुल ऋषभदेव (उदयपुर)
१७. श्री शान्ति वीर जैन गुरुकुल, जोबनेर
१८. श्री जैन दिवाकर प्राथमिक पाठशाला, चित्तौड़गढ़
१९. श्री गुलाब कँवर ओसवाल उच्च प्राथमिक शाला, अजमेर
२०. श्री दिवाकर बाल निकेतन, कोटा।
२१. श्री वीर जैन विद्यालय, अलीगढ़, टौंक
२२. श्री महावीर जैन विद्यालय, भरतपुर
२३. श्री जैन सुबोध बालिका विद्यालय, जयपुर
२४. श्री अकलंक दि० जैन पाठशाला, कोटा
२५. श्री दिगम्बर जैन विद्यालय, सुजानगढ़
२६. श्री फूलचन्द जैन कन्या पाठशाला, जोधपुर
२७. श्री सुबोध जैन पाठशाला, जोधपुर
२८. श्री सागर जैन विद्यालय, किशनगढ़
२९. श्री शांति जैन पाठशाला, ब्यावर
३०. श्री दि० जैन पन्नालाल एलक प्राथमिक विद्यालय, ब्यावर

३१ श्री खूबचन्द बोठिया विद्या मन्दिर, बीदासर
३२ श्री मगनज्ञान मन्दिर, गोगुन्दा
३३ श्री वर्द्धमान जैन कन्या पाठशाला, घोडा का चौक, जोधपुर
३४ श्री गांधी बालिका उच्चतर विद्यालय, बीदासर
३५ श्री जीवन कन्या पाठशाला, बीकानेर
३६ श्री सेठिया जैन कन्या पाठशाला, बीकानेर

प्रमुख सस्थाओ का परिचय

सस्थाओ का विस्तृत परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया था। जिन सस्थाओ का परिचय हम प्राप्त हो सका उनका परिचय आगे के पृष्ठो मे दिया जा रहा है। परिचय का क्रम है—महाविद्यालय, उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय तथा अन्य सस्थाएँ।

(१) महाविद्यालय

१ श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सुबोध महाविद्यालय, जयपुर—इस सस्था की स्थापना श्री माधव मुनि जी की प्रेरणा से सन् १९२५ मे एक प्राथमिक पाठशाला के रूप मे हुई। सन् १९३४ मे माध्यमिक विद्यालय, १९४४ मे हाई स्कूल, १९५४ मे इण्टर कॉलेज तथा सन् १९६१ मे स्नातक स्तर तक के महाविद्यालय मे क्रमोन्नत होकर यह नन्हा पौधा आज जयपुर नगर की प्रमुख शिक्षा सस्था के रूप मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सस्था का जौहरी बाजार मे विशाल भवन है तथा अब कॉलेज विभाग का नया भव्य भवन रामबाग सर्किल के पास निर्मित हो चुका है। सस्था का सचालन एक समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री सिरहमल नवलखा हैं। मन्त्री के रूप मे स्व० श्री सिरहमल जी बम्ब की सेवाएँ कई वर्षों तक मिलती रही। वर्तमान मे आचार्य श्री नथमल गोलेछा हैं। आचार्य के रूप मे श्री बालचन्द वैद्य की सेवाएँ इस सस्था के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण रही हैं।

२ श्री पार्श्वनाथ उम्मेद महाविद्यालय एव श्री पार्श्वनाथ उम्मेद माध्यमिक विद्यालय फालना—उक्त सस्थाएँ श्री पार्श्वनाथ उम्मेद जैन शिक्षण सघ, फालना के द्वारा सचालित हैं। इस सस्था की स्थापना श्री विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज की प्रेरणा से हुई। सस्था की स्थापना उम्मेदपुर मे हुई थी परन्तु १९४२ की बाढ मे क्षतिग्रस्त हो जाने के बाद यह सस्था फालना मे स्थानान्तरित हो गई। सस्था १९४७ मे मिडिल स्कूल, १९४८ मे हाई स्कूल, १९५१ मे इण्टर कॉलेज तथा १९५८ मे डिग्री कॉलेज के रूप मे विकसित होकर इस प्रदेश के विद्यार्थी वर्ग की सेवा करती रही हैं। वर्तमान मे सस्था महाविद्यालय एव माध्यमिक विद्यालय की दो पृथक इकाइयो का सचालन करती है तथा साथ ही दोनो सस्थाओं के निजी छात्रावास भी हैं। सघ की वर्तमान कार्यकारिणी मे सघवी कुन्दनमल जी पारेख अध्यक्ष तथा सघवी मोहनलाल जी बाफना जी मन्त्री हैं।

३ श्री रामपुरिया जैन महाविद्यालय, बीकानेर—शिक्षा प्रेमी, व्यवसायी स्व० श्री भवरलाल जी रामपुरिया द्वारा २९ जुलाई १९३४ को अपने आदरणीय पितामह श्री सेठ बहादुरमल जी पिता सेठ जसकरण जी एव पितृव्य सेठ श्री सिद्धकरण जी की स्मृति मे बी० जे० एस० रामपुरिया

जैन स्कूल के रूप मे एक माध्यमिक शाला की स्थापना की गई। उन्होने प्रारम्भ मे संस्था के लिए १½ लाख रुपये से एक ट्रस्ट की स्थापना की। इसके अतिरिक्त इसकी उन्नति मे वे समय-समय पर मुक्त-हस्त से दान देते रहे। इसी कारण यह विद्यालय एक वर्ष के अनन्तर हाई स्कूल मे क्रमोन्नत हुआ। सन् १९४५ मे यह सस्था इण्टर कॉलेज बनी। इस अवसर पर भी सेठ साहब ने एक लाख रुपये का अतिरिक्त दान देकर कॉलेज ट्रस्ट को २½ लाख रुपये का बना दिया। सन् १९५६ मे इस सस्था ने डिग्री कॉलेज का स्वरूप प्राप्त किया। प्रारभ मे इसमें वाणिज्य संकाय की कक्षाएँ ही प्रारंभ की गई थी। सन् १९६१ मे कला संकाय की तथा सन् १९७३ मे विधि संकाय कक्षाएँ भी इसमे चालू हो गई है। इस प्रकार आज यह महाविद्यालय वाणिज्य, कला एवं विधि संकाय के लगभग ८०० विद्यार्थियो को शिक्षा प्रदान कर रहा है। बीकानेर नगर के शिक्षण-क्षेत्र में इस महाविद्यालय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा-स्तर एव परीक्षा परिणामो की दृष्टि से भी यह प्रारंभ से ही उल्लेखनीय संस्था रही है। सस्था के विकास मे स्व० श्री शिवकाली सरकार का प्राचार्य के रूप मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। वर्तमान मे इसके मन्त्री श्री युगराज सेठिया है।

४. श्री आदिनाथ जैन शिक्षण संस्थान, अलवर—श्री आदिनाथ जैन शिक्षण सस्थान, अलवर द्वारा श्री जैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय एव श्री जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय का संचालन हो रहा है।

संस्था ने सन् १९०० मे समाज के छोटे बालको को धार्मिक शिक्षा देने की दृष्टि से एक शाला की स्थापना की थी। यही शाला सन् १९१६ मे प्राथमिक विद्यालय के रूप मे क्रमोन्नत हुई और इसमे सामान्य शिक्षण कार्य प्रारभ किया गया। तत्कालीन अलवर नरेश श्री जयसिंह ने इसे राजकीय सहायता प्रदान की। सन् १९४४ मे यह शाला मिडिल स्कूल तथा सन् १९६५ मे जूनियर हायर सैकण्डरी स्कूल के रूप मे क्रमोन्नत हुई। शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना सन् १९६८ मे हुई। इस प्रकार सस्थान के अन्तर्गत इस समय तीन भिन्न सस्थाएँ कार्यरत है—(१) श्री जैन उच्च प्राथमिक शाला, (२) श्री जैन माध्यमिक शाला एवं (३) श्री जैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय। प्रथम दो संस्थाओ को राजकीय अनुदान प्राप्त है। सस्थान मे लगभग एक हजार छात्र-छात्राएँ अध्ययन रत है।

शालाओ मे जैन धर्म की शिक्षा का भी अलग से प्रबन्ध है। विद्यार्थी अखिल भारतीय जैन परीक्षा मण्डल द्वारा आयोजित परीक्षाओ मे बैठते है। संस्थान के अध्यक्ष श्री बाबूराम जैन तथा व्यवस्थापक श्री ग्यारसीराम जैन है।

५ श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेज, जयपुर—सस्था की स्थापना सन् १८८५ मे श्री धन्नालाल जी फौजदार एवं श्री भोलीलाल जी सेठी के विशेष प्रयत्न से हुई। प्रसिद्ध जैन विद्वान पं० चैनसुखदास जी सन् १९३१ से मृत्युपर्यन्त इस संस्था से सम्बन्धित रहे तथा इसकी उन्नति मे विशेष योगदान किया। यह सस्था प्रवेशिका, उपाध्याय, शास्त्री तथा आचार्य तक की संस्कृत-परीक्षाओ के लिए सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। आचार्य में जैन-दर्शन तथा संस्कृत साहित्य प्रमुख विषय है। संस्था शिशुकला से लेकर अष्टम श्रेणी तक सामान्य शिक्षा भी देती है। संस्था का निजी छात्रावास भी हैं। संस्था की व्यवस्था एक प्रबन्ध समिति करती है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री प्रकाशचन्द कासलीवाल एवं मन्त्री श्री कपूरचंद पाटनी हैं।

६ श्री जवाहर विद्यापीठ, स्वायत्त ग्राम्य महाविद्यालय, कानोड—इस सस्था की स्थापना मुनि श्री चांदमलजी महाराज की प्रेरणा से प० श्री उदय जैन द्वारा २४ अक्टूबर, सन १९४० ई० को 'प्रतापोदय' स्कूल के नाम से हुई। यह प्रतापोदय स्कूल नाम का नन्हा पौधा आज जवाहर विद्यापीठ के वटवृक्ष के रूप मे फल-फूल गया है। सन् १९५३ म यह हायर सकण्डरी, १९५८ म बहुउद्देशीय हायर सैकण्डरी व सन् १९७४ मे डिग्री कॉलेज के रूप मे क्रमोन्नत हुआ है। स्कूल म कला, वाणिज्य व विज्ञान तीनो सकाय हैं। कॉलेज मे कला व वाणिज्य की कक्षाएँ चलती है। सस्था का निजी छात्रावास है जिसम २०० से अधिक छात्र हैं। इसका प्रबन्ध जैन शिक्षण सघ, कानोड द्वारा होता है। वतमान मे इसके अध्यक्ष श्री गुमानमलजी चोरडिया तथा प० श्री उदय जन सचालक हैं। सघ के अधीन विभिन्न शक्षणिक सस्थाएँ कायरत है, जिनमे डिग्री कॉलेज, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जवाहर जन गुरुकुल, जवाहर विद्यापीठ प्राथमिक शाला, श्री जैन कन्या विद्यालय, श्री कस्तूरबाई वालचन्द बाल मन्दिर, महिला उद्योगशाला, रात्रि प्रौढशाला आदि हैं। कुल मिलाकर लगभग १५०० छात्र लाभ उठाते हैं। लगभग सात बीघे से अधिक जमीन पर जवाहर विद्यापीठ के लाखो रुपयो की लागत के भवन बने हुए हैं।

(२) उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

१ श्री जन रत्न विद्यालय, भोपालगढ—इस ग्रावासीय शिक्षण सस्था की स्थापना १५ जनवरी, १९२९ को हुई। आज यह सस्था राजस्थान शिक्षा विभाग द्वारा सकण्डरी स्कूल स्तर तक मान्यता प्राप्त है। सस्था मे लगभग ४०० विद्यार्थीगण अध्ययनरत हैं। सस्था के छात्रावास मे लगभग ७५ छात्रो के रहने की व्यवस्था है। सस्था की स्थापना मुनि श्री मोहन ऋषिजी महाराज की प्रेरणा से हुई थी। सस्था का भवन निर्माण सेठ श्री भीकमचन्दजी विजयराजजी काकरिया तथा सेठ राजमलजी ललवाणी के अथक प्रयत्नो से हुआ। इस सस्था को जन जगत की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'जिनवाणी' का प्रकाशन प्रारभ करने का भी श्रेय है।

२ श्री महावीर दिगम्बर जन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जयपुर—इस सस्था का प्रारम्भ श्री दिगम्बर जन सस्कृत कॉलेज की शाखा के रूप मे हुआ। यह सस्था सन् १९४१ मे मिडिल स्कूल, सन् १९४५ मे हाईस्कूल तथा सन् १९६५ मे हायर सकण्डरी स्कूल के रूप मे क्रमोन्नत हुई। आज यह सस्था जयपुर नगर की अत्यधिक लोकप्रिय व महत्त्वपूर्ण शिक्षा सस्था है। सस्था का महावीर माग, सी स्कीम म विशाल भव्य भवन है। सस्था का सचालन श्री महावीर दिगम्बर जन शिक्षा परिषद् द्वारा हो रहा है जिसके वतमान अध्यक्ष श्री गोपीचन्द पाटनी तथा मन्त्री श्री तेजकरण डण्डिया हैं। विद्यालय की एक शाखा घीवालो के रास्ते म भी है।

३ श्री महावीर उच्च माध्यमिक विद्यालय, लाडनू—सन् १८९५ मे एक प्राथमिक विद्यालय के रूप मे स्थापित यह सस्था सन् १९५६ से उच्च माध्यमिक विद्यालय के रूप मे क्रमोन्नत होकर सेवारत है। वतमान म विद्यालय म कला, विज्ञान एव वाणिज्य विषयो म ४२७ विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं।

४ श्री श्वेताम्बर जैन सैकण्डरी स्कूल, जयपुर—सन् १९४५ मे स्थापित यह सस्था सकण्डरी स्कूल स्तर तक के अध्ययन के लिए एक प्रमुख सस्था है। घीवाला क रास्त म सस्था का विशाल भवन

है। संस्था का संचालन एक प्रबन्ध समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री मेहतावचन्द गोलेछा तथा मन्त्री श्री छुट्टनलाल श्रीमाल हैं।

५. श्री के. डी. जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय, किशनगढ़—इस विद्यालय की स्थापना सेठ श्री भागचन्द सोनी, श्री हीरालाल पाटनी, श्री मगनलाल पाटनी आदि के प्रयास से सन् १६५१ में हुई। सन् १९५६ से यह उच्च माध्यमिक विद्यालय में क्रमोन्नत हुआ है। यह मदनगंज, किशनगढ़ की महत्त्वपूर्ण शिक्षा संस्था है। इस समय विद्यालय मे २२८६ छात्र अध्ययनरत है।

६. गांधी उच्च विद्यालय, गुलाबपुरा—इस विद्यालय की स्थापना मुनि श्री पन्नालालजी म० की सद्प्रेरणा से जैन विद्यालय के रूप में सन् १६३८ मे हुई। ४ जुलाई, १६४६ को गाधी विद्यालय के रूप में इसे वर्तमान सार्वजनिक शिक्षण सस्था का रूप प्राप्त हुआ। विद्यालय से सम्बद्ध तीन छात्रावास—श्री नानक जैन छात्रावास, श्री गांधी छात्रावास तथा श्री कृष्ण छात्रावास है। विद्यालय-पुस्तकालय मे दस हजार पुस्तको का संकलन है।

७. श्री पार्श्वनाथ उच्च माध्यमिक विद्यालय, वरकाणा (पाली)—इस संस्था की स्थापना २६ फरवरी, १६२६ को श्री विजय ललित सूरीश्वरजी महाराज साहव की प्रेरणा से हुई। सस्था के निर्माण मे स्व० श्री जसराजजी सिंघी तथा स्व० सेठ श्री मूलचन्दजी सादड़ी निवासी का विशेष योग तथा प्रयास रहा। आज यह संस्था राजस्थान माध्यमिक शिक्षा वोर्ड से सम्वन्धित, उच्च माध्यमिक विद्यालय के रूप में इस क्षेत्र की सेवा कर रही है। विद्यालय का अपना छात्रावास भी है। वर्तमान मे संस्था की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष श्री कालिदास राठौड़ तथा प्रधानाध्यापक श्री दाऊलाल माथुर हैं।

८. श्री गोदावत जैन गुरुकुल (उच्च माध्यमिक विद्यालय), छोटी सादड़ी—मेवाड़ क्षेत्र की यह एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा सस्था है। इसकी स्थापना सन् १६१६ मे हुई थी। इसके संस्थापक सेठ श्री नाथूलालजी गोदावत द्वारा सवा लाख रुपये की धनराशि दान देने से जैनाश्रम की स्थापना के रूप में इस संस्था का प्रारम्भ हुआ था। सन् १६१६ मे जवकि ग्रामीण अञ्चल मे शिक्षा का प्रचार-प्रसार नगण्य था, इस सस्था की स्थापना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कदम था। आज यह संस्था राजस्थान माध्यमिक शिक्षा वोर्ड से सम्वद्ध एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के रूप मे क्षेत्र मे सेवारत है। यह एक आवासीय शिक्षा संस्था भी है। सलग्न छात्रावास में लगभग ६० विद्यार्थियों के रहने योग्य स्थान है। श्री नेमीचन्द सुराणा पिछले २५ वर्षों से यहाँ प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य कर रहे हैं। सस्था का संचालन एक ट्रस्ट मण्डल द्वारा होता है। मंत्री के रूप मे श्री चाँदमलजी नाहर की सेवाएँ उल्लेखनीय हैं। वर्तमान में इसके मंत्री श्री शांतिचन्द्र मोगरा हैं।

९. श्री सुमति शिक्षा सदन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, राणावास—इस संस्था की स्थापना सन् १६४४ मे "श्री जैन श्वेताम्वर तेरापन्थी शिक्षण सघ" राणावास (पाली) के द्वारा हुई। आज यह सस्था हायर सैकेण्डरी स्तर तक की शिक्षा प्रदान कर रही है; तथा इसमें कला, विज्ञान व वाणिज्य तीनो ही विषय समूहो के अध्ययन की व्यवस्था है। सस्था से सम्वन्धित आदर्श निकेतन छात्रावास है जिसमे लगभग ३५० छात्रो के रहने का प्रवन्ध है। सन् ७४ से यह सस्था

वाणिज्य एव कला महाविद्यालय के रूप मे क्रमोन्नत हो गई है। सस्था की स्थापना में स्व० श्री बस्ती-मलजी छाजेड एव स्व० श्री गणेशमलजी सुराणा मुख्य प्रेरक एव सहयोगी रहे ह। श्री केसरीमलजी सुराणा पिछले २९ वर्षों स अवैतनिक रूप म इस सस्था के सचालन एव विकास म जुट हुए हैं।

१० श्री मरुधर केसरी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, राणावास (पाली)—यह सस्था मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज साहब की प्रेरणा मे जुलाई, १९७० म प्रारभ हुइ। सस्था मे कक्षा ६ से ११ तक लगभग ४०० छात्र अध्ययन करत है। सस्था से सलग्न छात्रावास म ३५० छात्रो के रहन की सुदर व्यवस्था है। सस्था की प्रबध समिति के वतमान अध्यक्ष श्री इन्द्रसिंह जी मुणोत एव मत्री श्री अमीरचदजी कटारिया हैं।

११ श्री मरुधर बालिका विद्यापीठ, विद्यावाडी, रानी (पाली)—इस उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय का उद्घाटन १५ अगस्त, १९८७ को हुआ। सस्था आवासीय शिक्षण सस्थान है। सलग्न छात्रावास म छात्राओ के निवास तथा खानपान की सुदर व्यवस्था है। सस्था के मत्री श्री फूलचन्द बाफना ह तथा प्रधानाध्यापिका श्रीमती सुभद्रा जन हैं। सस्था की विकासमान प्रवृत्तियो म प्रो० गणपतिचद्र भण्डारी का विशेष योगदान रहा है।

१२ श्री शान्ति वीर जैन गुरुकुल सस्कृत प्रवेशिका विद्यालय, जोबनेर (राज०)—जोबनेर के जैन समाज द्वारा धार्मिक व सस्कृत शिक्षा के लिए स्थापित श्री बाल बोधनी दिगम्बर जन पाठ-शाला ही आचाय श्री शिवसागरजी महाराज की प्रेरणा स सन् १९६३ मे शान्ति वीर जन गुरुकुल के नाम से नवीनीकृत हुई। इस समय सस्था राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोड द्वारा प्रवेशिका स्तर तक मा यता प्राप्त है। इस समय २३६ विद्यार्थी यहा अध्ययनरत हैं। विद्यालय का अपना छात्रावास भी है। वतमान मे सस्था की प्रबध समिति के अध्यक्ष श्री सुगनचद पाटनी तथा मत्री श्री मिलाप-चद जन हैं।

१३ श्री वीर बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय, जयपुर—सस्था की स्थापना सन् १९२५ मे साध्वी श्री स्वर्णश्रीजी की प्रेरणा से हुई। इस समय विद्यालय मे लगभग ११०० छात्राएं अध्ययनरत हैं। सन् १९७४ से विद्यालय को महाविद्यालय के रूप म क्रमोन्नत कर दिया गया है। इसका सचालन श्वेताम्बर जैन समाज द्वारा गठित समिति करती ह। समिति के वतमान अध्यक्ष श्री सौभाग्यमल श्री श्रीमाल है। स्व० श्रीमती प्रकाशवती सिहा का प्रधानाध्यापिका के रूप म इस सस्था को उल्लेखनीय योगदान रहा। यह सस्था कुन्दीगरो के भैरूजी के रास्ते मे स्थित है।

१४ श्री पद्मावती जैन बालिका माध्यमिक विद्यालय, जयपुर—इस सस्था की स्थापना सन् १९०८ मे हुई थी। सन् १९६० मे यह उच्च माध्यमिक विद्यालय के रूप म क्रमोन्नत हुआ। यह घीवालो के रास्ते मे स्थित है। वतमान में लगभग ५५० छात्राएं यहाँ अध्ययनरत हैं। इसका प्रबध दिगम्बर जन कन्या शिक्षा प्रचारिणी कमेटी द्वारा होता है जिसके वतमान अध्यक्ष श्री कोमल-चद पाटनी एव मत्री श्री चतुरमल अजमेरा हैं। श्री माणिक्यचद्र जैन प्रधानाध्यापक हैं।

१५ आदर्श महिला विद्यालय, श्री महावीरजी—इस सस्था की स्थापना सन् १९५३ म विदुषी कमलाबाई द्वारा हुई। यह बालिका विद्यालय सैकण्डरी स्कूल स्तर तक मा यता प्राप्त है।

इस समय इसमे कक्षा १ से १० तक ६५० वालिकाएँ अध्ययनरत हैं। विद्यालय का लगभग २ लाख रुपये का अपना भवन है। विद्यालय के छात्रावास मे मात्र तीस रुपये मासिक शुल्क पर वालिकाओ के रहने तथा खाने-पीने की सुन्दर व्यवस्था है।

१६. **श्री दिगम्बर जैन वालिका माध्यमिक विद्यालय, उदयपुर**—इस सस्था का प्रारभ १६४१ मे एक जैन मन्दिर के प्रागण मे हुआ। धीरे-धीरे क्रमोन्नत होकर सन् १६६४ में सस्था ने अपना वर्तमान रूप प्राप्त किया है। आज सस्था मे कक्षा ६ से १० तक ४५० वालिकाएँ अध्ययनरत हैं। यह सस्था स्थानीय दिगम्बर जैन शिक्षा समिति के तत्त्वावधान मे कार्यरत है।

१७. **हीरालाल सौभागमल रामपुरिया विद्या निकेतन, गंगाशहर (वीकानेर)**—वीकानेर के सुप्रसिद्ध उद्योगपति रामपुरिया वधु श्री जयचन्दलाल, श्री रतनलाल व श्री माणकचन्द रामपुरिया ने अपने स्व० पितामह सेठ हीरालाल रामपुरिया व स्व० पिता सौभागमल रामपुरिया की पावन स्मृति मे सन् १६५४ मे इस शिक्षणशाला की स्थापना की।

विद्या निकेतन एक विशिष्ठ शिक्षण शाला है यहा पर शिशु विभाग में मॉन्टेसरी पद्धति से वच्चो को शिक्षा दी जाती है और २½ वर्ष के वच्चो को प्रवेश दिया जाता है।

वालिकाओ के लिए सैकण्डरी तक पढने की व्यवस्था है। बालक-वालिकाओं के व्यक्तित्व का समुचित विकास करने हेतु निकेतन मे मनोवैज्ञानिक उपकरणो, साज-सज्जा आदि की समुचित व्यवस्था है व विभिन्न प्रकार के कार्य-क्रम अपनाये जाते है। इस समय सस्था मे ५५० विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे है व २५ शिक्षक सेवारत हैं।

रामपुरिया विद्या निकेतन का भवन वीकानेर से पाच किलोमीटर दूर शान्त व स्वच्छ वातावरण मे गगाशहर मे सड़क के किनारे स्थित है। दूर से वच्चो को लाने के लिए सस्था की अपनी पाच वसे है। मुख्य भवन मे सास्कृतिक कार्यक्रमो के लिए सस्था का अपना ओडिटोरियम, खेलकूद के लिए मैदान, सुसज्जित वाचनालय, पुस्तकालय व प्रयोगशालाये है।

१८. **श्री सुबोध वालिका विद्यालय, जयपुर**—इस सस्था की स्थापना सन् १६१८ मे हुई। सन् १६७३ से पूर्व यह उच्च प्राथमिक शाला के रूप मे थी और अब क्रमोन्नत होकर सैकण्ड्री स्कूल के रूप मे वालिकाओ की शिक्षा के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। संस्था का प्रवन्ध श्री जैन श्वेताम्बर स्थानक समाज द्वारा गठित समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री सिरहमल नवलखा है। यह वारह गणगोर रास्ता, जौहरी बाजार मे स्थित है।

(३) अन्य विद्यालय

१. **श्री महावीर दिगम्वर जैन बालिका विद्यालय, जयपुर**—इस सस्था की स्थापना श्री मुन्शी सूरजनारायणजी सेठी की प्रेरणा से महिला शिल्प विद्यालय के रूप मे सन १६३० मे हुई। सन् १६६२ से यह मिडिल स्कूल वना। यहाँ कक्षा ८ तक की पठन-पाठन की सुन्दर व्यवस्था है। श्री हीरालाल जैन परोपकार फण्ड द्वारा संस्थापित इस सस्था का सचालन एक प्रबन्ध समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री सूरजनारायण सेठी व मन्त्री श्री मिलापचन्द शास्त्री है। सस्था चुरुको का रास्ता (मोदीखाना) मे स्थित है।

२ श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी माध्यमिक विद्यालय, जयपुर—मोतीसिंह भोमिया के रास्ते मे स्थित इस शिक्षा संस्था की स्थापना स्व० सेठ सूरजमलजी बाठिया द्वारा सन् १९१३ मे हुई। यहा कक्षा अष्टम तक के शिक्षण की सुन्दर व्यवस्था है। इसका संचालन तेरापंथी समाज द्वारा होता है।

३ श्री गुलाब कवर ओसवाल उच्च प्राथमिक कन्या विद्यालय, अजमेर—इस संस्था की स्थापना श्री धनराजजी कास्टिया के प्रयास म ८ सितम्बर, १९१२ को हुई। वर्तमान म संस्था का संचालन ओसवाल फीमेल एज्यूकेशन सोसाइटी के द्वारा होता है। पाठशाला मे आठवी कक्षा तक अध्ययन की व्यवस्था है। संस्था के वर्तमान अध्यक्ष श्री रतनचन्दजी सचेती तथा मंत्री श्री चादमलजी सीपाणी हैं।

४ श्री अकलक दिगम्बर जैन पाठशाला, कोटा—जैन मन्दिर स्ट्रीट मे स्थापित यह माध्यमिक शाला, राजस्थान सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। वर्तमान म यहाँ ५०० छात्र छात्राएँ तथा १४ अध्यापक हैं। संस्था का निजी भवन है।

५ श्री दिगम्बर जैन विद्यालय, सुजानगढ़—इस विद्यालय की स्थापना सन् १९१० मे हुई थी। जुलाई १९७२ से यह माध्यमिक शाला के रूप मे सेवारत है। इसका संचालन स्थानीय दिगम्बर जैन समाज का एक ट्रस्टी मण्डल करता है।

६ श्री भट्टारक यशकीर्ति दिगम्बर जैन धर्मार्थ ट्रस्ट गुरुकुल, ऋषभदेव (उदयपुर)—यह ट्रस्ट भी भट्टारक यशकीर्तिजी महाराज की प्रेरणा से सन् १९५९ म रजिस्टर्ड होकर अस्तित्व मे आया। ट्रस्ट गुरुकुल क अतिरिक्त दिगम्बर जैन कन्या पाठशाला, महिला उद्योगशाला तथा सरस्वती भवन पुस्तकालय आदि शैक्षणिक प्रवृत्तियो का संचालन करता है। ट्रस्ट के अध्यक्ष जवेरी श्री मोतीलालजी मीण्डा, उदयपुर व मन्त्री प० रामचन्द्रजी जैन हैं।

७ श्री भट्टारक यशकीर्ति दिगम्बर जैन बोर्डिंग, प्रतापगढ़—इस नाम से रजिस्टर्ड संस्था न केवल छात्रावास की व्यवस्था करती है अपितु श्री भट्टारक यशकीर्ति दिगम्बर माध्यमिक विद्यालय व श्री रमण बहिन दिगम्बर जैन कन्याशाला का भी संचालन व प्रबंध करती हैं। इस संस्था के प्रेरक भट्टारक श्री यशकीर्ति महाराज थे तथा संस्था १८ मई १९४४ को अस्तित्व मे आई। संस्था की प्रगति का श्रेय भट्टारकजी के शिष्य प० रामचन्द्रजी को है।

८ श्री दिवाकर बाल निकेतन, कोटा—यह विद्यालय श्री मानन्द ऋषिजी महाराज साहब की प्रेरणा स सन् १९७१ म स्थापित किया गया। इसमे नर्सरी कक्षा से कक्षा ६ तक की अध्ययन की व्यवस्था है। वर्तमान मे १९५ छात्र छात्राएँ तथा ७ अध्यापक हैं। शाला की संचालक समिति के अध्यक्ष श्री हरखगलाल जैन तथा व्यवस्थापक श्री माणिकचन्द्र जैन हैं।

९ श्री महावीर जैन विद्यालय, भरतपुर—यह संस्था स्थानीय महावीर भवन म स्थापित है। यहाँ कक्षा प्रथम से पाँचवी तक के अध्ययन की सुचारु व्यवस्था है। बच्चो को धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है।

१० श्री जैन दिवाकर प्राथमिक पाठशाला, चित्तौड़गढ़—जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी

महाराज साहब की स्मृति मे स्थापित यह पाठशाला निजी भवन मे सुचारु रूप से संचालित है। कक्षा १ से ५ तक के अध्यापन की व्यवस्था है।

११. श्री वीर जैन विद्यालय, अलीगढ़ (टौंक)—श्री गोड़ीदासजी महाराज साहब की प्रेरणा से सम्वत् २००३ मे इसकी स्थापना हुई। यह प्राथमिक विद्यालय है। सेठ श्री राधाकृष्णजी जालानी, कलकत्ता संस्था का समस्त व्यय-भार वहन कर रहे हैं।

१२. श्री वर्द्धमान जैन कन्या पाठशाला, नागौर—आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब की सद्-प्रेरणा एव स्थानकवासी जैन समाज, नागौर के कतिपय उत्साही व सेवाभावी सज्जनो के सद्-प्रयास के फलस्वरूप विक्रम संवत् २००९ मे इस पाठशाला का शुभारम्भ हुआ। सस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य नन्ही वालिकाओं में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षण के माध्यम से सुसस्कार उत्पन्न करना रहा है। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए पाठशाला मे राजकीय पाठ्यक्रम के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षण की विशेष व्यवस्था है। इस समय पाठशाला में पाचवी कक्षा तक पढ़ाई होती है। छात्राओं की सख्या एक सौ से अधिक है एवं अध्यापिकाओ की संख्या ५ है। सन् १९६९ मे पाठशाला के संचालन हेतु नया विधान बनाया गया। तत्पश्चात् संस्था को पजीवद्ध कराया जाकर राजकीय मान्यता प्राप्त कराई गई। पाठशाला भवन आधुनिक सुविधाओ से युक्त एवं नगर के मध्य मे स्थित है। भवन समिति पृथक् वनी हुई है जिसके अथक प्रयास से ही भवन का वर्तमान स्वरूप वन सका है। पाठशाला का सचालन निर्वाचित कार्यकारिणी समिति के द्वारा किया जाता है जिसमे कुल २१ सदस्य हैं। समिति के वर्तमान अध्यक्ष श्री भेरुदान जी सुराणा, मंत्री श्री नवरत्न राज मेहता एव कोपाध्यक्ष श्री डुंगरमलजी सुराणा हैं। सस्थापक सदस्य सर्व श्रीपारसमल जी सुराणा एवं उमरावमल जी सुराणा हैं तथा संरक्षक सर्व श्री दीपचन्दजी सुराणा एवं गणेशमलजी काकरिया है।

(४) धार्मिक शिक्षण संस्थाएं

जैन धार्मिक सिद्धान्तों, जैन-साहित्य व दर्शन आदि के अध्ययन अध्यापन के लिए प्रदेश भर मे अनेक संस्थाए कार्यरत हैं। जैन-धर्मावलम्बियो में अपने विद्यालय छात्रावास, मन्दिर, स्थानक, उपाश्रय, आदि से संलग्न धार्मिक शिक्षा केन्द्र चलाने की परम्परा रही है। अतः धार्मिक शिक्षण केन्द्र प्रदेश भर मे वड़ी संख्या में इतस्ततः फैले हुए हैं। यहां कुछ प्रमुख संस्थाओ का नामोल्लेख किया जा रहा है।

१. श्री शान्ति वीर दि० जैन गुरुकुल संघीजी की नसिया, जयपुर
२. श्री जैन दर्शन विद्यालय, चाकसू का चौक, जयपुर
३. श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला, टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर
४. श्री धार्मिक शिक्षण शाला, लालभवन, जयपुर
५. श्री धार्मिक शिक्षा केन्द्र, दि० जैन समाज, आदर्शनगर, जयपुर
६. श्री आत्मानन्द जैन धार्मिक पाठशाला, आत्मानन्द जैन-सभा भवन, घी वालो का रास्ता, जयपुर
७. श्री महावीर दि० जैन पाठशाला, कोटा
८. श्री महावीर जैन शिक्षण शाला, भादसोड़ा

९ मुनि श्री हजारीमल स्मृति जन सिद्धान्त माला, ब्यावर
१० श्री साधुमार्गी जन सिद्धान्त शाला, ब्यावर
११ श्री भूधर जन पौषधशाला, जोधपुर
१२ श्री वधमान जन धार्मिक पाठशाला, जोधपुर
१३ श्री महावीर स्वाध्याय मण्डल, श्यामपुरा
१४ मुनि श्री रामकुमार जैन धार्मिक पाठशाला, श्यामपुरा
१५ महता ज्ञानचन्द जन सिद्धान्त शिक्षणशाला, ब्यावर
१६ श्री वधमान स्थानक वासी जन पाठशाला, पालनपुर
१७ श्री बाहुबलि जन पाठशाला, नसीराबाद
१८ श्री शान्ति जन पाठशाला पाली
१९ श्री जन विद्यालय सचालन समिति, डूगता
२० श्री गजेन्द्र ज्ञान जन पाठशाला, धनोप
२१ श्री नाहर धार्मिक जैन पाठशाला, भोजास (नागोर)
२२ श्री पार्श्वनाथ जैन तत्वज्ञान विद्यापीठ, अजमेर
२३ श्री श्रमणोपासक जैन फूलादेवी धार्मिक रात्रि पाठशाला, अजमेर
२४ श्री नानक जन कन्या पाठशाला, विजयनगर
२५ श्री जन धार्मिक शिक्षण शिविर, जोधपुर

[ख] छात्रावास

जन शिक्षण सस्थाओ मे से अनेक के साथ सलग्न छात्रावास भी हैं। पाछे पृष्ठो मे सस्थाओं के परिचय क साथ इसका उल्लेख भी यथा स्थल कर दिया गया है। इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से भी अनेक छात्रावास हैं। इनसे सम्बन्धित विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१ श्री आनन्द यश जन छात्रावास, फूलिया कलां—इसकी स्थापना २२-८-६८ को महासती श्री यशकवरजी म सा की प्रेरणा से श्री आनन्द कवरजी मा सा की पावन स्मृति मे हुई। श्री नमीचन्दजी बहोना यहां के गृहपति हैं।

२ आदर्श निकेतन छात्रावास, राणावास—श्री सुमति शिक्षा सदन से सलग्न इस छात्रावास म ३५० विद्यार्थियो क रहने की सुन्दर व्यवस्था है।

३ श्री उपाध्याय प्यारचन्द जैन छात्रावास, ब्यावर—इस सस्था की स्थापना स्व उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी मा सा की स्मृति म सन् १९६९ म हुई।

४ श्री कुथुसागर दिगम्बर जन छात्रावास डूगरपुर—मुनि श्री कुथुसागरजी की प्रेरणा से इसकी स्थापना हुई थी। इसके सचालक श्री मूलजमल ढींढू हैं।

५ श्री कृष्णाबाई मुमुक्षु महिलाश्रम, श्री महावीरजी—इसकी सस्थापक तथा सचालिका ब्रह्मचारिणी कृष्णा बाई हैं। इसम लगभग १०० छात्राओ क रहने की सुन्दर व्यवस्था है।

६ श्री गणेश जन छात्रावास, उदयपुर—इसकी स्थापना आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा की पुण्य स्मृति म अगस्त १९६४ मे हुई इसका सचालन श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जन सघ बीकानेर द्वारा होता है।

७. श्री गोदावत जैन गुरुकुल छात्रावास, छोटी सादड़ी—गोदावत जैन गुरुकुल का परिचय शिक्षा संस्थाओं मे दिया चुका है। संलग्न छात्रावास मे लगभग ६० विद्यार्थियों के रहने की समुचित व्यवस्था है।

८. श्री जयमल्ल जैन छात्रावास, मेड़ता शहर—इसकी स्थापना आचार्य श्री जयमल्लजी म. सा. की पावन स्मृति मे जुलाई १९६१ मे हुई। इसका संचालन एक ट्रस्टीमण्डल द्वारा होता है जिसके अध्यक्ष पद्म श्री मोहनमल जी चोरड़िया हैं।

९. श्री जवाहर विद्यापीठ छात्रावास, कानोड़—संस्था का परिचय पिछले पृष्ठो मे दिया जा चुका है। संलग्न छात्रावास मे लगभग २५० विद्यार्थियों के रहने की समुचित व्यवस्था है। इसके साथ ही यहां छात्राओ के लिये एक अलग छात्रावास भी चलता है।

१०. श्री जैन बोर्डिंग छात्रावास, कुचेरा—इस छात्रावास की स्थापना १५ जुलाई १९४२ को स्वर्गीय सेठ श्री ताराचन्द जी गेलडा द्वारा स्थानीय समाज के कर्मठ व प्रतिष्ठित सज्जनो के सहयोग से हुई। छात्रावास का नवनिर्मित सुन्दर भवन है तथा संलग्न पुस्तकालय भी है।

११. श्री जैन रत्न विद्यालय छात्रावास, भोपालगढ़—विद्यालय का परिचय सस्थाओं के साथ दिया जा चुका है। संलग्न छात्रावास में लगभग ७५ छात्रों को रहने की सुन्दर व्यवस्था है।

१२. श्री जैन सिद्धांत शिक्षण संस्थान, जयपुर—आचार्य श्री हस्तीमलजी मा. सा की प्रेरणा व श्री नथमलजी हीरावत के प्रयत्नों से सन् १९७३ मे श्री सम्यक् ज्ञान प्रचारक मडल के अन्तर्गत इसकी स्थापना हुई। इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य सस्कारशील उच्चकोटि के जैन विद्वान तैयार करना है। संस्थान मे प्रविष्ट छात्रो के आवास व भोजन आदि की निःशुल्क व्यवस्था है। वर्तमान में श्री कन्हैयालाल लोढ़ा इसके अधिष्ठाता है।

१३. श्री दि० जैन आदर्श महिला विद्यालय छात्रावास, श्री महावीरजी—इस छात्रावास की स्थापना कुचामन निवासिनी ब्रह्मचारिणी विदुषी कमलाबाई ने की थी। इस समय छात्रावास मे लगभग १५० छात्राएं अध्ययनार्थ निवास करती हैं।

१४. पं० चैन सुखदास छात्रावास, जयपुर—यह छात्रावास श्री दि० जैन संस्कृत कॉलेज से संलग्न है। सस्कृत कॉलेज में अध्ययन रत छात्रों के लिए यहाँ निवास की व्यवस्था है।

१५. श्री नानक जैन छात्रालय, गुलाबपुरा—इसकी स्थापना श्री नानकरामजी म. सा. की स्मृति मे सन् १९३८ मे श्री पन्नालालजी म सा के सदुपदेश से हुई। छात्रालय का अपना विशाल भवन है। श्री रतनलाल जैन यहा गृहपति हैं।

१६. श्री पारसमल मिलापचन्द जैन छात्रावास जोधपुर—इसकी स्थापना श्री मिलापचन्दजी बोहरा मंडिया निवासी ने की। इसकी स्थापना से विश्वविद्यालय स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियो के रहने की अच्छी व्यवस्था हो सकी है।

१७. श्री पार्श्वनाथ विद्यालय छात्रावास, वरकाणा (पाली)—यह छात्रावास श्री पार्श्वनाथ उच्च माध्यमिक विद्यालय से संलग्न है। यहां रहने की अच्छी व्यवस्था है।

१८ श्री पारवनाथ उम्मेद जन शिक्षण सघ, फालना द्वारा सचालित छात्रावास—इस सघ के तत्वावधान म महाविद्यालय छात्रावास तथा जन छात्रावास सचालित हात हैं। इनमे पाश्वनाथ उम्मेद, महाविद्यालय तथा माध्यमिक विद्यालय मे अध्ययन रत छात्रो के निवास का सुविधा है।

१६ श्री पाश्वनाथ जैन छात्रालय, मालवाडा—इसकी स्थापना माच १६४६ मे सेठ श्री उमाजी ओखाजी के सुपुत्र श्री मगनलालजी, श्री मूलचदजी एव श्री चिमनलालजी ने की थी। इस छात्रावास म ११० विद्यार्थियो के निवास की सुदर व्यवस्था है।

२० श्री पार्श्वनाथ दि० जैन छात्रावास, धानमण्डी उदयपुर—इसकी स्थापना ब्रह्मचारी श्री चादमलजी द्वारा हुई। छात्रावास मे २० छात्रो के रहने की व्यवस्था है।

२१ श्री भ यशकीर्ति दि० जैन बोडिंग प्रतापगढ—इसकी स्थापना भट्टारक श्री यशकीतिजी महाराज की प्रेरणा एव प्रयत्नो से सन् १६४४ मे हुई। सस्था के भवन मे १०० विद्यार्थियो के रहने की समुचित व्यवस्था है।

२२ श्री भ यशकीर्ति दि० जैन धर्मार्थ ट्रस्ट गुरुकुल, ऋषभदेव (उदयपुर)—इस सस्था की स्थापना १६६८ मे हुई थी। यहा १०० छात्रो के पढने लिखने तथा रहने की उत्तम व्यवस्था है।

२३ श्री मरुधर केसरी उच्च माध्य विद्यालय छात्रावास, राणावास—उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से सलग्न छात्रावास म ३५० छात्रो के रहने की व्यवस्था है। छात्रावास का सचालन श्री फूलचदजी बटारिया करत हैं।

२४ श्री मरुधर बालिका विद्यापीठ छात्रावास, रानी (पाली)—छात्रावास की स्थापना भी सस्था के साथ-साथ ही १५ अगस्त १६५७ को हुई। छात्रावास म साधारण शुल्क पर छात्राओ के रहने तथा खाने पीने की सुदर व्यवस्था है।

२५ श्री महावीर जैन छात्रावास सीकर—जन एजुकेशन ट्रस्ट के अधीन इस छात्रावास की भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के क्रम मे स्थापना हुई है। इससे यहा की शिक्षा सस्थाओ मे अध्ययनरत छात्रो को रहने की सुविधा हो गई है।

२६ श्री लोकाशाह जैन गुरुकुल, सादडी (मारवाड़)—इसकी स्थापना फरवरी, १६५४ मे मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म०, स्वामीजी श्री भारमलजी म० सा०, श्री त्रिलोकचदजी म० सा० व प० रत्न मुनि श्री कन्हैयालालजी कमल' के सदुपदेशो से हुई। इसी सस्था के प्रागण म सन् १६५२ मे स्थानकवासी समाज का वृहत्साधु सम्मेलन हुआ था। सस्था म छात्रो की आवास व भोजन व्यवस्था के साथ-साथ उनके धार्मिक व व्यावहारिक शिक्षण की विशेष व्यवस्था है। सस्था का अपना स्वतन्त्र पुस्तकालय वाचनालय औषधालय, बालोद्यान आदि भी है। वतमान मे ६४ छात्र यहा रहकर अध्ययन कर रह हैं। इसका सचालन कायकारिणी द्वारा हाता है। वतमान म इसके अध्यक्ष श्री नथमलजी बलदोटा उपाध्यक्ष श्री हस्तीमलजी मेहता व मत्री श्री जोधराजजी पुनमिया हैं। गुरुकुल का वार्षिक व्यय लगभग साठ हजार रुपया है।

२७ श्री विजय जन छात्रालय ब्यावर—स्व० सेठ श्री विजयराजजी मूथा के प्रयत्नों से इस छात्रालय की स्थापना जनवरी १६५६ म हुई। छात्रावास म २० छात्रो के खान पीने तथा रहने की सुदर व्यवस्था है।

२८. श्री जैन छात्रावास, सिरोही—यह शांति नगर में स्थित है। इसकी स्थापना सन् १९५१ मे हुई। इसमे ५० छात्रों के रहने के लिए पर्याप्त सुविधा है। वर्तमान में २३ छात्र रहते है।

२९. श्री सेठिया जैन छात्रावास, बीकानेर—श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था के अधीन यह छात्रावास सन् १९४६ से चल रहा है। यहां प्रविष्ट छात्रो के आवास एवं भोजन आदि की निःशुल्क व्यवस्था है।

३०. श्री आत्मानन्द जैन छात्रावास, सादड़ी (मारवाड़)—मूर्तिपूजक सम्प्रदाय द्वारा संचालित इस छात्रावास मे लगभग ३५ छात्रो के निवास की सुविधा है।

अन्य छात्रावास

३१. श्री शान्ति वीर जैन गुरुकुल छात्रावास, जोबनेर
३२. श्री जैन गुरुकुल छात्रावास, ब्यावर
३३. मुनि श्री बुधमल जैन छात्रावास, भरतपुर
३४ श्री शान्ति वीर नगर गुरुकुल छात्रावास, श्री महावीर जी
३५. श्री जिनदत्त सूरिमंडल छात्रावास, अजमेर
३६. श्री सूरज बाई दि० जैन छात्रावास, कोटा
३७. श्री शांति जैन छात्रालय, पाली
३८. श्री जैन विद्या मन्दिर छात्रावास, कालन्द्री (सिरोही)
३९. श्री जैन छात्रावास, जावाल (सिरोही)
४०. श्री जय चौथ जैन छात्रावास, जवाजा
४१. श्री जयमल्ल जैन छात्रावास, नागोर
४२. श्री गौतम जैन गुरुकुल, सोजतसिटी
४३. श्री मरुधर केसरी जैन छात्रालय, जैतारण
४४. श्री व. स्था० जैन बख्तावर पारमार्थिक छात्रावास, किशनगढ

[ग] पुस्तकालय एवं वाचनालय

पुस्तकें ज्ञान-राशि का संचित कोष है। अतः पुस्तकालय स्थापित करना एक पवित्र कार्य है। पुस्तकालय अच्छे समाज के निर्माण मे कितने सहायक हो सकते हैं; यह कोई अप्रकट सत्य नहीं ! धर्मों का मूल इसी सत्य मे निहित है कि पृथ्वी मनुष्य के निवास के लिए सर्वोत्तम स्थान बन सके। यही जैन–दृष्टि भी है। अतः जैनियो मे पठन-पाठन का धार्मिक कृत्य के रूप मे भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन-समाज का लगभग ९० प्रतिशत वर्ग शिक्षित है।

जैन-मन्दिर, स्थानक, उपाश्रय आदि धार्मिक स्थानो पर प्रारम्भ से ही ग्रन्थ भण्डार होने की परम्परा रही है। ये ग्रन्थ भण्डार एक प्रकार से पुस्तकालय ही हैं। छोटे से छोटे गांव मे भी यदि जैन मन्दिर या स्थानक है तो उसके साथ ही वहाँ ग्रन्थ भण्डार अवश्य है। प्रस्तुत पृष्ठो में हमारा ध्येय इन भण्डारों का परिचय देना नही है। जैन-संस्थाओ तथा जैन–धर्मावलम्बियों ने इनके अतिरिक्त अनेक सार्वजनिक पुस्तकालय एवं वाचनालय भी स्थापित किए हैं जो राष्ट्र की शैक्षणिक जागरूकता

की वृद्धि मे महत्त्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं। राजस्थान प्रदेश मे भी ऐसे अनेक सावपुस्तकालय एव वाचनालय हैं। इन पृष्ठो मे उनका सक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया जा रहा है।

१ श्री जैन सावला पुस्तकालय, ब्यावर—इस पुस्तकालय की स्थापना सेठ श्री जीवराजजी तथा श्री फूलचन्दजी सावला द्वारा सन् १६४५ म हुई। पुस्तकालय का निजी भवन है। पुस्तकालय मे लगभग १०२५० पुस्तकें हैं।

२ श्री महावीर जैन पुस्तकालय, कोटा—इस पुस्तकालय की स्थापना सन् १६१८ मे हुई। इसका सचालन स्थानीय जन समाज करता है। इस समय इसम ३०५६ पुस्तकें सग्रहीत हैं जो विषयवार वर्गीकृत हैं।

३ श्री भवरलाल दूगड आयुर्वेद विश्वभारती पुस्तकालय, सरदार शहर—आयुर्वेद विश्व भारती के अ तगत सचालित इस पुस्तकालय की स्थापना १६५६ म हुई। इसमे लगभग ४ हजार ग्रन्थ हैं। आयुर्वेद एव पाश्चात्य विज्ञान से सम्ब वित ग्र थ सग्रह पुस्तकालय की निजी विशेषता है। सस्था का निजी भवन है।

४ श्री जैन श्वेताम्बर मित्र मण्डल पुस्तकालय, जयपुर—इस पुस्तकालय की स्थापना श्री रतनच द जी कोचर द्वारा १६२७ म हुई। यह घी वालो क रास्ते मे स्थित है। इसम वतमान मे ३५०० पुस्तकें तथा लगभग २५० हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है। श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ इसका सचालन करता है।

५ श्री महावीर पुस्तकालय, जयपुर—इस पुस्तकालय की स्थापना १६३६ मे हुई। पुस्तकालय किशनपोल बाजार स्थित महावीर पाक मे है। वतमान मे यहा ६००० पुस्तको का सग्रह है। १५ पत्र-पत्रिकाए आती हैं। श्री प्रसन्नकुमार सेठी यहा पुस्तकालयाध्यक्ष हैं।

६ श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ पुस्तकालय, जयपुर—यह पुस्तकालय मोतीसिंह भोमियो के रास्त म शिवजीराम भवन के सामने उपाश्रय मे स्थित है। इसका सचालन खरतरगच्छ सघ करता है, जिसकी परामशदात्री समिति के अध्यक्ष श्री राजरूप टाक और म त्री श्री गुमानमल मालू है। सग्रहालय मे ५००० पुस्तकें हैं जिनम १४०० हस्तलिखित ग्र थ हैं। श्री ज्ञानचन्द जन (रावका) अवतनिक पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप मे कायरत हैं।

७ आचाय श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर—इस भण्डार की स्थापना आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज सा की प्रेरणा एव स्व श्री सोहनमल जी कोठारी के प्रयास से स० २०१६ तदनुसार सन् १६५६ मे हुई। यह चौडा रास्ता स्थित लालभवन म चल रहा है। अब तक इस भण्डार म लगभग तीस हजार ग्र थ और १५० गुटके (जिनमे अनुमानत पाच हजार फुटकर रचनाए लिपि बद्ध हैं) हस्तलिखित ग्र थो के रूप मे सग्रहीत हो चुके हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्र थ सग्रह के साथ साथ शोधकाय को वज्ञानिक एव तुलनात्मक दृष्टिकोण से आगे बढाने के लिए यहा स्तरीय एव बहुमूल्य मुद्रित पुस्तको तथा शोध सम्ब धी पत्र-पत्रिकाओ को भी सग्रहीत किया गया है। वर्तमान म श्री श्रीच दजी गोलेछा इसके अध्यक्ष व डॉ० नरेन्द्र भानावत मानद निदेशक हैं। श्री मोतीलालजी गाधी पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप मे अपनी सेवाए दे रहे हैं।

८. श्री सन्मति पुस्तकालय, जयपुर— इस पुस्तकालय की स्थापना मा० मोतीलालजी संघी द्वारा १९२० मे हुई। पुस्तकालय का नवीन भव्य भवन अर्जुनलाल सेठी नगर मे बना है। पुस्तकालय के सस्थापक मास्टर मोतीलाल जी एक महान् पुस्तकालय-अनुदाता तथा पुस्तकालय-कार्यकर्ता थे। वर्तमान मे लगभग ४० हजार पुस्तके इस पुस्तकालय मे है।

९. श्री जैन साहित्य शोध-विभाग पुस्तकालय, महावीर भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर— विलुप्त साहित्य की खोज, प्रकाशन एव शोध के लक्ष्य को ध्यान मे रखकर श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी की प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा सन् १९४७ मे इसकी स्थापना की गई। इसके प्रेरक स्व० पं० चैनसुखदासजी थे। यहा के पुस्तकालय में हस्तलिखित तथा प्रकाशित दोनो ही प्रकार के ग्रन्थो का अच्छा संग्रह है। यहा के प्रकाशन विभाग से अब तक १७ ग्रन्थो का प्रकाशन हो चुका है। अनेक शोधार्थी यहां के पुस्तकालय से लाभ उठा चुके हैं। डॉ० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल के योग्य निर्देशन में यहां का शोध विभाग जैन-साहित्य की महान् सेवा कर रहा है।

१०. श्री सरस्वती भवन, श्री दि. जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर—घी वालों के रास्ते में स्थित इस जैन पुस्तकालय मे लगभग ९०० हस्तलिखित ग्रन्थ तथा ७०० मुद्रित ग्रन्थ हैं। श्री नरेन्द्र मोहन डंडिया इसकी देख-रेख करते हैं।

११. श्री सरस्वती भण्डार, दि. जैन मन्दिर गोधान, जयपुर—चौकड़ी घाट दरवाजा, नागौरियो के चौक में अवस्थित इस पुस्तकालय में लगभग २१०० मुद्रित तथा ७०० हस्तलिखित पुस्तकें हैं। श्री राजमल संघी समिति के सयोजक हैं।

१२. श्री जैन शास्त्र भन्डार सग्रहालय, जैसलमेर—इस संग्रहालय में अनेक प्राचीन व दुर्लभ हस्तलिखित जैन ग्रन्थ उपलब्ध हैं। जैन-शोध की दृष्टि से इन ग्रन्थो का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

१३ श्री महावीर पुस्तकालय, महनसर—इसकी स्थापना सन् १९३३ में हुई। वर्तमान में इसमें ४८८३ पुस्तकें सग्रहीत हैं। पुस्तकालय पर प्रतिवर्ष लगभग २ हजार रुपये व्यय होता है।

१४. श्री ओसवाल पुस्तकालय, लाडनूं ओसवाल सभा द्वारा १९१९ मे इस पुस्तकालय की स्थापना हुई। पुस्तकालय का निजी भवन है। वर्तमान मे इसमे ९४५० पुस्तकें संग्रहीत हैं। वार्षिक व्यय लगभग ११ हजार रुपये हैं पाठको की प्रतिदिन औसत संख्या १५० है। श्री मोहनलाल चोरडिया यहां पुस्तकालयाध्यक्ष हैं।

१५ श्री जैन सार्वजनिक पुस्तकालय, भादरा—इसकी स्थापना सन् १९४७ मे हुई। वर्तमान मे यहां ४३७४ पुस्तकें सग्रहीत हैं तथा ४० पत्र-पत्रिकाएं आती हैं। राज्य सरकार से सहायता प्राप्त है।

१६. श्री जैन दिवाकर पुस्तकालय, ब्यावर—मेवाड़ी गेट पर संस्था का नवनिर्मित निजी भवन है। लगभग २००० पुस्तको का संग्रह है, जिनमे हस्तलिखित शास्त्रादि भी हैं।

१७ श्री जैन दिवाकर शोधपीठ पुस्तकालय, कोटा—यह पुस्तकालय जैन दिवाकर स्मृति भवन में स्थित है। इसकी स्थापना श्री अजित मुनि की प्रेरणा से हुई। वर्तमान मे लगभग एक हजार हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है। इसी भवन मे अलग से एक पुस्तकालय भी है, जिसमे लगभग ५०० पुस्तको का सग्रह है।

१८ आचार्य श्री खूबचन्दजी पुस्तकालय, निम्बाहेड़ा—इस पुस्तकालय की स्थापना आचार्य श्री की स्मृति मे हुई है। अभी लगभग ५०० पुस्तको का सग्रह है।

१९ श्री जिनदत्त सूरि मण्डल पुस्तकालय, अजमेर—सन १९५२ मे स्थापित जिनदत्त सूरि मण्डल द्वारा सचालित यह एक समृद्ध पुस्तकालय है जिसमे लगभग ७००० उपयोगी ग्रन्थों का सग्रह है। पुस्तकालय का निजी विशाल भवन है। मण्डल की स्थापना श्री मानीलाल जी पारख द्वारा की गई। वर्तमान अध्यक्ष श्री अमरचन्द जी लूणिया तथा मन्त्री श्री चादमल जी सीपाणी हैं।

२० श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी सभा पुस्तकालय मोमासर—सभा का प्रादुर्भाव १९५१ मे हुआ था। सभा का निजी भवन है, उसी मे सभा द्वारा स्थापित पुस्तकालय भी है। सभा के अन्तर्गत महिला विकास मण्डल व किशोर मण्डल आदि सस्थाओ के भी निजी पुस्तकालय व वाचनालय हैं।

२१ श्री सेठिया जैन ग्रन्थालय, बीकानेर—श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था द्वारा सचालित सेठिया जैन ग्रन्थालय, बीकानेर के प्रमुख पुस्तकालयो मे उल्लेखनीय है। इसमें हिन्दी, उर्दू, मराठी, बगला, अग्रेजी गुजराती, फ्रेन्च, जर्मन, रूसी आदि भाषाओ की १७००० पुस्तकें हैं। इनके अतिरिक्त सैकड़ो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनकी एक से अधिक प्रतिया हैं। ग्रन्थालय में १५०० हस्तलिखित ग्रन्थ एव ७०० पत्र पत्रिकाओ की सलग्न फाइलें हैं। ग्रन्थालय की सदस्यता निःशुल्क है। वाचनालय उपविभाग में दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक एव त्रैमासिक कुल चालीस पत्र पत्रिकाए आती हैं।

२२ श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर—श्री अभयराज जी नाहटा की स्मृति में नाहटा परिवार द्वारा उक्त साहित्यिक, सास्कृतिक व लोकोपयोगी प्रवृत्तियाँ खरतरगच्छीय आचार्य जिनकृपाचन्द्र सूरि जी महाराज के परामर्श से सवत् १९८४ के लगभग प्रारम्भ की गई। हस्तलिखित ग्रन्थो के सग्रह में श्री कृपाचन्द सूरि जी के प्रतिशिष्य तिलकचन्द जी की प्रेरणा बहुत मूल्यवान रही। विगत लगभग ४८ वर्षों में ग्रन्थालय हस्तलिखित एव प्रकाशित ग्रन्थो का इतना बड़ा भण्डार बन गया है कि आज ग्रन्थालय के लिए विशेष रूप से निर्मित तीनतल्ला भवन में भी रखने को जगह नहीं रही है। १०० से भी अधिक ज्ञानभण्डारों ग्रन्थों से भरी हुई हैं और लगभग एक लाख ग्रन्थो का महत्वपूर्ण सग्रह यहा उपलब्ध है। अनेक विद्वान तथा अनुसधानकर्ता इस महत्वपूर्ण ग्रन्थालय से लाभान्वित होते रहते हैं। प्रतिष्ठ सस्थापक श्री अगरचन्द नाहटा इसके सचालक हैं।

२३ श्री जैन दिवाकर चतुर्थ पुस्तकालय, उदयपुर—यह पुस्तकालय महावीर भवन, मदनगेट, बड़ा बाजार मे स्थापित है। विविध विषयों की तथा धर्म सम्बन्धी पुस्तको का विशाल सग्रह है।

२४ श्री शान्ति जैन पुस्तकालय, जयपुर—सन् १९२४ मे स्थापित यह पुस्तकालय चार नगर के प्रमुख पुस्तकालयों मे है। पुस्तकालय मे लगभग ६५०० ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त वाचनालय मे अनेक मासिक, साप्ताहिक व दैनिक पत्र आते हैं। पुस्तकालय का सचालन श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज करता है। यह चौड़ा रास्ता स्थित लालभवन मे है।

२५. श्री जैन रत्न पुस्तकालय, जोधपुर—श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ द्वारा संचालित यह पुस्तकालय श्वेताम्बर जैन स्थानक सवाईसिंह जी की पोल मे स्थित है। इसमे ७००० पुस्तकों का संग्रह है। इसकी एक शाखा घोडो के चौक मे है।

२६. श्री सुबोध जैन पुस्तकालय, जोधपुर—यह पुस्तकालय कपड़ा बाजार, जोधपुर मे स्थित है। इसका सचालन तथा व्यवस्था श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ द्वारा होती है।

२७. श्री महावीर जैन पुस्तकालय, जोधपुर—इसकी स्थापना अभी दिसम्बर १९७४ मे नेहरू पार्क, सरदारपुरा के जैन स्थानक मे हुई है। इसकी स्थापना श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ द्वारा की गई है।

२८. श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ वाचनालय, जयपुर—इसकी स्थापना श्री गप्पूलाल जैन ने की। इसमे लगभग पाच सौ धार्मिक तथा अन्य पुस्तकें हैं। यह गोखले मार्ग सी-स्कीम मे स्थित है।

२९. श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन वाचनालय, जयपुर—यह वाचनालय सेठ बनजीलाल ठोलिया चेरिटी ट्रस्ट के अन्तर्गत चलता है। यहा पर मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक, एवम् दैनिक पत्र पत्रिकाएं आती है। लगभग ६० पाठक प्रतिदिन इस वाचनालय से लाभ उठाते हैं। इसकी प्रबन्ध व्यवस्था श्री ताराचन्दजी ठोलिया के द्वारा होती है।

३०. सम्यक् ज्ञान मोक्षमार्ग वाचनालय, जयपुर—इसके निर्माण में श्री अमरचन्द नाहर का विशेष योग है। यह सोथली वालो के रास्ते मे स्थित है।

अन्य पुस्तकालय एवं वाचनालय

१. श्री महावीर पुस्तकालय, केकडी
२. श्री महावीर पुस्तकालय, रघुनाथ चौक, कोटा
३. श्री जैन पुस्तकालय एवं वाचनालय, बलजी राठोड़ की गली, अलवर
४. श्री महावीर भवन पुस्तकालय, अलवर
५. श्री जैन सार्वजनिक पुस्तकालय, हरसाना
६. श्री ज्ञानभण्डार, देलवाड़ा मन्दिर, आबू
७. श्री जय विजय ज्ञान भण्डार, सिरोही
८. श्री पंकुबाई ज्ञान भण्डार, शिव गज, (सिरोही)
९. श्री ग्रन्थ भण्डार, श्री प्रेम सूरीश्वर जी उपाश्रय, पिण्डवाड़ा
१०. श्री जैन पुस्तकालय, कालन्द्री, (सिरोही)
११. श्री जैन पुस्तकालय, किशनगढ़
१२. श्री प्राज्ञ जैन वाचनालय, विजयनगर
१३. श्री महावीर पुस्तकालय, राताकोट
१४. श्री देवमुनि जैन सार्व० पुस्तकालय, भोईवाड़ा, उदयपुर
१५. श्री स्थानकवासी जैन पुस्तकालय, डग, (झालावाड़)
१६. श्री वर्ध० जैन पुस्तकालय, सिंहपोल, जोधपुर

१७ श्री नानक जैन वाचनालय, पाण्डुकला, (नागौर)
१८ श्री स्था० जन पुस्तकालय, बडी सादडी
१९ श्री सरदार जन पुस्तकालय, कानोड
२० श्री वधमान जैन पुस्तकालय, कुश्तला, (सवाईमाधोपुर)
२१ श्री श्वेताम्बर पोरवाल जैन पुस्तकालय एव वाचनालय, सवाईमाधोपुर
२२ श्री श्वेताम्बर जन पुस्तकालय, चौथ का बरवाडा
२३ आचाय पूज्य श्री दौलतराम पुस्तकालय सवाईमाधोपुर
२४ श्री दि० जैन पन्नालाल एलक पुस्तकालय, सवाईमाधोपुर
२५ श्री वद्ध मान स्थानक जैन वाचनालय, आलनपुर (सवाईमाधोपुर)
२६ श्री भवर पुस्तकालय, बीदासर
२७ श्री दीपच द बोथरा सावजनिक वाचनालय, बीदासर
२८ श्री महावीर जन वाचनालय, खुशालपुर
२९ श्री रघुनाथ जन पुस्तकालय, सोजत सिटी
३० श्री शान्ति जन पुस्तकालय, भीलवाडा
३१ श्री वधमान स्थानक जैन पुस्तकालय, अजमेर
३२ श्री वधमान स्थानक जैन वाचनालय, बदनोर
३३ श्री महावीर जन पुस्तकालय, बीकानेर
३४ श्री जैन पुस्तकालय एव वाचनालय, सादडी, (मारवाड)
३५ सेठ श्रीचन्दजी गधैया पुस्तकालय, सरदारशहर
३६ श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी पुस्तकालय, मोमासर, (चूरू)
३७ श्री जैन किशोर मडल पुस्तकालय, मोमासर, (चूरू)
३८ श्री वधमान जैन पुस्तकालय, बाडमेर
३९ श्री गुलाव पुस्तकालय, जयपुर
४० श्री आत्मान द जन सभा पुस्तकालय एव वाचनालय, जयपुर
४१ श्री सरस्वती पुस्तकालय, चौकडी मोदीखाना, जयपुर
४२ श्री पाश्वनाथ जन लायब्र री, जयपुर
४३ श्री जैन ज्ञान पुस्तक भडार, भिनाय, (अजमेर)
४४ श्री सुराना जन लायब्र री, चूरू
४५ श्री शाति पुस्तकालय, राजलदेसर
४६ श्री जन पुस्तकालय, सुजानगढ
४७ श्री गोवि द पुस्तकालय, बीकानेर
४८ श्री किशनच द पुस्तकालय, बीकानेर
४९ श्री सुराना जैन पुस्तकालय, बीकानेर
५० श्री पाश्वनाथ जन पुस्तकालय, सूरतगढ
५१ श्री जन पुस्तकालय, डू गरगढ
५२ श्री व स्था० जन बख्तावर पारमार्थिक पुस्तकालय, किशनगढ

(घ) चिकित्सालय एवं औषधालय

धनी जैन-श्रावकों तथा जैन लोकोपकारी संस्थाओं द्वारा प्रदेश में विभिन्न स्थानों पर शताधिक ऐलोपैथिक, आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक चिकित्सालय व औषधालय खोले गए हैं। वस्तुतः जैन धर्म मे लोकोपकार को, दीन-दुखियो की सेवा को जो महत्त्व प्राप्त है, वह भावना इन संस्थाओ के द्वारा साकार होती दिखाई देती है। हमको जिन चिकित्सा संस्थाओ का परिचय प्राप्त हो सका है, वह यहा दिया जा रहा है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक चिकित्सा-संस्थान रह गये हैं, जिनका जानकारी के अभाव मे उल्लेख नहीं किया जा सका है।

१. **सन्तोकबा दुर्लभजी मेमोरियल अस्पताल, जयपुर**—पद्म श्री लेलशंकर दुर्लभजी ने अपनी मातुश्री एवं पिता श्री की स्मृति मे सन् १९५८ मे सन्तोकबा दुर्लभजी ट्रस्ट की स्थापना की और इसके अन्तर्गत क्रमशः सन् १९६३ मे डाईग्नोस्टिक क्लिनिक, सन् १९६९ मे प्रसव केन्द्र तथा सन् १९७१ मे अस्पताल की स्थापना की। यह अपने ढग का समस्त राजस्थान मे एक ही चिकित्सा केन्द्र है। इसका सुन्दर भवन, साज-सज्जा, सफाई व व्यवस्था प्रत्येक चिकित्सालय के लिए अनुकरणीय है। अस्पताल मे सर्जीकल, मेडीकल, ग्यानोकोलोजी, न्यूरो सर्जरी, पोलियो, आँख, कान एव गला निदान केन्द्र तथा पैथोलोजी आदि विभाग हैं। एक्स-रे की सुविधा उपलब्ध है।

२. **श्री अमर जैन मेडीकल रिलीफ सोसायटी, जयपुर**—मुनि श्री अमरचन्दजी महाराज की स्मृति मे इस सोसायटी की स्थापना २४ फरवरी १९६१ को हुई। स्व० श्री स्वरूपचन्दजी चोरडिया एव स्व० श्री सागरमलजी डागा का इस सस्था को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सोसायटी ने अपने १३-१४ वर्ष के कार्यकाल मे उल्लेखनीय प्रगति की है। इस समय सोसायटी के तत्त्वावधान मे चिकित्सालय, महिला विभाग चिकित्सालय, एक्स-रे क्लिनिक, परीक्षण प्रयोगशाला, टीका केन्द्र, तथा परिवार नियोजन सलाह सुविधा केन्द्र कार्यरत है। सोसायटी ने श्री स्वरूपचन्द चोरड़िया प्रसूति गृह की भी स्थापना की है जो पूर्णतया आधुनिक सुविधा सम्पन्न है।

३. **श्री ओसवाल औषधालय, अजमेर**—इसकी स्थापना स० १९७४ मे सेठ दीवान बहादुर श्री उम्मेदमलजी लोढा के द्वारा हुई। तब से अब तक यह औषधालय बराबर जनता की नि शुल्क सेवा करता आ रहा है। सन् १९५६ मे इसके अन्तर्गत एक सर्जरी विभाग भी खोला गया। इसका सालाना खर्च करीब १५ हजार रुपया है। प्रतिदिन करीब ३००-४०० रोगियो की निःशुल्क सेवा की जाती है। इसकी व्यवस्था एक प्रबन्ध समिति द्वारा होती है जिसके अध्यक्ष श्री सम्पतमलजी लोढ़ा व मत्री श्री लालचंदजी चौपड़ा हे।

४. **श्री दिगम्बर जैन औषधालय, जयपुर**—यह औषधालय जयपुर नगर का सर्वाधिक प्राचीन आयुर्वेदिक औषधालय है जो चौकडी मोदीखाना के लालजी साड के रास्ते मे स्थित है। इसकी स्थापना विक्रम सवत् १९७२ मे हुई। गत ६० वर्षों से यह औषधालय शुद्ध आयुर्वेदिक पद्धति से जनता की बिना किसी जातीय भेदभाव के नि.शुल्क चिकित्सा कर रहा है और अब तक इससे लाखो रोगियो ने आरोग्य लाभ लिया है। यह संस्था धन्वन्तरि औषधालय से भी प्राचीन है तथा अपनी निःस्वार्थ सेवा के कारण लोकप्रिय बनी हुई है। वर्तमान मे श्री प्रकाशचन्द कासलीवाल इसके अध्यक्ष व श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ मन्त्री है।

५ श्री सेठिया जैन होम्योपैथिक औषधालय, बीकानेर—श्री अगरचद भरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था द्वारा सचालित यह औषधालय बीकानेर नगर की प्रमुख चिकित्सा-सस्था है। यह औषधालय सन् १९४६ से जनता की सेवा कर रहा है। यहा नि शुल्क चिकित्सा की व्यवस्था है। असहाय एव निधन रोगियो को पथ्य, भोजन सामग्री एव दूध हेतु नकद राशि देन का भी प्रावधान है।

गत वर्ष ६०,००० (साठ हजार) से अधिक रोगियो को इसका लाभ मिला है। बीकानेर नगर, जिला एव निकटवर्ती गावो के रोगी ही नही, राजस्थान के अय भागों, दिल्ली, आसाम, हरियाणा, बगाल आदि प्रान्तो से भी रोगी अपनी चिकित्सा हेतु यहा आते हैं। अनेक व्यक्तियो ने पत्राचार द्वारा विदेशा से हमारे चिकित्सा अधिकारी (डॉ० हेमचन्द्र भट्टाचार्य) से परामर्श भी किया है।

इस औषधालय म सैकडो ऐसे रोगियो की चिकित्सा की गई है जो अन्य पद्धतिया द्वारा की गई असाध्य रोगो की चिकित्सा से निराश हो चुके थे। अनेक रोगियो को इस चिकित्सा द्वारा शल्य-चिकित्सा के कष्टा से बचाया गया है।

औषधालय के चिकित्सा अधिकारी की विशिष्ट निदान शैली, मधुर व्यवहार एव दीर्घकालीन अनुभव के कारण दिन ब दिन अधिक रोगी पजीयत हो रहे हैं।

६ एस० जोरास्टर एण्ड कम्पनी पॉली क्लिनिक, जयपुर—कम्पनी के सस्थापक सेठ राजमलजी गोलेछा व सोहनमलजी गोलेछा की स्मृति म यह क्लिनिक प्रारम्भ की गई। यहा पर अनुभवी चिकित्सको द्वारा नाम मात्र के शुल्क पर रोगी को परामर्श व निदान सुलभ कराया जाता है।

७ पक्षी चिकित्सा गृह जौहरी बाजार जयपुर—प्रारम्भ म कबूतर खाने के रूप मे स्थापित यह चिकित्सालय आज पक्षिया की चिकित्सा की दृष्टि से आधुनिकतम सुविधाओ से युक्त है। इसमे बीमार बन्दरो, कबूतरा, तोता, चील कोए आदि का ऐलोपथिक तरीके से इलाज होता है। इसका सचालन व० स्थानकवासी जन श्रावक सघ जयपुर द्वारा होता है।

८ श्री दिगम्बर जन धर्मार्थ औषधालय जयपुर—यह आयुर्वेदिक औषधालय खजाचियो की नसिया ट्रस्ट के अन्तर्गत चलता है। इसमे बिना किसी साम्प्रदायिक भेद भाव के रोगियो की नि शुल्क सेवा की जाती है।

९ श्री शान्तिसागर दिग० जन औषधालय, जयपुर—इसकी स्थापना सेठ बनजीलाल ठोलिया के परिवार द्वारा आचार्य श्री शान्ति सागरजी म० की प्रेरणा से स० १९८९ म की गई। यहा रोगिया को नि शुल्क औषधिया प्रदान की जाती हैं।

१० श्री धर्मार्थ औषधालय, जयपुर—इसकी स्थापना श्री पूजा प्रचारक समिति, जयपुर की ओर से सन् १९६३ मे की गई। अब तक हजारो रोगियो न इसमे नि शुल्क लाभ उठाया है। यहा होम्योपैथिक एव आयुर्वेद पद्धति स चिकित्सा सुविधा उपलब्ध है।

११ श्री दिग० जन औषधालय, रामपुरा, कोटा—यह लगभग ७० वर्ष पुरानी सस्था है। यहा बिना किसी भेदभाव के प्रतिदिन ४०० ५०० रोगी लाभ उठाते हैं। रोगिया को औषधिया भी

८. भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी को व्यापक एवं रचनात्मक ढंग से मनाने हेतु विविध प्रकार के त्याग एवं प्रत्याख्यान करवाने हेतु अखिल भारतीय वीर निर्वाण साधना समारोह समिति का गठन।

९. आगम एवं अन्य विविध प्रकार के सद् साहित्य का प्रकाशन करना। अब तक मण्डल की ओर से लगभग ५० ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

मण्डल के अन्तर्गत संचालित विभिन्न संस्थाओं का परिचय इस प्रकार है—

(क) श्री स्था० जैन स्वाध्यायी संघ जोधपुर—इस संघ की स्थापना संवत् २००२ में आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के सदुपदेश से हुई। इसका मुख्य कार्यालय घोड़ों का चौक, जोधपुर में है। इसके संयोजक हैं श्री सम्पतराजजी डोसी। विगत वर्षों में संघ ने सराहनीय प्रगति की है। वर्तमान में लगभग १५० स्वाध्यायी श्रावक हैं जो राजस्थान के अतिरिक्त मद्रास, मैसूर, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, गुजरात आदि प्रान्तों में अपनी सेवाएं दे चुके हैं। संघ के प्रमुख उद्देश्य हैं—

१. श्रावक समाज में सम्यग्ज्ञान का प्रचार व प्रसार करना जिससे प्रत्येक क्षेत्र में संत सतियों की अनुपस्थिति में भी सामायिक, स्वाध्याय, धर्म ध्यान आदि की प्रवृत्ति चालू रह सकें।

२. पर्वाधिराज पर्युषण के अवसर पर जिन-जिन क्षेत्रों में संत सतियों के चातुर्मास न हो वहां-वहां स्वाध्यायी श्रावकों को भेज कर धर्म आराधना कराना।

३. स्वाध्यायियों के ज्ञान, दर्शन, तप, त्याग में वृद्धि हेतु तथा नये-नये स्वाध्यायी धार्मिक अध्यापक तैयार करने हेतु विभिन्न प्रान्तों में समय-समय पर धार्मिक शिविरों का आयोजन करना।

४. नगर-नगर व गांव-गांव में घर-घर के बालक-बालिकाओं एवं नवयुवकों में धार्मिक संस्कार डालने हेतु धार्मिक पाठशालाएँ चलाना एवं स्थानीय धार्मिक शिक्षण शिविर लगाना।

५. संघ के उपयोगी धार्मिक साहित्य का प्रकाशन करना।

निम्नलिखित स्थानों पर संघ की प्रमुख शाखाएँ हैं—

१. सवाई माधोपुर—इस शाखा के अन्तर्गत सवाई माधोपुर से लगाकर कोटा तक का क्षेत्र है। गत वर्ष तक सदस्यों की संख्या ६५ थी। इस वर्ष के अन्त तक १०१ नये स्वाध्यायी बनने की आशा है।

२. बैंगलोर—कर्नाटक प्रान्त की इस शाखा की स्थापना गत वर्ष ही हुई। वर्तमान में ११ सदस्य हैं।

३. मद्रास—इस शाखा की स्थापना भी गत वर्ष हुई। यहां कुल ७ सदस्य हैं।

४. पाली—इस शाखा की स्थापना भी गत वर्ष हुई। सदस्य संख्या २० है।

५. डूंगला—इस शाखा की स्थापना इसी वर्ष हुई।

गत वर्ष रूंडेडा, नवाणिया, पारसोली, बोहेडा आदि स्थानों पर स्थानीय शिविर लगाये गये तथा कई नये स्वाध्यायी बनाये गये। मेवाड़ क्षेत्र में डूंगला, भादसोडा, आकोला, कपासन, भूपालसागर, खैरोदा, वल्लभनगर, धासा, देलवाड़ा, डबोक, नाथद्वारा, जासमा, फतहनगर, सनवाड़ आदि कई स्थानों में ८२ नये स्वाध्यायी बने।

उपयु क्त स्थाना के अलावा अनेक गावो व नगरा जसे अजमेर, दिल्ली, जलगाव, उटक्मड, कोइम्बटूर, पीपाड, रणसीगाँव, बिलाडा, जालोर, बालसर, भोपालगढ, कोमाणा आदि के स्वाध्यायी ह।

(ख) अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति, जोधपुर—भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण वप का साधना और त्यागमय ढग स मनाने हेतु आचाय श्री हस्तीमलजी म० सा० के सद्उपदेशो से ७-१-७२ को राजस्थान उच्च यायालय क न्यायमूर्ति माननीय श्री मोहननाथजी मोदी की अध्यक्षता म इस समिति का गठन किया गया। समिति ने समाज के समक्ष २५ सूत्रीय कायक्रम प्रस्तुत किया जिसमे २५०० मास त्यागी, २५०० शराब त्यागी, २५०० धूम्रपान त्यागी आदि सामाजिक दुर्व्यसनो तथा दहज प्रथा, रात्रि भोजन, खोट माप तौल आदि सामाजिक कुरीतियो को मिटान का सकल्प किया है। इसके साथ ही भगवान् महावीर के सिद्धा ता को हम अपन दनिक जीवन म उतार सकें इस हेतु सामायिक और स्वाध्याय के भी कायक्रम प्रस्तुत किए है। इन सभी सकल्पो म २५००-२५०० यूनतम लक्ष्य रखा है। समिति ने अपन लक्ष्यो क पूर्ति हतु व्यक्तिगत सम्पक पर बल दिया एव देश के विभिन्न भागा जस मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र गुजरात मद्रास कर्नाटक आदि प्रान्तो मे प्रचाराथ अपने कायकर्ता भेजे। मध्यप्रदेश, गुजरात व राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रो मे प्रचार कर उन्हे मासाहार एव मदिरापान आदि छुडवाए। इसी प्रकार मद्रास, कर्नाटक आदि प्रा तो म स्वाध्याय और सामायिक की प्रवृतिया बढ़ान हतु प्रचार किया। परम श्रद्धेय आचाय प्रवर क शुभाशीर्वाद स तसतियाजा म० सा० की प्रेरणा एव सामाजिक कायकर्ताओ के सद्सहयोग के फलस्वरूप समिति ने अपन अधिकतम लक्ष्यो की पूर्ति कर ली है। इन लक्ष्या की पूर्ति म समिति को श्री शा तिच द्रजी भण्डारी, श्री दौलतरूपच दजी भण्डारी, श्री सम्पतराजजी डोसी, श्री मदनराजजी सिंघवी, श्री भवरलालजी चोपडा, श्री मोहनराजजी चामड, श्री मोहनलालजी जन, श्री पूनमच दजी बरडिया, अहमदाबाद, श्री मोतीलालजी सुराणा, इन्दौर आदि महानुभावो का विशेष सहयोग रहा। समिति के युवा मत्री श्री ज्ञान द्रजी बाफना एव माणकमलजी भण्डारी की कायव्यवस्था सराहनीय रही।

(ग) श्री महावीर धर्म प्रचार सघ—भगवान् महावीर क २५००वें निर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर आचाय प्रवर श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा स सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल क तत्वावधान म गठित अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति द्वारा प्रस्तुत २५ सूत्रीय कायक्रमो के बढते चरण म दिनाक २६-११-७४, शुभ मिति कार्तिक सुदि १५ सम्वत् २०३१, सवाई माधोपुर वर्षावास क समापन दिवस पर इस सघ की स्थापना की गई। इसका केन्द्रीय कायालय जयपुर म व प्रधान कायालय जोधपुर म है।

सघ के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ह—

१ देश क विभिन्न प्रा तो म जन घरो का सर्वेक्षण करना एव वहा क विशिष्ट व्यक्तियो की तालिकाएँ बनाना।

२ उक्त क्षेत्रो म प्रवृत्तमान धार्मिक एव सामाजिक गतिविधियो की जानकारी एकत्रित करना।

३ सामायिक सघ एव स्वाध्याय सघ की प्रवृतियो को बढ़ावा देन हतु स्थान स्थान पर एस सघो का गठन करना।

४. धार्मिक शिक्षण हेतु यथा संभव धार्मिक पाठशालाएं खोलने का प्रयास करना व स्थानीय धार्मिक शिविरों के आयोजन की प्रेरणा करना ।

५. सामाजिक कुरीतियों एवं दुर्व्यसनों के निवारणार्थ प्रयत्न करना ।

६. मुख्य तिथियों पर स्थानीय कत्लखाने बन्द रखवाने एव अगता पालन करने के लिए जीव दया समितियों का गठन करना ।

७. धार्मिक सत् साहित्य, उपकरण आदि उपलब्ध करवाने हेतु व्यवस्था करना ।

८. धर्म स्थानों को सुचारु रूप से व्यवस्थित रखने का प्रबन्ध करना ।

९. स्वधर्मी वात्सल्य सेवा हेतु कार्य करना एवं समाज के असमर्थ भाई बहिनों की उचित सहायता का प्रबन्ध करना ।

१०. अन्य ऐसे सभी कार्य करना जो धर्म प्रवृत्तियों को बढ़ाने मे सहायक हों ।

प्रचारकों की श्रेणियां :—

१. विशिष्ट प्रचारक : जो व्यक्ति एक साल भर सेवा देंगे वे विशिष्ट प्रचारक कहलायेंगे ।

२. प्रेमी प्रचारक : जो व्यक्ति वर्ष मे तीन माह सेवा देगे तथा प्रतिमाह एक दिन सेवा देंगे वे प्रेमी प्रचारक कहलायेंगे ।

३. सामान्य प्रचारक : जो व्यक्ति एक वर्ष मे लगातार एक माह एव प्रतिमाह एक दिन सेवा देंगे वे सामान्य प्रचारक होगे ।

४. साधारण प्रचारक : जो व्यक्ति एक वर्ष में एक साथ आठ दिन एव प्रतिमाह एक दिन सेवा देंगे वे साधारण प्रचारक कहलायेंगे ।

नियम :—

१. आजीवन सप्त व्यसनों (मांस, मदिरा, शिकार, वेश्यागमन, स्त्रीगमन, जुआ, चोरी) का त्याग ।

२. प्रचारक का जीवन, सरल, सात्विक और आचारनिष्ठ होना ।

सेवाकाल के नियम :—

१. स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह का त्याग ।

२. सामायिक, स्वाध्याय, व्रत प्रत्याख्यान से ओतप्रोत दिनचर्या ।

३. धार्मिक क्रिया मे धोती व दुपट्टे का प्रयोग ।

४. प्रतिदिन के कार्यों की डायरी लिखना ।

५. प्रचारक को यात्रा व्यय लेना अनिवार्य होगा ।

६. किसी प्रकार की भेंट स्वीकार नही करेंगे ।

७. किसी प्रकार का धूम्रपान नहीं करेंगे ।

८. सूर्योदय से पहले चाय नाश्ता नही लेना ।

निम्न का भी यथासम्भव पालन करें —

१ रात्रि भोजन का त्याग।

२ स्थानक व धार्मिक गतिविधियों मे दुपट्टे का प्रयोग।

३ धार्मचर्चा करते समय मुहपत्ति या रुमाल का प्रयोग।

कार्यक्रम के विशेष बिन्दु —

१ प्रत्येक क्षेत्र मे सामायिक व स्वाध्याय का प्रचार करना तथा स्वाध्यायियो एवं योग्य कार्यकर्ताओ को तैयार करना।

२ धार्मिक शिक्षा का उचित प्रबन्ध करने की प्रेरणा देना यथासंभव धार्मिक पाठशालाएं खुलवाना अथवा स्थानीय शिविर लगवाने की प्रेरणा देना। धार्मिक परीक्षाओ के लिए परीक्षार्थियों को तैयार करना।

३ जहाँ १० या इससे अधिक घर हो वहाँ पर्युषण पर्व मे स्वाध्यायियो को बुलाने की प्रेरणा करना।

४ युवक मण्डल, बाल मण्डल एवं महिला मण्डल की स्थापना करना एवं उनमे जागृति भरना।

५ अनाहिज, निर्धन, जरूरतमन्द आदि व्यक्तियों को सहायता दिलवाने के लिए श्रीमन्तों को प्रेरणा देना।

६ विविध विषयों पर आवश्यकतानुसार भाषण, संगोष्ठियां, निबन्ध लेखमालाएं आदि साहित्यिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना।

७ स्थानीय आवश्यकताओं के मुताबिक कार्य करना।

२ श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर—श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना सं० २०१९, मिती आसोज सुदना २ दिनांक ३० सितम्बर, १९६२ को श्रद्धेय आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० के सान्निध्य मे उदयपुर नगर मे हुई। इसका मुख्य कार्यालय बीकानेर मे है व राजस्थान तथा देश के अन्य भागों मे इसकी कई शाखाएं कार्यरत हैं। संघ का उद्देश्य श्रमण संस्कृति और आचार विचार मूलक सिद्धांतो के धरातल पर स्वस्थ समाज का निर्माण करना है। जिसमें व्यक्ति को धार्मिक, नैतिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में समता, समानता और स्वतन्त्रता प्राप्त हो जिससे व्यक्ति समतामय नैतिक धरातल पर स्वनिर्माण, आध्यात्मिक विकास करते हुए पुरुष, पुरुषत्व तथा राष्ट्रक राष्ट्र उत्थान में सहयोगी बने। उपरोक्त इन सभी दृष्टिकोणों को ध्यान मे रखते हुए विचारार्थ मन्तव्य संघ के उद्देश्य—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की वृद्धि और समाजोन्नति के कार्यों का कार्यान्वित किया। उद्देश्य की क्रियान्विति करने के लिए संघ ने निम्नलिखित प्रवृत्तियों का संचालन अपने विभाग मे किया है—

१ जैन साहित्य का निर्माण तथा प्रचार एवं प्राचीन साहित्य की खोज करना और इसका ग्रस्वावलोकन करना।

२. धार्मिक शिक्षा का प्रचार करना ।

३. समाज सेवा तथा पारमार्थिक कार्यों को करना एवं दूसरो को प्रोत्साहित करते हुए सहयोग देना ।

४. स्वधर्मी सहयोग प्रदान करना ।

५. जैन छात्रो को छात्रवृत्ति प्रदान करना व छात्रावास का निर्माण करना ।

६. जैन धर्म का प्रचार एव संघ की प्रवृत्तियो को बढाने के लिए पत्र का प्रकाशन करना ।

७. जीवदया के कार्यों के लिए प्रयत्न करना ।

८. श्रमण-सस्कृति के रक्षार्थ शुद्ध चारित्र पालने वाले साधुमार्गी श्रमणवर्ग के सुसंगठन में सहयोग देना ।

९. उक्त प्रवृत्तियो से सबंधित और पूर्ति मे कोई कार्य करना ।

उक्त प्रवृत्तियो के क्रियान्वयन हेतु वर्तमान मे संघ द्वारा निम्नलिखित कार्य हो रहे हैं—

१. सत्साहित्य का प्रकाशन—अब तक लगभग २५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

२. प्राचीन अनुपलब्ध साहित्य की सुरक्षा व उस पर शोध-कार्य हेतु आचार्य श्री गणेश ज्ञान भण्डार की स्थापना की गई है ।

३. धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना एव सचालन—हजारो परीक्षार्थी बोर्ड की विभिन्न परीक्षाओ मे सम्मिलित होते है ।

४. धार्मिक-नैतिक शिक्षणशालाओ मे सहयोग—कई स्थानो पर संघ की ओर से इन शालाओ का संचालन किया जाता है ।

५. श्री गणेश जैन छात्रावास का संचालन—उदयपुर मे छात्रावास का निजी भवन है जिसमे छात्र रहते है ।

६. अध्ययनशील छात्रो को छात्रवृत्ति ।

७ स्वधर्मी सहयोग—जरूरतमद भाई-बहिनो को आर्थिक सहयोग प्रदान किया जाता है ।

८. धर्मपाल जैन प्रवृत्ति—आचार्य श्री नानालालजी म० सा० की प्रेरणा से मालवा-क्षेत्र मे बलाई जाति के भाई-बहिनो को संस्कारशील बनाने मे यह प्रवृत्ति विशेष सक्रिय है।

९. जीवदया संबधी कार्यों को करना ।

१०. 'श्रमणोपासक' पाक्षिक पत्र का नियमित प्रकाशन ।

११. महिला उद्योग मंदिर (रतलाम) की स्थापना ।

१२. समता समाज रचना का प्रयत्न ।

वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री गुमानमलजी चोरड़िया व मत्री श्री भंवरलालजी कोठारी है ।

३. श्री अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, लाडनूं—तेरापंथ युवक परिषद् युवको का एक गतिशील सगठन है। संरचना और संगठन के माध्यम से समाज की युवा पीढ़ी को सही कार्य दिशा प्रदान करना इसका लक्ष्य है। तेरापंथ धर्म संघ के

सचालक युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी का जीवन्त व्यक्तित्व युवको का प्रेरणा-सबल है। उनके निर्देशन म चलने वाली प्रत्यक प्रवृत्ति मे अपनी शक्ति का नियोजित करन म परिषद् का प्रत्येक सदस्य अपना आत्मगौरव मानता है। यही कारण है कि तेरापथ युवक परिषद् के पवित्र उद्देश्यो की पूर्ति मे श्रद्धास्पद आचार्य प्रवर का आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है।

परिषद् का मुख्य कार्यालय लाडनू मे है पर देश के विभिन्न भागो म इसकी शाखाए गठित की गई हैं। युवा भावनाओ का प्रतिनिधित्व करने तथा जीवन के समग्र पक्षो को समग्रता से देखने का दृष्टिकोण देन के लिये परिषद् ने 'युवादृष्टि' मासिक पत्र प्रारम्भ किया है। केन्द्रीय कार्यालय द्वारा देश क विभिन्न अचलो म फैली हुई अपनी शाखा परिषदो को एक निश्चित और सुनियोजित कार्यक्रम 'पाथेय' के माध्यम स प्रतिमाह प्रसारित किया जाता है। सत्सस्कारो के निर्माण तथा सयम सहअस्तित्व और अनुशासन का सक्रिय प्रशिक्षण देने के लिये विभिन्न परिषदो द्वारा अपने-अपने क्षेत्रो मे शिविर आयोजित किये जाते हैं। केन्द्रीय परिषद् द्वारा वर्ष मे एक बार अखिल भारतीय युवक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया जाता है। जन्म, विवाह और मृत्यु के प्रसग पर जैन सस्कार विधि के प्रसार का उपक्रम परिषद् ने किया। परिषद् ने इसके लिये एक पुस्तिका भी प्रकाशित की है। समाज मे इसका अच्छा स्वागत हुआ है। पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के अवसर पर भगवान् महावीर की वाणी को जन-जन मे प्रसारित करने का व्यापक कार्यक्रम परिषद् ने अपने हाथ म लिया है। स्थान स्थान पर तथा हर गली मोहल्ला मे महावीर वाणी को अकित करन का कार्य परिषद् की विभिन्न शाखाए कर रही हैं। इसी सदर्भ मे ऐसे पच्चीस सौ युवको को तैयार करने का गुरुतर कार्य परिषद् ने प्रारम्भ किया है जो शादी या विवाह के प्रसग मे किसी प्रकार का लेन देन का ठहराव नही करेगे। स्वस्थ समाज की रचना के क्षेत्र म यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। बालको मे धार्मिक ज्ञान और सस्कार निर्माण के लिये देश के अनेक भागो म ज्ञानशालाओ का व्यवस्थित क्रम चल रहा है। समाज के योग्य युवको को काम दिलाने का उपक्रम नियुक्ति केन्द्र के माध्यम से किया जाता है। योग्य और प्रतिभा सम्पन्न छात्रो को छात्रवृत्ति देन का क्रम प्रारम्भ हुआ है। जन साधारण की सुविधा एव ज्ञान विकास क लिये देश के विभिन्न भागो म पुस्तकालय एव वाचनालयो का सचालन विभिन्न तेरापथ युवक परिषदो द्वारा किया जाता है। जनता के लिये यह एक उपयोगी कार्यक्रम सिद्ध हुआ है। बुक बैंक द्वारा अध्ययनशील और जरूरतमन्द छात्रो को इस प्रवृत्ति के द्वारा अनेक क्षेत्रो म पाठ्यपुस्तको की सुविधा प्रदान की जाती है। समाज की उन बहिनो को, जिन्हे आजीविका के लिये काम की आवश्यकता है, परिषद् के सदस्य विविध उपक्रमो के माध्यम से सहायक योजना क्रियान्वित करने के लिये अग्रसर हो रहे हैं। वर्तमान म इसके अध्यक्ष श्री धरमचन्द चोपडा और मत्री श्री विजयसिंह कोठारी है।

४ श्री जिनदत्तसूरि मण्डल, दादावाडी, अजमेर—जैन समाज की आध्यात्मिक एव सामाजिक प्रगति को लक्ष्य मे रखते हुये इसकी स्थापना सन् १९५२ म समाज के सेवाभावी श्रीमान् मागीलालजी सा० पारख के कर कमलो द्वारा हुई। उस समय से ही यह सस्था बडे उत्साह, लगन एव निष्ठा से सामाजिक, धार्मिक आदि विविध क्षेत्रो मे प्रशसनीय एव व्यवस्थित रूप से सेवा कार्य कर रही है। जिससे समाज के बाल, तरुण एव वृद्धानुभवी जनता को पर्याप्त लाभ हुआ और समाज की प्रगति भी हुई।

वार्षिक मेला—जन जागरण, सामाजिक सम्मेलन एवं धार्मिक प्रचार के उद्देश्य से प्रतिवर्ष युगप्रधान दादा सा० जिनदत्तसूरिजी की स्मृति में आषाढ़ शुक्ला १०-११ को अखिल भारतीय स्तर पर मेले का आयोजन होता है, जिसमें भारत के भिन्न-भिन्न भागों, नगरों तथा ग्रामों से सैकड़ों की संख्या में श्रद्धालु भक्तजन आकर पूज्यपाद गुरुदेव के श्री चरणों में श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं।

पुस्तकालय—संस्था के अन्तर्गत उच्च कोटि की साहित्यिक सामग्री से समृद्ध एक विशाल पुस्तकालय है, जिसमें विभिन्न प्रकार के लगभग ७००० उपयोगी ग्रंथ हैं। विद्वज्जन यहां प्रवास कर स्वाध्याय, समालोचना तथा शोध कार्य सुचारु रूप से करें, एतदर्थ समुचित व्यवस्था है।

छात्रावास—यहां पर बिना शुल्क विशेष के छात्रों को स्थान देने की सुविधा है। प्रति वर्ष अनेक अध्ययनशील छात्र यहां आवास प्राप्त कर लाभान्वित होते हैं।

ऋण-छात्रवृत्ति—समाज के होनहार बालकों के लिये प्रतिवर्ष आवश्यकतानुसार ऋण एवं छात्रवृत्तियां दी जाती हैं जिनसे छात्रों को अध्ययन संबंधी आवश्यकता व अभाव की पूर्ति होती है। अब तक कुल ८६,००० रु० की छात्रवृत्तियां योग्य छात्रों को दी जा चुकी हैं। ऋण प्राप्त करने वाले छात्र अध्ययन के पश्चात् ऋण राशि तत्परता पूर्वक लौटा देते हैं। विद्या के क्षेत्र में भी यह संस्था अच्छी प्रगति कर सकी है। जो ओसवाल कन्यायें संस्कृत लेकर अपना अभ्यास आगे बढाती हैं उन्हें छात्रवृत्ति देकर उनका निरन्तर उत्साहवर्धन किया जाता है। इस योजना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि बिना किसी स्थाई कोष के १२ वर्ष से निरन्तर सफलतापूर्वक उद्देश्य पूर्ति में तत्पर है। कुछ वर्षों से उदारदानी महानुभावों से प्रति वर्ष लगभग १०,००० रु० की धनराशि एकत्रित कर वितरण कर दी जाती है। ऋण लेने वाले छात्र ऋण राशि के भुगतान के साथ ही अपनी ओर से संस्था को यथाशक्ति धनराशि प्रदान कर सक्रिय सहयोग भी देते हैं।

निराश्रितों को सहायता—गत चार वर्षों से समाज के अशक्त बन्धुओं और बहनों को जो निराश्रित हैं अथवा जिनके पास जीवनयापन का कोई साधन नहीं हैं उन्हें उदार दानी सज्जनों के आर्थिक सहयोग से सक्रिय सहायता देने की व्यवस्था है। इससे कई बन्धु व बहिनें लाभान्वित हो रही हैं।

प्रकाशन—किसी भी समाज, जाति एवं धर्म को यदि जीवित रहना है तो समाज एवं जाति व उस धर्म को मानने वालों में सुसंस्कारों का बीजारोपण करने के लिये सुसाहित्य की अत्यंत आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण को लेकर अब तक इस योजना के अन्तर्गत २२ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

५. राजस्थान जैन सभा जयपुर—राजस्थान जैन सभा दिगम्बर जैन समाज जयपुर का एक मात्र ऐसा प्रतिनिधि संगठन है जो जैन समाज के सभी वर्गों को संगठित कर उसके सर्वांगीण विकास में सक्रिय प्रयत्नशील है। समाज के साहित्यिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक एवं आर्थिक उन्नति में कार्यक्रम हेतु सभा का स्वयं का एक संविधान है जो राजस्थान सोसाइटीज एक्ट के अन्तर्गत पंजीकृत है।

अपने कार्यकाल में सभा ने जहां जैन मान्यताओं और जैन समाज के हितों की रक्षा के लिये प्रयत्न किये हैं वहां नवयुवकों में जीवन एवं स्फूर्ति उत्पन्न करने की दिशा में काफी महत्वपूर्ण भूमिका

प्रदा की है। जनमानस को धर्म एव कर्तव्य की ओर आकृष्ट करने की दृष्टि से पर्युषण पर्व, क्षमापन समारोह, महावीर जयन्ती तथा निर्वाणोत्सव आदि प्रमुख पर्वों पर विविध आयोजन सभा की मुख्य गतिविधिया हैं।

सामाजिक कुरीतियो के उन्मूलन हेतु सभा न समाज का ध्यान आकृष्ट करते रहने का कार्यक्रम भी लिया हुआ है तथा उस दिशा म सतत् प्रयत्नशील है। साहित्यिक गतिविधियो म समय-समय पर छोटे छोटे ट्रेक्टस् प्रकाशित किये हैं और महावीर जयन्ती के अवसर पर महावीर जयन्ती स्मारिका' का प्रकाशन किया जाता है—यह प्रकाशन अपने आप मे महत्त्वपूर्ण एव उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जयपुर के मूक समाज सेवी मास्टर मोतीलालजी सघी का स्मृति दिवस मनाना भी सभा की एक नियमित गतिविधि बनी हुई है इसका मुख्य उद्देश्य सेवाभावी कार्यकर्ताओ को तैयार करना है।

सभा की गतिविधि केवल समारोहो के आयोजन तक ही सीमित नही रही है। राजस्थान विधान सभा मे प्रस्तुत किये गये नग्न विरोधी बिल को वापिस कराने राजस्थान सरकार द्वारा अनन्त चतुर्दशी एव सवत्सरी का ऐच्छिक अवकाश स्वीकृत कराने राजस्थान विधान सभा द्वारा पारित राजस्थान ट्रस्ट एक्ट मे सशोधन कराने तथा जन-गणना म जैन सम्प्रदायो के सभी वर्गों का जैन लिखवाने आदि क्षेत्रो मे भी इस सभा न काफी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

जयपुर म पधारे आचार्यों, मुनियो, तथा विद्वानो के भाषणो विचार गोष्ठियो के आयोजन भी सभा कराती रहती है तथा समाज के लोगो को उनके द्वारा विशेष कार्य सम्पन्न करने, विदेश यात्रा से लौटने अथवा उच्च स्थान प्राप्त करने पर भी उन्हें सम्मान देने की दृष्टि स समय समय पर अभिनन्दन समारोह के आयोजन भी सभा द्वारा किये जाते हैं।

सभा मे कार्य समिति के लिये प्रतिवर्ष चुनाव होते हैं। विधानानुसार क्रम स सात सदस्यो का रिटायरमेंट होता है और उनके स्थान पर नवीन चुनाव बेलट पद्धति द्वारा कराये जाते हैं। वर्तमान मे सभा के अध्यक्ष श्री कपूरचन्द पाटनी और मत्री श्री रतनलाल छाबड़ा हैं।

६ *श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था बीकानेर*—मरुस्थल म सरस्वती सुरसरि प्रवर्तित करने का भगीरथ प्रयत्न सेठिया बन्धु द्वारा (श्री अगरचन्दजी एव श्री भैरोदानजी) ने सन् १९१३ मे किया। तदनन्तर ज्ञानरश्मियो सम्पूर्ण भारत म प्रसरित करने के उद्देश्य से सस्था मे ग्रन्थालय, प्रकाशन विभाग सिद्धान्तशाला आदि खोले गये। गत ६२ वर्षों मे सस्था न जैनधर्म एवं दर्शन के प्रचार-प्रसार का जो कार्य किया है वह चिर स्मरणीय रहेगा। सस्था भवन मरोठी सेठियो के मोहल्ले मे मुख्य सडक पर स्थित है। सस्थापको ने दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाया और कलकत्ता म सस्था के मकान खरीद लिए जिसके किराए और ब्याज म सस्था का कार्य सुचारु रूप से चलता आ रहा है। स्व० श्री जेठमलजी सेठिया की मत्री के रूप मे उल्लेखनीय सेवाए रही हैं। वर्तमान म श्री जुगराजजी सेठिया सस्था के मत्री हैं। सम्प्रति सस्था के निम्नलिखित विभाग हैं—

(१) प्रकाशन विभाग—वैदिक सस्कृति के प्रचार प्रसार हेतु जिस प्रकार गीता प्रेस गोरखपुर ने कार्य किया है, उसी स्तर पर सस्था ने जैनधर्म दर्शन के व्यापक प्रचार प्रसार का कार्य किया है। सस्था न निजी मुद्रणालय क्रय कर बडे पैमाने पर ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। अब तक सेठिया जैन ग्रन्थमाला के १४० पुष्प प्रकाशित हुए हैं। सस्था का सदा यही उद्देश्य रहा है कि पुस्तकें लागत मूल्य या उससे भी कम मूल्य पर उपलब्ध की जायें। अब तक विविध ग्रन्थों की हजारो प्रतियो का मूल्य

'सदुपयोग', 'नित्य पठन', 'ज्ञानाराधन', इत्यादि संस्था ने सम्यक्-निर्माण की दिशा में सराहनीय कार्य किया है। सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल का थोकड़ा आदि अनेक पुस्तकों ने प्रामाणिक स्थान लिये हैं और इनका बड़े पैमाने पर अध्ययन किया जाता रहा है। हिन्दी बालशिक्षा एवं जैन सिद्धान्त [illegible] नामक ग्रन्थों की मुक्तकंठ से प्रशंसा हुई है। जैन सिद्धान्त बोल संग्रह (भाग १–८) तो जैन धर्म दर्शन का विश्वकोष है। इसमे बोल-क्रम से जैन ग्रन्थों का निचोड़ संगृहीत है।

(२) पुस्तक उपहार विभाग—संस्था द्वारा विविध पुस्तकालयों, अध्ययन केन्द्रों, सन्त-सतियाजी एवं अन्य पाठकों को उपहार स्वरूप ग्रन्थ भेजने का प्रावधान है। प्रतिवर्ष (लगभग ५००) रु० के ग्रन्थ भेंट स्वरूप प्रदान किए जाते हैं। इनमें मुख्य रूप से संस्था के प्रकाशन होते हैं।

(३) दीक्षोपकरण एवं धर्मोपकरण विभाग—दीक्षार्थी भाई-बहनों के लिए ओघे, पातरे, माला, पूंजणी, कम्बल, डोरी आदि उपकरण संस्था द्वारा प्रदान करने का प्रावधान है। पातरे, ओघे, कपड़ा आदि सभी सम्प्रदाय के मुनिराज ले सकते हैं। इसी प्रकार धार्मिक उपकरण भी संस्था में संगृहीत हैं। पूंजणी, आसन, ओघे आदि बिक्रयार्थ भी उपलब्ध किए जाते हैं।

(४) सेठिया जैन छात्रावास—जैन आवासीय शिक्षण संस्थाओं में सेठिया जैन छात्रावास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सन् १६४६ से चल रहा है। इसमें प्रविष्ट छात्रों के लिए आवास, भोजन, बिजली, पानी आदि की निःशुल्क व्यवस्था संस्था की ओर से है। संस्था को गर्व है कि छात्रावास में अध्ययन कर सैकड़ों छात्र आज लब्ध प्रतिष्ठ चिकित्सक, निदेशक, आचार्य, व्याख्याता, प्राध्यापक, अभियंता, प्रशासक, लेखक, सम्पादक, व्यापारी, शिक्षक आदि के रूप में समाज एवं राष्ट्र की सेवा कर रहे हैं। छात्रावास में रहकर उन्होंने व्यावहारिक शिक्षा तो ग्रहण की ही, साथ में धार्मिक अध्ययन से उनमें संस्कार-निर्माण भी हुआ है।

(५) सेठिया जैन ग्रन्थालय—ग्रन्थालय में हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेन्च, जर्मन, अरबी प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओं की २०००० पुस्तकें हैं। विविध विषयों के चुनिन्दा ग्रन्थों का संग्रह कर संस्थापकों ने समाज को एक निधि दी है। सैकड़ों ग्रन्थों की एकाधिक प्रतियां हैं और अनेक दुर्लभ ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। वाचनालय उपविभाग में त्रैमासिक, मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक एवं दैनिक—कुल ३० पत्र-पत्रिकाएं आती हैं।

(६) कन्या पाठशाला—सन् १६२८ से सेठिया जैन कन्या पाठशाला कार्यरत है इसमें प्राथमिक स्तर का अध्ययन कराया जाता है। शैक्षणिक एवं व्यावहारिक ज्ञान के साथ छात्राओं को नैतिक व धार्मिक शिक्षा दी जाती है जिससे उनमें धार्मिक संस्कार जाग्रत हों। साथ ही छात्राओं को सिलाई, कसीदा, स्वेटर बुनना आदि भी सिखाया जाता है। सम्प्रति, १४५ छात्राएं अध्ययन कर रही हैं।

(७) सिद्धान्तशाला एवं विद्यालय—सन्त-सतिया जी को पढ़ाने के लिए संस्था द्वारा पूर्ण व्यवस्था की गई है। उन्हें व्याकरण (हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत) जैनागम, दर्शन आदि विषयों का अध्ययन कराया जाता है। योग्य एवं होनहार छात्रों के लिए फीस, पुस्तकें आदि प्रदान करने का भी प्रावधान है। संस्था की ओर से इनके लिए ट्यूशन की व्यवस्था भी की जाती है।

(८) होमियोपैथिक औषधालय—सन् १६५३ से संस्था की ओर से निःशुल्क होमियोपैथिक औषधालय चलता है, जिसमें प्रतिदिन २५० से भी अधिक रोगी अपनी चिकित्सार्थ आते हैं।

७. श्री ओसवाल सभा, बीदासर—इस सभा की स्थापना वि. सं० १६८६ में हुई थी। अपने लम्बे कार्यकाल में सभा ने महत्व पूर्ण प्रगति की है और आज यह सभा बीदासर कस्बे की सामाजिक

व सांस्कृतिक उत्थान करने वाली प्रतिनिधि संस्था है। संस्था के कार्यक्रम सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' की पवित्र भावना पर आधारित है। संस्था का उद्देश्य एक आदर्श समाज की रचना का रहा है, जहाँ सभी व्यक्ति परस्पर प्रेम, सहयोग, एवं भ्रातृत्व भावना से रहते हुए उन्नति की ओर कदम बढ़ाते जाएं।

पिछले लगभग ४६ वर्षों में संस्था ने जिन महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों के संस्थापन एवं संचालन में सहयोग दिया है, वे निम्न प्रकार हैं—

(क) सेठ दुलीचन्द सेठिया हा स स्कूल (ख) श्री गांधी बालिका उच्चतर विद्यालय (ग) श्री खूबचन्द बांठिया विद्या मन्दिर (घ) श्री भवरी देवी सेखानी मातृ सेवा सदन (ङ) श्री भवर पुस्तकालय (च) श्री ओसवाल स्वास्थ्य परिषद् (छ) बालबाड़ी (ज) श्री दीपचन्द बोथरा सार्वजनिक वाचनालय (झ) श्री सुख समृद्धि फण्ड का निर्माण।

सभा का अपना सुन्दर भवन है। सभा द्वारा बीदासर कस्बे की सार्वजनिक उन्नति में लगातार योग रहा है। बीदासर नगरपालिका के निर्माण में सभा का महत्वपूर्ण योगदान रहा। सभा कस्बे के सुन्दर व आधुनिक सुविधाओं से पूर्ण बनाने का लगातार प्रयत्न करती रही है। सभा की भावी योजनाओं में पशु चिकित्सालय का निर्माण, गऊशाला की स्थापना, विश्रामालय के लिए भवन-निर्माण, महिला कुटीर उद्योग की स्थापना, टाउनहाल का निर्माण, मानकसर तालाब पर पिकनिक स्पोट का विकास आदि प्रमुख कार्यक्रम हैं।

८ श्री जैन शिक्षण संघ, कानोड—२४ अक्टूबर, १९४० ई० में प० 'उदय' जैन द्वारा अपने पिता और अपने नाम से संस्थापित 'प्रतापोदय' स्कूल १९४६ ई में व्यवस्थित श्री जैन शिक्षण संघ कानोड बना दिया गया और मेवाड़ गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड करा दिया गया। वर्तमान में इसके संचालक प० उदय जैन हैं।

१९४७ ई० में जैन विद्यालय, जैन कन्या विद्यालय, डूंगला, मोरवन, मगनवाड़ चिकारड़ा और कुंथवास प्रायमरि स्कूलों के साथ जैन छात्रालय भी चालू किया गया। १९५२ ई० तक सभी संस्थायें इस संघ द्वारा चलाई जाती थीं।

१९५२ अप्रेल से जवाहर विद्यापीठ अलग रजिस्टर्ड संस्था बनादी गई तब से राज्य सरकार से मदद प्राप्त सभी प्रवृत्तियां इसके अन्तर्गत आ गईं। श्री जैन शिक्षण संघ इनको आर्थिक योग देता आ रहा है।

वर्तमान में श्री जवाहर जैन छात्रालय प्रमुखतया चल रहा है। इसमें २३० बच्चे बाहर के रहते हैं और उन्हें मकान, पानी, भोजन व रोशनी का पूर्ण लाभ दिया जाता है। औषधोपचार की भी व्यवस्था है। धार्मिक, शारीरिक व व्यावहारिक शिक्षण दिया जाता है। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एवं मध्यप्रदेश के छात्र लाभ उठा रहे हैं। चालू वार्षिक व्यय १½ लाख रुपया का है गृहपति सहित १० कर्मचारी कार्यरत हैं।

वर्तमान भवन ७ बीघा जमीन पर फैले हुए हैं। जवाहर जैन छात्रालय, जिनेन्द्र कुमार सामायिक भवन, कन्या गुरुकुल भवन, अध्यापक वसति गृह पशुशालाएँ आदि करीब ८ लाख के भव्य भवन हैं। सभी भवनों में पानी और रोशनी की संस्था की निजी व्यवस्था है।

भ० महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष मे 'वीर-विभूति' प्रकाशित हो चुकी है और 'साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो' ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। प० 'उदय' जैन अभिनंदन ग्रन्थ का प्रकाशन भी जैन शिक्षण संघ द्वारा किया गया है।

सभी प्रवृत्तियो को चलाने के लिए सवा लाख का स्थायी फंड भी है जो बैंको मे सुरक्षित है। जैन शिक्षण संघ का चालू व्यय ६०,०००) रु० वार्षिक का है। इसके अन्तर्गत ही स्वायत्त ग्राम्य महाविद्यालय, उच्च माध्यमिक विद्यालय, जवाहर पुस्तकालय एव वाचनालय, प्राथमिक पाठशाला, कन्या विद्यालय, श्री कस्तूर बाई बालचन्द जवाहर बालमन्दिर, महिला उद्योगशाला, रात्रि प्रौढ़शाला आदि अनेक प्रवृत्तिया संचालित हैं।

६. **पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर**—इस सस्था का मुख्य उद्देश्य आत्मकल्याणकारी, परम-शान्ति-प्रदायक वीतराग-विज्ञान तत्त्व का नई पीढ़ी मे प्रचार व प्रसार करना है। इसकी पूर्ति के लिए संस्था ने तत्त्व प्रचार सम्बन्धी अनेक गतिविधियां प्रारम्भ की, जिन्हें अत्यल्प काल मे ही अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई है। वर्तमान मे ट्रस्ट द्वारा निम्न गतिविधिया संचालित हैं।

पाठ्यपुस्तक निर्माण विभाग—बालको को सामान्य तत्त्वज्ञान प्राप्ति एवं सदाचारयुक्त नैतिक जीवन बिताने की प्रेरणा देने के उद्देश्य से युगानुकूल उपयुक्त धार्मिक पाठ्यपुस्तकें सरल, सुबोध भाषा में तैयार करने मे यह विभाग कार्यरत है। इसके अन्तर्गत बालबोध पाठमाला भाग १, २, ३; वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३; तथा तत्त्व ज्ञान पाठमाला भाग १, २, पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है।

परीक्षा विभाग—उपर्युक्त पुस्तको की पढ़ाई आरम्भ होते ही सुनियोजित ढंग से परीक्षा लेने की समुचित व्यवस्था की आवश्यकता प्रतीत हुई। फलस्वरूप 'श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड' की स्थापना हुई। इस परीक्षा बोर्ड से सन् १९६८-६९ मे ५७१ छात्र परीक्षा मे बैठे, जबकि १९७३-७४ मे यह सख्या बढकर २०,०३५ हो गई। परीक्षा बोर्ड से विभिन्न प्रान्तो की ३०९ शिक्षण-सस्थायें सम्बन्धित हैं—जिनमे २२० तो परीक्षा बोर्ड द्वारा स्थापित नवीन वीतराग विज्ञान पाठशालायें है। गुजराती भाषी परीक्षार्थियो की सुविधा की दृष्टि से इसकी एक शाखा अहमदाबाद मे भी स्थापित की गई है।

शिविर विभाग—१. प्रशिक्षण शिविर—श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम चालू हो जाने पर और उत्तर-पुस्तकाओ के अवलोकन करने पर अनुभव हुआ कि अध्ययन शैली मे पर्याप्त सुधार हुए विना इन पुस्तको को तैयार करने का उद्देश्य सफल नही हो सकेगा। अतएव धार्मिक अध्यापन की सैद्धान्तिक व प्रायोगिक प्रक्रिया मे अध्यापक बन्धुओ को प्रशिक्षित करने हेतु ग्रीष्मावकाश के समय २० दिवसीय प्रशिक्षण शिविर लगाया जाना प्रारम्भ किया गया। तत्सम्बन्धी एक पुस्तक 'वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका' भी प्रकाशित की गई है। अभी तक ऐसे कुल सात शिविर क्रमशः जयपुर, विदिशा, जयपुर, आगरा, विदिशा, मलकापुर व छिंदवाड़ा में सम्पन्न हो चुके है, जिनमे ९४० अध्यापको ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

२. शिक्षण शिविर—प्रशिक्षण शिविर की भांति ही बालको एवं प्रौढ़ो के लिये भी यथासमय जगह-जगह शिक्षण शिविर लगाये जाते है। इनमे लोकप्रिय प्रवचनकारो के साथ ही ट्रस्ट के

प्रशिक्षण शिविरो मे प्रशिक्षित अध्यापक पढाने जाते हैं। परिणामस्वरूप जगह-जगह वीतराग विज्ञान पाठशालाएँ खुलती हैं। अत परीक्षा बोर्ड की छात्र सख्या बढने मे इनका बहुत बडा योगदान है।

शिक्षा विभाग—इस विभाग की चार शाखायें हैं—

१ वीतराग विज्ञान पाठशाला विभाग—इस विभाग के अन्तगत धार्मिक शिक्षण देन के लिए सारे भारत म इस समय २२० पाठशालाएँ चलाई जा रही हैं, जिनमे एक घण्टा धम की शिक्षा दी जाती है।

२ सरस्वती भवन विभाग—अध्ययन व स्वाध्याय के लिए सब प्रकार का साहित्य उपलब्ध हो सके, इस दिशा मे सरस्वती भवन म अब तक १,८८२ ग्रन्थो का सग्रह किया जा चुका है।

३ वाचनालय विभाग—वाचनालय विभाग म लौकिक एव पारलौकिक ज्ञान की वृद्धि हेतु धार्मिक, सामाजिक और लौकिक सभी प्रकार की पत्र पत्रिकाएँ मगाई जाती हैं। वतमान मे इनकी सख्या २० हैं।

४ शोधकार्य विभाग—'पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व' नामक शोध-प्रबन्ध इस विभाग की प्रथम उपलब्धि है। इस विभाग द्वारा आग और भी शोधकाय हाथ मे लिए जाने की अपेक्षा है।

वतमान मे डॉ० हुकमचद भारिल्ल इसके सचालक व श्री नेमीचन्द पाटनी इसके मन्त्री हैं।

१० श्री अखिल भारतीय पल्लीवाल जैन महासभा, जयपुर—सन् १९६२ मे जयपुर के कतिपय नवयुवको ने पल्लीवाल जैन समाज मे सगठनात्मक काय की दृष्टि से उक्त सगठन को जन्म दिया। सगठन के विधान म एक प्रमुख उद्देश्य यह भी था कि जितनी जन जातियां, उपजातियां हैं, उनको सामाजिक दृष्टि से सगठित किया जाये और जन समाज को भावनात्मक स्तर पर एकता बढाई जाय। इस दृष्टि से सगठन का मासिक-पत्र "जैन सगम" जयपुर से प्रकाशित किया गया। पत्रिका का सम्पादन श्री महावीर कोटिया न तथा व्यवस्था का काय श्री युगलकिशोर जन व कुन्दनलाल बाकलीवाल न बराबर इसी महत्व को ध्यान मे रखकर किया। पत्रिका कुछ परिस्थितियों वश सन् १९६६ म बन्द कर देनी पडी। सगठन के काय मे भी कुछ शिथिलता आई। परन्तु उत्साही काय कर्ताओ के प्रयास स सस्था को पुनगठित किया गया। इस समय सस्था के अध्यक्ष डॉ० विमलचन्द तथा महामन्त्री श्री शान्ति कुमार हैं। सस्था का पत्र 'पल्लीवाल जन' नाम स प्रकाशित हो रहा है। सस्था का अपना एक स्थायी कोष है जिसके ब्याज से तथा अन्य स्रोतों से विविध सामाजिक गति विधियां, जिनम असहाय विधवाओं को सहायता, निधन विद्यार्थियों, विधवाओ को छात्रवृत्तियां देना आदि भी सम्मिलित हैं। सगठन अखिल भारतीय स्तर पर काय रत है तथा विभिन्न स्थानो पर इसकी शाखाएँ हैं।

११ श्री वधमान श्वेताम्बर स्था० जैन श्रावक सघ, जयपुर—इस सघ की स्थापना सन् १९३० में हुई थी यह सघ जयपुर श्वे० स्था० समाज की प्रतिनिधि सस्था है। सघ द्वारा निम्न प्रवृत्तियों का सचालन हो रहा है—

आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, श्री जैन श्वे० स्था० शिक्षा समिति के अन्तर्गत—(क) श्री एस० एस० जैन सुबोध महाविद्यालय, (ख) श्री एस० एस० जैन सुबोध उ० मा० विद्यालय, (ग) श्री एस० एस० जैन सुबोध बालिका विद्यालय, (घ) श्री एस० एस० जैन सुबोध प्राथ० विद्यालय। श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ, सोसायटी, पक्षी चिकित्सालय, धार्मिक व नैतिक शिक्षणालय, श्री शान्ति जैन पुस्तकालय, कबूतर भण्डार।

संघ के वर्तमान अध्यक्ष श्री गणपतलाल जी कोठारी तथा मन्त्री श्री सरदारमल जी चौपडा है।

१२. **श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर**—श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर सामाजिक व सांस्कृतिक अभ्युत्थान मे रत एक महत्त्वपूर्ण संस्था है। संस्था विविध ११ प्रवृत्तियों का संचालन व प्रबन्ध करती है जो इस प्रकार है—

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ मन्दिर, उपाश्रय, आत्मानन्द जैन सभा भवन, धार्मिक पाठशाला, जैन श्वे० मित्र-मण्डल पुस्तकालय, श्री वर्धमान आयम्बिल शाला, श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल, श्री सुमति ज्ञान भण्डार, सुमति जिन स्नात्र मण्डल, जैन कला चित्र दीर्घा तथा 'मणिभद्र' वार्षिक-पत्र का प्रकाशन। वर्तमान मे श्री हीरा भाई एम० शाह इसके अध्यक्ष और श्री जवाहरलाल चोरडिया संघ मत्री है।

१३. **श्री जैन श्वे० खरतर गच्छ संघ, जयपुर**—जयपुर खरतर गच्छ समाज की विविध प्रवृत्तियो का संचालन इस संघ के माध्यम से होता है। समाज के मन्दिर तथा धर्मशालाओं की व्यवस्था के अतिरिक्त संघ द्वारा भी ज्ञान भण्डार (प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ भण्डार), ज्ञान प्रसारण भण्डार व पुस्तकालय, धार्मिक शिक्षण केन्द्र आदि प्रवृत्तियों का संचालन भी होता है। वर्तमान में इसके अध्यक्ष श्री महतावचन्द गोलेछा व मन्त्री श्री सुभागचंद नाहटा है।

१४. **श्री जैन श्वे० तेरापन्थी सभा, जयपुर**—सभा की स्थापना सन् १९३३ मे हुई। तेरापंथी समाज की विविध प्रवृत्तियो की व्यवस्था व संचालन सभा करती है। मुख्य प्रवृत्तियां हैं—तेरापन्थी सभा भवन, तेरापन्थी माध्यमिक विद्यालय, श्री तेरापंथी महिला मण्डल व कन्या मण्डल, श्री तेरापंथ युवक परिषद् श्री गुलाब पुस्तकालय व ज्ञानशाला। सभा के वर्तमान अध्यक्ष श्री श्यामलाल नागौरी तथा मन्त्री श्री राजकुमार बरडिया हैं।

१५. **अ० भा० दिग० जैन परिषद्, जयपुर प्रान्तीय शाखा, (राजस्थान)**—यह अखिल भारतीय स्तर की प्राचीनतम संस्था की शाखा है। इसकी स्थापना हुए ५० वर्ष से भी अधिक समय हो गया है। इस परिषद् की राजस्थान प्रदेश शाखा का उद्घाटन १९ जनवरी, १९६८ को जयपुर मे बडे दीवान जी के मन्दिर मे सुप्रसिद्ध विद्वान स्व० प० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ द्वारा सम्पन्न हुआ। राजस्थान मे विभिन्न नगरो मे इसकी २० से अधिक शाखाएँ स्थापित हो चुकी है। इसका प्रमुख उद्देश्य जैन समाज में सामाजिक एव सांस्कृतिक जागृति उत्पन्न करना है। इस परिषद् की जयपुर शाखा के अध्यक्ष डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल और मन्त्री श्री बाबूलाल सेठी है।

१६. **श्री भैरूबाग पार्श्वनाथ जैन तीर्थ, जोधपुर**—इसकी स्थापना सं० १९४८ में हुई व श्रीमद् विजयनीति सुरीश्वर जी म० सा० के सान्निध्य मे निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ। इसकी प्रतिष्ठा

स० १९९८ मे श्रीमद् विजयलब्धि सूरीश्वर जी म० सा० द्वारा सम्पन्न हुई। यहा दुमजिला मन्दिर है जिसमे भगवान् पार्श्वनाथ की विशाल कलापूर्ण मकराने की मूर्ति प्रतिष्ठित है। मन्दिर के साथ ही ६० कमरा की एक धर्मशाला है। जहा जैन सत सतियो को ठहरने की व्यवस्था के साथ यात्रियो को ठहरने की भी सुविधा है। यहा भोजनशाला, आयबिल शाला, धार्मिक पाठशाला आदि प्रवृत्तिया भी चालू हैं।

१७ जैन विश्व भारती, लाडनू—तेरापथ द्विशताब्दी के अवसर पर आचार्य श्री तुलसी की प्रेरणा से जैन विश्व भारती की योजना बनी और विचार-विमर्श व विद्वानो के सतपरामर्श से बने सस्था के सविधान को २२ अगस्त १९७० को पजीकृत कराया गया।

जैन विश्व भारती के रूप मे जैन विद्या के अध्ययन-अध्यापन व शोध की एक अनूठी विश्व-सस्था सस्थापित करने की परिकल्पना है जो लगभग १५० बीघा भूमि पर फैली होगी। सस्था के मुख्य भवनो मे ग्रथालय भवन, अतिथि भवन केन्द्रीय हाल, प्रयोगशालायें, साधना भवन, कार्यकर्त्ता प्रवास भवन, छात्रावास ध्यान कुटीर, स्वाध्याय भवन आदि के निर्माण की योजना है। वर्द्धमान ग्रथागार और अतिथि भवन का उद्घाटन तथा गौतम ज्ञान शाला, महिला विद्यापीठ तथा तुलसी अध्यात्म नीडम् आदि भवना का शिलान्यास मार्च ७५ मे उपराष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ति द्वारा सम्पन्न हुआ। समय-समय पर जैन विद्या से सम्बद्ध सगोष्ठियो का आयोजन इसकी मुख्य प्रवृत्ति है। जैन विश्व भारती का प्रकाशन विभाग कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित कर चुका है। 'तुलसीप्रज्ञा' त्रैमासिक पत्रिका का भी प्रकाशन होता है। इसके अध्यक्ष श्री खेमचद सेठिया व मत्री श्री सम्पतराय भूतोडिया हैं। इसकी एक शाखा दिल्ली मे भी है।

(२) धार्मिक सामाजिक जागृति एव सस्कार निर्माणकारी प्रमुख सस्थाएँ

१ श्री अ रा स्था अहिंसा प्रचारक जैन सघ, अहिंसानगर, चित्तौडगढ—श्री सुमेर मुनि जी म० ने राजस्थान व मध्यप्रदेश की खिखरी खटीक जाति म अहिंसा का प्रचार करने हेतु अपना लक्ष्य निर्धारित कर उन लोगो से सम्पर्क किया। उनको धीरे धीरे उपदेशो से अपनी ओर आकर्षित किया। सयोग से मुनि श्री का सवत् २०१३ का चातुर्मास चित्तौड नगर म हुआ। उसी वर्ष ६१० खटीक परिवारो ने सस्कारी बनना स्वीकार किया। धीरे धीरे नीमच, छावनी, प्रतापगढ नारायणगढ, मनासा, मन्दसौर, छोटी सादडी निम्बाहेडा आदि के खटीक परिवारो ने अपने पुराने धन्धे (मास बकरे आदि का विक्रय) छोड अहिंसा के मार्ग पर चलने की शपथ ली। जब धीरे धीरे कुछ परिवारो ने सस्कारी बनना स्वीकार किया तो बीच म १ मई १९५८ को इन सब परिवारो को नई जाति का रूप देकर वीरवाल जाति नाम से सम्बोधित किया गया। इस सस्कार परिवर्तन का मुख्य उद्देश्य अधर्म-निवारण करके धर्म की स्थापना करना, अज्ञान मिटाकर ज्ञान की वृद्धि करना, दुर्गुण दूर करके गुण बढ़ाना, अन्याय प्रवृत्ति का त्याग कर अहिंसा का पूर्ण पालन करना एव जाति म फैले हुए गरीबी के कारणो को दूर कर साधारण सम्पन्नता बढ़े, ऐसा प्रयत्न करना रहा। धीरे-धीरे मालवा व मेवाड़ के उन क्षेत्रो म मुनि श्री का विहार हुआ, जिन क्षेत्रो म इस जाति के लोग काफी मात्रा म थे। आज कुल मिलाकर १००० परिवार अहिंसा का रास्ता अपना कर, वीरवाल बन हैं।

इस प्रवृत्ति को स्थायी रूप से चलाने के लिये चित्तौडगढ़ से ४ मील दूर मोदड़ी व सेंती के समीप करीब २० एकड जमीन लेकर अहिंसा नगर की स्थापना की गई है जो इस प्रवृत्ति का मुख्य

केन्द्र विन्दु है। ३ अप्रैल १६६६ महावीर जयन्ती के अवसर पर राजस्थान के मुख्य मंत्री मोहनलाल जी सुखाड़िया के कर कमलों द्वारा अहिंसा नगर का शिलान्यास हुआ। उस अवसर पर इस प्रवृत्ति को मूर्त रूप देने के लिए सेठ श्री हेमराज जी सा० सिघवी, कुशलपुरा वाले ने १ लाख रुपये दान देने की घोपणा की। वर्तमान मे इस सस्था द्वारा निम्नलिखित प्रवृत्तिया सचालित हो रही हैं—

धार्मिक सम्मेलन व शिविर आयोजन—वीरवाल जाति के सामाजिक व आर्थिक पहलुओ पर विचार-विमर्श व समाधान हेतु वर्ष मे एक से अधिक सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। इन सम्मेलनो में साधु-सन्त व समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति व कार्यकर्ता आदि सम्मिलित होते हैं। वर्ष मे एक बार पर्युषण पर्व के अवसर पर ८ दिन का वार्षिक शिविर आयोजित किया जाता है। जिसमें वीरवाल परिवारो को धार्मिक अध्ययन कराया जाता है। इन शिविरों मे वीरवाल भाई-बहन सामायिक, उपवास आदि करते है। इन परिवारो मे बहुत से भाई-बहन ५-८ ही नही १-१ माह के उपवास तक करते हैं। ये रात्रि भोजन नही करते, व जैन धर्म के प्रमुख नियमो की पूरी-पूरी पालना करते हैं।

छात्रावास—अहिंसा नगर मे एक छात्रावास सन् १६६८ से चलाया जा रहा है जिसमे वीरवाल विद्यार्थियो को भोजन, निवास, दूध तथा रोशनी आदि की निशुल्क: सुविधा प्रदान की जाती है। इस वर्ष चार अहिंसक आदिवासी छात्रो को भी भरती किया गया है। गरीब छात्रों को पाठ्य पुस्तकें कपडे आदि भी दिलवाये जाते हैं। इस वर्ष छात्रावास के परीक्षा परिणाम शत-प्रतिशत रहे। छात्रावास मे स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है।

छात्रवृत्ति—छात्रावास के अतिरिक्त अन्य वीरवाल छात्रो को संघ के माध्यम से छात्रवृत्ति दी जाती है तथा जरूरतमद छात्रो को रोजगार भी उपलब्ध करवाया जाता है।

रात्रि-शालाएँ—संघ की ओर से कूरज और वल्लभनगर में रात्रि शालायें भी चलाई जाती हैं। जिनमे धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। इस समय लगभग १०० छात्र-छात्रायें इन रात्रि शालाओ का लाभ उठा रहे है। भ० महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष के दौरान २५ रात्रि-शालाएँ चलाने का निर्णय किया गया है।

वर्तमान मे सघ के अध्यक्ष श्री हेमराज जी सिंघवी और मन्त्री श्री नाथूलाल जी चडालिया है।

२. अ. भा. जैन सामायिक संघ एवं अहिंसा प्रचार समिति, जयपुर—सघ अनेक शाखाओ के माध्यम से लोगो को सात्विक जीवन जोने की प्रेरणा देता है। स० २०१६ से सघ के प्रति वर्ष विभिन्न स्थानो पर सम्मेलन आयोजित होते रहे हैं। सघ के संयोजक श्री चुन्नीलालजी ललवाणी है। सघ के सदस्यो को निम्न प्रतिज्ञाओ मे आवद्ध रहना होता है—

१. ताश आदि पर पैसे रखकर जुआ नही खेलना।
२. मास, मछली और अण्डे आदि का उपयोग नही करना।
३. देशी-विदेशी शराब, भंग, अफीम की आदत नही रखना।
४. वैश्या गमन नही करना।

५ पर स्त्री का त्याग करना।

६ बिना दी हुई पराई चीज छिपाकर नहीं लेना (यह चोरी है)।

७ बिना अपराधी किसी जीव पर आक्रमण नहीं करना।

८ व्यापारीवर्ग द्वारा माप-तोल खोटे नहीं करना एवं सर्विस वालों द्वारा भ्रष्टाचार नहीं करना।

९ माल में गलत तरीके से नफा नहीं कमाना तथा मिलावट नहीं करना।

सामायिक संघ की महिला सदस्यों की प्रतिज्ञाएँ

१ रेशमी, चर्बी आदि के हिंसक वस्त्र नहीं पहनना।

२ घर में या पड़ोस में कोई बीमार हो तो उसकी संभाल किये बिना नहीं सोना।

३ बच्चों को क्रोध में बेसुध हो नहीं पीटना।

४ रात या असमय में किसी के घर रात को नहीं जाना एवं पल्ले नहीं लेना।

५ किसी पर कलंक नहीं देना, एवं झगड़ा नहीं करना।

६ चोरी नहीं करना एवं बगैर पूछे किसी की वस्तु नहीं उठाना।

७ मादक एवं नशीले पदार्थ नहीं लेना, आत्महत्या नहीं करना।

८ स्वपति संतोष एवं शील का पालन करना।

९ गन्दे गीत नहीं गाना और भद्दे चित्रपट (सिनेमा) आदि नहीं देखना।

३ श्री श्वे० स्था० जैन स्वाध्यायी संघ गुलाबपुरा—श्रावकों को संयम, ज्ञान, दर्शन और चारित्र के प्रति जागरूक बनाने उन्हें जिनागम का बोध कराने तथा साधु-साध्वी जी म० के चातुर्मास से वंचित क्षेत्रों में पर्युषण में स्वाध्यायी श्रावकों को निःशुल्क भेजकर धर्म ध्यान की साधना-आराधना करने-कराने के उद्देश्य से श्रद्धेय स्व० श्री पन्नालाल जी म० सा० के सदुपदेश से २५ वर्ष पूर्व इसकी स्थापना हुई थी। विगत १०-११ वर्षों में इस संघ के तत्त्वावधान में स्वाध्यायी श्रावकों को तैयार करने के लिये छात्रों एवं अध्यापकों का वार्षिक ग्रीष्मकालीन धार्मिक शिक्षण शिविर भी आयोजित किया जाता रहा है। इस संघ द्वारा देश के विभिन्न प्रान्तों में काफी बड़ी संख्या में स्वाध्यायी श्रावक भेज कर सन्त सतियों के चातुर्मास से वंचित क्षेत्रों में पर्युषण काल में धर्म साधना का सराहनीय कार्य गत २४ वर्षों में होता आ रहा है। संघ के मंत्री श्री मिलापचन्द जामड़ हैं। संघ को प्रवर्तक श्री छोटमल जी म० सा० श्री कुन्दनमल जी म० सा० एवं श्री सोहनलाल जी म० सा० का विशेष आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है।

४ संस्कार-निर्माण समिति, सरदारशहर—अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी गत २० वर्षों से भी अधिक समय से दलित वर्ग के लोगों में संस्कार निर्माण और मानवीय एकता का कार्यक्रम चलाये हुए हैं। दलित वर्ग के हजारों लोग आचार्य श्री के सम्पर्क में आये और उनके साधु-साध्वियों एवं श्रावक श्राविकाओं ने दलित वर्ग की बस्तियों में जाकर सम्पर्क साधा। आचार्य श्री ने वहां पर अनुयायियों को उपदेश दिया और गोष्ठियों के द्वारा जातिगत छुआछूत की भावना का

परित्याग करने की प्रेरणा दी वहा दलित वर्ग के लोगो को हीनभावना का परित्याग करने की प्रेरणा दी ।

अणुव्रत ग्राम वरदासर मे अखिल भारतीय अणुव्रत अधिवेशन का निर्णय आचार्य श्री का अस्पृश्यता निवारण की दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण और प्रभावी कदम था । इस अधिवेशन मे छूआछूत की दीवार पर एक जबर्दस्त प्रहार किया और दलित वर्ग के लोगो मे एक नई चेतना का सचार किया ।

८ अप्रैल, १९७३ को पडिहारा मे आचार्य श्री के सान्निध्य मे दलित वर्ग के कार्यकर्ताओ का एक सम्मेलन हुआ है । तीन गोष्ठियो मे गम्भीर चिंतन के बाद सस्कार निर्माण समिति का गठन हुआ । १५ व्यक्तियो की एक अस्थायी कार्य समिति बनी जिसके अध्यक्ष डॉ० गोविन्दराम गोयल और मन्त्री श्री मोहनलाल जैन थे ।

समिति के मुख्य कार्यक्रम हैं--(१) शराब और मास का परित्याग, (२) मोसर (मृत्यु भोज) बन्द, (३) आचार-व्यवहार शुद्धि, (४) ज्ञानालयो, छात्रावासो एव उपासना कक्षों की स्थापना, (५), अस्पृश्यता निवारण, (६) सस्कार निर्माण शिविर, (७) साहित्य प्रकाशन और प्रचार ।

५. श्री वर्धमान अहिंसा एण्ड वेलफेयर सोसायटी बम्बई, शाखा, अजमेर—इसका मुख्य उद्देश्य जगह-जगह हर शहर, कस्बो मे बाल मन्दिर, छात्रावास, स्कूल तथा कालेज खोलने का है जिसमे बिना जाति-पाति व धर्म के भेद से ऐसे छात्र-छात्राओ, अध्यापक-अध्यापिकाओ तथा उसके कर्मचारियो को ही प्रवेश किया जावे जो यह शपथ पत्र भरें कि अण्डे, मास, मछली नही खावेंगे और ऐसा बाल मन्दिर अजमेर लाखन कोटड़ी मे चालू कर दिया है और उपयुक्त स्थान मिलने पर छात्रावास भी चालू कर दिया जावेगा । इसके अन्तर्गत जैन पुस्तकालय लाखन कोटडी मे रात्रि के समय २½ घण्टे प्रतिदिन समाज की निरन्तर सेवा कर रहा है । इसके मुख्य ट्रस्टी मगलचन्द सखलेचा है ।

६. महावीर समाज, जोधपुर—समाज मे व्याप्त जड़ता, अन्ध विश्वास तथा अन्य कुरीतियो के उन्मूलन का प्रयास करने हेतु इस संस्था की स्थापना हुई है । इसके अध्यक्ष है श्री प्रकाश बाठिया । समाज के प्रमुख लक्ष्य इस प्रकार है—

१. सामाजिक कुरीतियो यथा दहेज प्रथा, शराब, मास अण्डा आदि मादक व तामसिक पदार्थों के विरुद्ध प्रबल आंदोलन ।

२. सामूहिक विवाहपद्धति का प्रचलन ।

३. सामाजिक सुरक्षा हेतु महावीर सेना का गठन ।

४. समाज मे व्याप्त बेरोजगारी उन्मूलन हेतु प्रयास ।

५. स्वयसेवी रोजगार व वैवाहिक कार्यालय की स्थापना ।

६. भावी जीवन का मार्ग दर्शन करना ।

इन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए निम्न प्रवृत्तियो का संचालन किया जाता है ।

१. नवयुवको के शारीरिक विकास हेतु व्यायाम शालाओ की स्थापना करना ताकि नवयुवक हर संकट का सामना करने मे अपने को सक्षम समझ सकें ।

२. युवावर्ग में पारस्परिक विश्वास सौहार्द व सद्भावना का विकास ।

३ असहाय पीड़ित व निर्धन वर्ग का सर्वांगीण विकास।

४ विभिन्न क्षेत्रों में अग्रगण्य सज्जनों का स्वागत और युवा वर्ग को उनके कार्यों से प्रेरणा लेने हेतु प्रेरित करना।

५ उच्चाधिकारियों द्वारा समाज के विकास हेतु सहयोग प्राप्त करना।

६ वाद विवाद प्रतियोगिताओं, विचार गोष्ठियां आदि अन्य साहित्यिक धार्मिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन।

७ श्री पारमार्थिक शिक्षण संस्था, लाडनूं—इस संस्था की स्थापना तेरापंथ के आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य में फाल्गुन शु० २ संवत् २००५ को सरदार शहर में हुई। प्रारम्भ के २३ वर्षों में यह संस्था एक चलते फिरते विद्यालय के रूप में कार्यरत रही। संवत् २०२८ से लाडनूं नगर में श्री सम्पतराय जी भूतोड़िया द्वारा अपने स्व० माता-पिता की स्मृति में भेंट किए गए भवन में संस्था स्थायी रूप से स्थिर होकर कार्यरत है।

यह संस्था दीक्षार्थियों को अध्यात्म शिक्षा तथा संयम साधना का विधिवत प्रशिक्षण देने वाली एक मात्र संस्था है। संस्था का कार्यक्रम ६ वर्ष का है। इसमें शिक्षार्थी को संस्कृत, प्राकृत, जैन तत्त्व विद्या, दर्शन, न्याय, योग, इतिहास हिन्दी व अंग्रेजी तथा भाषा-साहित्य आदि विषयों की शिक्षा दी जाती है। संस्था अब तक लगभग २५० भाई बहिनों को प्रशिक्षण देकर दीक्षित करने में सहयोगी रही है।

८ श्री अहिंसा स्नेही मण्डल, नसीराबाद—नसीराबाद की एक मात्र धार्मिक व सामाजिक संस्था के रूप में अहिंसा स्नेही मण्डल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह संस्था सन् १९६० से जीव दया की प्रमुख प्रचारक संस्था है। इसका मुख्य उद्देश्य अहिंसा एवं स्नेह के द्वारा जन सेवा लोक कल्याण एवं शाकाहारिता का प्रचार प्रसार करना है। गांव-गांव में सभाओं तथा गोष्ठियों द्वारा यह अपने उद्देश्यों का प्रचार करता है। प्रतिवर्ष लगभग ५-६ हजार व्यक्तियों से यह मण्डल मांस मदिरा मान पान का त्याग कराता आ रहा है।

९ जैन वीर मण्डल, जयपुर—इसकी स्थापना सन् १९६४ में हुई। यह एक समाज तथा संस्था है। नवयुवकों में धर्म के प्रति जागृति हेतु दशलक्षण पर्व में प्रवचनों, व्याख्यानों आदि का आयोजन मण्डल करता है। वर्तमान में इसके अध्यक्ष श्री पुखराज राना एवं मंत्री श्री प्रकाशचंद मुसाड़िया हैं।

११ जैन युवा परिषद्, जयपुर—इसकी स्थापना १४ सितम्बर, १९७३ को हुई। इसके लगभग ३०० सदस्य हैं। इसमें श्वेताम्बर दिगम्बर सभी आम्नाय के जैन युवक युवतियां कार्यरत हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य सामाजिक संगठन, कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष, हिंसा को रोकना, असहाय छात्रों को सहायता प्रदान करना है। अनन्त चतुर्दशी के दिन परिषद् द्वारा मांस, मदिरा की बिक्री बंद करवाई जाती है। इसके अध्यक्ष श्री विमल चौधरी और महामंत्री श्री [illegible] बाकलीवाल हैं।

११ श्री महावीर जैन श्राविका समिति, जोधपुर—आचार्य प्रवर श्री हस्तीमल जी म. सा. की प्रेरणा से सं० २०२६ चैत्र सुदि १३ को इसकी स्थापना हुई। इसके मुख्य उद्देश्य हैं—महिलाओं में धार्मिक भावना जागृत करना, समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं कुरीतियों को दूर करने का प्रयास

करना तथा महिलाओ को सादा जीवन व उच्च विचार के लिए प्रेरित करना। वर्तमान मे इसकी अध्यक्ष श्रीमती सुशीला बोहरा व मन्त्री श्रीमती रतन चोरड़िया है।

१२. महिला जागृति परिषद्, जयपुर—इसकी स्थापना ८ फरवरी सन् १९६३ को हुई। इसका उद्देश्य शिक्षित महिलाओ मे साहित्यिक एव सामाजिक जागृति उत्पन्न करना है। इसके सस्थापक डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल एव मन्त्री श्रीमती सुशीलादेवी बाकलीवाल है।

अन्य संस्थाएँ

१३. सन्मति जैन धर्म प्रचारक मण्डल, अजमेर
१४. श्री वृद्धवीर स्मारक मण्डल, जोधपुर
१५. श्री महावीर जैन महिला मडल, जोधपुर
१६. श्री महावीर जैन नवयुवक मण्डल, जोधपुर
१७. श्री महावीर दल, जोधपुर
१८. श्री श्वे० पोरवाल जैन नवयुवक मण्डल, सवाई माधोपुर
१९. श्री जैन मित्र मण्डल, ब्यावर
२०. श्री जैन मुमुक्षु मण्डल, नसीराबाद
२१. श्री वर्धमान जैन मण्डल, बाड़मेर
२२. श्री जैन मित्र मण्डल, अलवर
२३. श्री स्था० जैन बाल मण्डल, मजल (बाडमेर)
२४. श्री जैन सभा, श्री गंगानगर
२५. श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन महिला समिति, बीकानेर
२६. श्री महावीर जैन सभा, मांडवला (जालौर)
२७. श्री राजस्थान अणुव्रत समिति, जयपुर
२८. श्री जीव रक्षा समिति, जयपुर
२९. श्री मगन जैन साधना सदन, उदयपुर
३०. श्री महिला जैन विकास मण्डल, मोमासार (चूरू)
३१. श्री मेवाड़ कान्फ्रेंस, राजसमन्द (उदयपुर)

(३) स्वधर्मी वात्सल्य फंड, एवं अन्य सहायता सेवा समितियां

१. श्री वर्द्धमान सेवा समिति, जयपुर— समाज के आर्थिक ढांचे की ओर एक नजर डालें तो कुछ ज्वलन्त समस्याएं सामने आती हैं। अधिकतर घरो मे कमाने वाला एक है परन्तु आश्रित अनेक हैं। कही-कहीं तो कमाने वाला भी नही है। कीमतें बढ़ रही हैं और आय स्थिर है। सामाजिक रीतियो मे परिवर्तन के आसार नजर नही आते वरन् उनमे व्यय बढ़ते जा रहे हैं। किसी को विद्याध्ययन के लिये धन की आवश्यकता है तो किसी को व्यवसाय अथवा नौकरी की। किसी को आय का अतिरिक्त स्रोत चाहिये तो किसी को तत्काल सहायता।

आर्थिक विषमता समाज मे वैमनस्य व अलगाव की भावना उत्पन्न करती है। वर्ग संघर्ष से बचने के लिए वर्ग सामजस्य आवश्यक है। समाज मे सरसता, एकता व भ्रातृत्व प्रेम के लिये एक

ऐसे सगठन की आवश्यकता है जो एक दूसरे की मदद का प्रबध करे व सहानुभूति का वातावरण तैयार करे। जहाँ समृद्ध वर्ग म त्याग व प्रेम की भावना को जागृत करना है वहा कमजोर वग म स्वावलम्बन व सहयोग को भी पनपाना है।

समाज की इन परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए समाज के सर्वांगीण विकास हेतु सन् १९७० मे वर्द्धमान सेवा समिति का गठन किया गया। यह भगवान् महावीर के सिद्धान्तो का रचनात्मक रूप है।

यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह केवल धर्माय सस्था नही है। यह एक ऐसा सगठन है जिसका मूल उद्देश्य स्वावलम्बन की भावनाओ का प्रसार करना व सत्य की नीव पर चरित्र का निर्माण करना है।

वर्द्धमान सेवा समिति ने समाज की तात्कालिक समस्याओ को ध्यान मे रखते हुये निम्न काय हाथ मे लिये हैं —

(क) छात्रवृत्ति—शिक्षा के लिये जरूरतमद छात्रो को छात्रवृत्ति अथवा तदथ आर्थिक सहायता देना। इस कार्य के लिए करीब ५ लाख रुपये का एक कोप स्थापित करना है जिससे कोष के ब्याज से नियमित रूप से छात्रवृत्ति दी जा सके। शिक्षार्थियो द्वारा धनोपाजन की स्थिति मे आने पर छात्रवृत्ति की रकम समिति को लौटाने का प्रावधान है।

छात्रवृत्ति मेघावी एव जरूरतमद छात्र, जो कम से कम ५५% नम्बर प्राप्त करते हैं तथा जिनके अभिभावक की आय रु० ६०००) प्रतिवर्ष से कम है, को दी जाती है। एक बार छात्रवृत्ति स्वीकृत करने पर जब तक कोस पूरा न हो, छात्रवृत्ति चालू रखी जाती है, यदि छात्र का पठन काय सतोपजनक चलता रहे।

(ख) वेरोजगारों को व्यवसाय अथवा नौकरी पाने मे सहायता—समाज के कई जरूरतमद लोगो को विभिन्न राजकीय विभागो एव निजी सस्थाओ म नौकरी प्राप्त करने मे माग-दशन किया गया। बेरोजगार व्यक्तिया के माग-दशन एव सहायता हेतु अन्य कुछ योजनायें भी बनाई गई, जैसे स्टेनोग्राफी, टाइप आदि के प्रशिक्षण की व्यवस्था, जवाहरात की कटाई म प्रशिक्षण देने हेतु एक योजना बनाई गई है जिसके द्वारा इच्छुक व्यक्तियो को इस महत्त्वपूण काय मे नि शुल्क प्रशिक्षण देने का प्रावधान है।

(ग) उद्योग शाला—बहिना के लिये भी एक महिला उद्योग शाला चलाने की योजना बनाइ गई है जिसम पापड-बडी बनाना, सिलाई, स्वटर बुनाई, कसीदाकारी, स्क्रीन एव ब्रुश पेंटिंग, गोटा किनारी आदि अन्य उपयोगी धन्धा द्वारा जरूरतमन्द परिवारा को काम दिलवाकर उनकी आय म बढोतरी करवाने का प्रावधान है। वतमान मे समिति के अध्यक्ष श्री सत्यप्रमर्नासह भण्डारी और मत्री श्री रणजीतसिह कूमट हैं।

२ श्री जैन बेनेफिट सोसाइटी मद्रास, शाखा सिरोही—यह सस्था इस समय दो कायक्रम चला रही है एक स्थानीय राजकीय महाविद्यालय सिरोही म जरूरतमन्द छात्रा के लिए विज्ञान सकाय म सम्बद्ध बुक बक। यह बुक बैंक सभी वर्गों के छात्रो को सहायता देता है। इसी से बहुत ही आवश्यक होने पर निधन छात्रों को आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाती है।

इसका दूसरा कार्यक्रम सिरोही के अस्पतालो से सम्बद्ध रोगी सहायता कार्यक्रम है जो जीव सेवा समिति के नाम से कार्य करता है। मासिक ३००) तक की दवाइया असहाय रोगियों की सहायतार्थ काम आती है। समिति के अपने दो आक्सीजन सिलेण्डर भी हैं जो निःशुल्क कहीं भी लेजाए जा सकते हैं। देने योग्य रोगियों से शुल्क उनकी इच्छानुसार लिया जाता है।

३. श्री शान्ति सेवासघ, मांडोली नगर (जालौर)—यह सस्था सन् १९६८ के भीषण अकाल के समय बनी थी, जिससे अकाल सहायता का कार्य हुआ। जरूरतमन्दों को अनाज तथा मवेशियो के लिए चारे-पानी का प्रबन्ध व गरीबो को दवाई, बालको को शिक्षावृत्ति आदि इसकी मुख्य प्रवृत्तिया हैं। वालचंद उद्योग समूह द्वारा दिये गये चार इन्जिनो से जानवरो हेतु घास एव पानी की व्यवस्था होती है। संस्था की सबसे बडी योजना एक गोशाला बनाने की है। 'शान्ति ज्योति' पत्रिका के प्रकाशन का सचालन भी इस संघ द्वारा होता है।

४. वीर सेवक मण्डल, जयपुर—इसका गठन सन् १९२० मे हुआ। मण्डल का मुख्य उद्देश्य समाज की निस्वार्थ सेवा, सामाजिक जागृति एवं सुधार का कार्य करना है। श्री महावीर जी के वार्षिक मेले के अवसर पर मण्डल के स्वयंसेवक यात्रियो की सुविधा सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवस्था करते हैं। इसके अध्यक्ष श्री सूरजमल बैद और मत्री श्री राजमल सोनी है।

५. श्री ऋषभवात्सल्य फड, जोधपुर—इसकी स्थापना ई० सन् १९६२ मे हुई। इसका मुख्य उद्देश्य छात्रो को विद्याध्ययन के लिए आर्थिक सहायता देना है। इसके साथ ही जैन स्वधर्मी बन्धुओ को भी सहायता देना है जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो।

६. श्री ओसवाल सहायता समिति जोधपुर—यह समिति समस्त ओसवाल समाज के आर्थिक सहायता के इच्छुक व्यक्तियो को १०) से ५०) रुपये प्रतिमाह तक प्रत्येक परिवार को सहायता देती है। प्रति वर्ष लगभग २० हजार की सहायता लगभग ८० परिवारो को दी जाती है। मुख्य कार्यकर्त्ता हैं श्री रूपराजजी सचेती, श्री घीगडमलजी गिडिया, श्री सम्पतराजजी डोसी व श्री छगनराजजी सांड।

७. श्री मगन सहायता समिति ब्यावर—यह समिति समाज के असहाय वर्ग को सहायता देने का कार्य करती है। इस समय करीब ६० भाई-बहिनो को गुप्त सहायता समिति की ओर से दी जा रही है। इसके संस्थापक हैं श्री अभयराजजी नाहर।

८. सेवादल, जयपुर—यह समाज में गरीब, असहाय व्यक्तियों की यथा संभव वस्त्र, खाद्यान्न एव दवाइयो के रूप मे सहायता करता है। गत वर्षो मे इसने जरूरतमद छात्रों को पुस्तकें व स्टेशनरी के रूप मे भी सहायता प्रदान की। यह गोपाल जी के रास्ते मे श्री जैन नवयुवक मण्डल के अन्तर्गत संचालित है।

९. श्री दि० जैन अ० क्षेत्र महावीरजी द्वारा सचालित छात्रवृत्ति फण्ड, जयपुर—इसके द्वारा प्रतिवर्ष हजारो रुपयो की छात्रवृत्ति दी जाती है। छात्रवृत्ति फण्ड से अनेक विद्यार्थी लाभान्वित हुए है। इसका कार्यालय महावीर भवन, चौडा रास्ता है।

१०. श्री सन्मति सहायता कोष, जयपुर—यह असहाय जैन बन्धुओ, विधवाओ और प्रतिभाशाली छात्रो को आर्थिक सहायता प्रदान करता है। इसके मंत्री श्री केवलचन्द ठोलिया तथा कोषाध्यक्ष श्री नानूलाल चांदवाड़ हैं।

११ स्वर्ण फण्ड, जयपुर—श्वेताम्बर साधु-साध्विया, आचार्यों आदि का समय समय पर विभिन्न सहायता एव सहयोग देने आदि के उद्देश्य से इस फड का गठन किया गया है। इसके अध्यक्ष श्री राजरूपजी टाक व मत्री श्री रतनचदजी कोठ्यारी हैं।

अन्य ट्रस्ट एव सेवा समितिया

१२ अखिल भारतीय नानक जैन सेवा सघ, अजमेर
१३ श्री जन वृद्धाश्रम, चित्तौडगढ
१४ „ घेवरचदजी वाठिया व श्रीमती लक्ष्मीदेवी वाठिया स्वधर्मी सहायता फण्ड
१५ „ श्वे० साधुमार्गी जैन हितकारिणी सस्था, बीकानेर
१६ श्रीमती जेठादेवी काकरिया स्वधर्मी सहयोग फण्ड, बीकानेर
१७ श्री सुरेन्द्रकुमार साड शिक्षा सोसायटी, बीकानेर
१८ „ थानचन्द मेहता शिक्षा ट्रस्ट, जोधपुर
१९ „ थानचन्द मेहता लोकसेवा ट्रस्ट, जोधपुर
२० „ सन्तोकबा दुलभजी ट्रस्ट, जयपुर
२१ „ बनजीलाल ठोलिया चरिटेबिल ट्रस्ट, जयपुर
२२ „ दीवान उदयलाल जैन ट्रस्ट, जयपुर
२३ „ सुराना चरिटेबिल ट्रस्ट, जयपुर
२४ „ जन दिवाकर सेवासदन, उदयपुर
२५ „ भूरालाल पालडेचा स्वधर्मी सहायता फण्ड, घनाप
२६ „ महावीर जन सेवा समिति, जोधपुर
२७ „ श्रीलाल पारमार्थिक ट्रस्ट फण्ड, रनवाल (किशनगढ)

(४) प्रमुख प्रकाशन-सस्थान

१ श्री जन इतिहास समिति, लालभवन, जयपुर—इस समिति की स्थापना आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराजा सा० की प्रेरणा से सवत् २०२२ मे उनके बालोतरा चातुर्मास के अवसर पर हुई। समिति का मुख्य उद्देश्य जन परम्परा के शृखलाबद्ध प्रामाणिक इतिहास लेखन प्रकाशन एव अन्य महत्वपूर्ण गवेषणात्मक जन ग्रन्थो का प्रकाशन है। समिति को व्यवस्थित रूप देन म इसके अध्यक्ष स्व० श्री इन्द्रनाथ जी मोदी एव मन्त्री स्व० श्री सोहनमलजी कोठारी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समिति ने अब तक 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग १-२,' ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थकर, पट्टावली प्रबन्ध सग्रह, जन आचार्य चरितावली आदि ग्रन्थो का प्रकाशन किया है। वतमान मे समिति के अध्यक्ष श्री इन्द्रचन्द्र हीरावत, मन्त्री श्री चन्द्रराज सिघवी व कोषाध्यक्ष श्री पूनमचन्द बडेर हैं।

२ श्री जन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर—इस प्रकाशन सस्था की स्थापना २४ वर्ष पूर्व उपा० श्री प्यारचदजी म० की प्रेरणा स एव सेठ देवराजजी सुराणा, सेठ स्वरूपचदजी तालेडा श्री चादमलजी टोडरवाल, श्री चादमलजी कोठारी, श्री छगनलालजी दुगड, श्री बापूलालजी बोथरा व श्री अभयराजजी नाहर आदि के सम्मिलित प्रयास से सम्पन्न हुई।

यह प्रकाशन सस्था पूर्व म "श्री जनोदय पुस्तक प्रकाशन समिति, चौमुखीपुल, रतलाम

(म० प्र०)" के नाम से कार्यरत थी। इस रतलाम की संस्था का ही ब्यावर मे नवाभ्युदय हुआ। इन दोनो ही संस्थाओ द्वारा अभी तक छोटे-बड़े शताधिक प्रकाशन हो चुके हैं। दोनो ही संस्थाओ ने प्रमुखतः परम श्रद्धेय जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी म० एवं उनके सुशिष्य-प्रशिष्यों की नैतिक आध्यात्म एवं समाज-बोधी रचनाओ का सराहनीय प्रकाशन किया है। वर्तमान मे इसके मन्त्री श्री अभयराजजी नाहर है।

३. श्री आदर्श साहित्य संघ चूरू—यह साहित्यिक, सामाजिक, आध्यात्मिक साहित्य के प्रकाशन एवं विक्रय का प्रमुख संस्थान है। इस संस्थान ने अब तक शताधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रकाशन किया है। आचार्य श्री तुलसी, मुनि श्री नथमल, मुनि श्री बुधमल व तेरापंथ सम्प्रदाय के अनेक सत-सतियो के ग्रन्थ इस संघ ने प्रकाशित किये है। इस प्रकाशन संस्थान की कलकत्ता व दिल्ली मे भी शाखाए हैं।

४. श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर—इस समिति की स्थापना आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० की स्मृति मे की गई है। आचार्य श्री के चरित व प्रवचन साहित्य का प्रकाशन जवाहर किरणावली नाम से कई भागों मे इस समिति ने किया है। समिति के मत्री श्री चम्पालालजी बाठिया हैं।

५. श्री जैन जवाहर मित्र मण्डल, ब्यावर—मण्डल होनहार छात्र-छात्राओ को अध्ययन के लिए आर्थिक सहायता देने के साथ-साथ जैन साहित्य के प्रचार व प्रसार के लिए सत् साहित्य का प्रकाशन भी करता है। इस दिशा मे मडल गत ३० वर्षों से कार्यरत है।

६. श्री अभय जैन ग्रंथमाला, बीकानेर—इसका प्रकाशन श्री जिन कृपाचन्द सूरिजी के परामर्श व प्रेरणा से प्रारंभ हुआ। सर्वप्रथम अभ्यरत्न सार' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। अब तक इस ग्रन्थमाला मे २५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

७. मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर—मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन के बाद सन् १९६५ ई० मे उनकी स्मृति को चिर स्थायी बनाने की दृष्टि से इस प्रकाशन सस्थान की स्थापना की गई। संस्था के कार्य संचालन के लिए एक कार्यकारिणी समिति है, जिसके अध्यक्ष श्री फूलचन्दजी नाहटा, जोधपुर है तथा मन्त्री श्री अमरचन्दजी मोदी ब्यावर हैं। सस्था ने अब तक ३४ प्रकाशन किए हैं।

संस्था के अन्तर्गत ही एक सिद्धान्तशाला तथा मुनि ब्रज-मधुकर जैन पुस्तकालय भी सचालित हो रहे हैं।

८. श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति, जोधपुर-ब्यावर—श्री मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति ने सन् १९६८ ई० में अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करके अपना उद्देश्य पूर्ण किया। तब समिति के सदस्यो को यह आवश्यक लगा कि पूज्य प्रवर्त्तक मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म. सा. की वाणी को जन-जन मे प्रचारित करने के लिये साहित्य प्रकाशन का कार्य चालू रखा जावे। इस तरह श्री मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशन समिति को ही श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति के रूप में परिवर्तित करके इस संस्था की स्थापना की गयी। संस्था का मुख्य उद्देश्य ऐसे साहित्य का प्रचार व प्रसार करना है जिससे समाज मे जैनधर्म के प्रति अनुराग पैदा हो, सन्तो के प्रति भक्ति एवं धर्म मे दृढ़ आस्था जमे। अब तक समिति ४० के लगभग ग्रन्थ प्रकाशित कर चुकी है।

६ श्री शीतल जैन साहित्य सदन, माडलगढ़—इसके प्रेरक है उप प्रवतक श्री मोहनलालजी म के विद्वान सुशिष्य मुनि श्री महेन्द्र कुमारजी 'कमल'। इसकी स्थापना सन् १६७० मे हुई। इसका एक शाखा कार्यालय बीगोद (भीलवाडा) म भी है। इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

१ विभिन धर्मों म समन्वय स्थापित करने की दिशा मे काय करना।

२ महत्वपूरा जीवन स्पर्शी लोक भोग्य सत् साहित्य का प्रकाशन करना।

३ समय समय पर उपस्थित होने वाली धार्मिक, सामाजिक, सास्कृतिक, साहित्यिक, तथा राजनतिक समस्याभ्रा पर विचार गोष्ठिया आयोजित कर उनके समाधान हेतु दिशा-निर्देश करना।

४ सस्थान के उद्देश्यो के प्रसार हतु पत्रिका एव स्मारिकाए प्रकाशित करना।

५ भारतीय धम नेताम्रो, विद्वाना, समाज सेविया तथा सत्साहित्यकारो को भारत के नैतिक एव चारित्रिक आदर्शों के प्रचाराथ विदेशा म भेजन और विदेशो विद्वानो को अपने यहा आमन्त्रित करने की व्यवस्था करना है।

६ विशिष्ट विद्वानो साहित्यकारो, समाज सेवियो तथा सन्तो का यथा समय सम्मान करना।

७ नतिकता एव चारित्र निर्माए सम्बन्धी समस्त जन हितकारी काय करना।

१० श्री तारक गुरु जन ग्रन्थालय, उदयपुर—इसकी स्थापना सन् १६६६ म पदराडा गाव मे श्री पुष्कर मुनिजी की प्रेरणा से हुई। सस्था के ग्रन्थभण्डार म प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो का महत्त्वपूरा सग्रह है। सत् साहित्य के प्रकाशन के क्षेत्र मे सस्था न उल्लेखनीय काय किया है। अब तक लगभग ३८ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। सस्था के वतमान अध्यक्ष श्री डालचन्द जी परमार हैं। अब इसका मुख्य कार्यालय उदयपुर म है।

११ श्री अमर जैन साहित्य सस्थान उदयपुर—थोडे ही समय म इस प्रकाशन सस्थान ने कई महत्त्वपूरा ग्रन्थ प्रकाशित कर अपन आपको प्रतिष्ठित किया है। अब तक हिन्दी तथा गुजराती म लगभग १५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमे श्री गरोशमुनि के ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं।

१२ वीर पुस्तक भण्डार जयपुर—मनिहारों के रास्ते म स्थित यह सस्थान धार्मिक पूजा-पाठ, पुराण, चरित्र सिद्धात आदि सभी प्रकार के जन ग्रन्थो का प्रमुख प्रकाशक एव विक्रेता है। अब तक इसन १५ से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। इसस सलग्न 'वीर प्रेस' है। इसका सचालन श्री भवरलालजी, न्यायतीथ करत हैं।

१३ श्री वद्धमान जैन ज्ञानपीठ सिरयाल (उदयपुर)—यह सस्था जैनागम व जैनतत्त्व को सरल सरस कथात्मक शली म प्रस्तुत करन क साथ साथ नैतिक बोधपरक साहित्य प्रकाशित करता रहा है। श्री भगवती मुनि निर्मल' के कइ ग्रन्थ यहा से प्रकाशित हुए हैं।

अन्य प्रकाशन संस्थान

१४ श्री सम्य ज्ञान प्रचारक मडल, जयपुर

१५ श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ बीकानेर

१६ श्री दि० जैन भतिशय क्षेत्र, महावीरजी, जयपुर

१७ प० श्री टाडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

१८ श्री जिनदत्त सूरि मडल, अजमेर

१६. श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था, बीकानेर
२०. श्री जैन विश्व भारती, लाडनूं
२१. श्री राजस्थान जैन सभा, जयपुर
२२. श्री अ० भा० तेरापथ युवक परिषद्, लाडनूं
२३. श्री जैन शिक्षण संघ, कानोड

नोट :—उक्त प्रकाशन सस्थानो का परिचय अन्यत्र यथास्थल दिया जा चुका है।

(५) कला एवं उद्योग संस्थान

१. श्री थानचन्द मेहता कला एवं उद्योग संस्थान, राणावास—इसकी स्थापना जुलाई १९७३ मे हुई। इस सस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य, निरुद्देश्य शिक्षा को सोद्देश्य बनाना है। आज भारत के कोने कोने से शिक्षाशास्त्रियो, नेताओ बुद्धिजीवियो, यहा तक कि सामान्य नागरिकों की भी यही आवाज प्रतिध्वनित हो रही है कि विश्वविद्यालयो, महाविद्यालयो तथा सैकण्डरी विद्यालयों से निकलने वाले छात्र, बेकारी, बेरोजगारी के शिकार हो रहे हैं और फलतः एक बड़ी भीड़, भीड ही क्यो, टिड्डियो का एक दल राष्ट्रीय सम्पत्ति के लिए उखाड़-पछाड़ कर रहा है। युवको का आक्रोश उत्तरोत्तर राष्ट्र के सामने महान् चिन्ता का विषय बना हुआ है। यह कटु सत्य है कि राजनेता चाहे नौकरी के कितने ही मीठे आश्वासन दें किन्तु वे इन आश्वासनो को किस सीमा तक पूरा करने मे समर्थ होगे ?

ऐसी दशा मे बेकार, दर-दर भटकने वाले, परावलम्बी, छात्र यदि व्यावहारिक शिक्षा न मिलने के अभाव से विध्वस और अनुशासनहीता का दुखान्त नाटक खेलते रहे तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नही। यह संस्थान देश को उपर्युक्त विषम परिस्थिति से निकालने के लिए आशा और उत्साह भरा कदम हैं। संस्थान की आशाएं अभिलाषाएं, योजनाए तथा भावी स्वप्न बहुत ऊंचे है। देश का युवक श्रमप्रिय और स्वावलम्बी बना दिया जाय तो देश व्यापी विध्वस लीला के समाप्त होने की आशा की जा सकती है। इसमे कोई सदेह नही कि हाथ द्वारा किये गए काम से हम देश की श्रम शक्ति का न केवल उपयोग ही करेंगे वरन् कई अन्यन्य क्षमताओ को भी प्रकाश में ला सकेंगे।

सम्प्रति सस्थान की विभिन्न प्रवृत्तियो मे कुल ७२ विद्यार्थी 'सीखो और कमाओ' योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे है। ये श्री मरुधर केसरी उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र हैं। कला एव उद्योग के जिन विषयो का प्रशिक्षण दिया जाता है वे इस प्रकार है—

(i) सगीत (ii) ड्राइंग तथा पेन्टिग (iii) सोफा सेट तथा आधुनिक साज सजावट का सामान (iv) कारपेन्टरी (v) अटेची, होलडोल आदि बनाना (vi) टंकण सुधार प्रशिक्षण (vii) टेलरिंग (सिलाई)

इस अवधि मे बालको ने जो कार्य किया है उससे यह अनुभव हुआ है कि बालक कला एव उद्योग मे बडी रुचि लेते हैं, बड़ी तत्परता व तन्मयता से कार्य करते है और अपनी कार्य कुशलता निरतर बढाते जा रहे हैं और आत्म-विश्वास की प्रबल भावना जागृत होकर यह प्रेरणा दे रही है कि सीखो और कमाओ का सिद्धान्त उनके लिए वरदान है।

२. श्री जिनेन्द्र कला भारती, भीलवाड़ा—सुसगीत एव कला के माध्यम से जिनवाणी के प्रसार एवं नई पीढी को धार्मिक क्रिया-कलापो की ओर प्रवृत करने के पवित्र उद्देश्य को लेकर इस

संस्था की स्थापना ४–६–७२ को हुई थी। अपने थोड़े से ही कायकाल मे संस्था ने महत्त्वपूर्ण काय किए हैं तथा समाज के प्रबुद्ध वर्ग की प्रशंसा प्राप्त की है। कला भारती ने सम्पूर्ण जैन समाज मे णमोकार मन्त्र, भक्तामर स्तोत्र, मेरी भावना, ध्वजगीत तथा कीतन आदि को एक ही ताल स्वर में गाने की दृष्टि से स्थान स्थान पर आध्यात्मिक संगीत प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया है, जिनमें अब तक तीस हजार व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया जा चुका है। इस वर्ष की समाप्ति तक एक लाख व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य है। इसी दृष्टि से संस्था ने भक्ति संगीत माला भाग १ व २ का प्रकाशन भी किया है। संस्था के अन्तगत एक सुसंगीत विद्यालय का संचालन भी होता है, जहा भक्ति संगीत शिक्षण की उत्तम व्यवस्था है। संस्था द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर जैन संगीत विशारद, जैन संगीत निपुण आदि परीक्षाओं के आयोजन तथा संचालन का भी कार्यक्रम है। संस्था के कठपुतली विभाग द्वारा कठपुतलियों के माध्यम से जैन तत्त्व को रंगमंच पर लाने का प्रयास किया जा रहा है। यह अपने ढंग का प्रथम प्रयास है। संस्था अब तक तीन कठपुतली नाटिकाओं का प्रदशन कर चुकी है। संस्था ने लोक धुनों पर आधारित १०० भजनों का संकलन एवं उनकी स्वर-लिपियों की रचना का भी स्तुत्य काय किया है। संस्था के अध्यक्ष श्री गौरीलाल अजमेरा तथा मन्त्री श्री निहाल अजमेरा है।

३ भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर—लोकधर्मी कलाओं के शोध, सर्वेक्षण, प्रदशन, प्रकाशन, उन्नयन एवं परिमाजन के वृहत् उद्देश्यों को लेकर पद्मश्री देवीलाल सामर के प्रयत्नों से २२ फरवरी १६५२ को इसकी स्थापना हुई। परम्परागत कठपुतली एवं लोकनृत्य के क्षेत्र में मण्डल ने अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किये हैं। राजस्थानी लोककला व लोक संस्कृति के रक्षण एवं उन्नयन मे मण्डल का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मंडल के संचालक श्री सामरजी ने हाल ही मे भ० महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य मे 'वैशाली का अभिषेक' नामक कठपुतली नाटिका का सृजन कर पुतली नाट्य क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग किया है। डॉ० महेन्द्र भानावत वतमान में मंडल के उपनिदेशक है।

४ नाहटा कला-भवन बीकानेर—स्व० श्री शंकरदान जी नाहटा की स्मृति मे स्थापित इस कला भवन मे हस्तलिखित प्रतियों के साथ साथ अनेक प्राचीन चित्र, दुर्लभ मूर्तियों व अमूल्य सिक्कों का महत्वपूर्ण संग्रह है। श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा भंवरलालजी नाहटा जैसे विद्वान इस संस्था से सम्बन्धित हैं।

५ श्री वर्द्धमान जैन उद्योगशाला, बाड़मेर—राजस्थान के पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र बाड़मेर नगर में जैन समाज ने अपने ही समाज की आर्थिक दृष्टिकोण से कमजोर एवं कम आय के परिवार की जैन महिलाओं को आर्थिक मदद पहुंचाने के लिये श्री वर्द्धमान जैन उद्योगशाला की स्थापना की। जिसके माध्यम से समाज की अनेक माताएँ एवं बहनें अपने श्रम से लघु उद्योग मे काय कर अपनी एवं अपने पर आश्रित परिवार का भरण पोषण कर रही हैं।

इस समाज सेवी संस्था की स्थापना मुनिवर श्री कांतिसागरजी एवं दर्शनसागर जी महाराज साहब के सदुपदेश से ३० जनवरी ७२ को हुई। प्रारम्भ में इस उद्योगशाला में ४० महिलाओं को रोजगार उपलब्ध करवाया गया और स्थाई रूप से ६ स्त्री-पुरुषों को इस शाला के विभिन्न कार्यों के लिये नियुक्त किया गया। अब इस उद्योग शाला में ६५ महिलाएँ प्रतिदिन पापड़ बेलन एवं बड़ियें

तैयार कर रोजगार प्राप्त कर रही है। आरंभ मे इस उद्योगशाला मे केवल १६ किलो पापड़ प्रतिदिन तैयार किया जाता था। बाजार मे अन्य पापड़ो के मुकाबले हमारे यहां से तैयार शुद्ध एवं स्वादिष्ट पापड़ ने बाजार मे अपना अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया। अब प्रतिदिन ८० किलो पापड़ तैयार होने लगा है। यद्यपि यह अत्यन्त ही कम मुनाफे एवं जोखिम का व्यापार था फिर भी अच्छी क्वालिटी में तैयार होने के कारण बाड़मेर का यह पापड़ बाजार मे अधिक साख जमा सका। जिसके कारण आरम्भ के साढ़े चार मास में उद्योग शाला ने सभी प्रकार का खर्चा आदि को निकाल कर रु० १०९१) का शुद्ध मुनाफा अर्जित किया। वर्तमान मे अध्यक्ष श्री हुक्मीचन्द मालू व मन्त्री श्री देवीचन्द गुलेछा हैं।

६. **महावीर जैन शिक्षण संघ छोटी सादड़ी**—गत वर्ष इस संघ की स्थापना की गई। इसका मुख्य उद्देश्य संस्कार निर्माण के साथ-साथ टाईपिंग, टेलरिंग, मोटर मेकेनिज्म, रेडियो मेकेनिज्म आदि प्रशिक्षण देकर युवको को आत्म निर्भर बनाना है। इसके अध्यक्ष श्री केशरी किशोर नलवाया और मंत्री श्री सोहनलाल जैन है।

अन्य उद्योग संस्थान

७ श्री जैन नारी उद्योगशाला, कोटा

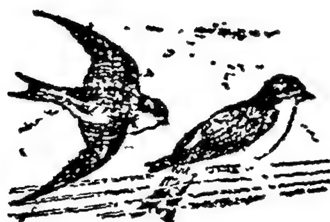
८. श्री महिला सिलाई केन्द्र, ब्यावर

९. श्री लोका शाह जैन महिला उद्योग, ब्यावर

१०. श्री फूलकुमारी चोरड़िया महिला विकास केन्द्र, बीदासर

११. श्री उद्योग पापड़ भण्डार, पाली

१२. श्री जैन महिला उद्योगशाला, बीकानेर



चतुर्थ खण्ड



परिचर्चा

५२ | राजस्थान के सांस्कृतिक विकास मे जैनधर्म एवं सस्कृति का योगदान

•

परिचर्चा ग्रायोजक—डॉ० नरेन्द्र भानावत

भारतीय सास्कृतिक जीवन के निर्माण तथा उससे प्रसूत सास्कृतिक परम्पराग्रो की रक्षा ग्रौर विकास के विविध प्रयत्नो मे किसी प्रदेश विशेष का ही एकाधिकार रहा हो, ऐसा नही कहा जा सकता। प्रागैतिहासिक काल से लेकर ग्राज तक के भारतीय जीवन म सास्कृतिक चेतना का जो विशिष्ट स्वरूप रहा है वह सभी प्रदेशो के मानवीय प्रयत्नो की समन्विति का फल है। इसी प्रकार देश की सस्कृति तथा सभ्यता के ग्रवरोधक एव साधक तत्वो का सक्रमण भी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेशो म होता रहा है। निष्कर्ष यह कि समूचे देश की सस्कृति ग्रौर सभ्यता के सजन, रक्षण ग्रौर विकास की समस्यायें द्रव्य, क्षेत्र, काल ग्रौर भाव की दृष्टि से विभिन्न रूपो की होते हुए भी मूलत एक जैसी हैं। भारत ग्रौर उसके प्रदेशो की सस्कृति के विषय मे कही गई यह बात विश्व ग्रौर उसके देशो के विषय मे भी सत्य है। इतना सब कुछ होते हुए भी प्रत्येक देश ग्रौर प्रदेश की ग्रपनी कुछ ग्राचलिक विशेषताए ग्रौर छवियाँ होती हैं जिनसे उस प्रदेश विशेष की सास्कृतिक चेतना ग्रपना ग्रलग रग बिखेरती है। यह सस्कृतिमूलक वविध्य ग्रलगाव का प्रतीक न होकर सम्पन्नता का परिचायक होता है। राजस्थान के सास्कृतिक दाय की बहुरगी छवि का ग्रध्ययन ग्रौर मूल्याकन इसी परिदृष्टि से किया जाना चाहिए।

किसी भी प्रदेश की सास्कृतिक चेतना के विकास मे वहा के प्रचलित पल्लवित धर्मों की महत्त्वपूण भूमिका रहती है। राजस्थान को ग्रनेक धर्मों एव मतो की उद्गमस्थली एव सगमभूमि होने का गौरव प्राप्त है। उन सबके सम्मिलित प्रयत्नो से यहा के सास्कृतिक गौरव मे वृद्धि हुई है, विचारो मे सहिष्णुता ग्रौर व्यवहार म सहनशीलता का भाव जागृत हुग्रा है। जैन धम के विशिष्ट प्रभाव के रूप मे एक ग्रोर साहित्य, कला ग्रौर दशन का ग्रायाम विस्तृत हुग्रा है तो दूसरी ग्रोर ग्राचार दृष्टि से जीवन मे निर्व्यसनता, मितव्ययता ग्रौर ग्राहार शुद्धि जसे भावों के प्रति विशेष सजगता का भाव विकसित हुग्रा है।

सक्षेप म कहा जा सकता है कि राजस्थान के सामाजिक, ग्रार्थिक, शक्षणिक, राजनीतिक एव ग्रध्यात्मिक चेतना के विकास म ग्रन्य धर्मों के साथ साथ जैनाचार्यों व जैनधर्मानुयायियो की महत्त्वपूण

भूमिका रही है। जैन धर्म मे प्रतिपादित मूल्य व्यक्ति, समाज व विश्व-मानवता के विकास के लिए सदैव प्रेरणाशील रहे हैं। इस योगदान के मूल्यांकन और आगे प्रेरणा ग्रहण करते रहने की दृष्टि से हमने यह परिचर्चा आयोजित की है। परिचर्चा को अधिक व्यवस्थित और उपयोगी बनाने की दृष्टि से हमने विभिन्न क्षेत्रो मे कार्यरत विद्वान् मनीषियो के समक्ष निम्नलिखित ५ प्रश्न प्रस्तुत किये। उनसे जो उत्तर प्राप्त हुए, वे प्रश्नानुक्रम से यहां प्रस्तुत हैं—

विचार के लिए प्रस्तुत प्रश्न

१—आपकी दृष्टि मे राजस्थान की सांस्कृतिक दाय का स्वरूप क्या है ?

२—राजस्थान की सांस्कृतिक चेतना के विकास में यहा के विभिन्न धर्मो की क्या भूमिका रही है ?

३—उस भूमिका मे जैन धर्माचार्यो और जैन धर्म के अनुयायियो का क्या विशिष्ट योगदान रहा ?

४—जैन धर्म मे प्रतिपादित वे कौन से मूल्य हैं जिनसे सांस्कृतिक जागरण मे आज भी प्रेरणा मिल सकती है ?

५—आपकी दृष्टि मे नव सांस्कृतिक जागरण मे जैन समाज की सम्भावित भूमिका क्या है ?

विचारक विद्वान्

[१] युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी

१. राजस्थान की सास्कृतिक दाय का स्वरूप बहुरंगी है। राजस्थान ने जन जीवन को स्वस्थ और स्वच्छ वातावरण दिया है, जिसमें आहार और व्यवहार की शुद्धि को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व मिला है। यहां की सांस्कृतिक चेतना का उदात्त पहलू है लोकजीवन में व्यसनो की अल्पता। व्यसन कम है फलतः अपराध भी कम है। इस आन्तरिक स्वस्थता के साथ स्वतन्त्रता, त्याग, बलिदान और स्वाभिमान आदि तत्त्व भी राजस्थान की सांस्कृतिक चेतना के महत्त्वपूर्ण अंग रहे हैं। राजस्थानी समाज ने व्यावसायिक कौशल के साथ-साथ मानवीय पक्ष को भी उजागर किया है, जिसका शाश्वत सास्कृतिक मूल्य हैं। राजस्थान के पर्व, त्यौहार, संगीतकला, नाट्यकला, चित्रकला, वास्तुकला विशेष प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान आदि भी यहां की सास्कृतिक चेतना के प्रतीक हैं।

२. राजस्थान मे वैष्णव, रामस्नेही, दादूपन्थी, जैन—दिगम्बर, श्वेताम्बर, मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरापंथी आदि अनेक धाराएं प्रभावी रही है। इनके द्वारा आहार-विहार की शुद्धि और व्यसन मुक्ति पर पर्याप्त बल दिया गया, जिससे राजस्थान की चेतना को जागरण मिला। वैष्णव धारा ने भक्तिमार्ग को पल्लवित किया। रामस्नेही, दादूपन्थी आदि धाराओं ने सन्त परम्परा के विचार विकसित किए और जैन परम्परा ने भक्ति एवं तत्त्वज्ञान का समन्वित रूप प्रस्तुत किया। राजस्थान की लोक चेतना को अभिनव जागृति देने वाले अणुव्रत आन्दोलन का प्रारम्भ भी राजस्थान की धरती से हुआ है।

३. राजस्थान के सांस्कृतिक विकास मे जैन आचार्यों का बहुत योगदान रहा है। वर्तमान मे उनकी स्मृति साहित्य, कला, लिपि, ग्रन्थ भण्डार आदि अनेक रूपो में की जा सकती है। जैन धर्म

के महान् आचार्य श्री हरिभद्र सूरि पण्डित आशाधर, पण्डित टोडरमल, आचार्य समय सुन्दर, आचार्य जिनचन्द्र, पूज्य जयमलजी, आचार्य श्री भिक्षु, श्री मज्जयाचार्य आदि अनेक आचार्यों, मुनियों और पण्डितों ने साहित्य की अनेक विधाओं को पल्लवित पुष्पित किया है। लिपिकला के विकास और हस्तलिखित ग्रन्थागारों के विकास में सैंकड़ों सैंकड़ों जैन मुनियों और आचार्यों का योगदान रहा है। आयुर्वेद, मन्त्रविद्या, ज्योतिष आदि विषयों में यतियों और भट्टारकों के भण्डार बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते हैं। पर खेद है कि उन पर पर्याप्त रूप से काम नहीं हो पाया है।

सामाजिक परिवेश में सांस्कृतिक मूल्यों के उन्नयन का कार्य भी जैन धर्म के माध्यम से हुआ है। समाज चेतना को जर्जरित करने वाली कुरूढ़ियों में परिवर्तन और परिशोधन की दृष्टि से उल्लेखनीय काम हुआ है। इस कार्य से विशेष रूप से प्रभावित हुई स्त्रियों की चेतना, जिसको अन्ध विश्वास, अशिक्षा और अर्थहीन मिथ्या धारणाओं की पकड़ से एक सीमा तक मुक्ति प्राप्त हुई है।

४ मानवीय सभ्यता और सामाजिक संगठन का सबसे बड़ा आधार अहिंसा है। जैन धर्म ने अपनी सबसे अधिक शक्ति अहिंसा को उजागर करने में लगाई है। करुणा, मैत्री और सहिष्णुता अहिंसा के इन सभी पक्षों को सप्राण बनाकर उसने लोक चेतना को जागृत किया है।

जैन धर्म व्रत प्रधान धर्म है उपासना प्रधान नहीं हैं। जैन श्रावक व्रती बनते हैं। व्रत स्वीकार के फल स्वरूप उनकी प्रामाणिक चेतना अधिक उद्बुद्ध रही है। इस चेतना से सांस्कृतिक चेतना पर गहरा प्रभाव होता है और समाज में विशेष प्रकार के मूल्य प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

सामाजिक जीवन में संघर्ष की अनिवार्यता मानी गई है। 'जीवो जीवस्य जीवनम्' यह प्राचीन सिद्धान्त रहा है। वर्तमान का नया सिद्धांत है—संघर्ष जीवन के लिए है। जैन विचारधारा का सिद्धांत इससे उलटा है। उसने संघर्ष के स्थान पर सहयोग को स्वीकार किया। "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" इस मूल्य पर सामाजिक चेतना को जागृत करने का प्रयत्न किया गया।

अहिंसा, करुणा, मैत्री, सहिष्णुता, प्रामाणिकता, समन्वय और सापेक्षता ये शाश्वत मूल्य है। जैन धर्म ने इन मूल्यों पर विशेष बल दिया। वे अतीत में जितने सत्य थे, वर्तमान में भी उतने ही सत्य हैं। ये मूल्य जितने प्राचीन हैं उतने ही सामयिक हैं। इनके द्वारा आज भी सांस्कृतिक चेतना के जागरण में सहयोग मिल सकता है।

५ इस प्रश्न का उत्तर देना कुछ कठिन प्रतीत हो रहा है। यद्यपि जैन समाज को विरासत के रूप में अनेक महत्त्वपूर्ण मान्यताएं, सिद्धान्त और मूल्य प्राप्त हैं, फिर भी वह काल जर्जरित रूढ़ियों और कालातीत मान्यताओं से संत्रस्त नहीं है, ऐसा मैं नहीं सोचता। जैन समाज अपने पड़ोसी दूसरे समाजों से भिन्न अस्तित्व बनाए हुए हैं, यह भी प्रतीत नहीं होता। फिर भी कुछ संस्कारगत विशेषताओं के कारण इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि समाज में समतापूर्ण व्यवस्था, सापेक्षता और सहअस्तित्व की भूमिका के निर्माण हेतु अपरिग्रह और विसर्जन हो सकता है और ऐसा होने में बाध्यता नहीं किन्तु सहजता हो सकती है। इसमें सांप्रदायिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में नैतिक और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा भी सम्भावित है।

[२] प्रो० गणपतिचन्द्र भण्डारी

१ राजस्थान की सांस्कृतिक दाय बहुमुखी है पर उसका मूलाधार है 'जातीय चेतना'। सामंती युग मे जातीय सगठन बडे शक्तिशाली रहे और जन जागरण का सारा कार्य भी जातीय स्तर पर होता रहा। 'जाति-प्रेम' एक सर्वमान्य मूल्य था। इसके फलस्वरूप विभिन्न जातियो ने अपने समाज मे विद्या प्रचार के लिए शिक्षण सस्थाएं और छात्रावास खोले। आमोद-प्रमोद के लिए गाव था नगर के उपकठ मे किसी जलाशय के निकट बगीचिया और तीर्थ स्थानों पर धर्मशालाएं बनाई पर वे प्राय: स्वजाति की सेवा के लिए ही थी अथवा सुविधाए देने मे स्वजाति और पर जाति का भेद अवश्य किया जाता रहा। इससे जहां जातीय सगठन के रूप मे एक समूह विशेष के भीतर आत्मीयता पनपी वहा विभिन्न जातियो की स्पर्द्धा भी इतनी बढी कि कही-कही उसका विद्वेषपूर्ण घातक रूप भी प्रकट होने लगा।

इस जातीयता का सर्वाधिक प्रबल रूप जोधपुर राज्य मे देखने को मिलता है। जहा विभिन्न जातियो की लगभग १०–१५ शिक्षण सस्थाएं हैं। इनसे कतिपय हानियो के साथ एक लाभ यह अवश्य हुआ कि जातीय चरित्र उभर कर ऊपर आया। राजपूत अपने दर्प, शौर्य, साहस और शरणागत रक्षा एवं बलिदान के गुणो से पहचाने जाने लगे तो चारण अपनी विद्वत्ता और काव्य-कौशल के लिए। ओसवाल, अग्रवाल और माहेश्वरी आदि वैश्य जातियां अपने सादे और निर्व्यसनी जीवन, बुद्धिमत्ता एव व्यवसाय कौशल के लिए विशेष प्रसिद्ध हुई तो कायस्थ अपने बौद्धिक, कौशल और नीति-निपुणता के लिए विख्यात हुए। ब्राह्मणो ने विद्वत्ता, सगीत-कौशल एवं ज्योतिष ज्ञान मे प्रसिद्धि पाई तो श्रमिक जातियो ने स्थापत्य और शिल्प-कौशल मे। मुसलमानो ने संगीत और नृत्य शैलियों का विकास किया तो ईसाइयो ने शिक्षा और चिकित्सा के श्रेष्ठ प्रतिमान स्थापित किये। सोमपुरो ने विश्वविख्यात जैन मंदिरो का निर्माण किया तो ढोलियो ने संगीत, नृत्य, अभिनय को सहेजा। लोक कलाओ की रक्षा अधिकतर, निम्न समझी जाने वाली जातियो ने ही की है। अतः राजस्थान की सांस्कृतिक दाय जाति मूलक है या धर्म मूलक क्योकि अनेक जातियां धर्म के आधार पर ही निर्मित हैं।

निर्गुणोपासना भी राजस्थान की एक प्रमुख सांस्कृतिक दाय है जिसे अछूत जाति के संतो ने प्रतिष्ठित किया और आज भी अनेक श्रमिक जातियो के अध्यात्मज्ञान के वे ही उद्गम स्रोत हैं। सवर्ण हिन्दुओ मे सगुणोपासना भी खूब प्रचलित रही। नाथ पथ और कबीर पंथ का प्रचार भी राजस्थान मे काफी रहा।

२. जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, धर्म और जाति का घनिष्ट सम्बन्ध रहा है यद्यपि कुछ अपवाद भी अवश्य हैं। ब्राह्मण प्राय: शैव व वैष्णव हैं, राजपूत और चारण शाक्त भी है और कुछ शैव व वैष्णव भी; जैसे उदयपुर का राजपरिवार। ओसवाल प्राय: जैन हैं पर उनके अतिरिक्त पोरवाल भी जैन है। दिगम्बर जैनो में सरावगी गोदा, हूण आदि जातिया है पर अधिकाश दिगम्बर स्वयं को 'जैन' ही लिखते-बताते हैं, वे जाति का उल्लेख नही करते। अधिकाश दिगम्बर जैन पूर्वी और दक्षिणी राजस्थान में है परन्तु बहुसख्यक जैन श्वेताम्बर है जो अधिकतर पश्चिमी राजस्थान के निवासी हैं। कायस्थो में कुछ सत्संगी सम्प्रदाय के हैं जिनके गुरु की गद्दी दयाल बाग, आगरा में है तो अन्य वैष्णव भी हैं। राजस्थान मे अग्रवाल जैन बहुत कम है, अधिकाश वैष्णव हैं। माहेश्वरी,

मानी एवं अधिकांश श्रमिक जातियां वैष्णव, शैव, रामदेव या संत मत के विभिन्न सम्प्रदायों की हैं। विश्नोइयों का अपना अलग सम्प्रदाय है जिसके प्रणेता जाम्भोजी हैं। इनके अतिरिक्त मुसलमान, ईसाई और आर्यसमाजी भी हैं। राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में इन धर्मों की देन लगभग वही है जो इनकी अनुयायी जातियों की है। फिर भी कुछ ऐसे कार्य हैं जिन पर जाति की अपेक्षा धर्म की छाप अधिक है और जो जाति के प्रतिबंध से मुक्त हैं।

सुविधा के लिए यदि हम शैव, शाक्त, वैष्णव और निर्गुणोपासकों को हिन्दू धर्म में समाहित मान लें तो राजस्थान में मुख्य धर्म ५ रह जाते हैं—हिन्दू, जैन, वैदिक (आर्यसमाजी), इसलाम और ईसाई। राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में इन सबका योगदान रहा है। हिन्दू धर्म ने यहां एक ओर सगुण भक्ति की गंगा बहाई और मीरा, नागरीदास और चन्द्रसखी जैसे भक्त साहित्यकार प्रदान किये एवं नाथद्वारा, कांकरोली, एकलिंगजी जैसे भव्य तीर्थ स्थानों का निर्माण किया तो दूसरी ओर दादू और कबीर आदि के अनुयायियों ने संतों की वाणी गा गाकर अल्पशिक्षित और अशिक्षित श्रमिक जातियों में शुद्ध आचरण एवं नैतिक और संतोषी जीवन को प्रोत्साहन दिया। साथ ही रूढ धार्मिक उपदेशों ने इन्हें भाग्यवादी भी बनाया। धर्मशालाओं और गोशालाओं के निर्माण जैसे लोकोपकारी कार्य भी धार्मिक वृत्ति के लोगों ने किये।

राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में जैनों का योगदान बहुमुखी और अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है विशेषतः साहित्य, शिक्षा और शिल्प एवं स्थापत्य के क्षेत्र में, जिसकी चर्चा तीसरे प्रश्न के उत्तर में अधिक विस्तार से की जायगी।

जन जागरण के क्षेत्र में सर्वाधिक मूल्यवान योगदान आर्यसमाज का रहा है। महर्षि दयानन्द का देहावसान अजमेर में होने से राजस्थान में वैदिक धर्म के प्रचार की एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि बनी और उनके सिद्धांतों के व्यापक प्रचार से मानो राजस्थान ने इस महान् विभूति के प्रति अपनी धरती पर किये गये क्रूर अन्याय का प्रतिकार किया। स्त्री शिक्षा, पर्दा निवारण, अछूतोद्धार, विधवा विवाह एवं अनाथ संरक्षण जैसे सामाजिक क्रांति के ठोस कार्य आर्यसमाज द्वारा पूरे जोश खरोश से किये गये और सामाजिक सुधारों का एवं अंधविश्वासों को त्याग कर बौद्धिक दृष्टि से स्वतंत्र चिंतन के नये युग का सूत्रपात करने का बहुत बड़ा श्रेय आर्यसमाज के प्रचारकों को है। इन्होंने अनेक शिक्षण संस्थाएँ भी स्थापित कीं और महिलाओं को अबला से सबला बनाने का व्यापक प्रयास किया।

इसलाम की देन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है अजमेर में ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह जो मुसलमानों का अंतराष्ट्रीय महत्त्व का तीर्थ स्थान है और जिस के उर्स पर हिन्दू और मुसलमान दोनों उनके भक्तों की कव्वालियों का आनंद लेते हैं एवं उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं। ईसाइयों ने श्रेष्ठ शिक्षण संस्थाएँ और चिकित्सालय कायम करके एक ओर फिर उपेक्षित आदिवासियों में धर्म का प्रसार किया तो दूसरी ओर जनता की शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र में बहुमूल्य सेवाएँ प्रदान कीं। पर इन शिक्षण संस्थाओं का लाभ अधिकतर धनिक वर्ग ने ही उठाया और इससे उनके जीवन और रहन सहन पर पाश्चात्य संस्कृति का गहरा रंग चढ़ गया। अंग्रेजी के विद्वानों और कुशल प्रशासकों के निर्माण में मिशनरी स्कूलों का विशेष योगदान रहा है।

३ सांस्कृतिक चेतना की इस पृष्ठभूमि में जैनों का योगदान बहुमुखी और महत्त्वपूर्ण रहा

है। जैनाचार्यों ने बहुमूल्य धार्मिक साहित्य का निर्माण किया और प्राचीन साहित्य का संरक्षण भी। राजस्थानी का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य जैनाचार्यों का ही रचित है। उनकी कृतियां नैतिक और आध्यात्मिक जीवन की प्रेरक तो है ही, लोकनीति और लोक व्यवहार की परिचायक भी है और साथ ही अनेक कृतियां साहित्यिक सौंदर्य से पूर्ण है। उपदेशो का आधार प्राय: रोचक कथाएं रही है। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनो मे है और विक्रम की १३वीं शताब्दी से ही उपलब्ध होता है। इसमे विविधता भी बहुत है। साथ ही राजस्थान मे पच्चीसो ऐसे ग्रंथागार है जहां जैनो ने प्राचीन हस्तलिखित साहित्य को सुरक्षित रखा है। इनमे अनेक अलभ्य जैनेतर कृतियां भी है और इस सुरक्षित साहित्य की मात्रा विपुल है। जैनाचार्यों की साहित्य-साधना आज तक निरंतर चलती रही है और आज भी अनेक कवि काव्य रचना की नवीन पद्धति को अपनाते हुए अपना संदेश प्रभावशाली ढंग से देते है और उनकी कृतियाँ देश के ख्यातनामा हिन्दी प्रकाशकों ने प्रकाशित की है। प्राचीन साहित्यकारो मे आचार्य हेमचंद्र, मेरुतुंग, तरुणप्रभसूरि, माणिक्य सुंदर सूरि, कुशललाभ, राजेंद्र सूरि, आचार्य भिक्षु जयाचार्य आदि विख्यात है और आधुनिक साहित्यकारो मे आचार्य तुलसी, आचार्य हस्तीमलजी, मुनि नगराजजी, मुनि नथमलजी, मुनि महेन्द्रकुमारजी, मुनि मधुकरजी उल्लेखनीय है। प्राचीन जैन श्रावको मे नैणसी मुंहणोत राजस्थान के प्रथम महत्त्वपूर्ण इतिहासकार है और आधुनिक श्रावको मे अनेक कवि, लेखक, समीक्षक एवं शोधकर्ता है जिनमे श्री अगरचंद नाहटा, श्री कन्हैयालाल सेठिया, श्री भंवरमल सिंघी व डॉ० नरेन्द्र भानावत आदि विशेष उल्लेखनीय है।

साहित्य रचना और संरक्षण के अतिरिक्त गांधी युग के आचार्यों और मुनियो ने समाज सुधार की चेतना उत्पन्न करने मे भी प्रशंसनीय योगदान दिया जिसमे स्त्री शिक्षा का प्रचार, पर्दा और अंधविश्वासो का विरोध, फैशन, नशा, वृद्ध विवाह, बाल विवाह आदि का विरोध मुख्य था। इनमे जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी, आचार्य श्री जवाहरलालजी और गणेशीलालजी विशेष लोकप्रिय हुए। शिक्षा प्रचार का कार्य राजस्थान मे श्री विजयवल्लभ सूरि ने विशेष रूप से किया। सांस्कृतिक चेतना जगाने और नैतिकता का प्रभावशाली प्रचार करने में आचार्य तुलसी और उनके शिष्यो का कार्य विशेष सराहनीय है। आचार्य तुलसी ने जैन धर्म को जैनो के सीमित दायरे से निकाल कर सर्वसाधारण के मध्य प्रतिष्ठित करने एवं राजनैतिक नेताओ, उच्च अधिकारियों और विद्वानो को जैन धर्म के निकट सम्पर्क मे लाने वाले वैचारिक मंच के निर्माण का क्रांतिकारी कार्य किया है जिसका अनुकरण अब अन्य सम्प्रदायो के साधु लोग भी करने लगे हैं। साम्प्रदायिक अहं को तोडने और विद्वेष को मिटाने का भी आचार्य तुलसी ने योजनाबद्ध कार्य किया एवं साधु समाज को आधुनिक विद्याओ का ज्ञान प्राप्त करने एवम् कलात्मक साधना के लिए भी प्रेरित किया। इस प्रकार शिक्षण संस्थाओ के निर्माण द्वारा ज्ञान की वृद्धि और चेतना के विकास का एवं सामाजिक सुधार और चरित्र-उत्थान का श्लाघनीय कार्य वर्तमान युग मे जैन श्रमणो द्वारा किया जा रहा है।

जहां तक अनुयायियो के योगदान का प्रश्न है, वे अपने गुरुओ के आदेशों का पालन करने मे खुले दिल से धन लगाते है। प्राचीन काल में उन्होने भव्य और विशाल मंदिरो का निर्माण करके राजस्थान को स्थापत्य और शिल्प की अनुपम थाती भेंट की और आज के युग में शिक्षण संस्थाओ का निर्माण करके ज्ञान-प्रसार के कार्य में सक्रिय योग दे रहे हैं। इसके अलावा चिकित्सालयो के

निर्माण द्वारा एवं अकाल आदि प्राकृतिक प्रकोपो के समय उदार द्रव्य दान द्वारा लोक सेवा भी करते हैं। स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी नेताओं में भी अनेक जैन नेता थे, जैसे सर्वश्री अर्जुनलाल सेठी, आनंदराज सुराणा, फूलचंद बाफणा, मानमल जैन इत्यादि। राजस्थान के औद्योगिक विकास मे भी जैन श्रावकों का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है और वाणिज्य व्यवसाय में तो वे देश भर मे अनेक संस्थानों के अत्यंत दायित्वपूर्ण पद सम्हाले हुए हैं। इस प्रकार राष्ट्रनिर्माण के कार्य में भी उनका सराहनीय योगदान है। परन्तु इतने बड़े समाज में सभी लोग उच्च नैतिक स्तर के नहीं होते, अतः कुछ लोग धन के लोभ से कुछ ऐसे धंधे भी अपना लेते है जो जैनों को शोभा नहीं देते, जैसे तस्करी, काला बाजारी, मिलावट, कर चोरी। पर छाती पर हाथ रख कर देखें तो आज कौनसा समाज इससे मुक्त है ? कौन है दूध का धुला हुआ आज ? तथापि जैन धर्म के बिम्ब को धुंधलाने वाले ऐसे धंधों से कम से कम जैनों को तो दूर ही रहना चाहिए। वैसे व्यक्तिगत गुणों की दृष्टि से औसत जैन व्यवहार का मधुर बुद्धिमान, व्यसनों से मुक्त और झगड़े टंटे से दूर रहने वाला होता है।

४ जैन धर्म मे प्रतिपादित पांचों महाव्रत ऐसे मूल्य हैं जिनके स्थूल रूप अणुव्रतों के नाम से प्रसिद्ध हैं और युगानुकूल संदर्भ देकर आचार्य तुलसी ने जिनका विशेष प्रचार किया है। वे हैं—

(१) अहिंसा—जिसका व्यावहारिक रूप है किसी के मन को दुर्भावना से न दुखाना और किसी जीव का जहां तक संभव हो, हनन न करना। गांधीजी ने इसका राजनैतिक क्षेत्र में भी सफलता से प्रयोग किया और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को बातचीत से सुलझाने की आधुनिक प्रवृत्ति के पीछे भी अहिंसा का सिद्धांत ही है। कुछ लोग दया, करुणा और प्रेम को भी इस का ही विधायक रूप मानते हैं और ये गुण सफल एवं सुसंस्कृत सामाजिक जीवन के लिए परम आवश्यक हैं।

(२) सत्य—आचार विचार में मिथ्यात्व से बचना, किसी से छल न करना, मिलावट न करना, ठगी न करना आदि स्वस्थ सामाजिक जीवन की अनिवार्य शर्तें है, जो चिरंतन हैं।

(३) अस्तेय (अचौर्य)—इसकी आज के युग में सर्वाधिक आवश्यकता है और वह भी हमारे देश को विशेष रूप से। कर की चोरी, झूठा नाप-तौल, सार्वजनिक सम्पत्ति एवं रेल्वे की सम्पत्ति की चोरी, दफ्तरों से विभिन्न प्रकार के सामान की चोरी कॉलेजों में विचारों की चोरी (नकल)—सर्वत्र चोरी का बोलबाला है। इससे बचना जैनों का प्रमुख सिद्धांत है।

(४) ब्रह्मचर्य—बढ़ती जनसंख्या विश्व का सबसे बड़ा अभिशाप है और उसे रोकने का एक उपाय है ब्रह्मचर्य की साधना। पर यह होना चाहिए ध्यान की साधना से न कि काम प्रवृत्ति के दमन द्वारा। काम की अपेक्षा काम के चिंतन से मुक्त होने की बहुत आवश्यकता है। यदि मन काम से मुक्त हो तो तन की चिंता करने की आवश्यकता भी नहीं रहती।

(५) अपरिग्रह—अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखना और नितांत आवश्यकता से अधिक कोई वस्तु न रखना। आज के संग्रहखोर युग में इसकी कितनी उपयोगिता है, इसे बताने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि सभी लोग अपने भोग्य पदार्थों की और सम्पत्ति की सीमा निर्धारित कर दें तो देश की आर्थिक स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन हो जाए, पर कहां ? स्वयं जैनियों में ही

अनेक उच्च कोटि के परिग्रही हैं ! परिग्रह से बचना बढती हुई जनसंख्या के भरणपोषण के लिए नितांत आवश्यक है ।

इन सबके मूल में है अनेकान्तवादी जैन दृष्टि जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । अपने विचार दूसरो पर थोपो मत । आग्रही मत बनो । यह सोचकर चलो कि दूसरे का कथन भी किसी अन्य दृष्टि से सही हो सकता है । पारस्परिक सम्बन्धो को स्वस्थ रखने के लिए यह गुण नितात आवश्यक है । सत्य बहु आयामी होता है और हम एक समय मे उसके केवल एक ही पहलू को देख पाते हैं; अतः उसके अन्य पहलुओ की सम्भावना स्वीकारने मे हिचकिचाहट क्यों हो ? फिर जिन्होंने पूर्ण सत्य की अनुभूति की है, वे भी भाषा की अपूर्णता के कारण अपनी अनुभूति का सही रूप मे सम्प्रेषण नही कर पाते और भाषा मे ढलते ही सत्य एकागी हो जाता है क्योंकि भाषा एक आयामी है—आप एक समय मे एक साथ घटित होने वाली बातों को भी एक-एक करके क्रमानुसार ही कह सकते हैं जिससे पूर्ण सत्य का चित्र विकृत हो जाता है अतः सत्य के इतर पहलुओ की सम्भावना स्वीकार करते हुए अपनी ही बात सही और श्रेष्ठ मानने का आग्रह न किया जाय—यही स्याद्वादी दृष्टि है जो आज के जीवन मे पारिवारिक जीवन से लेकर अंतर्राष्ट्रीय जीवन तक अत्यंत उपयोगी और पारस्परिक बंधुत्व भावना बढ़ाने वाली है ।

५. क्या यह युग 'नव सांस्कृतिक जागरण का युग' है भी ? मुझे तो लगता है, यह युग 'तोडने' का ही युग है—बिखराव का युग है जिसमें परम्परागत आस्थाएं टूट रही हैं, पुराने जीवन मूल्य बिखर रहे हैं और हमारा सामाजिक जीवन मानो मर्यादाहीनता और अराजकता से ग्रसित होता जा रहा है । अभी पतझड़ चल रहा है और बसन्त की कोपलें फूटी नही हैं । हर नव सृजन के पूर्व पुरातन का ध्वंस अवश्यम्भावी है—वही हो रहा है । नव निर्माण होगा अवश्य—नये मूल्य भी आकार लेंगे ही—पर अभी उन के रूप-रग और आकार-प्रकार का आभास नही मिल रहा है । जैन समाज भी इसका अपवाद नही । यदि हम आज के औसत नवयुवक की दिनचर्या देखें तो शायद वह जैन से अधिक अजैन कृत्यो और विचारो से ही लिप्त दिखाई देगी । ठीक है प्रश्न ४ के उत्तर में लिखित जीवन के कतिपय चिरंतन लगने वाले मूल्यो की सुरक्षा में हमारे धर्माचार्य लगे है परन्तु नये जीवन की नई समस्याएं सम्भव है, उनमे भी परिवर्तन की मांग करे ।

[३] श्री भंवरमल सिंघी

१. राजस्थान को शौर्य-संस्कृति का स्थल कहा गया है । वहां की भूमि के लिए मुख्य विशेषण 'वीर-प्रसविनी' रहा है । राजस्थान का नाम आते ही महाराणा प्रताप आदि रणवीरों का खयाल आता है और जन्मभूमि की स्वतन्त्रता और सुरक्षा के लिए लड़ते-लड़ते प्राणों की बलि देने वाले अन्य वीरों का भी सहज ही स्मरण हो आता है । पर उसी के साथ भामाशाह जैसे उदार और त्यागी जैन वीरों का भी तो स्मरण हो आता है, जिन्होने लोक-कल्याण की भावना से, निस्वार्थ रूप से अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया । वास्तव मे, राजस्थान वीरों की तपोभूमि रही है । तप और त्याग वहां की संस्कृति का हार्द रहा है । शस्त्र-वीरता तो बाह्य रूप है, वास्तविक महत्ता तो मन-प्राण की आंतरिक वीरता की है । इसी से हिंसक वीरता की अपेक्षा अहिंसक वीरता कही बड़ी मानी जाती है ।

राजस्थान में तप और त्याग की जो महान् ऊर्जा संगठित और विकसित हुई, उसके पीछे वहां पर प्रचलित सभी धर्मों और संस्कृतियों का योग रहा है। मानवमात्र की स्वतन्त्रता, समता और शान्ति के लिए राजस्थान हर अवसर पर प्राणोत्सर्ग करता रहा है। वहां शान्ति के समय में संतों की शान्त वाणी निनादित होती रही है, तो युद्ध के समय चारणों का ओजस्वी सिंहनाद गूंजता रहा है। दोनों में ही निःस्वार्थ भाव से व्यक्ति, समाज और देश के जीवन में त्याग और बलिदान की संस्कृति अपने प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर होती रही है।

२-३ राजस्थान जैन धर्म और संस्कृति का प्रमुख क्षेत्र रहा है। वहां जैन धर्मावलम्बियों की बहुत बड़ी संख्या है। न केवल वाणिज्य-व्यवसाय में ही, बल्कि प्रशासन और स्वतन्त्रता संग्राम में भी उनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। ज्ञान के क्षेत्र में अन्य जातियों और समाजों की अपेक्षा जैनियों ने कहीं अधिक प्रगति की है। साहित्य और कला के क्षेत्र में जैन समाज के लोगों का अप्रतिम अवदान है। जैन साधुओं और यतियों ने इस दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यही कारण है कि जिसे भी राजस्थान के इतिहास और साहित्य की खोज करनी हो, उसे जैन मन्दिरों और भंडारों की शरण लेनी ही होती है। केवल जैन धर्म सम्बन्धी दार्शनिक ग्रन्थों का ही नहीं, बल्कि इतिहास और लोक-संस्कृति की परम्परा सम्बन्धी ग्रन्थों का भी बहुत बड़ा समुच्चय इन मन्दिरों और भंडारों में भरा पड़ा है। संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा की समृद्धि बढ़ाने में भी जैन साधुओं एवं श्रावकों का विशिष्ट योग रहा है। इतिहास के संदर्भ में हमें उस विद्वान् जैन यति का स्मरण हो आना स्वाभाविक है, जिसकी सहायता से ही कर्नल टाड राजस्थान का इतिहास प्रस्तुत कर पाये। टाड का इतिहास जिस सामग्री पर आधारित है, उसमें जैन आचार्यों, साधुओं और यतियों के हस्तलिखित ग्रन्थों का कितना महत्त्व रहा है, यह उस इतिहास को पढ़ने वाले सभी जानते और मानते हैं। स्वयं टाड ने उनका ऋण स्वीकार किया है।

इस प्रकार अपने बहुमुखीय महत्त्वपूर्ण अवदान से जैन समाज ने राजस्थान की जीवन-संस्कृति को अत्यन्त प्रभावित किया है। जैन धर्म के मूल सिद्धान्त जैसे अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त आदि समता, संयम और त्याग पर जोर देते हैं और सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र्य की महिमा मानते हैं। इन गुणों के आधार पर ही जैनियों ने समता मूलक संस्कृति का निर्माण और निर्वाह किया है। यद्यपि व्यापार व्यवसाय, जो जैनियों का प्रमुख कर्म रहा है, में अपरिग्रह एवं अहिंसा की मूल भावना पूरी तरह से नहीं निभ पाई परन्तु राष्ट्रीय तथा सामाजिक संकटों के समय जैन श्रावकों ने औदार्य और त्याग के पर्याप्त उदाहरण रखे हैं। स्वनामधन्य भामाशाह इसी संस्कृति का पुष्प था। मेवाड़ के स्वाधीनता संग्राम में उन्होंने अपना सर्वस्व महाराणा प्रताप को समर्पित करके जो महान् कार्य किया, उसे इतिहास कभी भी भुला नहीं सकता। उन्होंने राष्ट्रीय और सामाजिक हित के निमित्त दान की जो प्रवृत्ति स्थिर की वह कम-ज्यादा रूप में बराबर कायम रही। आज भी राजस्थान में ही नहीं, वहां से बाहर भी जगह-जगह जैनियों द्वारा मानवता व सार्वजनिक कार्यों में बहुत अवदान हो रहा है। जैन संस्कृति का आधार निवृत्ति और निवृत्तिमूलक प्रवृत्ति है। जिसके स्वभाव में परिग्रह की भावना नहीं है वह किसी से राग द्वेष नहीं करता। राग द्वेष के बिना संघर्ष भी नहीं होता।

महावीर और दूसरे भी संतों के आदर्शों ने अहिंसक जीवन दृष्टि और समाज रचना का

अपनी साधना का प्रमुख ध्येय माना और उसके लिए अहिंसा, अपरिग्रह तथा अनेकान्त के सिद्धान्त पर चलने की बात कही। जगत् एव जीवन सबन्धी अपनी इन मान्यताओं पर बल देते हुए भी उन्होंने अन्य धर्मों के सिद्धान्तो एवं विचारों की कभी उपेक्षा नही की जिससे सह-धार्मिकता और सह-जीवन की भावना रख कर वे शान्ति-पूर्वक जीवन की ऊर्ध्व गति प्राप्त करते रहे। जैन साधु-साध्वियां अपने नियमों के अनुसार चलते-फिरते तीर्थ रहे है—गांव-गांव मे पद-यात्रा करते हुए वे संयम एव त्याग की संस्कृति के प्रचार के जीवन-दूत सिद्ध हुए। लोक-भाषा मे बोलते हुए लोक-कल्याणमयी सस्कृति का जीवन-सदेश फैलाते रहे हैं। प्राणि-रक्षा की मूल मानवीय भावना के निरन्तर प्रचार से उन्होंने इस सारे क्षेत्र मे मद्य और मास के त्याग का जो अनुपम सुसंस्कार डाला, वह स्पष्ट है। लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा है कि गुजरात प्राणि-रक्षा एवं निर्मांस भोजन के संस्कार मे जो सभी प्रान्तो से आगे है, वह जैन धर्म और सस्कृति के प्रचार एव पालन का ही फल है। राजस्थान के विषय मे भी यह बात उतनी ही सच है।

४ सस्कृति केवल पुस्तकीय और शास्त्रीय वस्तु नही है; उसकी कसौटी तो जीवन है। जैन दृष्टि से जीवन मे सतत् शोधन-सस्कार द्वारा कर्मक्षय की पद्धति एवं प्रवृत्ति सदैव कायम रहनी चाहिए। यही कारण है कि हमारी संस्कृति में मैत्री और क्षमा-भावना पर इतना जोर दिया गया है। इन गुणो वाली जीवन-सस्कृति के निर्माण और विकास के लिये हम दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य की सम्यक्ता रूपी रत्नत्रयी की साधना को अनिवार्य मानते है।

जीवन-शोधन की सतत् प्रवृत्ति की जो बात मैंने अभी कही, उसी से प्रेरित होकर आधुनिक काल मे भी जैन समाज ने व्यक्तियो एव समाजो के मध्य पारस्परिक मैत्री एव एकता के कार्यों में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान किया। यह कहना तो सही नही होगा कि जैनियो मे जड़ता और अधपरपरा की स्थिति है ही नही। परन्तु यह जरूर कहा जा सकता है कि जब-जब सिद्धान्तो मे या तदनुसार जीवनचर्या में विकास की वृद्धि हुई, उसका संशोधन करने की दिशा मे जैन लोगों ने विशेष रुचि और प्रवृत्ति दिखाई है। जैन सिद्धातो के अनुसार समस्त जीव समान हैं और सभी प्राणियो के जीवन का समान महत्त्व है। इसी मे अहिंसा धर्म का सच्चा पालन है। जैन सस्कृति मे जाति-भेद नही है। परन्तु अन्य समाजो की जाति व्यवस्था से जैन भी प्रभावित हुए और कालान्तर से उनमे भी जातिगत भेदभाव पैदा हो गया। एक ही गुरु और तीर्थंकर के अनुगामी होते हुए भी सामाजिक व्यवहार मे जाति की दीवारे जैनियो मे खड़ी हो गईं। यहा तक कि जीव-अजीव सबकी समानता मे विश्वास करने वाले जैन समाज मे अस्पृश्यता भी घुस गई। इसमे जैन जीवन-विधि का सर्वान्त निषेध था। जैन धर्म के कर्म-सिद्धान्त के अनुसार जाति-भेद के लिए कोई स्थान नही है। इस मान्यता के अनुसार राजस्थान मे स्व० श्री अर्जुनलाल सेठी ने जातिवाद के विरुद्ध जो सुधार आदोलन संगठित और सचालित किया उसका राजस्थान की मैत्रीपूर्ण लोकसंस्कृति के विकास में बहुत बड़ा योग सिद्ध हुआ जिसका महत्त्व आज भी माना और समझा जाता है।

५. सम्प्रति सारे देश मे भगवान् महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण-शती मनायी जा रही है। इस संदर्भ मे हम भगवान् महावीर के लिये केवल परिग्रह-पूजा का ही आयोजन न करें बल्कि जीवन के शोधन-परिवर्तन की दिशा में भी सक्रिय हो ताकि जैन संस्कृति का वास्तविक रूप उजागर हो तथा महावीर की जीवन-साधना की ओर सभी लोगो का ध्यान आकर्षित हो। आज संग्रह और शोषण की

जो वृत्ति चारों तरफ फैली हुई दीखती है, वह इसी कारण से है कि हम परिग्रहवाद में फंसे हुए हैं। जो और जितना परिग्रह हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में बढ़ा और फैल गया है, उसी से विषमता का वर्तमान वातावरण पैदा हुआ है। हम भौतिक संग्रह के गुलाम हो गये हैं। जैन धर्म एवं संस्कृति में बार-बार परिग्रह का निषेध करने को कहा गया है। पर श्रावक-श्राविका ही नहीं, हमारे तीर्थ और मन्दिर भी इसके शिकार हो गये हैं। वहां भी संयम एवं शांति के बदले अशांति और संघर्ष की स्थिति पैदा हो रही है, बढ़ रही है। वर्तमान जीवन के सारे तनाव, घुटन और संत्रास के मूल में यह स्थिति ही है। यदि हम इस स्थिति में से निस्तार चाहते हैं, फिर सुख और शांति चाहते हैं तो हम एक तरफ अपने मन्दिरों, तीर्थों और संघों में अपरिग्रह आधारित दृष्टि का प्रत्यावर्तन करना होगा और दूसरी तरफ व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में समता, संयम और सादगी के मूल गुण-स्थानों का जीवन जीना होगा, उनका पुनरान्वेषण और पुनर्प्रवर्तन करना होगा और उन पर चलना होगा। यदि अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकांत और मैत्री से निर्मित और प्रवृत्त मान संस्कृति के वास्तविक हार्द को समझ कर चलें और सतत् जीवन शोधन की दृष्टि एवं वृत्ति के प्रति जागरूक तथा सक्रिय रहें तो विषमता का वर्तमान दुष्चक्र स्वतः समाप्त हो जायगा। यदि हम इस मार्ग को अपना लें और उसके अनुसार चलें, तो सहज ही लोकतन्त्र एवं समाजवाद के तत्त्व सार्थक एवं सफल बन जायेंगे। इस अर्थ में जैन सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक और प्रेरक हैं।

[४] प्रो० प्रवीणचन्द्र जैन

१ वर्तमान राजस्थान की रचना का आरम्भ सन् १९४७ में होता है। इससे पूर्व यह प्रदेश छोटे बड़े २३ राज्य तथा २ ठिकाना एवं अजमेर मेरवाड़ा में विभक्त था। आज का राजस्थान सन् १९५६ में बना है। १९४७ में जो राज्य थे उनका अस्तित्व भी ईसा की ७वीं सदी के बाद का है। इन रियासतों की स्थिति मुस्लिम शासन के आरम्भ के पूर्व की मानी जा सकती है, हालांकि मुस्लिम और ब्रिटिश शासन काल में भी अनेक परिवर्तन और परिवर्धन हुए हैं। स्वतन्त्रता की प्राप्ति से पूर्व इन सब राज्यों में जो राजनैतिक प्रतिद्वन्द्विता का भाव रहा उससे उत्पन्न कुरूपता और भीषणता को हटाते रहने में संस्कृति, साहित्य और कला के विविध क्षेत्रों में होने वाले कार्य का महत्त्वपूर्ण योग है। संस्कृति, साहित्य और कला, इन तीनों का पक्ष मानवता का पक्ष है और उनका लक्ष्य अपनी अपनी प्रवृत्तियों के माध्यम से मानव और मानव के बीच की दीवारें ढहाते रहना है। इन क्षेत्रों में होने वाले आयोजन, सृजन और प्रसारण के माध्यम से एक प्रदेश के लोगों का दूसरे प्रदेश के लोगों से सांस्कृतिक स्तर पर सम्पर्क होता रहा है, उनकी भावात्मक कोमलता बनी रही है और वैचारिक आदान प्रदान के अवसर प्राप्त रहे हैं। ये सब जीवन के लक्षण हैं। स्पष्ट है, राजस्थान की सांस्कृतिक दाय का स्वरूप अन्य प्रदेशों के समान ही विविध संकीर्णताओं के साथ भावात्मक एकता और वैचारिक प्रबुद्धता को लिए हुए है।

२ राजस्थान में मुख्यतः हिन्दू मुसलमान, जैन, सिख और ईसाई धर्मों के अनुयायी रहते हैं। इन धर्मों की प्रवृत्तियों में एक ओर तो साम्प्रदायिक संकीर्णता का भाव मिलता है और दूसरी ओर उनसे सार्वजनिक हित का भाव भी समर्थित और सम्पुष्ट होता है। इन धर्मों के अनुयायियों को एक जगह रहना पड़ता है और मिल जुल कर अपनी भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करनी

होती है इसलिए सकीर्णता और उदारता दोनों का सह अस्तित्व सम्भव होता रहा है। विभिन्न धर्मावलम्बियो ने जीवन के सास्कृतिक पक्ष को समझने-समझाने का जो प्रयत्न किया है उससे साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के होते हुए भी सार्वजनिक अथवा सामाजिक लाभो की निष्पत्ति हुई है। यहां के विद्वानों, आचार्यों और साधु-सन्तो ने जीवन के शाश्वतिक मूल्यो को निरावृत रूप मे प्रस्तुत किया है। और एक बार नहीं, अनेक बार स्थितिपालको मे से ही कई लोग ऐसे निकले हैं जिन्होने चेतना के क्षेत्र मे क्रातिकारी कदम उठाये हैं।

ऐसे लोगो के उपदेशो, व्याख्यानो और संवादों का सामाजिक परिणाम यह हुआ है कि समृद्धि और सम्पन्नता के मायाजाल मे फसे हुए लोगो को, चाहे वे सम्पन्न रहे हो या असम्पन्न, सासारिक उपलब्धियो की नश्वरता का बोध बराबर बना रहा है। इससे मानव और मानव के बीच की दरारे तो चाहे नही मिट सकी, पर उनके बीच गहरी खाइया नही बन पाई। किसी भी निमित्त विशेष को लेकर अनेकश एक जगह बैठ सके, खा पी सके, एक दूसरे की भावना का आदर कर सके और वैचारिक क्षेत्र मे स्थूल और सूक्ष्म के अन्तर को आदान प्रदान की प्रक्रिया से, वादो और शास्त्रार्थों से समझ सके समझा सके।

३. इस बडे काम मे निश्चय ही राजस्थान के जैन आचार्यों, साधुओ तथा प्रबुद्ध गृहस्थों का भी प्रशमनीय योग रहा—ऐसा योग जिसका प्रभाव देशकालातीत है। कम से कम लेकर अधिक से अधिक देने की वृत्ति वाले जैन श्रमणो या तापसो ने एक स्थान से दूसरे स्थान तक पद-यात्रा करते हुए जन साधारण की चेतना के आवरणो को हटाने और शुद्ध एव सरल जीवन धारा को निरन्तर प्रवाहित करते रहने मे स्थायी योग दिया। उन्होने व्यक्ति की समस्याओ को जाना, उसकी पीडा का अनुभव किया और सामाजिक रूप से उनका समाधान किया। त्याग और तपस्या के महत्त्व को मनोवैज्ञानिक रीति से समझाकर उन्होने अर्थशक्ति अथवा राज्यशक्ति मे सम्पन्न लोगो को धन या राज्य को ही सब कुछ मानने के अभिमान मे बचाया और दोनो शक्तियो से हीन लोगो को दीनता या हीनता के भाव से मुक्त किया, उनमे आत्म-बल का सचार किया। जीवन के लक्ष्य की स्पष्ट रूप रेखा प्रस्तुत करके उसकी प्राप्ति की ओर सभी वर्गों के लोगो को—मानवमात्र को—गतिशील किया। प्रबुद्ध गृहस्थो ने भी साधु सस्था की उपयोगिता को समझा और अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे आत्मोद्धार के पथ का अवलम्बन करते हुए उन्होने साधु-सन्तो के कार्य को आगे बढ़ाया। यह परम्परा आज भी चालू है। आज भी सहस्रो की सख्या मे साधु-साध्वियां अर्थतन्त्र की बारीक पर सशक्त तन्त्रियो मे जकडे मानव को पैदल ही गाव-गाव और नगर-नगर जाकर अपनी—स्वयं की—गहराइयो मे उतरने की प्रेरणा दे रहे है। बहिरात्मा को अन्तरात्मा बनने की प्रेरणा देने का काम साधारण नही है। अपने सन्तुलन या समत्व को बनाए रखते हुए दूसरो को अन्तर्मुख बनाना आत्मवान व्यक्तियो के लिए ही सम्भव है। कितना महान् योग रहा है हृदय परिवर्तनकारी इस बडे काम मे इन आचार्यों, साधुओ और विद्वानो का। इसका प्रत्यक्ष दर्शन उस विपुल साहित्य के अध्ययन से हो सकता है जिसमे पूर्वागागम (चतुर्दश पूर्व, द्वादश अंग और आगम) एव उन पर आधारित विविध विधाओ मे विरचित प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय तथा विदेशी भाषाओं की कृतियों का समावेश है।

४. जैन दृष्टि तत्त्व-ज्ञान पर बल देती है। स्व और पर का भेद, चेतन और अचेतन का

भेद, जीव और अजीव का भेद, एक ही बात है विभिन्न शब्दों में। इस भेद का इतना विस्तृत, गहन और सूक्ष्म विवेचन किया है जैनाचार्यों ने कि इसी कारण एक विज्ञान अस्तित्व में आ गया, भेद-विज्ञान। और वह जैन दर्शन की एक विशेषता बन गया। यदि आत्मा और अनात्मा का भेद दर्शन ज्ञान और चारित्र की सम्यक्ता से यथार्थ रूप में उपलब्ध हो गया तो जीवन सार्थक हो गया। कर्मरूप पुद्गल बंध से मुक्ति जीवन का परम पुरुषार्थ है उसके लिए अन्तरात्मता चाहिये। पर वासनाओं के जटिल जाल में फंसा हुआ आज का असंतुष्ट मानव केवल प्रवृत्ति की भाषा को ही समझता है। जैन दर्शन प्रवृत्ति की भाषा में भी एक ऐसी आचार पद्धति को प्रस्तुत करता है जो उसे सही मार्ग पर ला सके। यह पद्धति लौकिक सम्बन्धों को यथार्थ या मूर्त रूप में प्रस्तुत करने की है। यथा, अहिंसा जो आत्मा का भाव है उसकी ओर किसी को उन्मुख करने के लिए कहा जाय—हिंसक की आकृति को देखो, उसके कामों को देखो जिसकी हिंसा हो रही है उसकी दशा को देखो, इसमें होने वाले समाज व्यापी परिणामों को देखो, इसके विपरीत अहिंसक की आकृति को देखो, उसके कामों को देखो जिसके साथ अहिंसामय व्यवहार हो रहा है उसकी दशा को देखो इसमें होने वाले सामाजिक परिणामों को देखो। और फिर दोनों के अन्तर को समझो—। इसी प्रकार चौर्य अचौर्य, असत्य सत्य अपरिग्रह परिग्रह और अब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य, इनमें रत रहने वाले लोगों के कार्यों का अन्तर ममेत बोध सुस्पष्ट रीति से सोदाहरण दिया जाय।

इस बोध का यही परिणाम आना चाहिए कि मानव परावलम्बिता के स्थान पर स्वावलम्बी बने, उसका ज्ञानावरण हटे और वह अपने ज्ञानमय रूप में प्रतिष्ठित होता जाय। स्पष्ट है, मानव के जागरण के किसी भी प्रसंग में स्व रूप में प्रतिष्ठित होने की बात का सर्वथा सांगत्य और औचित्य है। अणुव्रतों और महाव्रतों के नाम से सुपरिचित अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य तथा दश लक्षण धर्म के नाम से सुविदित क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि मूल्यों की जीवन में अभिव्यक्ति होनी ही चाहिये तभी अमंस्कार या कुसंस्कार, अशिक्षा या कुशिक्षा से जनित दोषों का उपशम या क्षय होगा। और तब व्यक्ति सुधार के मार्ग से समाज के नव सांस्कृतिक जागरण का मार्ग खुल जायगा। इसके लिए प्राचीन दोषपूर्ण रूढ़ियों को छोड़कर आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप स्वस्थ परम्पराओं का निर्माण करते रहना होगा।

यह एक शुभ लक्षण है कि जैन समाज चाहे कितना भी अर्थ परायण हो गया है उसके घटक व्यक्ति के विचार और भाव दोनों के किसी न किसी बिन्दु पर अध्यात्म का प्रभाव गहराई तो लिए हुए हैं। इसलिए देश और समाज के नव जागरण के प्रसंग में इस प्रभाव का अधिक से अधिक उपयोग होना चाहिये। वर्तमान में नव जागरण से इतना भी अभिप्राय पर्याप्त हो सकता है कि मानव समता, एकता और परस्परोपयोगिता के महत्त्व को भौतिक और आध्यात्मिक दोनों स्तरों पर समझे। उसके शिक्षण प्रशिक्षण उद्योग व्यवसाय तथा ज्ञान विज्ञान की उपलब्धियों में अहिंसक भाव की प्रमुखता हो जिससे समाज उस स्थिति में आ जाय जो नव जागरण के लिये उपयुक्त भूमि बन सके।

भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव के इस वर्ष में जो भी भावना लोग हैं चाहे वे गृहस्थ हैं या गृहत्यागी, सागार हैं या अनागार अपनी उदार भावना, समन्वयी और अप्रमत्त आचरण से सर्वोत्तम को इस दिशा में पग बढ़ें, इतना ही पर्याप्त है। यदि होगा तो अवरोध हटेंगे और फिर लक्ष्य की प्राप्ति सुनिश्चित है।

[५] श्री रिषभदास रांका

१ राजस्थान की भारतीय सस्कृति को सबसे बडी देन है, त्याग। राजस्थान का इतिहास आत्मोत्सर्ग से भरा पडा है। चारित्र्यशील तथा आत्म-सम्मान के लिये मर मिटना राजस्थानियो की विशेषता है। आजादी, धर्म व शील की रक्षा के लिये हसते-हसते मृत्यु का वरण करना यहा की वीर रमणियो का धर्म रहा है। आश्रय मे आये हुये की रक्षा के लिये बडे शत्रु का भी हिम्मत मे मुकाबला करना और समय आने पर सर्वस्व त्याग कर देना यहा के वीरो की परम्परा रही है। त्याग और शौर्य की गाथाए राजस्थान के साहित्य मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हैं। मातृभूमि या शासक के प्रति समर्पण करने वाले भामाशाह और पन्ना धाय जैसे उदाहरण भी राजस्थान के इतिहास में पाये जाते है। शरण मे आये हुये को उदारतापूर्वक अभयदान देना और उस शत्रु से परास्त होने की घटनाएं भी राजस्थान मे अनेक घटी हैं और हमीर का नाम तो इसी कारण हठी-हमीर पड़ गया था। धर्म के प्रति अपूर्व श्रद्धा, कला के प्रति अगाध प्रेम, उपास्यदेव के प्रति अनुपम भक्ति राजस्थान मे देखने को मिलती है। भारतीय कला के उत्कृष्ट नमूने भी राजस्थान मे हैं और उसको आध्यात्मिक रूप देने की विशिष्टता भी यहा परिलक्षित होती है। स्थापत्य, चित्रकला व साहित्य का विपुल सृजन भी राजस्थान में हुआ है। विदेशियो के हुये उत्तर दिशा के हमलो को रोकने तथा मन्दिरो व मूर्तियो को बचाने का काम राजस्थानी वीरों ने किया। भारतीय संस्कृति मे सभी दृष्टियो से राजस्थान मुकुटमणि कहा जाय तो अतिशयोक्ति नही होगी।

२. वैसे भारतीय धर्मों की तीनो शाखाओ (जैन, बौद्ध और वैदिक) का कम अधिक मात्रा मे योगदान रहा है। वैदिक व जैनियो का योगदान बौद्धो की अपेक्षा अधिक है। वैदिक शाखाओं में से वैष्णव व शैव दोनो के ही अनुयायियों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। राजस्थान के तीर्थो मे शिव, कृष्ण व राम तीनो का ही योगदान रहा है और तीनो के ही मंदिर और भक्ति राजस्थानियो मे आज भी पाई जाती है। वैदिक या ब्राह्मण शाखा की तरह जैनियो का प्रभाव भी इस प्रदेश मे विशेष रूप से पाया जाता है। नाथपंथी एवं योगियो का भी प्रभाव प्राचीनकाल से अब तक कही-कही दिखाई देता है। प्राचीन मंदिर राजस्थान के विविध क्षेत्रो मे पाये जाते है। विदेशियो को जैन व भारतीय बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य अनेक आचार्यों ने किया जो आचार्य जिनदत्तसूरि तक चलता रहा। जैन के प्रभावक आचार्यो ने विदेशियो को जैन के रूप में भारतीय बनाकर भारत की अखण्डता को सुरक्षित रखा था पर बाद में वर्णाश्रम धर्म का प्रभाव बढने से जन्म से जाति मानी जाने लगी। वर्ण मे ऊच-नीच का भेद तीव्र बनकर विदेशियो को भारतीय बनाना तो बन्द हुआ ही पर उनके सम्पर्क में आने वाले को धर्म से अलग किया जाने लगा। छूआछूत का प्राबल्य बढ़ा। यदि कोई विदेशी का छुआ हुआ भोजन भी कर लेता तो उसे अपने धर्म से बाहर किया जाने लगा, फलतः लाखों नही करोडों भारतीयो ने पर-धर्म स्वीकारा जिसका प्रारम्भ मुस्लिम काल से ईसाइयो के समय तक चलता रहा। भारत के पराधीन बनने व विभाजन का दुःखद इतिहास हमारी संकुचितता के कारण सर्जित हुआ। जैनियो के आचार्यो ने उसके बाद भी जैन बनाने का काम तो किया ही पर उनका प्रभाव वर्णाश्रम धर्मवालो के समक्ष कुछ कम रहा। स्वयं जैन गृहस्थ भी छूआछूत और छोटे-बडे के भेद को मानने लगे। कई जैन जातिया भी अजैन बनी और जो नये जैन बनें उन्हें भी जैनी अपने मे शामिल न कर पाये।

जब मुगल काल में मुसलमानो का प्रभाव बढ़ा तो अजमेर जैसे स्थान पर उनका बहुत बड़ा

तीर्थस्थान बन गया। कई जन व हिन्दू मदिर, मस्जिदो के रूप में परिवर्तित हुये। मुस्लिमो की तरह ईसाइयो ने भी अपने धम के प्रचार का क्षेत्र राजस्थान क पिछडे हिस्से व पिछडी जातियो में बनाया। राज्यसत्ता से भी उन्होन सेवा के बल पर तथा भारतीयो की ऊच नीच की भावना का लाभ उठाकर अपने धम का प्रसार किया। आज अनक स्कूल शिक्षा सस्थाएँ तथा अस्पताल ईसाइयो क हैं। अकाल के समय लोगो को सहायता पहुँचा कर उन्ह अपने धर्म म य आकर्षित करत रहते हैं। जब तक अ ग्रेजो का राज्य रहा उन्होन अपने धम-प्रचारको के द्वारा उनके काम में सहायता की, पर अंग्रेजो ने धम प्रचार मे राजस्थान में जोर जबदस्ती की हो, ऐसा नही दिखाई दता। जिन सेवा के तरीको से अंग्रेजो ने ईसाई धम को बढावा दिया, जनियो न भी धमप्रचार में इसी तरीके से धम प्रसार का काम किया था। जनो के चार दान प्रसिद्ध है—अन्नदान, विद्यादान, औषधिदान और अभयदान। जनाचार्यों ने उत्तर की तरह दक्षिण मे भी यही तरीका अपनाया। हमारे यहा यतियो ने शिक्षा, वद्यकीय, ज्योतिष, मत्र-विद्या द्वारा धम प्रचार का काम किया।

३ जनाचार्यों का राजस्थान की सास्कृतिक चेतना जागृत रखने म बहुत बडा योगदान रहा। जसा हम ऊपर बता चुके हैं कि उन्होन विदेशियो को भारतीय बनाने का महत्त्वपूण काय यूनानी, सिथियन, शक, हूण, आभीर, गुज र और न मालूम कितनी ही जातिया भारतीय बनी और भारत की राष्ट्रीयता सुरक्षित रखी। ऊच नीच के भेद को प्रश्रय मिलने पर आपसी ईर्ष्या और द्वेष बढा जिसमे हम टुकडो मे बट गये। कई बार तो विदेशियो को अपनी फूट के कारण ही हमने विजयी बनाकर गुलामी अपनाइ। यदि जनाचार्यों की उदारता और व्यापक दृष्टिकोण को समाज अपनाता तो उनकी शक्ति का बहुत अधिक उपयोग होता। उन्होन जो समाज मे सद्‌गुणो और चारित्र्य की प्रतिष्ठापना के लिये कठोर दिनचर्या व जीवन अपनाया था उसका लाभ राजस्थान व पूरे भारत को अधिक मिलता। इन जनाचार्यों न प्रजा मे धम व उदात्त विचारो का प्रसार किया था। उसस राष्ट्र अधिक सुदृढ होता। फिर भी जन साधुओ की त्यागपूण व श्रमाधारित चर्या व निस्पृह जीवन निरथक गया हो, ऐसी बात नही।

समाज के विविध क्षेत्रो मे जनाचार्यों न महत्त्वपूण काय किया। समाज मे सद्‌गुणो की प्रतिष्ठापना की जिससे जन श्रावको ने निस्वाथ भाव से शासन क द्वारा अनक जनोपयोगी काय किये और आज जनी सख्या के अनुपात म सेवाकार्यों मे अधिक योगदान दते हैं। चाहे वह क्षेत्र राजनतिक हो या सामाजिक, शक्षणिक हो या सेवा का। इसके अतिरिक्त साहित्य और कला के क्षेत्र मे भी महत्त्वपूण योगदान दिया है। जीवन मे त्याग के महत्त्व को उन्होने बनाये रखा है और आज भी त्याग के महत्त्व को उन्होने सामाजिक जीवन म महत्त्वपूण स्थान दिलाया है। उनकी अहिंसा का उन पर तथा लोकजीवन पर अच्छा परिणाम हुआ है और आज भी मासाहार की अपेक्षा निरामिष भोजन ही होता है और जो मासाहार करन वाली जातिया हैं वे भी धार्मिक पर्वों म मासाहार नही करती। निर्व्यसनता, परिश्रमशीलता, मितव्ययता आदि गुणो का जनजीवन पर जो प्रभाव दीखता है वह भी कुछ अशो म जनाचार्यों तथा जन धम क सिद्धा तो का ही प्रभाव है। जन साधु पद यात्रा के द्वारा जनजीवन को अपन उपदशो से प्रभावित करते रहत है। उनके कठोर व त्यागमय जीवन को दखकर साधुत्व यानी त्याग ऐसी मा यता साधुओ क सम्बन्ध म सहज मे होकर उनस त्याग की अपेक्षा रखी जाती है। एक तरह स मानवीय गुणो की वृद्धि म जनाचार्यों व जन धम का विशिष्ट स्थान स्पष्ट दिखाई देता है।

४. जैन धर्म का आचार मार्ग और मानवीय गुणो की वृद्धि पर दिया हुआ बल, ये तत्त्व ऐसे हैं जिनसे सांस्कृतिक जागरण में प्रेरणा मिल सकती है। जीवन को विशुद्ध बनाकर धर्माचरण आये विना हम केवल भगवान् की भक्ति कर अपना उद्धार नही कर सकते। हमारे दुष्कर्मों व सत्कर्मों के हमें फल मिलते हैं जिससे भगवान् की भक्ति मे से परावलम्बन दूर होकर कामनिक भक्ति के कारण जो अकर्मण्यता जनता मे आती है उसे दूर करने व जीवन मे सदाचार का महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने मे जैन तत्त्व सहायक हो सकते है। जैन धर्म मे मनुष्य जाति से नहीं, कर्म से छोटा-बड़ा या ऊंच-नीच माना गया है। इसका आधार लेकर छूआछूत को मिटाकर समता भाव प्रतिष्ठित करने मे जैन धर्म प्रेरक बन सकता है। जैन धर्म का अनेकान्त सिद्धान्त अन्य सम्प्रदायो के साथ उदारता का व्यवहार सिखाता है। इससे साम्प्रदायिकता के दुष्परिणामो से बचा जा सकता है। धर्म और कर्तव्य के लिये त्याग की प्रेरणा जैन धर्म दे सकता है। जैनियो ने सगठित होकर अपने जाति या धर्म के लिये कभी विशेष अधिकार नही मागें, किन्तु सदा राष्ट्रीयता को ही प्राधान्य दिया है। उन्होने आजादी के जग मे या उसके   भी जातीय द्वेष को बढ़ावा न देकर, राष्ट्रीयता को प्राधान्य दिया है। जैनियो को दान या सेवा की विरासत परम्परा से प्राप्त है। वे आज भी व्यापक दृष्टिकोण से सेवा कार्यो मे योगदान देते हैं।

५. मेरी दृष्टि मे राष्ट्र या मानवता के सांस्कृतिक नव-जागरण मे जैन समाज बहुत बड़ा काम कर सकता है और उसे करना चाहिये। नव सांस्कृतिक जागरण मे आज सबसे बड़ी आवश्यकता समता और आत्म स्वातंत्र्य भाव की है। आज का प्रबुद्ध व्यक्ति, चाहे वह किसी भी विचारधारा मे प्रभावित हो, समता को प्राथमिकता देता है। जैन धर्म प्रत्येक व्यक्ति मे पूर्ण विकास की क्षमता मानता है और इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति अपने सद्गुणो व पुरुषार्थ से सर्वोच्च पद पा सकता है। उसे अपने पूर्ण विकास के लिये या महत्त्वपूर्ण स्थान पाने के लिये किसी की गुलामी नही करनी होती। जैन धर्म उच्च स्थान प्राप्ति के लिये याचना की जरूरत नही मानता। उसकी उपासना, अपने उपास्यदेव ने जिस मार्ग से और जैसे विकास किया, उसके अनुकरण की है जो उसे कर्मण्यता की ओर प्रेरित करती है। अपने विकास मे बाधक दूसरा नही परन्तु स्वय उसकी कमियां है, यह प्रेरणा जैन धर्म से प्राप्त की जा सकती है। भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष मे उनके सर्वोपयोगी और सभी का कल्याण करने वाले उपदेशो का आज के सन्दर्भ मे प्रचार-प्रसार होना आवश्यक है। यदि जैनियो ने यह कार्य किया तो उसमें उनका, राष्ट्र का व मानव जाति का कल्याण है। महावीर का उपदेश विशुद्ध धर्म का उपदेश है। उसमे कही व्यक्तिगत श्रेष्ठता को आवश्यकता से अधिक स्थान नही है, पर सद्गुणो को ही प्रधानता है। उच्च तत्त्वों के आचरण से ही कल्याण हो सकता है, यह विधान है। यह धर्म शाश्वत है, सर्वकाल के लिये उपयोगी है और बुद्धि द्वारा प्रतिपादित तत्त्वो को जीवन मे अपनाने की प्रेरणा देने वाला है। उसका प्रचार यदि जैनी कर सकें तो वे सांस्कृतिक नव जागरण मे महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे। स्वयं समता का आचरण संयमपूर्वक करें और दूसरे को वैसा करने की प्रेरणा दें, यही भगवान् महावीर के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है।

[६] डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

१. भारतवर्ष की संस्कृति का अंग राजस्थान है। प्रत्येक अंचल की अपनी सांस्कृतिक और कलात्मक उपलब्धियां होती हैं, वे राजस्थान की भी हैं। राजस्थान संस्कृतियो का भडार है। यहां

बहुत से जनसमूह और जातिया, जमातें बाहर से आई। उन्होने यहा राज्य बनाये और सामान्य भारतीय जीवन मे घुलमिल गये। इस तरह राजस्थान मे एक घुलीमिली सस्कृति है। लेकिन उसके कई रग अपने हैं जो यही मिलते हैं और कही नही मिलते। राजस्थान की सस्कृति की विशेषता इसका समन्वित रूप है। यहा विभिन्न सस्कृतियो मे घुलनशीलता है। यहा हिन्दू समाज की प्रधानता होते हुए भी जैन धर्म बहुत सबल है और अनेक प्रभावशाली व्यक्ति उसमे विश्वास करते हैं।

२ राजस्थान वीर भूमि भी है और योग भूमि भी है। यह साधना-स्थल रहा है और आज भी है। यहा मनुष्य ने विभिन्न धर्मों के निर्देशन मे प्रवृत्तियो से ऊपर उठकर आध्यात्मिक मनोविज्ञान की सृष्टि की, जिसकी वजह से सारी दुनिया मे इस देश को आज भी गौरव मिलता है क्योकि वे देश प्रवृत्तियो से परेशान हैं और मूल्यहीनता के शिकार हैं। राजस्थान ने महान् हठयोगियो और देलवाडा मन्दिर के महान् निर्माताओ को जन्म दिया। कई जैन आजन विद्वानो और साहित्यकारो को जन्म देने का श्रेय भी इसे है। राजस्थान के सामन्ती शासक चर्च या धर्म के प्रति यूरोप के सामन्तो की तरह मुकाबले की मनःस्थिति मे नही थे। वे परम्पराओ के अनुसार शासन करते थे। यह देश अत्यन्त प्राचीन और सभ्य देश है इसलिए स्मृतियो मे वर्णित कठोरताए, परम्पराओ के कारण कम होती रहती थी। फलस्वरूप सब एक दूसरे को सहते थे। यह सहनशीलता राजस्थान के वातावरण मे भी है और अवचेतन मे भी। फिर भी रग की दृष्टि से राजस्थान मे प्रत्येक मत और प्रत्येक सगठन ने अपनी पहचान को बनाए रखा है। उसकी अपनी परम्पराए, मूल्य और रीतिरिवाज हैं।

३ जैन धर्माचार्यो का सबसे बडा योगदान यह रहा कि उन्होने भारतीय सस्कृति को वैचारिक उदारता और व्यावहारिक सहनशीलता दी। उन्होने मानव व्यक्तित्व के विकास का चरम आदर्श प्रस्तुत किया और इस विकास बिन्दु को पाने मे बाधक हर चीज को छोड दिया। प्रवृत्ति से शुद्ध विचार या आदर्श की इस यात्रा मे राजस्थान के जैन साधको, जैन विद्वानो और सामान्यत सभी जैन मतावलम्बी नागरिको ने यथासभव इस आदर्श को पाने की कोशिश की और यह कोशिश जारी है। चरम अहिंसा मे विश्वास करने के कारण जैन मत का एक सीमा तक आर्थिक व्यवस्था पर भी असर पडा। कृषि मे हिंसा होने के कारण अहिंसावादियो ने उद्योग धन्धो और व्यवसाय को अपनाया, जिनमे साक्षात् हिंसा नही होती। जैन मत के प्रभाव से परम्परागत व्यवसायी व्यक्ति यूरोप और अमरीका के धन प्रदर्शनवादी और अहकारी व्यवसायियो की तुलना मे बहुत नम्र और सभ्य प्रतीत होते हैं। जीव दया के प्रचार मे हिन्दुस्तानी व्यवसायियो के प्रति सामान्य जनता मे उतनी नफरत नही है जितनी कि समझी जाती है। आधुनिक व्यवसायी और परम्परागत व्यवसायी का अन्तर मुख्य रूप से जैन प्रभाव का अन्तर है। आधुनिक व्यवसायी धर्मोन्मुख नही है। वह किसी उच्चतर मूल्य को स्वीकार नही करता। इसीलिए वर्ग चेतना बढ रही है।

४ मनुष्य के विकास की, उसके उच्चतर मूल्यो की विचार व्यवस्था कभी भी पूर्णत आप्रासंगिक नही हो सकती। उसमे मनुष्यों को प्राकृतिक जीवन से ऊपर उठ कर उच्चतर मानसिक भूमियों मे विचरने के साधन प्राप्त होते हैं। दूसरे, प्रत्येक विचारधारा का उद्देश्य मनुष्य के उच्चतम मूल्यों की ही उपलब्धि है, सिर्फ मतभेद साधनो के विषय मे है। उदाहरण के लिए आज का भौतिकवादी व्यक्ति भी वर्ग वर्णविहीन एवं पारिवारिक समाज की परिकल्पना करता है, यानि वह व्यक्तित्व के विकास की सभावनाओ के द्वार खोलना चाहता है और हर उस चीज को नष्ट कर देना चाहता

है जो मनुष्य के विकास मे बाधक है या व्यवहार मे उसकी गरिमा की विनाशक है। इसलिये जैन मत के अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, जीव-दया इत्यादि चरम मूल्य आज भी मानवता के लिये प्रेरक हैं और कल भी रहेंगे।

५. यदि अपरिग्रह और जीवदया, इन दो महान् मूल्यों को जीवन-व्यवहार मे परिणत करने के लिये संघर्ष कर सके तो जैन मत सांस्कृतिक पुनर्जागरण में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है। देश को एक सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता है जिसमे व्यक्ति वस्तुओ के प्रति मोह छोडे, उपभोग से ऊपर उठे और एक ऐसे समाज की रचना करे जिसमे प्रत्येक व्यक्ति अपनी आतरिक और बाह्य आवश्यकताओ को पूरा कर सके, अपनी सम्भावनाओ को चरितार्थ कर सके। परिग्रही होकर जैन मत का प्रचार धर्म को सम्प्रदाय मे परिणत करता है जबकि जैनधर्म धर्म है, सम्प्रदाय नही। उसकी अपील साम्प्रदायिक नही, सार्वभौमिक और सार्वजनिक हे।

[७] श्री सौभाग्यमल श्रीश्रीमाल

१-२. एक विद्वान् ने कहा है "सामान्यतः धर्म निर्वाण का एक साधन है। धर्म वह है जो निष्कामता के लिए हो, कामनाओ की वृद्धि के लिए नही, विराग के लिए हो, राग के लिए नहीं, सासारिक लाभो को घटाने के लिए हो, बढाने के लिए नही, निर्लोभ के लिए हो, लोभ के लिए नहीं, सन्तोष के लिए हो, असन्तोष के लिए नही, एकान्त के लिए हो, भीड के लिए नही, उद्यम के लिए हो, प्रमाद के लिए नही, अच्छाई मे प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए हो, बुराई मे प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए नहीं" यही कारण है कि धर्म और सस्कृति मे परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहता आया है। वस्तुतः सस्कृति के तीन प्रमुख कार्य हुआ करते है। पहला यह कि सस्कृति शिक्षा और अनुशासन के द्वारा मनुष्य के नैतिक, बौद्धिक और सौन्दर्य-बोध से सम्बन्धित विकास को सम्पन्न करे। दूसरे वह ललित कलाओ, मानवीय शास्त्रो और विज्ञान के उदार पक्षो मे अभिरुचि उत्पन्न करे और विकास मे योग दे। तीसरे वह मानवीय स्वभाव को सुसस्कृत करे और उसे प्रकाश प्रदान करे। ललित कलाएँ मनुष्य के हृदय को अधिक प्रभावित करती हैं और उसकी चेतना को उच्च धरातल पर ले जाने मे समर्थ होती हैं फलतः उसको अधिक सस्कृत और विशुद्ध करती हैं।

सामान्यतः कला के दो रूप हैं, धार्मिक और लौकिक। धार्मिक कला मनुष्य की चेतना को उच्चतर धरातल पर ले जाने का प्रयत्न करती है। उदाहरण के लिए किसी कलाकृति अथवा कलात्मक सौन्दर्ययुक्त मूर्ति को लीजिये। जब साधक उसकी ओर अपने चित्त को स्थिर करता है तो स्वभावतः उसे अपनी चेतना को निर्मल और परिशुद्ध करने मे सहायता मिलती है। इस प्रकार कला मे चित्र कला, मूर्ति अथवा स्थापत्य कला, संगीत और कविता को एक आध्यात्मिक परम्परा मे अन्तर्निबद्ध कर दिया गया है।

३. जैनधर्म और उसकी मान्यतायें इन सभी क्षेत्रो मे अपूर्व योगदान देते रहे हैं। राजस्थान मे आज भी जैन धर्म का अधिक प्रभाव है और यहा के जन-जीवन मे जैन मान्यताओ की छाप किसी न किसी रूप मे दृष्टिगत होती है। जैन साधु और श्रावको ने विभिन्न प्रकार के साहित्य की रचना की। प्राकृत सस्कृत और सर्व प्रचलित राजस्थानी भाषा मे अनेक मौलिक रचनाएं आज भी हस्तलिखित और उनमे से कुछ मुद्रित उपलब्ध हैं। साहित्य को लोकोपयोगी एव प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से और सर्व साधारण के समझने और मनन करने की दृष्टि से ढाल, चौपाई, लावणी, ख्याल आदि कई

रूपो मे लिपि वद्ध किया । छपाने की सुविधा उपलब्ध नही होने के युग म भी उनको सु दर, सुडौल, अक्षरो मे, दीघ जीवी कागजो पर टिकाऊ स्याही से मोटी, वारीक लेखनी द्वारा लिखा गया जिनके प्रत्यक्ष उदाहरण आज भी ग्र थ भण्डारो मे सुरक्षित है । पद्य के प्रति विशेष रुचि रही । जिनमें अनेक प्रकार के छ दो का उपयोग किया गया । अधिकतर उनमें गेय हैं । जिनको पाठक गा सकता है और श्रोताओ का म त्र मुग्ध कर सकता है । धार्मिक मा यताओ और प्र क्रियाओ की जन जन पर छाप रह इस दृष्टि मे इन गेय पदो का आज भी वडा प्रभाव देखा जा सकता है । इन ग्र थो के निर्माण म शास्त्रीय सगीत को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । उसकी परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने में जन धम की वडी देन है । हस्तलिखित ग्र थो की लेखन कला के विकास मे जैन धम का विशेष योगदान रहा है । जो ग्र थ समय के प्रभाव से लुप्त होते जा रहे थे अथवा जीणशीण हो रहे थे उनको सुरक्षित रखने की दृष्टि से भी उनका प्रतिलेखन किया गया जिसके कारण वे दुर्लभ ग्र थ नष्ट हाने से वच सके । ऐसे ग्र थो के आधार पर उनके निर्माताओ का इतिवृत्त भी जाना जा सका । इस इतिवृत्त की भी एक विशेषता यह है कि अधिकतर ग्र थो म प्रारम्भ या अ त मे लेखक ने अपने सम्ब ध मे, अपने समय की परिस्थितियो एव विशेषताओ के बारे म भी उल्लख किया है । इससे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सामा य परिचय मिलता है ।

साहित्य सरक्षण मे भी जन लोगो ने वडा काम किया है । जन स तो न हस्तलिखित ग्र थो को स्वय लिखकर अथवा औरा से लिखवा कर ग्रहस्थो के पास रखवाया जिसका आवश्यकतानुसार समय समय पर स्वय भी उपयोग करते रहे । ऐसे ग्र थो को एकत्रित कर गृहस्थो ने वडे-वडे ग्र थ-भण्डार एव सग्राहलय खडे कर दिये जहा वे आज भी सुरक्षित हैं और अनुस धान कर्ताओ के लिए अमूल्य सामग्री प्रस्तुत करते हैं । हस्तलिखित ग्र थो के निमाण के साथ साथ जैन मतावलम्बियो न कला के क्षेत्र मे भी अनुपम कृतिया निर्मित की हैं ।

सामा यत जैन साधु काष्ठ के उपकरण ही काम मे लेते हैं । इन उपकरणो को कलात्मक स्वरूप दने मे उनकी वडी देन है । स्वय साधु उन पर वारनिश करने, रग करने, उनको चित्रित करन और सु दर स्वरूप दने मे बडा कार्य करत रहे है । हाथ मे रखने की लकडी की पट्टी छोटी स्केल (चपटी) जिसकी सहायता मे पक्तिवार शास्त्र पढा जा सके को तरह तरह के आकषक स्वरूपो म तयार करते रह हैं । इन कलाकृतियो मे २४ तीर्थंकरो के छोटे नाप के गोल चित्र भी वडा महत्व रखत हैं जिनमे प्रत्यक तीर्थंकर का मुह बोलता हाथ का वना चित्र बहुत से श्रावको के घरो म आज भी दखन को उपलब्ध है जो इस बात का प्रमाण है कि जन धर्मावलम्बियो ने चित्रकला के प्रचार व प्रसार म और उसको जीवित रखने मे बडा योगदान दिया है । उनमे बडे-बडे ज्योतिषी चित्रकार, लेखक, कवि एव कलाविद् हुए हैं । मूर्तिकला और स्थापत्य कला के जीत जागते नमून तो पूरे राजस्थान म मौजूद हैं । देलवाडा और उसके आस पास के अ य जैन म दिरो को दखकर दश-विदश के दशक आज भी दातो तले उ गली दवा लेते हैं ।

इसी प्रकार सामाजिक क्षेत्र मे भी जनो की बडी दन रही है । उ होन कट्टरता और धम विरोध को प्रश्रय नही दिया । आज भी आम जैन अपने शादी व्याह के अवसरो पर जनतर—प्रणाली से विवाह सस्कार व अ य रीति रिवाज करता है । आज भी लक्ष्मी पूजन, गणेश पूजन, सरस्वती पूजन, गणगोर पूजा, होलिका दहन आदि अनेक अवसरो पर राष्ट्रीय मा यता को ही महत्त्व देता है और इनसब का दनिक जीवन म एक सामा य स्थान हो गया है ।

४. यह उदारता एव आत्मसात् करने की भावना सदा से जैन धर्मावलम्बियो मे रही है। धार्मिक सहिष्णुता एवं दूसरे धर्मों को उचित आदर देना अनेकातवाद का ही प्रतीक है। यही कारण है कि जैन धर्म के विशिष्ट सिद्धातो का किसी न किसी रूप मे, राजस्थान मे पनपे अन्य धर्मो मे, थोडा-बहुत प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। अहिंसा, अनेकान्तवाद, अपरिग्रह, ध्यान, मानवता, करुणा, दार्शनिक चिन्तन, चित्त की शुद्धि, मैत्री, उदारता, आत्म बलिदान आदि अनेक मान्यताये आज के इस भौतिकवाद के युग मे भी अपरिहार्य हैं। आवश्यकता यह है कि उनको वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे नवीन स्वरूप मे उपस्थित किया जाय।

५. जैन धर्म मानने वालो का राजस्थान की सामाजिक एव शैक्षणिक प्रवृत्तियो मे भी बडा योगदान रहा है। अधिकतर जैन समाज व्यापार उद्योगो के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य करता है। यही कारण है कि इस प्रकार से होने वाली आय का एक निश्चित भाग धर्मार्थ नाम से बचाया जाता है और उससे लोकोपकारी प्रवृत्तियो को सहायता दी जाती है। इस सहायता से राजस्थान मे अनेक विद्यालय, महाविद्यालय, छात्रावास, वृद्धाश्रम, विधवाश्रम, उद्योग शिक्षण केन्द्र, पुस्तकालय, वाचनालय, साहित्य प्रकाशन सस्थान, धार्मिक शिक्षणशालाये, जीवदया केन्द्र, असहाय सहायताकोष, छात्रवृत्तिया, स्वाध्याय मडल, औषधालय, अस्पताल आदि जैन धर्मावलम्बियो द्वारा वर्षों से चल रहे हैं और राजस्थान के विकास मे सहायक हो रहे है। उक्त प्रकार की कतिपय सस्थाएं सार्वजनिक रूप से सभी लोगो के लिये सेवारत हैं और सकुचित भावना से ऊपर उठकर काम करती है।

राजनीतिक क्षेत्र मे भी जैन समाज ने बडा सक्रिय भाग लिया है। प्रशासन के ऊचे से ऊंचे पदो पर वे सफलता पूर्वक काम करते रहे है। स्वतन्त्रता संग्राम और उसके पश्चात् की राजनीति मे भी ऐसे जैन कर्मठ कार्यकर्ता रहे है जिन्होने अपने त्याग और बलिदान से राष्ट्र और प्रदेश को सुदृढ़ बनाने मे अद्वितीय भूमिका अदा की है।

सक्षेप मे, यदि अन्य जैन सिद्धान्तो को छोडकर, अनेकान्त एवं अपरिग्रह इन दो ही को मुख्य रूप से लेकर चले तो इन से ही हम वर्तमान मे व्याप्त सघर्ष और अशाति का सही ढग से शमन कर सकते है। ये दो महान् सिद्धांत जैन धर्म और महावीर की अनोखी देन है। इन पर विचार किया जाना चाहिये और इनको आधुनिक परिस्थितियो मे कैसे उपयोगी बनाया जा सकता है, इस पर अधिकारी विद्वानो को गवेषणापूर्वक चिन्तन, मनन और फिर उसकी विवेचना समाज के सामने कार्यान्विति के लिए उपस्थित की जानी चाहिए।

[८] डॉ० नरपतचन्द सिंघवी

१ जातीय गौरव, स्वामिभक्ति, आत्मोत्सर्ग, शौर्य एव त्याग, सगुण-निर्गुण भक्ति एव हिन्दू-मुस्लिम प्रेम राजस्थान के सास्कृतिक दाय है। कला (स्थापत्य, मूर्ति, चित्र, सगीत तथा ललित कलाएं और लोक कलाए), साहित्य (अपभ्रंश, अर्धमागधी, डिंगल काव्य तथा इतर) तथा जैन धर्म के विकास, मध्यकालीन शौर्य—'रजपूती', नवयुग मे देश-भक्ति, मानवीय मूल्यो के रक्षार्थ उत्सर्ग की भावना प्रमुखतया सास्कृतिक दाय है।

२. आरम्भ मे वैष्णव धर्म (वैदिक यज्ञ धर्म), तदुपरान्त जैन धर्म इस प्रदेश मे अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। महावीर ने स्थापित धर्म या संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उपनिषदो की चिन्तनधारा को खीच कर वे अपनी मनोवाछित दिशा की ओर ले गए। महावीर ने भारतीय सस्कृति

की अपूर्व सेवा की और उसकी झलक सर्वाधिक राजस्थान म दिखाई दी। राजस्थान अनेक धर्मा की समन्वय भूमि है। यद्यपि बराट जैसे स्थलो पर बौद्ध धम, राजपूत काल म शव, शाक्त और तन्त्रवाद भी प्रचलित हुआ, मध्यकाल मे इस्लाम का प्रभाव भी रहा तथा आधुनिक युग म राजस्थान के हृदय अजमेर म ईसाई धम का प्रभाव भी परिलक्षित हुआ तथापि इस प्रदेश मे सवत्र धार्मिक सहिष्णुता का प्रधानता ही प्रदर्शित हुई। लोक धम की ही प्रधानता इस प्रदेश मे रही।

३ प्राचीन काल म हरिभद्रसूरि, उद्योतन सूरि, जिनश्वर सूरि, जिनवल्लभ सूरि जस आचार्या से लेकर आज तक विभिन्न परम्पराओ के जनाचार्यो और उनके अनुयायियो के द्वारा धार्मिक जन-जागरण, शिक्षा प्रचार प्रसार, साहित्य रचना, राष्ट्रीय चेतना तथा नतिक उत्थान के लिए निरन्तर प्रयास किये गए।

४ जन धम की दो बडी विशेषताए हैं—अहिंसा और तप। अहिंसा जैनो का परम धम है और तप द्वारा अपरिमित कष्ट सहने की प्रवृत्ति का पोषण होता है। पच व्रत का प्रत्यक जन गृहस्थ को प्रण लेना पडता है। वतमान युग मे आचाय तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत आन्दोलन सास्कृतिक जागरण म विशेष सहायक हुआ है। जन धम का त्रिरत्न—सम्यक् दशन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र हमारे सास्कृतिक जागरण की आधार शिलाए हैं। जैनधम म भी अहिंसा का उच्चतम शिखर अनेकान्त वाद या स्याद्वाद सिद्ध हुआ जिसन सहअस्तित्व, सहिष्णुता निष्पक्षता, सवहिताय, समझौतावाद की नव दृष्टि प्रदान की, सास्कृतिक नवजागरण के नये द्वार खोले, नई प्रेरणाओ का उन्मुख किया। सक्षेप मे अहिंसा, स्याद्वाद, त्याग, तपस्या, अनासक्ति, उदारता इत्यादि जन धम के प्रतिपादित मूल्य हैं जिनसे सास्कृतिक जागरण म आज भी प्रेरणा मिलती है तथा भविष्य म मिल सकती है। यही आज का विश्वास और कल की आशा है।

५ अनास्था के इस युग मे जब कि मानव असतुष्ट, क्षुब्ध, अभावग्रस्त एव धार्मिक तथा नतिक मूल्यो से पतित है। तथा समस्त समाज अशाति के वातावरण म श्वासें ले रहा है, तब जन धम तथा उसके सत्यनिष्ठ अनुयायी नए नैतिक आधारो और नवीन सामाजिक मानवीय मूल्यो द्वारा शाति और सुरुचिपूर्ण जीवन प्रदान कर सकते है। मानव मात्र के प्रति प्रेम सौहार्द एव उदारता, सब जीवो के प्रति समादर भाव, जीव हत्या से निवृत्ति, मानव मात्र के हित चिंतन, अपरिग्रह की भावना का विकास, सादा जीवन जीने की कला इत्यादि कतिपय एसे ठोस विचार बिन्दु हैं जिनका आधार मान कर नव सास्कृतिक जागरण मे जन समाज सभावित भूमिका अदा कर सकता है।

[६] श्री यज्ञदत्त अक्षय

१ मेरे लेखे राजस्थान की सास्कृतिक दाय का स्वरूप उसके निवासियो की बोल चाल, खान-पान, रहन सहन, आचार विचार, दनदिन व्यवहार, रीति रिवाज, पव त्योहार, कला कौशल आदि मे व्यक्त हुआ है।

२ राजस्थान की सास्कृतिक चतना के विकास म वष्णव और जन धर्मो का विशेष योगदान रहा प्रतीत होता है। यद्यपि क्षत्रिय वण के लोग ब्राह्मण प्रभाव म लक्षित होते हैं पर उन पर शव और शाक्त मतो का प्रभाव अधिक अभिव्यक्त हुआ है। उनकी सामरिक प्रवृत्तियो म इन मतो का मेल सहज ही बठ जाता था। ब्राह्मण वदशास्त्र, भागवत पुराण आदि के अध्येता होने के कारण द्वैताद्वैत, भक्ति-निर्गुण व सगुण तथा राम, कृष्ण को लगभग समान महत्त्व दन वाले वष्णव रहे हैं। वश्यों में अग्रवाल, माहेश्वरी आदि तो स्पष्टत वष्णव मत से प्रभावित थे। ओसवाल व सरावगी

जैन धर्म के श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि भेदो मे अन्तर्भुक्त थे। शूद्र, कबीर, रैदास आदि के अतिरिक्त जिस श्रेणी के सम्पर्क मे अधिक आते थे, उनसे प्रभावित होते थे। इन विभिन्न मतो, सम्प्रदायो ने क्षत्रिय व शूद्र वर्ण को छोडकर, शेष ने अहिंसा के व्यक्त रूपो को ग्रहण किया। वैष्णव मतानुयायियों ने परिस्थिति सापेक्ष अहिंसा को और जैनमतानुयायियो ने परिस्थिति निरपेक्ष अहिंसा को। लगभग सभी मे अन्य मत समादर विकसित होता गया। फलतः निरामिषाहार सगुण भक्ति, दया-दान, जीवन मे बाह्यातर शुद्धता आदि पनपे।

३. यह इतिहास की—जन जीवन के इतिहास की बात हैं। प्रायः जैन धर्माचार्य साधु-साध्वियो के प्रवचन, उपदेश, व्रतग्रहण प्रेरणादान की विशेष भूमिका रही। इनके उपदेश मन्दिरो, उपाश्रयो आदि के अतिरिक्त खुले सार्वजनिक स्थानो पर भी होते थे जिन्हे सभी मतानुयायी श्रद्धाभाव से सुनते थे। कथा-कहानियो, गीतो और राजस्थानी के स्थानीय रूपो के प्रयोग से इनके प्रवचन सहज, सुबोध और हृदयग्राह्य होते थे। जैन धर्मानुयायी विविध व्रत ग्रहण, तपपूर्ति के उपलक्ष्य मे दान धर्म तथा औषधालय, धर्मशाला मन्दिर निर्माण-सचालन आदि के द्वारा जन कष्ट निवारण का प्रयत्न करते देखे जाते थे। रात्रि भोजन त्याग व शुद्धाहारपान के आग्रह के कारण इनकी विशिष्टता वैष्णवधर्मानुयायियो से स्पष्टतः पृथक् परिलक्षित होती थी। ये उच्च संस्कृति (महाजन संस्कृति) के चिह्न माने जाते थे।

४ अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाच अणुव्रत (जिन्हे योग दर्शन मे 'यम' कहा गया है), अनेकातवाद, (जिससे सर्वमत समभाव, जीओ और जीने दो आदि व्यवहारो मे लाये जा सकते है), निरामिषाहार, रात्रि भोजन त्याग, मादक, उत्तेजक व्यसन त्याग (जिनके प्रचार-प्रसार मे स्वास्थ्य विज्ञान की सहायता ली जा सकती है तथा जो शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य सवर्धन के लिए आवश्यक है) 'जन्म' के स्थान पर 'कर्म' को महत्त्व प्रदान, अप्रमाद आदि मूल्य आज भी सस्कारशील जीवन के लिए प्रेरणा स्रोत बन सकते है। ये मूल्य अब तो 'जैन धर्म' के ही नही, 'मानव-धर्म' के लिए अपरिहार्य हैं। व्यवहार मे देखा यह जा रहा है कि जन्मना जैन कर्मणा जैन नही पाये जा रहे हैं। अतः इन बातो पर 'जैन' धर्म की छाप लगाना बेमानी है। ये मानवमात्र के सास्कृतिक विकास के लिए उपयोगी है। फिर वैदिक मतानुयायी, वैष्णव आदि 'रात्रिभोजन त्याग' को छोड़ शेष बातें अधिकाश मे मानते है। अनेकातवाद को जैन धर्म का शब्द होने से भले ही न मानने का ढोल करें पर व्यवहार मे सापेक्षवाद के रूप मे मानते ही हैं। ईसाई, मुसलमान धर्मानुयायी निरामिषाहार की ओर आते आते आयेंगे।

५. रूढियो मे बधा रह कर, बुद्धि तर्कसंगत हुए बिना जन्मना 'जैन' समाज युग की समस्याओ का समाधान नही कर सकेगा। सर्व धर्म समभाव व वैज्ञानिकता की ओर बढ़े बिना आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियो का श्रमोपहरण करके, जैन शास्त्रो की तथाकथित अन्ध मान्यताओ से चिपके रहकर क्या निर्णायक भूमिका निभायी जा सकेगी ? जैन समाज 'जन्मना जैन' और अजैन की भाषा मे सोचता रहेगा तो क्या कर सकेगा ? जैन धर्म का युगानुरूप कायाकल्प आवश्यक है। वास्तव मे सभी धर्मो का कायाकल्प 'मानव धर्म' के रूप मे होने से ही विश्व मानवता का विस्तार होगा। सभी धर्मानुयायियो को विवेक की छलनी से छानकर अपने-अपने धर्मों की व्यर्थ रूढियो, निस्सार मान्यताओ और अवैज्ञानिकतापूर्ण विकारो को निकाल फेकना होगा और मानव मात्र के लिए शुद्ध-मानव धर्म के रूप मे परिणत होना होगा, अन्यथा अपनी-अपनी खींचतान तो हो ही रही हैं, वह होती रहेगी।

• • •

परिशिष्ट







हमारे सहयोगी लेखक

[परिचय अकारादि क्रम से है]

लेखक-परिचय

१ श्री अगरचन्द नाहटा—हिन्दी व राजस्थानी के प्रसिद्ध गवेषक विद्वान् व लेखक, जैन धम और साहित्य के विशेषज्ञ, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

२ प० अनूपचन्द—कवि, लेखक और गवेषक महावीर भवन, चौडा रास्ता, जयपुर–३।

३ उपाध्याय अमर मुनि—जन मुनि, प्रवुद्ध चिन्तक कवि और लेखक, राजगृह मे वीरायतन याजना के प्रेरक।

४ आचाय श्री आनन्द ऋषि जी—जैन आचाय, आगमवेत्ता और शास्त्रज्ञ।

५ श्री कन्हैयालाल लोढा—प्रवुद्ध चि तक, लेखक और स्वाध्यायी अधिष्ठाता—श्री जैन शिक्षण सस्थान, गमललाजी का रास्ता, जयपुर–३।

६ डॉ कमलच द सोगानी—उदयपुर विश्वविद्यालय के दशन विभाग म रीडर, जन दशन के विद्वान और लेखक, 'Jain Ethics' पर शोध काय, १०६, अशोक नगर, उदयपुर।

७ डॉ कस्तूरच द कासलीवाल—जन साहित्य के गवेषक विद्वान् और लेखक राजस्थान के जन ग्र थ भडार विषय पर शोध काय, श्री दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महावीर जी, जयपुर के साहित्य-शोध विभाग के निदशक, महावीर भवन, चौडा रास्ता, जयपुर–३।

८ डॉ कालूराम शर्मा—वनस्थली विद्यापीठ म इतिहास विभाग के आचाय एव अध्यक्ष।

९ डॉ क ऋषभच द्र—गुजरात विश्वविद्यालय मे प्राकृत और पालि विभाग के अध्यक्ष, जैन साहित्य और दशन के विद्वान्, ३ यूनिवर्सिटी टीचस होस्टल, अहमदाबाद–९।

१० डॉ कैलशच द जैन—विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के इतिहास विभाग म रीडर, प्राचीन इतिहास और पुरातत्त्व के विद्वान्, जन धम और दशन के ममन। मोहन निवास, कोठी रोड, उज्जन।

११ श्री गणपतिच द्र भण्डारी—जाधपुर विश्वविद्यालय के हि दी विभाग मे प्राध्यापक, कवि, समालोचक और सम्पादक। कई सामाजिक व शक्षणिक सस्थाओ स सम्बद्ध, ४४० बी, तीसरी 'सी' सडक, सरदारपुरा, जोधपुर।

१२ श्री गिरिजाशकर शर्मा—राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर के सहायक निदशक।

१३ श्री घेवरच द कानूगो—उत्साही सामाजिक कायकर्ता और प्रसिद्ध व्यवसायी, एलको बक्स मटल्स प्रा० लि० जाधपुर के प्रब ध सचालक।

१४ प० चैनसुखदास (स्व०)—जनदशन क प्रसिद्ध विद्वान्, अनेक सामाजिक, धार्मिक एव साहित्यिक सस्थाओ के प्रेरणा-स्रोत।

१५. डॉ० छविनाथ त्रिपाठी—कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे रीडर, हिन्दी-संस्कृत के विद्वान्, लेखक और समालोचक, जैनदर्शन और साहित्य के मर्मज्ञ, चम्पू काव्य पर शोध कार्य, डी-४६, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय परिसर, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

१६. श्री जोधसिंह मेहता—सेवा निवृत्त राजस्थान प्रशासनिक सेवा अधिकारी, देलवाड़ा मन्दिर, आबू के मुख्य प्रबन्धक।

१७. डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन—प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, लेखक और गवेषक, जैन-दर्शन के विशेषज्ञ, ज्योति निकुंज, पान दरीबा, चार बाग, लखनऊ-१।

१८. आचार्य श्री तुलसी—जैन आचार्य, अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक, आगमवेत्ता और शास्त्रज्ञ, कवि और प्रबुद्ध विचारक।

१६. श्री दुलीचन्द टाँक—जवाहरात के व्यवसायी, जौहरी बाजार, जयपुर-३।

२०. डॉ. देव कोठारी—राजस्थानी साहित्य और इतिहास के विद्वान्, राजस्थान विद्यापीठ साहित्य-संस्थान, उदयपुर के उपनिदेशक।

२१. मुनि श्री नयमल—जैन मुनि, जैन धर्म और दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् और प्रबुद्ध चिन्तक।

२२. डॉ. नरपतचन्द सिंघवी—जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे प्राध्यापक, लेखक और सम्पादक, निराला के कथा साहित्य पर शोध कार्य, मोतीलाल बिल्डिंग, जोधपुर।

२३. डॉ. नरेन्द्र भानावत—राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे प्राध्यापक, आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार शोध प्रतिष्ठान, जयपुर के मानद निदेशक तथा 'जिनवाणी' के मानद सम्पादक। कवि और समीक्षक, 'राजस्थानी वेलि साहित्य' पर शोध कार्य, सी-२३५-ए, दयानन्द मार्ग, तिलकनगर, जयपुर-४।

२४. आचार्य श्री नानालालजी म०—जैन आचार्य, आगमवेत्ता और शास्त्रज्ञ, समतादर्शन के गूढ व्याख्याता।

२५ डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री (स्व०)—संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, काव्यशास्त्र, ज्योतिष, और जैन दर्शन के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, अनेक ग्रन्थो के लेखक।

२६. श्री परमानन्द चोयल—उदयपुर विश्वविद्यालय मे चित्रकला विभाग के अध्यक्ष, प्रसिद्ध चित्रकार।

२७ श्री पूर्णचन्द्र जैन—सर्वोदयी विचारक और लेखक, सामाजिक कार्यकर्ता, जयपुर।

२८ डॉ प्रेम सुमन जैन—उदयपुर विश्वविद्यालय मे संस्कृत विभाग मे प्राकृत के प्राध्यापक, संस्कृत, प्राकृत और जैन साहित्य के विद्वान्, 'कुवलयमाला का सांस्कृतिक अध्ययन' विषय पर शोध कार्य, ४, रवीन्द्र नगर, उदयपुर।

२६. श्री प्रवीणचन्द जैन—संस्कृत साहित्य और जैनदर्शन के विद्वान्, कई साहित्यिक एवं शैक्षणिक संस्थाओ से संबद्ध, वर्तमान मे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सेवा निवृत्त शिक्षकों की

सेवा योजना मे राजस्थान वि० वि० के संस्कृत विभाग से सम्बद्ध, बी–२०, गणेश मार्ग, बापू नगर, जयपुर–४।

३० श्री बलवन्त सिंह मेहता—राजस्थान राज्य के भूतपूर्व उद्योग मन्त्री, भूतपूर्व संसद सदस्य, कई सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध, विचारक और लेखक, रन बसेरा, अस्पताल मार्ग, उदयपुर।

३१ श्री भंवरमल सिंघी—प्रबुद्ध विचारक और लेखक, कई सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध, सुस्मिता, १६२-सी, ५३३ लेक गार्डन्स, कलकत्ता–४५।

३२ पं भंवरलाल जैन—जनविद्वान, 'वीरवाणी' के सम्पादक, वीर प्रेस, मनिहारों का रास्ता, जयपुर।

३३ डा भंवर सुराना—पत्रकार और लेखक, दैनिक हिन्दुस्तान के विशेष संवाददाता, 'राजस्थान मे हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव और विकास' विषय पर शोधकार्य, डी ४१, पत्रकार कॉलोनी, तिलकनगर, जयपुर–४।

३४ श्री मधुकर मुनि—जैन मुनि, प्रबुद्ध चिन्तक और लेखक।

३५ डॉ मनोहरलाल दलाल—प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के विद्वान, उज्जैन।

३६ श्री महावीर कोटिया—कथाकार और लेखक, जैन साहित्य मे कृष्ण कथा विषयक विशिष्ट कार्य, केन्द्रीय विद्यालय, जयपुर मे हिन्दी के स्नातकोत्तर अध्यापक, ८४ एवरेस्ट कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर–४।

३७ डॉ महेन्द्र भानावत—भारतीय लोक-कला मण्डल उदयपुर मे उपनिदेशक, लोक साहित्य, लोक कला और लोक संस्कृति के विद्वान, 'रंगायन' और 'लोककला' के सम्पादक, ३५२ श्रीकृष्णपुरा, उदयपुर।

३८ श्री मिट्ठालाल मुरडिया—अध्यापक और लेखक, एच एम जैन छात्रालय, १६ प्रिमरोज, बेंगलोर–२५।

३९ डॉ मोहनलाल मेहता—जैनदर्शन और साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान, 'श्रमण' के सम्पादक, अनेक पुस्तकों के लेखक, श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी के निदेशक।

४० श्री यशवन्त अक्षय—प्रबुद्ध चिन्तक और लेखक, सुमति संगम, नला बाजार, अजमेर।

४१ आचार्य रजनीश—प्रखर चिन्तक, ओजस्वी वक्ता और लेखक, ए–१, वुडलण्ड्स एपार्टमेन्ट्स पेडर रोड, बम्बई–२६।

४२ डॉ रत्नचन्द्र अग्रवाल—मूर्तिकला और पुरातत्व के विशेषज्ञ, राजस्थान राज्य पुरातत्व एवं संग्रहालय के निदेशक, रामनिवास बाग, जयपुर।

४३ श्री राजरूप टांक—लब्धप्रतिष्ठ रत्न व्यवसायी, वयोवृद्ध सामाजिक कार्यकर्ता, कई सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध, जौहरी बाजार जयपुर–३।

४४ श्री राजेन्द्र प्रकाश भटनागर—राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय उदयपुर में प्राध्यापक, आयुर्वेद चिकित्सक और लेखक, मथुरालाल पंड्या का मकान ४/३८ जगदीश चौक, उदयपुर।

४५. डॉ. रामगोपाल शर्मा—राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास एव भारतीय सस्कृति विभाग मे रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास और सस्कृति के विशेषज्ञ, 'महाभारत में राजनीतिक चिन्तन और सस्थान, विषय पर शोध कार्य, सी–११, तिलक नगर, जयपुर–४।

४६. श्री रामवल्लभ सोमानी—इतिहास और पुरातत्व के गवेषक विद्वान, कानूनगो भवन, कल्याणजी का रास्ता, जयपुर–१ ।

४७. श्री रावत सारस्वत—हिन्दी-राजस्थानी के कवि और लेखक, 'मरुवाणी' राजस्थानी मासिक के सम्पादक, राजस्थान भाषा प्रचार सभा के सचिव, राजस्थान रेडक्रास सोसायटी के सगठन सचिव, डी–२८२ मीरा मार्ग, वनीपार्क, जयपुर–६ ।

४८ श्री रिखबराज कर्णावट—अभिभाषक, सर्वोदयी विचारक और सामाजिक कार्यकर्ता, ४४८ रोड, १ 'सी', सरदारपुरा, जोधपुर ।

४९. श्री रिषभदास रांका—सुप्रसिद्ध समाजसेवी, कर्मठ कार्यकर्ता और लेखक, 'जैन जगत' के सम्पादक, भारत जैन महामण्डल एवं महावीर कल्याण केन्द्र के मत्री, अनेक धार्मिक, शैक्षणिक एवं सेवा-संस्थाओ से सम्बद्ध, लक्ष्मी महल, वमन जी पेटिट रोड, बम्बई–६१ ।

५०. उपाध्याय विद्यानन्द मुनि—जैन मुनि, जैनदर्शन और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् प्रबुद्ध चिन्तक और प्रखर वक्ता ।

५१. डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय—राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे रीडर एव अध्यक्ष, कवि, उपन्यासकार और समीक्षक, ज्ञानमार्ग, तिलक नगर, जयपुर–४ ।

५२. डॉ. (श्रीमती) शान्ता भानावत—विदुषी लेखिका, 'जिनवाणी' मासिक के सम्पादन से सम्बद्ध, 'ढोला मारु रा दूहा का अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर शोध कार्य, सी-२३५ ए, तिलक नगर, जयपुर–४ ।

५३. श्री श्रीचन्द जैन—सान्दीपनी स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य, लेखक और समीक्षक, मोहन निवास, कोठी रोड, उज्जैन ।

५४. श्री सम्पतराज डोसी—स्था० जैन स्वाध्यायी सघ के सयोजक, जैन दर्शन के विशेषज्ञ, लेखक और प्रचारक, घोड़ो का चौक, जोधपुर ।

५५. प. सुखलाल संघवी—जैन धर्म और दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान, पद्मभूषण अलकार से सम्मानित, अहमदाबाद ।

५६. मुनि श्री सुशीलकुमार—जैन मुनि, प्रबुद्ध चिन्तक और लेखक, विश्वधर्म सम्मेलन और अहिंसा शोधपीठ, दिल्ली के प्रेरक ।

५७. श्री सौभाग्यमल श्रीश्रीमाल—अवकाश प्राप्त प्रधानाध्यापक, लेखक और शिक्षाविद्, कई शैक्षणिक व सामाजिक सस्थाओ से सम्बद्ध, बी ८१, बापू नगर, जयपुर–४ ।

५८. आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज—जैन आचार्य, आगमवेत्ता और शास्त्रज्ञ, गवेषक विद्वान् और इतिहासज्ञ ।

परिशिष्ट



हमारे अर्थ-सहयोगी

स्वर्गीय श्री गुरुबचनसिंहजी

जन्म
सन् १९२२



निधन
२६ सितम्बर,
१९७३

को

हार्दिक श्रद्धांजलि

आप बडे मिलनसार, अध्यवसायी और सत्सगप्रेमी थे। भारत विभाजन के बाद आप पाकिस्तान से दिल्ली आकर बसे और बसो की बॉडी (Body) बनाने का व्यवसाय शुरू किया। सन् १९६८ मे आप जयपुर आये और यहाँ भी 'आजाद बॉडी बिल्डस' के नाम से आमेर रोड पर यह व्यवसाय प्रारम्भ किया और अच्छी ख्याति अर्जित की। आप सत बाबा जसवन्तसिंहजी के परम भक्त थे। आप विचारो मे उदार और व्यवहार मे बडे विनम्र थे। श्री चन्द्रराजजी सिंघवी के सम्पर्क से आपको आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के दर्शनो का अवसर मिला। आप उनकी वाणी और साधनापरक व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुए और उनके परम श्रद्धालु बन गये।

स्वर्गीय श्री सिरहमलजी बम्ब



जन्म
15 नवम्बर, 1923

निधन
5 फरवरी, 1975

को

हार्दिक श्रद्धांजलि

आपकी प्रारम्भ से ही शैक्षणिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक प्रवृत्तियो मे सक्रिय रुचि रही। जयपुर नगर के आप दो बार पार्षद निर्वाचित हुए। आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० के प्रति आपकी अनन्य भक्ति और निष्ठा थी। लगभग 10 वर्षो तक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के मन्त्री के रूप मे आपने उल्लेखनीय सेवाये की। श्री जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी शिक्षा समिति के आप 1961 से 66 तक और 1969 से लेकर जीवन पर्यन्त मन्त्री पद पर कार्य करते रहे। मन्त्री के रूप में सुबोध कॉलेज व सम्बद्ध संस्थाओं के विकास और उन्नयन मे आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। 'जिनवाणी' के नियमित प्रकाशन और व्यवस्था में आपका जो सहयोग रहा, वह सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। आप सहृदय, मिलनसार, कर्मठ और उदार स्वभाव के जागरूक समाजसेवी थे।

स्वर्गीय श्री घीसीलालजी कोठारी

जन्म
सन् १९१५



निधन
५ मार्च, १९७५

को

हार्दिक श्रद्धांजलि

'लाल हाथी वाला' के नाम से प्रसिद्ध श्री कोठारी जी को बचपन से ही धार्मिक क्रियाओं के प्रति विशेष रुचि थी और आप नियमित रूप से सामायिक-स्वाध्याय करते थे। सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों में आपका सक्रिय योगदान रहा। आप वर्षों तक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के उपाध्यक्ष रहे। 'जिनवाणी' पत्रिका के स्तंभ के रूप में आपका प्रारम्भ से ही सराहनीय योगदान रहा। जैन इतिहास समिति के भी आप विशिष्ट सहयोगी थे। आपकी व्यावसायिक बुद्धि तीव्र थी। अल्पायु में ही आपने रत्न व्यवसाय शुरू किया और शीघ्र ही देश-विदेश के जवाहरात के प्रमुख व्यवसायियों में आप प्रसिद्ध हुए। वर्तमान में जयपुर, बम्बई, मद्रास, हांगकांग और न्यूयार्क में आपके व्यापारिक प्रतिष्ठान हैं। आप बड़े मिलनसार, मृदुभाषी एवं संत सेवा में अग्रणी थे।

चत्तारि मंगलं अरिहन्ता मंगलं,
सिद्धा मंगलं साहू मंगलं,
केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं ।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहन्ता लोगुत्तमा,
सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,
केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।

संसार मे चार मंगल रूप हे । अरिहन्त-सिद्ध-साधु और केवलिप्ररूपित दया-धर्म ।

ससार मे चार ही उत्तम हैं । अरिहन्त-सिद्ध-साधु और केवलिप्ररूपित दया-धर्म ।



ये सभी हमारे लिये मंगल मय हों एव ये चारो लोकोत्तम हमारे हृदय पटल पर सदा अंकित रहे—इस शुभ कामना के साथ—

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि
अरिहन्ते सरणं पव्वज्जामि
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि
साहू सरणं पव्वज्जामि
केवलि पण्णत्तो धम्म सरणं पव्वज्जामि ।

ए चार शरणा-दुःख हरणा, और न शरणा कोय,
जे भवि प्राणी आदरे, ते अक्षय अमर पद होय ।

संसार में चार शरण-भूत हैं। अरिहंत-सिद्ध-साहू एवं दयामय केवलि-भाषित धर्म । इन चारों की मैं शरण ग्रहण करता हूं ।



ये चारों शरण्य हम सब शरणागतों को संसार सागर से शीघ्र ही पार करें—इस प्रार्थना के साथ,

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो,
माणुसत्तं सुइ सद्धा संजमम्मि य वीरियं ।

—भ० महावीर

(१) मनुष्यत्व, (२) प्रभुवाणी का श्रवण, (३) सुने हुए धर्म-तत्वों पर विश्वास और श्रद्धा, (४) संयम-पालन में पौरुष—ये चारों बातें प्राप्त होनी दुर्लभ हैं ।

ये दुर्लभ हमें सदा सुलभ हों—इस कामना के साथ प्रभु-चरणों में शत्-शत् वन्दन !

इन्द्रचन्द्र हीरावत
परतानियों का रास्ता,
जौहरी बाजार, जयपुर ।
फोन : ७२४६६

सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुखभाग् भवेत् ।।

संसार के सभी प्राणी सुखी, निर्भय एवं निरापद बनें, सब एक दूसरे का हित चिन्तन करें, कोई दुखी न रहे।

प्रभु महावीर हमें यह सद्बुद्धि दें—इस हित कामना के साथ वीर-जयन्ती पर्व पर प्रभु वीर को हमारा हार्दिक अभिनन्दन !

ईश्वरलाल
रमेश जरीवाला
अम्बिका मॉडल मिल्स,
भाटवाड़ा, जयपुर ।

धम्मे हरए बंभे सन्ति तित्थे, अणाविले अत्त पसन्न लेसे ।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइ भूओ पजहामि दोसं ।।

—उत्तराध्ययन सूत्र ।

आत्म-भाव की प्रसन्नता रूप अकलुष लेश्यावाला यानि शुद्ध आत्म ज्योति को जगाने वाला धर्म मेरा ह्रद यानि कुण्ड है, जिसमें स्नान करके मैं विमल-विशुद्ध एवं शान्त होकर कर्मरज को दूर करता हूं ।



ऐसे कुण्ड में स्नान करने की योग्यता हम भी प्राप्त कर सकें, वह शक्ति भगवान् महावीर हमें दें—इस सात्विक कामना के साथ—

गुमानमल उमरावमल चोरड़िया
राजमल चोरड़िया
चोरड़िया ट्रेडिंग कॉरपोरेशन
चौड़ा रास्ता, जयपुर-३
फोन : ६२१०४, ७५२६६, ७३७६८, ६३०९२

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो,
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य ।

—भ० महावीर

अपनी ही आत्मा का दमन करो—वही दुदमनीय है। अपनी ही बुराइयों का दमन करने वाला महापुरुष इस लोक और परलोक में सुखी रहता है।



वीर प्रभु के इस उपदेश पर आचरण करने की हम शक्ति प्राप्त हों—इस कामना के साथ।

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई,
दो मास कयं कज्जं, कोडीए वि न निट्ठियं ।

जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे-वैसे लोभ होता है । लाभ से लोभ बढ़ता जाता है । दो माशा सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड़ स्वर्ण मुद्राओं से भी पूरा नही हो सका ।



एक मात्र भौतिक उपलब्धियो की दौड मे लगा सत्रस्त आज का मानव भगवान् महावीर के इन अमर एवं अमोघ उपदेशो से आत्म-शन्ति की उपलब्धि करे—

इस शुभकामना के साथ—

लब्भन्ति विमले भोए, लब्भति सुरसम्पया,
लब्भन्ति पुत्त-मित्त च, एगो धम्मो न लब्भइ ।

उत्तमोत्तम भोगोपभोगों से युक्त भौतिक भोग सामग्री, देवताओं जैसी ऋद्धि-सम्पदा तथा पुत्र-परिवार एवं मित्रों से भरापूरा घर प्राप्त करना सरल है—पर सद्धर्म को प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर है ।



वह सद्धर्म प्राप्त करने की सामर्थ्य प्रभु वीर हमें दें – इस भावना के साथ—

प्रभु वीर की २५००वीं जयन्ती के पावन पर्व के प्रसंग पर प्रभु महावीर का हमारा शत् शत वन्दन ।

नथमल हीरावत
टीकमचन्द विनयचन्द
जौहरी
हीरावत भवन,
बारह गणगौर का रास्ता जयपुर
फोन ७२११८ ६५२१६

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिणियट्टइ;
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ ।

—भ० महावीर

जो जो रात और दिन बीतते जा रहे है, वे फिर कभी लौट कर नही आते । अतः जो मनुष्य धर्माचरण मे निरत रहता है, उसी के ये दिन-रात सफल कहे जा सकते है ।



वीर प्रभु के ये उपदेश हमारे अन्तर की गहराइयो मे उतरें—इस कामनाके साथ—

लाभचन्द लोढ़ा
परतानियों का रास्ता,
जौहरी बाजार, जयपुर ।
फोन . ७५३४८

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ,
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा।

—भ० महावीर

कर्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र होते हैं, जन्म से नहीं।



समदर्शी प्रभु महावीर द्वारा उपदिष्ट इस तथ्य को हृदयंगम कर आचरण में ढालने की शक्ति हमें प्राप्त हो इस शुभ भावनापूर्वक—

जरा-मरण वेगेणं, वुज्झमाणाण पाणीणं,
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं।
—भ० महावीर

जन्म-जरा-मरण के निरन्तर प्रवाह मे वहते-डूबते हुए प्राणियो के लिए एक मात्र धर्म ही द्वीप, आधार, गति एव सर्वश्रेष्ठ शरण है।



भगवान महावीर ने कहा है—

दुप्परिच्चया इमे कामा, नो सुजहा अधीर पुरुसेहिं ।
अह सन्ति सुव्वया साहू, जे तरन्ति अतर वणिया व ।।

प्राप्त काम-भोग की सामग्रिया को स्वेच्छापूवक त्यागना दुष्कर है। कमजोर मनोबल वाले अधीर पुरुषा के द्वारा य आसानी से नही छोडी जाती। किन्तु जो दृढ मनोबल वाले है, सुव्रती ह, साधु ह वे इन दुस्तर काम-भागो की वतरणी को भी उसी प्रकार तर जात है जैसे चतुर वणिक् समुद्र का।



अमर्यादित भागवादी पाश्चात्य सस्कृति स प्रभावित आज क युग म प्रभु वीर के उपदेशा पर चलन की सामथ्य हम सबको प्राप्त हो—इस शुभकामना के साथ—

प्रभु महावीर का उपदेश —

असंखयं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु नत्थि ताण ।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, कण्णू विहिंसा अजया गहिन्ति ।।

टूटा जीवन साधा नही जा सकता—अत हे प्राणी ! प्रमाद मत कर । वृद्धावस्था आने पर कोई शरण नही है । यह विचार कर कि—"प्रमादी, हिंसक और असयमी मनुष्य समय पर किसकी शरण लेगे ?"



आज देश-काल की पृष्ठभूमि मे प्रभु महावीर का आह्वान है कि—"वणिक् समाज, अध्यापक वर्ग, शासक वर्ग, स्त्री वर्ग, पुरुप वर्ग, धनी वर्ग, निर्धन वर्ग काल की गति को समझ कर एक दूसरे का शोपण न करे, बेईमानी एव भ्रष्टाचार-पूर्वक अनर्थकारी सम्पत्ति का अर्जन करने का लोभ छोड़े । देश की समृद्धि मे, गरीबी और शोपण को समाप्त करने मे अपना पूरा योगदान करे ।

इस शुभ भावना के साथ —

ज्ञान के समग्र प्रकाश से
अज्ञान और मोह के नि शेष विवर्जन से
एव राग और द्वेष के मूलत उन्मूलन से
आत्मा अनन्त सुखसम्पन्न मोक्ष प्राप्त करती है।



इस २५००वें निर्वाण महोत्सव-वर्ष के पुण्य-पर्व पर
प्रभु वीर का शत-शत अभिनन्दन
एव
कोटि-कोटि अभिवन्दन।

हुक्मीचन्द एडवोकेट
जोधपुर

जहा गेहे पलित्तम्मि – तस्स गेहस्स जो पहू ।
सार भण्डाणि नीरोइ – असारं अवउज्भइ ।।
एवं लोए पलित्तम्मि – जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि – तुब्भेहि अणुमन्निओ ।।

—उत्तराध्ययन सूत्र ।

जिस प्रकार घर मे आग लगने पर गृह-स्वामी मूल्यवान-सार वस्तुओ को निकालता है—मूल्यहीन असार वस्तुओ को छोड देता है—उसी प्रकार आपकी अनुमति पाकर जरा और मरण से जलते हुए इस लोक मे से मै सार भूत अपनी आत्मा को वाहर निकालूंगा ।



उस सारभूत को समझने एव उसकी रक्षा करने की शक्ति हमे शीघ्र ही प्राप्त हो, इस कामना के साथ—

प्रभु वीर की २५००वीं निर्वाण तिथि पर,
वीर प्रभु को हमारा शत-शत वन्दन !

अजीतकुमार बोराणी
माहेर निवास,
हनुमान का रास्ता, जौहरी वाजार, जयपुर–३
फोन : ६२८२७, ६७३६३

तवो जोई जीवो जोइ ठाण, जोगा सुया सरीर कारिसग ।
कम्म एहा सजम जोग सन्ती, होम हुणामि इसिण पसत्थ ।।

—उत्तराध्ययन सूत्र

तप ज्योति अर्थात् जाज्वल्यमान अग्नि है । जीवात्मा उस ज्योति का स्थान अर्थात हवन-कुण्ड है । मन, वचन, काया का योग श्रुवा है । शरीर कण्डे है । कर्म ईंधन है । सयम म प्रवृत्ति करना शान्ति-पाठ ह । मैं महर्षियों द्वारा प्रशस्त ऐसा यज्ञ करता हूं ।



ऐसा प्रशस्त यज्ञ करने की योग्यता किसी दिन हम भी प्राप्त कर के अपना जीवन सफल बना सके—इस उदात्त भावना के साथ,

कैलाश दूगड़
सुरेश दूगड़
६२०, मिण्ट स्ट्रीट,
मद्रास-१

कसिणं पि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स,
तेणावि से न संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया ।

—भ० महावीर

सभी प्रकार की संपत्तियों से परिपूर्ण यह समग्र विश्व भी यदि किसी एक व्यक्ति को दे दिया जाय तो भी वह व्यक्ति संतुष्ट नहीं होगा । इतना कठिन है लोभग्रस्त की इच्छाओं को पूर्ण करना ।



प्रभुवीर के अमृतोपम इस उपदेश को हृदयगम कर प्रत्येक मानव
अपनी इच्छाओं पर अंकुश लगाना सीखे—इसी भावना के साथ—

महावीर ने कहा है—

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थ दोसा ।
एयाणि वंता अरहा महेसी, न कुव्वई पाव न कारवेइ ।।

क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चार आत्मा के भयंकर दोष हैं। इनका पूर्णत त्याग करने वाले अर्हन्त महर्षि न स्वयं पाप करते हैं और न दूसरों से करवाते हैं।

ऐसे महर्षियों के भी महनीय महर्षि प्रभु महावीर को कोटि-कोटि प्रणाम है।

चन्द्रसिंह बोथरा
ज्वेलर्स,
घरतानियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर ३
फोन ६३३६४, ६२५११

सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ,
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरन्ति महेसिणो।
—भ० महावीर

शरीर को नाव रूप कहा है—आत्मा उसका नाविक कहलाता है—संसार को समुद्र बताया है—ऐसे संसार-समुद्र को महर्षि-जन पार करते हैं।

ऐसे महर्षिजनों के आराध्य प्रभु महावीर का हमारा शत शत अभिनन्दन।

ज्ञानचन्द कोठारी
६, पुलिस मेमोरियल,
नेहरू मार्ग, जयपुर ४
फोन ७४१६८, ६५८३५

प्रभुवीर का प्रवचन—

सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अपम्मत्तस्स नत्थि भयं ।

जो प्रमादी है उसे सर्वत्र भय है। अप्रमादी के लिए कहीं भय नहीं है।

हमारे मन की गहराइयों में ये उपदेश उतरें—इन्हीं कामनाओं के साथ—

कुशलचन्द हीरावत
बारह गनगौर का रास्ता
जौहरी बाजार, जयपुर–३

भद्दं सील–पडागूसियस्स, तव-णियमतुरग–जुत्तस्स ।
संघरहस्स भगवओ, सज्झाय–सुणदिघोसस्स ।।

शीलरूपी उत्तुंग पताका वाले, तप और संयमरूपी आशुगामी अश्वों से जुते हुए और स्वाध्याय के सुमधुर स्वररूपी सुन्दर नन्दिघोष वाले हे भगवद् स्वरूप संघ-रथ! तुम्हारा कल्याण हो।

मोक्ष पथ पर द्रुतगति से अग्रसर होता हुआ संघ-रथ हम सबको हमारे चरम लक्ष्य तक पहुंचाये—इसी अमर अभिलाषा के साथ—

विमलकुमार सचेती
१७६ हल्दियों का रास्ता
जौहरी बाजार, जयपुर–३
फोन ६४७५५

तुमसि नाम त चेव, ज हतव्व ति मन्नसि,
तुमसि नाम त चेव, ज अज्जावेयव्व ति मन्नसि ।
तुमसि नाम त चेव, ज परियावेयव्व ति मन्नसि [आचाराङ्ग]

—महावीर

ओ मानव ! जिस प्राणी को तू मारना चाहता है, वह तू ही तो है। अरे ! जिसे तू शासित करना चाहता है, वह भी तो तू ही है और जिसे तू परिताप पहुँचाना चाहता है वह भी वस्तुत तू ही तो है।

प्रत्येक मानव भगवान् महावीर के इस अमर उपदेश को अपने प्रति-पल के जीवन मे चरितार्थ कर सुखपूर्ण ससार का नवनिर्माण करे—इस आ तरिक कामना के साथ—

धम्मा मगलमुक्किट्ठ, अहिंसा-सजमो-तवा ।
देवावि त णमसति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

—भ० महावीर

अहिंसा, सयम और तपामूलक धम ही सर्वोत्कृष्ट मगल है। देवता भी उस नरोत्तम को नमस्कार करते हैं, जिसका मन सदा धम मे लीन रहता है।

इस प्रकार के विश्व कल्याणकारी विश्वधम के प्ररूपक और पालन-कत्ताओ को कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं—

गुणभवरणगहरण ! सुयरयरणभरिय ! दंसरणविसुद्धरच्छागा !
संघनगर ! भद्दं ते, अक्खंडचरित्तपागारा !

पिण्ड विशुद्धि आदि अमित उत्तर-गुणरूपी भवनो की विद्यमानता के कारण अतिगहन ! आचाराङ्गादि अनेक सुखदायी श्रुतरत्नो से परिपूर्ण ! मिथ्यात्वादि कूड़े-कर्कट से रहित विशुद्ध दर्शनरूपी रथ्याओ वाले ! और अखण्ड चारित्र के प्राकार (परकोटे) से सदा सुरक्षित ! ओ संघनगर ! तुम्हारा कल्याण हो ।

भगवान् महावीर के सघनगर को कोटि-कोटि प्रमाण है—

नाणं च दसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो अ, एयं जीवस्स लक्खणं ।।

—भगवान् महावीर

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव के लक्षण है ।

जड़ और चेतन का भेद बताने वाले सर्वज्ञ प्रभु महावीर को कोटि-कोटि प्रणाम !

सार दंसणनाण, सार तव-नियम-सील ।
सार जिणवर-धम्म, सार संलेहणा-मरण ।।

संसार मे, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सार रूप है, तप, नियम और शील सार भूत है, वीतराग जिनेश्वर प्रभु द्वारा प्ररूपित जैनधर्म ही सार है और अन्त मे संलेखनापूर्वक मरण ही सार है ।

ये चारो उच्चकोटि के सारभूत पदार्थ हमारे त्रिकरण त्रियोग मे रम जाय इसी उच्च आकांक्षा के साथ —

ते धण्णा सुकयत्था, ते सूरा ते वि पडिया मणुया ।
सम्मत्त सिद्धियर, सिविणे वि ण मइलिय जेहि ।।

वे मानवोत्तम धन्य, कृतार्थ एवं वस्तुतः शूरवीर और पण्डित हैं, जिन्होंने अजरामर अक्षय मोक्ष प्रदान करने वाले अपने सम्यक्त्व को स्वप्न मे भी मिथ्यात्व का मैल नही लगने दिया ।

प्रभु महावीर हमे वह शक्ति दे कि हम अपने सम्यक्त्व रत्न पर मिथ्यात्व का मैल न लगने दें—इसी आंतरिक मनोभावना के साथ—

जिण वयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेण ।
अमला असंकिलिट्ठा, ते हुंति परित्त संसारी ।।

—भ० महावीर

जो व्यक्ति जिनेन्द्र भगवान् के वचनों मे अहर्निश अनुरक्त रहकर प्रभु के उपदेशो के अनुसार मन-वचन-कर्म से आचरण करते है, वे आठो कर्मो को समूल नष्ट कर पूर्णत शुद्ध निष्कलक एव क्लेश रहित हो जन्म-मरण रूपी ससार का अन्त कर अक्षय शिवसुख को प्राप्त करते है।



हम भी प्रभु के उपदेशों के अनुसार चलकर शुद्धत्व-बुद्धत्व प्राप्त करें—इसी अमर अभिलाषा के साथ—

अच्चेइ कालो तूरन्ति राइग्रो,
न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा ।
उविच्च भोगा पुरिस चयन्ति,
दुम जहा खीणफल व पक्खी ।।

समय बडी शीघ्रता के साथ बीतता चला जा रहा है । रातें दौडती हुई चली जा रही है । मानव-भोग क्षणभगुर हैं । क्षीण पुण्य वाले व्यक्ति को काम-भोग उसी प्रकार छोड देते है जिस प्रकार कि क्षीणफल वाले वृक्ष को पक्षी ।

प्रभु महावीर के इस अमृतोपम उपदेश को हृदयगम करते हुए हम काम-भोगो से निवृत्त होने का निरन्तर प्रयास करते रहे । इसी शुभ कामना के साथ—

उमरावमल रोशनलाल सेठ ज्वैलर्स,
रामलला का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर–३
फोन : ७५२१४

सव्वं विलवियं गीय, सव्वं नट्टं विडम्बियं ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ।।

समस्त स[illegible]न-गान विलापमात्र, निखिल नृत्य-नाट्य, विडम्बना, समग्र आभरणालङ्कार भारस्वरूप और सम्पूर्ण कामभोग दुःखदायी हैं ।

भूतमात्रैक बन्धु भगवान् महावीर के इन भवभयनिकन्दन अमृत तुल्य वचनो को अपने अन्तस्तल मे धारण कर हम सब अपनी बहिर्मुखी वृत्तियो को अन्तर्मुखी बनाने मे सिद्धकाम हो इसी आन्तरिक शुभकामना के साथ—

भांडिया ट्रेडिंग कारपोरेशन,
बामाणी मार्केट, जयपुर–३
फोन 75878

भांडिया एन्टरप्राइजेज
(डिपार्टमेण्टल स्टोर)
मि० इ० रोड, जयपुर–१

परिचय खण्ड



जिनवाणी परिवार के कतिपय विज्ञापनदाता सदस्यो एवं सहयोगियो का सक्षिप्त परिचय

जिनवाणी के विगत ३८ वर्षों के इतिहास से यह प्रकट है कि प्रारम्भ से आज तक यह पत्रिका विज्ञापन प्रकाशन से दूर रही है पर इस विशेषाक म हमे विशिष्ट परिस्थितिया म एक नई परिष्कृत शैली का अनुसरण करते हुए कतिपय विज्ञापन देने पड रहे हैं।

कागज और छपाई की आकाश को छूती हुई महगाई के युग म बिना इस प्रका के साधन जुटाय हम इतनी परमोपयोगी सामग्री से परिपूर्ण इतना सुन्दर विशेषा पाठको की सेवा म प्रस्तुत करने मे समर्थ ही नही हो सकते थे।

पाठको के हित को दृष्टि म रखते हुए तथा इस महत्वपूर्ण प्रकाशन म आर्थिक सहयोग देने वाले जिनवाणी परिवार के सहयोगी बन्धुओ का परिचय देने हेतु हमने सोच-विचार कर विज्ञापन देने का यह नव्य भव्य स्वरूप निर्धारित किया है। इन विज्ञापनो म भी वीर प्रभु का अमर सदेश गूज रहा है। हमे विश्वास है कि हमारे सहृदय पाठक हमारी इस नवीन प्रणाली का स्वागत करेंगे।

श्री नानक आर. मीरपुरी

आप हांगकांग के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त रत्न व्यवसायी है। आचार्य श्री हस्ती-मलजी म. सा. के सान्निध्य मे आने के पश्चात् आप जैन धर्म मे बड़ी रुचि लेते है। यह आपकी विशाल हृदयता का प्रमाण है कि अजैन होते हुए भी आप धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु मण्डल द्वारा सचालित कार्य-क्रमो को बल देने के लिये मुक्त हस्त हो सहायता देने मे तत्पर रहते है।

श्री वासुदेव के. नयनानी

आप रत्न-व्यवसाय के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यवसायी है। आचार्य श्री १०८ श्री हस्तीमलजी म. सा. के आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत प्रवचनो से अनुप्राणित हो आप जैन धर्म के सिद्धान्तो मे बड़ी रुचि रखने लगे है। आचार्य श्री से प्रेरणा प्राप्त कर मण्डल, धर्म और समाज की नीव को सुदृढ बनाने वाले जिन रचनात्मक कार्यों का सचालन कर रहा है उनमे आप मुक्त हस्त हो आर्थिक सहयोग देने के लिये तत्पर रहते है।

श्री इन्द्रचन्द्रजी हीरावत

राजस्थान के रत्न-व्यवसायियो मे आपका प्रमुख स्थान है। इतिहास समिति के अध्यक्ष पद पर रहते हुए आपने विगत दो वर्षों मे जो जैन समाज की सेवाये की है वे चिरस्मरणीय रहेगी। सामाजिक सेवा के क्षेत्र मे आपका युवको जैसा उत्साह वस्तुत. सबके लिए प्रेरणा प्रदायी रहा है। समाज के पिछड़े वर्ग के शिक्षित युवको को जवाहरात के व्यवसाय मे निष्णात कर आपने अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की है। धर्म और धर्मगुरु के प्रति प्रगाढ़ आस्था आपकी सबसे बड़ी विशेषता है।

श्री रमेश जरीवाला

आप गुजराती पटेल परिवार के एक बड़े उत्साही नवयुवक है। जयपुर के तेल व्यवसाइयो मे आपका प्रमुख स्थान है। अम्बिका आइल मिल्स, झोटवाडा, जयपुर तथा लक्ष्मी आइल एण्ड एक्सट्रेक्शन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड, झोटवाड़ा इन दो आइल मिलो को आप बड़ी कुशलतापूर्वक चला रहे है।

आज के युग के महान् सन्त आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के उपदेशों से प्रभावित हो आपने आध्यात्मिक साधना के अनेक नियम ग्रहण किए हैं। अजैन परिवार के होते हुए भी आप जैन धर्म के प्रति आस्था और श्रद्धा रखते हुए जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में गहरी दिलचस्पी रखते हैं।

चोरडिया परिवार

सर्व श्री गुमानमलजी, उमरावमलजी, राजमलजी चोरडिया—आप तीनों श्रेष्ठिवर प्रसिद्ध समाज सेवी, धर्मनिष्ठ एवं प्रमुख रत्न व्यवसायी स्वर्गीय श्री स्वरूपचन्द जी सा० चोरडिया के सुपुत्र हैं। स्व० श्री चोरडिया साहब ने धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में अमूल्य सेवाएं देने के साथ-साथ समाज के आर्थिक दृष्टि से अक्षम अनेक युवकों को कुशल रत्न व्यवसायी बना कर जो समाज की उत्कट सेवा की है, वह शताब्दियों तक जयपुर के जैन समाज के स्मृति पटल पर स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी।

चिकित्सा सेवा क्षेत्र में अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी की स्थापना तथा संचालन में इस परिवार का श्लाघनीय एवं बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

श्री गुमानमलजी चोरडिया—आप अखिल भारतीय श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन संघ के अध्यक्ष हैं। आपने स्थान-स्थान पर पद यात्राएं कर जैनधर्म के प्रचार एवं प्र... नवीन क्रान्ति का शंखनाद फूंक कर समाज में नवजीवन का प्रसार किया है।

श्री उमरावमल चोरडिया—आप एक परखे हुए विचारशील एवं ...मठ समाज-सेवी हैं। सदा प्रसन्न सौम्य मुखमुद्रा और प्रभाव एवं प्रवाहपूर्ण व...त्व शैली के धनी बन्नूजी के नाम से लोकप्रिय। इन मनस्वी चोरडिया बन्धु ने पशुबलि निषेध विधेयक को कानून का रूप दिलाने के लिये किये गये सामूहिक अभियान में अद्भुत प्रतिभा प्रदर्शित कर विपुल यश एवं पुण्य अर्जित किया है।

श्री राजमलजी भी अपने पिता के पद चिह्नों पर चलते हुए विगत अनेक वर्षों से समाज सेवा के कार्यों में सक्रिय सहयोग करते आ रहे हैं।

श्री उग्रसिंहजी बोथरा

आप बड़े शान्त, सौम्य सरल एवं मधुर प्रकृति के धर्मनिष्ठ रत्न व्यवसायी हैं। सामायिक स्वाध्याय और सहधर्मी-वात्सल्य आपके दैनिक जीवन के प्रमुख अंग

ही नहीं अपितु अनिवार्य अभिन्न अङ्ग बन गये हैं। उर्दू शायर की

"शमा महफिल देख ले, यह घर का घर परवाना है।"

आपके घर भर के प्रमुख सदस्यों के आध्यात्मिक प्रेम पर अक्षरशः चरितार्थ होती है। सामायिक स्वाध्याय और तपोरत इस परिवार के प्रति प्रत्येक चिन्तक की रुचि बढ़ती है और वह यह देख कर अवाक् रह जाता है कि इस परिवार को इस जीवन का पाथेय जुटाने की जितनी चिन्ता नहीं है, उससे शतगुनित चिन्ता अगले जीवन के लिए अधिकाधिक पाथेय जुटाने की है। समाज के लिए आदर्श है यह परिवार। आपके पुत्र श्री सुमेर बाबू ने जवाहरात जगत और सामाजिक पुनरुत्थान के क्षेत्र में अदम्य उत्साह एवं अनवरत प्रयास द्वारा जो अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है, उसने सबको आश्चर्य में डाल युवकों के हृदय में यह आत्म-विश्वास जागृत कर दिया है कि सेवा के क्षेत्र में वे बहुत कुछ कर गुजरने की क्षमता रखते हैं। 'साधना भवन' के निर्माण के लिए एक बहुत बड़े भूखण्ड का सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल को दान कर इस परिवार ने अपनी अनुपम उदारता एवं दानवीरता का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर समाज के श्रीमन्तों के समक्ष एक आदर्श रखा है।

'तपस्विनीजी' के श्रद्धास्पद नाम से समाज में लब्धप्रतिष्ठा अपनी मातुश्री से सुमेर बाबू को सदा अजस्र प्रेरणा, प्रोत्साहन और आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है। आध्यात्मिक ओज की पुञ्ज एक मातृ-शक्ति किस प्रकार एक परिवार को श्री समृद्धि, साफल्य और यश का पात्र बना सकती है, इसका बोथरा परिवार एक प्रतीक है।

श्री पूनमचन्दजी हरिश्चन्द्रजी वडेर

आप जयपुर के प्रमुख रत्न-व्यवसायी हैं। आपका जीवन बड़ा ही सीधा-सादा और खुली पुस्तक के पृष्ठ के समान है। जिन शासन, सन्त-सतियों एवं स्वधर्मी बन्धुओं की सेवा में आप विशेष रुचि रखते हैं। आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जैन इतिहास समिति और सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल इन तीनों संस्थाओं के जन्मकाल से ही आप इनके कोषाध्यक्ष पद का भार वहन करते आ रहे हैं। इन संस्थाओं को पनपाने एवं आत्म-निर्भर बनाने में आपका बड़ा योगदान रहा है। आपकी जागरूकता और निष्ठा का ही प्रतिफल है कि इन तीनों संस्थाओं में आज तक एक पैसे का भी अपव्यय नहीं हो पाया है।

सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र श्री हरिश्चन्द्रजी भी अपने पिता के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए समाज-सेवा के कार्यों में तन-मन-धन से पूरा सहयोग देते आ रहे हैं। रत्न-व्यवसाय में आपने अपने बुद्धि कौशल से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है।

श्री नथमलजी टीकमचन्दजी हीरावत

आप दोनो हीरावत बन्धु बडे प्रतिष्ठित समाज-सेवी है। श्री नथमलजी साहब हीरावत तो विगत अनेक वर्षों से समाज की बडी ही निष्ठापूर्वक मूक सेवा कर रहे है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर, जैन इतिहास समिति, स्वाध्याय संघ, महावीर निर्वाण शताब्दी समारोह समिति, सिद्धांत शिक्षण संस्थान आदि जिन शासन सेवी संस्थाओं को आत्मनिर्भर बनाने मे आपने जो अमूल्य सेवायें एव योगदान दिया है, उसके लिए समाज आपका सदा ऋणी रहेगा। 'जिन वाणी' मासिक पत्रिका के प्रबन्ध सम्पादक के रूप मे अनेक वर्षों तक कार्य कर आपने अतुल कीर्ति अर्जित की है। आप स्वाध्याय, चिंतन मनन और तत्त्वज्ञान के बडे रसिक है। आपको अपने धर्म और धर्म-गुरु के प्रति प्रगाढ निष्ठा एव अटूट श्रद्धा प्रत्येक चिंतक के लिए अनुकरणीय है।

श्री टीकमचन्दजी हीरावत बम्बई के लब्धप्रतिष्ठ व्यवसायी है। आप सामाजिक सेवा के कार्यों मे भी अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री नथमलजी साहब से प्रेरणा ले सक्रिय सहयोग देते रहते है।

श्री लाभचन्दजी लोढा

सौम्य एव भव्य व्यक्तित्व के धनी, उत्साही समाज-सेवी और जवाहरात के प्रमुख व्यवसायी होने के साथ-साथ आप बडे लोकप्रिय हैं। धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा के कारण आप धार्मिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक अभ्युत्थान के लिए किये जाने वाले प्रत्येक कार्य मे बडी रुचि रखते हुए सक्रिय योगदान देने के लिए सदा उद्यत रहते हैं।

आपने 'साधना भवन' के निर्माण के लिए सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल को २,००,००० रु की बडी राशि का दान कर जो समाज के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत किया है वह श्रीमन्तों के लिए सदा प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा।

श्री सिरहमल नवलखा

आप जयपुर के एक अग्रगण्य रत्न व्यवसायी है।

आपने समाज सेवा के क्षेत्र मे अनुपम योगदान देकर बडी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। आपने अनेक समाज-सेवी संस्थाओं मे प्राण फूके है तथा उनमे से कई के आप वर्षों

अनेक के प्रमुख पदाधिकारी है। जनोपयोगी भवन, जनता कॉलोनी और के भव्य भवन, जिनके निर्माण मे आपने अपना अमूल्य समय और अहर्निश श्रम देने के साथ-साथ विचक्षण बुद्धि कौशल का परिचय दिया है, शताब्दियो तक भावी पीढियो को आपका स्मरण कराते रहेंगे।

आप ज्वैलर्स एसोसिएशन एव सुबोध कॉलेज के भी वर्षो अध्यक्ष रहे हैं। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के आप उपाध्यक्ष है। 'साधना भवन' के निर्माण मे भी आपही का अमूल्य सहयोग हमे प्राप्त है।

श्री कीर्ति एवं श्री प्रकाश

आप दोनो उत्साही युवा जौहरी बन्धु अपनी धर्म-प्राण मातुश्री से प्राप्त सस्कारो एव प्रेरणा से अनुप्राणित हो सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा सचालित धार्मिक, सास्कृतिक एव सामाजिक अभ्युत्थान के कार्यक्रमो मे बडी रुचि के साथ सक्रिय सहयोग देने में सदा तत्पर रहते है। आदर्श स्वाध्यायियो के रूप मे भी आप समाज मे बड़े लोकप्रिय है।

श्री हेमचन्द पदमचन्द

आप दोनो उत्साही नवयुवक जयपुर के प्रतिष्ठित रत्न-व्यवसायी, लगनशील समाजसेवी और अटूट आस्थावान धर्म प्रेमी है। अपने स्वधर्मी बन्धुओ को आगे बढ़ाने की इन युवा हृदयो मे जो अटूट लगन है वह वस्तुत प्रत्येक युवक के लिए स्पृहणीय एव अनुकरणीय है। श्री हेमचन्दजी जयपुर के प्रमुख व्यवसायी श्री अनूपचन्दजी बम्ब के और श्री पदमचन्दजी श्रीमान् राजमलजी सा० कोठारी के सुपुत्र है। समाज को इन दोनो विचारशील परिश्रमी युवको से बडी आशाये है।

श्री पदमचन्दजी हीरावत

आप जयपुर के गण्यमान्य रत्न-व्यवसायी हैं। अपने धर्म तथा धर्मगुरु के प्रति प्रगाढ एवं अटूट आस्था को अपनी रग-रग मे रमाये आप स्वधर्मीवात्सल्यता के कार्यों मे मुक्त-हस्त हो सद्व्यय करने मे परमानन्द का रसास्वादन करते रहते हैं।

श्री हुक्मीचन्दजी साहब, जोधपुर

आप जोधपुर के लब्ध प्रतिष्ठ अग्रगण्य वकील है। समाज-सेवा के कार्यों मे मुक्त हस्त हो आर्थिक सहयोग देने म आपको अपार आनन्द का अनुभव होता ह। 'मित्र धर्मेण योजयेत्' इस नीति वाक्य को आपने अपने जीवन मे उतारा ह। आप प्रतिवष अनेक बार बस की व्यवस्था कर अधिकाधिक स्वधर्मी ब-धुओ एव माताओ को गुरु दशनाथ दूरस्थ नगरो एव ग्रामो मे ले जाते है। अन-य गुरु-भक्ति इस परिवार की विशेषता है।

श्री अजीतकुमार बीरानी

सौम्य सम्मोहक व्यक्ति-व एव प्रभावोत्पादक प्रतिभासम्पन्न उत्साही युवक बीरानीजी न रत्न व्यवसाय मे अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित की है। समाजसेवा के कार्यो मे आपकी बाल्यकाल से ही अभिरुचि रही है। आचाय श्री हस्तीमलजी म सा की प्रेरणा से समाज के आध्यात्मिक अभ्युत्थान को लक्ष्य म रखकर स्थान-स्थान पर स्वाध्याय सघो को सुदृढ सुसगठित एव देशव्यापी बनाने का काय सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के तत्वावधान मे चल रहा है। इसी उद्देश्य से जून, १९७५ म अलीगढ रामपुरा म स्वाध्यायी शिविर का आयोजन किया गया। श्री बीरानी धम और समाज की नीवो का सुदृढ बनाने वाले इन काय[illegible] बडे प्रभावित हुए। आर्थिक दृष्टि से अक्षम स्वधर्मी ब-धुओ को सवत सक्षम बनाने[illegible] भावना से श्री बीरानी न बहुत बडे पैमाने पर स्वधर्मी वात्सल्य सघ गठित करने [illegible] बीडा उठाया है। आप इन दिनो इसी भगीरथ प्रयास म निरत हैं।

श्री कैलाश एव श्री सुरेश दुगड

आप मद्रास के बहुत बडे व्यवसायी है। आप उन अगुलियो पर गिने जाने वाले व्यवसाइयो म प्रमुख ह, जिन पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनो की समान कृपा होती ह। सौम्य, स्मित आकषक व्यक्तित्व के साथ हर विषय पर अधिकार और वचन-चातुरी— यह मणिकाञ्चन सयोग प्रत्येक महत्त्वाकाक्षी के लिए प्रेरणा प्रदायी है। सामाजिक एव धार्मिक अभ्युत्थान के प्रति आपकी गहरी अभिरुचि है और सदा इन प्रकार के कार्यों म महत्त्वपूर्ण योगदान देते रहते हैं।

श्री हीराभाई (मंगलचन्द ग्रुप)

आप 'मगलचन्द ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्रीज' के अन्तर्गत चल रहे बड़े-बड़े तीन उद्योगो के स्वामी है। 'मगलचन्द ग्रुप' के तत्वावधान मे चल रही अनेक जनकल्याणकारी सस्थाओ को आत्मनिर्भर बना कर जिस दक्षता से आप उनका सचालन कर रहे है, उससे आपकी दान वीरता, समाज प्रेम और धर्मनिष्ठा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। सामाजिक, धार्मिक एव सास्कृतिक अभ्युत्थान के लिये सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा सचालित कार्य-क्रमो को सफल बनाने मे भी मण्डल को समय-समय पर आपका सहयोग प्राप्त होता रहा है। आप तपागच्छ श्री संघ के अध्यक्ष और गुजराती समाज के उपाध्यक्ष है।

श्री गनपतलालजी कोठारी

आप जवाहरात उद्योग के प्रमुख रत्न व्यवसायी हैं। समाज सेवा के कार्यो मे आपकी बाल्यकाल से ही गहरी अभिरुचि रही है। आप बडे कर्मठ एवं लोकप्रिय समाज सेवी हैं। वर्तमान समय मे आप श्री वर्द्धमान जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी सघ के कार्यकारी अध्यक्ष का पद भार बडी योग्यता के साथ वहन कर रहे हैं।

श्री राजेन्द्र कुमार गोलेछा,

आप सोपस्टोन उद्योग के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त व्यवसायी श्री हरिश्चन्द्रजी गोलेछा के सुपुत्र है। आप सामाजिक अभ्युत्थान के कार्यो मे निरत समाज सेवी सस्थाओ को मुक्तहस्त सहायता देते रहते है। मण्डल को भी आपका सहयोग प्राप्त होता रहा है।

श्री वीरेन्द्रकुमार देवेन्द्रकुमार लूणावत

आप दोनो सहोदर जयपुर के लब्धप्रतिष्ठ रत्न-व्यवसायी है। लगातार १६५ दिन तक उपवास कर संसार को आश्चर्य मे डाल देने वाली, तपस्या का विश्व मे नया कीर्तिमान स्थापित करने वाली घोर तपस्विनी मा इचरजकंवर के ये दोनो सुपुत्र समाज-सेवा

के कार्यों में प्रगाढ रुचि के साथ सक्रिय सहयोग देते रहते हैं। अपनी माता द्वारा की गई अभूतपूर्व तपस्या के उपलक्ष में आप दोनों युवकों ने एक लाख रुपये की बडी राशि समाज-सेवा के स्थायी कार्यों के लिए प्रदान कर अनुकरणीय मातृ-भक्ति के साथ-साथ समाज सेवा का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया है।

इस आदर्श परिवार पर समस्त जन जगत् को बडा गर्व है, नाज है।

श्री चम्पालालजी बोथरा, देव आशीष, जयपुर

रत्न व्यवसाय में आपने उल्लेखनीय प्रतिष्ठा एवं ख्याति प्राप्त की है।

पुण्य का पौधा कितना सुखद, शीतल, सुन्दर और सुस्वादु फल वाला होता है—इस आध्यात्मिक गूढ प्रश्न का उत्तर आपके देवाशीष प्राप्त देवोपम सौम्य व्यक्तित्व को देखते ही स्वतः मिल जाता है। सामाजिक धार्मिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के उद्देश्य से किये जाने वाले प्रत्येक कार्यक्रम में सदा से आप प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में योगदान देते आये हैं।

श्री गाढमलजी सा० ढड्ढा

आप जयपुर के जवाहरात व्यवसाय के प्रमुख व्यवसायी हैं। सामायिक, स्वाध्याय एवं समाज सेवा में आपकी दृढ आस्था है। मण्डल की विविध गतिविधियों में आपकी गहरी अभिरुचि है।

श्री शरद सुधीर

आप बन्धु द्वय जयपुर के यशस्वी रत्न व्यवसायी तथा सरस्वती और लक्ष्मी दोनों के समान रूप से प्रीति पात्र श्रीमान् श्रीचन्द्रजी गोलछा (बाबू साहब) के पौत्र हैं। शरद की शीतलता और सुधीर का धीरज इन दोनों गुणों का श्री शरद और श्री सुधीर में नामानुरूप सुन्दर सुयोग है। इन दोनों उत्साही युवा व्यवसायियों से समाज को बडी आशाएं हैं।

श्री चन्द्रसिंहजी बोथरा

जयपुर के प्रतिष्ठित रत्न व्यवसायी हैं। समाज सेवा के कार्यों में आपका वर्षों सक्रिय योगदान रहा है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के तत्वावधान में चल रही सामाजिक एवं धार्मिक अभ्युत्थान की विविध गतिविधियों में आप अपना अमूल्य समय एवं श्रम देने के साथ-साथ आर्थिक सहायता भी प्रदान कर रहे हैं।

श्री ज्ञानचन्दजी कोठारी

जयपुर के रत्न व्यवसाइयों में आपका स्थान अग्रगण्य है। इस व्यवसाय में आपने बड़ी ख्याति प्राप्त की है। प्रमुख रत्न पारखी होने के साथ आप बड़ी सुलझी हुई विचार-धारा के व्यक्ति हैं। आज की तेजी के साथ बदलती हुई परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए समाज की नींव को सुदृढ़ बनाने के पक्षपाती हैं। धर्म और समाज की अभ्युन्नति के कार्यों में आप सदा सक्रिय सहयोग देते आये हैं। आप से समाज को बहुत कुछ अपेक्षाएं हैं।

सांघी श्री मन्नूजी

आप मोटर व्यवसाय के बहुत बड़े व्यवसायी, धर्म-प्राण धर्म भीरु, भावुक और मिलनसार हैं। विशाल हृदयता आपका सबसे बड़ा गुण है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अभ्युत्थान से सम्बन्धित रचनात्मक कार्य-क्रमों में आपकी गहरी दिलचस्पी रहती है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के तत्वावधान में किये जा रहे रचनात्मक कार्य-क्रमों में आप अजैन होते हुए भी विगत दो वर्षों से खुले दिल से सहयोग देते आ रहे हैं।

श्री सोहनलाल जैन, जयपुर प्रिण्टर्स

आप जयपुर प्रिण्टर्स एवं जयपुर ब्लाक्स के नाम से राजस्थान में विख्यात छापेखाने के स्वामी हैं।

आप बड़े सेवाभावी, मृदुभाषी एवं छपाई उद्योग में निष्णात हैं।

मण्डल के प्रति आपका विशेष स्नेहपूर्ण व्यवहार रहा है। अनेक अवसरों पर दिन-रात परिश्रम कर मण्डल के साहित्य को समय पर स्वच्छ, सुन्दर और परम आकर्षक रूप में छापकर आपने मण्डल की बडी सहायता की है।

श्री धर्मव्रत आर्य, भरतपुर

आप कृषि उपयोगी यन्त्रों के बहुत बडे व्यवसायी हैं। 'एग्रोकिंग', मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर—के नाम से विख्यात अपनी फर्म के माध्यम से राजस्थान में कृषि उन्नति के क्षेत्र में आपने बडा महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। आप अजैन होते हुए भी आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब के जन-कल्याणकारी उपदेशों से प्रभावित हो विश्वबन्धुत्व की भावनाओं से ओतप्रोत जैनधर्म के सिद्धान्तों के प्रति गहरी रुचि रखते हैं।

श्री माणकजी लोढा

जयपुर में मिर्जा इस्माइल रोड पर स्थित 'हृण्डीक्राफ्ट पेरेडाइज' नामक फर्म के स्वामी श्री माणकजी लोढा आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के अनन्य भक्त एवं निःस्वार्थ समाज सेवी डा० कल्याणमलजी लोढा (जोधपुर) के बडे पुत्र हैं। आप समाज के सर्वांगीण और विशेषतः आध्यात्मिक धरातल के अभ्युत्थान के कट्टर पक्षपाती हैं और इस अभियान में अपना योगदान करने के लिये सदा सहर्ष तत्पर रहते हैं।

श्री राधेश्यामजी

आप अरुण एम्पोरियम, संसार चिल्ला, जयपुर के नाम से विख्यात फर्म के अधिष्ठाता हैं। संत समागम की रुचि के फलस्वरूप आप अजैन कुल के होते हुए भी जैनधर्म के जन-कल्याणकारी सिद्धान्तों के प्रति प्रगाढ अभिरुचि रखते हैं और उनके प्रचार प्रसार में यथाशक्ति योगदान कर हर्ष का अनुभव करते हैं।

श्री गुलाबमलजी सिंघवी

...ब कोर्नर' नामक फर्म के स्वामी तथा सोडा केमिकल इण्डस्ट्रीज, झोटवाड़ा के ... साझीदार श्री सिंघवी जयपुर के ख्याति प्राप्त व्यवसायी है। धर्म के प्रति सच्ची निष्ठा के साथ-साथ आप समाज सेवा और सामाजिक अभ्युत्थान के लिये मण्डल द्वारा किये जा रहे कार्यों मे आन्तरिक रुचि रखते हुए मण्डल को आर्थिक सहायता देने के लिये भी तत्पर रहते है।

श्री हुक्मराजजी भंसाली

राजस्थान एल्यूमीनियम कारपोरेशन, जयपुर के स्वामी श्री भंसाली बडे ही उत्साही नवयुवक है। आपकी धर्म मे प्रगाढ निष्ठा है। धार्मिक एव सामाजिक अभ्युत्थान के लिये मण्डल द्वारा किये जाने वाले कार्यों मे आप सदा सक्रिय सहयोग देते रहे हैं।

एल्यूमीनियम उद्योग के अतिरिक्त आप सोडा केमिकल इण्डस्ट्रीज, झोटवाड़ा नामक केमिकल उद्योग मे श्री गुलाबमलजी सिंघवी के साझीदार है।

श्री श्रीपाल सिंघवी, जोधपुर

आप राजस्थान के यशस्वी पत्रकार और साहित्य प्रकाशन उद्योग के प्रतिष्ठित व्यवसायी है। आचार्य श्री १०८ श्री हस्तीमलजी म. सा. से प्रेरणा प्राप्त कर सामाजिक एव धार्मिक कार्य-क्रमो मे बडी रुचि रखते है। मण्डल को आपसे तथा आपके प्रेस से समय-समय पर सहायता मिलती रहती है।

श्री केवलचन्दजी हीरावत, परतानियों का रास्ता, जयपुर

आप जवाहरात व्यवसाय के प्रतिष्ठित व्यवसायी है। आप धार्मिक एव सामाजिक प्रगति के कार्यक्रमो मे बड़े उत्साह के साथ सदा भाग लेते रहते है। देव धर्म और धर्मगुरु के प्रति अनन्य आस्थावान् आप नियमित रूप से धर्माराधन मे तत्पर रहते है। आपके

सुपुत्र श्री कैलाशचन्दजी आधुनिक विचारों के उत्साही
मदद करने मे बडी रुचि रखते है ।

श्री नरेन्द्र सांघी, सदस्य लोकसभा

आप भारत के माने हुए मोटर व्यवसाइयो मे अग्रगण्य है । मोटर
आपने बडी ख्याति प्राप्त की है । आप भारतीय गणतन्त्र की लोकसभा के सदस्य हैं । धर्म मे आपकी बडी अभिरुचि है । यह आपकी विशाल हृदयता हुए विचारो का ज्वलन्त उदाहरण है कि अजैन होते हुए भी आप सम्यग्ज्ञा मण्डल के तत्वावधान म सामाजिक, साहित्यिक एव धार्मिक अभ्युत्थान की जा रही कार्यवाहियो मे गहरी रुचि रखते हुए मण्डल को सदा सक्रिय रहते हैं ।

श्री सरदारमलजी चोपडा, बारह गनगौर का रास्ता, जय

आप राजस्थान के प्रमुख रत्न व्यवसायी है । रत्न व्यवसाय म विशिष्ट र करने के साथ साथ आपने सामाजिक कार्यों मे बडी निष्ठा एव लगनपूर्वक कार्य कर लिया है । आप पिछले कतिपय वर्षो से श्री वर्द्धमान जैन श्वेताम्बर स्था सघ, जयपुर के मन्त्री पद के कार्यभार का निवहन बडी योग्यतापूर्वक क धर्म के प्रति निष्ठावान् चोपडाजी सामाजिक कार्यों एव अपन अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी अपने आराध्य गुरु गजेन्द्राचार्य से ग्रहण किये स्वाध्याय, व्रत प्रत्याख्यानादि नियमो का नियमित रूप से पालन करते है ।

श्री कुशलचन्द्रजी हीरावत, बारह गनगौर का रास्ता, जयपुर

आप अपने नाम के अनुरूप ही रत्न व्यवसाय म कुशल है ।

आप जयपुर के प्रतिष्ठित रत्न व्यवसायी हैं । अपने नाम के अनुरूप आप व्यवहार कुशल, व्यवसाय कुशल और दयाभावी हैं । आप मण्डल के रचनात्मक कार्यों म गहरी अभिरुचि रखते हैं ।

...संचेती, हल्दियों का रास्ता, जयपुर

...नर' नामक ...ल रत्न-व्यवसायी है। धार्मिक एव सामाजिक अभ्युत्थान हेतु ...कादार श्री मि... द्वारा सचालित कार्यक्रमों मे आपकी बड़ी रुचि है।

...ठा के साथ-साथ आप ...ता रहे कार्यों में आ... लिये भी तत्पर रहते ...

श्री सरदारमलजी उमरावमलजी ढड्ढा
परतानियों का रास्ता, जयपुर

आप राजस्थान के अग्रगण्य, सम्पन्न, प्रतिष्ठित एक प्रमुख व्यवसायी है। भव्य ...त्व के धनी ढड्ढा साहब धार्मिक एव सामाजिक कार्यों मे गहरी रुचि रखते हुए ...भावी सस्थाओ को सहयोग देने मे तत्पर रहते है।

है

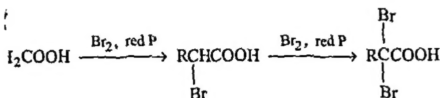
श्री उमरावमल सेठ, जौहरी बाजार, जयपुर

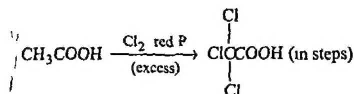
आप रत्न व्यवसाय के बहुत पुराने ख्याति प्राप्त व्यवसायी है। देव, धर्म और गुरु ...प्रति प्रगाढ आस्था के प्रतीक सेठ साहब का अधिकाश समय स्वधर्मी वात्सल्य, सत- ..., सेवा और समाज सेवा के कार्यो मे ही व्यतीत होता है। सेठ परिवार की धर्म ...के प्रति निष्ठा समाज मे सर्वविदित है। इस परिवार ने पूर्व मे एक सन्त रत्न ...ल मे एक श्रमणी रत्न समाज को प्रदान किया है। जब आपकी किशोर ...ी तेज कवरजी ने ससार से विरक्त हो आत्म कल्याणार्थ श्रमणी धर्म ...इच्छा प्रकट की तो सेठ साहब ने उन्हे तत्काल दीक्षित होने की सहर्ष ...। ...रु भक्ति समाज मे स्पृहा की वस्तु बनी हुई है।

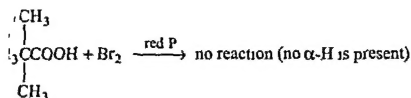
आप राजस्था... व्यवसायी है। ... एव धार्मि... स...

श्री कैलाशचन्द विमलचन्द डागा

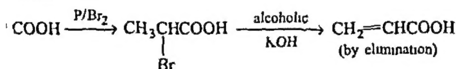
...नवयुवक रत्न व्यवसाय के लब्ध प्रतिष्ठ एव सम्पन्न व्यवसायी है। ...दिर नवीन सुलझे हुए विचारो के समाजसेवी है। धर्म और धर्मगुरु के प्रति अनन्य आस्थावान डागा बन्धु सामाजिक एव धार्मिक अभ्युत्थान के निर्माणकारी कार्यो मे बडे उत्साह के साथ सक्रिय भाग लेते रहते हैं। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की सृजनकारी प्रवृत्तियो मे आपका पूर्ण सहयोग रहा है।

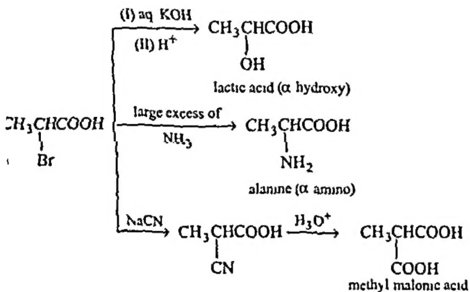






he α-H atoms (by HVZ reaction) provides a path of the preparation of substituted reaction





$aOH + CaO$) decarboxylates acid into alkane (reaction Y in Fig



